श्री दादू वाणी

(सटीक)

अनभै वाणी अगम को, ले गई संग लगाय।
अगह गहै, अकह कहै, अभेद भेद लहाय॥

सम्पादक

मा. नारायण स्वामी

एम ए , शिक्षाविद्, अर्थशास्त्री, साहित्य-विशारद

(संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण)

टीकाकार

सन्त कवि कविरत्न स्वामी नारायण दास जी महाराज

पुष्कर

प्रकाशक

श्री दादू दयालु महासभा, जयपुर

सार्वजनिक प्रन्यास सं. ६७५/७९

नौका येन विलंघिता जलनिधौ कारुण्य पोथेधिना,
'दादूराम दयाद्र्य पालय विभो' श्रुत्वेति वेश्येरिते ।
यद्‌गीतेन विशुद्धता: सपतयो गावश्च प्राप्ता पदम्,
त दादूं शरदेन्दु सुन्दरवर वन्देऽहमानन्ददम् ॥

प्राक्कथन

सत्यराम/परम पिता परमात्मा एव परमदयालु इष्ट गुरुदेव श्री दादूदयाल जी महाराज के असीम अनुकम्पा से श्रीदादूवाणी ग्रन्थ (सटीक) का यह चतुर्थ सस्करण प्रकाशित करते हुए अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है।

श्रीदादूवाणी प्रमुखतया एक आध्यात्मिक ग्रन्थ है, यो कहिए, आत्म-दर्शन है। सर्व वेद शास्त्रो का सार और सन्त-शिरोमणि श्री दादूदयाल जी महाराज का स्वकीय साधनाजन्य अनुभव-ज्ञान मिलकर जहा धर्म और मोक्ष का विषय सुस्पष्ट स्वरो से शब्द-शब्द मे स्फुटित हो रहा है, वहीं गौणरूप से भौतिक गुणो एव व्यावहारिक ज्ञान पर आधारित अर्थ तथा काम के विषय का निदर्शन भी स्थल-स्थल पर पर्याप्त मात्रा मे किया गया है, अत इसे "अनभै वाणी" के नाम से भी अभिहित किया जाता है। श्री दादूजी महाराज ने स्वय श्रीमुख से कहा है-

"अनभै वाणी अगम की, ले गई सग लगाय।
अगह गहै, अकह कहै, अभेद भेद लहाय॥

जो कुछ वेद कुरान थैं, अगम अगोचर बात।
सो अनभै साचा कहै, यो दादू अकह कहात॥"

चूकि इस ग्रन्थ मे सग्रहित साखी-शब्द रूप सूक्त श्री दादूजी महाराज द्वारा विभिन्न स्थलो और अवसरो पर अधिकाशत जिज्ञासुजनो तथा श्रोतागणो के सम्मुख उन्हीं की भाषा मे स्वत स्फूर्त, सरस, सरल व सक्षिप्त सुविचार है, जो स्वरचित स्वरोचित लयात्मक पद्य शैली मे शका-समाधानार्थ एव उद्बोधनार्थ उद्घोषित हुए हैं अथवा अशत आत्मा-प्रबोधार्थ प्रकटित किये गए है। अत श्री दादूवाणी एक प्रचुर प्रकरण युक्त ग्रन्थ होने के साथ-साथ एक बहुभाषी ग्रन्थ भी बन गया है, जो ढूढाड़ी, मारवाड़ी, राजस्थानी, मेवाती, गुजराती, मराठी, सिन्धी, पजाबी, सस्कृत, अरबी-फारसी आदि अनेक भाषाओ से अलकृत है। यथा जब बादशाह अकबर ने श्रीदादू जी महाराज से फारसी जबान मे प्रश्न किया कि -

"मौजूद खबर, माबूद खबर, अरवाह खबर वजूद।
मुकाम चि चीज हस्त, दादनी सजूद॥"

तब श्रीदादूजी ने फारसी मे ही उत्तर दिया -

"नफ्स गालिब किब्र काबिज, गुस्स. मनी एस्त।
दुई दरोग हिर्स हुज्जत, नाम नेकी नेस्त॥"

और जब बादशाह ने हिन्दी मे प्रश्न किया –

''तन मटकी अरु मन मही, प्राण विलोवणहार। तत्त कबीरा ले गया, छाछ पीवै ससार॥''

तब महाराज ने अकबर से निम्न साखी कही –

''चिड़ी चचु भर ले गई, नीर निघट नही जाइ। ऐसा बासन ना किया, सब दरिया माहि समाइ॥''

(ऐसा पात्र आज तक नहीं बना, जिसमे सब समुद्रो का जल समा जाये।''

यदि श्रीदयालु प्रभु की वाणी मे व्यक्त विचारो को व्यक्ति अपने आचार–विचार मे सच्चे हृदय से अपनावे तो चारो ओर व्याप्त साम्प्रदायिक विद्वेष, भेदभाव, हिंसा, अराजकता, अकर्मण्यता, उग्रवाद, जातीय–सघर्ष जैसे परिदृश्य हमे देखने को नहीं मिलेगे और अत्याचार, अनाचार, भ्रष्टाचार, व्यभिचार जैसी बुराइयों के स्थान पर सत्यता, ईमानदारी, भ्रातृभाव, सद्भाव, सहयोग जैसे मानवीय गुणो से युक्त सुन्दर समाज की सरचना मिलेगी और ससार मे सभी लोग सुखी, स्वस्थ एव समृद्ध जीवन–यापन कर सकेगे। श्री दादूजी महाराज का स्पष्ट आदेश है –

''साचा लीजे, साचा, दीजे, साचा सौदा कीजे रे।''
उद्यम औगुण को नही, जे कर जाणे कोय। उद्यम मे आनन्द है, जे साई सेती होय॥
दोनो भाई हाथ पग, दोनो भाई कान। दोनो भाई नैन है, हिन्दू मुसलमान॥

अध्यात्म–दर्शन जैसा दुरूह विषय और वह भी पद्यातक प्राचीन भाषा–शैली मे लिखा होने के कारण ''श्रीदादूवाणी'' ग्रन्थ को सम्यक् समझने मे साधारण पाठक कुछ कठिनाई का अनुभव कर रहे थे, अत सम्पूर्ण वाणी जी की एक ऐसी टीका किये जाने की आवश्यकता महसूस की जा रही थी, जिसका कलेवर अधिक बड़ा भी न हो और कोई साराश छूट भी न जाये। परम दयालु इष्टदेव की कृपा से श्री दादूपथ के व्यास रूप ख्यातनामा सन्त कवि कविरत्न श्री नारायणदास जी महाराज पुष्कर वालो ने अति श्रम करके श्रीदादूवाणी के साखी–शब्दो की आद्योपान्त सारगर्भित ''श्री दादूगिरार्थ प्रकाशिका'' टीका करके सभी सत भक्त, सेवक गण, सत्साहित्य प्रेमी सज्जनो तथा ज्ञान पिपासुओ पर परम उपकार किया है। एतदर्थ समस्त मानव समाज उनका कृतज्ञ है। इसके तीन सस्करण शीघ्र ही समाप्त हो जाने से इसकी लोकप्रियता स्वत सिद्ध हो जाती है।

यह हमारा सौभाग्य है कि सर्वदा सन्त–साहित्य मे स्वाभाविक रूप से रुचि रखने वाले भडारी कनीराम जी स्वामी (नारायणा) ने महासभाध्यक्ष का पदभार ग्रहण करते ही श्री दादूवाणी के प्रकाशन को प्राथमिकता प्रदान की और श्रीदादूदयालु महासभा की प्रबन्ध समिति ने सर्व–सम्मति से महासभाध्यक्ष महोदय के सयोजकत्व मे ''श्री दादूवाणी प्रकाशन समिति'' का गठन कर दिया। तदुपरात परमहस स्वामी क्षमाराम जी को ग्रन्थ के टीकाकार श्री नारायणदासजी महाराज के पास उनकी टीका सहित श्रीदादूवाणी को आवश्यक सशोधन परिवर्धन के साथ प्रकाशन की अनुमति प्राप्ति के लिए भेजा गया। टीकाकार सम्माननीय स्वामी जी ने प्रकाशन का समाचार सुना तो अत्यन्त विह्वल हो उठे और बोले कि मेरे जीवन की भी यही अन्तिम इच्छा है कि श्री दादूवाणी जी के साथ रज्जब वाणी जैसे अन्य ग्रन्थो का भी प्रकाशन हो। इसकी स्वीकृति महासभा को पहले ही दी हुई है, अब मैं पुन सहर्ष स्वीकृति प्रदान करता हूँ। कुछ दिन पश्चात् जब महासभाध्यक्ष श्री भडारी जी ने उनसे भेट कर यह अवगत कराया कि आपके नाम–राशि (मास्टर नारायणदास) को ही इसके सशोधन–सम्पादन का गुरुतर भार सौंपा है तो वे अत्यन्त आनन्दित हो उठे और आशीर्वादात्मक वचनो के साथ इस पुनीत कार्य के शीघ्र निर्विघ्न सम्पूर्ण होने की कामना की।

श्रीदादूवाणी ग्रन्थ का यह चतुर्थ सस्करण सुन्दर कम्प्यूटराइड टाइप मे बढ़िया पेपर पर करवाया गया है। सम्पादक के बार-बार ब्रोकियल एस्थमा से पीड़ित हो जाने के कारण सपादन कार्य कई बार रुका और प्रकाशन मे विलब हुआ। आशानुरूप प्रकाशन के लिए प्राचीन पाडुलिपियो, मुद्रित ग्रन्थो एव शब्दकोशो के अवलोकान्तर आवश्यकतानुसार प्रादेशिक शब्दो व वाक्याशो के सरलार्थ व टिप्पणिया करने के अतिरिक्त निर्देशाको मे परिवर्तन-परिवर्धन के लिए पर्याप्त समय अपेक्षित था ताकि सामान्य जन के लिए भी यह सुगम व सुबोध हो सके।

शारीरिक स्वास्थ्य ठीक न रहने के उपरान्त भी स्वकर्त्तव्यबोध से बाधित मा नारायण स्वामी जी ने अत्यधिक श्रम करके पूर्ण निष्ठा व श्रद्धापूर्वक इस सस्करण को सुन्दर बनाने का प्रयत्न किया, उसी का यह सुफल है कि श्री दादूवाणी जी का यह सुन्दर, शुद्ध व सटीक सस्करण आपके कर-कमलो मे समाहृत है। एतदर्थ सम्पादक महोदय सचमुच साधुवाद के पात्र हैं।

श्री दादू दयालु महासभा प्रबन्ध समिति तथा श्रीदादूवाणी प्रकाशन समिति के सभी पदाधिकारियो व सदस्यो का आभार मानता हूँ कि उन्होने इसके प्रकाशन मे आशानुरूप रुचि लेकर पूर्ण सहयोग दिया।

श्री एम डी गुप्ता, प्रिंसिपल साहब (देहली) ने अपना अमूल्य समय निकाल कर बढ़िया कागज क्रय करने मे साथ दिया और उन्होने सेवार्थ ट्रक किराया अपने पास से देकर कागज को देहली से जयपुर भिजवाया, अत श्री दादूदयालु महासभा की ओर से उन्हे बहुत-बहुत बधाई देता हूँ।

पॉपुलर प्रिन्टर्स के प्रोप्राइटर्स ने जिस सहज श्रद्धा व निष्ठाभाव से श्रीदादूवाणी ग्रन्थ को उनके प्रेस के नाम के अनुरूप सुन्दर छपाई व बढ़िया जिल्दसाजी कराकर इसे और भी पॉपुलर बनाने का पूर्ण प्रयास किया है, तदर्थ वे प्रशसा व धन्यवाद के पात्र हैं। साथ ही नवयुवक कार्यकर्ता बहड़ के सन्त श्री शेषनारायण जी स्वामी भी साधुवाद के योग्य है, जिन्होने प्रेस के प्रकाशन व कार्य निरीक्षण मे अपने पद के अनुरूप अनुकरणीय सहयोग प्रदान किया है।

अन्त मे उन महामना महान् वीतरागी अनेक ग्रन्थो के प्रणेता व भाष्यकार, महामुनि वेदव्यास स्वरूप, सत कवि, कविरत्न श्री नारायण दास जी महाराज पुष्कर वालो को बारबार नमस्कार करता हूँ जिन्होने इस महान् ग्रन्थ को प्रकाशित करने की सहर्ष स्वीकृति प्रदान कर हिन्दी-साहित्य समाज पर जो अपार अनुकम्पा की है, तदर्थ महासभा आपके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती है।

परम पवित्र श्री दादूवाणी जी के प्रकाशन मे कोई त्रुटि न रहे, यही प्रयत्न किया गया है, फिर भी मानव स्वभाववश भूल होना सभव है, अत क्षमा करने की प्रार्थना करता हूँ।

मुझ भावै सो मैं किया, तुझ भावै सो नाहि। दादू गुनहगार है, मै देख्या मन माहि॥

खुशी तुम्हारी त्यो करो, हम तो मानी हार। भावै बन्दा बख्शिये, भावै गहि कर मार॥

दादू जे साहब लेखा लिया, सीस काट सूली दीया। महर मया कर फिल किया, तो जिये जिये कर जीया॥

शुभ भवतु।

आपका अनुचर

डॉ कृष्णदास दादूपथी

दि २७ ११ ९८

मत्री - प्रबन्ध समिति, श्री दादू दयालु महासभा, जयपुर

जाकी वाणी पढ़त बढ़त मन रात दिन, हिय होत अनुभूति अलख अमल की।
जीव जीवभाव तज ब्रह्म को स्वरूप होत, रहे नहिं रेख भी अविद्यामय मल की॥
जिनकी शरण भवतरणि विख्यात भली, कट जाती हाट पाश मोह माया दल की।
'नारायण' वारी बलिहारी जाऊं बार-बार परम दयालु दादू चरण-कमल की॥

सम्पादकीय निवेदन

भारतीय संतसमाज में संत शिरोमणि श्री दादूदयाल जी महाराज अब से लगभग चार सौ वर्ष पूर्व हिन्दी साहित्य के 'भक्तिकाल' में एक देदीप्यमान सितारे के समान अवतरित हुए थे। उन्होंने अपने शिष्यों, प्रेमियों, भक्त गणों, सेवकों तथा जनता जनार्दन के समक्ष समय-समय पर जो सदुपदेश दिये, उन्हीं का संकलित संग्रह "श्रीदादूवाणी" के नाम से सुविख्यात है।

यह श्रीदादूवाणी समस्त हिन्दी साहित्य भण्डार की एक अमूल्य निधि है। इसमें वेद, शास्त्र, उपनिषद्, पुराण आदि कुरान में उल्लिखित सार-तत्त्व के साथ उनके अनुभव-अर्जित ज्ञान का प्रत्यक्ष निदर्शन है।

जो कुछ वेद कुरान थैं, अगम अगोचर बात। सो अनुभै साचा कहै, यहु दादू अकह कहात॥

इस सार-तत्त्व को उन्होंने सरल व सुबोध जनसाधारण की भाषा में प्रस्तुत किया है जिसे व्यक्ति अपने जीवन में व्यवहृत कर सुखी जीवन यापन कर सकता है। इसी ज्ञान-तत्त्व को उनके शिष्य-प्रशिष्यों ने साधना-रूपी कसौटी द्वारा अपनी बुद्धि-कसौटी पर परखा और खरा पाया, जिसका वर्णन उन्होंने अपनी साहित्यिक कृतियों में विभिन्न विधियों से किया है। इनके द्वारा रचित वाणियों से भाषा-साहित्य के कलेवर में विपुल वृद्धि हुई है। फलस्वरूप दादूपंथ मतावलम्बियों ने साहित्य-जगत में हिन्दी को सर्व प्रकार से समर्थ, सशक्त व समृद्ध भाषा का रूप प्रदान किया है जब एक 'रीतिकाल' के रूप में जाना जाता है। इनमें से अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं और शेष पर पाठ-शोध-सम्पादन जैसी अनेक समस्याएँ लेकर प्रकाशन कार्य हेतु प्रयासरत है। अनेक प्रबुद्ध विद्वान् इन पर शोध-प्रबन्ध लिखकर 'डॉक्टरेट' की उपाधि अर्जित कर चुके हैं।

श्री दादूजी व उनकी वाणी पर अभी तक बहुत अधिक गवेषणापूर्ण कार्य नहीं हो पाया है और जो कुछ भी हुआ है उसमें अधिकांशतः तथ्यों पर आधारित नहीं है। क्योंकि संतों की वाणी शास्त्रीय ज्ञान पर कम और अनुभूत ज्ञान पर अधिक आधारित होती है, केवल कोरे ज्ञान तथा पोथी पढ़ाई पर नहीं। अतः अक्षर-ज्ञान की दृष्टि से पढ़े-लिखे माने जाने वाले विद्वान् इनके सही भावार्थ को समझने में असमर्थ रहे हैं। उदाहरण के तौर पर श्री दादूजी की यह साखी देखिये -

"साचा समर्थ गुरु मिल्या, तिन तत दिया बताय। दादू मोटा महाबली, घट घृत मथ कर खाय॥"

हिन्दी के एक दो वेदों के माने हुए ज्ञाता द्वारा अर्थ करते समय विद्वत्ता के अहंभाव में 'मोटा' शब्द को अपनी सूक्ष्म-बुद्धि में पोषगम्य करने हेतु आ की मात्रा हटाकर 'मोट' बनाया और अपनी वैदुष्य की मात्रा का भण्डार बढ़ाने के लिए 'शब्द-कोष' से मोट का अर्थ 'चरस' निकाला और ज्ञान-समुद्र में गोता लगाकर चमड़े के चरस का कर्ता 'महाबली' को चर्मकार बनाकर बलात् जाति की बलि-वेदी पर चढ़ा दिया तथा अपनी विलक्षण बुद्धि से उसकी जाति का सम्बन्ध 'दादू' शब्द से जोड़ कर साहित्य जगत में एक बेजोड़ नमूना पेश किया है। ऐसा ही चार वेद के ज्ञाता दूसरे पंडित अपनी सनक में कहते हैं कि अयोनिज कोई हो ही नहीं सकता, चाहे वह दादू जैसा 'सनक' ऋषि का अवतार ही क्यों न हो ? यद्यपि वे सनकादिक को ब्रह्मा का 'मानस पुत्र' मानने को अवश्य बाध्य होंगे, किन्तु दादू को लोधीराम नागर ब्राह्मण द्वारा वरदान से प्राप्त "वर-पुत्र" नहीं।

सन्तों व उनकी वाणियों को सम्यक् प्रकार से समझने के लिए केवल शास्त्रीय ज्ञान युत साक्षर होने की आवश्यकता नहीं अपितु सच्चे व अनुभवी सतगुरु के शरणागत होकर यथार्थ शिक्षा प्राप्त करने की आवश्यकता प्रतिपादित की गई है। जैसा कि पूर्वोक्त साखी के प्रथम दो चरणों में स्पष्ट निर्दिष्ट है। श्री दादू जी के सुशिक्षित शिष्य सुन्दरदास जी ने कहा है -

"गुरु बिन ज्ञान नहीं, गुरु बिन ध्यान नहीं, गुरु बिन आतमा विचार न लहतु है।"
"गुरु बिन ज्ञान ज्यों अंधेरे माहिं आरसी।"

हिन्दी इतिहास के लेखक व सक्षम साहित्य समालोचक कहे जाने वाले एक महाशय कोई प्रामाणिक तथ्य प्राप्त न होने पर भी अपने हठी स्वभाव व शुक्ल वर्ण की हेठी दर्शाते हुए लिख दिया कि चाहे जो कुछ हो, आखिर थे वे निम्न जाति के ही। आगे जब उन्होने गुरुद्वारा 'मठ' के लिए 'अड्डा' शब्द का प्रयोग किया, तब तो उनकी रही-सही विद्वत्ता का ही मठ मारा गया। श्री दादूजी ने अपनी जाति के बारे मे स्पष्ट लिखा है -

दादू कुल हमारे केशवा, सगा तो सिरजनहार।
जाति हमारी जगत गुरु, परमेश्वर परिवार ॥

लोक मे जगतगुरु तो ब्राह्मण को माना गया है, फिर भी अपनी-अपनी समझ है।

कहा भी है -

जाति न पूछो साध की, पूछ लीजियो ज्ञान। मोल करो तरवार का, पड़ा रहन दो म्यान ॥

श्री दादू जी कितने पढ़े-लिखे थे, ये तो उनकी वाणी का अध्ययन करने से ही पता चलता है। बहुभाषी वाणी जी उनके ज्ञानी-विज्ञानी होने का स्पष्ट प्रमाण है। उन्होने सदियो पूर्व ही लिख दिया कि वृक्षो मे भी जीव होता है और वे चेतन पदार्थ है। अत हरे वृक्ष को काटना जीव-हिसा है। उनमे भी जीवात्मा है।

"सूखा सहजैं कीजिये, नीला भानैं नाहिं। काहे को दु ख दीजिये, साहिब है सब माहि ॥"

उनका अध्यात्म ज्ञान कितना था - यह तो अकबर बादशाह को दिए गए प्रश्नो के उत्तरो से भली भाति ज्ञात होगा -

प्रश्न - अकबर पूछे फक्कड़ से, तीन बात अड़ी ।
ऐरण, हथौड़ा, सडासी, पहले कौन घड़ी ?
कठिन प्रश्न को पूछता, काजी पडित मौन ।
पहली उत्पत्ति कहो, मादा नर में कौन ?

श्री दादू जी महाराज ने अकबर से कहा - वह ईश्वर सर्वशक्तिमान है, जिसने इस सारे ब्रह्माण्ड को रचा है। यदि वह एक-एक वस्तु को घड़ने मे लगाता तो उसे युगानुयुग बीत जाते और इस सृष्टि का निर्माण ही असभव हो जाता, अत उसने एक शब्द 'ओकार' के उच्चारण मात्र से ही सम्पूर्ण लोको की रचना की है। देखिये कितना सुन्दर उत्तर है -

"एक शब्द मैं सब किया, ऐसा समर्थ सोय। आगे पीछे जो करे, जो बलहीना होय ॥"

जब अकबर ने प्रश्न किया कि अब भक्ति मे क्या रखा है, सारे राम-रस को तो कबीर पी गया -

"तन मटकी अरु मन मही, प्राण बिलोवण हार। तत्त कबीरा ले गया, छाछ पीओ ससार ॥"

ईश्वर की अनन्तता को समझाने के लिए श्री दादू जी ने कैसी सोदाहरण सुन्दर उक्ति दी -

"चिड़ी चचु भर ले गई, नीर निघट नहीं जाय। ऐसा बासण ना किया, सब दरिया माहीं समाय ॥"

इसी प्रकार की सारगर्भित सूक्तियो से "दादूवाणी" परिपूर्ण है, समझने वाला सुपात्र होना चाहिए।

श्रीमद् भगवद् गीता के इस श्लोक के सदर्भ मे श्री दादूजी की साखी देखिये -

"ईश्वर सर्वभूताना हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। भ्रामयन् सर्वभूतानि, यन्त्रारूढानि मायया।
"कर्म फिरावै जीव को, कर्मों को कर्तार। कर्तार को कोई नहीं, दादू फेरणहार ॥"

जितनी क्रियाए जीव करता है, उन सभी क्रियाओ मे पुरुषो द्वारा किये गये प्रयत्न के अनुसार ही परमात्मा जीव को उस कार्य को करने की अनुमति प्रदान करके उसे कार्य मे प्रवृत्त कर देता है। परमात्मा की अनुमति के बिना जीव की प्रवृत्ति नहीं होती है। जीव तत्तत् कर्मो को करता है और उनका फल भोगता है।

"घट घट दादू कहि समझावै। जैसा करै सो तैसा पावै ॥
को काहू का सीरी नाहीं। साहिब देखै सब घर माहीं ॥"

उपर्युक्त कथन का साराश यह है कि "श्रीदादूवाणी" एक आत्म-दर्शन ग्रन्थ है जिसमे ब्रह्म-तत्त्व-ज्ञान भरा पड़ा है। इसमे साहित्य के लक्षण रस व अलकार पूर्ण शब्दाडम्बर ढूढने के निरर्थक प्रयास से बचना चाहिए। यह सन्तो की अन्तरात्मा से निकली स्वत-स्फूर्त वाणी है। अत इसे साहित्यिक मनोरजन का उपबध समझना भूल है। इस ज्ञान-समुद्र मे ब्रह्मानन्द की प्राप्ति का सुगम साधन समझकर पैठने का प्रयास करोगे तभी मुक्ति-मुक्ता मिलने से मानव जीवन सफल होगा।

यह मेरा अहोभाग्य है कि मुझे श्री दादूवाणी के सपादन का सुअवसर मिला। सम्पादन का कार्य मुझ जैसे "मन मतिहीन धरै" अल्पमति के द्वारा समुचित रूप से सम्पन्न नहीं हो सकता था, फिर भी मैने मेरे सच्चे सतगुरु श्री॰श्री बलरामजी शास्त्री, मेरे काकागुरु षद्-शास्त्र-पारगत श्री सुरजनदासजी आचार्य, महामडलेश्वर गुरुवर्य श्री चैनदास जी महात्मा, श्री भुवानदास जी महात्मा (लालसोट), महामडलेश्वर श्री आत्माराम जी महाराज व्याकरणाचार्य आदि से जो कुछ सीखा, उसी का सुफल है कि इस कार्य को यथाशक्य सुन्दर बनाने का प्रयास किया है। इसमे जो त्रुटिया रही हैं, वे मेरी प्रमादता के कारण हुई है। इसके प्रकाशन मे जो विलम्ब हुआ, उसमे भी मेरी शारीरिक रुग्णता ही प्रमुख कारण रहा है।

इस वाणी के टीकाकार महोदय वयोवृद्ध सुप्रसिद्ध वीतरागी महात्मा सन्त - कवि कविरत्न श्री नारायणदास जी महाराज पुष्कर वाले हैं, जिन्होने व्यास स्वरूप अनेक ग्रन्थ लिखकर दादू समाज का ही नहीं अपितु सम्पूर्ण मानव समाज का कल्याण किया है। जब मैंने स्वय उनकी शरणागत होकर इस ग्रन्थ के सशोधन व सम्पादन हेतु आशीर्वाद चाहा तो उन्हीं के शब्दो मे "नारायणदास का अभ्यास तो सशोधन का ही है। सशोधन तो सुधार को कहते है, यह करना तो अच्छा ही है" यह कहकर मेरे शिर पर अपना वरद हस्त रखते हुए अत्यन्त गद्‌गद वाणी से आशीर्वादात्मक ये वचन बोले -

"सर्वे भवन्तु सुखिन सर्वे सन्तु निरामया । सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दु खभाग्भवेत् ॥
तन मन निर्मल आत्मा, सब काहू की होय। दादू विषय विकार की, बात न बूझै कोय ॥ "

परम इष्टदेव श्री दादूदयाल जी महाराज व सन्तो के आशीर्वाद से मैं श्रीदादूवाणी के सम्पादनार्थ पुन स्वस्थ हो गया और मुझे प्रसन्नता है कि यह कार्य निर्विघ्न सम्पन्न होगया।

सन्तो की वाणी का सम्पादन करना अत्यन्त कठिन कार्य है। मुझे इसमे काफी कठिनाई का सामना करना पड़ा है। टिप्पणीकार भी जहा जटिल शब्द आया, मौन नजर आये। फिर भी मैने प्राय सभी कठिन शब्दो पर निर्देशाक लगाकर उनके अर्थ को सुस्पष्ट करने की चेष्टा की है। जहा टीका मे दुरूहता दृष्टिगत हुई या कोई अश छूटा हुआ मिला तो उसका सुगम अर्थ करके या वाक्याशो को क्रमबद्ध करके आसान बनाया है। 'जनि' जैसे शब्द जिसका अर्थ 'नहीं' है, उन पर बार-बार निर्देशाक लगाकर स्पष्ट किया है जिससे उसका अर्थ 'जिन' या 'जिन्होने' न समझे। जिन महानुभावो के ग्रन्थो से सहायता ली है उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। फिर भी इस कार्य मे जो कमिया या भूल रह गई हैं, वे मेरी विवशता या प्रमादवश रही हैं, जिन्हे वृद्ध-बाल समझकर क्षम्य-भाव से सुधारने का कष्ट करे।

समय-समय पर सन्त-साहित्य-सर्जक भडारी श्री कनीरामजी स्वामी (नरायना), सत-साहित्य प्रचारक श्री क्षमाराज जी साधु, विद्वद्वर महन्त श्री बजरगदास जी महाराज प्राचार्य आदि जिन सज्जनो ने अपनी सम्मति, सहमति या अर्थ स्पष्टीकरण मे व श्री हरिओम् स्वामी ने प्रूफ सशोधन मे सार्थक सहयोग दिया है, उन सबका मैं आभारी हूँ।

अन्त मे पॉपुलर प्रिन्टर्स के प्रोप्राइटर श्री महावीरप्रसाद जी निर्मलकुमार जी जैन को, जिन्होने अत्यन्त श्रद्धाभाव से इसके मुद्रण मे अपनी पूर्ण निष्ठा प्रकट कर इसे अपने नाम के अनुरूप पॉपुलर बनाने का प्रयास किया है, बहुत-बहुत बधाई देता हूँ। साथ ही प्रेस के कम्प्यूटर प्रभाग के प्रभारी श्री देवव्रत डे, श्री महेश शर्मा तथा श्री राजेन्द्र शर्मा द्वारा पूर्ण लगन के साथ बार-बार सशोधन करके इसे त्रुटिविहीन व सुन्दर बनाने का प्रयास किया, वे सभी धन्यवाद के पात्र हैं।

श्री दादूदयालु महासभा ने श्री दादूवाणी का प्रकाशन करके समाजहित का जो कार्य किया है, वह उसके उद्देश्यो के अनुरूप है। आशा है, भविष्य मे भी वह अपने उद्देश्यो मे सफलता के मार्ग पर अग्रसर रहेगी।

कृपाकाक्षी किंकर

श्री जयत जयन्ती

नारायण स्वामी,

मार्गशीर्ष शु ८ स २०११ वि

निवाई महन्तो का बाग, जयपुर - १

ॐ

ईश्वर पद के प्राप्ति का, हेतु मनुज तन पाय।
सद् शिक्षा गह भजन कर, श्वास न वृथा गमाय॥



अनेक ग्रन्थ निर्माता -

संतकवि कविरत्न श्री नारायणदासजी महाराज

श्री कृष्ण कृपा कुटीर, पुष्कर

॥ श्री ॥

भूमिका

वीतरागभयक्रोधलोभमोहमदभ्रमः ।
सत्यरामपरः श्रीमान् दादूर्विजयतेतराम् ॥

आज का मानव जबकि नवीन वैज्ञानिक उपलब्धियो के मद मे आसुरी सम्पत्ति प्रधान दानवता की ओर बढता जा रहा है उस समय त्याग, तपस्या, नैतिकता, सहिष्णुता, निरभिमानता तथा ईश्वरीय शक्ति की सत्ता व उत्कृष्टता आदि दैवी सम्पत्ति की शिक्षा देने वाले सन्तो के उपदेशो की आज कितनी आवश्यकता है, यह किसी से छिपा हुआ नही है। इसलिए आज के स्तब्ध व पथभ्रष्ट मानव समाज के समक्ष सन्तो के अनुभूतिमय उपदेशो को प्रस्तुत करने वाला प्रत्येक प्रयास निर्विवाद रूप से श्लाघनीय व महनीय है। स्वामी नारायणदास जी का "श्रीदादू वाणी" के सम्पादन का प्रयास भी इसी श्रेणी के अन्तर्गत है। सरल टीका के निर्माण द्वारा दादूजी के उपदेशो को जन साधारण तक पहुचाने का आपका प्रयास और भी स्तुत्य है। दादूजी की वाणी सरल व सरस होने पर भी बिना टीका के जन साधारणगम्य नही है, किन्तु इस टीका के बाद यह जन साधारणोपयोगी बन जाती है। इससे पूर्व सम्पूर्ण दादू वाणी पर कोई सरल टीका नही बनी है। श्री स्वामी जीवानन्दजी के द्वारा प्रकाशित टीका केवल साखी भाग पर है और पूज्य स्वामी श्री मङ्गलदासजी महाराज द्वारा विरचित टिप्पणी विशिष्ट होते हुये भी केवल दुरूह स्थलो और कठिन शब्दो की व्याख्या व विश्लेषण करती है, अत. वह विद्वानो के लिए अत्यन्त उपादेय होने पर भी जनसाधारण-बोध्य नही है। अत. जनसाधारण की दृष्टि से यह प्रयास सर्वथा श्लाघनीय व उपादेय है, किन्तु वाणी के यथार्थ मर्म को उद्घाटित करने वाली शास्त्र-प्रमाण-सम्पन्न एक टीका की नितान्त आवश्यकता है जो शास्त्रीय दृष्टि से दादूजी के अनुभवात्मक वचनो का विश्लेषण कर सके, परन्तु यह सब भविष्य के गर्भ मे है। अत· यहाँ उसकी चर्चा न कर इस सक्षिप्त भूमिका में दादूजी के कतिपय सिद्धान्तो पर सक्षेप से दो चार शब्द कहने है।

दादूजी का मध्यमार्ग—दादूजी उपासना के क्षेत्र मे निष्पक्ष मध्यमार्ग को मानते है। वे किसी प्रकार के राग-द्वेष व पखापखी मे पडना नही चाहते, क्योकि उनका आराध्य परब्रह्म सब प्रकार के पक्षो, सम्प्रदायो व धर्मों से रहित है। उसकी आराधना का सच्चा स्वरूप या प्रकार यही हो सकता है कि आराध्य के अनुरूप ही निष्पक्ष व मध्यम मार्ग का अनुसरण किया जाय। इसीलिए दादूजी कहते है —

दादू अलह राम का, द्वै पख तै न्यारा ।
रहिता गुण आकार का, सो गुरू हमारा ॥

ना हम छाडै ना गहै, ऐसा ज्ञान विचार ।
मध्य भाइ सेवे सदा, दादू मुक्ति द्वार ॥

दादूजी का यह मार्ग निराधार व सब प्रकार के द्वैतात्मक द्वन्द्वो से रहित है, क्योकि परब्रह्म स्वय निराधार व निर्द्वन्द्व है। इसीलिए दादूजी ने कहा है —

निराधार घर कीजिये, जहाँ नहि धरणि अकास ।
दादू निहचल मन रहे, निर्गुण के बेसास ॥

चलु दादू तहँ जाइये, जहँ चन्द सूर नहीं जाइ ।
रात दिवस की गम नहीं, सहजैं रह्या समाइ ॥

चलु दादू तहँ जाइये, माया मोह तै दूरि ।
सुख दुख को व्यापै नहीं, अविनासी घर पूरि ॥

दादू की साधना—यही दादू का सहज मार्ग है। दादू सहज ब्रह्म की प्राप्ति के लिए अन्य साधनो का अवलम्ब न लेकर केवल मनोवृत्ति रूप सुरति को अन्तर्मुख करके सहज ब्रह्म मे लगाने का ही उपदेश करते है। इसी से पाँचो ज्ञानेन्द्रिया, पच प्राण अन्तर्मुख हो जाते है व विषयो से निवृत्त हो जाते है,अत यही वास्तविक अनुभूति, यही सच्चा उपदेश, यही उत्कृष्ट योग व परम वैराग्य है। जैसे —

सब बातन की एक है, दुनिया तै दिल दूरि ।
सांई सेती सग करि, सहज सुरति लय पूरि ॥

दादू सेवा सुरति सो, प्रेम प्रीति सो लाइ ।
जहँ अविनासी देव है, तहँ सुरति बिना को जाइ ॥

एक सुरति सो सब रहै, पंचो उन्मन लाग ।
यहु अनुभव उपदेश यहु, यहु परम जोग वैराग ॥

यही दादू की सहज समाधि है, जिसमे वे निरन्तर लीन रहना चाहते है और जिसमे मन पहुच कर ब्रह्मानन्द का आस्वादन करता है। किन्तु यह वृत्ति तब तक अन्तर्मुख होकर सहज ब्रह्म मे नही लग सकती जब तक कि सहज के प्रति उत्कृष्ट प्रेम जागृत न हो और सहज के प्रति उत्कृष्ट प्रेम तब तक जागृत नही हो सकता जब तक कि तीव्र विरह-भावना का उदय न हो। अत दादूजी की साधना मे उत्कृष्ट प्रीति व तीव्र विरह का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है, इसीलिए वे कहते है —

प्रीति न उपजै विरह बिन, प्रेम भगति क्यो होइ ।
सब झूठे दादू भाव बिन, कोटि करै जे कोइ ॥

दादूजी की निर्गुण भक्तिमयी साधना मे गुरु द्वारा उपदेश श्रवण और नाम सकीर्तन के बाद प्रियतम के प्रति तीव्र विरह का ही स्थान है, जिससे उत्तरवर्ती प्रेम लक्षणा भक्ति रूप उत्कृष्ट प्रेम व सहज मे मनोवृत्ति-लय-रूप सुरतियोग की प्राप्ति होती है। अत दादूजी ने मूल कारण होने से विरह को ही सहज मे ही मन, मनसा, प्राण व इन्द्रियो के निग्रह, स्थैर्य व अन्तर्मुख होने मे कारण बतलाया है —

सहजैं मनसा मन सधै, सहजैं पवना सोइ।
सहजैं पंचों थिर भये, जे चोट विरह की होइ॥

निष्कर्ष यह है कि दादूजी की साधना जो श्रवण से प्रारम्भ होती है, क्रमश· नाम-सकीर्तन, विरह व प्रीति को अपनाती हुई सुरति योग (लय योग) मे समाप्त होती है। निम्न साखियाँ उनकी इस क्रमबद्ध साधना के स्वरूप को स्पष्ट बतला रही है —

पहिली श्रवण, द्वितीय रसन, तृतीय हिरदै गाइ ।
चतुर्थी चेतन भया, तब रोम रोम ल्यो लाइ॥

पहिली आगम विरह का, पीछे प्रीति प्रकास।
प्रेम मगन लै लीन मन, तहाँ मिलन की आस॥

इनमे भी श्रवण व नाम-सकीर्तन कनिष्ठा भक्ति मे आते है, जिनका उन्होंने पहिली साखी मे निर्देश किया है और विरह तथा प्रीति के प्रेमलक्षणारूप मध्यमा भक्ति मे एव लय व सुरति पराभक्ति मे आते है, जिनका उन्होंने दूसरी साखी मे उल्लेख किया है। विरह से ही वह उत्कृष्ट साधना प्रारभ होती है जिसका पर्यवसान बिना आत्म-साक्षात्कार के नही होता। इसीलिए भागवत मे भगवान् ने गोपियो मे आत्मसाक्षात्कारोपयोगी प्रेम जागृत करने के लिए अपने आप को अन्तर्हित कर तीव्र विरह-भावना को जागृत किया है और तदन्तर ही गोपियो को भगवान् के वास्तविक स्वरूप के साक्षात्कारादि-जन्य चरम आनन्द की प्राप्ति हुई है। अत दादूजी ने आत्मसाक्षात्कार के लिए विरहादि साधनो को ही अपनाने का स्पष्ट उद्घोष किया है —

बाट विरह की सोधि करि, पंथ प्रेम का लेहु।
लै के मारग जाइये, दूसर पांव न देहु॥

दादूजी की साधना सुरति (लय) मे समाप्त होती है। इसीलिए इसे सुरतियोग व लययोग कहा जाता है। यह लय एक बार ब्रह्माकार-वृत्ति होने का नाम नही है किन्तु जीवित[१] अवस्था में उस वृत्ति का अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित होना तथा देहत्याग के बाद अन्त स्थ ब्रह्म मे ही उसका लीन होना वास्तविक लय है। ऐसा लययोगी जीवन्मुक्त पुरुष ही वास्तविक[२] ज्ञानी है।

---

१ दादू लय लागी तब जानिये, जे कबहू छूटि न जाइ। जीवत यो लागी रहै, मूवा मझि समाइ॥

२ दादू जब मन मृतक ह्वै रहै, इन्द्रिय बल भागा। काया के सब गुण तजै, निरजन लागा॥
आदि अति मधि एक रस, टूटै नहि धागा। दादू एकै रहि गया, तब जाणी जागा॥

दादू की साधना मे सर्वस्व समर्पण तथा आपा-परित्याग-पूर्वक दीनता की भावना का बाहुल्य भी है, जिनका दिग्दर्शन उन्होंने निम्न साखियो मे किया है —

तन भी तेरा, मन भी तेरा, तेरा पिण्ड प्राण।
सब कुछ तेरा, तू है मेरा, यहु दादू का ज्ञान ॥

झूठा गर्व गुमान तजि, तजि आपा-अभिमान।
दादू दीन गरीब ह्वै, पाया पद निर्वाण ॥

दादूजी की साधना पद्धति मे बाह्य साधनो व बाह्य आडम्बरो का सर्वथा अभाव है। उनका आराध्य, उनकी उपासना, पूजा आरती आदि सभी आन्तरिक है। जैसे —

माहिं निरजन देव है, मांहे सेवा होइ। मांहैं उतारैं आरती, दादू सेवक सोइ ॥
माहै कीजै आरती, मांहै पूजा होइ। माहै सद्गुरु सेविये, बूझे विरला कोइ ॥

इसीलिए उन्होंने बाह्य मिथ्याडम्बरो को अपनाने वाले तात्कालिक जोगियो को लक्ष्य करके कहा है कि —

जोगीया वैरागी बाबा, रहै अकेला उनमन लागा ॥ टेक ॥
आतम जोगी धीरज कन्था, निहचल आसन आगम पन्था ॥ १ ॥
सहजै मुद्रा अलख अधारी, अनहद सीगी रहणि हमारी ॥ २ ॥
काया बन-खण्ड पाचो चेला, ज्ञान गुफा मे रहै अकेला ॥ ३ ॥
दादू दरसन कारन जागै, निरंजन नगरी भिक्षा मागै ॥ ४ ॥

इस पद मे सीगी, मुद्रा, कन्था, आसन, वन, गुहा आदि नाथो के बाह्य साधनो के स्थान मे सहज समाधि रूपी मुद्रा, धैर्यरूपी कन्था, कायारूपी वन-खण्ड, ज्ञान रूपी गुहा आदि आन्तरिक साधनो को ही परमात्म-साक्षात्कार के लिए अपनाने का निर्देश किया है। और जो इन आन्तरिक साधनो को अपनाता है, वही वास्तविक जोगी है। उनका निष्कर्ष यही है कि —

सचु बिन साई ना मिलै, भावै वेष बनाइ।
भावै करवत ऊर्ध्वमुख, भावै तीरथ जाइ ॥

दादू का उपास्य—दादूजी का उपास्य राम निर्गुण, निरजन, निराकार, अलख, अनादि, परब्रह्म परमेश्वर रूप है। वह न उपजता है, न मरता है, न अवतार-लेता है और न गर्भ मे आता है, न घटता है और न बढ़ता है, किन्तु सदा एकरस है। सम्पूर्ण जगत् उससे ही उत्पन्न होता है और उसी मे लीन होता है। जैसे —

ना वह जामै ना मरै, ना आवै गर्भवास।
दादू ऊधै मुख नहीं, नरक कुण्ड दस मास ॥

कृतम नहीं सो ब्रह्म है, घटै बधै नहि जाइ।
पूरण-निहचल एक रस, जगत न नाचै आइ ॥

परब्रह्म परात्परं, सो मम देव निरंजनम् ।
निराकारं निर्मलं, तस्य दादू वन्दनम् ॥
माया रूपी राम को, सब कोई ध्यावै ।
अलख आदि अनादि है, सो दादू गावै ॥

दादूजी के अनुसार ऐसे राम के दर्शन के लिए कही बाहर भटकने, तीर्थाटन करने या ब्राह्याडम्बर की आवश्यकता नही है किन्तु मन की अन्तर्मुखी वृत्ति द्वारा हृदय-प्रदेश मे ही उसके दर्शन किये जा सकते है। वे कहते है —

केई दौडे द्वारिका केई काशी जाहिं ।
केई मथुरा कूं चले, साहिब घट ही मांहिं ॥
जा कारण जग ढूंढिया, सो तो घट ही मॉहिं ।
मैं तैं पडदा भ्रम का, ताथैं जानत नांहिं ॥
पूजणहारे पास हैं, देही मांहैं देव ।
दादू ताकूं छाडि करि, बाहिर मांडी सेव ॥

वर्गहीन समाज—जिस वर्गहीन समाज का आदर्श गॉधीजी ने प्रस्तुत किया है, ऐसे समाज की प्रेरणा उन्होंने सन्तो से ही प्राप्त की है। सन्तो ने ही सर्व प्रथम समाज के छूआछूत, ऊच-नीच, धर्म, मजहब, सम्प्रदाय आदि के काल्पनिक भेद को दूर कर सबके साथ समानता के व्यवहार का आदर्श उपस्थित किया। सच्चे वर्गहीन समाज की स्थापना सब मे एक आत्मा के दर्शन से ही हो सकती है, तभी सब प्रकार के भेदो की समाप्ति समाज से की जा सकती है, अन्यथा कोई न कोई भेद अवश्य बना रहेगा। दादूजी ने स्पष्ट शब्दो मे बतलाया है कि ससार मे परमात्मा ने सब को एक रूप से भेजा है। मानव मात्र के शरीर-सस्थान मे कोई भेद नही है जो ईश्वर विरचित है तथा न उस शरीर-सस्थान मे अन्तर्यामी रूप से रहने वाले परमात्मा मे ही भेद है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि वर्ण-भेद, ऊच-नीच, स्पृश्य-अस्पृश्य आदि वर्ग-भेद, हिन्दू, मुसलमान आदि धर्म-भेद, सनातनी, आर्यसमाजी, शाक्त, शैव, वैष्णव आदि सम्प्रदाय-भेद, सब मानवकृत व भ्रान्तिकल्पित है। सब प्राणी ईश्वरीय सृष्टि है। परमेश्वर दृष्टि से, आत्म दृष्टि से सब एक है। अत इस काल्पनिक भेद को दूर करके सब के साथ समान व्यवहार करना चाहिए। उनके शब्दो मे वर्ग-हीन समाज का स्वरूप देखिये —

अलह राम छूटा भ्रम मोरा।
हिन्दू तुर्क भेद कुछ नाहीं, देखों दरसन तोरा ॥
सोई प्राण पिण्ड पुनि सोई, सोई लोही मॉसा ।
सोई नैन नासिका सोई, सहजैं कीन्ह तमासा ॥
श्रवणों शब्द बाजता सुनिये, जिह्वा मीठा लागे ।
सोई भूख सबनि को व्यापै, एक जुगति सोई जागे ॥

सोई सधि बन्ध पुनि सोई, सोई सुख सोई पीरा।
सोई हस्त पॉव पुनि सोई, सोई एक शरीरा ॥
यहु सब खेल खालिक हरि तेरा, तै ही एक कर लीन्हा।
दादू जुगति जानि करि ऐसी, तब यहु प्रान पतीना ॥

अनुभूतिज्ञान—दादूजी को ऋषियो की तरह सच्ची अनुभूति थी। यही प्रातिभ व आर्षज्ञान कहलाता है। यह ज्ञान सर्वथा अविसवादी तथा एक रूप का होता है। इसमे बाह्य साधनो की कोई अपेक्षा नही होती। किन्तु यह ज्ञान प्रमाणजन्य ज्ञानो से भी बलवान् होता है। अतीन्द्रिय तथा अन्य प्रमाणो से असवेद्य वस्तुओ को हम अनुभव से जान सकते है। सब प्रमाणो से अविज्ञेय अवाङ्मनसगोचर ब्रह्म का ज्ञान महर्षियो ने इस अनुभव से ही प्राप्त किया था। इसलिए ब्रह्म को स्वानुभवैकवेद्य बतलाया गया है। दादूजी ने भी इस ब्रह्म का ज्ञान अनुभव से ही बतलाया है —

अनुभव वाणी ब्रह्म को, ले गई संग लगाइ।
अगह गहै अकह कहै, अभेद भेद लहाइ ॥
जो कुछ वेद कुरान थैं, अगम अगोचर बात।
सो अनुभव साचा कहै, यह दादू अकह कहात ॥

यहाँ प्रसङ्गवश इतना और स्पष्ट कर देना है कि "जो कुछ वेद कुरान थै, अगम अगोचर बात", "वेद कुरानो ना कह्या सो देश दूर इत नाहि", "वेद कुरानो ना कह्या सो गुरु दिया दिखाइ" इत्यादि साखियो को देखकर जो दादूजी को वेद, पुराण व कुरान का विरोधी समझते है, वह उनकी भ्रान्ति है। वे इन वचनो से यही बतलाना चाहते है कि ब्रह्म का साक्षात्कार अनुभूति से ही हो सकता है, वेदादि शास्त्रो के द्वारा नही। क्योकि ब्रह्म सर्वधर्मातीत तथा असङ्ग है और शब्द की शक्ति किसी धर्म विशिष्ट मे ही होती है, अत शब्द निषेधविधया उसकी तरफ सकेत मात्र कर सकता है। श्रुति व स्मृति स्वय इस तथ्य का प्रतिपादन कर रही है —

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह। कठोपनिषद्
नैतन्मनो विशति वागुत चक्षुरात्मा प्राणेन्द्रियाणि च यथानलमर्चिष स्वा ।
शब्दोऽपि बोधकनिषेधतदात्ममूलमथोक्तमाह यदृते न निषेधसिद्धि ॥
'जे पहुचे ते कहि गए तिनकी एकै बात'

इस वचन के अनुसार अनुभव के अविसवादी व एकरूप होने से सभी अनुभवियो की बाते एक ही प्रकार की होती है, उनमे भेद नही होता। इसीलिए दादूजी द्वारा अनुभव से कही हुई बाते श्रुति-स्मृतियो से अक्षरश मेल खाती है। कुछ उदाहरण इस तथ्य के समर्थन मे उपन्यस्त किये जा रहे है —

जब घट अनुभव ऊपजे, तब किया कर्म का नाश।
भै (अरु) भ्रम भागे सबै, पूरण ब्रह्म प्रकाश ॥ –दादू

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥ – कठोपनिषद्

सबै दिसा सो सारिखा सबै दिखा मुख बैन ।
सबै दिसा श्रवणहुँ सुनै, सबै दिशा कर नैन ॥
सबै दिसा पग सीस है, सबै दिशा मन चैन ।
सबै दिसा सन्मुख रहै, सबै दिसा अंग ऐन ॥ – दादू

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात् ॥ – श्वेत उ ३।

सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ – श्वेत उ १६।

बिन श्रवणहुँ सब कुछ सुनै, बिन नैनहुं सब देखै ।
बिन रसना मुख सब कुछ बोले, यहु दादू अचरज पेखै ॥ – दादू

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षु. स शृणोत्यकर्णः ॥ – श्वेता उ १९

सुरति अपूठी फेरि करि, आतम मांहैं आनि ।
लागि रहै गुरुदेव सों, दादू सोई सयान ॥ – दादू

कश्चिद् धीर. प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन् ॥ – कठ उ

दादू विषै के कारण रूप राते रहैं, नैन नापाक यों कीन्ह भाई ।
बदी की बात सुनत सारा दिन, श्रवण नापाक यों कीन्ह जाई ॥ – दादू

तम् (चक्षु प्राण) अभिद्रुत्य असुरा पाप्मनाऽविध्यन् स य स पाप्मा यदेवेदमप्रतिरूप पश्यति स एव स पाप्मा। श्रोत्रमभिद्रुत्य असुरा· पाप्मनाऽविध्यन् स य स पाप्मा यदेवेदमप्रतिरूप श्रृणोति स एव स पाप्मा। – ब्र उ २ ब्रा

जहाँ थैं मन उठि चलै, फेरि तहाँ ही राखि ।
तहँ दादू लै लीन करि, साधु कहैं गुरु साखि ॥ – दादू

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम् ।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥ – गीता ६ अ

आपै मारै आपको, आप आपको खाइ ।
आपै अपना काल है, दादू कहि ससझाइ ॥ – दादू

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥ – गीता ६ अ

काया राखै बन्द दे, मन दह दिस खेलै ।
दादू कनक अरु कामिनी, माया नहिं मेलै ॥ – दादू

मनसों मीठी सुख सो खारी, माया त्यागी कहै बाजारी ॥ – दादू
कर्मेन्द्रियाणि सयम्य य आस्ते मनसा स्मरन् ।
इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचार स उच्यते । – गी ३ अ
जीये तेल तिलन्नि मे, जीये गन्ध फुलन्नि ।
जीयें माखण खीर मे, ईये रब रुहन्नि ॥ – दादू
पुष्पमध्ये यथा गन्ध पयोमध्ये यथा घृतम् ।
तिलमध्ये यथा तैल पाषाणेष्विव काञ्चनम् ॥
एवं सर्वेषु भूतेषु आत्मा नित्य प्रतिष्ठित: । – ध्या वि उप
फल कारण सेवा करै, जाचै त्रिभुवन–राव ।
दादू सो सेवक नहीं, खेलै अपना दाव ॥ – दादू
आशासानो न वै भृत्य स्वामिन्याशिष आत्मन ।
यस्ते आशिष आशास्ते न स भृत्य. स वै वणिक् ॥ – भाग
सुकृत पैंडा चालताँ, बुरा न कबहु होइ ।
अमृत खाता प्राणियाँ, मुवा न सुनिया कोइ ॥ – दादू
पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।
न हि कल्याणकृत् कश्चिद् दुर्गति तात गच्छति ॥ – गीता ६ आ
कच्छप अपने करि लिये, मन इन्द्रिय निज ठौर ।
नाम निरजन लागि रहु, प्राणी परिहरि और ॥ – दादू
यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वश ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ – गीता २ अ

दादू व कबीर—दादूजी और कबीरजी की विचाराधारा और सिद्धान्तो मे अतिशय साम्य दिखाई देता है। कबीर की तरह निर्गुण ब्रह्म ही दादूजी के उपास्य है। बाह्याडम्बर का परित्याग, हृत्प्रदेश मे उपास्य की उपासना, जाति-पाँति के भेद का परित्याग कर सब मे एकात्मदर्शन आदि कबीर के सिद्धान्तो का दादूजी ने भी पूर्णतया अनुमोदन किया है। कबीर जी का समर्थन करते हुए दादूजी कहते है —

जे था कन्त कबीर का, सोई वर वरिहू ।
मनसा वाचा कर्मणा, मै और न करिहू ॥
साचा शब्द कबीर का, मीठा लागे मोहि ।
दादू सुनतां परम सुख, केता आनन्द होहि ॥

कवीरजी व दादूजी की साखियो मे बहुधा भावो तथा वाक्याशो तक की समानता दृष्टिगोचर होती है। जैसे —

नौ मण सूत उलझिया, कबीर घर घर बारि ।
तिन सुलझाया बापुडे, जिन जाणी भगति मुरारि ॥ – कबीर
जीव जंजालों पडि गया, उलझ्या नौ मण सूत ।
कोइ इक सुलझै सावधान, गुरु वायक अवधूत ॥ – दादू
निस अन्धियारी कारणें, चौरासी लख चन्द ।
अति आतुर उदै किया, तऊ दिष्टि नहिं मन्द ॥ – कबीर
अनेक चन्द उदै करै, असंख सूर प्रकास ।
एक निरंजन नाम बिन, दादू नहीं उजास ॥ – दादू
सुखिया सब संसार है, खावे अरु सोवे ।
दुखिया दास कबीर है, जागे अरु रोवे ॥ – कबीर।
सारा सूरा नींद भरि, सब कोई सोवै ।
दादू घायल दरदवन्द, जागै अरु रोवे ॥

यह सब विचारो की समानता होते हुए भी दादू-वाणी मे बहुत सी विशेषताएँ है। दादू की वर्णन शैली अत्यन्त विशद् व प्राञ्जल है। वे प्रत्येक विषय का वर्णन व्यवस्थित तथा साङ्गोपाङ्ग करते है। कबीर की तरह कुछ प्रभावशाली बाते कह कर ही उसकी समाप्ति नही करते। जैसे जीव के सूक्ष्म जन्मो का वर्णन करते हुए कबीर ने कहा है—

प्राण पिण्ड को तजि चलै, मुवा कहै सब कोइ ।
जीव छतॉं जामै मरै, सूषिम लखै न कोइ ॥

इस एक साखी के द्वारा 'स्थूल देह वियोग रूप मृत्यु को सब कोई जानता है किन्तु स्थूल देह की स्थिति मे भी जीव के कितने जन्म और मरण होते रहते है, उन सूक्ष्म जन्मो और मरणो को कोई नही जानता' यह कह कर उसे समाप्त कर दिया है परन्तु दादू ने जीव के सूक्ष्म जन्मो का उनके कारण मानसिक गुण व्याप्ति का तथा उसके परिहार रूप मन स्थैर्य आदि सभी अङ्गो का स्पष्टीकरण किया है। जैसे:-

जीव जनम जाणे नहीं, पलक पलक में होइ ।
चौरासी लख भोगवै, दादू लखै न कोइ ॥
जेते गुण व्यापैं जीव को, तेते ही अवतार ॥
सब गुण सबही जीव के, दादू व्यापै आइ।
घट मांहैं जामै मरै, कोइ न जाणैं ताहि ॥
कबहूं पावक कबहूं पाणी, धर-अम्बर-गुण बाइ ।
कबहूं कुंजर कबहूं कीडी, पर पशुवा ह्वै जाइ ॥

निस वासर यहु मन चलै, सूक्षम जीव सहार ।
दादू मन थिर कीजिए, आतम लेहु उबार ॥

यहाँ प्रथम साखी मे साधारण जनो द्वारा सूक्ष्म जन्मो की अज्ञेयता का, द्वितीय मे उसके कारण मन मे गुण व्याप्ति का, तृतीय मे गुणोदयजन्य सूक्ष्म जन्म के उदाहरणो का तथा चतुर्थ मे उनके परिहार के उपाय मन स्थैर्य का वर्णन किया है।

दादूजी की इस निरूपण शैली का चरमोत्कर्ष 'परचै के अङ्ग' मे देखा जा सकता है। जहाँ अनुभूति से अनुप्राणित उनकी विचार धारा प्राञ्जल भाषा मे अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित होती है, वहाँ रूपक का प्रवाह भी दर्शनीय है। दादूजी ने अद्वैत वेदान्त के सिद्धान्तो का भी प्रसङ्गवश सुन्दर निरूपण किया है जो सर्वथा शास्त्रो से मेल खाता हुआ है। जीवित अवस्था मे देहान्त-करणादि के सत्ताकाल मे उनके धर्म भूख, प्यास, शीत, उष्ण, राग, द्वेष, द्वन्द्वो तथा अन्त करण के गुणो से कैसे छुटकारा पाया जा सकता है, इस प्रश्न का जो उत्तर दादूजी ने दिया है, वह पूर्णत इस विषय मे भगवान् शुकदेवजी द्वारा राजा परीक्षित को दिये गये उत्तर से मिलता है। जैसे —

माही थैं मन काढि कर, लै राखै निज ठौर ।
दाद भूले देह गुण, बिसरि जाय सब और ॥
काया की संगति तजै, बैठे हरि पद माँहिं ।
दादू निर्भय है रहै, कोई गुण व्यापै नाहि ॥
अहं ब्रह्म परंधाम ब्रह्माह परमं पदम् ।
एव समीक्षन्नात्मानमात्मन्याधाय निष्कले ॥
दशन्त तक्षक पादे लेलिहान विषाननै. ।
न द्रक्ष्यसि शरीर च विश्वं च पृथगात्मन ॥ भाग १२ अ १।

यहाँ उनकी वाणी से वेदान्त विषयक कुछ साखियाँ उद्धृत की जाती है जिनसे उपर्युक्त कथन की यथार्थता सिद्ध हो सके। यथा अन्त करण मे रहते हुए भी उसके धर्मों से ब्रह्म की असपृक्तता —

जल मे गगन गगन मे जल है, पुनि वह गगन निरालम् ।
ब्रह्म जीव इहि विधि रहे, ऐसा भेद विचारम् ॥

आभास वाद या प्रतिबिम्ब वाद —

ज्यो दर्पन मे मुख देखिये, पानी मे प्रतिबिम्ब।
ऐसे आतमराम है, दादू सब ही सग॥
परब्रह्म परात्परं, सो मम देव निरजनम्।
निराकार निर्मल, तस्य दादू वन्दनम् ॥
कृत्रिम नहीं सो ब्रह्म है, घटै बधै नहीं जाइ।
पूरण-निहचल एक रस, जगत न नाचै आइ॥

माया उपजै-विनसै गुण धरै, यहु माया का रूप।
दादू देखत थिर नहीं, खिण छाँही खिण धूप ॥

गुणातीत. गुणातीत सो दरसनी, आपा धरै उठाय।
दादू निर्गुण राम गहि, डोरी लागा जाय ॥

माया गुण माया का गुण बल करै, आपा उपजै आइ।
राजस तामस सात्विकी, मन चंचल ह्वै जाइ ॥

ब्रह्म गुण आपा नांहीं बल मिटै, त्रिविध तिमिर नहिं होइ।
दादू यहु गुण ब्रह्म का, सुन्नि समाना सोइ ॥

निर्गुण भक्तिमार्ग को अपनाने पर भी कबीर मे ज्ञान का प्राधान्य है, जबकि दादूजी की उपासना मे प्रेम का प्राधान्य है।

प्रेम भगति जब ऊपजै, निहचल सहज समाधि।
दादू पीवै राम रस, सतगुरु के परसाद ॥
प्रेम भगति जब ऊपजै, पंगुल ज्ञान विचार।
दादू हरि रस पाइये, छूटे सकल विकार ॥

प्रेम प्राधान्य के कारण ही दादू प्रेम-दरीया मे या सहज सरोवर की प्रेम-तरङ्ग पर परमात्मा के साथ झूलते है।

दादू, कबीर की तरह उलटबासियो तथा अप्रस्तुत विधानो का अधिक प्रयोग नही करते। वे प्रत्येक वस्तु को स्पष्ट व सरल रीति से सरल शब्दो मे कहना चाहते है। अत जहाँ उनका प्रयोग किया है, वे भी स्पष्ट व सुबोध है। निम्न उदाहरणो से इसका स्पष्टीकरण हो जाता है।

ऐसा अचरज देखिया, बिन बादल बरसै मेह।
तहँ चित चातक ह्वै रह्या, दादू अधिक सनेह ॥
ऐसी एकै गाय है, दूझै बारह मास।
सो सदा हमारे सङ्ग है, दादू आतम पास ॥
तरुवर साखा मूल बिन, रज वीरज रहिता।
अजरामर अतीत फल, सो दादू गहिता ॥

दादू प्रकृति से ही दयालु सरल व विनीत है। उनमे कबीर की तरह शुष्कता, उग्रता व अक्खड़पन नहीं है। इसलिए वे मूर्तिपूजा, बाह्याडम्बर आदि के खण्डन मे भी कबीर की तरह कटु आक्षेपात्मक शैली का प्रयोग नही करते। नीचे के उदाहरणो मे दोनो के इस अन्तर का स्पष्ट दर्शन हो जाता है .—

पत्थर पूजै हरि मिलै, तो मै पूजूं पहाड ॥ – कबीर
जिन ककर पत्थर सेविया, सो अपना मूल गंवाइ ।
अलख देव अन्तर बसै, क्या दूजी जगह जाइ ॥ – दादू
माया कारण मूड मुंडाया, यहु तो जोग न होई।
पारब्रह्म सो परचा नाहीं, कपट न सीझै कोई ॥
जोगी जंगम सेवडे, बोध सन्यासी शेख।
षट्-दर्शन दादू राम बिन, सबै कपट के भेख ॥ – दादू

कबीर की भाषा पूर्वी बोली है जिसमे बिहारी व अवधी की प्रधानता है। यद्यपि उसमे खडी ब्रज, पजाबी, राजस्थानी, अरबी, फारसी आदि भाषाओ के भी शब्द व क्रिया पद मिलते है किन्तु इन भाषाओ मे उन्होंने अपनी रचना नही की है। दादू वाणी मे मारवाडी, ब्रजमिश्रित खडी बोली की प्रधानता है और उसमे अन्य बोलियो के भी शब्द है। किन्तु दादूजी ने शुद्ध पजाबी, शुद्ध गुजराती व शुद्ध फारसी मे भी साखी और पद लिखे है जो दादू-वाणी मे उपलब्ध होते है। इससे दादू बहुभाषाविद् थे, यह स्पष्ट झलकता है। कबीर की भाषा अपरिमार्जित व अपरिष्कृत है, जब कि दादू की भाषा कबीर की अपेक्षा अत्यधिक परिमार्जित, परिष्कृत व प्राञ्जल है। कबीर ने शब्दो को बहुत तोड़ा-मरोडा है जबकि दादू ने ऐसा नहीं किया है। कबीर की भाषा मे अक्खडता है तथा उसमे कोमलता व प्रसाद का सर्वथा अभाव है जबकि दादू की भाषा मे कोमलता, प्रसाद व सरसता पर्याप्त मात्रा मे है। निम्न साखियो से उनकी भाषा की प्राञ्जलता व सरसता का आभास मिल जाता है -

दादू दरिया प्रेम का, तामे झूलै दोइ ।
इक आतम परमातमा, एकमेक रस होइ ॥
दादू सरवर सहज का, तामे प्रेम तरङ्ग।
तहँ मन झूलै आतमा, अपणे साई सङ्ग ॥
शून्य सरोवर मीन मन, नीर निरंजन देव।
दादू यहु रस विलसिये, ऐसा अलख अभेव ॥
हरि चिन्तामणि चितता, चिता चित की जाइ ।
चिन्तामणि चित मे मिल्या, तहँ दादू रह्या लुभाइ ॥

प्रश्नोत्तर शैली—दादू ने तत्त्वनिरूपण शैली मे प्रश्नोत्तर शैली को भी सफलता के साथ अपनाया है। उन्होंने साखी व पद दोनो इस शैली मे लिखे है। तत्त्व-निरूपण के लिए यह शैली अत्युत्तम, रोचक व सुबोध प्रतीत होती है। निम्न उदाहरणो के द्वारा इस कथन की यथार्थता की झलक मिल जाती है —

प्रश्न— जिन हम सिरजे सो कहाँ ? सतगुरु देहु दिखाइ।
उत्तर— दादू दिल अरवाह का, तहँ मालिक ल्यौ लाइ॥

यहाँ साखी के पूर्वार्द्ध मे शिष्य का प्रश्न है कि हे गुरो! हमे जगत्स्रष्टा परमात्मा का दर्शन कराइये कि वे कहाँ है ? साखी के उत्तरार्द्ध मे इसका उत्तर दिया गया है कि जहाँ हृदय-प्रदेश[1] मे जीव है, वही परमात्मा है, वृत्ति के अन्तर्मुखीकरण रूप लय के द्वारा उसका साक्षात्कार किया जा सकता है।

प्रश्न— क्षुधा तृषा क्यों भूलिये ? सीत तपत क्यों जाइ ?
क्यों सब छूटें देह गुण ? सतगुरु कहि समझाइ॥
उत्तर— मांहीं थैं मन काढि करि, ले राखै निज ठौर।
दादू भूले देह गुण, विसरि जाइ सब और॥

राग गौडी मे ऐसे अनेक पद है जिनमे इस शैली को अपनाया गया है। इनमे ब्रह्म की स्वाधिष्ठानता, अनिर्वचनीयता, निर्लिप्तता, सर्वव्यापकता आदि का निरूपण किया गया है। इसके लिए राग गौडी के ५३ से ५७ तक के पद द्रष्टव्य है। किन्तु इस शैली मे दादू का एक अभिनव प्रकार और है, जिसमे एक पद मे जिस क्रम के चरण या चरणार्ध के द्वारा जितने प्रश्न किये गये है उन सबका उसी क्रम से दूसरे पद मे चरण या चरणार्ध के द्वारा उत्तर दिया गया है। जैसे विरहिणी के रूप मे साधक जिज्ञासु का प्रश्न है—

पथीडा बूझै बिरहिणी ? कहिने पिव की बात।
कब घर आवें कब मिले, जोऊं दिन अरु रात ॥ टेक॥
कहाँ मेरा प्रीतम कहाँ बसै, कहाँ रहै करि वास ?
कहँ ढूंढूँ कहँ पाइये, कहाँ रहै किस पास ? १॥
कवन देस कहँ जाइये, कीजै कौन उपाय ?
कौन अङ्ग–कैसे रहै, कहा करै समझाय ? २॥
परम सनेही प्राण का, सो कत देहु दिखाइ।
जीवन मेरे जीव का, सो मुझ आनि मिलाइ ? ३॥
नैन न आवै नींदडी, निस दिन तलफत जाइ।
दादू आतुर–विरहिणी, क्यों कर रैन बिहाइ ? ४॥

---

१ ईश्वर सर्वभूताना हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥ गीता अ १८

२ यहाँ साधु पद से ब्रह्मनिष्ठ सिद्ध पुरुष का ग्रहण है। दादूजी इसी अर्थ मे साधु शब्द का प्रयोग करते है। जिज्ञासु साधक के लिए वे सन्त शब्द का प्रयोग करते है। जैसे साखी है — साधु कमल हरि वासना, सन्त भवर सग आइ। दादू परिमल ले चले, मिले राम को जाइ॥

उसी क्रम से ब्रह्मनिष्ठ साधु द्वारा दूसरे पद मे उत्तर है—

साधु कहै[२] उपदेश, विरहिणी।
तन भूलै तब पाइये, निकट भया परदेस, विरहिणी ॥ टेक ॥
तुम ही माही ते बसै, कहाँ रहे करि वास ।
तहँ ढूढे पिव पाइये, जीवन जीव के पास ॥ १ ॥
परम देस तहँ जाइये, आतम लीन उपाइ ।
एक अग ऐसे रहै, ज्यो जल जलहि समाइ ॥ २ ॥
परम सगाती आपणा, कबहूं दूरि न जाइ ।
प्राण सनेही पाइये, तन मन लेहु लगाइ ॥ ३ ॥
जागै जगपति देखिये, परगट मिलि है आइ ।
दादू सन्मुख ह्वै रहै, आनन्द अंग न माइ ॥ ४ ॥

इस प्रकार और भी बहुत सी विशेपताए है, जिनका इस सक्षिप्त भूमिका मे निरूपण नही किया जा सकता। दादू वाणी के विषय मे जो उपर्युक्त विचार प्रकट किये गये है उसमे मतभेद हो सकता है। यद्यपि महात्माओ की वाणी कामधेनु हे, जिससे बोद्धा की रुचि के अनुसार अनेकार्थों का दोहन किया जा सकता है। जैसे—

ज्यो यहु काया जीव की, त्यो साँई के साध ।
दादू सब सतोषिये, माहै आप अगाध ॥

एक अर्थ ·— जैसे सम्पूर्ण शरीरो मे जीव को मनुष्य शरीर अतिप्रिय है वैसे ही सम्पूर्ण प्राणियो मे परमात्मा को सन्त ही अति प्रिय है। व्यापक होने पर भी अगाध स्वरूप परमात्मा सन्तो के हृदय मे विशेष रूप से रहते है, अत सब सन्तो को व सर्व प्रकार से सन्तो को सेवा से सन्तुष्ट करना चाहिए।

अपर अर्थ .— ऊपर की साखी मे बतलाया गया है कि शरीर को भोजन देने से तदन्त स्थ जीवात्मा की तृप्ति होती है। उसी के स्पष्टीकरण रूप मे यह साखी कही गई है।

साखी का अर्थ इस प्रकार है :— जैसे जीव का सम्बन्ध स्थूल शरीर से है उसी प्रकार भगवान् का सम्बन्ध साधु से है। दादूजी कहते है कि जैसे स्थूल शरीर को भोजन देने से एक तदन्त स्थित जीवात्मा की तृप्ति होती है वैसे ही साधु को भोजन देने से एक जीव की तृप्ति नही होती अपितु सभी जीवात्माओ की तृप्ति होती है, क्योकि साधु मे भगवान् स्वय विराजते है और वे सर्वभूतमय है, अत उसकी तृप्ति से सकल जीवो की तृप्ति होती है, जैसे कृष्ण के तृप्त हो जाने से मण्डली सहित दुर्वासा की तृप्ति हो गयी थी। इसीलिए साखी के उत्तरार्ध मे कहा है —

दादू सब सन्तोषिये, मांहै आप अगाध।

यद्यपि साधुओ की तरह अन्य शरीरो मे भी परमात्मा की स्थिति है, फिर यह भेद कैसे किया गया कि अन्य प्राणियो मे केवल जीव की स्थिति है और साधु मे भगवान् की ? यह शका हो

सकती है। किन्तु इसका समाधान यही है कि अन्य प्राणियो मे अध्यास-जन्य मालिन्याहकारादि से अन्त करण मलिन है, अत: उसमे प्रतिबिम्बित आत्मा की जीव सज्ञा है और साधु ने आपा आदि सब दोषो का परित्याग कर अपने अन्त करण को शुद्ध कर लिया है, अत उसमे प्रतिबिम्बित आत्मा शुद्ध है, शुद्ध आत्मा ही परब्रह्म व परमात्मा है जिसमे सर्वज्ञता व सर्वशक्तिमत्ता है। इसीलिए शास्त्रो मे जीवन्मुक्त ज्ञानी को ब्रह्मरूप बतलाया गया है।

इस प्रकार सामान्य सी प्रतीत होने वाली साखी मे व्याख्याता की रुचि के अनुसार अर्थभेद हो सकता है तो मार्मिक स्थलो का तो कहना ही क्या ?

दादू वाणी पर कुछ लिखने के लिए अत्यन्त अध्ययन, मनन व परिशीलन अपेक्षित है, तभी उस पर साधिकार लिखा जा सकता है। मेरे इस प्राक्कथन मे इस बात की पर्याप्त कमी रही है तथा जो भी लिखा गया है उसका भी पूर्ण विवेचन स्थानाभाव के कारण नही किया जा सका है और न पूर्ण प्रमाण ही उद्‌धृत किए जा सके है। फिर भी जितना लिखने का आदेश मुझे प्राप्त हुआ था। उसका पूर्णतया पालन न कर जो कुछ अधिक लिखा गया है उसके लिए सम्पादक महोदय से क्षमाप्रार्थी हू।

स्वामी सुरजनदास आचार्य, एम.ए.
जयपुर

***

नमामस्तं दादूम्

यदीया श्रीवाणी ह्यमृतरसनि:ष्यन्दझरणी
श्रुताऽधीता गीता मलिनमपि चित्तं विमलयेत् ।
सदा ब्रह्मध्यानप्रवचनपरत्वेन निरतं
नमामस्तं दादूं शतशतजनाभ्यर्चितपदम् ॥ १ ॥
जना यं सौभाग्याच्छरणमुपयाताश्चरणयो:
कृतार्थास्ते सद्य: सकरुणकटाक्षैरुपकृता:।
असंख्यानामेवं जगति खलु कल्याणकलिनं
नमामस्तं दादूं शतशतजनाभ्यर्चितपदम् ॥ २ ॥
असद्-व्यावृव्याऽस्मान् सति निगमयन्तं गुरुवरं
प्रकाशं यच्छन्तं सकलमपनीमान्धतमसम् ।
नयन्तं मृत्योश्चामृतपदमभूयोऽभवमहत्
नमामस्तं दादूं शतशतजनाभ्यर्चितपदम् ॥ ३ ॥

आचार्य बलराम स्वामी, एम ए



अथ संतप्रवर श्री स्वामी दादूदयालजी महाराज का

सक्षिप्त जीवन चरित्र

सतो को परब्रह्ममय जान रु शीश नमाय ।
चरित लिखू श्री दादु का, पढत सुनत अघ जाय ॥ १ ॥
दादू चरित विशाल है, कविता माहि अनेक ।
अत लिखू सक्षिप्त अति, गद्य माहि यह एक ॥ २ ॥

ईश्वर निज इच्छा से समय २ पर जो लोक कल्याणार्थ ससार मे महान् सतो के रूप मे प्रकट होते रहते है। ऐसे ही महान् सत श्री दादूजी महाराज हुये है—अहमदाबाद नगर मे लोधीराम नागर के पुत्र नही था, उसे पुत्र की बड़ी अभिलाषा थी, वह अपनी इच्छा पूर्ति के लिये सन्तो की सेवा करता रहता था। एक दिन उसे एक सिद्ध सन्त का दर्शन हुआ, उसने बडे प्रेम से प्रणाम किया। सन्त प्रसन्न होकर बोले—जो इच्छा हो वही माँगो। लोधीराम बोला—और तो आपकी कृपा से सब आनन्द है, किन्तु पुत्र न होने से दु खी हू। सत ने कहा—तुम प्रात साबरमती नदी पर स्नान करने जाते हो, वहाँ ही नदी जल पर तैरता हुआ एक बालक तुम्हे मिलेगा, उसे ही अपना पुत्र मान कर घर ले आना, वह महान् ब्रह्मज्ञानी होगा। सन्त के कथनानुसार वि स १६०१ मे प्रात काल पुनीत पुष्य नक्षत्र मे अहमदाबाद मे साबरमती नदी प्रवाह मे कमल-दल समूह पर तैरता हुआ बालक मिला, उसे लाकर अपनी पत्नी को दे दिया। बालक को देख कर वात्सल्य प्रेम से उसके स्तनो मे दूध आ गया। बड़े स्नेह से बालक का लालन-पालन होता रहा। बालक का अधिकतर अपनी वस्तु अन्य को देने का स्वभाव देखकर लोधीराम ने 'दादू' नाम रख दिया। जब वे एकादश वर्ष के हुये तब एक दिन तीसरे पहर सायकाल से कुछ पहले बालको के साथ काकरिया तालाब पर खेल रहे थे। उसी समय भगवान् एक वृद्ध ऋषि के रूप मे बालको के पास ही प्रकट हुये। उन्हे देख कर अन्य बालक तो भाग गये किन्तु दादूजी ने पास जाकर बडे प्रेम से प्रणाम किया और अपने पास से एक पैसा भेट दिया। भगवान् ने कहा—इस पैसे की जो वस्तु प्रथम मिले वही ले आ। पहले पान की दुकान आई। दादूजी पान लेकर शीघ्र चले आये और भगवान् को समर्पण कर दिया। भगवान् उनके व्यवहार से बड़े प्रसन्न हुये और प्रसाद देकर कृपा-पूर्वक शिर पर हाथ रक्खा। उसी समय दादूजी के मुख से—"दादू गैब माहि गुरुदेव मिल्या, पाया हम परसाद। मस्तक मेरे कर धरया, दक्ष्या अगम अगाध।" यह साखी निकली थी। फिर भगवान् निर्गुण भक्ति का उपदेश देकर अन्तर्ध्यान हो गये।

सात वर्ष के पश्चात् फिर भगवान ने दर्शन दिया और राजस्थान मे जाकर निर्गुण भक्ति का प्रचार करने की आज्ञा दी। १९ वे वर्ष मे महाराज ने अहमदाबाद से राजस्थान के लिये प्रस्थान

किया। आबू पहाड होते हुये मार्ग मे ज्ञानदास-माणकदास को केदार देश का हिसा से उद्धार करने का आदेश दिया और पुष्कर होते हुये कुचामण रोड से दक्षिण लगभग १२ मील 'करडाला' ग्राम के पर्वत को अपना साधन स्थल चुना और लगभग १२ वर्ष वहा ही रहे। पर्वत के मध्य एक ककेडे का वृक्ष था, उसके नीचे जाकर प्राय ध्यानस्थ रहते थे। वहा अब छत्री बनी है। वहा की प्रेत-पहाडी मे एक प्रेत रहता था, वह महाराज के पास आकर कुछ अपने चरित्र करने लगा, तब महाराज ने उस पर दया कर उसे मुक्त किया।

पीथा की चोरी छुडाई। उसने फिर रास देखने के निमित्त डाका डाला। तब वह माल, माल-वालो को दिला कर उसे पर्वत शिखर पर महारास दिखाया। वह शिखर रास-स्थान के नाम से वहा प्रसिद्ध है। रास देख कर पीथा ने कहा—"गग यमुन उल्टी बहे, पश्चिम उगे भान। पीथा चोरी ना करे, गुरु दादू की आन।" करडाले से सॉभर आये। वहा उनके उपदेश का प्रभाव देख कर हिन्दू तथा मुसलमान दोनो को ईर्ष्या हुई। उन्होंने तत्कालीन सरकार से ऐसा फरमान निकलवाया कि "जो दादू के पास जायगा, वह ५००) रु दड देगा।" इस फरमान का प्रचार नगर मे करवा दिया गया किन्तु फिर भी दो सेवक दर्शनार्थ दूसरे दिन चले गये। महाराज ने कहा—"तुम क्यो आये हो, तुम दोनो धनी हो, पॉच सौ रुपये दण्ड देने से तुम्हारा पैसा व्यर्थ सरकार मे जायगा।" उन्होंने कहा—"जब तक पैसा है, दण्ड देगे और दर्शन करेंगे।" उनकी दृढ श्रद्धा देखकर महाराज ने कहा—फिर पत्र को अच्छी प्रकार पढ कर दण्ड देना। आश्रम से बाहर आते ही राजपुरुषो ने उन्हे पकड लिया और कचहरी मे ले गये। उन्होंने पत्र दिखाने को कहा, पत्र मे लिखा मिला—जो दादू के पास न जायगा, उसे पाँच सौ रुपये दण्ड देना होगा। सब राज-कर्मचारी यह देखकर अवाक् रह गये और उन्हे छोड दिया। एक दिन एक काजी ने कहा—"तुम हिन्दू तथा मुसलमान दोनो धर्मों के विधान के अनुसार न चल कर इच्छानुसार चलते हो, यह ठीक नही, तुम काफिर हो।" महाराज ने कहा—"जो मिथ्या बोले, वह काफिर होता है, चाहे कोई हो।" इस पर काजी ने रुष्ट होकर महाराज के मुख पर मुक्का मारा। महाराज ने कहा—यदि तुम्हे मारने से प्रसन्नता है तो दूसरी और मार लो। उसने दूसरी ओर मारने को हाथ उठाया तब हाथ ऊपर ही रह गया, न मार सका और तीन मास के भीतर ही हाथ गल कर वह काजी मर गया। उसका जमाई उरमायल अजमेर मे रहता था, उसने जब अपने श्वसुर की मृत्यु घटना सुनी तब वह रुष्ट होकर बोला—"मै सॉभर जाकर उस साधु को गले तक भूमि मे गाड कर मुख के दोनो ओर मुक्के मारूगा।" वह रूई का व्यापारी था। जिस दिन महाराज के मुक्के मारने का विचार आया, उसी दिन रूई मे बिना अग्नि ही अग्नि लग गयी और सात सौ मण रूई तथा उसकी स्त्री बाल-बच्चे जल कर नष्ट हो गये। उस घटना से वह डर गया, फिर महाराज को सताने नही गया। एक दिन महाराज बाहर से नगर मे आ रहे थे, उसी समय वहाँ के शासको ने उन पर मतवाला हाथी छोडा, मार्ग की जनता मे हाहाकार मच गया किन्तु महाराज निर्भय रहे। हाथी ने आकर अपनी सूँड से महाराज के चरण छुये और प्रणाम करके लौट गया। एक दिन रात्रि के समय आश्रम मे चोर घुसा और पुस्तके उठाने लगा। सतो को ज्ञात हुआ तो परस्पर कहने लगे, बोलता नही है, अत चोर ज्ञात होता है। महाराज ने शिष्य सतो को कहा—"हल्ला मत करो" और चोर को कहा 'यहा से शीघ्र चला जा, विशेष जाग होने से तुझे

राज-पुरुष पकड़ लेगे और दु ख देगे।' चोर पर महाराज के वचन का बड़ा प्रभाव पड़ा, वह प्रात प्रसाद लेकर आया और महाराज के उपदेश से चोरी छोड कर ईश्वर भजन मे लग गया। एक दिन प्रात काल स्वामीजी पद गा रहे थे, वह काजी-मुल्लाओ को अच्छा न लगा। उनकी आज्ञा से दस-बीस मुसलमान आये और महाराज को पकड़ कर विलन्दखान खोजा के पास ले गये। उसने महाराज को कैद की कोटडी मे बद कर दिया। उस समय विलन्दखान को तथा सब जनता को महाराज का एक शरीर कैद की कोटड़ी मे और एक बाहर दीख रहा था। यह देखकर विलन्दखान चरणो मे पड गया और क्षमा माँगी। दयालु सतजी ने क्षमा प्रदान की। उक्त चमत्कारो को देखकर लोगो ने एक साथ सात महोत्सव आरम्भ किये। सातो मे एक ही समय पधारने का महाराज को निमत्रण दिया। महाराज ध्यानस्थ रहे, किसी के भी नही गये। भगवान् ही महाराज के सात शरीर धारण करके सातो महोत्सवो मे एक ही समय जा पहुचे। तब से नगर-निवासियो की महाराज पर विशेष श्रद्धा हो गई किन्तु विठ्ठल व्यास के चित्त मे ऐसी फुरणा हुई कि पास जाऊ, तब दादू जी बिना हुई माला मुझे देगे तो मै समझूगा, महान् सत है। व्यास के जाने पर इच्छानुसार माला मिल गई। जैसे मुकन्द भारती की भविष्यवाणी जो जयमल की माता को कही थी कि—मै तेरे पुत्र को शिष्य नही बनाऊगा, कुछ समय मे सतप्रवर दादूजी महाराज प्रकट होने वाले है उन्हीं का यह शिष्य होगा, इससे साधको को तो महाराज पर विश्वास था ही किन्तु साँभर की उक्त घटनाओ से महाराज की बड़ी ख्याति हो गई थी।

वृन्दावन के श्रेष्ठ सत चतुरा नागाजी ने भी अपने पास शिष्य होने को आये बडे सुन्दरदासजी को महाराज का शिष्य होने का आदेश दिया था। महाराज की विशेषताओ को देखकर महाराज को अपने सप्रदाय मे मिलाने के लिये गलता के महन्त ने माला-तिलक देने को चार साधु साभर भेजे थे किन्तु महाराज ने उन्हे कहा—"हमारा मन ही हमारी माला है, गुरु उपदेश ही तिलक है, मुझे माला तिलक नहीं चाहिये।" इस पर वे रुष्ट होकर बोले, यदि आमेर का राज्य होता तो हम अवश्य तुम्हे हमारे सप्रदाय मे मिला लेते। महाराज ने कहा-ठीक है, कभी आमेर राज्य मे भी यह शरीर आ ही जायगा। फिर महाराज आमेर पधार गये। वहाँ के राजा तथा प्रजा के लोग भी महाराज के भक्त हो गये। महापडित जगजीवनजी, रज्जबजी आदि शिष्य आमेर मे हुये।

उन्ही दिनो महाराज के शिष्य माधवदासजी घूमते हुये सीकरी जा पहुचे और एक मदिर मे मध्याह्न के समय शयन कर रहे थे, निद्रा मे पैर मदिर की ओर हो गये। पुजारियो ने कहा—"तू बड़ा नामदेव बन गया है जो भगवान् की ओर पैर करके सोया है।" माधवदासजी ने कहा—"नामदेव ने क्या किया था ?" पुजारी बोले-"भगवान् को दूध पिलाया था।" माधवदासजी ने कहा-भगवान् तो प्रेम होने से अब भी दूध पी सकते है। दूध लाया गया, माधवदासजी ने प्याला दीवाल की ओर किया। भगवान् ने दीवाल से मुख निकाल कर दूध-पान किया। यह देख तुलसीराम ने अकबर को कहा-यह साधु दम्भी है, इसे मार देना ठीक होगा। फिर उन्हे सिह के पिजरे मे बन्द कर दिया। प्रात जनता के लोग देखने आये, तो देखा कि सिह डरा हुआ पिजरे के एक कोने मे बैठा है और सन्त मध्य मे ध्यानस्थ है। अकबर स्वय आया और पिजरे से निकाल कर क्षमा माँगी। उस समय तुलसीराम ने कहा—इनके गुरु दादूजी इनसे भी अच्छे सत है, आमेर मे विराजते है।

अकबर ने आमेर नरेश भगवतदासजी को कहा-सतो को यहाँ बुलाओ, न आयेगे तो हम वहा चलेगे। भगवतदासजी ने सूर्यसिह खीची को आमेर भेजा। प्रथम तो महाराज ने ना कर दिया, किन्तु सूर्यसिह ने कहा—"यदि आप न पधारेगे तो मै प्रायोपवेशन व्रत द्वारा यही शरीर छोड़ दूगा।"

तब दादूजी ने नरहिसा उचित नही जानकर अपने सात शिष्यो के साथ सीकरी को प्रस्थान किया, वहाँ पहुचने पर भगवतदास बडे सत्कार से अपने यहा ले गये और आतिथेय सेवा के बाद बादशाह को सूचना दी। फिर बादशाह की प्रार्थना से आतिशखाना नामक स्थान मे रहे। बादशाह ने अब्बुलफजल, राजा बीरबल और तुलसीराम इन तीनो को कहा-तुम महाराज के पास जाओ। तुलसीराम ने आते ही कहा—"अकबराय नम·" महाराज ने कहा—"नमो निरजन आतमरामा"। फिर तीनो ने महाराज से अपने विचारो के अनुसार प्रश्न किये और महाराज के समाधान रूप विचारो से सन्तुष्ट हुये। बादशाह के पास जाकर महाराज की विशेषताएं बताई। शेख अब्बुलफजल और राजा भगवत् दास के द्वारा महाराज को अकबर ने बुलाया और सत्सग किया। प्रतिदिन सत्सग होता रहा। फिर अकबर को ज्ञात हुआ कि-महाराज राज-अन्न नही खाते। कुछ लोगो ने कहा-किले के भीतर ठहरे है, भिक्षा को जावे तब द्वार बन्द करा दो, आप खायेगे। वैसा ही किया। जग्गा जी भिक्षा को जाते थे, द्वार बन्द देखकर द्वारपाल को आवाज दी, न बोलने पर उन्होंने अपने योग-बल से सब बात जान ली और अपना शरीर बढा के दीवाल लाघकर भिक्षा ले आये। यह जानकर अकबर डर गया और आज्ञा दे दी कि सतो को अपनी इच्छानुसार ही रहने दो। अकबर ने चालीस दिन सत्सग किया, फिर महाराज को भेट के रूप मे विशाल धन राशि देने लगा तब महाराज ने मना कर दिया।

अकबर के पास एक कुरान पढा हुआ तोता था, उसका पिजरा रत्न जटित स्वर्ण का था। अकबर ने सोचा, महाराज तोता लेना स्वीकार कर ले तो पिजरे का धन उनकी सेवा मे जा सकता है, किन्तु उन्होंने अपने मन को ही तोता बता कर लेना स्वीकार नही किया। सेवा के लिये विशेष आग्रह करने पर "गोहिसा बन्द कर दो, यही हमारी सबसे बडी सेवा है।" अकबर ने स्वीकार किया, यह देख कर वहाँ के काजी-मुल्लाओ ने अकबर से कहा—"आपने एक साधारण साधु के कहने से गो-वध बद की आज्ञा दे दी है, उसकी कोई करामात तो देखी होती। अकबर ने उनके कहने से सभा मे महाराज को बुलाया और बैठने के योग्य स्थान खाली नही रक्खा। महाराज उसके मन की बात जान गये और अपने योग-बल से सभा के आकाश मे तेजोमय सिंहासन रच कर उस पर विराज गये। यह देख कर सभी सभासदो को महान् आश्चर्य हुआ और बादशाह आदि सभी अपने-अपने आसन छोड कर प्रणाम करते हुये क्षमा माँगने लगे।

अकबर से बिदा होकर राजा बीरबल के रहे, उसे उपदेश करके आमेर नरेश भगवतदास के बुलाने पर उसके रहे, आमेर नरेश ने बडे सत्कार पूर्वक सीकरी से विदा किया। वहा से विदा होकर सात दिन तक वन ही वन से आये। कारण, ग्रामो मे जाने से जनता की भीड लगती थी। इस प्रकार चलते हुये एक दिन प्रात काल दौसा के गेटोलाव तालाब पर प्रात काल पहुचे और शिष्य सतो को कहा—"स्नान कर लो।" जग्गाजी ने कहा—'स्नान करा कर क्या गर्म जलेबी जिमाओगे ?"

महाराज ने कहा—'जलेबी तुम्हारे लिये क्या दुर्लभ है, किन्तु तुम अपना काम तो करो, फिर ईश्वर का काम वे आप करेंगे।'' सब सत स्नान करके भजन करने बैठे। भोजन के समय पर तालाब मे एक छाब तैरती हुई दिखाई दी और महाराज के पास तट पर आ गई। सब सतो को गर्म जलेबी जिमाई, फिर भी बच गई, वह तालाब मे ही छोड़ दी, कुछ दूर जाकर वह जल मे डूब गई।

इस प्रकार घूमते हुये आमेर आ पहुचे। आमेर मे मार्ग के पास एक योगी रहता था, एक दिन महाराज और टीलाजी मार्ग से आ रहे थे। योगी बोला—'ए! दादूडा! आज कल कहा जाता आता है, अकबर के पास जाकर अपने को बहुत बड़ा मानने लगा है, किन्तु तुझ मे कुछ भी शक्ति नही, तुझे तो मै अभी आकाश मे उडा सकता हू।' महाराज कुछ भी न बोले किन्तु टीलाजी ने कहा—जो कहता है वही उड़ेगा, इतना कह कर टीलाजी ने कहा—''उडजा शिला सहित।'' वह तत्काल उड गया। फिर करुणा पूर्ण शब्दो मे महाराज से प्रार्थना की तब महाराज ने टीलाजी को कहा—'उतार दे।'' महाराज की आज्ञा मान कर उसे भूमि पर उतार दिया। योगी ने फिर चरणो मे पडकर क्षमा माँगी।

आमेर मे एक तुर्क ने सत्सग सभा मे मुख-बन्द मास का पात्र इस भावना से लाकर रक्खा था कि महाराज पहचान जायेगे तो मै उन्हे उच्च कोटि का सत मानूगा। महाराज उसकी बात को जान गये। उसे खोलने पर उसमे खाड-भात निकला। आमेर मे रहते हुये ही समुद्र मे डूबती हुई व्यापारियो के एक जहाज को उनकी प्रार्थना योग-बल द्वारा जान कर तारी थी। धरूया-जैमल नरेश और उसकी प्रजा की प्रार्थना पर योग-बल से केदार (कच्छ) देश मे देवी के मदिर मे प्रकट हुये। वहा के नरेश पद्मसिह उस समय देवी की पूजा कर रहे थे। उन्होंने महाराज को बाहर निकालने की आज्ञा दी। महाराज का एक शरीर बाहर निकाला तो वहा दो शरीर खड़े हो गये, इस प्रकार ज्यो-ज्यो राज-पुरुष निकालते थे, त्यो २ दूने होते जाते थे। सब मदिर महाराज के शरीरो से परिपूर्ण हो गया तब पद्मसिह चरणो मे पड गया और क्षमा माँगी। महाराज ने उसे अहिसा का उपदेश किया, उसने स्वीकार किया और देवी को बलि देना बन्द कर दिया। इस प्रकार महाराज की कृपा से केदार देश अहिसक बना। ज्ञानदास और माणकदास जी का प्रयत्न सफल हुआ।

आमेर मे रहते हुये ही योगबल से हिमालय की भभर घाटी मे राजा बीरबल की महाराज ने हिम से रक्षा की थी। आमेर मे ही गुफा के कपाट बन्द रहने पर भी दो सिद्ध सूक्ष्म शरीर बना गुफा मे घुसे और महाराज के पास बैठ कर बात करने लगे कि जो काश्मीर मे घोड़े दौड़ रहे है सो दादूजी को नहीं दीख रहे होंगे। उनके दूरदर्शन रूप दर्प को देख कर महाराज ने कहा—फिर बताओ अगले घोड़े के कान किस रग के है ? सिद्ध न बता सके। महाराज ने कहा—''नीले कानो वाला घोड़ा आगे दौड़ रहा है।'' ऐसा, कह कर महाराज बोले-जब तक अपना आत्म-स्वरूप ब्रह्म नही जाना जाय, तब तक दूर-दर्शनादि सिद्धियो से भव-बन्धन नही कटता। अत परब्रह्म को जानने का यत्न करो। दोनो सिद्ध महाराज का उपदेश स्वीकार करके चले गये।

टोक निवासी नरहरिदास और माधवदासजी ने महोत्सव पर महाराज को आग्रह-पूर्वक बुलाया था, उस समय अधेरे बाग मे सत-समूह एकत्र हुआ और सत दर्शनार्थ जनता भी अधिक आ गई थी। भोजन सामग्री कम पडने की बात माधवदासजी ने कही। महाराज ने कहा—''कोई

चिन्ता नही, भगवान् के भोग लगाने का थाल यहा ले आओ।'' माधवदासजी ने वैसा ही किया। महाराज ने भगवान् के भोग लगाया और थाल माधवदासजी को देकर कहा—''इसे भोजन-राशि मे मिला दो, कभी भी कम न होगा।'' वैसा ही हुआ।

साधु समाज का आग्रह था कि महाराज ही हम सबको प्रथम अपने हाथ से प्रसाद दे, तब ही जीमेगे। माधवदासजी ने महाराज को कहा। महाराज ने कहा-ऐसा हो जायगा। फिर चार मुट्ठी लौग लेकर महाराज ने अनेक शरीर धारण करके एक साथ सबको अपने हाथ से प्रसाद दे दिया। माधवदास जी ने पूछा-किसी को ५, किसी को ६ और किसी को ७ लौग मिली है यह क्या बात है' महाराज ने कहा-तीन प्रकार की श्रद्धा वाले लोग थे, जिनकी जैसी श्रद्धा थी उतनी ही लोग उनको मिली है। सात दिन तक टोक मे सत्सग होता रहा।

महाराज गुठले ग्राम को जा रहे थे, मार्ग बताने को कुछ बाल-भक्त भी साथ थे। मार्ग मे गो-मडल मिला और महाराज को घेर कर खडा हो गया। प्रत्येक गाय महाराज को बारबार प्रणाम करती थी, महाराज चलने लगते तो चलने लगती थी, खडे रहने पर शीश नमाती थी। साथ के सतो को यह घटना देखकर बडा आश्चर्य हुआ। गो-यूथ का प्रेम देखकर महाराज ने उनको मुक्ति प्रदान की।

ऑधी ग्राम के पूर्णदास आदि भक्त विशेष आग्रह करके महाराज को चातुर्मास मे ऑधी ले गये, वहा वर्षा न होने से जनता को व्यथित देख कर भगवान् से प्रार्थना करके वर्षा बरसाई। फिर पीथा के आग्रह से करडाले पधारे और पादू, रीवा, ईडवा आदि ग्रामो मे भक्ति-ज्ञानादि का उपदेश करते हुये मारवाड़ प्रदेश मे पधारे। बीकानेर नरेश भुरटिये राव रायसिह ने खाटू ग्राम मे बुलाया, महाराज ने स्वीकार किया। किन्तु पीछे किसी मत्री ने राव को बहका दिया, इस कारण राव को अश्रद्धा हो गई। महाराज के आने पर राव ने प्रश्न किये—आपका धर्म क्या है ? रहनी क्या है ? कर्त्तव्य क्या है ? कथनी क्या है ? महाराज बोले-राम-नाम चिन्तन ही हमारा धर्म है, पाचो इन्द्रियो का सयम ही हमारी रहनी है, सतो ने जो किया है वही हमारा कर्त्तव्य है और राम मे वृत्ति लगाओ यही हमारा कथन है। राव ने कहा-यह ज्ञान नही, चतुराई है। महाराज शाति प्रिय थे, वे चुप रहे। फिर राव ने महाराज को मारने का षड्यन्त्र किया। जहा महाराज ठहरे थे उस स्थान के मार्ग मे मतवाला हाथी छोड दिया। हाथी को आते देख गरीबदासजी ने कहा—''इस मार्ग मे षड्यन्त्र ज्ञात होता है।'' महाराज बोले—''षडयन्त्रकारियो को उनके कर्म का फल मिलेगा और हमारी रक्षा निरजन राम अवश्य करेगे।'' गरीबदासजी तथा रज्जबजी बडी सावधानी से महाराज के साथ चल रहे थे। हाथी जब समीप आया तो रज्जबजी उसे हटाने के लिये आगे बढना चाहते थे, किन्तु महाराज ने उनको रोक दिया। हाथी आया और मत्रमुग्ध के समान खडा रह गया। फिर उसने सूड से महाराज के चरण छूये, मस्तक नमाया। महाराज ने उसके सिर पर हाथ रक्खा, फिर वह हाथी शाति पूर्वक लौट गया।

भुरटिये राव ने यह विचित्र घटना देखी, तब बहकाने वाले मत्री को उलाहना दिया और श्रद्धापूर्वक महाराज के पास गया, सत्सग किया तथा अपने यहा ले जाने का आग्रह करके बोला—''सतो के स्थान, खानपानादि का प्रबन्ध मै कर दूगा, आप सदा ही मेरे यहा रहा करे।''

महाराज बोले-हम तो एक परब्रह्म रूप राजा के ही आश्रित रहते है, अन्य राजाओ के आश्रित नहीं। फिर उधर से अनेक ग्रामो मे भक्तो को सत्-शिक्षा देते हुये नरेना मे आये, मार्ग मे जाते हुये बखना को होली गाते हुये देखकर कहा—"जिन भगवान् ने तेरा सुन्दर शरीर बनाया है, उनके गुण तो नही गाता और अपने पतन के कारण गदे गीत गाता है, यह उचित नही।" यह सुनते ही बखना चरणो मे पडा और शिष्य बन गया। *(बखनाजी बडे प्रसिद्ध गायक भक्त हुये है। - स)*

फिर अनेक भक्तो के यहा घूमते हुये घाटवा के लाडखानियो के आग्रह पर घाटवा पधारे। फिर प्रयागदासजी महाजन डीडवाने ले गये। वहा से किरडोली जाने लगे, तब बीच मे ही आग्रह करके तिलोकशाह अपने ग्राम साहपुरा ले गये। बड़ी श्रद्धा से सेवा की किन्तु वहा से पधारते समय तिलोक के फुरणा हुई। महाराज के विषय मे बड़ी अद्भुत बाते सुनी जाती है किन्तु यहा पर तो कोई भी आश्चर्यकारक घटना नहीं घटी। महाराज उसके मन की बात जान गये और स्थान से बाहर जाकर बोले-"हम शरीर साफने का साफा छोड़ आये सो ले आओ।" तिलोक लाने गया तो देखा वहा भी महाराज बिराज रहे है, उसने मार्ग की ओर देखा तो मार्ग मे भी खडे है। फिर साफा ले आया। महाराज ने कहा—"मेरी कमर के बाँध दो।" बाँधने लगा तो गाठ तो आ जाय किन्तु कमर नही बँधे, यह देखकर तिलोक चरणो मे पड गया। फिर महाराज उसे निष्काम भाव से सत-सेवा करने का उपदेश देकर पधार गये। एक दिन अजमेर ख्वाजा पीर की दरगाह के पीर ने एक फकीर के हाथ एक दोने मे मिश्री और फूल भेजे। उसने सामने रख कर सत्सग की बाते चलाई। आध घटे मे वे फूल और मिश्री बतासो के रूप मे बदल गये। वे उस फकीर को प्रसाद रूप देकर विदा किया। सतो ने पूछा-भगवन्! यह क्या बात थी जो अपने आप फूल और मिश्री बतासे बन गये ? महाराज ने कहा—'वह मिश्री अपने काम की न थी और किसी का अपमान करना भी अच्छा नहीं, भगवत् कृपा से बतासे बन गये और उसे ही दे दिये।" फकीर ने उक्त घटना पीरजी को कही, तब पीर भी श्रद्धापूर्वक महाराज के दर्शनार्थ गये और बोले—मैने भूल की जो फकीर को भेजा, क्षमा कीजिये। महाराज ने उन्हे मधुर बचनो से हितकर उपदेश किया। वह सतुष्ट होकर लौट गये।

फिर विचरते हुये महाराज आल्हनवास आये और वहा से पादू गये। अल्लहण भक्त ने महाराज को आग्रहपूर्वक इसलिये रोका कि महाराज के सत्सग से लोगो को लाभ होगा किन्तु परशुरामजी के अनुयायियो ने लोगो को बहकाया, अत वे सत्सग मे सम्मिलित नहीं हुये। अल्लहण श्रीमान् न था, महाराज के साथ सत बहुत थे। उसने महाराज से कहा-"ग्राम के लोग दूसरो के बहकाने से भोजनादि का सहयोग नही दे रहे है।" महाराज बोले-'तुम अपने घर का ही जिमाओ कोई कमी न आयेगी।" फिर तो उसकी वस्तुये अपार हो गईं, कोई भी कम न पडी। खूब आगत-अतिथियो तथा गरीबो को दिया जाता था। यह आश्चर्य देखकर ग्राम की श्रद्धा हो गई। अल्लहण ने महाराज के लिये कम्बली बनाई थी, जब वह भेट दी तो महाराज ने कहा "मुझे तो अभी आवश्यकता नही है।" यह सुन कर अल्लहण को बड़ा दु ख हुआ। तब भगवान् की आज्ञा हुई, कम्बली ग्रहण करो और अल्लहण को प्रसाद दो। महाराज ने भगवद्-आज्ञा के अनुसार ही किया, झारी जल प्रसाद देते ही अल्लहण की दिव्य दृष्टि हो गई। फिर महाराज वहा से विचरण कर गये।

अल्लहण को परशुरामजी के अनुयायियो ने कहा- "दादू का मत अच्छा नही है, हमारा मत अच्छा है, हमारी दीक्षा लो।" अल्लहण बोला-सभी सतो का मत अच्छा है, फिर भी आपका आग्रह है तो यह दो मास की पाडी बैठी है, जो इसका दूध निकाल ले, उसी का मत अच्छा माना जायगा। परशुरामजी के अनुयायियो से न निकला। अल्लहण ने पाडी की पीठ पर थप्पी मार कर तथा 'सत्यराम' बोल कर पाडी का दूध निकाल कर चरी भरदी, तब वे लज्जित होकर चले गये।

ईडवा ग्राम मे दॉतुन के समय दूजनदासजी ने हरा दॉतुन लाकर दे दिया, तब महाराज ने कहा—'सूखे से भी दाँत साफ हो जाते है, तुम हरे वृक्ष को क्यो तोड लाये।" फिर दॉतुन करके उसे पृथ्वी मे गाड दिया, उसकी इमली ईडवा मे अब तक है। फिर घूमते हुये बखनाजी के आग्रह से नरेना आये, तब वहा से ऊधवजी भैराना ले गये। मालवा के सिरौज ग्राम मे मोहनजी दफ्तरी ठहर रहे थे। एक दिन महोत्सव के समय भोग-थाल मोहनजी के पास आया तो उनके मन मे सकल्प हुआ कि यह गुरुदेव पाले तो मेरा जन्म सफल हो जाय। महाराज आमेर मे भोजन करने विराजे थे, टीलाजी थाल रसोई से लाने गये थे, लेकर आये तो आगे चौकी पर थाल रक्खा देख कर पूछा—थाल कहा से आया ? महाराज ने कहा—'सिरोज से मोहन दफ्तरीजी ने भेजा है।" महाराज ने भोजन किया और थाल सिरौज को लौटा दिया। सिरौज के भक्तो ने मौहनजी से पूछा—"थाल कहा गया था और कहा से आया ?" मोहनजी ने कहा-गुरुदेवजी के पास आमेर गया था। महाराज ने तुम्हारा भोजन पाया है।

टहटडा मे नागर-निजाम को सिद्ध-पात्र दिया था। ऊचा रख देने से इच्छानुसार भोजन आ जाता था। वहॉ से सेवको के आग्रह पर दौसा पधारे और चौखा भूसर के पुत्र छोटे सुन्दरदास जी को अपना शिष्य बनाया। वहाँ से पुन सॉभर आये। यहा के भूधरदास वैरागी ने सोचा, यह पहले के समान यहॉ न जम जाय, अत यहा से मारपीट कर भगा देना चाहिये। अपने शिष्य को साथ लेकर एकान्त स्थान मे महाराज के पास गया। वहा जाते ही शिष्य को उसके गुरु भूधरदासजी दादूजी के रूप मे भासने लगे। इससे उसने गुरु को ही मारना आरम्भ कर दिया, गुरु ने कहा—"मै तो तेरा गुरु हू, मुझे क्यो मारता है।" शिष्य बोला—"जैसा तू गुरु है, वैसी ही तेरी पूजा कर रहा हू।" अन्त मे गुरु अधमरा हुआ तब अपने रूप से भासा और महाराज अपने रूप मे भासने लगे। अब तो वे दोनो समझ गये और चरणो मे पड़कर क्षमा मागी। फिर वहा से करडाले पधारे।

उन्ही दिनो महाराज के भक्त वणजारो ने मोरड़ा ग्राम के पास अपना पडाव डाला और करडाला से महाराज को अपने पडाव पर लाये तथा महान् उत्सव मनाया। महाराज ने भी उनको मुक्ति प्रदान की। वि स १६५९ मे जब भगवान् की आज्ञा ब्रह्मलीन होने की हुई तब शिष्य सतो के मन मे कही धाम बनाने की इच्छा हुई। उनके मन की बात जानकर महाराज ने नरेना ग्राम के सरोवर तट पर धाम बनाना उचित समझा। नरेना नरेश नारायणसिह दक्षिण मे थे, उनके मन मे भी फुरणा हुई-महाराज को नरेना लाकर सत्सग करना चाहिये। उन्होंने महाराज को बुलाया। वहा के विप्रो ने राजा से कहा, महाराज के यहा रहने पर तुम्हारा राज्य नही रहेगा, अत उनको यहा मत रक्खो। किन्तु नरेश ने उनकी बात न मानी। महाराज तीन दिन रघुनाथ मदिर मे रहे, फिर ७ दिन

त्रिपोलिया पर रहे। राजा सत्सग करने प्रतिदिन जाते थे। आठवे दिन जहा महाराज का आसन था, वहा एक महान् सर्प ने प्रकट होकर अपने फन से तीन बार वहा से उठने का सकेत किया। महाराज भगवान् की आज्ञा मानकर उसके पीछे-पीछे चल पडे। एक खेजडे के नीचे जाकर सर्प ने फन से वहा ही विराजने का सकेत किया तो महाराज वहा ही विराज गये। वह खेजडा स्थल अभी तक नरेना मे विद्यमान है।

वहा तालाब के तट और बाग के बीच एक मास मे धाम तैयार हो गया। वही फिर एक दिन पूर्वकाल के सत पधारे और रात्रि को ब्रह्म विचार होता रहा। प्रात टीलाजी ने पूछा-बाहर से तो कोई आया नही और रात्रि को आपके पास कई महानुभावो के वार्तालाप के शब्द सुनाई दे रहे थे, क्या बात थी ? महाराज ने कहा—पूर्व के प्रसिद्ध सत नभ-मार्ग से मिलने आये थे और नभ-मार्ग से ही चले गये।'' (क्यो कि अब हमारा ब्रह्मलीन होने का समय समीप आ गया है। - स)

अन्त समय गरीबदासजी ने प्रश्न किया-स्वामिन् ! आपने ऐसा मार्ग दिखाया है जो हिन्दू मुसलमानो की सीमित सीमा से आगे का है। किन्तु इसका आगे कैसे निर्वाह होगा ? महाराज ने कहा-तुम ऐसा विचार मत करो, जो अपने धर्म मे रहेंगे उनकी रक्षा राम करेंगे, और तुम विशेष चाहो तो हमारा शरीर रख लो, जो भी पूछना चाहोगे उसी का उत्तर इससे मिलता रहेगा ? तथा ऐसा भी न समझो कि-वह शरीर खराब हो जायगा, यह पच तत्त्व से बना हुआ नही है, यह तो दर्पण मे प्रतिबिम्बित शरीर के समान है। यदि तुम्हारे सशय हो तो हाथ फेर कर देख लो।'' गरीबदासजी ने हाथ फेरा तो दीपक ज्योति-सा प्रतीत हुआ। दीखता तो था किन्तु पकडने मे नहीं आता था। फिर गरीबदासजी ने कहा-जब आपने ऐसा देह बना लिया तो कुछ दिन इसे और रखने से तो हम शवपूजक कहलायेगे जो आपके उपदेश के अनुसार उचित नही।'' महाराज बोले ''तो फिर यहा एक बिना तेल-घृत और बत्ती के अखड-ज्योति रहेगी उससे तुम्हारे सभी कार्य सिद्ध होते रहेंगे।'' गरीबदासजी ने कहा- ''उस ज्योति के महान् चमत्कार को देखकर यहा जनता का अधिक आना जाना रहेगा जो हमारे साधन मे पूर्ण विघ्न बनेगा, हम पडे बन जायेंगे, अत यह भी ठीक नहीं है।'' गरीबदासजी की निष्कामता देखकर महाराज प्रसन्न हुये और बोले ''जो हमारी वाणी का आश्रय लेकर निर्गुण भक्ति करेगे, उनकी परब्रह्म रक्षा करेगे और जो इष्ट-भ्रष्ट होगा, उसे परम-पद नहीं मिलेगा।'' गरीबदासजी ने फिर पूछा ''स्वामिन्। आपको भविष्य का सब वृत्तान्त करामलकवत् ज्ञात है, अत बताइये फिर भी कोई उत्तम भक्ति करने वाला सत आपके समाज मे होगा या नही ?'' महाराज ने कहा—''सौ वर्ष पीछे एक सत होगा।'' (वे ही श्री जयत साहब जी महाराज हुये, ऐसा सतो से सुनते आ रहे है।)

ब्रह्मलीन होने से पूर्व महाराज ने सब सतो को बुलाया और दर्शन देकर तथा स्नान करके स्थान पर विराज गये। उस समय भगवान् की तीन बार आज्ञा हुई कि आओ३। तीसरी आज्ञा के साथ ही महाराज ने अपना देह त्याग दिया। वि स १६६० ज्येष्ठ कृष्णा ८ शनिवार को एक पहर दिन चढ़े उक्त प्रकार से महाराज ब्रह्मलीन हुये। फिर एक सुन्दर पालकी मे शरीर को रखकर महाराज की आज्ञानुसार सकीर्तन करते हुये भैराना गिरि पर ले गये। यहा पालकी ले जाकर रख दी। फिर अन्त्येष्टि सस्कार सम्बन्धी विचार कर रहे थे कि उसी समय टीलाजी को गिरि के मध्य

भाग की गुफाके द्वार पर महाराज के दर्शन हुये। टीलाजी ने सब से कहा, सब ने दर्शन किये। इतने मे ही महाराज-'सतो। सत्यराम'' यह बोल कर अन्तर्द्धान हो गये और पालकी मे शरीर के स्थान पर पुष्प मिले। कहा भी है "गुरु दादू रु कबीर की, काया भई कपूर। रज्जब अज्जब देखिया, सगुण हि निर्गुण नूर ॥'' फिर गरीबदासजी ने महान् महोत्सव किया। इस प्रकार महाराज ५९ वर्ष २॥ मास धरातल पर रह कर लोक कल्याणार्थ उपदेश करते रहे और १५२ शिष्य करके ब्रह्मलीन हुये।

सौ शिष्यो ने केवल निरजन राम का भजन ही किया और ५२ प्रचारक हुये तथा थाभायती महन्त कहलाये। उनमे अधिकतर बाणीकार हुये है। ५२ के नाम और स्थान निम्न प्रकार है .-

दादूजी दयालु पाट गरीब मसकीन ठाट, युगल बाई निराट निराने विराज ही।
बखनो संकर पाक जैसो चांद प्रागटाक, बड़ोहु गोपाल ताके गुरु द्वारे राज ही ॥
सांगानेर रज्जब सो देवले दयालदास, घड़सी कडेल बसी धर्म ही की पाज ही।
ईडवे दूजनदास तेजानन्द जोधपुर, मोहन सो भजनीक आसोप निवाज ही ॥१॥
गूलर मे माधोदास विद्याद में हरिसिह, चन्द्रदास सिंघ्रावट किये तन काज ही।
विहाणी प्रयागदास डीडवाणे है प्रसिद्ध, सुंदरदास भूसर सु फतेपुर गाज ही ॥
बाबा बनवारी हरिदास दोऊ रतिया मे, साधुराम मँडोठी में नीके नित छाज ही।
सुन्दर प्रहलाददास घाटड़े सु छीण मांहि, पूरब चतुरभुज रामपुर राज ही ॥२॥
निराणदास मागल्यो सु डांग मांहि एकलोद रणतभवरगढ चरणदास जानियो।
हाड़ोती गंगाइचा में माखूजी मगन भये, जग्गोजी भडूंच मध्य प्रचाधारी मानियो ॥
लालदास नायक सो पीरांणी पटणदास, फोफले मेवाड़ माँहि टीलोजी प्रमानियो।
सादा प्रमानन्द दोउ ईंदोखली रहे जप, जयमल चौहाण सो खालड़े हरि गानियो ॥३॥
जैमल जोगी कछावो वनमाली चोकन्यो सु, साभर भजन रूप सो वितान तानियो।
मोहन दफ्तरी सो तो मारोठ चिताई भले, रघुनाथ मेड़ते सु भाव कर आनियो।
कालेडेरे चन्द्रदास टीकूदास नांगल मे, झोटवाड़े झांझूमांझू लघु गोपाल धानियो।
आमावती जगन्नाथ राहोरी में जनगोपाल, बारा हजारी सतदास चांवड़े लुभानियो।४।
आंधी में गरीबदास भानगढ़ माधव के, मोहन मेवाड़ा जोग साधन से रहे है।
टहटड़े मे नागर निजाम हू भजन कियो, दास जगजीवन सु दौसा हरि लहे हैं ॥
मोहन दरियाई सो समाधी नागर चाल मध्य, बोकड़ास संत जु हिंगोल गिरि भये हैं।
चैनराम काणोता में गोंदेर कपिलमुनि श्यामदास झालाणा में चौड़ा का मे ठये हैं ॥५॥
सौंक्या लाखा नरहर आलूदे भगति कर, महाजन खडेलवाल दादू गुरु गहे है।
पूर्णदास ताराचद महाजन महरवाल, आंधी मे भगति कर काम क्रोध दहे है।
रामदास राणीबाई क्रांजल्यां प्रकट भये, महाजन डंगायच सो जाति बोल सहे हैं ॥
बावन ही थांभा अरु बावन ही महन्त ग्राम, दादूपंथी राघोदास सुने जैसे कहे हैं ॥६॥

महाराज ने भक्तो को जो उपदेश किये है उन्ही का सग्रह वाणी मे है। महाराज का विस्तृत पद्यमय चरित्र श्री लक्ष्मीराम चिकित्सालय, सागानेर दरवाजा, जयपुर मे उपलब्ध है।

चरितामृत श्री दादु का यह सक्षिप्त स्वरूप। पढे प्रेम से देत है, मन बल परम अनूप।
ब्रह्म रूप श्री दादू को बारबार प्रणाम। 'नारायण' के चित्त को, दे सतत विश्राम ॥

ले -सतकवि कविरत्न स्वामी नारायणदास, श्री कृष्ण कृपा कुटीर, पुष्कर

श्री वाणी प्रार्थना पञ्चदशी

शिष्येभ्य प्रतिबोधिता शमदमश्रद्धादिमद्भ्य: स्वयं
श्रीदादूगुरुभिर्दयाद्रहृदयैरंशावतारै. प्रभो ।
शुद्धब्रह्मविचारसाधनपरा मायाभ्रमोच्छेदिनीं
शिष्यत्वेन भजाम्यह गुरुमिवं श्रीदादुवाणीमहो ॥ १ ॥

सुधाधारासारै· प्रवचनघनान्तर्विगलितै—
र्जनानां सिञ्चन्ती हृदयमतिशान्तिप्रजनने. ।
महाकालज्वालापतितजनसन्तापशमनी
गुरूणा वाणीय परमसुखशान्तिं वहतु मे ॥ २ ॥

गुरोराशीर्वादात् मनुजजनिसाफल्यकरणै–
र्हृषीकेश–ध्यान–स्मरण–मननाभ्यास–विधिभि. ।
स्वभक्तानां नित्यं परमपुरुषार्थ विदधती
गुरूणां वाणीयं परमसुखशान्ति वहतु मे ॥ ३ ॥

समुद्दीप्यास्माकं हृदयपटले स्नेहवहुले
परब्रह्म—प्रेमानलमखिल—पापप्रदहनम ।
प्रशस्तीकुर्वाणा परमप्रभुसायुज्यपदवीं
गुरूणा वाणीयं परमसुखशान्ति वहतु मे ॥ ४ ॥

भ्रमन्तं ससारे चिरतरवियुक्तं प्रियतमात्
परब्रह्मस्थानात् परमपरमानन्दविभवात् ।
नयन्ती भूयोऽपि स्वभवनमिम जीवनिवहं
गुरूणां वाणीय परमसुखशान्ति वहतु मे ॥ ५ ॥

महारण्ये भ्रष्ट जगति भयभीमेऽतिविषमे
गृहीत्वा हस्ताग्र शिशुमिव रुदन्तं नरमिह ।
निविष्ट कुर्वाणा परमपितुरके पुनरपि
गुरूणां वाणीयं परमसुखशान्ति वहतु मे ॥ ६ ॥

इम जीवात्मान प्रियतमपरात्मानमभित:
प्रतिष्ठा प्रापय्य प्रियतमकराग्रेण मधुरम् ।
परब्रह्मानन्दामृतचषकपान प्रदिशती
गुरूणां वाणीयं परमसुखशान्ति वहतु मे ॥ ७ ॥

अनादे. कालाद् वै चिरविरहिणोर्जीवशिवयो:
पुनर्योगं कृत्वा सरलसरलोपायविधिभि: ।

मिथ: प्रेमक्रीडोत्सवसुखरसास्वादनचणा
गुरूणां वाणीयं परमसुखशान्तिं वहतु मे ॥ ८ ॥
अमुष्मिन् वै मायामयचमचमत्कारपिहिते
प्रपञ्चे प्रच्छन्नं सकलरमणीयं शिवतमम् ।
परं सत्यं साक्षात् नयनगमनीय विदधती
गुरूणां वाणीयं परमसुखशान्तिं वहतु मे ॥ ९ ॥
प्रभुप्रेयोऽस्माकं भवति खलु नि:श्रेयस्कर
तत: श्रेयस्कामै: सततमवधेयं प्रभुप्रियम् ।
इति श्रेयोमार्गानुगमनसुशिक्षावितरणी
गुरूणां वाणीयं परमसुखशान्तिं वहतु मे ॥ १० ॥
कथं मायामोहो विलयमुपनेयो मतिमतां
चलं चैतच्चित्तं कथमथ विधेयं प्रभुपदे ?
तदित्थं कल्याणोत्तमविधिविधानं विदधती
गुरूणां वाणीयं परमसुखशान्तिं वहतु मे ॥ ११ ॥
पशुत्वात् मानुष्यं मनुजपदत: सिद्धपदवी
सुसिद्धाद् देवत्वं तदनु च परब्रह्मपदवीम् ।
प्रदातुं सर्वेभ्य: सततकटिबद्धा सहृदया
गुरूणां वाणीयं परमसुखशान्तिं वहतु मे ॥ १२ ॥
यमन्वेष्टुं तीर्थप्रभृतिबहिरङ्गेषु बहुशो
भ्रमन् व्यर्थ लोक: समयमथ शक्तिं गमयते ।
महेशं तं स्वान्तर्हृदयभवने दर्शनपरा
गुरूणां वाणीयं परमसुखशान्ति वहतु मे ॥ १३ ॥
पवित्रीकर्तव्यैर्यमनियमसंस्कार विधिभि-
र्दयादानौदार्य—प्रभृतिभिरनेकैर्गुणगणै: ।
जनानां चारित्र्येष्वभिनवपरिष्कारकुशला
गुरूणा वाणीयं परमसुखशान्तिं वहतु मे ॥ १४ ॥
अहो तत्तद्रागोन्नयननिपुणैरप्यतितरां
पदैर्गीतैर्गीतैर्भवविषय-वैराग्य-जननी ।
विरक्तानां भक्तौ रसिकमनसा प्रीतिनयनी
गुरूणां वाणीयं परमसुखशान्तिं वहतु मे ॥ १५ ॥

— स्वामी बलराम शास्त्री प्राचार्य

अथ विषय सूची

॥श्री॥

श्री दादूवाणी माहात्म्य

श्री दादूवाणी की महा महिमा कही न जाय। पद पद मे अनुभव किये, श्रुति सिद्धान्त सुहाय॥
ब्रह्म रूप अहि ब्रह्मवित्, जाकी वाणी वेद। भाषा अथवा सस्कृत, करत भेद-भ्रम छेद॥
वाणी जाकी वेद सम, कीजे ताकी सेव। ह्वै प्रसन्न जब सेवतै, तब जानै निज भेव॥
वाणी दादू दयाल की, सब शास्त्रन को सार। पढ़ें विचारें प्रीति सू, ते जन उतरैं पार॥
दादू दीन दयालु की, वाणी बिसवा बीस। तिनकू खोजि विचार कर, अंग धरे सैतीस॥
तिन माही जो हारडे, तिनके तिते स्वरूप। कोई विवेकी केलवै, काढै अर्थ अनूप॥
दादू दीन दयाल की, वाणी कचन रूप। कोइ इक सोनी सतजन, घड़ि है घाट अनूप॥
दादू दीन दयालु की, वाणी अनुभव सार। जो जन या हिरदै धरै, सो जन उतरै पार॥
जे जन पढ़ै जु प्रीति सू, उपजै आतम ज्ञान। तिनकू आन न भास ही, एक निरजन ध्यान॥
जिनके या हिरदै बसी, याही मै मन दीन। तिनकू अति मीठी लगी, आठ पहर लौ लीन॥
वेद पुराण व शास्त्र सब, और जिते जो ग्रन्थ। तिनको बोधि विलोकि के, यह काढ्या निज मथ॥
बोले दादूदास जी, साचे शब्द रसाल। तिनकी उपमा को कहै, मानो उगले लाल॥
या वाणी सुनि ज्ञान ह्वै, याही तै वैराग। भक्ति भाव यासै बढ़ै, या सुनि माया त्याग॥
या वाणी पढि प्रेम ह्वै, या पढि प्रीति अपार। या पढि निश्चय नाम ह्वै, या पढि प्राण अधार॥
या वाणी ह्वै खोजता, क्षमा शील सतोष। याहि विचारत बुद्धि ह्वै, या धारत जिव मोक्ष॥
आदि निरंजन अन्त निरंजन, मध्य निरंजन आदू। कहि जगजीवन अलख निरजन, तहा बसै गुरु दादू॥
कथी स्वामी दादू प्रति पद महा मोह दमनी। जिन्है निश्चय कीन्ही, भव निधि तरे दुःख शमनी॥
कहो को न जानी, सुखतर भये सन्त सब ही। पढै जो या वाणी निशिदिन लहै ब्रह्म तब ही॥
जिनकी वाणी अमृत बखानी सन्तन मानी सुखदानी। जो सुनकर प्राणी ह्रिरदै आनी, बुद्धि थिरानी उन जानी॥
यह अकथ कहानी प्रगट प्रवानी नाहि न छानी गगा सी। गुरु दादू आया शब्द सुनाया ब्रह्म बताया अविनाशी॥
जाकी वाणी पढत बढत मन राम हित, हिय होत अनुभूति अलख अमल की।
जीव जीवभाव तज ब्रह्म को स्वरूप होत, रहे नही रेख भी अविद्यामय मल की॥
जिनकी शरण भवतरणि विख्यात भली, कट जाती झट पाश मोह माया बल की।
नारायण वारी बलिहारी जाऊ बार-बार, परम दयालु दादू चरण-कमल की॥
यदी या वाण्येषा ह्यमृत-रस-पूर्णा श्रमहरा। श्रुता यै : प्रीत्येव विशदयति तेषा मतिमलम्॥
पुमास्ता गायन् वै व्रजति भवपार सुखतरम्। नमामस्त दादू प्रणत-जन-वृन्दार्चित-पदम्॥

श्री दादूवाणी जी की आरती

ओ३म् जय दादूवाणी ।
मुनिजन की मनभावनि, सन्तन सुखदानी ॥ टेक ॥ ॐ जय.

वेद शास्त्र से सम्मत, सतगुरु की वाणी ।
भक्ति वैराग्य उपावनि, करती ब्रह्मज्ञानी ॥ १ ॥ ॐ

अविचल अमर अखंडित, परमानद भरणी ।
निर्गुण नाम निरजन, सुमिरण अनुसरणी ॥ २ ॥ ॐ

आपा गर्व मिटावनि, हरि भक्ति जननी ।
सबसे स्नेह बढ़ावनि, तन मन अघ हननी ॥ ३ ॥ ॐ

विषय वकार विनाशिनि, निर्मल मन करणी ।
तीनो ताप नशावनी, भव दुःख भय हरणी ॥ ४ ॥ ॐ

आतम ज्योति जगावे, भ्रम तम विनशानी ।
माया मोह भगावे, ब्रह्म ही दरशानी ॥ ५ ॥ ॐ

काया माहि दिखावे, प्रभु सारग-पाणी ।
जाहि निरन्तर ध्यावे, सुरनर मुनि ज्ञानी ॥ ६ ॥ ॐ

उपदेशामृत पूर्णा, श्री दादू वाणी ।
प्रेम सहित जो धारे, अमर हुवे प्राणी ॥ ७ ॥ ॐ

श्री गुरु दादू दयालु कृत अनुभव वाणी ।
अधम उधारण 'स्वामी', श्री मुख प्रगटानी ॥ ८ ॥ ॐ

वन्दना

जिन मनोभाव से ही मेट दियो विद्यावाद, जगा जगजीवन मे भक्ति की मशाल को।
जाकी नैन-सैन ने छुड़ाय कर भिक्षावृत्ति, भक्ति की सद्वृत्ति दीनी सु जनगोपाल को॥
जाके एक बैन से ही रज्जब विरक्त भये, बखनो गावन लागो भक्ति की धमाल को।
पद पकज की रज परसे गौ गज मुक्त, 'नारायण' वन्दौं ऐसे दादूजी दयाल को॥

– रचयिता – मा नारायण स्वामी, निवाई महन्तो का बाग, जयपुर-४

अथ मंगलाचरण

दादू नमो नमो निरजन, नमस्कार गुरु देवत । वन्दन सर्व साधवा, प्रणाम पारगत ॥
परब्रह्म परापर, सो मम देव निरजनम् । निराकार निर्मल, तस्य दादू वन्दनम् ॥
श्वेताम्बर धर स्वामी, नूरतेज सुधामयम् । श्री दयालु दया कृत्य, सर्व विघ्न विनाशनम् ॥
जो प्रभु जग मे ज्योतिमय, कारण करण अभेव । विघ्न हरण मगल करण, श्री नमो निरजन देव ॥
विघ्न बचे हरिनाम सो, व्याधि विकार विलाय । ऐसा शरणा नाम का, सब दु ख सहजै जाय ॥
सदा हमारे राम जी, गुरु गोविन्द जी सहाय । जन रज्जब जोख्यू नहीं, विघ्न विलय हो जाय ॥
दादू दीन दयाल गुरु, सो मेरे सिरमौर । जन रज्जब उनकी दया, पाई निहचल ठौर ॥
रज्जब शिष दादू गुरु, दीया दीरघ ज्ञान । तन मन आत्म ब्रह्म का, समझ्या सबहि स्थान ॥
दादू दीन दयालु सा, नजर न आया कोय । घड़सी सारी माड मे, करता करै सु होय ॥
स्वामी दादू ब्रह्म है, फेर सार नहीं कोय । सुन्दर ताको सुमिरता, सब सिध कारज होय ॥
स्वामी दादू सुमिरिये, गहिये निर्मल ज्ञान । मनसा वाचा कर्मणा, सुन्दर धरिये ध्यान ॥
स्वामी दादू सुमिरिये, निशदिन हिरदै राखि । सुन्दर जब लग जीविये, तब लग और न भाखि ॥
स्वामी दादू सुमिरिये, हिरदै होय प्रकाश । सुन्दर सब कारज सरै, पूरै जीव की आश ॥
स्वामी जी शिर ऊपरै, स्वामी जी उर माहिं । स्वामी दादू सारिसा, सुन्दर दूजा नाहिं ॥
साहिब दादू एक है, अन्तर नाहीं रेख । परमारथ को वपु धर्‌या, अन्त एक का एक ॥
'दा' कहता दारिद मिटै, 'दू' कहता दु ख जाय । "दादू दादू" जे रटै, आवागमन नशाय ॥
दाह जिती है जीव की, दू कहता भई दूर । ऐसे दादू देव हैं, रहिये सदा हजूर ॥
"दादू दादू" जे कहैं, तिन को काल न खाय । पार ब्रह्म दादू भया, ताहि रहो ल्यौलाय ॥
गुरु दादू चन्दा भया, सन्तन भये चकोर । ध्यान धरत ता नूर का, तहा बसै मन मोर ॥
नारायण सब विघ्न निवारे, परमेश्वर सब पीरा । आटे घाटे गोरख राखै, जहा जहा दास कबीरा ॥
काल झाल थैं दादू राखै, ऐसा गुरु गभीरा । सभी सन्त सहायक भये, जगिया गोविन्द नेरा ॥
हरि बाये हरि दाहिने, हरि आगे हरि पीछ । टीला तू काहे डरे, चल्यो जाय हरि बीच ॥
टीला के साथी दो जना, गुरु दादू अरु राम । वह है दाता मुक्ति का, वह सुमिरावै राम ॥
सेवक की रक्षा करै, सेवक की प्रतिपाल । सेवक की वाहरै चढै, श्री दादू दीनदयाल ॥
नमस्कार सुन्दर करत, निशिदिन बारबार । सदा रहो मम शीश पर, सतगुरु चरण तुम्हार ॥
भक्त कहा जोगी जती, षट् दर्शन विश्राम । जगन्नाथ जगदीश को, भजै ताहि प्रणाम ॥

श्री दादूवाणी जी की आरती

ॐ जय दादू दयालु गिरा, जय गुरु दादू दयालु गिरा ।
माधव के मन भावनि, भव भय सतत हरा ॥ ॐ ।१॥
जो गावे, सुख पावे, क्लेश हटे हिय का ॥
शम दमादि मन आवे, क्षौभ मिटे जिय का ॥ ॐ ॥ २॥
काम क्रोध मद भंजनि, लोभ मोह हननी ॥
साधक जन मन रंजनि, शांति क्षमा जननी ॥ ॐ ॥ ३॥
सशय शोक नशावति, कहती हरि साथा ॥
श्रुति सिद्धान्त सुनावति, तारति भव पाथा ॥ ॐ ॥ ४॥
भेद विवाद मिटावनि, समता सुख-कारी ॥
पक्ष विपक्ष नशावनि, विषयाशाहारी ॥ ॐ ॥ ५॥
अखिल विकार विभंजति, मंजति मन नीका ॥
निगमांगम नवनीत, सु, गिर प्राकृत टीका ॥ ॐ ॥ ६॥
ब्रह्म विचार प्रदायिनि, पर वैराग्य प्रदा ॥
सफल करत नर तन को, सोचत सरति सदा ॥ ॐ ॥ ७॥
धारण करत बुद्धि को, ब्रह्म निष्ठ करती ॥
नारायण निश्चय ही, मुक्ति महल धरती ॥ ॐ ॥ ८॥

– सन्त कवि नारायण दासजी पुष्कर

अथ शान्ति पाठ

ॐ सर्वे भवन्तु सुखिन सर्वे सन्तु निरामया ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दु खभाग्भवेत् ॥

तन मन निर्मल आत्मा, सब काहू की होय ।
दादू विषय विकार की, बात न बूझै कोय ॥

नाम लेत नवग्रह टलै, भजन करत भय जाय ।
जगजीवन अजपा जपै, सब ही विघ्न विलाय ॥

ब्रह्मा मुरारी त्रिपुरान्तकारी, भानु शशि भूमिसुतौ बुधश्च ।
गुरुश्च शुक्र शनिराहुकेतव , सर्वे ग्रहा शान्तिकरा भवन्तु ॥
ओऽम् सहनाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै ।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा कश्चिद् विद्विषावहै ॥
ॐ पूर्णमद पूर्णमिद, पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय, पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ॐ शान्ति : शान्ति : शान्ति ·

ॐ

आपा मेटै हरि भजै, तन मन तजै विकार।
निर्वैरी सब जीव सू, दादू यहु मत सार॥



सन्तप्रवर स्वामी श्री दादूदयालजी महाराज

॥ श्री परमात्मने नमः ॥

दादूराम



सत्यराम

॥ श्री दादूदयालवे नमः ॥

अथ श्री स्वामी दादूदयालजी की अनुभव वाणी

अथ श्री गुरुदेव का अंग १

परमार्थ का ज्ञान गुरु से ही होता है, अत गुरु विषयक विचार करने को गुरु अग कहने मे प्रवृत्त हुये प्रथम मगलाचरण कर रहे है —

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवतः ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥१॥

सत प्रवर श्री स्वामी दादूजी महाराज अपने इष्टदेव माया-रहित परब्रह्म को बारबार प्रणाम करके, उसकी प्राप्ति मे मुख्य हेतु गुरुदेव तथा गुरु और परब्रह्म प्राप्ति के साधारण कारण सर्व सतो को प्रणाम करके, प्रणाम का फल बता रहे है— जो श्रद्धा सहित परब्रह्म, गुरु और सतो को सदा प्रणाम करता हे, वह असत्य ससार से पार जाकर सत्य ब्रह्म को प्राप्त होता है ।

परब्रह्म परापरं, सो मम देव निरंजनम् ।
निराकारं निर्मलं, तस्य दादू वन्दनम् ॥२॥

जो निराकार, निर्मल और माया से परे परब्रह्म है, वही निरजन देव मेरा इष्टदेव है । मै उसे प्रणाम करता हूँ ।

गुरु प्राप्ति और फल

दादू गैब[1] माँहिं गुरुदेव मिल्या, पाया हम परसाद ।
मस्तक मेरे कर धर्‌या, दक्ष्या[2] अगम अगाध ॥३॥

३-६ मे सद्गुरु प्राप्ति और उसका फल बता रहे है :- अकस्मात्[1] गुरुदेव प्राप्त हुये, उन्होने मेरे मस्तक पर हाथ रखा तथा उनका कृपा प्रसाद मुझे प्राप्त हुआ। मन इन्द्रियो के अविषय निर्गुण और अपार स्वरूप की दीक्षा[2] दी।

बाल्यावस्था में अहमदाबाद के कांकरिया तालाब पर भगवान् ने दर्शन देकर उपदेश किया, तब यह साखी कही थी। प्रसग कथा दृष्टात सुधा-सिन्धु तरंग ७/९२ मे देखो।

दादू सद्गुरु सहज में, कीया बहु उपकार ।
निर्धन धनवंत कर लिया, गुरु मिलिया दातार ॥४॥

मुझे परम दानी गुरु प्राप्त हुये है और उन सद्गुरु ने स्वाभाविक ही मुझ पर बहुत उपकार किया है। मै आशा द्वारा दरिद्र था किन्तु उन्होंने मुझे परम सतोष-धन देकर धनी बना दिया है।

दादू सद्गुरु सूं सहजै मिल्या, लीया कठ लगाइ।
दया भई दयाल की, तब दीपक दिया जगाइ ॥ ५ ॥

मुझे अनायास ही सद्गुरु मिल गये, उन दयालु गुरुदेव की मुझ पर दया हो गई। तभी उन्होंने मुझे अपना लिया और अपने उत्तम उपदेश द्वारा मेरे हृदय मे ज्ञान दीप जगा दिया।

दादू देखु दयाल की, गुरु दिखाई बाट।
ताला कूची लाइ करि, खोले सबै कपाट ॥ ६ ॥

देखो, उन दयालु गुरु देव की दया कितनी महान् है ! जिन्होंने हमे ससार-मार्ग से मोड़कर, परमार्थ-पथ बताया है और हमारे नाना कर्म-बधन तालो को अपनी ज्ञान-ताली से खोलकर, हृदय-मन्दिर के सशय, तर्क और विपरीत ज्ञानादि सभी कपाट खोल दिये है, अर्थात् सशयादि नष्ट कर दिये है।

सद्गुरु सामर्थ्य

दादू सद्गुरु अंजन बाहिकर, नैन पटल सब खोले ।
बहरे कानों सुनने लागे, गूंगे मुख सूं बोले ॥ ७ ॥

७-१९ मे सद्गुरु की शक्ति का परिचय दे रहे है — जीवो के बुद्धि वृत्ति रूप ज्ञान-विज्ञान मय नेत्र सशय विपर्य्यादि मलो से बन्द हो जाते है। सद्गुरु उनमे अपना उपदेश-अजन डालकर, उनके सब पटलो को शुद्ध करके खोल देते है। जो धन, विद्या, तप, बल, रूप, कुल, पद और जाति मद से बहरे हो जाते है, दीन गरीबो की बात कभी सुनते ही नही, गुरु उपदेश से वे भी अति नम्र होकर सबके सुख-दुख की बात सुनने लगते है वा अनाहत नाद नही सुन सकते थे, वे गुरु कृपा से सुनने लगते है। जो भगवान् के नाम तथा यशादि गान मे गूगे समान रहते है, वे भी गुरु उपदेश द्वारा ईश्वर नाम-यश गाने लगते है।

सद्गुरु दाता जीव का, श्रवण शीश कर नैन ।
तन मन सौज[1] सॅवारि सब, मुख रसना अरु बैन ॥ ८ ॥

सद्गुरु जीव को आत्म-ज्ञान-महा-धन देने से दाता है। वे ससार-परायण श्रवण, नेत्र, रसना, वाणी, शीश, मुख, हाथ आदि तन मन की सभी सामग्री[1] को निर्दोष बनाकर भगवत् परायण कर देते है।

राम नाम उपदेश कर, अगम गमन यहु सैन ।
दादू सद्गुरु सब दिया, आप[1] मिलाये अैन[2] ॥ ९ ॥

राम नाम के उपदेश द्वारा मन इन्द्रियो के अविषय ब्रह्म मे प्रवेश करने का सकेत करके सद्गुरु ने हमे सब कुछ दे दिया। कारण-उस राम नाम ने हमे अपने सत्य स्वरूप[1] ब्रह्म से साक्षात्[2] मिला दिया है।

सद्गुरु कीया फेरि कर, मन का औरै रूप ।
दादू पंचों पलट कर, कैसे भये अनूप ॥१०॥

सद्गुरु ने मन को सासारिक विषय-वासना से भगवान् की ओर फेरकर भगवत्-परायणता द्वारा उसका रूप पूर्व से भिन्न ही कर दिया है और देखो, पच ज्ञानेन्द्रिया प्रथमावस्था से बदल कर कैसी अनुपम हो गई है अर्थात् पहले अपने विषयो का ही अनुभव करती थी किन्तु अब विषयो मे उनके अधिष्ठान ब्रह्म का अनुभव करती है ।

साचा सद्गुरु जे मिलै, सब साज[1] सँवारै ।
दादू नाव चढाय कर, ले पार उतारै ॥ ११ ॥

यदि सच्चे सद्गुरु मिल जाते है, तो मन इन्द्रियादि सभी सामग्री[1] को सुधार कर भगवत् परायण कर देते है । फिर आत्म-ज्ञान-नौका पर बैठा कर ससार से पार कर देते हैं ।

सद्गुरु पशु मानुष करै, मानुष तै सिध सोइ ।
दादू सिध तैं देवता, देव निरंजन होइ ॥ १२ ॥

सद्गुरु उपदेश द्वारा पशु तुल्य पामर मनुष्य को मानवता के लक्षणो से सम्पन्न करके वास्तविक मनुष्य बना देते है और वह मनुष्य सद्गुरु के बताये हुये योग-साधन द्वारा सिद्ध हो जाता है। सिद्धावस्था की परिपाकावस्था मे वही दिव्य गति वाला, अर्थात् दूसरो के मन की बात को जानने वाला देवता हो जाता है और देव भाव की परिपाकावस्था मे वही निरजन ब्रह्म हो जाता है।

दादू काढे काल मुख, अंधे लोचन देय ।
दादू ऐसा गुरु मिल्या, जीव ब्रह्म कर लेय ॥ १३ ॥

सद्गुरु काम-वृत्ति से अध हुये को, उपदेश द्वारा स्त्री-पुरुषो के शरीरो मे परस्पर मल-मूत्रादि का दर्शन कराना रूप वस्तु-विचार-नेत्र प्रदान करके काम-काल के मुख से निकाल देते है । हमे तो ऐसे ही गुरु प्राप्त हुये है जो जीव को ब्रह्म बना देते है ।

दादू काढे काल मुख, श्रवणहुँ शब्द सुनाय ।
दादू ऐसा गुरु मिल्या, मृतक लिये जिलाय ॥ १४ ॥

जो क्रोध-प्रधान वृत्तियो मे मृतक-तुल्य सज्ञा-हीन हो जाते थे, ऐसे मनुष्यो के भी श्रवणो मे गुरुजनो ने क्षमा-प्रधान शब्द सुना के उनको क्रोध-काल के मुख से निकाल कर शाति मय जीवन दिया है। हमको तो ऐसे ही गुरु मिले है, जिन्होंने मरण-धर्मवालो को ब्रह्म प्राप्ति द्वारा सदा के लिए जीवित कर दिया है।

दादू काढे काल मुख, गूंगे लिये बुलाइ ।
दादू ऐसा गुरु मिल्या, सुख में रहे समाइ ॥ १५ ॥

जो लोभ-प्रधान वृत्तियो द्वारा गूगे हो रहे थे, दीन-गरीब-भिक्षु आदि के भोजनादि सहायता मागने पर भी नही बोलते थे। उन लोगो को गुरुजनो ने उपदेश द्वारा धनादि की नश्वरता

निश्चय कराकर पर-उपकारार्थ बोलने वाला बना दिया तथा सतोषी बनाकर लोभ-काल के मुख से निकाल दिया। हमको तो ऐसे ही गुरु मिले है जिनके उपदेश से हम परम सुख मे समा रहे है।

दादू काढे काल मुख, महर दया कर आइ।
दादू ऐसा गुरु मिल्या, महिमा कही न जाइ॥ १६॥

जो मोह की प्रधानता से बारबार जन्मते मरते थे, उनको भी अपनी शरण आने पर गुरुजनो ने दया-कृपा करके ब्रह्म-ज्ञान-उपदेश द्वारा मोह-काल के मुख से निकाल लिया है। हमको तो ऐसे ही गुरु प्राप्त हुये है जिनकी महिमा वाणी से किसी प्रकार भी नही कही जा सकती।

सद्गुरु काढे केश गहि, डूबत इहि संसार।
दादू नाव चढाइ कर, कीये पैली पार॥ १७॥

हम सकाम-कर्मों द्वारा इस ससार-समुद्र मे बारबार डुबकिया लगा रहे थे, दयालु गुरुदेव ने हमारे सकाम कर्म-केश पकड़ कर अर्थात् निष्काम भाव से कर्म करने का उपदेश देकर हमे शुद्ध बनाया और आत्म-ज्ञान-नौका पर चढाकर ससार-सागर से पार कर दिया।

भव-सागर में डूबतां, सद्गुरु काढे आइ।
दादू खेवट गुरु मिल्या, लीये नाव चढाइ॥ १८॥

हम ससार-समुद्र मे डूब रहे थे, भाग्यवश हमे गुरु-केवट मिल गये और उन्होंने हमारी स्थिति देखकर, हमे अपने उपदेश-हाथो से निकाल कर ईश्वर नाम चिन्तन-नौका मे चढ़ा लिया है, अब हम नही डूब सकेगे।

दादू उस गुरुदेव की, मैं बलिहारी जाऊँ।
जहँ आसन अमर अलेख था, ले राखे उस ठाऊँ॥ १९॥

जिन गुरुदेव ने मुझे उपदेश द्वारा ससार-दशा से उठाकर जिस निर्विकल्प समाधि स्थान मे अमर अलेख ब्रह्म का आसन था, उसमे स्थित कर दिया है। उन गुरुदेव की मै बलिहारी जाता हूँ।

ज्ञानोत्पत्ति

आतम माँहीं ऊपजै, दादू पंगुल ज्ञान।
कृत्रिम जाय उलधि कर, जहाँ निरंजन थान॥ २०॥

२०-२१ मे आत्मज्ञानोत्पत्ति और उसका लाभ बता रहे है - गुरु की कृपा से भक्ति सम्पन्न बुद्धि मे गुण रूप चरण शक्ति से रहित आत्मज्ञान उत्पन्न होता है। उसके बल से साधक अपने बनावटी 'मै, तू' आदि ससार को उल्लघन करके, जिस अवस्था मे निरन्तर अद्वैत भावना ही रहती है, उस अवस्था रूप निरजन ब्रह्म के स्थान को प्राप्त होता है।

आत्म बोध बझ का बेटा, गुरुमुख उपजै आइ।
दादू पगुल पच बिन, जहाँ राम तहाँ जाइ॥ २१॥

आत्म-ज्ञान भक्ति निश्चय बुद्धि रूप वन्ध्या का पुत्र है। गुरु मुख से निकले शब्द, श्रवण द्वारा बुद्धि मे आते है तब वह उत्पन्न होता है। उसके बल से साधक का मन पच विषयाशा रूप पाद शक्ति से रहित होकर जिस निर्विकल्पावस्था मे निरजन राम का साक्षात्कार होता है, वहा जाता है।

गुरु शब्द

साचा सहजैं ले मिलै, शब्द गुरु का ज्ञान।
दादू हमकूं ले चल्या, जहँ प्रीतम का स्थान ॥ २२ ॥

२२-२३ मे गुरु के शब्दो की विशेषता बता रहे है—सच्चा साधक गुरु शब्दो के द्वारा ज्ञान प्राप्त करके अनायास ही ब्रह्म को प्राप्त होता है। हमको भी गुरु शब्दो के ज्ञान ने ही जहा समाधि मे प्रियतम ब्रह्म के साक्षात्कार होने का निर्विकल्प-स्थिति रूप स्थान है, वहाँ पहुँचाया है।

दादू शब्द विचार कर, लाग रहै मन लाइ।
ज्ञान गहै गुरुदेव का, दादू सहज समाइ ॥ २३ ॥

गुरु के शब्दो का विचार करते हुये, मन लगाकर, ब्रह्म चिन्तन मे ही लगा रहे और गुरुदेव का अभेद-ज्ञान ग्रहण करे तो अवश्य सहज स्वरूप ब्रह्म मे ही समा जाता है।

दया बिनती

दादू सद्‌गुरु शब्द सुनाइ कर, भावै जीव जगाइ।
भावै अन्तर आप कहि, अपने अंग[1] लगाइ ॥ २४ ॥

२४ मे विनय और २५-२७ मे गुरु-दया दिखा रहे है— हे सद्गुरो! चाहे तो आप अपना शब्द सुनाकर जीव को जगाओ, चाहे आप हृदय मे प्रेरणा करके ही अपने स्वरूप[1] मे लगाओ।

दादू बाहर सारा देखिये, भीतर कीया चूर।
सद्‌गुरु शब्दों मारिया, जाण न पावै दूर ॥ २५ ॥

साधक मे शरीर-निर्वाह रूप खान-पानादि बाहर का सभी व्यवहार तो देखा जाता है किन्तु सद्गुरु दया करके मन के भीतर भोग-वासनादि को नाश कर देते है। मेरे मन को भी सद्गुरु ने अपने शब्द बाणो से मार दिया है अर्थात् सासारिक वासना से रहित कर दिया है। अब मेरा मन परमात्मा से दूर नहीं जा सकता।

दादू सद्‌गुरु मारे शब्द सूं, निरख निरख निज ठौर।
राम अकेला रह गया, चित्त न आवै और ॥ २६ ॥

सद्गुरु ने, आत्म-स्थिति रूप निज धाम की प्राप्ति मे बाधक, काम क्रोधादि को भली भाति-देखकर अपने शब्द-बाणो से मार दिया है। वस्तु-विचार से काम, क्षमा से क्रोध, सतोष से लोभ और ज्ञान से मोह को मार दिया है। अब चित्त मे अन्य कुछ भी नही आता, केवल एक राम का चिन्तन ही रह गया है।

दादू हम को सुख भया, साधु[1] शब्द गुरु ज्ञान।
सुधि बुधि सोधी समझकर, पाया पद निर्वाण ॥ २७ ॥

परमार्थ के प्रतिपादक गुरु के श्रेष्ठ[1] शब्दो के ज्ञान से हमको महान् आनद प्राप्त हुआ है। उनके उपदेश के अनुसार भगवान् का स्मरण करने से हमारी बुद्धि शुद्ध हो गई। उस शुद्ध बुद्धि से विचार-पूर्वक स्वरूप को समझकर हमने काल-कर्म के बाणाघात से रहित ब्रह्म-पद प्राप्त किया है।

सद्गुरु शब्द बाण

दादू शब्द बाण गुरु साधु के, दूर दिशंतर जाय।
जिहिं लागे सो ऊबरे, सूते लिये जगाय ॥ २८ ॥

२८-२९ मे सद्गुरु के शब्द बाणो की विशेषता दिखा रहे है—श्रेष्ठ गुरु के शब्द बाण देशान्तरो मे दूर तक चले जाते है अर्थात् साधको के द्वारा सुनने को मिल जाते है और वे जिनके लगे है, उन साधको को मोह निद्रा से जगा लिया है। मोह निद्रा से जगने के कारण वे ससार दु ख से बच गये है।

सद्गुरु शब्द मुख से कह्या, क्या नेड़े क्या दूर ।
दादू सिष श्रवणों सुन्या, सुमिरन लागा शूर ॥ २९ ॥

सद्गुरु के मुख से निकले हुये शब्द समीप वा दूर देश मे स्थित साधको का भी उद्धार करते है। जहा भी सद्गुरु शब्द शिष्य ने सुने, वहा ही वे हरि-स्मरण मे लग कर काम क्रोधादि शत्रुओ को जय करने मे वीर बन गये है।

करनी बिना कथनी

शब्द दूध घृत राम रस, मथ कर काढै कोइ।
दादू गुरु गोविन्द बिन, घट घट समझ न होइ ॥ ३० ॥

३०-३३ मे कर्त्तव्य रहित कथन का परिचय दे रहे है—सद्गुरु के शब्द-दूध मे ब्रह्मानन्द-घृत भरा हुआ है किन्तु उन शब्दो से विचार द्वारा कोई विरला जिज्ञासु ही ब्रह्मानन्द को निकाल कर प्राप्त करता है। गुरु और गोविन्द की कृपा बिना सद्गुरु-शब्दो से ब्रह्मानन्द प्राप्त करने की विचार शक्ति प्रत्येक शरीरधारी को प्राप्त नही होती।

शब्द दूध घृत राम रस, कोई साधु बिलोवणहार ।
दादू अमृत काढ ले, गुरु-मुख गहै विचार ॥ ३१ ॥

सद्गुरु शब्द-दूध मे ब्रह्मानन्द-घृत भरा है किन्तु कोई श्रेष्ठ जिज्ञासु ही उसे मन्थन करने वाला होता है और गुरु-आज्ञा मे रहने वाला होता है। वही जिज्ञासु सद्गुरु-शब्दो से ज्ञानामृत निकाल कर विचार पूर्वक ग्रहण करता है।

घीव दूध मे रम रह्या, व्यापक सब ही ठौर।
दादू वकता बहुत हैं, मथ काढै ते और ॥ ३२ ॥

सद्गुरु-शब्द-दूध के प्रत्येक अणु मे, परमार्थ तत्त्व रूप घृत व्यापक रूप से रमा हुआ है। उन शब्दो के वोलने वाले तो बहुत मिलते है, किन्तु उन्हे श्रवण, मनन, निदिध्यासन द्वारा मन्थन कर अन्तर्मुख वृत्ति से उनमे से परमार्थ तत्त्व निकाल कर ग्रहण करने वाले अन्य ही होते है।

कामधेनु घट घीव है, दिन-दिन दुर्बल होइ।
गोरू[1] ज्ञान न उपजै, मथ नहिं खाया सोइ ॥ ३३ ॥

दूध घृतादि पच गव्य के द्वारा प्राणियो की कामना पूर्ण करने वाली गो के शरीर मे घृत है किन्तु उस पशु[1] मे उसे निकाल कर उपभोग करने का ज्ञान उत्पन्न नही होता। इसी से प्रतिदिन बुड्ढी होती जाती है। इसी प्रकार जीवात्मा परमात्मा रूप होने से सपूर्ण कामनाप्रद है। इसके तीनो शरीरो में आनद स्वरूप ब्रह्म भी व्यापक है फिर भी अज्ञानी को गुरु उपदेश बिना उसका वास्तविक ज्ञान नही होता। इस कारण विचार-मथानी से मन्थन करके उस ब्रह्मानद का आस्वादन नहीं कर सका। केवल शास्त्र द्वारा परोक्ष-ज्ञान प्राप्त करके कथन ही किया है, इससे बारबार जन्म-मरण रूप दुर्वलता को ही प्राप्त हो रहा है।

योगाभ्यास

साचा समरथ गुरु मिल्या, तिन तत दिया बताइ।
दादू मोटा[1] महा बली[2], घट घृत मथकर खाइ ॥ ३४ ॥

३४-४१ मे ब्रह्म प्राप्ति के साधन रूप योगाभ्यास का विचार कर रहे है—मुझे महान्[1] विचारशील, महायोग शक्तियो[2] से सम्पन्न, काम क्रोधादि तथा सशय-विपर्य्य के नाश करने मे समर्थ, शरीर के भीतर ही ध्यान रूप मन्थन द्वारा समाधि मे जाकर अद्वैतानन्द-घृत को खाने वाले सत्य ब्रह्म ही गुरु मिले हे, उन्ही ने मुझे परमार्थ तत्त्व बतलाया है।

मथकर दीपक कीजिये, सब घट भया प्रकास ।
दादू दीवा हाथ कर, गया निरंजन पास ॥ ३५ ॥

गुरुदेव ने कहा—"तुम ध्यान-मन्थन द्वारा समाधि मे जाकर ज्ञान-दीपक जलाओ।" मैंने गुरु-उपदेशानुसार ही योगाभ्यास किया, जिससे मेरे इन्द्रिय-अन्त करणादि सब शरीर मे ज्ञान-दीप का दिव्य प्रकाश फैल गया। मै उस ज्ञान-दीपक को अन्त.करण-हस्त मे लेकर निरजन ब्रह्म के पास पहुँच गया, और जिससे मुझे ब्रह्म का साक्षात्कार हो गया।

दीवै दीवा कीजिये, गुरुमुख मार्ग जाइ ।
दादू अपने पीव का, दरशन देखै आइ ॥ ३६ ॥

आत्म जिज्ञासु को चाहिए, गुरु-मुख से सुने हुये यम-नियमादि साधन-पथ द्वारा समाधि मे जाकर अन्त करण को शुद्ध और स्थिर करे, फिर ज्ञानी-गुरु के ज्ञान-दीपक से अपना आत्म-ज्ञान-दीपक जगावे और उसकी सहायता से निर्विकल्पावस्था मे आकर अपने प्रियतम ब्रह्म का दर्शन करे।

दादू दीया है भला, दिया[1] करो सब कोइ ।
घर में धरा न पाइये, जे कर दिया न होइ ॥ ३७ ॥

उक्त प्रकार से साधन द्वारा ज्ञान-दीपक जगाना अति उत्तम है। सभी को ज्ञान-दीपक[1] जगाना चाहिए। यदि साधन से जगाया हुआ ज्ञान-दीपक न होगा और केवल शास्त्र पढकर परोक्ष ज्ञान ही प्राप्त किया होगा तो अन्त करण मे स्थित आत्मा का भी स्वरूप नहीं जान पाओगे।

दादू दीये का गुण[1] ते लहैं, दीया मोटी बात ।
दीया जग में चाँदणा, दीया चालै साथ ॥ ३८ ॥

ज्ञान-दीपक का ब्रह्म प्राप्ति रूप लाभ[1] वे ही प्राप्त करते है, जिन्होंने ज्ञान प्राप्त किया है। ज्ञान-दीपक जगाना ससार मे सबसे बडी बात है। ज्ञान-दीपक हृदय मे जगते ही ससार मे ब्रह्म का सत्ता-प्रकाश फैला हुआ भासने लगता है और ज्ञान-दीपक आत्म स्वरूप होने से अपने साथ ही चलकर ब्रह्म मे लय होता है। उक्त ३७-३८ की साखियो मे 'दीया' के अर्थ साधारण दीपक और दान भी होते है किन्तु वे गौण है, प्रकरणार्थ ज्ञान-दीप ही है।

निर्मल गुरु का ज्ञान गह, निर्मल भक्ति विचार ।
निर्मल पाया प्रेम रस, छूटे सकल विकार ॥ ३९ ॥

हमने भ्रम, प्रमाद और वञ्चनादि मल से रहित गुरु का ज्ञान ग्रहण करके कामना-मल रहित नवधा भक्ति और वासना-मल रहित प्रेम-रस प्राप्त किया है। उससे हमारे मन इन्द्रियादि के सब दोष नष्ट हो गये है।

निर्मल तन मन आत्मा, निर्मल मनसा सार ।
निर्मल प्राणी पच कर, दादू लंघे पार ॥ ४० ॥

साधक प्राणी गुरु के उपदेशानुसार साधन द्वारा तन, मन, बुद्धि और पच ज्ञानेन्द्रियो को निष्पाप करके इन सबके सार जीवात्मा को अविद्या मल-रहित ब्रह्म रूप समझ कर इस मायिक ससार से पार हो गये है।

परापरी[1] पासै रहै, कोई न जाणै ताहि ।
सद्गुरु दिया दिखाइ कर, दादू रह्या ल्यौ लाइ ॥ ४१ ॥

परात्पर[1] परमात्मा व्यापक होने से सबके समीप ही है किन्तु बहिर्मुख अज्ञानी कोई भी उसे नही जान पाते। सद्गुरु ने मुझे ज्ञान-दीपक दिखा कर उस ब्रह्म का साक्षात्कार कराया है, अब मै उसी मे अपनी वृत्ति स्थिर करके रहता हूँ।

शिष्य जिज्ञासा

जिन हम सिरजे सो कहाँ, सद्गुरु देहु दिखाइ ।
दादू दिल अरवाह का, तहँ मालिक ल्यौ लाइ ॥ ४२ ॥

४२-४६ मे शिष्य की जिज्ञासा का परिचय दे रहे है - हे सद्गुरो ! जिन परमात्मा ने हमको

उत्पन्न किया है, वे कहाँ है ? दिखाने की कृपा कीजिये। उत्तर—जीवात्माओ के अन्त·करण मे ही साक्षी रूप से परमात्मा स्थित है, वहा ही अपनी वृत्ति लगा, दिखाई देगे।

मुझ ही में मेरा धणी, पडदा खोल दिखाइ।
आतम सौं परमातमा, परगट आण मिलाइ ॥ ४३ ॥

गुरुदेव ! आपने कहा कि मेरा स्वामी परमात्मा मुझ में ही है तो फिर उसके जो पडदा लगा है, उसे हटाकर तथा उपदेश द्वारा मेरी वृत्ति उसी मे लगाकर परमात्मा को आत्मा से प्रत्यक्ष रूप मे मिला दीजिए।

भर भर प्याला प्रेम रस, अपने हाथ पिलाय।
सद्गुरु के सदिकै[1] किया, दादू बलि बलि जाय ॥ ४४ ॥

सद्गुरो ! प्रभु-प्रेमाभक्ति-रस अपने मुख रूप हाथ से शब्द रूप प्याले मे भर-भर के श्रवण रूप पान कराइये। मैंने तो अपने को आप पर निछ़ावर[1] कर दिया है। आप अवश्य कृपा करेगे, मै बारबार आपकी बलिहारी जाता हूँ।

सरवर भरिया दह दिशा, पंखी प्यासा जाइ।
दादू गुरु परसाद बिन, क्यो जल पीवै आइ ॥ ४५ ॥

व्यापक ब्रह्म-सरोवर दशो दिशा मे परिपूर्ण रूप से भरा है किन्तु फिर भी सकाम कर्म रूप पक्षो वाला जीवात्मा-पक्षी अतृप्त ही लोकान्तरो मे जाता रहता है। गुरु कृपा बिना अज्ञानी निष्काम भाव मे आकर, ब्रह्म सरोवर के ब्रह्मानन्द-जल का अनुभव रूप पान कैसे कर सकता है ?

मान-सरोवर मांहिं जल, प्यासा पीवै आइ।
दादू दोष न दीजिये, घर-घर कहण न जाइ ॥ ४६ ॥

अन्त करण-सरोवर मे साक्षी चेतन रूप जल है किन्तु कोई सच्चा जिज्ञासु ही निष्काम भाव से गुरु की शरण आकर गुरु-उपदेश द्वारा चेतनानन्द-जल का अनुभव रूप पान करता है। शका—जब सबके अन्त करण में साक्षी रूप ब्रह्म है तो गुरु सबको क्यो नही ब्रह्म का साक्षात्कार कराते ? उत्तर—यह दोष गुरु को नही देना चाहिए। गुरु क्या घर-घर पर कहने जाएगा ? जिज्ञासु को ही गुरु की शरण जाकर पूछना चाहिए।

गुरु तथा शिष्य

दादू गुरु गरवा[1] मिल्या, ताथैं सब गम होइ।
लोहा पारस परसतां, सहज समाना सोइ ॥ ४७ ॥

४७-५८ मे गुरु और शिष्य विषयक विचार कर रहे है—हमे गभीर[1] ज्ञान वाले गुरु मिले है, उन गुरुदेव की कृपा से सब प्रकार हमारी गति ब्रह्म मे ही होती है अर्थात् हमे सब ब्रह्म रूप ही भासते है। लोहा का जब पारस से स्पर्श होता है तब अनायास ही सुवर्ण बन जाता है, वैसे ही जीव को जब गुरु का सग प्राप्त होता है तब वह भी अनायास ही ब्रह्म-भाव को प्राप्त होता है।

दीन गरीबी गह रह्या, गरवा[1] गुरु गंभीर ।
सूक्षम शीतल सुरति मति, सहज दया गुरु धीर ॥ ४८ ॥

गभीर[1]-ज्ञान वाले गुरु, गभीर होने से सब प्रकार के अभिमान से रहित दीन मनुष्य की-सी गरीबी धारण करके रहते है । उन धैर्यवान् गुरु का सूक्ष्म शरीर, बुद्धि-वृत्ति आदि कामादि दोषों से रहित होने से शात होते है और वे स्वाभाविक दयालु होते है ।

सो धी दाता पलक मे, तिरै तिरावण जोग ।
दादू ऐसा परम गुरु, पाया किहि संजोग ॥ ४९ ॥

उक्त लक्षणो से युक्त गुरु एक क्षण मे ही ब्रह्म-निष्ठा युक्त बुद्धि के देने मे समर्थ होते है । आप ससार-सिन्धु से तैरते है तथा शरणागत शिष्यो को तारने योग्य होते है । किसी पूर्व-पुण्य कर्म-फल के सयोग-वश ही ऐसे परम गुरु हमे प्राप्त हुये है ।

दादू सद्गुरु ऐसा कीजिये, राम रस माता ।
पार उतारै पलक में, दर्शन का दाता ॥ ५० ॥

जो राम-भक्ति रस मे मस्त हो और अपने उपदेश द्वारा एक क्षण मे ही ससार-सागर से पार उतार कर राम का दर्शन कराने वाला हो, ऐसे ही व्यक्ति को सद्गुरु करना चाहिए ।

देवै किरका[1] दरद का, टूटा जोड़ै तार ।
दादू सांधे[2] सुरति को, सो गुरु पीर[3] हमार ॥ ५१ ॥

जब से तू भगवद् विमुख हुआ है, तब से दु ख ही दु ख पा रहा है । ऐसा उपदेश करके भगवद् विरह दु ख का कण[1] प्रदान करे और अज्ञानवश विषयो मे आसक्त होने से जो भजन का तार टूट गया है, उसे जोड़ दे अर्थात् प्राणी को भजन मे लगा दे । वृत्ति भग के कारण—प्रमाण, विकल्प, विपर्य्यय निद्रा, स्मृति, से वृत्ति को बचाकर आत्मस्वरूप ब्रह्म मे जोड़दे[2] । उक्त लक्षणो से युक्त सिद्ध[3] सत ही हमारा गुरु है।

दादू घायल हो रहे, सद्गुरु के मारे ।
दादू अंग लगाय कर, भवसागर तारे ॥ ५२ ॥

जब हम सद्गुरु के मारे हुये वैराग्य पूर्ण वचन-बाणो से घायल हो रहे थे, विषय मिथ्या है यह निश्चय होने से तथा भगवत् तत्त्व प्राप्त न होने से दु ख हो रहा था, उसी अवस्था मे सद्गुरु ने हमे अपने प्रिय ब्रह्म स्वरूप मे अभेद रूप से लगाकर ससार-समुद्र से तार दिया ।

दादू साचा गुरु मिल्या, साचा दिया दिखाइ ।
साचे को साचा मिल्या, साचा रह्या समाइ ॥ ५३ ॥

हमे ब्रह्मनिष्ठ सच्चे गुरु प्राप्त हुये है और हमको भी उपदेश द्वारा सत्यब्रह्म का साक्षात्कार कराया है। अज्ञानादि दोषो से रहित सत्य स्वरूप आत्मा को सत्य ब्रह्म की प्राप्ति हो गई तब वह सत्य ब्रह्म मे ही एक रूप से समा गया है।

साचा सद्गुरु सोधि ले, साचे लीजे साध।
साचा साहिब सोधि कर, दादू भक्ति अगाध॥ ५४॥

प्रथम ब्रह्मनिष्ठ सच्चे सद्गुरु की खोज कर, फिर सद्गुरु और सच्चे सतो के सग से साधन का ज्ञान प्राप्त कर ले, पश्चात् विचार द्वारा परमात्मा का स्वरूप निश्चय करके उनकी अखड भक्ति करे।

सन्मुख सद्गुरु साधु सौं, सांई सौं राता।
दादू प्याला प्रेम का, महा रस माता॥ ५५॥

सद्गुरु और सतो से अनुकूल रहे, परमात्मा मे अनुरक्त रहे और भगवत्-प्रेम-रूप प्याले के ब्रह्म साक्षात्कार रूप महा-रस मे मस्त रहे।

सांई सौं साचा रहै, सद्गुरु सौं शूरा।
साधू सौं सन्मुख रहै, सो दादू पूरा॥ ५६॥

जो गर्भ की प्रतिज्ञा को भजन द्वारा पूरी करके परमात्मा से सच्चा रहता है, सद्गुरु से प्राप्त उपदेश के पालन करने मे वीर रहता है, साधन जन्य कष्ट को देखकर कायर नही होता, सतो के अनुकूल रहता है, उक्त लक्षणो से युक्त वह साधक ध्यान ज्ञानादि साधना द्वारा पूर्ण ब्रह्म को प्राप्त करके पूर्ण ब्रह्म ही हो जाता है।

सद्गुरु मिलै तो पाइये, भक्ति मुक्ति भंडार।
दादू सहजैं देखिये, साहिब का दीदार॥ ५७॥

यदि सद्गुरु मिल जाते है तब तो भक्ति मुक्ति का भडार सद्गुरु का उपदेश प्राप्त होता ही है और उपदेशानुसार साधन करके साधक अनायास ही ब्रह्म स्वरूप का साक्षात्कार करता है।

दादू सांई सद्गुरु सेविये, भक्ति मुक्ति फल होइ।
अमर अभय पद पाइये, काल न लागै कोइ॥ ५८॥

परमात्मा और सद्गुरु की सेवा करो, इससे तुम्हे प्रेमाभक्ति और मुक्ति रूप फल अवश्य मिलेगा। तुम अमर और निर्भय पद को प्राप्त हो जाओगे, फिर तुम्हारे पर काल का जोर भी न लग सकेगा।

गुरु बिना ज्ञान नहीं

इक लख चन्दा आण घर, सूरज कोटि मिलाय।
दादू गुरु गोविन्द बिन, तो भी तिमर न जाय॥ ५९॥

५९-६२ मे कहते है - गुरु बिना ज्ञान नही होता। एक लाख चन्द्र घर पर लाओ और उनके साथ कोटि सूर्य भी मिला लो, तो भी गुरु के ज्ञानोपदेश और गोविन्द की भक्ति बिना हृदय का अज्ञानाधकार नही जाता।

अनेक चंद उदय करै, असख्य सूर प्रकास।
एक निरंजन नाम बिन, दादू नहीं उजास ॥ ६० ॥

यदि अनेक चन्द्र और असख्य सूर्य उदय होकर प्रकाश करे तो भी गुरु प्रदत्त निरजन ब्रह्म के नाम चिन्तन द्वारा ब्रह्म ज्ञान हुये बिना, अज्ञान दूर होकर हृदय मे प्रकाश नहीं होता।

दादू कद यहु आपा जाइगा, कद यहु बिसरै और ।
कद यहु सूक्षम होयगा, कद यहु पावै ठौर ॥ ६१ ॥

यह देहादि का अहकार कब जायगा ? यह मन आत्मा से भिन्न अनात्मा पदार्थों की आसक्ति कब त्यागेगा ? यह जीवात्मा जीवत्व भाव रूप स्थूलता को त्याग कर कब सूक्ष्म होगा ? यह आत्मा कब ब्रह्म रूप धाम को प्राप्त करेगा ? उत्तर—जब गुरु द्वारा ज्ञान होगा तब आपा, अनात्मा की आसक्ति, जीवत्व भाव चले जायेगे और ब्रह्म को प्राप्त हो जायगा।

दादू विषम दुहेला जीव को, सद्गुरु तैं आसान ।
जब दरवै[1] तब पाइये, नेडा ही सुस्थान ॥ ६२ ॥

६१ मे कही चारो बाते अज्ञानी जीव को प्राप्त होना कठिन ही नहीं है, अति दुर्लभ भी है, परन्तु सद्गुरु की कृपा से तो ज्ञान द्वारा सहज ही प्राप्त हो सकती है। जब गुरुदेव कृपा[1] करते है तब अति समीप अन्त करण मे ही ब्रह्म रूप श्रेष्ठ धाम प्राप्त होता है।

गुरु ज्ञान

दादू नैन न देखे नैन को, अंतर[1] भी कुछ नाँहिं।
सद्गुरु दर्पण कर दिया, अरस परस मिल माँहिं ॥ ६३ ॥

६३-६५ मे गुरु ज्ञान की विशेषता बता रहे है—जैसे नेत्र से दूसरा नेत्र कुछ भी दूर[1] नही है तो भी बिना दर्पण के नेत्र दूसरे नेत्र को नही देख सकता, वैसे ही आत्मा और ब्रह्म मे कुछ भी भेद नही है तो भी सद्गुरु-ज्ञान बिना आत्मा ब्रह्म को नहीं देख सकता। जब सद्गुरु अन्त करण रूप हाथ मे ज्ञान-दर्पण देते है तब आत्मा ब्रह्म का साक्षात्कार करके उसी मे अभेद हो जाता है।

घट-घट राम रतन है, दादू लखै न कोइ ।
सद्गुरु शब्दो पाइये, सहजैं ही गम होइ ॥ ६४ ॥

प्रत्येक व्यक्ति के अन्त करण मे राम रूप रत्न स्थित है किन्तु गुरु-ज्ञान बिना कोई भी अज्ञानी उसे नही देख सकता। सद्गुरु शब्दो के ज्ञान द्वारा उस राम के स्वरूप मे सहज ही गति होकर जिज्ञासु जन राम को प्राप्त कर लेते है।

जब ही कर दीपक दिया, तब सब सूझन लाग।
यूं दादू गुरु ज्ञान तै, राम कहत जन जाग ॥ ६५ ॥

सद्गुरु ने जिस क्षण अन्त करण रूप हाथ मे ज्ञान दीपक दिया था तब सब विश्व मे राम ही राम दीखने लगे थे। इस प्रकार गुरु-ज्ञान द्वारा अज्ञान-निद्रा से जागकर साधक अपने सहित सब विश्व को राम रूप ही कहने लगता है।

आत्मार्थी भेष

दादू मन माला तहँ फेरिये, जहँ दिवस न परसै रात ।
तहां गुरु बानाँ[1] दिया, सहजैं जपिये तात ॥ ६६ ॥

६६-७४ मे आत्म-प्राप्ति का हेतु जो भेष है उसका परिचय दे रहे है— किसी ने प्रश्न किया था—आपके मालादि भेष नही दीखता, आप माला कहा बैठकर फेरते है ? उत्तर—हमारा मन ही हमारी माला है और जहा सूर्य स्वर-दिन, चन्द्र स्वर-रात्रि नही रहती उस सुषुम्ना नाडी पथ मे स्थित होकर अजपा-जाप जपते है। हमारे गुरु ने वहा ही जाप करने की दीक्षा तथा भेष[1] दिया है। हे तात ! तुम भी उस सहजा अवस्था मे स्थित होकर ही अजपा-जाप जपो।

दादू मन माला तहँ फेरिये, जहँ प्रीतम बैठे पास ।
अगम[1] गुरु तैं गम[2] भया, पाया नूर निवास ॥ ६७ ॥

मन की माला बना कर जिस निर्विकल्पावस्था मे प्रियतम प्रभु स्थित है, सकल्प-विकल्प से रहित होकर उसके पास ही फेरना चाहिये। ऐसा करने से ही वेदादि[1] शास्त्र जिसका वर्णन करते है, उस अगम परमेश्वर[1] के स्वरूप मे गुरु कृपा से हमारा प्रवेश[2] हुआ है और अब हमने अपने शुद्ध चेतन स्वरूप मे निवास प्राप्त कर लिया है।

दादू मन माला तहँ फेरिये, जहँ आपै एक अनन्त ।
सहजैं सो सद्गुरु मिल्या, जुग-जुग फाग वसंत ॥ ६८ ॥

जिस निर्विकल्पावस्था मे सजातीय, विजातीय, स्वगत भेद से रहित अपार अपना ही स्वरूप है वहा ही मन को सकल्प-विकल्प से रहित करके चिन्तन करना चाहिए। ऐसा करने से हमे सद्गुरु-कृपा से वह अद्वैत अनन्त अपना स्वरूप सहज ही प्राप्त हो गया है। अब हम उसके साथ निरतर सहजावस्था रूप वसन्त मे ब्रह्मानन्द का अनुभव रूप फाग खेलते है।

दादू सद्गुरु माला मन दिया, पवन सुरति सूं पोइ ।
बिन हाथों निश दिन जपै, परम जाप यूं होइ ॥ ६९ ॥

सद्गुरु ने मन-मणिया को वृत्ति द्वारा श्वास-प्रश्वास रूप धागे मे पिरोकर बिना ही हाथो से वृत्ति द्वारा ही अजपा-जाप जपने का उपदेश दिया है। हम भी वृत्ति से ही निशि दिन अजपा-जाप जपते है। उत्तम जाप इसी प्रकार होता है।

दादू मन फकीर मांहीं हुआ, भीतर लीया भेख ।
शब्द गहै गुरुदेव का, माँगै भीख अलेख ॥ ७० ॥

हमारा मन भीतर ही गुरुदेव के शब्दो का ज्ञान ग्रहण करके तथा नाना सासारिक वासना रूप घर को त्याग करके, असगता रूप भेष को लेकर साधु बन गया है और लेखबद्ध न हो सके, उस परब्रह्म की साक्षात्कार रूपी भिक्षा माँगता है।

दादू मन फकीर सद्गुरु किया, कह समझाया ज्ञान।
निश्चल आसन बैस कर, अकल पुरुष का ध्यान॥ ७१॥

सद्गुरु ने अपने ज्ञान-कथन के द्वारा समझा कर हमारे मन को भीतर ही वासना रहित करके साधु बना दिया है। अब वह एकाग्रता रूप निश्चल आसन पर बैठ करके कला-विभाग रहित पुरुष के ध्यान मे स्थित रहता है।

दादू मन फकीर जग तै रह्या, सतगुरु लीया लाइ।
अह निशि लागा एक सौं, सहज[1] शून्य[2] रस खाइ॥ ७२॥

अब हमारा सासारिक वासनाओ से रहित साधु मन ससार मे जाने से रुक गया है। उसे सद्गुरु ने परमेश्वर मे लगा दिया है। अब वह दिन रात अद्वैत ब्रह्म-चिन्तन मे ही लगकर निर्द्वन्द्वावस्था[1] मे निर्विकल्प[2] ब्रह्मानन्द-रस का ही आस्वादन करता रहता है।

दादू मन फकीर ऐसे भया, सतगुरु के परसाद।
जहा का था लागा तहाँ, छूटे वाद विवाद॥ ७३ ॥

सद्गुरु की कृपा से हमारा मन उक्त प्रकार साधु हो गया है और अब जिस चेतन आत्मा की सत्ता से सक्रिय होकर सासारिक विषयो मे जाता था उसी आत्मा के स्वरूप-चिन्तन मे लग गया है और सपूर्ण वाद विवाद छूट गये है।

ना घर रह्या न वन गया, ना कुछ किया कलेश।
दादू मन हीं मन मिल्या, सतगुरु के उपदेश॥ ७४॥

जैसे सन्यासी को वन के शीत, आतप, वात, वृष्टि आदि के सहन का क्लेश और गृहस्थ को घर के क्लेश उठाने पडते है, वैसे हमारे मन ने घर-वन के क्लेश नही सहन किये। सद्गुरु के उपदेश द्वारा मन ही मन मे साधन करने से हमारा आत्मा, परमात्मा मे अभेद रूप से मिला है।

भ्रम विध्वंस

दादू यहु मसीत[1] यहु देहुरा[2], सतगुरु दिया दिखाइ।
भीतर सेवा बदगी, बाहर काहे जाइ॥ ७५॥

जो लोग चूना पत्थर से बने मदिर व मस्जिदो मे ही ईश्वर मानते है उनका भ्रम दूर कर रहे है - हमे तो सद्गुरु ने यह शरीर ही मस्जिद[1] और मन्दिर[2] बताकर उपदेश दिया है कि—सच्चा उपासना-गृह तो शरीर के भीतर अन्त करण ही है, मन को एकाग्र करके भीतर ही सेवा-भक्ति करो, प्रभु के लिए बाहर क्यो भटकते हो?

कस्तूरिया मृग

दादू मंझे चेला मंझ गुरु, मंझे ही उपदेश।
बाहर ढूंढैं बावरे, जटा बधाये केश॥ ७६॥

जैसे कस्तूरिया मृग की नाभि में कस्तूरी होती है और वह उसे बाहर घास मे खोजता है, वैसे ही उपास्य को बाहर खोजने वालो का भ्रम दूर कर रहे है—भीतर सात्त्विक श्रद्धायुक्त चित्त ही शिष्य है, ज्ञान युक्त मन ही गुरु है, विचार ही उपदेश है, आत्मस्वरूप ब्रह्म ही उपास्य है, किन्तु अज्ञानी जन केशो की जटा बढाना आदि भेष बनाकर ब्रह्म को बाहर देशान्तरो मे खोजते है।

मन का दमन

मन का मस्तक मूंडिये, काम क्रोध के केश।
दादू विषै विकार सब, सद्‌गुरु के उपदेश॥ ७७॥

जो गुरु होने योग्य न होकर भी शिष्य बनाते है उन्हे कह रहे है—सद्‌गुरु के उपदेश द्वारा अपने मन के मिथ्या अहकार रूप के काम, क्रोध, विषय-विकारादि सब केश काट करके प्रथम उसे ही शिष्य बनाओ।

दादू पडदा भरम का, रह्या सकल घट छाइ।
गुरु गोविन्द कृपा करैं, तो सहजैं ही मिट जाइ॥ ७८॥

सभी के अन्त करण मे अज्ञान रूप पड़दा लगा है। यह अन्य किसी भी उपाय से हटने वाला नही है किन्तु गुरु और गोविन्द यदि कृपा करे तो अनायास ही हट जाता है।

सूक्ष्म मार्ग

दादू जिहिं मत साधू उद्धरैं, सो मत लीया शोध।
मन लै मारग मूल गह, यह सद्‌गुरु का परमोध॥ ७९॥

७९-८० मे आन्तर साधना रूप सूक्ष्म मार्ग का परिचय दे रहे है—ब्रह्म मे वृत्ति लगाना रूप जिस आन्तर साधन मार्ग द्वारा सत जन ससार से पार हुये है, वही हमने खोज लिया है। कारण—हमारे सद्‌गुरु का भी यही उपदेश था कि मनोवृत्ति को ब्रह्म मे लय करने के सही मार्ग से ही अपने आदि कारण ब्रह्म को अभेद रूप से प्राप्त करो।

दादू सोई मारग मन गह्या, जिहिँ मारग मिलिये जाइ।
वेद कुरानों ना कह्या, सो गुरु दिया दिखाइ॥ ८०॥

जिस निष्काम ब्रह्म-चिन्तन रूप मार्ग से चलकर ज्ञान द्वारा ब्रह्म मे अभेद रूप से मिलते है, वही मार्ग हमारे मन ने ग्रहण किया है। वेद कुरानादि ने जिसका "यह नही, यह नही" कह कर वर्णन किया है, उसी ब्रह्म का साक्षात्कार हमे सद्‌गुरु ने करा दिया है।

विचार

मन भुवंग[1] यहु विष भरा, निर्विष क्योंही न होइ।
दादू मिल्या गुरु गारुडी[2], निर्विष कीया सोइ॥ ८१॥

८१-८३ मे मन को विकार रहित करके प्रभु मे लगाने का विचार दिखा रहे है—यह मन रूप सर्प[१] भोग-वासना-विष से भरा है, गुरु कृपा बिना किसी प्रकार भी निर्विष न हो सकेगा। हमको तो ज्ञान रूप गारूड़ (सर्प विषनाशक) मत्र के ज्ञाता ज्ञानी[२] गुरु मिल गये थे, उन्होंने उपदेश द्वारा इसे भोग-वासना विष से रहित किया है।

एता कीजे आप तैं, तन मन उनमन[१] लाइ।
पंच समाधी राखिये, दूजा सहज सुभाइ॥ ८२॥

साधक स्थूल शरीर को आसनादि द्वारा अपने अधीन करे। पच ज्ञानेन्द्रियो को निग्रह करके अन्तर्मुखता रूप समाधि मे रक्खे, मन को समाधि[१] मे लगावे। इतना साधन अपने से किया जाएगा तब अन्य योग-क्षेम रूप बाह्य कार्य स्वाभाविक ही होता रहेगा तथा अभेद ज्ञान होकर ब्रह्म-साक्षात्कार रूप आन्तर कार्य भी गुरु के सकेत मात्र से सहज ही हो जाएगा।

दादू जीव जजालो पड गया, उलझा नौ मण सूत।
कोई इक सुलझै सावधान, गुरु बाइक अवधूत॥ ८३॥

जीव जगत के विषय और क्रोधादि रूप जालो मे फँस गया है। इसकी स्थिति नौ मण सूत उलझने के समान हो गई है। जैसे नौ मण सूत को कोई विरला धैर्यवान व्यक्ति ही सुलझा सकता है, वैसे ही मन की वासना को नष्ट करने मे सावधान कोई एक विरला अवधूत साधक ही गुरु-वचन-विचार द्वारा जगत के बधनो से अपने को सुलझा सकता है।

मन निरोध

चंचल चहुँ दिशि जात है, गुरु बाइक सूं बंधि।
दादू संगति साधु की, पारब्रह्म सू संधि॥ ८४॥

८४-९४ मे मनो निग्रह विषयक विचार दिखा रहे है—यह चचल मन सुखो के लिए चारो दिशाओ मे जाता है। इसे वैराग्य प्रधान गुरु वचनो के विचार द्वारा बाँधकर रोको और सतो की सगति द्वारा परब्रह्म के चिन्तन मे लगाओ।

गुरु अकुश मानैं नही, उदमद[१] माता अध।
दादू मन चेतै नहीं, काल न देखै फध॥ ८५॥

यह उन्मत्त[१] मन-मतग विषय-मद से मतवाला होकर अधा हो रहा है, जन्मादि भय के प्रदर्शक गुरु के शब्द-अकुश को भी नही मानता। वर्तमान के दु खो को देखकर भी कल्याणार्थ सावधान नही होता और न काल के फँदे को ही देखता है।

दादू मारया बिन मानै नहीं, यह मन हरि की आन।
ज्ञान खड़ग गुरु देव का, ता संग सदा सुजान॥ ८६॥

यह मन गुरु के उपदेश से निग्रह करे बिना, "निषिद्ध मे न जाकर विहित विषयो मे ही जाय" यह हरि की मर्यादा भी नही मानता, प्राय निषिद्ध मे ही जाता है। इसलिए

हे सुजान साधक ! गुरुदेव का ज्ञान-खड्ग अन्त करण-हस्त मे लेकर इसके साथ सदा युद्ध करते हुए इसे ब्रह्म-चिन्तन मे लगा।

जहां तैं मन उठ चलै, फेरि तहां ही राख।
तहँ दादू लै लीन कर, साधु कहैं गुरु साख ॥ ८७ ॥

हे साधक ! सद्गुरु के बताये हुये ब्रह्म चिन्तन रूप अभ्यास से उठकर मन विषयो की ओर जाय तब "विषय-प्रवृत्ति दुखद और ब्रह्म-चिन्तन परम सुखद है" इत्यादि गुरु-वचनो की साक्षी देकर पुन ब्रह्म-चिन्तन में ही मन को लगा और उसी ब्रह्म मे मनोवृत्ति लीन कर। सत जन भी मनो-निग्रह का यही उत्तम उपाय कहते है।

दादू मन ही सूं मल ऊपजै, मन ही सूं मल धोइ।
सीख चलै गुरु साधु की, तो तू निर्मल होइ ॥ ८८ ॥

मन मे निषिद्ध विषय-वासना उत्पन्न होने से मन से ही पाप उत्पन्न होते है और निषिद्ध विषयाशा के त्याग पूर्वक मन द्वारा ब्रह्म-चिन्तन से पाप धोये जाते है। यदि तू सद्गुरु और सतो की शिक्षा के अनुसार साधन करेगा तो मल, विक्षेप, आवरण से रहित होकर निर्मल ब्रह्म रूप ही बन जायेगा।

दादू कच्छप अपने कर लिये, मन इंद्री निज ठौर।
नाम निरंजन लाग रहु, प्राणी परहर[1] और ॥ ८९ ॥

जैसे भय की संभावना होने पर कच्छप अपने अग अपनी ढाल के नीचे ले आता है, वैसे ही अपने मन इन्द्रियो को विषयाशा से खेचकर आत्मस्वरूप निज स्थान मे ले आता है वही उत्तम साधक हे। अत हे प्राणी ! अन्य सब को त्याग[1] कर एक निरजन ब्रह्म के नाम चिन्तन मे ही लगा रह।

मन के मतै सब कोइ खेलै, गुरुमुख विरला कोइ।
दादू मन की मानैं नहीं, सतगुरु का शिष सोइ ॥ ९० ॥

सभी मन की इच्छानुसार विषयो मे रमण करते है। गुरु-वचन मे दृढ श्रद्धा रख कर मन की विषयाशा त्यागने वाला कोई विरला ही साधक होता है। जो मन की अनुचित वात नही मानता और गुरु-उपदेशानुसार चलता है, वही सद्गुरु का सच्चा शिष्य है।

सब जीवों को मन ठगै, मन को विरला कोइ।
दादू गुरु के ज्ञान सौं, सांई सन्मुख होइ ॥ ९१ ॥

विषयाशा द्वारा सव जीवो के आत्म-ज्ञान धन को मन ठगता है, मन के सर्वस्व विषय सम्बन्ध रूप धन को कोई विरला साधक ही ठगता है। मन को ठगने के लिए गुरु-ज्ञान विचार द्वारा ब्रह्म-परायण होना चाहिए।

दादू एक सूं लै लीन होना, सबै सयानप येह।
सतगुरु साधू कहत हैं, परम तत्त जप लेह ॥ ९२ ॥

सजातीय, विजातीय, स्वगत भेद रहित ब्रह्म के चिन्तन मे लगकर ब्रह्म मे ही वृत्ति द्वारा लीन होना चाहिए। यही सबसे अधिक चतुरता है, सद्गुरु और सतजन भी यही कहते है कि अजपा जाप जप कर परम तत्त्व ब्रह्म को प्राप्त कर।

सद्गुरु शब्द विवेक बिन, संयम रहा न जाइ।
दादू ज्ञान विचार बिन, विषय हलाहल खाइ ॥ ९३ ॥

सद्गुरु के विवेक पूर्ण शब्दो के बिना सयम से नही रहा जा सकता, कारण सत्यासत्य के विचार बिना ग्राह्य और त्याज्य का ज्ञान नही होता और बिना असत्य से हटे सत्य मे नही लगता। अत ज्ञान-विचार बिना विषय रूप महाविष ही खाता है।

घर-घर घट कोल्हू चलै, अमी महारस जाइ।
दादू गुरु के ज्ञान बिन, विषय हलाहल खाइ ॥ ९४ ॥

प्रत्येक स्थूल शरीर रूप घर के भीतर अन्त करण मे सकल्प-विकल्प रूप कोल्हू चलता रहता है, उससे अमर बनाने वाला ब्रह्मानन्द रूप महा-रस, विषय पृथ्वी मे पड़ कर दूषित हो रहा है, उसका अनुभव तो विषयो मे भी होता है किन्तु अज्ञान-दोष से युक्त होने से मुक्ति रूप अमरत्त्व नही दे सकता। गुरु-ज्ञानोपदेश बिना उस महारस को न जानने के कारण प्राणी विषय रूप महाविष ही खाते है वा नारी-पुरुष की काम प्रधान क्रिया रूप कोल्हू चलता है, उससे वीर्य रूप महारस नष्ट होता रहता है।

शिष्य प्रबोध

सद्गुरु शब्द उलंघ कर, जनि[1] कोई शिष जाइ।
दादू पग-पग काल है, जहाँ जाइ तहँ खाइ ॥ ९५ ॥

९५-९९ मे शिष्य को शिक्षा दे रहे है—निष्काम कर्म करने की आज्ञा रूप सद्गुरु शब्द को उल्लघन करके किसी भी शिष्य को सकाम कर्मो मे प्रवृत्त नहीं[1] होना चाहिए, यदि सकाम कर्म करेगा तो उसके लिए पद-पद पर काल स्थित है, वह जहाँ भी जायगा वहाँ ही उसे खा जायगा।

सद्गुरु बरजै शिष करै, क्यो कर बचै काल।
दह दिशि देखत बह गया, पाणी फोडी पाल ॥ ९६ ॥

जिन निषिद्ध कर्मो को सद्गुरु निषेध करते है, उन्हीं को यदि शिष्य करे तो फिर वह जन्म-मरण रूप कालचक्र से कैसे बचेगा ? जैसे बाँध तोड़ने पर जल देखते २ ही बह जाता है वैसे ही शास्त्र व सतो की बाँधी हुई मर्यादा तोडने से उसका मन देखते २ ही दश इन्द्रियो के विषय रूप दशो दिशा मे भाग जाता है।

दादू सद्गुरु कहै सु शिष करै, सब सिध कारज होइ।
अमर अभय पद पाइये, काल न लागै कोइ ॥ ९७ ॥

यदि शिष्य सद्गुरु के कथनानुसार भली भाति साधन करे तो उसके व्यावहारिक तथा पारमार्थिक सभी कार्य सिद्ध हो जायेगे और अन्त मे वह अमर अभय ब्रह्म स्वरूप को प्राप्त हो जायगा, फिर उसके ऊपर किसी प्रकार भी काल का जोर नही चलेगा।

दादू जे साहिब को भावै नहीं, सो हम तैं जनि[1] होइ।
सद्गुरु लाजै आपणा, साधु न मानैं कोइ ॥ ९८ ॥

जो-जो सकल्प, वचन-व्यवहार और कार्य प्रभु को अच्छे न लगे वे हम से नहीं[1] होने चाहिए। उनके करने से अपने सद्गुरु लज्जित होगे और संत जन भी उन्हे कोई भी प्रकार से अच्छे नही मानेगे।

दादू 'हूं' की ठाहर 'है' कहो, 'तन' की ठाहर 'तूं'।
'री' की ठाहर 'जी' कहो, ज्ञान गुरु का यूं ॥ ९९ ॥

'मै स्वतत्र कर्त्ता हूँ' ऐसा अभिमान निज देह मे मत करो और इस 'हूँ' के स्थान मे 'है' कहो अर्थात् ईश्वर ही सर्व समर्थ है, उसकी सत्ता से ही सब कुछ होता है। ऐसा कहकर अपने परिच्छिन्न अहकार को हटाओ। परिच्छिन्न अहकार का आधार जो सूक्ष्म 'तन' उसके स्थान मे भी 'तू' कहो अर्थात् मन, बुद्धि आदि को सत्ता देने वाला भी तू ईश्वर ही है। 'री' (अविद्या) के स्थान मे भी 'जी' कहो अर्थात् जीव का वास्तविक स्वरूप ब्रह्म ही है, ऐसा कहो। इस प्रकार 'स्थूल, सूक्ष्म और कारण' अविद्या को त्याग कर अद्वैत ब्रह्म का ही चिन्तन करो। गुरु प्रदत्त ज्ञान इस प्रकार ही बताता है। प्रसग कथा—एक गायक दादूजी के पास अपना वाद्य बजाते हुये-हू हू, तन तन, री री, करके स्वर बाँधने लगा था। उसी समय यह साखी कह कर गायक तथा सभी सभासदो को उपदेश किया था।

गुरु-ज्ञान

दादू पंचों स्वादी पंच दिशि, पंचे पंचों बाट।
तब लग कहा न कीजिये, गह गुरु दिखाया घाट ॥ १०० ॥

१००-१०१ मे इन्द्रियो को अन्तर्मुख करने विषयक गुरु का ज्ञान सिखा रहे है—पच विषयो का स्वाद लेने वाली पच ज्ञानेन्द्रिया अपने २ विषय रूप पच दिशा मे जाती है। पाचो एक मार्ग से नही चल सकती। इन पचो के पच विषय रूप पाच ही मार्ग हैं। इनका कहना तब तक स्वीकार नही करना चाहिए जब तक ये गुरु के बताये हुये ब्रह्म-सरोवर के ब्रह्म चिन्तन रूप घाट को ग्रहण न कर ले। ब्रह्म-परायण होने पर तो स्वाभाविक ही अन्तर्मुख रहेगी, निषिद्ध मे नही जा सकेगी।

दादू पंचों एक मत, पंचों पूरे साथ।
पंचों मिल सन्मुख भये, तब पंचों गुरु की बाट ॥ १०१ ॥

गुरु-ज्ञानोपदेश द्वारा पच ज्ञानेन्द्रिया एक मत होने लगी थी, उसी अवस्था मे हमने पाचो को एक साथ ही ब्रह्म स्वरूप मे लगाया था। ऐसा करने से ही पाचो ज्ञानेन्द्रिया, मन, बुद्धि आदि

ब्रह्म-परायण हुये थे। साधको को भी चाहिये कि—जब इन्द्रियादि ब्रह्म-परायण हो तब ही समझे कि इन पच इन्द्रियादि ने गुरु का बताया हुआ साधन मार्ग ग्रहण कर लिया है।

सद्गुरु-विमुख ज्ञान

दादू ताता लोहा तिणे सूं, क्यो कर पकड्या जाइ।
गहन गति सूझै नही, गुरु नही बूझै आइ ॥ १०२ ॥

सद्गुरु-विमुख ज्ञान का परिचय दे रहे है—जैसे तप्त लोहा तृण से किसी प्रकार भी नही पकड़ा जा सकता वैसे ही कामादि से तपा हुआ परम विक्षिप्त मन, तीर्थ, व्रत, दानादिक साधारण साधनो से निग्रह तथा शात नही किया जा सकता। मन को निग्रह करने की अभ्यास वैराग्यादि, आतर साधन रूप गहन गति स्वय को तो बहिर्मुख होने से दीखती नही और गुरु के पास आकर पूछता नही। ऐसे व्यक्ति का मन कैसे निग्रह हो सकता है ?

गुरु-विमुख कसौटी

दादू अवगुण गुण कर मानै गुरु के, सोई शिष्य सुजान।
सद्गुरु अवगुण क्यो करै, समझै सोइ सयान ॥ १०३ ॥

१०३-१०६ मे गुरु-प्रदत्त साधन कष्ट का रहस्य बता रहे है—साधन कराने मे क्रूरता आदि गुरु के दोषो को भी गुण ही मानता है, वही बुद्धिमान् शिष्य कहलाता है। जो ऐसे समझता है कि—सद्गुरु अवगुण कैसे कर सकते है, वही चतुर है।

सोने सेती वैर क्या, मारै घण के घाइ।
दादू काट कलक सब, राखै कंठ लगाइ ॥ १०४ ॥

सोनी का सोने से क्या वैर है ? अर्थात् नही, तो भी सोने पर उसको शुद्ध करने के लिए घण के प्रहार करता है तथा तपा-तपा कर उसका सब मैल दूर करता, और भूषण बना के कठ मे पहनने योग्य बना देता है वैसे ही गुरु भी शिष्य का 'मल, विक्षेप, आवरण' रूप कलक नष्ट करने के लिए उसे साधन रूप कष्ट द्वारा शुद्ध करके ब्रह्म से मिला देता है।

पाणी मांहीं राखिये, कनक कलंक न जाहि।
दादू गुरु के ज्ञान सौं, ताइ अग्नि मे बाहि ॥ १०५ ॥

सोने को चिरकाल तक जल मे रक्खे तो भी उसका मैल दूर न होगा, किन्तु अग्नि मे डालकर तपाने से शीघ्र ही शुद्ध हो जाएगा। वैसे ही यदि शिष्य को निषिद्ध विषय-जल मे ही रक्खा जायगा अर्थात् विषय-भोग की स्वतत्रता दी जायगी तो उसका मल-विक्षेपादि कलक कभी भी दूर न होगा। वह तो गुरु-उपदेश द्वारा विषयो से विरक्त होकर ज्ञान प्राप्त करने से ही दूर होगा।

दादू मांहीं मीठा हेत कर, ऊपर कडवा राखि।
सद्गुरु शिष को सीख दे, सब साधों की साखि ॥ १०६ ॥

सद्गुरु को चाहिए—शिष्य से हृदय मे तो अति मधुर स्नेह करे और वाणी द्वारा कठोर वचन से भय दिखाते हुये शिक्षा देकर साधन मे लगावे। सभी सतो ने ऐसा ही कहा है।

गुरु शिष्य प्रबोध

दादू शिष्य भरोसे आपणै, हो बोली हुसियार।
कहैगा सो बहैगा, हम पहली करैं पुकार ॥ १०७ ॥

१०७-११० मे कहते है कि गुरु की शिक्षा के अनुसार शिष्य को सब व्यवहार करना चाहिए। गुरु कहते है— हे शिष्य ! अपने बल के भरोसे पर ही सावधान होकर वर, शापादि का वचन कहना चाहिए। जो वर, शापादि के वचन कहेगा, वही उसे पूरा करेगा। यह हम पहले ही पुकार-२ कर कहते आ रहे है, पूरा न करने से सतो की निन्दा होती है। यह साखी आमेर मे सूत के बदले पुत्र का वर दे आने पर जगाजी को कही थी। प्रसग कथा - 'दृष्टात-सुधा सिन्धु' तरग ५-५६ मे देखो।

दादू सद्गुरु कहै सु कीजिये, जे तूं शिष्य सुजान।
जहँ लाया तहँ लाग रहु, बूझै कहा अजान ॥ १०८ ॥

हे शिष्य ! यदि तू बुद्धिमान, है तब तो जो सद्गुरु कहे वही साधन भली-भाति कर। हे अजान ! 'इस साधन से मेरा कल्याण होगा या नही' ऐसी शका क्यो करता है ? तू तो श्रद्धापूर्वक गुरु के बताये हुये साधन मे लगा रह, क्योकि गुरु तो कल्याण का ही साधन बताते है।

गुरु पहले मन सौं कहै, पीछे नैन की सैन।
दादू शिष्य समझै नही, कह समझावै बैन ॥ १०९ ॥

उत्तम गुरु प्रथम श्रेणी के साधक को मन की भावना द्वारा ही उपदेश करते है, दूसरी श्रेणी के साधक को नेत्र के सकेत से। तीसरी श्रेणी का साधक नेत्र सकेत से भी नहीं समझता, तव वचन कह कर समझाते है।

कहै लखै सो मानवी, सैन लखै सो साध।
मन की लखै सु देवता, दादू अगम अगाध ॥ ११० ॥

जो गुरु के उपदेश को कहने से समझता है वह मानव है, जो सकेत से समझता है वह साधु हे और जो गुरु के मन की भावना से ही भली-भाति समझ जाता है, वह देवता है और ब्रह्माकार वृत्ति द्वारा शीघ्र ही ब्रह्म को प्राप्त करके अगम अगाध ब्रह्म स्वरूप ही हो जाता है।

कठोरता

दादू कहि-कहि मेरी जीभ रही, सुनि-सुनि तेरे कान।
सतगुरु बपुरा क्या करै, जो चेला मूढ अजान ॥ १११ ॥

शिष्य-बुद्धि की कठोरता दिखा रहे है। गुरु कह रहे है - उपदेश करते २ मेरी वाणी और सुनते २ तेरे श्रवण थक गये है, किन्तु बुद्धिहीन अजान ! अभी तक भी तू नही समझा। यदि ऐसी कठोर बुद्धि वाला शिष्य हो तो बेचारे विचारशील सद्गुरु भी क्या करे, अर्थात् उसे नहीं समझा सकते।

गुरु शिष्य प्रबोध

एक शब्द सब कुछ कह्या, सद्गुरु शिष समझाइ।
जहँ लाया तहँ लागै नहीं, फिर फिर बूझै आइ ॥ ११२ ॥

११२-११४ मे गुरु की शिक्षा मे न चलने वाले शिष्य का परिचय दे रहे है—सद्गुरु ने एक निरजन राम के नाम-शब्द के चिन्तन से इस लोक मे यश, विहित भोग-प्राप्ति, पाप निवृत्ति, मन की स्थिरता आदि मुक्ति पर्यन्त सभी प्राप्त होता है। ऐसा समझा कर नाम चिन्तन करने को कहा और उसी नाम चिन्तन-साधन मे लगाया किन्तु फिर भी दृढ श्रद्धा न होने के कारण जहा लगाया था उसमे तो अन्तर्मुख होकर नही लगता और सशय करके बारबार आकर पूछता है, 'इससे अच्छा अन्य साधन नहीं है क्या ?' आप यही साधन करते है क्या ? यह उचित नही। साधन मे सशय करने वाले व्यक्ति से न तो साधन होता है और न उसका कल्याण ही होता है।

ज्ञान लिया सब सीख सुन, मन का मैल न जाइ।
गुरु विचारा क्या करै, शिष विषय हलाहल खाइ ॥ ११३ ॥

विद्वानो द्वारा सुनकर वेदान्त प्रकरण रूप ज्ञान तो सब याद कर लिया है किन्तु विषयासक्ति दूर न होने के कारण मन का पाप नही हटता। जब शिष्य निषिद्ध विषय रूप महाविष खाता ही रहे, तब उपदेश देने मे अति निपुण विचारशील गुरु भी क्या कर सकता है ? विषयासक्ति त्यागे बिना मन निर्मल नही हो सकता।

सद्गुरु की समझै नहीं, अपने उपजै नाहिं।
तो दादू क्या कीजिये, बुरी व्यथा मन माहि ॥ ११४ ॥

जो सद्गुरु की शिक्षा को मन लगा कर नही समझता और जिसके मन मे विषयाशा त्यागने की भावना उत्पन्न नही होती, तो ऐसे व्यक्ति के कल्याण के लिये क्या किया जाय ? जब तक विषयाशा रूप बुरी व्यथा मन मे है, तब तक कल्याण-मार्ग नही खुलता।

असद्गुरु

गुरु अपग पग पख बिन, शिष शाखा का भार।
दादू खेवट नाव बिन, क्यो उतरेंगे पार ॥ ११५ ॥

११५-११७ मे असद्गुरु का परिचय दे रहे है—जिस गुरु के सत्यासत्य का निर्णय और निष्कामता रूप पैर नही है, वह तो स्वय भी निषिद्ध विषय और सकाम कर्म रूप पृथ्वी के एक देश को छोडकर विहित विषय और निष्काम कर्म रूप दूसरे देश तक नहीं जा सकता, फिर शिष्यो को कैसे ले जायगा ? तथा जिसके ज्ञान और वैराग्य रूप पक्ष नही है, वह ससार-सागर को शीघ्रता

से कैसे लाघ सकता है ? और जिसे भगवान् का नाम-चिन्तन रूप नौका तथा ज्ञानी-गुरु रूप केवट भी नही प्राप्त है तथा शिष्य प्रशिष्य आदि शाखा-प्रशाखाओ का भारी बोझा भी साथ मे है, तो कहो फिर ऐसे गुरु और उनके शिष्य ससार-सागर से कैसे पार उतरेगे ?

दादू संशा जीव का, शिष शाखां का साल।
दोनों को भारी पडी, होगा कौन हवाल ॥ ११६ ॥

जिस गुरु को अपने उद्धार का भी सशय है और शिष्य रूप शाखाओ के असद् आचरण से निन्दा होने से ही क्लेश रहता है, इस कारण गुरु और शिष्य दोनो मे ही वर्तमान मे तो चिरकाल तक रहने वाली अशाति रूप महा विपत्ति पडी हुई है। भविष्य मे ऐसे व्यक्तियो का क्या हाल होगा, यह तो हरि ही जाने।

अंधे अंधा मिल चले, दादू बन्ध कतार।
कूप पडे हम देखतां, अंधे अंधा लार ॥ ११७ ॥

जैसे एक अधे के पीछे कई अधे पक्ति बॉधकर चले तो वे कूप या खड्डे मे ही पडते है वैसे ही गुरु लक्षणो को न जानने वाले विवेक नेत्रो से हीन शिष्य आत्मज्ञान रूपी नेत्रो से हीन गुरु के पीछे पक्तिबद्ध चलते है, धनादि से उसकी सेवा करते है, किन्तु हमारे देखते २ ही ऐसे बहुत-से अज्ञानी गुरु-शिष्य ससार-कूप मे पड़े है, वे मुक्त नही होते।

पर प्रबोध

सोधी नहीं शरीर की, औरों को उपदेश।
दादू अचरज देखिया, ये जायेंगे किस देश ॥ ११८ ॥

११८-११९ मे स्वय ज्ञानहीन होकर भी अन्यो को उपदेश देने वालो का परिचय दे रहे है—जिन्हे स्थूल शरीर की क्रियाओ का भी ठीक-ठीक ज्ञान नही तथा इन्द्रिय अन्त करण रूप सूक्ष्म शरीर भी धर्मानुकूल नही वर्तता, तो भी वे अन्यो को परमार्थ का उपदेश करते हुए देखे जाते है, यह बडे आश्चर्य की बात है। न जाने ऐसे व्यक्ति किस देश को जायेंगे ? मुक्त तो हो नही सकते, दभी होने से उत्तम लोको मे भी नही जा सकते। उनका तो पतन ही होगा।

सोधी नहीं शरीर की, कहैं अगम की बात।
जान[1] कहावें बापुडे, आयुध[2] लीये हाथ ॥ ११९ ॥

जिन्हे अपने सूक्ष्म शरीर का तो ज्ञान ही नही कि यह आगे किस योनि को प्राप्त होगा। स्वय को अपने कल्याण में सशय है तो भी शरीर मे अध्यास रखने वाले ये लोग अपने को ज्ञानी[1] कहलाने के लिए, मन इन्द्रियो के अविषय ब्रह्म की बाते कहते है। 'अहं ब्रह्म' बोलते हुए अन्यो को भी ऐसा ही बोलने का उपदेश करते हैं। उन्होंने अपने नाश के लिए ही यह-कपट विचार रूप शस्त्र[2] अपने अन्त करण रूप हाथ मे लिया है। ऐसे व्यवहार से वे अपना ही नाश कर रहे है।

सत्यासत्य गुरु परीक्षा लक्षण

दादू माया मांहै काढ कर, फिर माया मे दीन्ह ।
दोऊ जन समझै नहीं, एकौ काज न कीन्ह ॥ १२० ॥

१२०-१२८ मे सद्गुरु और असद्गुरु की परीक्षा के लक्षण कह रहे हे—जो गुरु स्त्री-पुत्रादि माया से निकाल कर शिष्य को फिर सप्रदाय, मठादि के जाल रूप माया मे लगा देते है, वे गुरु और शिष्य दोनो ही नही समझते कि ऐसा करने से उन दोनो की ही हानि हे। ऐसे व्यक्ति परमार्थ और व्यवहार रूप दोनो कार्यों मे से एक को भी सिद्ध नही कर पाते।

दादू कहै सो गुरु किस काम का, गह भरमावै आन ।
तत्त्व बतावै निर्मला, सो गुरु साधु सुजान ॥ १२१ ॥

वह गुरु किस काम का है, जो शिष्य को अपने अधीन करके भगवान् से भिन्न ससार-जाल मे फँसा कर अपने स्वार्थ के कार्यों मे ही भ्रमण कराता रहे। गुरु तो वही श्रेष्ठ और बुद्धिमान् माना जाता है जो माया-मल रहित ब्रह्म-तत्त्व को बतावे।

तू मेरा हूँ तेरा, गुरु शिष कीया मंत ।
दोनो भूले जात है, दादू विसरा कंत ॥ १२२ ॥

असद् गुरु-शिष्य मिलकर यह मत्रणा कर लेते है—तू मेरा शिष्य है इसलिए मेरी प्रशसा करके भेट पूजादि से सेवा कराया कर और मै तेरा गुरु हूँ, अत तेरी प्रशसा और भरण-पोषण मै करूँगा। ऐसे गुरु शिष्य दोनो ही अपने प्रभु को विसार कर तथा अपने कर्त्तव्य को भूल कर जन्मादि ससार-चक्र मे ही जाते है।

दुह दुह पीवै ग्वाल गुरु, शिष है छेली गाइ ।
यह अवसर यो ही गया, दादू कह समझाइ ॥ १२३ ॥

जैसे ग्वाल बकरी और गोओ को चराने वन मे जाता है, वह यदि उनका दूध वन मे ही पी लेता है और दूध रहित भी स्वामी को नहीं सँभलाता तो वह दोषी माना जाता है। वैसे ही जो गुरु शिष्यो से भेट तो बारबार लेकर सासारिक सुख भोगता है किन्तु शिष्यो को ईश्वर भजन मे नही लगाता, वह महा दोषी है। ऐसे गुरु शिष्यो का यह मानव शरीर रूप समय व्यर्थ ही चला जाता है।

शिष गोरू गुरु ग्वाल है, रक्षा कर कर लेइ ।
दादू राखै जतन कर, आनि[1] धणी को देइ ॥ १२४ ॥

जो गुरु रूप ग्वाल शिष्य-पशुओ की उत्तम उपदेश द्वारा काम-क्रोधादि रूप सिहादि से रक्षा करके भेट रूप 'कर' लेता है और ज्ञान प्राप्ति पर्यन्त सयमादि यत्नपूर्वक विषय-वासनाओ से रक्षा करते हुये ब्रह्म-चिन्तन मे लगा कर तथा ब्रह्म का साक्षात्कार कराके पुन[2] अभेद रूप से ब्रह्म को ही दे देता है, वही गुरु भेटादि लेने का अधिकारी होता है।

झूठे अधे गुरु घणै, भरम दिढावै आइ ।
दादू साचा गुरु मिलै, जीव ब्रह्म हो जाइ ॥१२५ ॥

अपने कथन के समान न करने वाले, शास्त्र ज्ञान-नेत्रो से हीन घर-घर मे आकर नाना प्रकार के सकाम अनुष्ठानादि द्वारा भ्रम को ही दृढ कराने वाले गुरु तो बहुत मिलते है किन्तु जब वेदार्थ का ज्ञाता और ब्रह्मनिष्ठ सच्चा गुरु मिलता है, तब ही जीव ब्रह्म को प्राप्त होता है।

झूठे अंधे गुरु घणें, बंधे विषय विकार।
दादू साचा गुरु मिले, सन्मुख सिरजनहार ॥ १२६ ॥

कहे कुछ और करे कुछ, ऐसे मिथ्यावादी, विचार-नेत्रो से हीन और विषय-विकारो मे लिपायमान गुरु तो बहुत मिलते है किन्तु जब मन, वचन, कर्म से सच्चा भगवद् भक्त गुरु मिलता है, तब ही जीव को भजनादि साधन बता कर परमात्मा के सन्मुख करता है।

झूंठे अंधे गुरु घणैं, भरम दिढावैं काम।
बंधे माया मोह से, दादू मुख से राम ॥ १२७ ॥

कपटी, कामाध, मायिक-मोह-बन्धन से बधे हुये, केवल लोक दिखावे के लिए मुख से राम-राम कहने वाले और अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए लोगो को भ्रम मे डालकर अपने लौकिक काम कराने वाले असद्गुरु बहुत मिलते है।

झूंठे अंधे गुरु घणैं, भटकैं घर-घर बार।
कारज को सीझै[1] नही, दादू माथै[2] मार ॥ १२८ ॥

थोडी-२ बात के लिए मिथ्या बोलने वाले, लोभाध, सासारिक नाना वस्तुओ की आशा लेकर उनकी याचना के लिए घर-घर के द्वारो पर भटकने वाले, गुरु तो बहुत मिलते है किन्तु उनसे कोई पारमार्थिक कार्य सिद्ध[1] नही होता। अत ऐसे गुरु को दूर से ही त्याग[2] देना चाहिए।

बेखर्च व्यसनी

दादू भक्त कहावैं आपको, भक्ति न जानैं भेव।
सपने हीं समझैं नहीं, कहां बसै गुरुदेव ॥ १२९ ॥

भक्ति, ज्ञानादि धन तो नही है किन्तु उनके उपदेश रूप खर्च का जिन्हे व्यसन है, उनका परिचय दे रहे है—भक्ति के बाह्य चिन्हो के द्वारा नाना प्रकार के प्रपच रच कर अपने को भक्त कहलाने का यत्न करते है और भक्ति के रहस्य को लेश मात्र भी नही जानते हुए भी भक्ति-रहस्य बताने वाले गुरु बनते है। भक्ति से प्राप्त होने वाले परमात्मदेव कहा बसते हैं, उनके क्या लक्षण है, यह तो वे स्वप्न मे भी नही समझते, फिर भी उपदेश करते है।

भ्रम विध्वंस

भरम करम जग बंधिया, पडित दिया भुलाइ।
दादू सतगुरु ना मिले, मारग देइ दिखाइ ॥ १३० ॥

१३०-१३१ मे भ्रम नष्ट कर रहे है—केवल शब्दार्थ जानने वाले विद्वानो ने, वास्तविक बोध न होने के कारण, जगत् को सकाम कर्मों मे लगाकर ब्रह्म प्राप्ति का मार्ग भुला दिया। इससे जगत् के प्राणी सासारिक भोग-वासना बन्धन मे बँध गये। सद्गुरु मिले नही, सद्गुरु मिल जाते तब तो ब्रह्म प्राप्ति का यथार्थ साधन मार्ग बता देते और उसके द्वारा बन्धन कट जाता।

दादू पंथ बतावै पाप का, भरम कर्म विश्वास।
निकट निरजन जे रहै, क्यों न बतावै तास॥ १३१॥

स्वार्थी पडित लोग भ्रमवश अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए शक्ति आदि के पशु-बलि आदि देने का विधान बताकर पाप-कर्मों मे ही दृढ विश्वास कराते है किन्तु जो सर्व-व्यापक होने से अत्यन्त समीप निरजन ब्रह्म है, उसे क्यो नही बताते ? वे जानते ही नहीं या उसे बताने से स्वार्थ सिद्ध नही होता।

विचार

दादू आपा उरझे उरझिया, दीसै सब संसार।
आपा सुरझे सुरझिया, यहु गुरु ज्ञान विचार॥ १३२॥

अपने समान ही अन्य भासे, यह कह रहे है—जो व्यक्ति अपने देहादि अहकार द्वारा तन, धन, विद्यादि मे लिपायमान है, उसे ससार के सभी प्राणी लिपायमान दीखते है। जो अनात्म अहकार से सुलझ जाता है अर्थात् देहादि अहकार से निकल कर 'अह ब्रह्म' इस आकार मे परिणित हो जाता है तब उसे सब ससार सुलझा हुआ अर्थात् ब्रह्म रूप ही भासता है। यही गुरु-ज्ञान के विचार का फल है।

गुरुमुख कसौटी

साधू का अग[1] निर्मला, तामे मल न समाइ।
परम गुरु परगट कहै, तातै दादू ताइ[2]॥ १३३॥

अन्त करण को शुद्ध करने की प्रेरणा कर रहे है—साधक का अन्त करण[1] निर्मल होना चाहिए, उसमे यदि पाप तथा कामादि दोष भरे होगे तो वह ब्रह्म विचार मे प्रवेश नहीं हो सकेगा। इसलिए परम गुरु प्रकट रूप से कहते है कि—पहले साधनो द्वारा तपा कर अन्त करण को शुद्ध[2] कर लेना चाहिए।

चेतावनी

राम नाम गुरु शब्द सू, रे मन पेल भरंम।
निहकरमी से मन मिल्या, दादू काट करंम॥ १३४॥

भ्रम दूर करने से लिये सावधान कर रहे है—अरे साधक! राम नाम चिन्तन से अपने मन को शुद्ध और स्थिर बना कर गुरु के ज्ञान पूर्ण शब्दो के विचार से अज्ञान को हटा। इस प्रकार ही कर्म-बन्धन को काट कर हमारा मन निष्क्रिय ब्रह्म से मिला है।

सूक्ष्म मार्ग

दादू बिन पायन का पंथ है, क्यो कर पहुँचै प्राण।
विकट घाट औघट खरे, माहिं शिखर असमान॥ १३५॥

१३५-१३६ मे ब्रह्म प्राप्ति के हेतु सूक्ष्म साधन-मार्ग का परिचय दे रहे है—ब्रह्म प्राप्ति का हेतु साधन-पथ बाहर के पैरो से चलने योग्य नही है, उसमे तो विवेक और वैराग्य-पैरो से ही

गमन होता है। विवेक-वैराग्य पैर होने पर भी उस पथ मे काम, क्रोधादिक पर्वत खड़े है जिनके प्रभाव रूप शिखर आकाश मे स्थित स्वर्ग तक चले गये है अर्थात् देवता भी जिनके अधीन है। उन कामादि पर्वतो की वेग रूप घाटियाँ बडी विकट है, जिन्हे लाघना कठिन है। ऐसे मार्ग से प्राणी सहज ही परमात्मा के पास कैसे पहुँच सकता है ? इसका उत्तर देते है—

मन ताजी चेतन चढै, ल्यौ की करै लगाम।
शब्द गुरु का ताजणा[1], कोइ पहुंचै साधु सुजान॥ १३६॥

शुद्ध मन-अश्व पर अपने साधन मे सावधान रहने वाला साधक चढे और ब्रह्मकार अखड वृत्ति की लगाम लगावे तथा आत्म-ज्ञान से पूर्ण गुरु-शब्दो का चाबुक[1] बना कर उक्त मार्ग मे चलने से कोई २ बुद्धिमान् साधक सत ब्रह्म-प्राप्ति रूप स्थान मे पहुच सकता है।

पारख लक्षण

साधों सुमिरण सो कह्या, जिहिं सुमिरण आपा भूल।
दादू गह गंभीर गुरु, चेतन आनंद मूल॥ १३७॥

स्मरण के परीक्षक सतो ने जो स्मरण का लक्षण कहा है सो बता रहे है—सतो ने उसी को वास्तविक स्मरण कहा है, जिस निष्काम ब्रह्म स्मरण से साधक अपने देहादिक सभी प्रकार के अहकार को भूल कर, गभीर ज्ञान वाले गुरु के उपदेश से अपने मूल स्थान चेतन आनन्द स्वरूप ब्रह्म ज्ञान को प्राप्त करके उसी का रूप हो जाएगा।

स्वार्थी परमार्थी

दादू आप स्वार्थ सब सगे, प्राण सनेही नांहिं।
प्राण सनेही राम है, कै साधू कलि मांहिं॥ १३८॥

१३८-१४० मे स्वार्थी-परमार्थी का परिचय दे रहे है—इस कलियुग मे सब अपने स्वार्थ के सम्बन्धी है, सब अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए ही प्रेम करते है, प्राणी के हित के लिए कोई भी स्नेह नही करता। प्राणी के कल्याणार्थ निस्वार्थ स्नेही तो एक निरजन राम है या सत है।

सुख का साथी जगत सब, दुख का नाही कोइ।
दुख का साथी सांइयॉ, दादू सद्गुरु होइ॥ १३९॥

सासारिक सुख भोगने के लिए तो जगत् के सभी साथी बन जाते है किन्तु जन्मादि दु.ख मिटाने के लिए कोई भी साथी नही वनता। जन्मादि दु ख मिटाने के लिए तो भगवान् और सद्गुरु ही साथी वनते है।

सगे हमारे साधु हैं, शिर पर सिरजनहार।
दादू सद्गुरु सो सगा, दूजा धंध विकार॥ १४०॥

हमारे सच्चे सवधी तो सतजन ही है, वे सद्-शिक्षा द्वारा हमे सन्मार्ग मे लगाकर पापो से वचाते रहते है और सिर पर सर्वशिरोमणि सृष्टिकर्त्ता प्रभु है, उनसे मिलाने वाले सद्गुरु है, वे ही

सच्चे सम्वन्धी है। दूसरे सासारिक लोग तो अपने स्वार्थ सिद्धि के लिये सकाम कर्मो मे लगाकर तथा विषय विकारो मे डालकर परिणाम मे दु ख ही देते है।

दया निर्वैरता

दादू के दूजा नहीं, एकै आतम राम।
सद्गुरु शिर पर साधु सव, प्रेम भक्ति विश्राम॥ १४१॥

निर्वैरता रूप दया का परिचय दे रहे है—मेरे विचार मे तो अपने आतमस्वरूप राम के विना अन्य कोई भी नही है, सभी आत्म स्वरूप है तव क्रूरता और वैर के पात्र कैसे हो सकते है, किन्तु फिर भी ससार के सव सन्त और सद्गुरु हमारे शिरोमणि है। सत शिक्षा द्वारा जीव को प्रेमाभक्ति देते है, सद्गुरु ब्रह्म-प्राप्ति रूप विश्राम दिलाते है।

उपजनि

दादू सुध बुध आतमा, सद्गुरु परसे आइ।
दादू भृंगी कीट ज्यों, देखत ही हो जाइ॥ १४२॥

१४२-१४५ मे ब्रह्म भावना उत्पत्ति प्रकार वता रहे है—मल विक्षेप रहित विचारवान् जिज्ञासु सद्गुरु से आ मिले तो जैसे भृगी से कीट मिल कर भृगी के शव्द को ध्यान पूर्वक सुनता हुआ भृग ही वन जाता है वैसे ही सद्गुरु शव्दो को ध्यानपूर्वक सुनता है, तव देखते २ सद्गुरु वन जाता है। किन्तु जो कीट और साधक ध्यानपूर्वक नहीं सुनते, वे भृग और सद्गुरु नहीं वनते। कीट तो सूख कर मर जाता है और साधक जन्मादि चक्र मे भ्रमण करता रहता है।

दादू भृंगी कीट ज्यौं, सद्गुरु सेती होइ।
आप सरीखे कर लिये, दूजा नांहीं कोइ॥ १४३॥

जैसे कीट भृगी के शव्द को ध्यान पूर्वक सुनता है तो वह भृग ही वन जाता है वैसे ही जो साधक स्थिर बुद्धि द्वारा सद्गुरु से ज्ञानोपदेश सुनते रहे है उनको सद्गुरुओ ने अपने समान ज्ञानी वना दिया है। उनकी दृष्टि मे ब्रह्म-भिन्न कोई भी नही रहने दिया। वे अपने सहित सव ससार को ब्रह्म रूप ही देखने लगे थे।

दादू कच्छप राखै दृष्टि मे, कूंजो के मन माहि।
सद्गुरु राखै आपणा, दूजा कोई नाहि॥ १४४॥

जैसे कछुवी अपने अडो की रक्षा दृष्टि द्वारा करती है, क्रौच पक्षी हिमालय मे रक्खे अपने अडो की रक्षा उनका मन मे ध्यान रख कर करते है वैसे ही सद्गुरु शिष्यो की कामादि विपत्तियो से अपना ज्ञानोपदेश सुनाकर रक्षा करते है। अत साधक के लिये ससार मे सद्गुरु के समान कोई भी नही है।

बच्चो के माता पिता, दूजा नाही कोइ।
दादू निपजै भाव सू, सद्गुरु के घट होइ॥ १४५॥

जैसे बच्चो को माता-पिता का ही आश्रय होता है, दूसरा कोई भी उनके विश्वास का पात्र नही होता। वैसे ही साधक का भी जब सद्गुरु के शरीर पर अडिग श्रद्धा भाव होता है तब अन्यो के वचनो से बहक कर गुरु के बताये हुये साधन को नही छोडता, उसी भाव के प्रताप से साधक मे ब्रह्म भावना उत्पन्न होती है और उसके द्वारा यह ब्रह्म रूप ही हो जाता है।

बेपरवाही

एकै शब्द अनन्त शिष, जब सद्गुरु बोले।
दादू जडे कपाट सब, दे कूंची खोले॥ १४६ ॥

१४६-१४८ मे सद्गुरु की निश्चिन्तता दिखा रहे है—सद्गुरु को शिष्य बनाने की चिन्ता नही होती किन्तु वे जब अपने मुख से एक शब्द भी बोलते है तो उस शब्दार्थ के प्रताप से अपने आप ही आकर अनन्त शिष्य हो जाते है। जब शिष्य भाव के कारण आते हैं तब सद्गुरु उनके कर्मकपाटो के लगे हुए सशय भ्रम रूप तालो को अपने आत्म-ज्ञान कूची से खोलकर उन्हे कर्म-बन्धन से मुक्त कर देते है।

बिन ही किया होइ सब, सन्मुख सिरजनहार।
दादू कर कर को मरै, शिख शाखां शिर भार॥ १४७ ॥

माला तिलक वस्त्रादिक साम्प्रदायिक चिन्ह देकर शिष्य किये बिना ही सच्चे गुरु के शब्दार्थ के प्रभाव से सब शिष्य बन कर भगवद् भजन द्वारा भगवान के सन्मुख हो जाते है। कौन सच्चा गुरु शिष्य बना-बना कर शिष्य-प्रशिष्य शाखाओ का भार अपने शिर पर लेकर उनके असद् आचरण द्वारा होने वाली निन्दा के दु ख से दुखी हो-हो कर मरेगा ?

सूरज सन्मुख आरसी, पावक किया प्रकास।
दादू सांई साधु बिच, सहजैं निपजै दास॥ १४८ ॥

जैसे कोई मनुष्य आतसी शीशा सूर्य के सामने करता है तब उसमे सूर्य की किरण पड कर अग्नि प्रकट हो जाता है वैसे ही श्रेष्ठ सद्गुरु अपने उपदेश से जब प्राणी को भजन द्वारा भगवान् के सन्मुख करते है तब उस भक्त शिष्य के हृदय मे प्रेमाभक्ति-किरण पडने से अनायास ही ज्ञानाग्नि प्रकट हो जाती है और ज्ञान द्वारा वह ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है।

मन इन्द्रिय निग्रह

दादू पंचों ये परमोध ले, इनहीं को उपदेश।
यहु मन अपणा हाथ कर, तो चेला सब देश॥ १४९ ॥

१४९-१५३ मे मन इन्द्रिय निरोध विषयक विचार कर रहे है—पहले विषयो मे दोष दर्शन द्वारा इन पच ज्ञानेन्द्रियो को समझा कर सयम से निग्रह कर ले, फिर निग्रहीत ज्ञानेन्द्रियो को ही गुरु-उपदेश द्वारा अन्तर्मुख करके यह अपना चचल मन अपने अधीन करे, ऐसा करने से सब देश ही शिष्य हो जाता है।

अमर भये गुरु ज्ञान सौ, केते इहि कलि मांहिं ।
दादू गुरु के ज्ञान विन, केते मर-मर जांहि ॥ १५० ॥

इस कलियुग मे मन इन्द्रियो को निग्रह करके गुरु ज्ञान द्वारा अपने आत्मा स्वरूप ब्रह्म को जानकर कितने ही जिज्ञासु अमर स्वरूप को प्राप्त हो गये है और गुरु-ज्ञान के धारण करे विना कितने ही बारबार मृत्यु को प्राप्त करके स्वर्ग नरकादि लोको मे जाते आते रहते है।

औषधि खाइ न पथ्य रहै, विषम व्याधि क्यों जाइ ।
दादू रोगी बावरा, दोष बेद को लाइ ॥ १५१ ॥

रोगी औषधि तो खाता है किन्तु पथ्य नही रखता, तब उसका भयकर रोग केसे नष्ट हो ? रोग के न जाने मे अपथ्य दोष तो रोगी का है फिर भी यदि रोगी वैद्य को दोष दे कि आप ठीक चिकित्सा नही करते तो समझो रोगी बुद्धिहीन है। वैसे ही जो साधक क्रिया रूप साधन तो करता है किन्तु मन इन्द्रियो को निग्रह नही करता ओर अपने मल, विक्षेप, आवरण नष्ट न होने का दोष गुरु को देता है तो समझो वह साधक बुद्धिहीन ही है।

बैद विथा कहै देख कर, रोगी रहै रिसाइ ।
मन मांहीं लीये रहै, दादू व्याधि न जाइ ॥ १५२ ॥

गुरु-वैद्य साधक-रोगी का विषयासक्ति रोग देख कर कहते है—विषय-वासना त्याग कर मन इन्द्रिय निग्रह करो, यह सुन कर साधक रोगी अपने मन मे क्रोध करके ही रह जाता है, मुख से तो कुछ भी नही बोलता, किन्तु विषय वासना को भी नही त्यागता। इसलिए उसका जन्म-मरण-रोग भी नही नष्ट होता।

दादू बैद विचारा क्या करै, रोगी रहै न साच ।
खाटा मीठा चरपरा, माँगै मेरा वाच[1] ॥ १५३ ॥

जब शिष्य-रोगी विषय-वासना परित्याग-पथ्य मे पक्का नही रहता और कहता है, मेरी जीभ[1] तो बच्चे के समान नाना प्रकार के विषय भोग खट्टी-मीठी वस्तुये मागती है तो फिर बताओ, इस अवस्था मे विचार-शील गुरु-वैद्य भी क्या कर सकता है ?

गुरु-उपदेश

दुर्लभ दरशन साधु का, दुर्लभ गुरु उपदेश।
दुर्लभ करबा कठिन है, दुर्लभ परस अलेख ॥ १५४ ॥

१५४-१५७ मे गुरु उपदेश विषयक विचार कर रहे है—सच्चे सत का दर्शन और सच्चे गुरु का उपदेश प्राप्त होना कठिन ही है। भाग्यवश उपदेश मिल जाये तो भी उसके अनुसार योगादि साधन करना अति कठिन है। साधन हो जाय तो भी लेख-बद्ध न होने वाले परब्रह्म से मिलकर सदा अद्वैत स्थिति मे रहना अत्यन्त ही कठिन है।

गुरु मंत्र (गायत्री मंत्र)

दादू अविचल[1] मंत्र, अमर[2] मंत्र, अखै[3]मंत्र, अभय[4] मंत्र, राम[5] मंत्र, निजसार[6]। सजीवन[7] मंत्र, सवीरज[8] मंत्र, सुन्दर[9] मन्त्र, शिरोमणि[10] मंत्र, निर्मल[11] मंत्र, निराकार[12] ॥ अलख[13] मंत्र, अकल[14] मंत्र, अगाध[15] मंत्र, अपार[16] मंत्र, अनन्त[17] मंत्र, राया[18]। नूर[19] मंत्र, तेज[20] मंत्र, ज्योति[21] मंत्र, प्रकाश[22] मंत्र, परम[23] मंत्र, पाया[24]॥ उपदेश दीक्षा, दादू गुरु राया॥१५५॥

दादू—दा=ज्ञान भक्ति आदि दैवी गुणो के प्रदाता। दू=अज्ञानादिक सभी दोषो के नाशक।

१ **अविचल मंत्र**=जिज्ञासुओ को ही अविचल ब्रह्म का उपदेश किया जाता है। जो साधक अविचल २ जपता है, वह अविचल ब्रह्म स्वरूप को ही प्राप्त हो जाता है।

२ **अमर मंत्र**=सभी ससार मरण-शील है किन्तु इसमे गुप्त रूप से स्थित परब्रह्म मृत्यु आदि का भी शासक और अमर है। जो साधक अमर-अमर जपता है, वह भी अमर ब्रह्म को प्राप्त होता है।

३ **अखै मंत्र**=ब्रह्म कभी क्षय नही होता, सदा एक रस रहता है, इसलिए अक्षय है। अक्षय २ जपने से जापक अक्षय हो जाता है।

४ **अभय मंत्र**=सभी प्रकार के भय रहित होने से ब्रह्म अभय है। इसे जपने से निर्भय ब्रह्म को प्राप्त होता है।

५ **राम मंत्र**=दूध मे घृत के समान ससार के प्रत्येक अणु मे रमा हुआ होने से ब्रह्म राम है। जो राम-राम जपता है, वह भी रमने वाला राम ही हो जाता है।

६ **निज सार**=निज स्वरूप और विश्व का सार तत्त्व होने से ब्रह्म निजसार है। जो निजसार मत्र को जपता है, वह निजस्वरूप को प्राप्त होकर विश्व का सार हो जाता है।

७ **सजीवन मंत्र**=सदा जीवित रहने से ब्रह्म सजीवन है। जो इसे जपता है, वह भी सजीवन ब्रह्म को प्राप्त होता है।

८ **सवीरज मंत्र**=निरतिशय बल वाला होने से ब्रह्म सवीर्य है। जो इसे जपता है, वह भी निरतिशय बल वाले ब्रह्म स्वरूप को पाता है।

९ **सुन्दर मंत्र**=जिसकी सुन्दरता से असुन्दर शरीरादि भी सुन्दर भासते है वही ब्रह्म सुन्दर है। इसे जपने वाला भी सुन्दर ब्रह्म को प्राप्त होता है।

१० **शिरोमणि मंत्र**=सर्वोपरि होने से ब्रह्म शिरोमणि है। जो शिरोमणि मत्र को जपता है वह भी शिरोमणि हो जाता है।

११ **निर्मल मंत्र**=अविद्यादि मल रहित होने से ब्रह्म निर्मल है। जो निर्मल मत्र का जप करता है, वह भी निर्मल ब्रह्म को प्राप्त होता है।

१२ **निराकार**=आकार रहित होने से ब्रह्म निराकार है। निराकार मत्र का जप करने वाला भी निराकार ब्रह्म को प्राप्त होता हे।

१३ **अलख मंत्र**=मन इन्द्रियो का अविषय होने से ब्रह्म अलख है। जो इसे जपता है, वह भी अलख ब्रह्म को प्राप्त होता है।

१४ **अकल मंत्र**=सभी प्रकार की कलाओ से रहित होने से ब्रह्म अकल है। जो अकल मत्र को जपता है, वह भी अकल ब्रह्म को प्राप्त होता है।

१५ **अगाध मत्र**=शास्त्र व सतो द्वारा भी थाह न पाने से ब्रह्म अगाध है। जो अगाध मत्र जपता है, वह भी अगाध ब्रह्म को प्राप्त होता हे।

१६ **अपार मत्र**=किसी भी प्रकार ब्रह्म का पार नहीं आता, अत ब्रह्म अपार हे। जो अपार मत्र जपता है, वह अपार ब्रह्म ही हो जाता है।

१७ **अनन्त मंत्र**=उत्पत्ति, नाशादि रहित होने से ब्रह्म अनन्त है। अनन्त मत्र का जापक भी अनन्त ब्रह्म को प्राप्त होता है।

१८ **राया**=सबका स्वामी होने से ब्रह्म राजा है। जो राया मत्र का जाप करता है, वह भी विश्व के राजा ब्रह्म को प्राप्त होता है।

१९ **नूर मत्र**=ब्रह्म आत्मस्वरूप होने से नूर है। जो नूर मत्र जपता है, वह आत्मस्वरूप ब्रह्म को प्राप्त होता है।

२० **तेज मंत्र**=निरतिशय प्रभाव सम्पन्न होने से ब्रह्म तेजरूप है। जो तेज मत्र का जाप करता है, वह भी निरतिशय प्रभाव रूप ब्रह्म को पाता है।

२१ **ज्योति मंत्र**=सूर्यादि ज्योतियो को भी ज्योति प्रदाता होने से ब्रह्म ज्योति स्वरूप है। ज्योति मत्र का जापक भी ज्योतिस्वरूप ब्रह्म को प्राप्त होता है।

२२ **प्रकाश मंत्र**=ज्ञान रूप होने से ब्रह्म प्रकाश रूप है। प्रकाश मत्र का जापक प्रकाश रूप ब्रह्म को प्राप्त होता है।

२३ **परम मत्र**=सबसे उत्कृष्ट होने से ब्रह्म परम है। जो परम मत्र का जाप करता है, वह भी सबसे उत्कृष्ट ब्रह्म को प्राप्त करता है।

२४ **पाया**=व्यापक और आत्मस्वरूप होने से ब्रह्म साधको को सभी स्थानो मे प्राप्त हुआ है, अत आत्मस्वरूप से पाया हुआ ही है। जो पाया मत्र का जाप करता है, वह भी उसे आत्मस्वरूप से प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार जो साधक गुरु से प्राप्त उपदेश द्वारा जिस भाव से ब्रह्म को जपता है उसी भाव से उसे प्राप्त हो जाता है।

उपदेश दीक्षा, दादू गुरु राया = उत्तम गुरु का दीक्षा रूप उपदेश ऐसा ही होता है।

अविचल मत्र जपै निशिवासर, अविचलन आरती गावै ।
अविचल इष्ट रहै शिर ऊपर, अविचलन ही पद पावै ॥

जो साधक उक्त अविचल मत्र को अर्थ भावना करते हुये जपेंगे, वे कल्याण को प्राप्त होगे।

दादू सब ही गुरु किये, पशु पंखी बन राइ।
तीन लोक गुण पंच सौं, सब ही मांहिं खुदाइ ॥१५६ ॥

पशु, पक्षी, वन-पक्ति आदि सभी उस महान् ईश्वर के रचे हुये है। तीन गुण और पच भूतो से आदि सभी मे ईश्वर निमित्त कारण चेतन तथा उपादान कारण माया रूप से विद्यमान है और कारण ब्रह्म ही उपास्य है, कार्य नही। अत उक्त २४ मत्रो द्वारा बताई हुई पद्धति के कारण ब्रह्म के लक्ष्यार्थ शुद्ध ब्रह्म की ही उपासना करनी चाहिए।

जो पहली सतगुरु कह्या, सो नैनहुँ देख्या आइ।
अरस परस मिल एक रस, दादू रहे समाइ ॥ १५७ ॥

इति श्री गुरुदेव का अग समाप्त ॥ १ ॥ सा १५७।

जो सद्गुरु की प्राप्ति के समय परब्रह्म का स्वरूप अपने उपदेश द्वारा सद्गुरु ने बताया था, वही स्वरूप साधन द्वारा समाधि मे आकर हमने अपने ज्ञान नेत्रो से अभेद रूप से देखा है और अब आपस मे अन्तराय रहित एक रस मिल कर उसी मे समा रहे है।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका श्री गुरुदेव का अग समाप्त ॥ १ ॥

अथ स्मरण का अंग २

गुरु से प्राप्त नाम के स्मरण विषयक विचार करने को स्मरण अग कहने मे प्रवृत्त हुये प्रथम मगल कर रहे है—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत:।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत. ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक स्मरण साधना के विघ्नो से पार होकर स्मरण द्वारा परब्रह्म को प्राप्त होता है उन निरजन राम, सद्गुरु और सब सतो को हम अनेक प्रणाम करते है।

एकै अक्षर पीव का, सोई सत कर जाणि।
राम नाम सद्गुरु कह्या, दादू सो परवाणि ॥ २ ॥

राम नाम स्मरण-साधन की प्रामाणिकता बता रहे है—सजातीय, विजातीय, स्वगत भेद रहित, अविनाशी प्रभु का राम नाम स्मरण साधन सद्गुरु का कहा हुआ है, अत उसी को सच्चा साधन जानकर करो। शास्त्र द्वारा भी वही प्रामाणिक सिद्ध होता है।

पहली श्रवण द्वितीय रसन[1], तृतीय हिरदै गाइ।
चतुर्थी चिन्तन भया, तब रोम-रोम ल्यौ लाइ ॥ ३ ॥

नाम स्मरण-साधन की पद्धति बता रहे है—नाम माहात्म्य सुनना, नाम-स्मरण साधना की प्रथमावस्था है। माहात्म्य सुनकर साधक साधारण जप मे प्रवृत्त होता है। दूसरे को न सुनाई दे, ऐसे जिह्वा[1] से जपना दूसरी अवस्था है, इसे ही उपाशु जाप कहते है। हृदय मे चिन्तन करना तृतीयावस्था है, यही मानस जप कहलाता है। नाम मे अखड वृत्ति लगाने पर जब रोम-रोम से

चिन्तन होने लगता है तब वह चतुर्थावस्था कहलाती है। इसमे दश इन्द्रिये और चतुष्टय अन्त करण ये चौदह सब प्रकार भगवत् परायण हो जाते है। इस चौथी अवस्था का अन्तिम परिणाम जीव ब्रह्म की एकता ही होता है। इस प्रकार नाम-स्मरण साधना द्वारा सतो ने परब्रह्म को प्राप्त किया है। (हस्त-लिखित ग्रन्थो मे चतुर्थी के स्थान मे चतुर्दशी पाठ भी मिलता है।)

मन प्रबोध

दादू नीका नाम है, तीन लोक तत सार।
रात दिवस रटबौ करो, रे मन इहै विचार ॥ ४ ॥

४-९ मे मन को नाम स्मरण का उपदेश दे रहे है—स्वर्ग, मृत्यु, पातालादि सभी विश्व का सार तत्त्व जो परमात्मा है, उसकी प्राप्ति के सभी साधनो मे नाम स्मरण ही अति श्रेष्ठ और सुगम साधन है। अत हे मन ! इस मनुष्य शरीर मे रहते हुए विचार पूर्वक कामादि दोषो को त्याग कर निरन्तर नाम-जप किया कर।

दादू नीका नाम है, हरि हिरदै न विसार।
मूरति मन मांहीं बसै, श्वासै श्वास सँभार ॥ ५ ॥

नाम-स्मरण मे देश कालादि नियम न होने से यह साधन सबके लिए अच्छा है। हृदय से हरी को न भूल, हरि की मूर्ति आत्म रूप से हृदय मे स्थित है। श्वास-प्रश्वास के साथ स्मरण करते हुए हृदयस्थ हरि को देखने का यत्न कर।

श्वासैं श्वास सँभालतां, इक दिन मिल है आइ।
सुमिरण पैंडा सहज का, सतगुरु दिया बताइ ॥ ६ ॥

श्वास-प्रश्वास के साथ स्मरण करने से एक दिन अवश्य प्रकट रूप से हृदय मे आकर प्रभु मिलेगे। ब्रह्म प्राप्ति रूप सहजावस्था की प्राप्ति का मार्ग भी स्मरण ही है, यह हमारे सद्गुरु ने प्रथम ही काकरिया तालाब पर बता दिया था।

दादू नीका नाम है, सो तू हिरदै राखि।
पाखंड प्रपच दूर कर, सुन साधू जन की साखि ॥ ७ ॥

यज्ञ-योगादि साधनो के साधक को पतन का भय रहता है, नाम-साधना के साधक को नही। इसलिए नाम-स्मरण उत्तम साधन है। सतो की साधन विषयक साखिये सुनकर उनके विचार द्वारा पाखड प्रपच को दूर करके तू वह नाम-स्मरण ही निरन्तर हृदय मे रख।

दादू नीका नाम है, आप कहै समझाइ।
और आरंभ सब छाड़ि दे, राम नाम ल्यौ लाइ ॥ ८ ॥

स्वय भगवान् भी बारबार अपने भक्तो को समझा-समझा कर कहते रहते है कि—"मेरे नाम चिन्तन द्वारा मेरे परायण रहने वाला भक्त ही मुझे प्रिय होता है।" इस भगवद् वचन से भी नाम-

स्मरण परम श्रेष्ठ साधन सिद्ध होता है। इसलिए जन्म-मरण रूप चक्र मे फिराने वाले निषिद्ध कर्म, सकाम शुभकर्म आदि अन्य सभी आरभो को त्याग कर राम नाम-स्मरण मे ही अखड वृत्ति लगा।

राम भजन का सोच क्या, करतां होइ सो होइ।
दादू राम सँभालिये, फिर न बूझिये कोइ॥ ९॥

राम भजन के फल का, क्या विचार करना है? भजन करने से जो होता है वही होगा अर्थात् राम ही प्राप्त होगा। राम भजन द्वारा सब ससार मे राम को ही देख, सब को राम रूप देखने का अभ्यास हो जाने पर फिर कोई भी प्रश्न पूछने की आवश्यकता नही रह जाती है।

नाम चेतावनी

राम तुम्हारे नाम बिन, जे मुख निकसै और।
तो इस अपराधी जीव को, तीन लोक कित ठौर॥ १०॥

१०-११ मे नाम-स्मरणार्थ सावधान कर रहे है—राम! यदि आपके नाम से भिन्न पर-निन्दादि शब्द इस प्राणी के मुख से निकलते है तो यह बड़ा अपराध है। ऐसे अपराधी जीव को तीनो लोको मे भटकते रहने पर भी सुख का स्थान कहां है? वह तो दुखी ही रहेगा।

छिन-छिन राम सँभालतां, जे जिव जाय तो जाय।
आतम के आधार को, नाहीं आन उपाय॥ ११॥

क्षण-क्षण राम का स्मरण करो, यदि स्मरण करते समय प्राण प्रयाण का समय भी आ जाय तो भी कोई चिन्ता नही क्योकि राम-स्मरण से भिन्न अन्य कोई भी ऐसा सुगम साधन नही है, जिसका आश्रय लेकर सर्व-साधारण आत्म-कल्याण करने मे समर्थ हो सके।

स्मरण माहात्म्य

एक महूरत मन रहै, नाम निरंजन पास।
दादू तब ही देखतां, सकल करम का नाश॥ १२॥

१२-१३ मे नाम का माहात्म्य बता रहे है—यदि शुद्ध ब्रह्म के नाम मे मन अभेद भाव से एक क्षण भी स्थिर हो जाय, तो तत्काल ही सपूर्ण सचित कर्मों का नाश हो जाता है।

सहजैं ही सब होइगा, गुण इन्द्री का नाश।
दादू राम सँभालतां, कटैं कर्म के पाश[1]॥ १३॥

राम-नाम का निरतर स्मरण करने से, निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति में बाधक त्रिगुण और उनके कार्य, अन्तःकरण इन्द्रियो के सब विकारो का नाश अनायास ही हो जायगा तथा ज्ञान द्वारा कर्म के बन्धन[1] कट कर मुक्त हो जाएगा।

नाम चेतावनी

एक राम के नाम बिन, जिव की जलन न जाइ।
दादू केते पचि मुए, करि करि बहुत उपाइ॥ १४॥

१४-१५ मे नाम स्मरणार्थ सावधान कर रहे है—त्रिविध भेद शून्य निर्गुण राम के नाम-स्मरण बिना अन्य उपायो से जीव के त्रिविध ताप नष्ट नहीं होते। अनेक सकामी साधक यज्ञ व्रतादिक बहुत-से उपाय करते-करते मृत्यु को प्राप्त हो गये है किन्तु उन्हे अखड ब्रह्मानन्द प्राप्त नही हो सका।

दादू एक राम की टेक गहि, दूजा सहज सुभाइ ।
राम नाम छाड़ै नहीं, दूजा आवै जाइ ॥ १५ ॥

तुम तो निष्काम भाव से केवल निर्गुण राम की उपासना का ही दृढ निश्चय करो, लोक-सेवा, योग-क्षेम और विचारादि दूसरे साधन उसके अग रूप होकर स्वाभाविक ही होते रहेंगे। राम नाम साधक को नामी की प्राप्ति कराये विना मध्य मे नही त्यागता और नाम स्मरण विहीन यज्ञव्रतादि करने वाले अन्य सकामी साधक जन्म-मरण रूप ससार मे ही आते जाते रहते है।

नाम अगाधता

दादू राम अगाध है, परिमित नांही पार ।
अवरण वरण न जाणिये, दादू नाम अधार ॥ १६ ॥

१६-१८ मे नाम की अपारता का परिचय देते हुए नाम स्मरण की प्रेरणा कर रहे है—निरजन राम का स्वरूप अथाह है, उसका कोई परिमाण नही, वह प्रमाण-जन्य ज्ञान का अविपय और रूपातीत है। वर्णों के समूह शव्दो से उसका साक्षात्कार नही होता। उस निरजन राम का साक्षात्कार तो उसी के नाम स्मरण रूप निदिध्यासन का आश्रय लेने पर ही होता है।

दादू राम अगाध है, अविगत[1] लखै न कोइ ।
निर्गुण सहगुण का कहै, नाम विलम्ब न होइ ॥ १७ ॥

निरजन राम का स्वरूप अपार है, उस मन इन्द्रियो के अविषय[1] का साक्षात्कार यज्ञ, व्रतादि बाह्य साधनो से तथा विवाद से कोई भी नहीं कर सकता। निर्गुण तथा सगुण बोधक शव्दो का आश्रय लेकर उसके विषय मे क्या कहा जा सकता है, वह तो वाणी का अविषय है। यदि उसका साक्षात्कार करना है तो निष्काम भाव से नाम स्मरण मे विलब नही होना चाहिए।

दादू राम अगाध है, बेहद लख्या न जाइ ।
आदि अंत नहिं जाणिये, नाम निरंतर गाइ ॥ १८ ॥

निरजन राम का स्वरूप अथाह है, असीम है, नेत्रादि इन्द्रियो का अविषय है। उसका आदि अन्त किसी भी प्रकार नहीं जाना जा सकता। तो भी निष्काम भाव से प्रेम पूर्वक निरतर नाम स्मरण करने से उसका साक्षात्कार हो जाता है, अत निरतर नाम स्मरण करो।

अद्वैत ब्रह्म

दादू राम अगाध है, अकल अगोचर एक।
दादू नाम विलंबिये, साधू कहैं अनेक ॥ १९ ॥

१९-२१ मे ब्रह्म की अद्वैतता दिखा रहे है—निरजन राम का स्वरूप अपार, निराकार, इन्द्रियातीत, त्रिविध भेद शून्य अद्वैत है। उसके साक्षात्कार के लिए, उसी के नाम-स्मरण का आश्रय लेना चाहिए, यही अनेक सत कहते आ रहे है।

दादू एकै अलह राम है, समर्थ सांई सोइ।
मैदे के पकवान सब, खातां होइ सु होइ ॥ २० ॥

अल्लाह, राम, समर्थ और साई ये सब नाम उसी एक अद्वैत ब्रह्म के ही है और जैसे एक ही मैदा के अनेक पक्वान्न बनते है किन्तु सभी के खाने से क्षुधा निवृत्ति रूप अन्तिम फल सबका एक ही होता है, वैसे ही उक्त नामो का निष्काम भाव से स्मरण करने पर ब्रह्म प्राप्ति रूप एक ही फल होता है।

सहगुण निर्गुण ह्वै रहे, जैसा है तैसा लीन।
हरि सुमिरण ल्यौ लाइये, का जाणौं का कीन ॥ २१ ॥

ब्रह्म निर्गुण होने पर भी भक्त-भावना से सगुण भी भास जाता है। जिसके हृदय मे जैसा भाव हो, उसी भाव से उस ब्रह्म मे लीन होना चाहिए। उसकी प्राप्ति का सुगम साधन उसी का स्मरण है। अत हरि स्मरण मे ही अपनी वृत्ति स्थित करो। सत और सत्-शास्त्रो ने तो यही कहा है किन्तु फिर भी मै नही जानता कि—यह सगुण निर्गुण विषयक विवाद आप लोग क्यो कर रहे है ? यह साखी साभर मे दो साधको को समझाने के लिये कही थी, प्रसग कथा-दृष्टात सुधा-सिन्धु तरग ८/१८७ मे देखो।

नाम चित्त आवे सो लेय

दादू सिरजनहार के, केते नाम अनन्त।
चित आवै सो लीजिये, यौं साधू सुमिरै संत ॥ २२ ॥

२२-२३ मे किस नाम का और किस समय स्मरण करना चाहिए, इस प्रश्न पर कह रहे है-परमात्मा के कितने ही नाम है, उनका कोई अन्त नही और निष्काम भाव से स्मरण करने पर सभी का फल भगवान की प्राप्ति होता है। अत जिस नाम से भी अपना मन चेतन-स्वरूप मे आकर स्थिर हो जाय, उसी नाम का स्मरण करना चाहिए। सिद्ध, सत तथा साधक ऐसे ही स्मरण करते है।

दादू जिन प्राण पिंड हम कौं दिया, अतर सेवैं ताहि।
जे आवै औसाण[1] शिर, सोई नाम संबाहि ॥ २३ ॥

जिन परम कृपालु परमात्मा ने हमको यह शरीर दिया है और शरीर की स्थिरता के लिए प्राण प्रदान किया है, हम तो आन्तर वृत्ति से निरन्तर ही उसका भजन करते रहते है। यदि तुमसे ऐसा न

हो सके तो तुम्हे जो भी अवसर[1] मिलता है, उसी अवसर मे ब्रह्म मे वृत्ति स्थिर करने वाला जो भी नाम तुम्हे याद आ जाय, उसी का स्मरण करो।

चेतावनी

दादू ऐसा कौण अभागिया, कछू दिढावै और।
नाम बिना पग धरन कूं, कहो कहां है ठौर॥ २४॥

२४-२५ मे नाम की दृढ़तार्थ सावधान कर रहे है—भगवत् प्राप्ति के सभी साधनो मे नाम की प्रधानता रहती है। फिर ऐसा कौन मदभागी है, जो भगवद् नाम से रहित साधन का उपदेश देकर अनुचित बात दृढ़ करायेगा? नाम के बिना तो नामी के धाम मे पैर रखने को भी स्थान कहा मिलता है।

दादू निमष न न्यारा कीजिये, अंतर तैं उर नाम।
कोटि पतित पावन भये, केवल कहता राम॥ २५॥

प्रभु के नाम को अपने हृदय के भीतर से एक निमेष भी अलग नही करना चाहिए। केवल राम-नाम का स्मरण करके ही अमित पतित पवित्र होकर जन्मादि ससार से मुक्त हो गये है।

मन प्रबोध

दादू जे तै अब जाण्यां नहीं, राम नाम निज सार।
फिर पीछै पछिताहिगा, रे मन मूढ गँवार॥ २६॥

२६-२९ मे मन को नाम-स्मरण विषयक शिक्षा दे रहे हैं—रे मूढ मन! यदि तूने मनुष्य देह पाकर भी अपने कल्याण के साधन राम-नाम रूप परम तत्त्व को नही पहचाना तो तू निरा अनजान है और इस भूल के कारण अन्त मे तुझे पश्चात्ताप ही करना होगा।

दादू राम सँभालि ले, जब लग सुखी शरीर।
फिर पीछै पछिताहिगा, जब तन मन धरै न धीर॥ २७॥

जब तक शरीर को रोगो ने तथा जरावस्था ने नहीं घेरा है, तब तक सुख की स्थिति मे ही राम-भजन को अपना लेना चाहिए। जब रोगादि से शरीर और चिन्तादि से मन अधीर हो जायगा तब कुछ भी न हो सकेगा, पश्चात्ताप ही होगा।

दुख दरिया संसार है, सुख का सागर राम।
सुख सागर चलि जाइये, दादू तज बेकाम॥ २८॥

ससार दु ख-समुद्र है और राम सुख-सिन्धु है। अत ससार मे पटकने वाले दु ख-प्रद व्यर्थ कार्यों को त्याग कर नाम स्मरण द्वारा सुख-सागर राम मे ही लय लगाना चाहिए।

दरिया यहु संसार है, तामें राम नाम निज नाव ।
दादू ढील न कीजिये, यहु औसर यहु डाव ॥ २९ ॥

यद्यपि यह ससार दु.ख-समुद्र है तदपि इससे पार होने को सभी के पास राम-नाम रूप नौका अपनी ही है, इसका किराया नही देना पड़ता। इस मनुष्य शरीर रूप स्वर्ण अवसर मे भले-बुरे का विचार करना रूप दाँव भी अच्छा आ गया है। अत 'विचार करके शीघ्रातिशीघ्र राम-भजन को अपना लेना चाहिए।

स्मरण नाम नि:संशय

मेरे संशय को नहीं, जीवण-मरण का राम ।
सपनैं ही जनि[1] बीसरै, मुख हिरदै हरिनाम ॥ ३० ॥

अपना स्मरण-प्रेम बता रहे है—राम ! मेरे हृदय मे ऐसा कोई सशय नही है कि—मेरा शरीर चिरकाल तक न रह सका तो मेरा कार्य अधूरा रह जायगा। चाहे यह शरीर चिरकाल तक रहे वा इसी क्षण गिर जाय, इसकी कोई चिन्ता नही। मेरी तो इच्छा है कि—हरिनाम को मुख और हृदय से स्वप्न के समय भी मै न[1] भूल सकू।

स्मरण नाम विरह

दादू दुखिया तब लगै, जब लग नाम न लेहि ।
तब ही पावन परम सुख, मेरी जीवनि येहि ॥ ३१ ॥

स्मरण के अभाव से क्लेश होता है, प्राणी तब तक ही दुखी है जब तक निष्काम भाव से निरतर स्मरण नही करता। जब अपने मन को एकाग्र करके निष्काम भाव से निरतर स्मरण करता है, तब पवित्र होकर परमसुख रूप ब्रह्म को प्राप्त होता है। हमारा तो जीवन ही ब्रह्म चिन्तन है।

स्मरण नाम पारख लक्षण

कछू न कहावै आपकौं, सांई कूं सेवै ।
दादू दूजा छाडि सब, नाम निज लेवै ॥ ३२ ॥

वास्तविक नाम स्मरण की परीक्षा का लक्षण कह रहे है—जब साधक अपने को भक्त, योगी आदि कहलाने का प्रयत्न न करके तथा मायिक प्रपच को हृदय से हटा करके सत्य, ब्रह्म, राम आदि निज नाम स्मरण करते हुये भगवद् भक्ति करता है, तब उसका स्मरण वास्तविक स्मरण समझना चाहिए।

स्मरण नाम नि:संशय

जे चित चहुँटे राम सौं, सुमिरण मन लागै ।
दादू आतम जीव का, संशय सब भागै ॥ ३३ ॥

नाम स्मरण नि सशय करना है, यह कह रहे है- यदि नाम स्मरण मे मन लगा कर निरतर राम के वास्तविक स्वरूप मे चित्त-वृत्ति स्थिर हो जाय तो जीव के आत्म विषयक-आत्मा जड है वा

चेतन है, एक है वा अनेक है, ब्रह्म से भिन्न है वा अभिन्न है, इत्यादिक सभी सशय नष्ट हो जाते है।

स्मरण नाम चेतावनी

दादू पिव का नाम ले, तौ मिटै शिर साल।
घडी महूरत चालणां, कैसी आवै काल्हि ॥ ३४ ॥

नाम स्मरण के लिए सावधान कर रहे है—यदि परमात्मा का नाम स्मरण निष्काम भाव से निरतर किया जाय तो प्राणी के जन्मादि दु ख निश्चय नाश हो जाते है। अत नाम स्मरण के लिए भविष्य काल का निर्णय न करके तुरन्त भजन मे लग जाना चाहिए। क्योकि हमे तो यह भी ज्ञात नही है कि अगली घडी वा अगले क्षण मे हमारा शरीर रहेगा या नही, फिर आगामी दिन तक जीवित रह सकेगे, ऐसी तो आशा ही कहा है ?

स्मरण विना श्वास न ले

दादू औसर जीव तै, कह्या न केवल राम।
अंतकाल हम कहेंगे, जम वैरी सौ काम ॥ ३५ ॥

३५-३६ मे प्रति श्वास स्मरण की आज्ञा दे रहे है—हे प्राणी ! तूने मनुष्य शरीर पाकर भी युवावस्था के स्वर्ण अवसर मे निष्काम भाव से अद्वैत राम के नाम का स्मरण नही किया। सतो के उपदेश करने पर भी कहता रहा—"अतिम वृद्धावस्था मे हम स्मरण कर लेगे।" किन्तु याद रख उस अतिम अवस्था मे जब तेरे पर शत्रु यम का आक्रमण होगा, तब तू कुछ भी नही कर सकेगा। अत अभी से प्रति श्वास हरि स्मरण कर।

दादू ऐसे मँहगे मोल का, एक श्वास जे जाइ।
चौदह लोक समान सो, काहे रेत मिलाइ ॥ ३६ ॥

तेरा एक श्वास भी जो जारहा है वह चौदह लोको के मूल्य के समान है। प्रजा-पति कश्यप को चौदह लोको का राज्य देने पर भी एक श्वास नही मिला था, यह प्रसिद्ध है। ऐसे बहु-मूल्य श्वासो को तू विषय-भोग रूप रेत मे क्यो मिला रहा है ?

अमोल श्वास

सोइ श्वास सुजा नर, साई सेती लाइ।
करि साटा सिरजनहार सू, महँगे मोल बिकाइ ॥ ३७ ॥

भजन मे लगने वाले श्वास ही सार्थक श्वास जानो, यह कह रहे है—वही नर बुद्धिमान् है जो अपने श्वासो को प्रभु-भजन मे लगाता है। अत हे प्राणी ! तू अपने श्वासो को हरि-स्मरण मे लगाकर बहुमूल्य बना ले, फिर उनके बदले मे परमात्मा से उसके वास्तविक स्वरूप का साक्षात्कार कर ले।

व्यर्थ जीवन

जतन करै नहिं जीव का, तन मन पवना फेरि।
दादू महँगे मोल का, द्वै दोवटी[1] इक सेर ॥ ३८ ॥

व्यर्थ जीवन का परिचय दे रहे है—जो अपने तन, मन और श्वासो को सासारिक विषयासक्ति से बदल कर, तन को दीन दुखियो की सहायता और सत सेवा मे, श्वासो को भगवद् भजन मे, मन को आत्म-विचार मे लगा कर अपने जीव के उद्धार का प्रयत्न नही करते, वे इस बहुमूल्य जीवन को दो धोती[1] तथा एक सेर अन्न के लिए व्यर्थ खो देते है अर्थात् उनका जीवन व्यर्थ है।

सफल जीवन

दादू रावत राजा राम का, कदे न विसारी नॉव ।
आतम राम सँभालिये, तो सुबस काया गॉव ॥ ३९ ॥

सफल जीवन का परिचय दे रहे है—प्राणी तू राजाओ के भी राजा निरजन राम का नाम कभी न भूलना। नाम चिन्तन से शुद्ध और स्थिर चित्त होकर ज्ञान द्वारा आत्मा तथा राम का अभेद निश्चय करेगा, तब ही शरीर-ग्राम मे राग द्वेषादि से रहित होकर आनद से रह सकेगा। ऐसा जीवन ही सफल कहा जाता है।

निरंतर स्मरण

दादू अहनिश सदा शरीर में, हरि चिंतत दिन जाइ ।
प्रेम मगन लै लीन मन, अन्तरगति ल्यौ लाइ ॥ ४० ॥

४०-४५ मे निरतर स्मरण विषयक, विचार कर रहे है—दिन रात निरतर आंतर वृत्ति से हरि भजन करते हुये जिनके दिन जाते है, वे ही सत मत से उत्तम माने जाते है। अत प्रभु-प्रेम मे निमग्न होकर अन्तर्मुख वृत्ति द्वारा निरतर हरि स्मरण करते हुये मन को परमात्मा मे ही लीन करना चाहिए।

निमष[1] एक न्यारा नहीं, तन मन मंझि समाइ।
एक अंग लागा रहै, ताको काल न खाइ ॥ ४१ ॥

एक पल[1] भी निरजन राम के स्मरण से अलग न रहना चाहिए। उसका नाम तन के रोम-रोम मे ओर मन मे समाया हुआ रहना चाहिए। इस प्रकार निरतर स्मरण द्वारा त्रिविध भेद शून्य अपने प्रिय प्रभु मे ही जो लगा रहता है, वह काल का ग्रास न होकर व्रह्म-स्वरूप ही हो जाता है।

दादू पिजर पिंड शरीर का, सुवटा[1] सहज समाइ ।
रमता सेती रम रहै, विमल विमल यश गाइ ॥ ४२ ॥

अविनाशी सौं एक है, निमष न इत उत जाइ ।
वहुत बिलाई क्या करैं, जे हरि[1] हरि शब्द सुनाइ ॥ ४३ ॥

यदि शुक[1] पक्षी का शरीर पिंजरे मे रहे तो बहुत बिल्लिया भी उसके शरीर का क्या कर सकती है ? वैसे ही यदि साधक का मन निरतर स्मरण द्वारा सहजावस्था मे जाकर रमता राम से रमण करता रहे और उस पवित्र प्रभु का पवित्र यश-गान करता रहे, इस लोक और परलोक के भोगो मे एक निमेष मात्र भी न जाय, निरतर हरि-हरि शब्द उच्चारण करता हुआ अविनाशी ब्रह्म से मिलकर उससे अभेद हो जाय, तब एक मृत्यु तो क्या, बहुत मृत्युएँ भी उसका क्या कर सकती है ?

दादू जहाँ रहू तहाँ राम सौ, भावै कंदलि[1] जाइ ।
भावै गिरि परबत रहूं, भावै गृह बसाइ ॥ ४४ ॥
भावै जाइ जलहरि[2] रहूं, भावै शीश नवाइ ।
जहाँ तहाँ हरि नाम सौ, हिरदै हेत लगाइ ॥ ४५ ॥

हे राम ! मेरी यह प्रार्थना है—मै जहाँ भी रहू वहा आपके चिन्तन मे ही लगा रहू । चाहे मुझे गुफा[1] मे वा गिरि शिखर पर वा पर्वत के मध्य भाग मे वा घर मे वा जल-प्राय-प्रदेश[2] मे ही रहना पड़े वा नीचे शिर और ऊपर पैर करके भी झूलना पडे वा और भी जहा तहा नाना क्लेश उठाने पड़े तो भी कोई चिन्ता नही, किन्तु ऐसी कृपा करे कि मेरे हृदय का प्रेम निरन्तर आपके नाम मे ही लगा रहे ।

मन प्रबोध

दादू राम कहे सब रहत है, नख शिख सकल शरीर ।
राम कहे बिन जात है, समझि मनवां बीर ॥ ४६ ॥

४६-४९ मे मन को स्मरण विषयक उपदेश कह रहे है—भैया मन ! तू मेरी यह बात निश्चय पूर्वक समझ ले—राम का स्मरण करने पर नख से शिखा पर्यन्त सब शरीर के इन्द्रियादि कुमार्ग मे जाने से रुक जाते है और बिना स्मरण करे विधि का अतिक्रमण करके विषयो मे दौड़ जाते है ।

दादू राम कहे सब रहत है, लाहा मूल सहेत ।
राम कहे बिन जात है, मूरख मनवा चेत ॥ ४७ ॥

निष्काम भाव से राम का स्मरण करने पर प्राणी का आयु रूप मूलधन विषय विकारो मे नष्ट होने से रुक जाता है और स्मरण द्वारा अहकार नष्ट होने से उस आयु से होने वाला शुभ कर्म का फल रूप लाभ भी नष्ट नहीं होता । राम के स्मरण बिना उक्त दोनो ही व्यर्थ नष्ट हो जाते है । अत मूर्ख मन ! सावधान होकर राम का भजन कर ।

दादू राम कहे सब रहत है, आदि अत लौं सोइ ।
राम कहे बिन जात है, यहु मन बहुरि न होइ ॥ ४८ ॥

राम-भजन करने से राम जन्म से मरण पर्यन्त सर्वकाल मे सहायक होकर साथ रहते है और राम-स्मरण न करने से यह प्राणी नाना दु खो मे पड़ता है । अत हे मन ! यह मानव शरीर का स्वर्ण अवसर पुन शीघ्र न मिलेगा, सचेत हो ।

दादू राम कहे सब रहत है, जीव ब्रह्म की लार ।
राम कहे बिन जात है, रे मन हो हुशियार ॥ ४९ ॥

निष्काम भाव से राम-भजन करने से आत्मज्ञान होकर सभी कर्मों का प्रवाह रुक जाता है और जीव ब्रह्म-भाव को प्राप्त हो जाता है। राम-भजन बिना प्राणी कर्मो के प्रवाह मे बहता ही रहता है। अत: हे मन ! सावधान होकर शीघ्र निष्काम-भाव से राम-भजन मे ही लग जा।

परोपकार

हरि भज साफल जीवना, पर उपकार समाइ।
दादू मरणा तहां भला, जहां पशु पंखी खाइ ॥ ५० ॥

जीवन-सफलता का हेतु बता रहे है—हरि भजन करते हुए परोपकार मे लगने से ही जीवन की सफलता है। परोपकार मे तो यहा तक कर्त्तव्य है कि—देह त्याग भी ऐसे स्थान मे किया जाय, जहा शरीर को पशु-पक्षी भक्षण करके तृप्त हो सके।

स्मरण

दादू राम शब्द मुख ले रहै, पीछै लागा जाइ।
मनसा वाचा कर्मना, तिहिं तत सहज समाइ ॥ ५१ ॥

५१-५२ मे स्मरण का फल कह रहे है-राम शब्द के स्मरण को ही निज कल्याण का मुख्य साधन समझ कर धारण करना चाहिए और निरतर स्मरण करते रहना चाहिए। मन, वचन, कर्म से निरंतर स्मरण करने पर स्मरण-कर्त्ता अनायास ही उसी राम-तत्त्व मे समा जाता है।

दादू रचि मचि लागे नाम सौं, राते माते होइ।
देखेंगे दीदार को, सुख पावेंगे सोइ ॥ ५२ ॥

जो अपने मन को राम-नाम मे अभिन्न करके नाम-स्मरण मे लगे है और राम मे अनुरक्त होकर राम-प्रेम से मतवाले हुये रहते है, वे ब्रह्म का साक्षात्कार करके ब्रह्मानन्द को प्राप्त कर सकेगे।

चेतावनी

दादू सांई सेवैं सब भले, बुरा न कहिये कोइ।
सारौं माँहीं सो बुरा, जिस घट नाम न होइ ॥ ५३ ॥

५३-५७ मे स्मरणार्थ सचेत कर रहे है—जो भगवद्-भजन मे सलग्न है, वे चाहे किसी भी जाति के हो, उत्तम ही माने जाते है। उन्हे शास्त्र तथा सत कोई भी अधम नही बताते। जिसके हृदय मे हरिनाम चिन्तन नही होता, वही ससार के सम्पूर्ण प्राणियो मे अधम है।

दादू जियरा राम बिन, दुखिया इहिं संसार।
उपजै विनशै खप मरै, सुख दुख बारंबार ॥ ५४ ॥

राम-भजन बिना अज्ञानी प्राणी सुख के लिए नाना कार्य करते हुए भी दुखी ही रहते है, कर्माधीन उत्पन्न होते है और भोगो की प्राप्ति के लिए पच-पचकर क्षीण होते है। इस प्रकार बारबार सासारिक सुख दु खो को प्राप्त करते हुये इस ससार मे जन्मते मरते रहते है।

राम नाम रुचि ऊपजै, लेवै हित चित लाइ।
दादू सोई जीयरा, काहे जमपुरि जाइ॥ ५५॥

यदि प्राणी के हृदय मे राम-नाम-स्मरण की इच्छा प्रकट हो जाय और प्रेम पूर्वक मन से अखड स्मरण को ही अपना ले, तो वही जीव जो बारबार यम-यातना भोगता था, यमपुरी मे नहीं जा सकता, मुक्त हो जायगा।

दादू नीकी बरिया[1] आय करि, राम जप लीन्हा।
आतम साधन सोधि कर, कारज भल कीन्हा॥ ५६॥

जिस समय मे मनुज देह प्राप्त करके आत्म कल्याण का साधन राम-भजन विचार-पूर्वक निष्काम भाव से करते हुये भगवत्प्राप्ति रूप उत्तम कार्य सिद्ध हो जाय, वही श्रेष्ठ समय[1] है।

दादूजी से किसी ने पूछा था—आपका अवतार तो सतयुग के किसी उत्तम समय मे होना चाहिए था। उसका उत्तर इस साखी मे दिया है।

दादू अगम वस्तु पानै पडी, राखी मझि छिपाइ।
छिन छिन सोइ संभालिये, मत वै बीसर जाइ॥ ५७॥

मन इन्द्रियो के अविषय ब्रह्म को प्राप्त कराने वाली राम-नाम-स्मरण रूप वस्तु शास्त्र व सतो की कृपा से तुम्हारे हाथ लगी है। इससे प्राप्त होने वाली दिव्य शक्तियो को भीतर ही छिपा कर रक्खो, प्रकट करने से तुम्हारे भजन मे विघ्न खडा हो जायगा। प्रतिक्षण भजन करते रहो और सदा सचेत रहो, कही प्रमादवश हृदय से हरि-स्मरण हट न जाय।

स्मरण महिमा नाम माहात्म्य

दादू उज्ज्वल निर्मला, हरि रँग राता होइ।
काहे दादू पचि मरै, पानी सेती धोइ॥ ५८॥

५८-६४ मे स्मरण महिमा और नाम माहात्म्य कह रहे है-हरि स्मरण रूप रग मे अनुरक्त होने से ही मन निर्मल होकर ज्ञान-प्रकाश को प्राप्त होता है। अत साधक केवल तीर्थों के जल से ही शरीर को धो-धोकर परिश्रम न करे, हरि-स्मरण अवश्य करे।

शरीर सरोवर राम जल, माँहीं सयम सार।
दादू सहजै सब गये, मन के मैल विकार॥ ५९॥

शरीर ही तीर्थ सरोवर है, राम-नाम-स्मरण ही उसमे जल है, विश्व के सार तत्त्व ब्रह्म मे मन का सयम करना ही स्नान है। उक्त तीर्थ-स्नान से नाना तीर्थों मे भटके बिना सहज ही हमारे मन के सपूर्ण पाप और विकार नष्ट हो गये है।

दादू राम नाम जलं कृत्वा, स्नानं सदा जित: ।
तन मन आत्म निर्मलं, पंच-भू पापं गत: ॥ ६० ॥

राम-नाम को ही जल समझकर, निरंतर इन्द्रिय-दमन पूर्वक राम-नाम-स्मरण रूप स्नान करो। ऐसा करने से ही पच विषयो की आसक्ति से होने वाले पाप नष्ट होकर साधक के तन, मन, बुद्धि आदि निर्मल होते है।

दादू उत्तम इन्द्री निग्रहं, मुच्यते माया मन: ।
परम पुरुष पुरातनं, चिन्तयते सदा तन: ॥ ६१ ॥

उत्तम साधक इन्द्रिय-निग्रह पूर्वक निरतर पुरातन, परम पुरुष प्रभु का चिन्तन करते है, इसी से उनका मन मायिक प्रपचो से मुक्त हो जाता है।

दादू सब जग विष भरा, निर्विष विरला कोइ।
सोई निर्विष होयगा, जाके नाम निरंजन होइ ॥ ६२ ॥

संपूर्ण ससारी प्राणियो के हृदय भोग-वासना-विष से भरे हुये है। विषय-विष से रहित तो कोई विरला सत ही दीख पड़ता है। आगे भी जिसके हृदय मे निरजन नाम का निरतर चिन्तन होता रहेगा, वही भोगाशा-विष से रहित हो सकेगा।

दादू निर्विष नाम सौं, तन मन सहजैं होइ।
राम निरोगा करेगा, दूजा नाहीं कोइ ॥ ६३ ॥

राम-नाम-स्मरण से मन विषयवासना-विष से, ज्ञानेन्द्रिय अमर्यादा-विष से, कर्मेन्द्रिय व्यर्थ चेष्टा-विष से अनायास ही मुक्त हो जाते है। सपूर्ण आधि-व्याधियो का अत्यन्ताभाव निरंजन राम का नाम-स्मरण ही कर सकेगा। सर्वथा निरोग होने का ऐसा सुगम और श्रेष्ठ उपाय अन्य कोई भी नही है। अत. नाम-स्मरण निरतर करना चाहिए।

ब्रह्म भक्ति जब ऊपजै, तब माया भक्ति विलाइ।
दादू निर्मल मल गया, ज्यूं रवि तिमिर नशाइ ॥ ६४ ॥

जैसे सूर्योदय होने पर अधकार नष्ट हो जाता है, वैसे ही प्राणी के हृदय मे परब्रह्म की भक्ति उत्पन्न होने पर मायिक प्रेम नष्ट हो जाता है और सपूर्ण विकार नष्ट होकर मन परम निर्मल बन जाता है।

मन हरि भांवरि

दादू विषय विकार सौं, जब लग मन राता।
तब लग चित्त न आवही, त्रिभुवनपति दाता ॥ ६५ ॥

६५-६७ मे मन को हरि से दूर करने वाले भ्रामक का परिचय दे रहे है - जब तक मन विषय-विकारो मे अनुरक्त होकर इन्द्रियो के साथ भ्रमण कर रहा है, तब तक मुक्ति प्रदाता त्रिलोकी के स्वामी परमेश्वर का ध्यान चित्त मे नही आता।

दादू का जाणौं कब होइगा, हरि सुमिरण इकतार।
का जाणौं कब छाडि है, यहु मन विषय विकार॥ ६६॥

कुछ पता नही लगता कि—यह चचल मन विषय-विकारो मे भ्रमण करना छोड़ कर कब निरतर हरि-स्मरण परायण हो सकेगा ?

है सो सुमिरण होता नहीं, नहीं सु कीजै काम।
दादू यहु तन यौं गया, क्यों करि पइये राम॥ ६७॥

जो अस्ति, भाति, प्रिय रूप से सर्वत्र व्याप्त सत्य ब्रह्म है, उसका तो मन से स्मरण हो नहीं रहा है और जो असत्य मायिक प्रपच भ्रमवश भास रहा है उसके विषयो को प्राप्त करने के लिए यह मूर्ख मन ऐसे कपट कोपादि कार्य निरतर कर रहा है जो श्रेष्ठ नही है। इस मानव देह का समय उक्त प्रकार से व्यर्थ ही चला गया। इस प्रकार के मन के भ्रमण से राम कैसे मिल सकते है ?

स्मरण महिमा नाम माहात्म्य

दादू राम नाम निज मोहनी, जिन मोहे करतार।
सुर नर शंकर मुनि जना, ब्रह्मा सृष्टि विचार॥ ६८॥

६८-७० मे स्मरण महिमा और नाम माहात्म्य कह रहे है—मन को प्रभु पर मोहित करने के लिए राम-नाम-स्मरण रूप मोहनी-शक्ति सभी प्राणियो की निजी है और यह शक्ति मनुष्य, मुनिजन, देवता, शकर और सृष्टि-कार्य विचार मे सलग्न ब्रह्मा के सहित परमात्मा को भी मोहित करती है।

दादू राम नाम निज औषधी, काटै कोटि विकार।
विषम व्याधि तैं ऊबरे, काया कचन सार॥ ६९॥

राम-नाम-स्मरण औषधी सभी प्राणियो की निजी है और सविधि सेवन से अनन्त कामादि विकारो को नष्ट करके प्राणी के सूक्ष्म शरीर को कचन के समान शुद्ध कर देती है तथा विश्व के सार-तत्त्व ब्रह्म मे मन को स्थिर करके जन्म-मरणादि भयकर व्याधि से मुक्त कर देती है।

निर्विकार निज[1] नाम ले, जीवन इहै उपाइ।
दादू कृत्रिम काल है, ताके निकट न जाइ॥ ७०॥

मन को विषयाशादि विकारो से रहित करके निरतर ही निर्विकार ब्रह्म के राम आदि स्वरूप-भूत आत्मा के नामो का चिन्तन करना चाहिए। इस ससार मे अमर-जीवन प्राप्ति का सबसे सुगम और श्रेष्ठ यह एक ही उपाय है। ब्रह्म भिन्न माया कृत बनावटी ग्राम-देवादि उपास्य तो काल रूप है, उनके समीप भी नही जाना चाहिए।

(१ नाम तीन प्रकार के होते है—कर्मज, जैसे—मधुसूदनादि, गुणज, जैसे—दयालु आदि और निज, जो गुण कर्म आदि से रहित स्वरूप भूत हो, जैसे—ब्रह्म, रामादि)

स्मरण

मन पवना गहि सुरति सौं, दादू पावै स्वाद।
सुमिरण मांहीं सुख घणा, छाडि देहु बकवाद॥ ७१॥

७१-७६ मे स्मरण विषयक विचार दिखा रहे है—मन, प्राण और बुद्धि वृत्ति का निरोध करके स्मरण करने से भजनानन्द प्राप्त होता है। एकाग्रता-पूर्वक स्मरण से विषयातीत अति आनद मिलता है, यह हमे अनुभूत है। अत. व्यर्थ के वाद-विवादो को त्याग कर एकाग्रता-पूर्वक निरतर हरि स्मरण ही करना चाहिए।

नाम सपीडा लीजिये, प्रेम भक्ति गुण गाइ।
दादू सुमिरण प्रीति सौं, हेत सहित ल्यौ लाइ॥ ७२॥

विरह-वेदना सहित ही राम-नाम उच्चारण करना चाहिए और प्रेमाभक्ति सहित राम के गुण-गान करने चाहिए। प्रीति से स्मरण करके अनन्य भक्ति युक्त चित्त-वृत्ति राम मे ही स्थिर करो।

प्राण कमल मुख राम कहि, मन पवना मुख राम।
दादू सुरति मुख राम कहि, ब्रह्म शून्य निज ठाम॥ ७३॥

मुख्यता करके प्राण सचार के साथ २ राम नाम मे लगा रहे और हृदय कमल मे भी राम नाम ध्वनि होती रहे, मुख से भी राम नाम उच्चारण होता रहे, मन से भी नाम स्मरण ही होता रहे, बुद्धि वृत्ति मे भी मुख्यता करके राम नाम स्मरण विषयक विचार ही हो। इस प्रकार करते रहने से वृत्ति विकार-रहित होकर विकार-शून्य ब्रह्म मे स्थिर हो जाती है और जीवात्मा ब्रह्म रूप निज-धाम को प्राप्त हो जाता है।

दादू कहतां सुनतां राम कहि, लेतां देतां राम।
खातां पीतां राम कहि, आत्म कमल विश्राम॥ ७४॥

कहते, सुनते, लेते,देते, खाते, पीते आदि सभी कार्यों के साथ सर्वकाल राम का स्मरण होता रहता है, तभी जीवात्मा के हृदय कमल को शाति मिलती है।

ज्यों जल पैसे दूध में, ज्यों पाणी में लौंण।
ऐसे आतम राम सौं, मन हठ साधै कौंण॥ ७५॥

जैसे दूध मे जल और जल मे नमक मिल जाता है, वैसे ही स्मरण द्वारा अपने मन को आत्माराम मे लय करने का हठ कौन करता है ? ऐसा साधक कोई विरला ही होता है।

दादू राम नाम में पैसि कर, राम नाम ल्यौ लाइ।
यहु इकंत त्रय लोक में, अनत काहे को जाइ॥ ७६॥

राम नाम-स्मरण रूप गुफा मे प्रवेश करके तथा वृत्ति को सब ओर से हटा कर एक राम-नाम मे ही लगाओ। तीनो लोको मे यह स्मरण-गुहा ही अति एकान्त है, इसे छोड़कर अन्य स्थानो मे क्यो भटकते हो ?

यह साखी आमेर के भँवरे कूप मे बैठने पर पडित जगजीवनजी को कही थी। प्रसग कथा दृष्टात सु सि त ११/१४९ मे देखो।

मध्य

ना घर भला, न वन भला, जहां नहीं निज नाम।
दादू उनमनि मन रहै, भला तु[1] सोई ठाम ॥ ७७ ॥

मध्य मार्ग के साधनार्थ उत्तम स्थान घर है वा वन इस प्रश्न का उत्तर दे रहे है—न तो घर अच्छा और न वह वन ही, जहा निवास करते हुये निज प्रभु का नाम हृदय मे न रहे। उत्तम तो[1] वही स्थान है जहा पर रहते हुये निरजन राम के स्वरूप मे चित्त वृत्ति की लय रूप उनमनी अवस्था बनी रहे।

नाम माहात्म्य

दादू निर्गुण नाम मयी, हृदय भाव प्रवर्ततं ।
भरमं करमं किल्विष[1], माया मोहं कंपित ॥ ७८ ॥
कालं जालं सोचितं, भयानक यम-किंकरं[2] ।
हर्षं मुदितं सद्गुरु, दादू अविगत दर्शनं ॥ ७९ ॥

निर्गुण ब्रह्म नामार्थ स्वरूप ही है, जब हृदय नामार्थ मे भावपूर्वक प्रवृत्त होता है तब भ्रम, कर्म, कलिविष पाप[1] और मायिक मोह कपायमान होकर भागने लगते है। काल के जाल को धारण करने वाले भयानक यमदूत[2] चिन्ता मे पड जाते है। हृदय को हर्ष होता है, सद्गुरु प्रसन्न होते है और मन इन्द्रियो के अविषय ब्रह्म का साक्षात्कार होता है।

दादू सब सुख स्वर्ग पयाल[1] के, तोल तराजू बाहि[2]।
हरि सुख एक पलक का, ता सम कह्या न जाहि ॥ ८० ॥

स्वर्ग पाताल[1] आदि के सपूर्ण सुखो को और एक क्षण के भजनानन्द को विचार-तुला मे रखकर[2] तोले तो स्वर्गादि के सपूर्ण सुख भी हरि-स्मरण सुख के समान न हो सकते।

स्मरण नाम पारख लक्षण

दादू राम नाम सब को कहै, कहिबे बहुत विवेक।
एक अनेको फिर मिले, एक समाना एक ॥ ८१ ॥

८१-८२ मे नाम-स्मरण-कर्त्ता की परीक्षा का लक्षण कह रहे है—यद्यपि राम-नाम का स्मरण करते तो सभी है किन्तु स्मरण करने मे बड़ा रहस्य है। एक साधक तो स्मरण करके भी सकाम होने से पुन अनेक विषयो मे जा मिलता है और एक विवेक-पूर्वक निष्काम भाव से स्मरण करने से अन्त मे त्रिविध भेद-शून्य एक ब्रह्म मे ही मिलता है।

दादू अपणी अपणी हद्द में, सब को लेवै नांउँ।
जे लागे बेहद्द सौं, तिनकी मैं बलि जाउँ ॥ ८२ ॥

सभी प्राणी अपने-अपने समाज, धर्म, समयादि की सीमा मे बँधे रहकर तथा परमात्मा को भी स्वपक्षानुकूल ससीम मान कर नाम-स्मरण करते है, वे भी ठीक ही है। किन्तु मै तो उन्ही महापुरुषो की बलिहारी जाता हूँ जो सभी प्रकार से निष्पक्ष रहते हुये निरतर असीम परमात्मा के नाम-स्मरण मे लगे है।

स्मरण नाम अगाधता

कौण पटंतर[1] दीजिये, दूजा नाहीं कोइ।
राम सरीखा राम है, सुमिर्‌यां ही सुख होइ ॥ ८३ ॥

८३-८४ मे नाम स्मरण के फल की अपारता बता रहे है—राम-नाम-स्मरण के समान[1] अन्य साधन कोई भी नही है, अत उसे किसकी उपमा दी जाय, और उसके नामी राम के समान भी राम ही है। राम-नाम-स्मरण करने पर ही अखडानन्द रूप राम प्राप्त होता है।

अपनी जाणै आप गति, और न जाणै कोइ।
सुमिर सुमिर रस पीजिये, दादू आनंद होइ ॥ ८४ ॥

अपने नाम-स्मरण की महिमा का विस्तार तो स्वय राम ही जानता है, अन्य कोई भी नही जान सकता। स्मरण-महिमा व फल की थाह लेने की अभिलाषा त्याग कर प्रतिक्षण नाम-स्मरण करते हुये भगवत्-प्रेम-रस का पान करते रहना चाहिए, तभी ब्रह्मानन्द प्राप्त होगा।

करणी बिना कथणी

दादू सब ही वेद पुराण पढि, नेटि[1] नाम निर्धार।
सब कुछ इन्हीं मांहिं है, क्या करिये विस्तार ॥ ८५ ॥

कर्त्तव्य-रहित कथन की व्यर्थता बता रहे है—सपूर्ण वेद पुराणादि के पढ लेने पर भी अन्तत[1] यही निर्णय होता है कि—भगवत् नाम-स्मरण ही कर्त्तव्य है। इन भगवत् नामो के स्मरण से सकामियो को अर्थ, धर्मादि और निष्कामियो को चित्त निर्मलता से मुक्ति पर्यन्त सभी कुछ प्राप्त हो जाता है। अतः केवल कथन करने के विस्तार मे ही न पड़कर नाम-स्मरण भी करना चाहिए।

नाम अगाधता

पढ-पढ थाके पंडिता, किनहुँ न पाया पार।
कथ-कथ थाके मुनिजना, दादू नाम अधार ॥ ८६ ॥

८६-८७ मे नाम महिमा की अपारता कह रहे है—पडित जन वेदादि शास्त्रो का अध्ययन और मुनिजन भगवत्-महिमा का कथन करते २ थक गये किन्तु कोई भी उक्त साधनो द्वारा निरजन ब्रह्म को प्राप्त न कर सका। भगवत् प्राप्ति के लिए अन्त में सभी को नाम का आधार लेना पडता है।

निगम[1] हि अगम[1] विचारिये, तऊ पार न पावै।
तातैं सेवक क्या करै, सुमिरण ल्यौ लावे ॥ ८७ ॥

वेद-शास्त्र[1] द्वारा विचार करने पर भी माया से परे अगम ब्रह्म का स्वरूप नाम-स्मरण रूप निदिध्यासन के बिना प्राप्त नही हो सकता। इसलिए ब्रह्म-साक्षात्कार की इच्छावाला साधक

वेदादि शास्त्रो का अत्यधिक विचार करके क्या करेगा ? उसे निरतर नाम-स्मरण मे ही अपनी वृत्ति लगानी चाहिए।

कथनी बिना करणी।

दादू अलिफ[1] एक अल्लाह का, जे पढ जाणै कोइ ।
कुरान कतेबा इल्म[2] सब, पढकर पूरा होइ ॥ ८८ ॥

यदि त्रिविध भेद-शून्य ब्रह्म के वाचक[1] एक अक्षर को पढ़ने की युक्ति जो कोई जानता है तो वह वेद, कुरानादि सपूर्ण किताबो के ज्ञान[2] के सार को पढ़कर पूर्ण ब्रह्म को प्राप्त करके ब्रह्म-रूप हो जाता है।

दादू यहु तन पिंजरा, माँही मन सूवा ।
एक नाम अल्लाह का, पढ हाफिज[1] हूवा ॥ ८९ ॥

हमारा यह शरीर ही पिजरा है, मन ही इसमे शुक पक्षी है, वह त्रिविध भेद-शून्य परब्रह्म के नाम को पढकर कुरान कठस्थ करने वाले[1] तुम्हारे शुक पक्षी के समान हो गया है। अब हमे तुम्हारे शुक पक्षी की आवश्यकता नही रही।

अकबर बादशाह अपने कुरान कठस्थ वाले तोते को महाराज की भेट करने लगा था तब उसे ही यह साखी कही थी। प्रसग कथा दृ सु सि त ११/१२ मे देखो।

स्मरण नाम पारख लक्षण

नाम लिया तब जाणिये, जे तन मन रहै समाइ।
आदि अत मधि एक रस, कबहूं भूल न जाइ॥ ९० ॥

नाम स्मरण करने वाले की परीक्षा का लक्षण कह रहे है-जब स्मरण करते २ नाम शरीर के रोम २ मे तथा मन की प्रत्येक स्थिति मे समा जाय और त्रिकाल मे एक रस रहने वाले ब्रह्म को भूल कर ससारिक विषयो मे कभी न जाय, तब जानना चाहिए कि इस व्यक्ति ने वास्तविक नाम-स्मरण किया है।

विरह पतिव्रत

दादू एकै दशा अनन्य की, दूजी दशा न जाइ ।
आपा भूलै आन सब, एकै रहै समाइ ॥ ९१ ॥

अनन्य भक्त की निष्ठा कह रहे है—भगवद् वियोगी अनन्य भक्त की भगवत्-परायणता एक ही अवस्था मे रहती है। उसका मन भगवद्-विमुखता रूप दूसरी अवस्था मे नही जाता। वह अपने शरीरादि अहकार को तथा अन्य सपूर्ण मायिक प्रपच को भूल कर एक परब्रह्म के चिन्तन मे ही समाया हुआ रहता है।

स्मरण विनती

दादू पीवै एक रस, बिसरि जाइ सब और ।
अविगत यहु गति कीजिये, मन राखो इहि ठौर ॥ ९२ ॥

९२-९३ मे निरतर स्मरणार्थ विनय कर रहे है—हे मन इन्द्रियो के अविषय प्रभो ! हम सम्पूर्ण मायिक प्रपच को भूल कर निरतर आपके अद्वैत स्वरूप-चिन्तन-रस का ही पान करते रहे। यह रस-पान रूप गति हमारी निरतर बढती ही रहे तथा हमारे मन को निरतर इस अद्वैत स्थिति-स्थान मे ही रखने की कृपा करे।

आतम चेतन कीजिये, प्रेम रस पीवै ।
दादू भूलै देह गुण, ऐसैं जन जीवै ॥ ९३ ॥

विषयो से विकल बुद्धि को विषय-विमुख करके इस प्रकार सावधान करे, जिससे वह शरीर मे आसक्ति आदि देह-गुणो को भूलकर निरतर प्रेम-पूर्वक आपके स्मरण-रस का ही पान करती रहे। उक्त प्रकार से ही हम आपके जन, जीवन धारण कर सके ऐसा अनुग्रह आप हम पर अवश्य करे।

स्मरण नाम अगाध

कहि कहि केते थाके दादू, सुनि सुनि कहु क्या लेइ ।
लौंण मिलै गल पाणियॉ, ता सम चित यौं देइ ॥ ९४ ॥

९४-९५ मे नाम-स्मरण की महिमा अपार है, यह कह रहे है—कितने ही पडित ब्रह्म-विषयक प्रवचन करते २ थक गये किन्तु कथन मात्र से ही उन्हे ब्रह्म प्राप्त न हो सका। तब तुम ही कहो—केवल बारबार सुनने मात्र से ही वह कैसे मिल सकेगा ? वह तो जैसे जल मे नमक गलकर मिलता है, वैसे ही नाम-स्मरण द्वारा मन को उसमे मिलाने से ही प्राप्त होगा।

दादू हरि रस पीवतां, रती विलंब न लाइ ।
बारंबार सँभालिये, मत वै बीसरि जाइ ॥ ९५ ॥

हरि-नाम-स्मरण रस के पान करने मे किचित् मात्र भी विलब न करके अभी से आरभ कर देना चाहिए और प्रतिक्षण स्मरण करते हुए अति सावधान रहना चाहिए कि कही चित्त से स्मरण हट न जाय।

स्मरण नाम विरह

दादू जागत सपना है गया, चिन्तामणि जब जाइ ।
तब ही साचा होत है, आदि अंत उर लाइ ॥ ९६ ॥

९६-१०१ मे नाम-स्मरण वियोग-स्थिति का परिचय दे रहे है—हरि-नाम-चिन्तन-चिन्तामणि जब हृदय से हट जाती है तब हमारा व्यावहारिक सत्य जीवन जाग्रत भी प्रातिभासिक स्वप्न-समान मिथ्या प्रतीत होने लगता है। यह जीवन तभी सच्चा हो सकता है जब जन्म से मरण-पर्यन्त हरि-नाम-स्मरण मे ही लगाया जाय।

नाम न आवै तब दुखी, आवै सुख संतोख ।
दादू सेवक राम का, दूजा हर्ष न शोक ॥ ९७ ॥

जब तक निरजन राम का नाम हृदय मे आकर स्थिर नही होता, तब तक ही प्राण दु खी

रहता है और जब नाम-चिन्तन हृदय मे आकर स्थिर हो जाता हे तव सतोष होकर भजनानन्द प्राप्त होता है। उस अवस्था मे राम-भक्त को राम-भजन से भिन्न सासारिक पदार्थों के सयोग-वियोग से हर्ष शोकादि नही होते।

मिलै तो सब सुख पाइये, बिछुरे बहु दुख होइ।
दादू सुख दुख राम का, दूजा नाही कोइ ॥ ९८ ॥

यदि हृदय मे राम-नाम-स्मरण की स्थिति प्राप्त हो जाय, तो प्राणी को सभी स्थलो मे ब्रह्मानद प्राप्त हो जाता है और हृदय मे स्मरण न रहने से नाना दु ख आ घेरते है। विचार करके देखा जाय तो राम-स्मरण के सयोग-वियोग के बिना सुख-दु ख का अन्य कोई भी हेतु नही ज्ञात होता।

दादू हरि का नाम जल, मैं मीन ता मांहिं।
सग सदा आनन्द करै, विछुरत ही मर जांहिं ॥ ९९ ॥

हम हरि-नाम-स्मरण जल के मीन है, इस जल के सयोग से ही सदा आनन्दित रहते है। जैसे जल बिना मच्छी मर जाती है वैसे ही हम भी हरि-नाम-स्मरण बिना जीवित नही रह सकते।

दादू राम विसार कर, जीवै किहि आधार।
ज्यौं चातक जल बूंद को, करै पुकार पुकार ॥ १०० ॥

राम का अनन्य भक्त राम को भूलकर, अन्य किस के आधार पर जीवित रह सकता है ? वह तो जैसे चातक पक्षी स्वाति बिन्दु के लिए पुकारता है, वैसे ही भगवत्-साक्षात्कारार्थ पुकार-पुकार कर प्रार्थना करता रहता है।

हम जीवै इहि आसिरे, सुमिरण के आधार।
दादू छिटकै हाथ तैं, तो हमको वार न पार ॥ १०१ ॥

हम तो इस हरि-नाम-स्मरण का आश्रय लेकर, हरि के आधार पर ही सुखपूर्वक जीवित है। यदि हमारे हृदय-हाथ से राम-नाम-स्मरण हट जाये तो न हमे मायिक सुख ही सुखी कर सकेगे और न माया पार का ब्रह्मानन्द ही मिलेगा। अत सुख का साधन हरि-स्मरण ही है।

पति-व्रत निष्काम स्मरण

दादू नाम निमित राम हि भजै, भक्ति निमित भज सोइ।
सेवा निमित सांई भजै, सदा सजीवन होइ ॥ १०२ ॥

पतिव्रत पूर्वक निष्काम स्मरण पर बल दे रहे है—जो अनन्यता-पूर्वक सासारिक सभी कामनाओ को त्याग कर हृदय मे निरन्तर राम-नाम-स्मरण स्थिर रखने के निमित्त वा प्रेम-भक्ति को स्थायी बनाने के निमित्त वा लोक-सेवा को ही निमित्त बनाकर भजन करते है, वे सभी भक्त अन्त मे मुक्ति रूप सजीवनावस्था को ही प्राप्त होते है। अत सभी प्रकार अनन्यता और निष्काम-भाव से ही स्मरण करना चाहिए।

नाम सम्पूर्णता

दादू राम रसायन नित चवै, हरि है हीरा साथ ।
सो धन मेरे सांइयॉ, अलख खजीना[1] हाथ ॥ १०३ ॥

किसी ने प्रश्न किया था- आपके पास कोई रसायन, हीरा, धन या कोई स्थायी कोश है क्या, जिससे शिष्यो के सहित अपना योग-क्षेम चला रहे हो ? १०३-१०८ मे उसी का उत्तर देते हुये नाम को ही सब कुछ बता रहे है—हमारे पास राम-नाम-रसायन है, उसका स्मरण-स्राव निरन्तर होता रहता है। हरि-नाम-हीरा है। अन्य भी जो ससारिक धन है, ये भी मेरे भगवत्-नाम से ही है और मन इन्द्रियो के अविषय ब्रह्म का नाम ही मेरा स्थायी कोश[1] है।

हिरदै राम रहै जा जन के, ताको ऊरा[1] कौन कहै ।
अठ सिधि, नौ निधि ताके आगे, सन्मुख सदा रहै ॥ १०४ ॥

जिसके हृदय मे राम-नाम-धन है, उसे अल्प धनी[1] कौन कह सकता है ? उसके तो सदा—१ अणिमा २ महिमा ३ गरिमा ४ लघिमा ५ ऐश्वर्य ६ वशित्व ७ प्राप्ति और ८ प्राकाम्य, ये अष्ट सिद्धियॉ तथा १ कुन्द २ महापद्म ४ शख ५ मकर ६ कच्छप ७ मुकुन्द ८ नील ९ वर्च , ये नवनिधियाँ सम्मुख हाथ जोडे खड़ी रहती है।

वंदित तीनों लोक बापुरा, कैसे दरश लहै ।
नाम निसान सकल जग ऊपर, दादू देखत है ॥ १०५ ॥

नाम-स्मरण-धन के धनी भक्त के लिये बेचारे तीनो लोक वन्दना करते हुये प्रभु से प्रार्थना कर रहे है—प्रभो ! आपके परम भक्त का दर्शन हमे कैसे होगा ? हम तो देखते है—नाम-स्मरण धन का झडा ही सम्पूर्ण ससार मे सबसे ऊपर फहरा रहा है।

दादू सब जग नीधना, धनवंता नहिं कोइ ।
सो धनवंता जानिये, जाके राम पदारथ होइ ॥ १०६ ॥

सभी ससार निर्धन है, नाम-स्मरण-धन के बिना बडे २ धनी भी आशा-तृष्णा युक्त होने से परमार्थ-दृष्टि से धनी नही कहला सकते। अत धनवान् तो उसे ही जानना चाहिए, जिसके हृदय मे राम-नाम-स्मरण रूप अमूल्य पदार्थ हो।

संगहि लागा सब फिरै, राम नाम के साथ ।
चिन्तामणि हिरदै बसै, तो सकल पदारथ हाथ ॥ १०७ ॥

जिस भक्त की चित्त—वृत्ति निरतर राम-नाम के साथ रहती है, सम्पूर्ण ऐश्वर्य उसके पीछे लगे फिरते है। नाम-स्मरण चिन्तामणि जिसके हृदय मे बस जाती है, उसे ससार के सभी पदार्थ हस्तगत हो जाते है।

दादू आनंद आतमा, अविनाशी के साथ ।
प्राणनाथ हिरदै बसै, तो सकल पदारथ हाथ ॥ १०८ ॥

यदि बुद्धि अविनाशी राम के नाम-स्मरण के साथ रहे तो उसके लिये ससार मे आनन्द ही आनन्द है और यदि हृदय मे प्राणनाथ परमेश्वर का ध्यान स्थिर हो जाय, तब तो सभी अमूल्य पदार्थ रूप धन उसके हाथ मे ही आ जाते है। फिर ऐसे भक्त को अपने योग-क्षेम की चिन्ता ही कहाँ रह जाती है ?

पुरुष प्रकाशित

दादू भावै तहां छिपाइये, साच न छाना होइ ।
शेष रसातल, गगन धू[1], प्रकट कहिये सोइ ॥ १०९ ॥

१०९-११५ मे कहते है प्रसिद्ध भक्त छिपता नहीं—सच्चे भक्तो को चाहे जहा छिपावे, फिर भी वे अपनी सच्ची साधना के प्रभाव से छिपे नही रह सकते। देखो, शेषजी पाताल मे और ध्रुव[1] नभ मे है तो भी सब ससार मे प्रसिद्ध भक्त कहे जाते है।

दादू कहां था नारद मुनिजना, कहां भक्त प्रहलाद ।
प्रकट तीनों लोक मे, सकल पुकारै साध ॥ ११० ॥

नारदादि प्रसिद्ध २ मुनिजन और भक्त प्रहलाद किस समय मे हुये थे, किन्तु अभी तक वे तीनो लोको मे अति प्रसिद्ध है और उनके पीछे होने वाले सभी सत उन्हे आदर्श भक्त मानकर उनका यश-गान करते आ रहे है।

दादू कहाँ शिव बैठा ध्यान धरै, कहाँ कबीरा नाम ।
सो क्यों छाना होयगा, जे रु कहेगा राम ॥ १११ ॥

शिवजी कहा ध्यानस्थ है, कबीर तथा नामदेव अब कहा दीख पडते है किन्तु उन्हे प्राय सभी सज्जन जानते है। इससे सिद्ध होता है कि—जो राम-नाम-स्मरण करेगा, वह छिपा नहीं रह सकेगा।

कहां लीन शुकदेव था, कहा पीपा, रैदास ।
दादू साचा क्यों छिपै, सकल लोक प्रकास ॥ ११२ ॥

शुकदेव मुनि कब भक्ति द्वारा भगवान् मे लीन हुये थे, पीपा और रैदास का शरीर अब कहा है ? किन्तु वे सच्चे भक्त थे, अत छिप कैसे सकते थे। उनका यश तो सकल लोक मे प्रसिद्ध हो रहा है।

दादू कहाँ था गोरख भरथरी, अनत सिधो का मत ।
परगट गोपीचन्द है, दत्त कहैं सब सन्त ॥ ११३ ॥

अनन्त सिद्धो के माननीय गोरखनाथ, भर्तृहरि, गोपीचद और दत्तात्रेय कहा और कब हुये है किन्तु भजन के प्रताप से अब तक भी वे प्रकट है और सभी सत उनके नाम को सादर सस्नेह कहते-सुनते आरहे है।

अगम अगोचर राखिये, कर कर कोटि जतन।
दादू छाना क्यो रहै, जिस घट राम रतन ॥ ११४ ॥

जिसके हृदय मे राम-नाम-स्मरण रत्न निरतर रहता है, और जो मन से अगम, इन्द्रियातीत राम का भक्त है, उसको कोई कोटि प्रयत्न करके ऐसे स्थान मे भी रक्खे, जहां कोई भी न देख सके, तो भी वह छिपा न रह सकेगा, प्रसिद्ध हो जायेगा।

दादू स्वर्ग पयाल में, साचा लेवै नाम।
सकल लोक शिर देखिये, प्रकट सब ही ठाम॥ ११५॥

सच्चा भक्त स्वर्ग पाताल मे कही भी सत्य ब्रह्म का नाम स्मरण करता है, तो वह अन्त मे सर्व-लोक शिरोमणि ब्रह्म को प्राप्त होकर ब्रह्मरूप से देखा जाता है और सभी लोको मे प्रसिद्ध हो जाता है। यह सब नाम-स्मरण का ही माहात्म्य है।

स्मरण लांबि रस

सुमिरण का संशय रह्या, पछितावा मन मांहिं।
दादू मीठा राम रस, सगला[1] पीया नांहिं॥ ११६॥

११६-११७ मे स्मरण-रस पानार्थ शीघ्रता पूर्वक प्रबल इच्छा प्रकट कर रहे है—मुझे स्मरण विषयक यह सशय है कि—मै पूर्ण रूप से स्मरण कर सकूगा या नही। यद्यपि राम-नाम-स्मरण रस अति मधुर है और उसको पान करने के लिए मै अति शीघ्रता भी कर रहा हूँ, किन्तु पूर्ण रूप से सबका सब[1] पान करके अभी तक तृप्त नही हो सका, यह पश्चात्ताप मेरे मन मे हो रहा है।

दादू जैसा नाम था, तैसा लीया नांहिं।
हौंस रही यहु जीव में, पछितावा मन मांहिं॥११७॥

राम-नाम की जैसी महान् महिमा भक्त, सत व शास्त्रो से सुनी थी, वैसी लगन के साथ उसका स्मरण न कर सका। पूर्ण रूप से राम-नाम-स्मरण करने की प्रबल इच्छा अन्त करण मे तो रही है किन्तु इच्छा पूर्ण न होने से मन मे पश्चात्ताप हो रहा है।

स्मरण नाम चेतावनी

दादू शिर करवत बहै, बिसरे आतम राम।
मांहिं कलेजा काटिये, जीव नहीं विश्राम॥ ११८॥

११८-१२६ मे नाम स्मरणार्थ सावधान कर रहे है—आत्म-स्वरूप राम के नाम का स्मरण भूलने से सिर पर करवत चलने के समान और कलेजा काटने के समान हृदय मे पीडा होने लगती है और किसी भी प्रकार प्राणी को विश्राम नही मिलता।

दादू शिर करवत बहै, राम हृदै थैं जाइ।
मांहिं कलेजा काटिये, काल दशों दिशि खाइ॥ ११९॥

राम का नाम-स्मरण जब हृदय मे नही रहता तब शिर पर काल की करवत चलती है और चिन्तादि से हृदय छिन्न-भिन्न होता रहता है तथा वह अभक्त प्राणी दशो दिशाओ के किसी भी लोक मे जाय, काल का ग्रास ही होता है।

दादू शिर करवत बहै, अंग परस नहि होइ ।
माँहिं कलेजा काटिये, यहु व्यथा न जाणै कोइ ॥ १२० ॥

जब तक राम-नाम-स्मरण के द्वारा ज्ञान होकर प्रभु के स्वरूप मे अभेद होना रूप मिलन नहीं होता तब तक शिर पर कर्म का करवत चलता ही रहता है तथा भोग-वासना से हृदय व्यथित ही रहता है, किन्तु कोई भी अज्ञानी, भोगासक्ति के कारण, इस व्यथा को नही जान पाता।

दादू शिर करवत बहै, नैनहुँ निरखे नाहि ।
माँहि कलेजा काटिये, साल रह्या मन माहि ॥ १२१ ॥

प्राणी के शिर पर रात्रि-दिन रूप करवत चलता हुआ आयु को काट रहा है और काम क्रोधादि के वेग-प्रहार से हृदय के भी खड-खड हो रहे है किन्तु प्राणी अपने ज्ञान-नेत्रो से देखकर, राम-नाम-स्मरण द्वारा इस व्यथा को दूर करने का प्रयत्न नही करता। स्मरण बिना यह क्लेश मन मे बना ही रहता है।

जेता पाप सब जग करै, तेता नाम बिसारे होइ ।
दादू राम सँभालिये, तो येता डारे धोइ ॥ १२२ ॥

ससार मे प्राणी जितने पाप-कर्म करते है, वे सब भगवत् नाम-स्मरण के भूलने से ही होते है। हरि नाम-स्मरण से अन्त करण परम निर्मल हो जाता है फिर तो उसमे पाप-कर्म का सकल्प भी नही हो सकता, पाप-कर्म कैसे हो सकते है ? और यदि निष्काम भाव से राम-नाम-स्मरण निरतर किया जाय, तब तो वह प्राणी के जितने भी पाप है, उन सबको धो डालता है।

दादू जब ही राम बिसारिये, तब ही मोटी मार।
खड-खंड कर नाखिये, बीज पडै तिहिं बार ॥ १२३ ॥

जब भी राम-नाम-स्मरण हृदय से हटता है तब ही प्राणी के ऊपर भोग-वासना बिजली की भारी मार पडती है और नाना वृत्तियो के द्वारा मन के टुकड़े २ कर डालती है।

दादू जब ही राम बिसारिये, तब ही झँपै काल।
शिर ऊपर करवत बहै, आइ पडै जम जाल ॥ १२४ ॥

प्राणी जब राम-नाम-स्मरण को भूलता है तब ही उसके शिर पर विविध क्लेश-करवत चलता है और काल भी उसे पकड़ने के लिए झपटता है तथा अन्त मे वह प्राणी काल के जाल मे ही पडता है।

दादू जब ही राम बिसारिये, तब ही कंध[1] विनाश ।
पग-पग परलै पिंड पडै, प्राणी जाइ निराश ॥ १२५ ॥

ईश्वर-अश जीवात्मा जब राम-नाम-स्मरण को भूल जाता है, तब ही उसके शरीर[1] का बारबार विनाश होता है। पद-पद पर शरीर के नाश की परिस्थिति आ उपस्थित होती है और जीव प्रत्येक शरीर मे परम सुख प्राप्ति से निराश होकर बारबार चौरासी मे जाता रहता है।

दादू जब ही राम बिसारिये, तब ही हाना[1] होइ।
प्राण पिंड सर्वस गया, सुखी न देख्या कोइ॥ १२६॥

जब प्राणी राम-नाम-स्मरण को भूल कर पाप कर्मों मे प्रवृत्त होता है तब उसके पुण्य-नाश रूप बड़ा भारी घाटा[1] पड जाता है और श्वास, शरीरादि सर्वस्व ही व्यर्थ नष्ट हो जाता है। इस ससार मे हरि-स्मरण रहित कोई भी व्यक्ति सुखी नही देखा गया है, अतः हरि-स्मरण न भूलो।

नाम सम्पूर्ण

साहिबजी के नाम मां, विरहा पीड पुकार।
ताला-बेली रोवणा, दादू है दीदार॥ १२७॥

नाम-स्मरण, ज्ञान द्वारा ब्रह्म-साक्षात्कार का हेतु होने से, सभी कुछ देने वाला है, यह कह रहे है—प्रभु के नाम-स्मरण मे चित्त-वृत्ति को स्थिर करते हुये, प्रभु-वियोग-जन्य पीडा से अति व्याकुलता पूर्वक रो २ कर पुकार की जाती है, तब ब्रह्म-साक्षात्कार होता है और ब्रह्म-साक्षात्कार होने पर सभी कुछ प्राप्त हो जाता है।

स्मरण विधि

साहिबजी के नाम मां, भाव भक्ति विश्वास।
लै समाधि लागा रहै, दादू सांई पास॥ १२८॥

१२८-१३१ मे स्मरण विधि कह रहे है—प्रभु मे भाव, भक्ति और दृढ़ विश्वास रहते हुये चित्त-वृत्ति नाम-स्मरण मे लगाकर समाधि मे लगा रहता है, ऐसे भक्त से भगवान दूर नही रहते।

साहिबजी के नाम मां, मति बुधि ज्ञान विचार।
प्रेम प्रीति स्नेह सुख, दादू ज्योति अपार॥ १२९॥

प्रभु के नाम-स्मरण मे मति लगाने से, बुद्धि निर्मल होकर उसमे सत्यासत्य का विचार प्रकट होता है। फिर सत्य-स्वरूप का ज्ञान होकर उसमे प्रेम हो जाता है, फिर प्रीति की वृद्धि होने पर स्नेह-जन्य आनन्द मिलता है। उस आनन्द की स्थिरता मे प्रकाश-स्वरूप अपार ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है।

साहिबजी के नाम मां, सब कुछ भरे भंडार।
नूर तेज अनन्त है, दादू सिरजनहार॥ १३०॥

उक्त प्रकार स्मरण करने पर प्रभु-नाम-स्मरण की सिद्धावस्था मे किसी भी पदार्थ की कमी नही रहती। लौकिक, पारलौकिक सभी सुखो के भडार उस स्मरण-कर्त्ता महापुरुष के हाथ-नीचे रहते है और सृष्टिकर्त्ता प्रभु के स्वरूप-प्रकाश का भी उसे साक्षात्कार हो जाता है।

जिसमें सब कुछ सो लिया, निरंजन का नांउँ ।
दादू हिरदै राखिये, मैं बलिहारी जांउँ ।। १३१ ।।

इति स्मरण का अग समाप्त ।। २ ।। सा २८८ ।।

जिस निरजन राम के नाम-स्मरण की सिद्धावस्था मे सब कुछ प्राप्त होता है, उसका जिसने उक्त प्रकार से स्मरण कर लिया है, मे उसकी बलिहारी जाता हूँ।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका स्मरण का अग समाप्त. ।। २ ।।

अथ विरह का अंग ३

नाम स्मरण द्वारा नामी के मिलन की विशेष इच्छा प्रकट होकर विरह-व्यथा होती है, उस विषयक विचार करने को, विरह अग कहने मे प्रवृत्त हुये, प्रथम मगल कर रहे है—

दादू नमो नमो निरजनं, नमस्कार गुरुदेवत: ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ।। १ ।।

जिनकी कृपा से साधक विरह-व्यथा से पार होकर प्रभु को प्राप्त होता है, उस निरजन राम, सद्गुरु और सर्व सतो को हम अनेक प्रणाम करते है।

रतिवंती आरति करै, राम सनेही आव ।
दादू अवसर अब मिलै, यहु विरहनि का भाव ।। २ ।।

२-७ मे विरह पूर्वक दर्शनार्थ प्रार्थना कर रहे है—मेरे परम स्नेही राम ! आपके प्रेम से सम्पन्न मेरी चित्त-वृत्ति व्याकुलता पूर्वक आपके दर्शनार्थ विलाप कर रही है, आप कृपा करके पधारे। मेरी विरहनी चित्त-वृत्ति के अति आर्त होने का भाव यह है कि—आपके दर्शनो की उत्कठा का समय अनन्त जन्मो से अभी मिल रहा है। अत अब आप शीघ्र ही मुझे दर्शन देने की कृपा करे।

पीव पुकारै विरहनी, निशदिन रहै उदास ।
राम राम दादू कहै, ताला-बेली प्यास ।। ३ ।।

प्रियतम ! मै वियोगिनी रात दिन उदास रह कर अति व्याकुलता-पूर्वक आपके दर्शन की आशा से 'हे राम ! राम ! आओ' कहकर पुकार रही हूँ, फिर भी आप क्यो नही आते ?

मन चित चातक ज्यौ रटै, पिव पिव लागी प्यास ।
दादू दरशन कारणै, पुरवहु मेरी आस ।। ४ ।।

राम ! मुझे आपके दर्शन की बड़ी अभिलाषा लगी है, मेरा मन सावधान होकर आपके दर्शनार्थ निरतर चातक पक्षी के समान 'पीव ! पीव !' रट रहा है। अब तो मेरी यह आशा आपको अवश्य पूर्ण करनी चाहिए।

दादू विरहनि दुख कासनि[1] कहै, कासनि देइ संदेश ।
पंथ निहारत पीव का, विरहनि पलटै केश ॥ ५ ॥

प्रभो ! मै वियोगिनी आपके वियोग से उत्पन्न अपना दुःख किसे[1] कहूँ ? कहने पर भी आपके दर्शन बिना तो यह किसी से भी मिटेगा नही, प्रत्युत तत्त्ववेत्ता जन सुनकर यह कहते हुये कि राम तुमसे भिन्न तो नही है और अभक्त यह कहते हुये कि प्रत्यक्ष भोग-सुखो को त्याग कर अप्रत्यक्ष के लिए क्यो रो रहे हो, मेरी हँसी ही करेगे। इसलिए किसी अन्य को कहना नही बनता। यदि मै आपके पास सदेश भेजू तो भी किसके द्वारा भेजू ? आपसे मिलकर तो कोई पीछा आता नही, वह तो जल मे जल के समान आप मे ही मिल जाता है। अत· अब तो मेरा मन अन्य उपायो को त्यागकर केवल प्रभु का मार्ग ही देख रहा है किन्तु उनकी कठोरता तो देखो, उनका मार्ग देखते २ मेरे केश भी श्वेत हो चले, तो भी वे अभी तक नही पधारे।

विरहनि दुख कासनि कहै, जानत है जगदीश ।
दादू निशदिन बिरहि[1] है, विरहा करवत शीश ॥ ६ ॥

मै वियोगिनी अपना दु ख किससे कहूँ ? जिनको कहना चाहिए वे जगदीश्वर तो सर्वज्ञ होने से सब जानते ही है किन्तु वे तो दर्शन न देकर रात दिन मुझ विरही के शिर पर विरह-करवत (पाठातर-बिरही या बिहरि है = बह रही है) चलाते हुये[1] मुझे चीर रहे है।

शब्द तुम्हारा ऊजला, चिरिया क्यों कारी ?
तुंहीं तुंहीं निश दिन करूँ, विरहा की जारी ॥ ७ ॥

एक वन की चिडिया जिसका शरीर कुछ श्यामता लिये होता है, राजस्थान मे लेली नाम से प्रसिद्ध है। वे वन मे एकत्रित होकर तथा एक-एक भी तुही २ पुकारती रहती है। उसी के व्याज से वियोगिनी आपही अपने से प्रश्न कर रही है-हे विरहनी चिडिया ! तेरा तुही २ शब्द तो प्रभु का बोधक होने से अति पवित्र है किन्तु तेरा तन काला क्यो पड़ रहा है ? उत्तर—"मै अपने प्रियतम परमात्मा के दर्शनार्थ रात दिन पुकारती रहती हूँ कि- "मेरा आधार तो तू ही है, तू ही है।" फिर भी वे दर्शन नही देते। उनके विरह-जन्य दु ख से जल कर ही मेरा शरीर काला पड़ गया है।

विरह-विलाप

विरहनि रोवै रात दिन, झूरै मन ही मांहिं ।
दादू अवसर चल गया, प्रीतम पाये नांहिं ॥ ८ ॥

८-१६ मे विरह पूर्वक विलाप दिखा रहे है—वियोगिनी भगवद् वियोग-दु ख से रात-दिन रोती हुई मन ही मन मे अत्यत व्यथित होकर सोच रही है—देखो, मेरी आयु का इतना समय प्रियतम को पुकारते २ चला गया, किन्तु खेद है, अभी तक उनका दर्शन न हो सका।

दादू विरहनि कुरलै कूंज ज्यों, निशदिन तलफत जाइ ।
राम सनेही कारणै, रोवत रैनि बिहाइ ॥ ९ ॥

जैसे क्रौच पक्षी अपने अडो को याद करके बारबार उनके लिए करुणापूर्वक वोलते रहते है, वैसे ही अपने प्रियतम राम का स्मरण करके विरही जनो की सव रात्रि रोते हुये ही व्यतीत हो जाती है। इस प्रकार सभी रात-दिन तडफते हुये निकलते है।

पासैं बैठा सब सुनै, हमको जवाब न देइ ।
दादू तेरे शिर चढै, जीव हमारा लेइ ॥ १० ॥

हमारा प्रियतम अत्यत समीप हृदय मे ही साक्षी रूप से स्थित है और हमारी सभी पुकार सुनता भी है किन्तु प्रत्युत्तर मे हमे कुछ भी नही कहता। इसलिए हमारा दु ख और भी अधिक बढ़ रहा है। प्रियतम ! तुम हमारा जीव क्यो ले रहो हो ? याद रक्खो, यदि इस दु ख से हमारे प्राण चले गये तो उसका अपराध तुम्हारे ही शिर चढेगा।

सबको सुखिया देखिये, दुखिया नाहीं कोइ ।
दुखिया दादू दास है, ऐन परस नहिं होइ ॥ ११ ॥

सासारिक सभी प्राणी भोग-सुखो से सुखिया दीख पड़ते है। भगवद्-वियोग-दु ख से कोई भी दु खी नही है किन्तु आपका प्रत्यक्ष मिलन न होने से आपके दास हम तो अत्यन्त ही दुखिया है। आप कृपा करके दर्शन दे।

साहिब मुख बोलै नहीं, सेवक फिरै उदास ।
यहु वेदन जिय में रहै, दुखिया दादू दास ॥ १२ ॥

भगवद् भक्त को विषयो से सुख न मिलने के कारण वह उनसे विरक्त होकर भगवत् के लिए फिरता है किन्तु भगवान् सर्व-व्यापक होने पर भी अपने मुख से नही बोलता। यह भगवद्-वियोग-जन्य वेदना विरही के हृदय मे निरन्तर बनी ही रहती है। इससे ही हम विरही दास अत्यन्त दुखी है।

पिव बिन पल पल जुग भया, कठिन दिवस क्यो जाइ ।
दादू दुखिया राम बिन, काल रूप सब खाइ ॥ १३ ॥

प्रियतम के दर्शन बिना एक-एक पल युग के समान कठिनता से व्यतीत हो रहा है, फिर ये जीवन के दिन कैसे निकलेगे ? सासारिक सुख-प्रदाता धन, जनादि तो सब काल रूप होकर खाने को आ रहे है। राम के दर्शन बिना हम महान् दुखी है।

दादू इस संसार मे, मुझ सा दुखी न कोइ ।
पीव मिलन के कारणै, मैं जल भरिया रोइ ॥ १४ ॥

इस ससार मे मेरे समान कोई भी दु खी नही है। मै अपने प्रियतम राम के मिलनार्थ रात-दिन नेत्रो मे अश्रु-जल भर-भर कर रो रहा हूँ।

ना वह मिलै न मैं सुखी, कहु क्यों जीवन होइ।
जिन मुझ को घायल किया, मेरी दारू[1] सोइ ॥ १५ ॥

न तो वे मेरे प्रियतम राम मिलेंगे और न मै सुखी हो सकूंगा। फिर मेरा जीवन सुख-पूर्वक कैसे चल सकेगा ? मेरे इस दुःख को निवृत्त करने की औषधि[1] एक मात्र उसी का दर्शन है, जिस राम ने अपने वियोग से मुझे घायल किया है।

दरशन कारण विरहनी, वैरागनि होवै ।
दादू विरह वियोगिनी, हरि मारग जोवै ॥ १६ ॥

हरि दर्शनार्थ विरही भक्त सासारिक भोगो से विरक्त होकर वियोगिनी नारी के समान विरह-दु ख से व्यथित निरतर हरि के साक्षात्कार की प्रतीक्षा करते रहते है।

विरह उपदेश

अति गति आतुर मिलन को, जैसे जल बिन मीन ।
सो देखै दीदार को, दादू आतम लीन ॥ १७ ॥

१७-१८ मे विरह विषयक उपदेश दे रहे है—जैसे जल से अलग हुई मच्छी जल के लिये अत्यत व्याकुल होती है, वैसे ही जो भक्त भगवद्-दर्शनार्थ अत्यत व्याकुल होकर अपनी बुद्धि को भगवान् मे लीन करता है, वही भगवद्-दर्शन करता है।

राम विछोही विरहनी, फिर मिलन न पावै ।
दादू तलफै मीन ज्यों, तुझ दया न आवै ॥ १८ ॥

राम से बिछुडी हुई विरहनी फिर सहज ही नही मिल पाती और जल रहित मच्छी के समान तड़फती रहती है। प्रभो ! वैसी ही स्थिति आपके बिना हमारी है, आपको हम पर दया नही आती क्या ?

छिन विछोह

दादू जब लग सुरति सिमटै नहीं, मन निश्चल नहीं होइ ।
तब लग पीव परसै नहीं, बडी विपति यहु मोहि ॥ १९ ॥

१९-२४ मे कहते है—हरि का एक क्षण का भी वियोग असह्य है। जब तक चित्त-वृत्ति विषयो से विमुख होकर हरि मे स्थिर नही होती तब तक मन निश्चल नही होता और मन की स्थिरता के बिना प्रभु का मिलन नही हो सकता। प्रभु से अलग रहना यह मेरे लिए महा विपत्ति है। मुझे एक क्षण का भी हरि का वियोग असह्य है।

ज्यों अमली के चित अमल है, शूरे के संग्राम।
निर्धन के चित धन बसै, यौं दादू के राम ॥ २० ॥

जैसे नशेबाज के मन मे नशा, वीर के मन मे युद्ध और निर्धन के मन मे निरतर धन बसा रहता है, वैसे ही मेरे मन मे राम बसा हुआ है।

ज्यों चातक के चित जल बसै, ज्यो पानी बिन मीन ।
जैसे चन्द चकोर है, ऐसे दादू हरि सौ कीन ॥ २१ ॥

जैसे चातक पक्षी के चित्त मे स्वाति जल बसता है, वैसे ही हमारे मन मे हरि बसते है। जैसे पानी बिना मच्छी की दशा होती है, वैसे ही हरि बिना हमारी होती है। जैसे चन्द्र से चकोर का प्रेम होता है, वैसे ही हमने हरि से प्रेम किया है।

ज्यों कुजर के मन वन बसै, अनल पंखि आकास।
यों दादू का मन राम सौं, ज्यों वैरागी वनखंड वास॥ २२॥

जैसे हाथी का मन वन मे, अनिल पक्षी का मन आकाश मे, विरक्त का मन वन-खड मे लगा रहता है, वैसे ही मेरा मन राम के स्वरूप मे लगा रहता है।

भँवरा लुब्धी वास का, मोह्या नाद कुरंग।
यो दादू का मन राम सो, ज्यों दीपक ज्योति पतंग॥ २३॥

जैसे भ्रमर कमल-सुगध से, मृग बरवै राग की वीणा-ध्वनि से, पतग दीपक-ज्योति से मोहित होता है, वैसे ही मेरा मन राम से मोहित हो गया है।

श्रवणां राते नाद सौं, नैना राते रूप ।
जिह्वा राती स्वाद सौं, त्यों दादू एक अनूप॥ २४॥

जैसे श्रवण शब्द मे, नेत्र रूप मे, जिह्वा रसास्वादन मे अनुरक्त है, वैसे ही मेरा मन त्रिविधि भेद-शून्य अनुपम ब्रह्म मे अनुरक्त है।

विरह उपदेश

देह पियारी जीव को, निशिदिन सेवा माहि।
दादू जीवन मरण लौ, कबहूँ छाडी नांहि ॥ २५ ॥

२५-२८ मे विरह विषयक उपदेश कर रहे है—जैसे जीव को अपना शरीर अत्यन्त प्रिय है, वह रात दिन शरीर की सेवा मे लगा रहता है, वैसे ही जन्म से मरण पर्यन्त अपने जीवन मे हरि की विरह-भक्ति नही छोडनी चाहिए।

देह पियारी जीव को, जीव पियारा देह।
दादू हरि रस पाइये, जे ऐसा होइ स्नेह ॥ २६ ॥

जैसे जीव को शरीर प्रिय है और शरीर को जीव प्रिय है, वैसे ही मुझे हरि प्रिय लगे और हरि को मै प्रिय लगू, तब हरि-साक्षात्कार रूप रसानन्द प्राप्त हो सकता है। अन्यथा एकागी प्रेम का फल तो क्लेश ही होता है।

दादू हरदम[१] मांहिं दिवान[२], सेज हमारी पीव है ।
देखूं सो सुबहान[३], यह इश्क[४] हमारा जीव है॥ २७॥

देह-दरबार[२] की हमारी हृदय-शय्या पर प्रियतम प्रभु प्रति श्वास[१] के समय साक्षी रूप से विद्यमान है, मै उस पवित्र[३] प्रभु को ही देखता हूँ, यह उसका प्रेम[४] ही हमारा जीवन है।

दादू हरदम[1] मांहिं दिवान[2], कहूं दरूने[3] दरद सौं ।
दरद दरूने जाइ, जब देखूं दीदार कौं ॥ २८ ॥

वह महान् प्रभु मेरे हृदय-दरबार[2] मे प्रति श्वास[1] विद्यमान है किन्तु मुझे दर्शन नही देता। मै हृदय[3] की व्यथा से व्यथित होकर कहता हूँ—जब मै प्रभु का स्वरूप देखूगा, तब ही मेरे हृदय का दर्द दूर होगा।

विरह विनती

दादू दरूने दरदवंद, यहु दिल दरद न जाइ ।
हम दुखिया दीदार के, महरवान दिखलाइ ॥ २९ ॥

२९-३१ मे विरह-पूर्वक दर्शनार्थ विनय कर रहे है—मै हृदय के दर्द से युक्त हूँ, यह वियोग-जन्य कष्ट आप के दर्शन बिना हृदय से दूर न हो सकेगा। हम आपके दर्शनार्थ दु खी है। दयालो ! अपने स्वरूप का दर्शन कराइये।

मूये पीड पुकारतां, बैद न मिलिया आइ ।
दादू थोडी बात थी, जे टुक दरश दिखाइ ॥ ३० ॥

हम हरि-वियोग-जन्य पीडा से पीड़ित होकर पुकारते २ मर रहे है किन्तु अभी तक हमारा प्रियतम प्रभु रूप वैद्य आकर हमे अपनी दर्शन-औषधि नहीं दे रहा है। प्रभो ! हमारे कष्ट को मिटाने की बात तो बहुत ही अल्प थी, यदि आप किचित् मात्र अपना दर्शन करा देते तो तुरन्त मिट जाता।

दादू मैं भिखारी मंगता, दर्शन देहु दयाल ।
तुम दाता दुख भंजता, मेरी करहु सँभाल ॥ ३१ ॥

दयालो ! मै भिक्षु आप से दर्शन की भिक्षा माँग रहा हूँ, दर्शन दीजिये। आप सपूर्ण दु खो को नाश करके परमानन्द प्रदाता है। अत मेरी भी सँभाल अवश्य कीजिये।

छिन विछोह

क्या जीये में जीवना, बिन दरशन बेहाल ।
दादू सोई जीवना, प्रकट परशन लाल ॥ ३२ ॥

३२-३३ मे हरि का क्षणिक-वियोग भी असह्य है, यह कह रहे है—भगवद् दर्शन बिना व्याकुल होकर जीवन धारण करना व्यर्थ है। जीवन तो वही अच्छा है, जिसमे परम प्रिय प्रभु का प्रकट रूप में मिलन हो।

इहिं जग जीवन सो भला, जब लग हिरदै राम ।
राम बिना जे जीवना, सो दादू बेकाम ॥ ३३ ॥

जब तक हृदय मे राम का चिन्तन वा ध्यान मे साक्षात्कार होता रहे, वही जीवन इस ससार मे अच्छा माना जाता है, जो जीवन राम के चिन्तन से वचित रहता है, वह तो व्यर्थ ही है।

विरह विनती

दादू कहु दीदार की, साई सेती बात।
कब हरि दरशन देहुगे, यह अवसर चल जात ॥ ३४ ॥

३४-३८ मे विरह पूर्वक दर्शनार्थ विनय कर रहे है—हरे ! आप अपने स्वरूप के दर्शन देने की बात शीघ्र बताओ। हमे कब दर्शन दोगे ? स्वामिन् ! आपके दर्शन विना हमारे इस जीवन का समय व्यर्थ ही नष्ट हो रहा है।

व्यथा तुम्हारे दरश की, मोहि व्यापै दिन रात।
दुखी न कीजे दीन को, दरशन दीजे तात ॥ ३५ ॥

परम पिता ! आपके दर्शन न होने की व्यथा मुझे रात-दिन व्यथित कर रही है, अब आप मुझ दीन को दु खी न करे। कृपा करके दर्शन दे।

दादू इस हियड़े यह साल, पिव बिन क्योहि न जाइसी ।
जब देखूं मेरा लाल, तब रोम-रोम सुख आइसी ॥ ३६ ॥

मेरे इस हृदय मे यही दु ख है कि—मेरे प्रभु के दर्शन नही हो रहे है और यह दु ख उस प्रियतम के मिलन बिना किसी भी प्रकार दूर न होगा। जब मै मेरे प्रिय प्रभु को देखूगा तब उसके दर्शन-जन्य सुख से मेरा रोम-रोम प्रसन्न होगा।

तूं है तैसा प्रकाश कर, अपना आप दिखाइ ।
दादू को दीदार दे, बलि जाउँ विलम्ब न लाइ ॥ ३७ ॥

आप अपने शुद्ध स्वरूप का जैसा प्रकाश है, वैसा ही मेरे हृदय मे प्रकट करके मुझे दिखावे। अब आप मुझे अपना साक्षात्कार कराने मे विलम्ब न करे, मै आपकी बलिहारी जाता हूँ।

दादू पिवजी देखै मुझको, हू भी देखूं पीव।
हूं देखू देखत मिलै, तो सुख पावै जीव ॥ ३८ ॥

यद्यपि मेरे स्वामी परमात्मा तो मुझे प्रत्यक्ष रूप से देख रहे है किन्तु मै भी उन्हे प्रत्यक्ष रूप से देखू, ऐसी मेरी प्रबल इच्छा है। जब मै उन्हे देखू, तब देखते ही हम दोनो परस्पर मिलकर एक रूप हो जायँ, तब ही मेरा जीवात्मा परमानन्द को प्राप्त होगा।

विरह कसौटी

दादू कहै तन मन तुम पर वारणै, कर दीजै कै बार ।
जे ऐसी विधि पाइये, तो लीजै सिरजनहार ॥ ३९ ॥

विरह की परीक्षा देने को कह रहे है—हे सृष्टि-कर्त्ता ईश्वर ! यदि आप अपने पर तन-मन निछावर करने पर ही दर्शन देते है और मुझे भी ऐसी ही विधि से प्राप्त होगे तो लीजिये, मै अपना तन, मन सब आप पर अनेक बार निछावर करता हूँ।

विरह पतिव्रत

दीन[1] दुनी सदके[2] करूं, टुक[3] देखण दे दीदार[4] ।
तन मन भी छिन-छिन करूं, बहिश्त[5] दोजख[6] वार ॥ ४० ॥

विरह पूर्वक पतिव्रत दिखा रहे है—प्रभु ! मै अपना सासारिक मजहब रूप धर्म[1], धाम, धन, जन, तन, मन, स्वर्ग[5], नरक[6] आदि भला बुरा सर्वस्व ही प्रतिक्षण आप कर निछावर[2] करता हूँ, आप मुझे किंचित्[3] मात्र अपने स्वरूप[4] का दर्शन करा दे।

विरह कसौटी

दादू हम दुखिया दीदार के, तू दिल तैं दूर न होइ।
भावै हमको जाल दे, होना है सो होइ ॥ ४१ ॥

विरह परीक्षा देने को विनय कर रहे है— प्रभो ! चाहे आप हमको अपनी विरहाग्नि से जला भी दे, या धाम, धन, जन, देहादि को कुछ भी हानि होने वाली हो, वह भी होती रहे किन्तु हम आपके दर्शन बिना न रह सकेगे। हम तो आपके दर्शनार्थ ही दु खी है। अब आप हमे दर्शन देकर हृदय से दूर नही जायँ, यही हमारी प्रार्थना है।

विरह पतिव्रत

दादू कहै जे कुछ दिया हमको, सो सब तुम ही लेहु।
तुम बिन मन मानैं नहीं, दरश आपणा देहु ॥ ४२ ॥

४२-४३ मे विरह-पतिव्रत पूर्वक दर्शनार्थ विनय कर रहे है—स्वामिन् ! आपने जो कुछ भी हम को दिया है, यह सब आप ही ले ले। हमारा मन आपके बिना इन सासारिक पदार्थों से सन्तुष्ट नही होता। हमे तो आप अपना दर्शन ही दे।

दूजा कुछ मांगैं नहीं, हमको दे दीदार।
तू है तब लग एक टक, दादू के दिलदार ॥ ४३ ॥

प्रियतम ! हम आपसे आपके दर्शन से भिन्न स्वर्ग-भोगादि कुछ भी नही माँगते। हम तो यही चाहते है कि— जब तक आपका स्वरूप विद्यमान है तब तक हमको निरन्तर आप अपने स्वरूप का दर्शन देते रहे।

विरह विनती

दादू कहै-तूं है तैसी भक्ति दे, तूं है तैसा प्रेम ।
तूं है तैसी सुरति दे, तूं है तैसा क्षेम ॥ ४४ ॥

४४-५४ मे विरह पूर्वक दर्शनार्थ विनय कर रहे है—प्रभो ! जैसा आपका स्वरूप अद्वैत, शुद्ध, सूक्ष्म और अखड है वैसी ही हमे अनन्य भक्ति, निर्मल प्रेम, आपके स्वरूप मे प्रविष्ट होने योग्य सूक्ष्म वृत्ति और अखड दर्शनानन्द देने की कृपा करिये।

दादू कहै-सदके[1] करूं शरीर को, बेर-बेर बहु भंत ।
भाव-भक्ति हित प्रेम ल्यौ, खरा पियारा कंत ॥ ४५ ॥

प्रियतम ! मै मेरे शरीरादि को आप पर लोक-सेवा और तपादिक द्वारा बहुत भाँति से अनेक बार निछावर[१] करता हूँ और भाव पूर्वक आपकी भक्ति करने के लिए वा प्रेम पूर्वक अपनी चित्तवृत्ति आप मे ही लगाने के लिए तत्पर हूँ, आप मुझे विशुद्ध भाव से अति प्रिय है।

दादू दरशन की रली[१], हमको बहुत अपार ।
क्या जाणूं कब ही मिलै, मेरा प्राण अधार ॥ ४६ ॥

मेरे प्राणाधार ! हमको आपके दर्शन करने की अति अपार इच्छा[१] है, किन्तु मुझे यह ज्ञात नही होता कि आपके दर्शन कब मिलेगे ?

दादू कारण कंत के, खरा दुखी बेहाल[१] ।
मीरा[२] मेरा महर कर, दे दर्शन दर[३] हाल[४] ॥ ४७ ॥

मै अपने स्वामी के दर्शन न होने से अत्यन्त दु खी होकर व्याकुल[१] हो रहा हूँ। मेरे सरदार[२] मुझ पर दया करके इसी समय[४] मेरे भीतर[३] हृदय मे प्रकट हो कर दर्शन दे।

ताला-बेली प्यास बिन, क्यों रस पीया जाइ ।
विरहा दरशन दरद सौ, हमको देहु खुदाइ ॥ ४८ ॥

वास्तव मे भगवद् दर्शन की आशा जितनी व्याकुलता पूर्वक होनी चाहिये, उतनी मुझ मे नही है, तब भगवद्-दर्शन-रस कैसे पान किया जा सकता है ? हे भगवान् ! मुझे अपनी विरह-वेदना के सहित दर्शन देने की कृपा करे।

ताला-बेली पीड सौ, विरहा प्रेम पियास ।
दर्शन सेती दीजिये, विलसै दादू दास ॥ ४९ ॥

मुझे विरह-वेदना की व्याकुलता से युक्त करके अपने प्रेम की उत्कट इच्छा के साथ ही अपना दर्शन भी शीघ्र ही दीजिये, जिससे मै सेवक दर्शनानन्द का उपभोग कर सकू।

दादू कहै—हमको अपना आप दे, इश्क मुहब्बत दर्द ।
सेज सुहाग सुख प्रेम रस, मिल खेले लापर्द[१] ॥ ५० ॥

प्रभो ! आप हमे अपना स्नेह तथा आपकी प्रेम-जन्य व्यथा भी दे और मेरी हृदय शय्या पर अन्तराय[१]-रहित[१] मिल कर मेरे साथ खेलते हुये मुझे सुहाग-सुख और प्रेम-रस प्रदान करे।

प्रेम भक्ति माता रहै, तालाबेली अग ।
सदा सपीडा मन रहै, राम रमै उन सग ॥ ५१ ॥

जो प्रभु-प्रेम मे मस्त रहते है और जिनका मन भगवद्-विरह-जन्य पीड़ा से युक्त रहने के कारण सब शरीर व्याकुल रहता है, उन भक्तो के साथ ही राम रमण करते है।

प्रेम मगन रस पाइये, भक्ति हेत रुचि भाव ।
विरह विश्वास निज नाम सौं, देव दया कर आव ॥ ५२ ॥

देव ! दृढ़ विचार पूर्वक आपकी भक्ति प्राप्त करने के लिए मेरी प्रबल इच्छा हो रही है। आप मेरे मन को अपने प्रेम मे निमग्न करके प्रेम-रस पान कराइये। इस वियोग-व्यथा के समय मुझे आपके निज नाम राम-स्मरण का ही विश्वास है, मै इसके आश्रय ही जीवित हूँ, आप दया करके शीघ्र पधारे।

गई दशा सब बाहुडै, जे तुम प्रकटहु आइ ।
दादू ऊजड सब बसै, दर्शन देहु दिखाइ ॥ ५३ ॥

प्रभो ! यदि आप मेरे अन्त करण मे स्वरूप ज्ञान रूप से प्रकट हो जायेगे तो, जो आप से अलग होने से मेरी शुद्ध चेतन रूप अवस्था चली गई है, वह पुन प्राप्त हो जायेगी और मेरा अन्त करण, आसुरी सपदा के गुणो से ऊजड हो गया है, उसमे भी पुन· दैवी सपदा के गुण आकर बस जायेगे। अत· आप कृपा करके मुझे अपना दर्शन अवश्य दे।

हम कसिये[१] क्या होइगा, विडद तुम्हारा जाइ ।
पीछैं ही पछिताहुगे, तातैं प्रकटहु आइ ॥ ५४ ॥

भगवन् ! हमे वियोग-जन्य कष्ट-देने[१] से आपको क्या लाभ होगा ? प्रत्युत मुझे आपका दर्शन हुये बिना ही मेरे प्राण चले गये तो आपका भक्त वत्सलतादि यश नष्ट होकर आपकी हानि ही होगी और लोकापवाद होने पर फिर आप भी पश्चात्ताप ही करेगे। अत. आपको शीघ्र ही मेरे हृदय मे प्रकट हो जाना चाहिए। इसी मे हम दोनो का भला है।

छिन विछोह।

मींयां[१] मैंडा[२] आव घर, वांढी[३] वत्तां[४] लोइ।
डुखंडे[५] मुंहिडे[६] गये, मरॉ विछोहै रोइ ॥ ५५ ॥

भगवद्-वियोग क्षण को भी असह्य बता रहे है—मेरे[२] स्वामिन्[१] ! मेरे हृदय-घर मे पधारिये। मै दुहागिन[३] आपके बिना दुखित होकर लोको मे जहा तहा चारो ओर फिर[४] रही हूँ। अब मेरे[६] दु·ख[५] अत्यन्त बढ गये है। आप के वियोग जन्य क्लेश से मै रो-रो कर मर रही हूँ। आप शीघ्र दर्शन दे।

विरह पतिव्रत

है सो निधि नहिं पाइये, नहीं सो है भरपूर।
दादू मन मानै नहीं, तातैं मरिये झूर ॥ ५६ ॥

विरह पूर्वक पतिव्रत दिखा रहे है—जो वास्तव मे 'अस्ति, भाति, प्रिय' रूप सत्य निधि परब्रह्म है, वह तो प्राप्त नही हो रहा है और जो वास्तव मे सत्य नही है, वह असत्य मायिक प्रपच भ्रम वश स्वप्न निधि के समान सर्वत्र भास रहा है किन्तु हमारा मन इस मायिक प्रपच से सतोष नही मानता। इसी से हम सत्य-तत्त्व की प्राप्ति के लिए विलाप पूर्वक रो-रो कर मर रहे है।

विरही विरह लक्षण

जिस घट इश्क अल्लाह का, तिस घट लोही न माँस ।
दादू जियरे जक[१] नहीं, सिसके श्वासों श्वास ॥ ५७ ॥

५७-५९ मे विरही और विरह के लक्षण वता रहे है—जिस भक्त के हृदय मे भगवद्-विरह-जन्य व्यथा रहती है, उसके शरीर मे विशेष रूप से रक्त माँस नही रहते, विरही जनो के शरीर कृश हो जाते है। हृदय मे शाँति[१] नही रहती और भगवद् दर्शन के लिए प्रति श्वास व्याकुल होते रहते है।

रती[१] रब[२] ना बीसरै, मरै सँभाल सँभाल ।
दादू सौदाई[३] रहै, आशिक[४] अल्लह नाल[५] ॥ ५८ ॥

भगवद् विरही जन क्षण[१] मात्र भी भगवान्[२] को नहीं भूलते और प्रभु स्मरण करते हुये उसकी प्राप्ति के लिए रो-रो कर मरते है तथा वे प्रेमी[४] भक्त प्रभु प्रेम से पागल[३] हुये चिन्तन द्वारा प्रभु के साथ[५] ही रहते है।

दादू आशिक रब्बदा[१], शिर भी डेवे[२] लाहि[३] ।
अल्लह कारण आपको, साडे[४] अंदर भाहि[५] ॥ ५९ ॥

भगवद् वियोग से व्यथित भगवान्-का[१] प्रेमी भक्त, भगवान् की प्राप्ति के लिए अपना शिर भी अपने हाथो से उतार[३] कर देने[२] को तत्पर रहता है और अपने प्रेम पात्र परमात्मा के दर्शनार्थ आन्तर विरहाग्नि[५] से अन्त करण मे स्थित देहादिक सभी प्रकार के अहकार को जला[४] डालता है।

विरह-कसौटी

भोरे[१] भोरे तन करे, वंडे[२] कर कुरबाण[३] ।
मिट्ठा कौडा ना लगे, दादू तोहूं[४] साण[५] ॥ ६० ॥

विरह की परीक्षा बता रहे है—विरही जन प्रभु प्राप्ति के लिए अपने शरीर को कण[१] कण कर, प्रभु पर निछावर[३] करके वितरण[२] कर दे वा आटे के समान पीस[१] कर प्रभु पर निछावर कर दे। इतने पर भी जब भगवान् प्रिय ही लगे, बुरे न लगे तब समझना चाहिए कि सच्चा विरह है। ऐसा विरह होता है तब-ही[४] प्रभु के साथ[५] अभेद होकर ब्रह्मानन्द प्राप्त करता है।

विरह-लक्षण

जब लग शीश न सौंपिये, तब लग इश्क न होइ ।
आशिक मरणै ना डरै, पिया पियाला सोइ ॥ ६१ ॥

६१-६३ मे विरह का लक्षण बता रहे है—जब तक अपना अहकार रूप शिर भगवान् के

समर्पण नही किया जाता तब तक वास्तविक प्रेम नही हो सकता। जो प्रेमी मरने से नही डरे है, वे ही प्रभु के साथ अभेद होकर ब्रह्मानन्द-रस का प्याला पान कर सके है।

तैं डीनोंई[1] सभु[2], जे डीये[3] दीदार[4] के ।
उंजे[5] लहदी[6] अभु[7], पसाई[8] दो पाण[9] के ॥ ६२ ॥

यदि हमको आप अपने स्वरूप के दर्शन[4] करा देगे[3] तो, हम मान लेगे कि—आपने हमको सब[2] कुछ दे दिया[1]। जैसे प्यासे[6] को पानी[7] मिलते[6] ही प्यास जनित पीडा दूर होकर उसे तृप्ति प्राप्त होती है। वैसे ही आपके[9] स्वरूप के देखते[8] ही हमारा विरह दु.ख नष्ट होकर हमे आनन्द प्राप्त होगा, आप अपने दर्शन दो।

बिचौं[1] सभो[2] डूर कर, अन्दर बिया[3] न पाइ ।
दादू रत्ता हिकदा[4], मन मुहब्बत लाइ ॥ ६३ ॥

मेरे अन्त करण मध्य[1] के सभी[2] विकार-पटल दूर कर दीजिये और मेरे मन मे अपनी ऐसी भक्ति उत्पन्न कर दीजिये जिससे मन एक[4] मात्र आप मे ही निरतर अनुरक्त रहे तथा अन्त करण के भीतर किचित् मात्र भी द्वैत-भाव[3] न मिल सके।

५५ से ६३ तक सिन्धी भाषा प्रधान साखिये सिन्ध के ठठ्ठानगर से आई माता व सिन्धी भक्तो के समझाने को कही गई थी। प्रसग कथा दृ सु सि त ११/१३२ मे देखो।

विरह उपदेश

इश्क मुहब्बत मस्त मन, तालिब[1] दर दीदार।
दोस्त दिल हरदम[2] हजूर, यादगार[3] हुशियार॥ ६४ ॥

विरह सम्बन्धी उपदेश कर रहे है—प्रभु मे प्रेम करने वाले को चाहिए-अपने मन को प्रभु प्रेम मे मस्त रक्खे तथा वह जिज्ञासु[1] प्रभु स्वरूप के दर्शनार्थ चित्त की एकाग्रता रूप द्वार पर निरतर स्थिर रहे। अपने हृदय को प्रति-श्वास[2] प्रभु रूप मित्र के सन्मुख रक्खे और उसके नाम-स्मरण[3] मे निरतर सावधान रहे।

विरह लक्षण

दादू आशिक एक अल्लाह के, फारिग[1] दुनियां दीन ।
तारिक[2] इस औजूद तैं, दादू पाक[3] यकीन[4] ॥ ६५ ॥

६५-६६ मे विरह का लक्षण बता रहे है—त्रिविध-भेद शून्य निरजन राम का ही प्रेम होना, सासारिक धर्म, जाति, वर्ण, आश्रम, पथादिक के बन्धन से मुक्त[1] होना, इस देह के अध्याय से रहित[2] होना और शुद्ध[3] परमात्मा का ही दृढ विश्वास[4] होना, इसी को विरह कहते है।

आशिकां[1] रह[2] कब्ज[3] करदा[4], दिल वजां[5] रफतंद[6]।
अल्लह आले[7] नूर दीदम[8], दिलहि दादू बन्द[9] ॥ ६६ ॥

प्रेमियो[1] का मार्ग[2] अधिकार[3] मे किया[4] जाय, आसुरी सपदा के गुणो को हृदय से बाहर[5]

करके हृदय मे दैवी सपदा के गुण सजाये जायँ[६], परम श्रेष्ठ[७] परमात्मा के स्वरूप का दर्शन[८] करने के लिए अपने मन को निग्रह[९] किया जाय। ये ही विरह के लक्षण है।

शब्द

दादू इश्क अवाज सौ, ऐसे कहै न कोइ।
दर्द मुहब्बत पाइये, साहिब हासिल होइ ॥ ६७ ॥

प्रेम पूर्ण शब्द की विशेषता कह रहे है—प्रभु को शब्दो द्वारा पुकारते तो बहुत से लोग है किन्तु जैसे भक्त-जन प्रेमपूर्ण शब्दो से पुकारते है, वैसे अभक्त कोई भी नही पुकारता और भगवान् तो हृदय मे प्रेम तथा विरह-वेदना उत्पन्न होने पर ही प्राप्त होते है।

विरह-विलाप-लक्षण

कहँ आशिक अल्लाह के, मारे अपने हाथ।
कहँ आलम औजूद सौ, कहै जबॉ की बात ॥ ६८ ॥

६८-६९ मे विरही के विलाप का लक्षण बता रहे है— जो अपने साधन रूप हाथो से निजी इन्द्रिय, मन, देहाध्यास आदि पर विजय प्राप्त करके प्रभु-दर्शनार्थ विलाप करते है, उनका विलाप कहाँ, और जो सासारिक भोगो मे अनुरक्त देहाध्यास से बँधे हुये लोग प्रार्थना करते है वे कहॉ, अर्थात् सासारिक लोगो और भक्तो के विलाप की एकता नही हो सकती। सासारिक लोग तो केवल जबानी बाते कहते है, उनसे हृदय का विलाप नही होता।

दादू इश्क अल्लाह का, जे कबहूँ प्रकटै आइ।
तो तन मन दिल अरवाह का, सब पडदा जल जाइ ॥ ६९ ॥

यदि भाग्यवश हृदय मे प्रभु-प्रेम प्रकट हो जाय तो, जीवात्माओ के और परमात्मा के मध्य जो तनाध्यास, मन के विकार, हृदय की आशादि रूप सभी पड़दे जल जाते है, प्राणी शुद्ध हो जाता है। इस अवस्था का विलाप ही वास्तविक विलाप है, इसी से प्रभु प्राप्त होते है।

विरह-जिज्ञासु-उपदेश

अरवाहे[१] सिजदा[२] कुनद[३], वजूद[४] रा[५] चे[६] कार[७]।
दादू नूर[१०] दादनी[८], आशिका दीदार[९] ॥ ७० ॥

विरह युक्त जिज्ञासु को उपदेश कर रहे है—शरीर[४] पोषण चिन्ता का[५] क्या[६] काम[७] है? शरीरादि व्यवहार प्रारब्ध पर छोडकर जीवतामाओ[१] के वास्तविक स्वरूप परब्रह्म को हृदय मे ही प्रणाम[२] करते हुये उसकी उपासना करो[३]। ऐसा करने से ही वे प्रभु प्रेमियो को देने[८] योग्य स्वरूप[१०] का दर्शन[९] देते है। सीकरी मे अकबर बादशाह ने प्रश्न किया था, भगवद् दर्शन कैसे हो? उसी के उत्तर मे ६४ से ७० साखी कही थी।

विरह ज्ञानाग्नि

विरह अग्नि तन जालिये, ज्ञान अग्नि दौं लाइ।
दादू नख शिख परजलै, तब राम बुझावै आइ ॥ ७१ ॥

७१-७२ मे विरहाग्नि और ज्ञानाग्नि उत्पन्न करने की प्रेरणा कर रहे है—साधक को चाहिए—प्रथम अपने हृदय मे भगवद् विरहाग्नि प्रकट करके स्थूल शरीर का अध्यास और सूक्ष्म शरीर रूप इन्द्रिय अन्त·करण के विकारो को जलावे, फिर ज्ञानाग्नि प्रज्वलित करके पाताल-नख से ब्रह्म लोक-शिखा पर्यन्त भोग-वासनाओ को तथा आवरण आदि सबको जैसे वनाग्नि सब वन को जला डालती है वैसे ही जला डाले। इतना साधन हो जाता है तब तुरन्त ही निरंजन राम अपने स्वरूप का साक्षात्कार कराके भक्त की दोनो अग्निया शात कर देते है। दर्शन होते ही विरह-वेदनाग्नि बुझ जाती है और ज्ञान भी ज्ञेय से भिन्न नही रहता। ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय की एकता हो जाती है।

विरह अग्नि में जालिबा, दरशन के तांईं ।
दादू आतुर रोइबा, दूजा कुछ नांहीं ॥ ७२ ॥

साधक को चाहिए—केवल भगवद्-विरहाग्नि से अपने अहकारादि विकारो को जलाता हुआ भगवद्-दर्शनार्थ व्याकुलता-पूर्वक रोता रहे। कारण दूसरे तीर्थव्रतादि बाह्य उपाय भगवद्-दर्शन कराने मे विशेष समर्थ नहीं है।

विरह पतिव्रत

साहिब सौं कुछ बल नहीं, जनि हठ साधै कोइ ।
दादू पीड पुकारिये, रोतां होइ सो होइ ॥ ७३ ॥

७३-७५ मे विरह पूर्वक पतिव्रत रखने की प्रेरणा कर रहे है—भगवान् के आगे हठ योगादि साधना का कुछ भी बल नही चलता। अत हठयोगादि साधनो द्वारा क्यो कोई शरीर को रोगी बनावे ? भगवत् प्राप्ति के लिए तो विरह-वेदना सहित भगवान् से प्रार्थना करते हुए रोते रहना चाहिए। रोते रहने से जो होता है, वही होगा अर्थात् भगवान् ही प्राप्त होगे।

ज्ञान ध्यान सब छाडि दे, जप तप साधन जोग ।
दादू विरहा ले रहै, छाडि सकल रस भोग ॥ ७४ ॥

सपूर्ण विषय-रस-जन्य सुख तथा भगवत्-परायणता रहित सकाम-जप, तप, हठ-योग साधन, ध्यान और ज्ञानादि सभी को त्याग कर विरह-वेदना पूर्वक स्मरण करते हुये भगवत् का पतिव्रत धारण किये रहना चाहिए।

जहँ विरहा तहँ और क्या, सुधि बुधि नाठे[1] ज्ञान ।
लोक वेद मारग तजै, दादू एकै ध्यान ॥ ७५ ॥

जिसके हृदय मे भगवद्-विरह प्रकट हो जाता है, उसमे अन्य क्या रह जाता है ? विरह भिन्न कुछ भी नही रहता, उसके तो शरीर रक्षा विचार, व्यावहारिक बुद्धि, शास्त्र ज्ञान और लोक-वेद-मर्यादादि नष्ट[1] हो जाते है, वह तो त्रिविध-भेद शून्य अपने प्रियतम परमात्मा के ध्यान मे ही निमग्न रहता है।

विरही विरह लक्षण

विरही जन जीवै नहीं, जे कोटि कहै समझाइ ।
दादू गहिला ह्वै रहै, कै तलफ-तलफ मर जाइ ॥ ७६ ॥

७६-८४ मे विरही और विरह के लक्षण कह रहे है—विरही भक्तो को चाहे कोई कोटि भाँति समझा कर भी सुखपूर्वक जीवित रहने के लिए कहे तो भी वे भगवत् मिलन बिना सुख-पूर्वक जीवित नही रह सकते। वे भगवद्-विरह से पागल हो जाते है या तडफ २ कर मर जाते है।

दादू तलफै पीड सौं, विरही जन तेरा ।
सिसकै साई कारणै, मिल साहिब मेरा ॥ ७७ ॥

प्रभो ! मै आपका विरही-भक्त विरह वेदना से तडफ रहा हूँ। मन परम व्याकुल हो रहा है। मेरे श्वास केवल आपके दर्शनार्थ ही अटक रहे है। अत शीघ्र दर्शन दे।

पड्या पुकारै पीड सौ, दादू विरही जन ।
राम सनेही चित बसै, और न भावै मन ॥ ७८ ॥

मै आपका वियोगी भक्त विरह-वेदना से व्यथित होकर आप ही के भरोसे पर पडा हुआ आपके दर्शनार्थ प्रार्थना कर रहा हूँ। हे मेरे स्नेही राम ! मेरे चित्त मे आप ही बसे हुये है, मेरे मन को आपसे भिन्न कुछ भी अच्छा नही लगता।

जिस घट विरहा राम का, उस नींद न आवै ।
दादू तलफै विरहनी, उस पीड जगावै ॥ ७९ ॥

जिसके हृदय मे भगवद्-विरह जग जाता है, उसे निद्रा नहीं आती। उसको विरह-वेदना ही जाग्रत रखती है। वह विरहनी राम के दर्शनार्थ तडफती रहती है।

सारा शूरा नीद भर, सब कोई सोवै ।
दादू घाइल दर्दवद, जागै अरु रोवै ॥ ८० ॥

सासारिक सपूर्ण प्राणी विषय-भोगार्थ शूरवीर बने हुये है और सभी कोई इच्छा भरकर निद्रा मे सोते है। किन्तु भगवद्-विरह-वेदना से युक्त भक्त तो घायल की भाँति जागते हुये भगवद्-दर्शनार्थ रोते ही रहते है।

पीड पुराणी ना पडै, जे अन्तर बेध्या होइ ।
दादू जीवन मरण लौं, पड्या पुकारै सोइ ॥ ८१ ॥

रोगी का रोग पुराना पड़ जाता है तब उसका हृदय उससे विशेष व्याकुल नही होता। किन्तु जिस भक्त का आन्तर हृदय भगवद्-विरह-वेदना से विद्ध हो जाता है, उसकी वह व्यथा पुरानी नही पड़ती, प्रत्युत प्रति-पल बढ़ती हुई असह्य हो जाती है। वह अपने जीवन मे मरण-पर्यन्त उस दु ख मे पडा हुआ अपने परमप्रिय परमात्मा के दर्शनार्थ पुकारता रहता है।

दादू विरही पीड सौं, पड्या पुकारै मिंत ।
राम बिना जीवै नहीं, पीव मिलन की चिंत ॥ ८२ ॥

विरही जन विरह-वेदना मे पडे हुये अपने परम मित्र परमेश्वर के दर्शनार्थ पुकारते रहते है । उनके चित्त मे निरतर प्रियतम के मिलन की इच्छा बनी रहती है । वे निरजन राम के चिन्तन बिना एक क्षण भी जीवित नही रह सकते ।

जे कबहूँ विरहनि मरै, तो सुरति विरहनि होइ ।
दादू पिव पिव जीवतां, मुवाँ भी टेरै सोइ ॥ ८३ ॥

यदि प्रारब्ध-वश कदाचित् प्रियतम के दर्शन बिना ही विरही का देहान्त हो जाता है तो उसकी वृत्ति विरहनी बनकर स्थूल शरीर की स्थिति के समान ही मृत्यु के पश्चात् भी पीव-पीव पुकारती रहती है ।

आमेर मे विरही के शरीरान्त पर नभमार्ग से जाते हुये उसकी वृत्ति का 'पीव-पीव' शब्द, योग बल द्वारा सुनकर यह साखी कही थी । प्रसग कथा दृ सु सि त ९/३३१ मे देखो ।

दादू अपनी पीड पुकारिये, पीड पराई नांहिं ।
पीड पुकारै सो भला, जाके करक[1] कलेजे मांहिं ॥ ८४ ॥

अन्य विरही जनो के विरह-वेदना युक्त शब्दो को सुनाने मात्र से ही कोई विरह-जन्य लाभ को प्राप्त नही कर सकता । अपने हृदय की विरह-वेदना से पुकारने पर ही हरि दर्शन का लाभ होता है । जिसके हृदय मे विरह व्यथा[1] है और उसको शान्त करने के लिए ही निरतर प्रभु को पुकारता है, वही श्रेष्ठ विरही भक्त है ।

विरह-विलाप

ज्यों जीवत मृतक कारणै, गत[1] कर नाखै आप ।
यों दादू कारण राम के, विरही करै विलाप ॥ ८५ ॥

८५-९२ मे विरह-पूर्वक विलाप दिखा रहे है—जैसे जीवित वियोगिनी पतिव्रता नारी अपने मृतक पति के लिए सम्पूर्ण विषयो को त्याग कर स्वय ही अपने देह को भस्म कर डालती है वैसे ही विरही भक्त अपने सभी अहकार नष्ट[1] करके राम के दर्शनार्थ विलाप करते रहते है ।

दादू तलफ-तलफ विरहनि मरै, करि करि बहुत विलाप ।
विरह अग्नि में जल गई, पीव न पूछै बात ॥ ८६ ॥

हम विरही जन प्रभु के दर्शनार्थ बारम्बार विलाप करते हुए तडफ २ कर मर रहे है, विरहाग्नि मे हमारी सम्पूर्ण वासनाये जल गई है, किन्तु खेद है अब भी हमारे प्रियतम परमात्मा हमारे दु ख सुख की बात हम से नही पूछते ।

दादू कहां जाऊँ ? कौन पै पुकारूं ? पीव न पूछै बात ।
पिव बिन चैन न आवई, क्यों भरूँ दिन रात ॥ ८७ ॥

मुझे भगवद्-दर्शन के बिना अपने जीवन मे क्षणभर भी सुख न मिल सकेगा। मै कहाँ जाऊँ और इस क्लेश की निवृत्ति के लिए किससे प्रार्थना करू ? जिनके पास जाकर पुकार सुनानी हे, वे तो मेरे हृदय मे ही स्थित है, मेरे सकल्प मात्र को भी जानते है, तो भी वे प्रियतम मेरे दु ख-सुख की बात मुझसे नही पूछते। उनके बिना मेरे जीवन का एक-एक क्षण कठिनता से निकल रहा है, फिर मै ये रात्रि दिन कैसे व्यतीत कर सकूगा ?

दादू विरह वियोग न सह सकूँ, मो पै सह्या न जाइ।
कोई कहो मेरे पीव को, दरश दिखावै आइ ॥ ८८ ॥

अब मै विरही यह वियोग का दु ख न सह सकूगा। यह अति असह्य हो चला है, मुझसे सहा भी न जायगा। भगवत् प्राप्त सत जनो मे कोई सत तो दया करके मेरे प्रभु को मेरी स्थिति कहो ! जिससे वह मेरे हृदय मे आकर मुझे अपना दर्शन देकर कृतार्थ कर सके।

दादू विरह वियोग न सह सकू, निशि दिन सालै मोहि।
कोई कहो मेरे पीव को, कब मुख देखूं तोहि ॥ ८९ ॥

मै विरही वियोग-जन्य दु ख नही सह सकता, कारण यह तो रात-दिन मुझे व्याकुल कर रहा है। भगवत् साक्षात्कार प्राप्त कोई महापुरुष तो मेरे प्रियतम को, मेरी यह प्रार्थना सुनाओ-मै आपका मुख कब देख सकूगा ? सभव है नियत समय ज्ञात होने पर दर्शनाशा से मेरे प्राण देह से न निकले।

दादू विरह वियोग न सह सकूं, तन मन धरै न धीर ।
कोई कहो मेरे पीव को, मेटै मेरी पीर ॥ ९० ॥

मै विरही प्रभु-वियोग नही सहन कर सकूगा, क्योकि मेरा तन अति कृश होने से और मन प्रभु-साक्षात्कार की आशा से अधीर हो रहा है। अत भगवत् प्राप्त कोई दयालु पुरुष तो मेरे प्रियतम को मेरी स्थिति कहो, सम्भव है मेरी स्थिति सुनने से उन्हे दया आ जाय और वे मुझे दर्शन देकर मेरी वियोग-व्यथा नष्ट कर दे।

दादू कहै—साधु दुखी संसार में, तुम बिन रह्या न जाइ ।
औरो के आनन्द है, सुख सौ रैनि बिहाइ ॥ ९१ ॥

भगवन् ! इस ससार मे आपके विरही सत ही दुखी है। आपके दर्शन बिना उनसे सुख-पूर्वक नही रहा जा सकता। अन्य सासारिक प्राणी तो मायिक पदार्थों की प्राप्ति मे ही आनन्द मानकर अपनी आयु-रात्रि अज्ञान-निद्रा मे ही सुख से व्यतीत कर रहे है।

दादू लाइक हम नहीं, हरि के दरशन जोग ।
बिन देखे मर जाहिंगे, पिव के विरह वियोग ॥ ९२ ॥

ज्ञात होता है- अभी हम हरि के दर्शन करने मे समर्थ यथार्थ साधन करने के योग्य नहीं हो सके है। अत प्रियतम के दर्शन बिना ही उनके वियोग जन्य-विरह-दु ख से दु खी होकर मर जायेगे।

विरह पतिव्रत

दादू सुख साँई सौं, और सबै ही दु:ख।
देखूँ दर्शन पीव का, तिस ही लागै सुख ॥ ९३ ॥

९३-९४ मे विरह-पूर्वक पतिव्रत दिखा रहे है—हम विरही जनो को तो भगवद्-दर्शन से ही सुख मिल सकेगा। अन्य सपूर्ण मायिक पदार्थों की प्राप्ति मे तो हमे दु ख ही होता है। प्रियतम ! अब ऐसी कृपा करिये, जिससे हम आपके दर्शन निरतर करते रहे। उस निरतर दर्शन करने रूप कार्य मे लगे रहने से ही, हमे अखड सुख मिलेगा।

चंदन शीतल चन्द्रमा, जल शीतल सब कोइ।
दादू विरही राम का, इन सौं कदे न होइ ॥ ९४ ॥

चन्दन, चन्द्रमा और जल के शीतादि गुणो से सर्प, चकोर तथा मीनादि सभी को शाति प्राप्त होती है, किन्तु हम राम के विरही जनो को राम दर्शन बिना इन चन्दनादि सासारिक पदार्थों से सुख कभी न हो सकेगा।

विरही-विरह-लक्षण

दादू घाइल दर्दवंद, अंतर करै पुकार।
साँई सुनै सब लोक में, दादू यहु अधिकार ॥ ९५ ॥

९५-९६ मे विरही तथा विरह के लक्षण कह रहे है—विरही विरह-बाणाघात से घायल होकर दु खी रहते है और प्रभु के दर्शनार्थ आन्तर हृदय मे निरतर पुकारते रहते है। कारण, प्रभु व्यापक होने से सभी लोको मे सभी की आन्तर पुकार सुन लेते है। मेरा भी यही अधिकार है कि प्रभु को पुकारता ही रहू।

दादू जागै जगत-गुरु, जग सगला सोवै।
विरही जागे पीड सौं, जे घाइल होवै ॥ ९६ ॥

इस ससार मे अज्ञान-निद्रा से सर्वथा मुक्त होकर तो एक जगद्गुरु परमात्मा ही जागता है और जो भगवद्-विरह-बाण से विद्ध होकर घायल हो रहे है, वे उस पीडा के कारण जागते है। अन्य भगवद्-विमुख सारा ससार मोह-निद्रा मे प्रसुप्त है।

विरह-ज्ञानाग्नि

विरह अग्नि का दाग दे, जीवत मृतक गोर।
दादू पहली घर किया, आदि हमारी ठौर ॥ ९७ ॥

कुछ लोग देहान्त होने पर देह को जलाने वा मिट्टी मे दबाने से सुगति मानते है अन्यथा दुर्गति, उसी प्रथा को आगे रख कर कह रहे है—हमने तो अपने शरीर को विरहाग्नि से और अज्ञान को ज्ञानाग्नि से जलाकर तथा जीवितावस्था मे ही मृतक समान निर्द्वन्द्व हो सहजावस्था रूप कब्र मे प्रविष्ट होकर, मरने से पहले ही हमारे ब्रह्मरूप आदि स्थान मे निष्ठा रूप घर तैयार कर लिया है अर्थात् ब्रह्मस्वरूप मे ही स्थित रहते है।

विरह पतिव्रत

दादू देखे का अचरज नहीं, अणदेखे का होइ ।
देखे ऊपरि दिल नही, अणदेखे कों रोइ ॥ ९८ ॥

विरह-पूर्वक पतिव्रत दिखा रहे है—देखे हुये मायिक प्रपच को देखने मे कोई आश्चर्य की बात नही। जिन परमात्मा का अब तक दर्शन नही हुआ है, उनका देखना ही आश्चर्य रूप माना जाता है। अत देखे हुये मायिक प्रपच पर अपना मन न लगा कर विना देखे हुये भगवान् के दर्शनार्थ ही विरह-पूर्वक रोते रहना चाहिए। आमेर मे दो सिद्ध वद गुफा मे घुसकर महाराज के पास बैठ काश्मीर मे दौड़ते हुये घोडे देख कर बात करने लगे थे—ये दादूजी को नही दीखते होगे ? इस पर यह साखी कही थी। प्रसग कथा दृ सु सि त ७/२९१ मे देखो।

विरह उपजनि

पहली आगम विरह का, पीछै प्रीति प्रकाश ।
प्रेम मगन लै लीन मन, तहां मिलन की आश ॥ ९९ ॥

९९-१११ मे विरह उत्पत्ति आदि विरह-विषयक विचार कह रहे है—प्रथम हृदय मे भगवद्-विरह प्रकट होता हे, फिर भगवान् मे विशेष प्रीति प्रकट होती है। पश्चात् भक्त का मन प्रेम मे निमग्न रहने लगता है और वृत्ति भगवत्-स्वरूप मे लीन रहने लगती है, तब निश्चय-पूर्वक भगवत् मिलन की आशा हो जाती है।

विरह वियोगी मन भला, साँई का वैराग ।
सहज संतोषी पाइये, दादू मोटे भाग ॥ १०० ॥

भगवद्-दर्शनार्थ विषयो से विरक्त, स्वाभाविक सतोषी, निर्मल मन, वियोगी भक्त जब विरह-वेदना से विकल रहता है, तभी भगवान् प्राप्त होते है और जिसे भगवत्, साक्षात्कार हो जाता है—वही ससार मे बड़भागी माना जाता है।

दादू तृषा बिना तन प्रीति न उपजै, शीतल निकट जल धरिया ।
जनम लगै जिव पुणग[1] न पीवै, निर्मल दह दिश भरिया ॥ १०१ ॥

समीप मे शीतल जल रखा होने पर भी प्यास बिना प्राणी के मन मे उसे पान करने की रुचि नहीं होती, वह एक बिन्दु[1] भी नही पीता। वैसे ही शुद्ध ब्रह्म अस्ति, भाति, प्रिय रूप से सर्वत्र व्यापक है किन्तु जब तक जीव उन्हे प्राप्त करने के लिए विरह-वेदना से व्यथित नही होता, तब तक नही मिलते।

दादू क्षुधा बिना तन प्रीति न उपजै, बहु विधि भोजन नेरा ।
जनम लगैं जिव रती न चाखै, पाक पूरि बहुतेरा ॥ १०२ ॥

विविध प्रकार के बहुत से भोजन समीप मे पड़े रहने पर भी यदि प्राणी को क्षुधा न हो तो उनके खाने की रुचि उसके मन मे नही होती। वैसे ही तृप्तिकारक सपूर्ण पाको का शिरोमणि परब्रह्म-पाक अपनी अनन्त महिमा द्वारा सभी विश्व मे परिपूर्ण है किन्तु विरह-वेदना

बिना जीव जीवन-भर दौड-धूप मचा कर भी ब्रह्मानन्द का किंचित् मात्र भी अनुभव नही कर सकता।

दादू तपत बिना तन प्रीति न उपजै, संग ही शीतल छाया ।
जनम लगैं जिव जाणे नांहीं, तरुवर त्रिभुवन राया ॥ १०३ ॥

शीतकाल मे अति निकट श्रेष्ठ वृक्ष की शीतल छाया हो तो भी तेज धूप के बिना उसमे बैठने की रुचि नही होती। वैसे ही जब तक विरह-व्यथा प्रकट नही होती, तब तक प्राणी त्रिलोक-स्वामी परमात्मा के स्वरूप को जानने के लिए जन्म-पर्यन्त यत्न करे तो भी नही जान पाता।

दादू चोट बिना तन प्रीति न उपजै, औषधि अंग रहंत ।
जनम लगैं जिव पलक न परसै, बूंटी अमर अनंत ॥ १०४ ॥

जब तक रोग नही होता, तब तक अपने शरीर के पास कोट की जेब मे औषधि रहने पर भी उसके खाने की रुचि नही होती, वैसे ही जब तक विरह-व्यथा नही होती तब तक अमर करने वाली अनन्त परमात्मा रूप बूटी को जीव जीवन भर प्रयत्न करके एक क्षण भर के लिए भी प्राप्त नही कर सकता।

दादू चोट न लागी विरह की, पीड न उपजी आइ ।
जागि न रोवै धाह दे, सोवत गई बिहाइ ॥ १०५ ॥

जिनके भगवद्-विरह की चोट नही लगी, उनके हृदय मे भगवद् प्राप्ति के लिए व्यथा भी नहीं हुई और वे मोह-निद्रा से जागकर भगवद्-दर्शनार्थ धाड़ मार-मार रोये भी नही। ऐसे सासारिक प्राणियो की आयु अज्ञान-निद्रा मे सोते-सोते ही बीत गई।

दादू पीड न ऊपजी, ना हम करी पुकार ।
तातैं साहिब ना मिल्या, दादू बीती बार ॥ १०६ ॥

न तो हमारे मे विरह-वेदना प्रकट हुई और न व्याकुल होकर हमने दर्शनार्थ भगवान् की प्रार्थना ही की। इसीलिए हमे भगवान् नही मिले और हमारी आयु का समय व्यर्थ ही व्यतीत हो गया।

अंदर पीड न ऊभरै, बाहर करै पुकार ।
दादू सो क्यों कर लहै, साहिब का दीदार ॥ १०७ ॥

जिसके हृदय मे विरह-व्यथा तो उत्पन्न हुई नही और केवल लोक दिखावे के लिये वाहर से पुकारता है, वह भगवत् का साक्षात्कार कैसे कर सकता है ?

मन ही मांहीं झूरणा, रोवै मन ही मांहिं ।
मन ही मांहीं धाह दे, दादू बाहर नांहिं ॥ १०८ ॥

प्रभु दर्शन के इच्छुक विरही को चाहिए—अपने मन मे ही विलाप करते हुए धाड मार २ कर रोवे, वाहर लोक दिखावे के लिए रोना आदि व्यवहार न करे।

बिन ही नैनहुँ रोवणा, बिन मुख पीड़ पुकार ।
बिन ही हाथो पीटणा, दादू बारबार ॥ १०९ ॥

भगवद्-विरही जन यद्यपि वियोगिनी नारी के समान बाहर से रोते, पुकारते और शिर आदि को अपने हाथो से पीटते तो नही दिखाई देते, किन्तु उनके अन्त करण मे ये क्रियाए बारबार होती ही रहती है।

प्रीति न उपजै विरह बिन, प्रेम भक्ति क्यों होइ ।
सब झूठे दादू भाव बिन, कोटि करै जे कोइ ॥ ११० ॥

विरह बिना हृदय मे प्रीति प्रकट नही होती और जिसमे प्रेम का अँकुर ही नहीं, उससे प्रेमाभक्ति कैसे हो सकती है ? परम प्रेम के बिना यदि कोई भगवद्-दर्शनार्थ कोटि उपाय करे तो भी वे मिथ्या ही है, उनसे दर्शन न होगा।

दादू बातों विरह न ऊपजै, बातों प्रीति न होइ ।
बातो प्रेम न पाइये, जिनि रु पतीजै कोइ ॥ १११ ॥

केवल विरह और प्रीति उत्पन्न होने की बातो से विरह और प्रीति नहीं उत्पन्न होते। प्रेम की बाते करने से ही प्रेम नही मिलता। केवल इनकी बाते करने वाले पर ऐसा विश्वास न करना चाहिए कि—यह वास्तव मे विरही तथा प्रेमी भक्त है।

विरह-उपदेश

दादू तो पिव पाइये, कश्मल[1] है सो जाइ ।
निर्मल मन कर आरसी, मूरति मांहिं लखाइ ॥ ११२ ॥

११२-११५ मे विरह सम्बन्धी उपदेश कर रहे है—यदि विरह द्वारा हृदय के पापादि[1] दोष नष्ट हो जायँ तो प्रभु मिल सकते है। मन-दर्पण को निर्मल करो फिर तो भीतर ही प्रभु-मूर्ति दिखाई देने लगेगी।

दादू तो पिव पाइये, करिये मंझ विलाप ।
सुनि है कबहुँ चित्त धरि, परकट होवै आप ॥ ११३ ॥

यदि भगवद्-विरह से व्यथित होकर, उनके दर्शनार्थ अपने अन्त करण मे ही विलाप करते रहोगे तो वे कभी सुनकर अपने मन मे तुम्हारी बात तुम्हे दर्शन देने के लिये रख लेंगे और स्वय तुम्हारे हृदय मे प्रकट हो जायेंगे।

दादू तो पिव पाइये, कर साई की सेव ।
काया मांहि लखाइसी, घट ही भीतर देव ॥ ११४ ॥

यदि विरह-वेदना सहित भगवान् की भक्ति की जाय तो वे प्राप्त हो जाते है। वे निरजनदेव अन्त करण मे ही साक्षी रूप से स्थित है और भक्ति की परिपाकावस्था मे काया के भीतर ही दीख जायेंगे।

दादू तो पिव पाइये, भावै[1] प्रीति लगाइ ।
हेजैं[2] हरि बुलाइये, मोहन मंदिर आइ ॥ ११५ ॥

यदि श्रद्धा[1] पूर्वक भगवान् मे प्रीति की जाय तो वे प्राप्त हो जाते है। प्रेम[2] पूर्वक हरि का आह्वान करो, वे विश्व-विमोहन भगवान् तुम्हारे हृदय-मदिर में आ जायेगे।

विरह-उपजनि

दादू जाके जैसी पीड है, सो तैसी करै पुकार ।
को सूक्षम को सहज में, को मृतक तिहिं बार ॥ ११६ ॥

त्रिविध विरह उत्पत्ति दिखा रहे है—जिस विरही भक्त के हृदय मे जैसी विरह-वेदना होती है, वह वैसी ही पुकार करता है। जिसमे अल्प व्यथा होती है वह किंचित् समय पुकारता है, जिसमे तीव्र होती है वह स्वाभाविक जीवन भर पुकारता रहता है और जिसमे तीव्रतर अवस्था आ जाती है, वह तो एक क्षण भर का वियोग भी सहन नहीं कर सकता, तत्काल ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

विरह-लक्षण

दरद हि बूझे दरदवंद, जाके दिल होवै ।
क्या जाणै दादू दरद की, नींद भर सोवै ॥ ११७ ॥

विरह का लक्षण विरही जानता है, यह कह रहे है—जिसके हृदय मे विरह-व्यथा उत्पन्न हुई है, वही उसको जानता है। जिनके हृदय मे प्रकट नही हुई, उन सासारिक प्राणियो को भगवद्-विरह-वेदना का अनुभव नही होती। उनकी तो विषय-सुख मे ही अलम् बुद्धि रहती है, अत वे दिन भर भोगो के लिए यत्न करते है और रात्रि को यथेष्ट सोते है, किन्तु भगवद् विरही जन रात-दिन रोते रहते है।

करणी बिना कथनी

दादू अक्षर प्रेम का, कोई पढेगा एक ।
दादू पुस्तक प्रेम बिन, केते पढैं अनेक ॥ ११८ ॥

कर्त्तव्य रहित कथन पर कह रहे है—भगवत् प्रेम रहित अनेक विद्वान् कितनी ही पुस्तके पढते आ रहे है किन्तु भगवान् के अविनाशी प्रेम का पाठ तो कोई विरला एक ही पढ़ेगा वा किसी विरले ने ही पढ़ा होगा।

दादू पाती प्रेम की, विरला बांचै कोइ ।
वेद पुराण पुस्तक पढैं, प्रेम बिना क्या होइ ॥ ११९ ॥

परमेश्वर के प्रेम-पत्र को तो कोई विरले विरही भक्त ही पढते है किन्तु चातुर्य बढाने के लिए अनेक मानव वेद-पुराणादि पुस्तके पढते है, परन्तु प्रेम बिना क्या उन्हे भगवद्-दर्शन हो जाता है ? दर्शन तो प्रेम से ही होते है।

विरह-बाण

दादू कर बिन, शर बिन, कमान बिन, मारै खैंचि कसीस[१]।
लागी चोट शरीर मे, नख शिख सालै सीस ॥ १२० ॥

१२०-१२९ मे विरह-बाणाघात विषयक विचार कह रहे है—भगवान् भक्तजनो के बिना हाथ, बिना शर और बिना धनुष ही निर्दयता[१] पूर्वक खीच कर विरह-बाण मारते है। विरह-बाण की चोट जिनके शरीर मे लग जाती है, उनके शरीर को नख से शिर की शिखा पर्यन्त व्याकुल करती रहती है।

दादू भलका मारै भेद सों, सालै मँझि पराण।
मारण हारा जाणि है, कै जिहिं लागे बाण ॥ १२१ ॥

भगवान् भक्त के विरह-बाण बड़े रहस्य-पूर्वक मारते है। किसी अन्य को तो पता भी नहीं लगता, किन्तु भक्त के मन मे भारी व्यथा होती रहती है। उस व्यथा को या तो मारने वाले भगवान् जानते है या जिसके बाण लगता है, वह जानता है।

दादू सो शर हमको मारिले, जिहि शर मिलिये जाइ।
निश दिन मारग देखिये, कबहूं लागै आइ ॥ १२२ ॥

भगवान्! आप हमे विरह-व्यथा से मारना ही चाहते है, तो वह तीव्रतर विरह-बाण मारिये, जिसके लगते ही हम देहादि आसक्ति से ऊचे उठकर शीघ्र ही आपसे आ मिले। हम निश-दिन उस तीव्रतर विरह-बाण की प्रतीक्षा कर रहे है—वह कब आकर हमारे लगेगा।

जिहि लागी सो जागि है, बेध्या करै पुकार।
दादू पिंजर पीड है, सालै बारंबार ॥ १२३ ॥

जिसके विरह-बाण की चोट लगी है, वह उससे विद्ध होकर भगवद्-दर्शनार्थ पुकारता हुआ जागता रहता है और उसके हृदय-पिंजरे मे स्थित वह पीड़ा उसे बारबार व्यथित करती रहती है।

विरही सिसकै पीड सौ, ज्यो घायल रण माहि।
प्रीतम मारे बाण भर, दादू जीवै नाहि ॥ १२४ ॥

जैसे रण मे घायल हुआ वीर सिसकता है, वैसे ही विरही विरह-व्यथा से व्याकुल रहता है। प्रियतम प्रभु अपनी शक्ति भर उसके विरह-बाण मारते है किन्तु वह भगवद्-साक्षात्कार बिना विषय-सुखो से सुखी होकर जीवित नहीं रह सकता।

दादू विरह जगावै दरद को, दरद जगावै जीव।
जीव जगावै सुरति को, पंच पुकारै पीव ॥ १२५ ॥

भगवद्-वियोग का अनुभव होने पर उसकी प्राप्ति के लिए व्यथा होने लगती है। उस व्यथा से व्यथित होकर जीव मोह-निद्रा से जाग जाता है और अपनी चित्तवृत्ति को विषयाकार स्थिति

रूप निद्रा से उठाकर भगवदाकार ही रखने लगता है। तब पच ज्ञानेन्द्रियॉं भी भगवत्-परायण होकर उसी को पुकारने लगती है अर्थात् उसी का दर्शन, शब्द, गध, स्पर्श और रस चाहती है।

दादू मारे प्रेम सौं, बेधे साधु सुजाण।
मारणहारे कों मिले, दादू विरही बाण॥ १२६॥

अन्य वीर द्वेष पूर्वक लक्ष्य को सिद्ध करते है और उनका अस्त्र लक्ष्य को नष्ट करके वही गिर पडता है वा मत्र सिद्ध हो तो स्वय वीर के पास लौट आता है, किन्तु भगवान् अपने बुद्धिमान् साधक सत-लक्ष्य को प्रेम पूर्वक विरह-बाण से विद्ध करते है और वह बाण लक्ष्य को बेधकर लक्ष्य के सहित भगवान् मे ही आ मिलता है अर्थात् साधक, साधन और साध्य एक रूप हो जाते है।

सहजैं मनसा मन सधै, सहजैं पवना सोइ।
सहजैं पंचों थिर भये, जे चोट विरह की होइ॥ १२७॥

यदि प्राणी के हृदय मे भगवद्-विरह की चोट लग जाय तो स्वाभाविक ही उसकी मनोवृत्तियाँ अन्तर्मुख होकर मन प्रभु मे स्थिर हो जाता है। मन के स्थिर होने पर प्राण की गति सूक्ष्म होकर वह भी स्थिर हो जाती है। प्राण, मन, निरोध के सिद्ध होते ही पच ज्ञानेन्द्रिये स्वाभाविक ही परमात्मा के स्वरूप मे लग कर स्थिर हो जाती है।

मारणहारा रहि गया, जिहिं लागी सो नांहिं।
कबहूं सो दिन होइगा, यहु मेरे मन मांहिं॥ १२८॥

जिसके भी भगवद्-विरह-बाण की चोट लगी, उसका देहादि अहकार सब नष्ट हो गया और उन असत्य अहकारो के स्थान मे विरह-बाण को मारने वाले भगवान् ही अभेद रूप से स्थिर हो गये। प्रभो ! उक्त प्रकार से मेरा और आपका अभेद होगा, वह दिन कब उदय होगा ? उसे देखने की मेरे मन मे उत्कट अभिलाषा है।

प्रीतम मारे प्रेम सौं, तिनको क्या मारै।
दादू जारे विरह के, तिनको क्या जारै॥ १२९॥

जिन भक्तो का मन भगवद्-विरहाग्नि से जल चुका है, उन्हे काम, शोकादि क्या जलायेंगे ? अर्थात् उनके मन पर कामादि अपना प्रभाव नहीं डाल सकते। जिनको प्रियतम प्रभु ने अपने प्रेम से मारा है, उन्हे काल क्या मारेगा ? वे तो काल-कलना से रहित ब्रह्मरूप हो जाते है।

छिन-विछोह

दादू पडदा पलक का, येता अंतर होइ।
दादू विरही राम बिन, क्यों करि जीवै सोइ॥ १३०॥

विरही भक्त को क्षण का भगवद्-वियोग भी असह्य है, यह कह रहे है—जैसे नेत्र पर पलक का पडदा आ जाता है, तब उसे कुछ भी नही दीखता, वैसे ही विरही भक्त और भगवान् के मध्य

एक क्षण का अन्तराय भी विरही के जीवन को अधकारमय बना देता हे, फिर वह विरही-भक्त राम के साक्षात्कार बिना सुखपूर्वक कैसे जीवित रह सकता है ?

विरह-लक्षण

काया माहैं क्यो रह्या, बिन देखे दीदार ।
दादू विरही बावरा, मरै नही तिहिँ बार ॥ १३१ ॥

१३१-१३२ मे विरह लक्षण कह रहे है—हे विरही भक्त ! भगवत् साक्षात्कार के बिना तेरा प्राण शरीर मे कैसे रह रहा है ? उत्तम विरही तो मीन-वारि सम भगवत् मिलन बिना जीवित नहीं रह सकता। जो विरही भगवान् के लिए तत्काल नही मर सकता, वह वास्तविक विरह की स्थिति से अनभिज्ञ तथा पागल है।

बिन देखे जीवै नहीं, विरह का सहिनाण ।
दादू जीवै जब लगै, तब लग विरह न जाण ॥ १३२ ॥

वास्तव मे तीव्र विरह प्रकट होने पर विरही भक्त भगवान् को बिना देखे जीवित नहीं रह सकता। यही उत्तम विरह का लक्षण है। जब तक सुख पूर्वक जीवित है, तब तक उत्तम विरह नहीं जानना चाहिए।

विरह-विनती

रोम-रोम रस प्यास है, दादू करहि पुकार ।
राम घटा दल उमगि कर, बरसहु सिरजन हार ॥ १३३ ॥

विरह पूर्वक दर्शनार्थ विनय कर रहे है—राम ! आपके दर्शन-रस की प्यास मेरे रोम २ को लग रही है। सृष्टिकर्त्ता ! मै विरही बारबार प्रार्थना कर रहा हूँ-जैसे बादल समूह की घटा उमग कर जल वर्षाती है वैसे ही आप मुझ पर प्रसन्न होकर दर्शनानन्द रस वर्षाइये।

विरही-विरह-लक्षण

प्रीति जु मेरे पीव की, पैठी पिंजर मांहिं ।
रोम-रोम पिव-पिव करै, दादू दूसर नांहिं ॥ १३४ ॥

१३४-१३५ मे विरही और विरह के लक्षण कह रहे है—मेरे शरीर पिंजर मे प्रियतम प्रभु की प्रीति प्रवेश करके स्थिर हो गई है। मेरा रोम २ पीव २ ही पुकारता है। अब मेरा प्रभु के बिना अन्य लक्ष्य नहीं रहा है।

सब घट श्रवणा सुरति सौ, सब घट रसना बैन ।
सब घट नैना ह्वै रहै, दादू विरहा ऐन ॥ १३५ ॥

जिस समय विरही भक्त का सपूर्ण शरीर श्रवण रूप होकर भगवत् का आतरनाद सुनने के लिए, सुरति रूप होकर ध्यान करने के लिए, रसना रूप होकर भक्ति-रस पान करने के लिए, नेत्र रूप होकर दर्शन के लिए निरतर तत्पर रहता है, तब ही उसमे विरह का प्रत्यक्ष रूप माना जाता है।

विरह-विलाप

रात दिवस का रोवणाँ, पहर पलक का नांहिं ।
रोवत-रोवत मिल गया, दादू साहिब मांहिं ॥ १३६ ॥

१३६-१३९ मे विरह पूर्वक विलाप दिखा रहे है—भगवद्-विरही जनो का रुदन रात-दिन निरतर होता रहता है, सासारिक मनुष्यों के समान पहर वा क्षण का नही होता। वे तो भगवद्-दर्शनार्थ रोते-रोते अन्त मे भगवत् स्वरूप मे ही मिल जाते है।

दादू नैन हमारे बावरे, रोवै नहिं दिन रात।
सांई संग न जागहीं, पिव क्यों पूछै बात ॥ १३७ ॥

हमारे नेत्र पागल है, इसीलिए तो अपनी तृप्ति के कारण भगवद्-दर्शनार्थ दिन-रात नही रो रहे है। हमारा मन भी नाम-चिन्तन द्वारा भगवान् के साथ नही जागता, फिर ऐसी स्थिति पर प्रियतम प्रभु हमारे दु.ख सुख की वात कैसे पूछेगे ?

नैनहुँ नीर न आइया, क्या जाणैं ये रोइ।
तैसे ही कर रोइये, साहिब नैनहुँ जोइ ॥ १३८ ॥

भगवद्-विरह वेदना मेरे हृदय को व्यथित कर रही है किन्तु मेरे इन नेत्रो मे तो किंचित् भी अश्रु-जल नही आया है। ठीक है, ये मायिक भोग-पदार्थों के लिए ही रोना सीखे है, मायातीत ब्रह्म प्राप्ति के लिए रोने की पद्धति को ये क्या जाने ? किन्तु तुम विरही-जनो को तो उसी प्रकार रोना चाहिए, जिस प्रकार शीघ्र ही अपने नेत्रो से भगवद् का दर्शन कर सके।

दादू नैन हमारे ढीठ[1] हैं, नाले नीर न जांहिं।
सूके सरां सहेत वै, करंक भये गलि मांहिं ॥ १३९ ॥

हमारे नेत्र अति निर्लज्ज[1] है, कारण, भगवद्-विरह-व्यथा होने पर भी इनसे अश्रुजल के नाले नही चल रहे है और यदि भीतर जल ही नही रहा है तो सूखे सरोवर की मच्छियो के समान अडिग स्नेह से गल कर पजर क्यो नही हो गये ?

विरही-विरह-लक्षण

दादू विरह प्रेम की लहरि में, यहु मन पगुल होइ ।
राम नाम में गलि गया, बूझै विरला कोइ ॥ १४० ॥

विरही और विरह का लक्षण कह रहे है—विरह-सरिता की प्रेम-तरग मे यह मन विषयाशा रूप पैरो से रहित होकर निश्चल हो जाता है और राम-नाम-स्मरण द्वारा सब अहकार गल जाने पर मन नाम के साथ अभेद हो जाता है, क्षण भर भी स्मरण नहीं त्यागता। इस स्थिति को कोई विरला सत ही जान पाता है।

विरहाग्नि

विरह अग्नि में जल गये, मन के मैल विकार ।
दादू विरही पीव का, देखेगा दीदार ॥ १४१ ॥

१४१-१४३ मे विरहाग्नि विषयक विचार कह रहे है—जिसके मन के पाप और कामादि विकार विरहाग्नि से जल गये है, वही विरही अपने प्रभु का साक्षात्कार कर सकेगा।

विरह अग्नि मे जल गये, मन के विषय विकार ।
तातैं पंगुल ह्वै रह्या, दादू दर दीदार ॥ १४२ ॥

हमारे मन की विषय-वासना और कामादि विकार विरहाग्नि मे जल गये है। इसी से यह अब लोकान्तर मे जाने की इच्छा रूप पैरो से रहित होकर भगवद्-दर्शनार्थ एकाग्रता रूप द्वार पर स्थित है।

जब विरहा आया दरद सौ, तब मीठा लागा राम ।
काया लागी काल है, कड़वे लागे काम ॥ १४३ ॥

जब तीव्र वेदना सहित भगवद्-विरह हमारे मे प्रकट हुआ, तब एकमात्र राम ही मधुर लगने लगे। प्रथम देहासक्ति होने से जो देह-सेवा ही प्रिय लगती थी, अब वह देहासक्ति काल रूप भासने लगी है, कारण देहासक्ति से ही वारम्बार मृत्यु होती है। प्रथम जो सासारिक भोग-प्राप्ति के कार्य प्रिय लगते थे, वे अब अति कटु प्रतीत होने लगे है, क्योकि उन सकाम कर्मों का ही तो फल जन्मादि ससार है।

विरह-वाण

जब राम अकेला रह गया, तन मन गया विलाइ ।
दादू विरही तब सुखी, जब दरश परस मिल जाइ ॥ १४४ ॥

विरह-बाणाघात का फल कह रहे है—जब विरह-बाणाघात से देहाध्यास और मन के विकार नष्ट हो जाते है, तब मन मे एकमात्र राम का चिन्तन ही रह जाता है। फिर जब राम के दर्शन करके राम मे ही मिल जाता है, तब ही विरही सुखी होता है।

विरही-विरह-लक्षण

जे हम छाडैं राम को, तो राम न छाडै ।
दादू अमली अमल तै, मन क्यों करि काढै ॥ १४५ ॥

१४५-१५२ मे विरही और विरह के लक्षण कह रहे है—जैसे नशेबाज नशे को छोडना चाहे तो भी नशे को मन से किस प्रकार निकाल सकता है ? अर्थात् नही। वैसे ही जब हम विरही विरह की तीव्रावस्था मे राम को छोडना चाहे, तो भी राम हमको नही छोड़ते।

विरहा पारस जब मिलै, विरहनि विरहा होइ ।
दादू परसै विरहनी, पिव पिव टेरै सोइ ॥ १४६ ॥

जब विरही भक्त को पारस के समान शुद्ध और उत्तम विरहावस्था की प्राप्ति होती है, तब विरही विरह-रूप ही हो जाता है और विरह के साथ अभेद हुआ वह विरही अपने प्रियतम को पीव-पीव पुकारता हुआ उसी मे मिल जाता है।

आशिक[1] माशूक[2] ह्वै गया, इश्क कहावै सोइ ।
दादू उस माशूक का, अल्लह आशिक होइ ॥ १४७ ॥

जब प्रेमी[1], प्रेम-पात्र[2] हो जाता है तब ही उसका प्रेम सच्चा माना जाता है। इस प्रकार जब विरही भक्त भगवत्-स्वरूप मे अभेदावस्था को प्राप्त करता है, तब स्वय भगवान् उसके प्रेमी बन जाते है और वह प्रेम-पात्र बन जाता है। सीकरी शहर मे अकबर बादशाह ने प्रश्न किया था—सच्चे प्रेम और सच्चे प्रेमी का क्या लक्षण है ? इस साखी से उसी का उत्तर दिया था।

राम विरहनी ह्वै रह्या, विरहनि ह्वै गई राम।
दादू विरहा बापुरा, ऐसे कर गया काम ॥ १४८ ॥

जब भगवान् के प्रति भक्त का विनीत विरह अनन्यभाव से अन्त करण मे आया, तब एक ऐसा विचित्र कार्य कर गया, जो किसी अन्य से होना असभव ही था। वह बता रहे है—राम विरहनी हो गये और विरहनी राम बन गई अर्थात् राम और विरही भक्त मे तादात्म्य हो गया।

विरह बिचारा ले गया, दादू हमको आइ।
जहॅ अगम अगोचर राम था, तहॅ विरह बिना को जाइ॥ १४९ ॥

भगवान् के विनीत विरह ने हमारे अन्त करण मे आकर, हमे सासारिक भोगासक्ति से उठाया और मन से अगम, इन्द्रियो के अविषय, राम के वास्तव-स्वरूप मे अभेद भाव से स्थिर कर दिया है। उस राम के स्वरूप मे विरह बिना कोई भी प्रवेश नही कर सकता। अत विरह ने हमारा बड़ा उपकार किया है।

विरह बापुरा आइ कर, सोवत जगावै जीव ।
दादू अंग लगाइ कर, ले पहुँचावै पीव ॥ १५० ॥

भगवान् का विनीत विरह भक्त के हृदय मे आकर, भोगासक्ति रूप निद्रा से उसके अन्त करण को जगाता है और अपने स्वरूप के साथ लगाकर अर्थात् विरही बनाकर, सासारिक भावनाओ से ऊचे उठा लेता है और भगवत्-स्वरूप मे पहुँचा देता है। भक्त और भगवान् को एक कर देता है।

विरहा मेरा मीत है, विरहा वैरी नांहिं ।
विरहा को वैरी कहै, सो दादू किस मांहिं ॥ १५१ ॥

यद्यपि विरह शत्रु के समान व्यथित करता है किन्तु शत्रु नही है, प्रत्युत हमारा तो सच्चा मित्र है। क्योकि उससे होने वाले कष्ट का फल अखडानन्द रूप परमात्मा की प्राप्ति है। जो विरह को शत्रु कहता है, न जाने वह व्यक्ति किस स्थिति मे है ? अर्थात् भगवद् भक्त न होकर सासारिक प्राणी ही हो सकता है।

दादू इश्क अलह की जाति है, इश्क अलह का अंग।
इश्क अलह वजूद है, इश्क अलह का रंग॥ १५२ ॥

प्रेम ही ईश्वर की जाति है, प्रेम ही उसे प्रिय हे, प्रेम ही उसका देह है और प्रेम ही उसका रग है। अकबर वादशाह ने चार प्रश्न किये थे— १ ईश्वर की जाति क्या है ? २ उसको प्रिय क्या है ? ३ उसके शरीर का आकार कैसा है ? ४ उसका रग कैसा हे ? उन्ही का उत्तर इस साखी से दिया था।

साधु-महिमा

दादू प्रीतम के पग परसिये, मुझ देखन का चाव ।
तहाँ ले शीश नवाइये, जहाँ धरे थे पांव ॥ १५३ ॥

भगवान् और सतो का जहा चरण स्पर्श हो, उस स्थान की तथा सतो की महिमा वता रहे है—विरह द्वारा प्रियतम परमात्मा को प्राप्त होने पर विरही परमात्मारूप ही हो जाते है। अत उन प्रियतम रूप सतो के चरण स्पर्श करने चाहिए। मुझे भी ऐसे सतो के दर्शन करने का उत्साह रहता है। जहा भी प्रभु ने ओर सतो ने अपने चरण रखे थे, वहा मस्तक नवाकर वहा की धूलि शिर पर धारण करनी चाहिए। दादूजी महाराज जब तक अहमदावाद मे रहे तब तक प्रतिदिन काकरिया तालाब पर जहा उनको वृद्ध रूप मे भगवान् का दर्शन हुआ था, उस भूमि को प्रणाम करने जाते थे और यह साखी बोला करते थे।

विरह-पतिव्रत

बाट विरह की सोधि कर, पंथ प्रेम का लेहु।
लै के मारग जाइये, दूसर पाँव न देहु ॥ १५४ ॥

१५४-१५५ मे जैसे पतिव्रता एक पति परायण होकर रहती है, वैसे ही एक विरह-साधना का व्रत लेने की प्रेरणा कर रहे है—विरह की प्राप्ति का साधन खोज करके प्रेम का पथ पकड़ो और चित्त-वृत्ति को भगवत्-स्वरूप मे लीन करके भगवत् मे ही प्रवेश करो। इस विरह रूप भगवत्-प्राप्ति के साधन से भिन्न नाना सकाम साधनो मे मत पड़ो।

विरहा बेगा भक्ति सहज मे, आगे पीछे जाइ।
थोडे माहीं बहुत है, दादू रहु ल्यौ लाइ ॥ १५५ ॥

तीव्र विरह शीघ्र ही भगवान् से मिला देता है और नवधादि भक्ति के साधक अपनी साधनानुसार आगे पीछे सहजावस्था मे जाकर भगवान् से मिलते है। विरह थोड़े समय मे ही बहुत लाभ पहुँचाता है। अत विरह द्वारा ही अपनी वृत्ति सदा भगवान् मे लगाये रहो।

विरह-बाण।

विरहा बेगा ले मिलै, ताला-बेली पीर ।
दादू मन घाइल भया, सालै सकल शरीर ॥ १५६ ॥

विरह-बाण की विशेषता कह रहे है—जब तीव्र विरह-बाण लगता है, तब अत्यन्त व्याकुलता-प्रद पीड़ा के सहित मन घायल हो जाता है। वह वेदना सारे शरीर को व्यथित करती है। ऐसा विरह शीघ्र ही सासारिक भोगासक्ति से ऊचा उठाता है और अपने साथ लेकर भगवान् मे मिला देता है।

विरह-विनती

आज्ञा अपरंपार की, बसि अम्बर भरतार ।
हरे पटम्बर पहरि कर, धरती करै सिंगार ॥ १५७ ॥

१५७-१५९ मे विरह पूर्वक विनय कर रहे है—हे अपरंपार, विश्व-भर्तर, परमात्मा ! मै आपकी आज्ञानुसार, आपको प्राप्त करने के लिए उद्यत् हो रहा है। आप मेरे हृदयाकाश मे निवास करके अपनी कृपा-वृष्टि करे। जिससे मेरे अन्त करण की धारणा शक्ति-धरणी, सर्व हितैषिता रूप हरे रग से रजित, आपके स्वरूप सबधी विचार-वस्त्र धारण करके अपनी शोभा बढायेगी।

वसुधा[1] सब फूलै फलै, पृथ्वी अनन्त अपार ।
गगन गर्ज जल थल भरै, दादू जै जै कार ॥ १५८ ॥

उस धारणा शक्ति रूप पृथ्वी[1] के आश्रय रहने वाले सपूर्ण दैवी सपदा के गुण रूप वनस्पति विशेष रूप से फूले फलेगी, फिर तो यह मेरी बुद्धि रूप पृथ्वी अनन्त प्राणियो को अपार सुख-प्रद बन जायेगी। अत आप मेरे हृदयाकाश मे, स्वस्वरूप-घटा से प्रेमाभक्ति प्रदान रूप गर्जना करते हुये ज्ञान-जल से मेरे अन्त करण-स्थल को परिपूर्ण कर दीजिये। ऐसा करते ही मेरी अज्ञान पर विजय होकर जय जयकार रूप ध्वनि होने लगेगी।

काला मुँह कर काल का, सांई सदा सुकाल ।
मेघ तुम्हारे घर घणां, बरसहु दीनदयाल ॥ १५९ ॥

इति विरह का अग समाप्त ॥ ३ ॥ सा ४४७।

दीनदयालु स्वामिन् ! आपके स्वरूप रूप घर मे शक्ति रूप मेघो की कमी नही है। अत आप ज्ञान-जल वर्षा द्वारा मेरे अन्त करण प्रदेश के सासारिक तृष्णा-दुष्काल को नष्ट करके ब्रह्मानन्द-सुकाल कर दीजिये। ऑधी ग्राम मे अकाल पीडित जनता के हितार्थ वर्षा करने के लिए इन्द्र को १५७-१५९ से प्रेरित किया था। प्रसग कथा दृ सु. सि त ९/१५६ मे देखो।

इन्द्र को प्रेरित करने के पक्ष का अर्थ इस प्रकार है—हे प्रभो भर्ता इन्द्र ! तुम्हे अपरपार परमात्मा की आज्ञा है—तुम नभमडल मे बसते हुए वर्षा द्वारा पृथ्वी की पालना करो। फिर भी आप वर्षा क्यो नहीं कर रहे हैं ? अब आप शीघ्र ही वर्षा करे, जिससे यह धरणी वृक्षावलि रूप हरा वस्त्र पहन कर सुशोभित होगी॥ १५७॥ सभी वसुधा के वृक्षादि फूल-फल देगे, पृथ्वी मे अन्नादि अनन्त पदार्थ उत्पन्न होंगे, उनसे अपार प्राणियो को सुख मिलेगा। अत आप नभ-मडल मे गर्जना करते हुए जल के द्वारा पृथ्वी के सरोवरादि स्थलो को परिपूर्ण कर दे, जिससे पृथ्वी पर आनद हो जाय॥ १५८॥

दीनदयालु पृथ्वीपते ! वर्षा करो, क्योकि तुम्हारे घर मे मेघो की तो कमी है नही फिर दुष्काल को नष्ट करके सदा के लिए सुकाल क्यो नही करते ? आपको शीघ्र वर्षा करनी चाहिए ॥ १५९॥ यह प्रेरणा पूर्ण होते ही इन्द्र ने वर्षा कर दी थी।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका विरह का अग समाप्त ॥३॥

अथ परिचय का अंग ४

विरह की अन्तावस्था मे ध्येय का साक्षात्कार होता है। अत. अब साक्षात्कार सम्बन्धी विचार रूप परिचय का अग कहने में प्रवृत्त हुये प्रथम मगल कर रहे है:—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत: ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारगत: ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक विरह-व्यथा से पार होकर परब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरजन राम, सद्गुरु और सब सतो को हम अनेक प्रणाम करते है।

दादू निरंतर पिव पाइया, तहँ पंखी उनमनि जाइ ।
सप्तों मंडल भेदिया[1], अष्टैं रह्या समाइ ॥ २ ॥

२-१७ मे साक्षात्कार सम्बन्धी वार्ता कह रहे है—साधन-पक्षो वाला जीवात्मा-पक्षी समाधि मे जाकर जिस निर्विकल्प स्थिति मे परब्रह्म को प्राप्त करता है, उस परब्रह्म को हमने अन्तर-रहित (वृत्यन्तर के व्यवधान से रहित) सदा के लिए प्राप्त कर लिया है। वह पचभूत, अहकार और माया इन सप्त मडलो मे व्यस्त होकर भी इनसे आगे अपनी महिमा रूप अष्टम मडल मे रहता है अर्थात् मायिक प्रपच मे रहकर भी उससे अलग ही है। अन्य अर्थ-समाधि मे जाकर जीवात्मा-पक्षी सप्त धातु से बने हुये शरीर-मडल की आसक्ति, स्वर्गादिक ऊपर से सप्त लोको की भोगासक्ति तोडता[1] है वा चार अन्त करण और तीन गुणो की मर्यादा से आगे बढ़ता है वा सप्त अज्ञान भूमिका और मूलाधारादि सप्त चक्रो को भेदन करता है तब अष्टम ब्रह्म मे अभेद होता है। उस ब्रह्म को हमने अनात्माकार वृत्तियो के अन्तराय से रहित निरतर प्राप्त कर लिया है।

दादू निरंतर पिव पाइया, जहँ निगम[1] न पहुँचै वेद ।
तेज[2] स्वरूपी पिव बसै, कोइ विरला जानैं भेद[3] ॥ ३ ॥

जिन ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप तक शब्द रूप होने से वेद भी शक्ति वृत्ति द्वारा नही पहुँच सकता। उस ब्रह्म को सशय-रहित[1] सदा के लिए हमने प्राप्त कर लिया है। वे नित्य ज्ञान[2] स्वरूप प्रियतम सब मे बसते है किन्तु उनके स्वरूप रहस्य[3] को कोई विरला ज्ञानी सत ही जानता है।

दादू निरंतर पिव पाइया, तीन लोक भरपूर ।
सब सेजों सांई बसै, लोक बतावै दूर ॥ ४ ॥

जो तीन लोको मे परिपूर्ण है, सपूर्ण प्राणियो की हृदय-शय्या पर स्थित है, उसी परब्रह्म का वैकुण्ठादि लोको मे निवास बताकर, अज्ञानी प्राणी उसे दूर बताते है। व्यापक ब्रह्म व्याप्य प्राणियो से दूर कैसे हो सकता है ? वह तो निरन्तर सबको मिला हुआ ही है। अज्ञान के कारण नही भासता।

दादू निरंतर पिव पाइया, जहँ आनन्द बारह मास।
हंस सौं परम हस खेलै, तहँ सेवक स्वामी पास ॥ ५ ॥

जिस सहजावस्था मे बारह-मास ही आनन्द रहता है, उसी मे जाकर हमने प्रियतम ब्रह्म को अखड रूप से प्राप्त किया है। इस पराभक्ति की अवस्था मे ब्रह्म रूप हस से ज्ञानी सत रूप परम हस, अखडानन्द का अनुभव रूप खेल खेलते है, फिर भी यहा सेवक स्वामी से दूर नही रहता, अभेद रूप समीपता मे ही रहता है। खेलनादि भेद प्रतीति मात्र ही भासते है।

दादू रँग भर खेलूं पीव सौं, तहँ बाजै वेणु रसाल ।
अकल पाट पर बैठा स्वामी, प्रेम पिलावै लाल ॥ ६ ॥

६-९ मे अपनी पराभक्ति के आनन्द का विशेष परिचय दे रहे है—ब्रह्मरन्ध्र मे प्राण जाने पर नाद की विष्पत्ति नामक चतुर्थावस्था मे जहा रसीली वशी-ध्वनि सुनाई पडती है, वहा ही हम चित्त वृत्ति-पिचकारी मे परम प्रेम-रग भरकर परब्रह्म से ब्रह्मानन्द खेल खेलते है। हमारे स्वामी परब्रह्म राग द्वेषादि कलाओ से रहित हमारे हृदय-धाम के अष्टदल-कमल-सिहासन पर विराजते है और वे हमारे परमप्रिय प्रभु हमे प्रेम-रस पिलाते है अर्थात् हमसे प्रेम करते है।

दादू रँग भर खेलूं पीव सौं, सेती दीनदयाल ।
निशवासर नहिं तहँ बसै, मानसरोवर पाल ॥ ७ ॥

शुद्ध मन-मानसरोवर के स्थिरता-बाँध पर अर्थात् मन की शुद्ध और स्थिरावस्था मे, जहा अज्ञान-रात्रि और इन्द्रिय ज्ञान-दिन नही रहता, वहा ही दीन-दयालु परमात्मा के साथ हम बुद्धि-वृत्ति-पिचकारी मे ब्रह्मभावना-रग भरके ब्रह्मानन्द फागोत्सव का खेल खेल रहे है।

दादू रँग भर खेलूं पीव सौं, तहँ कबहुं न होइ वियोग ।
आदि पुरुष अंतरि मिल्या, कुछ पूरबले संयोग ॥ ८ ॥

हमारे पूर्वकाल मे करे हुये कुछ साधन रूप कर्म-फल का प्राप्ति रूप सयोग होते ही आदि पुरुष परमात्मा, हमारे शरीर के भीतर हृदय प्रदेश मे ही प्राप्त हुये है। अष्ट-दल-कमल पर निरतर भास रहे है, कभी भी उनका अन्तर्धान रूप वियोग नही होता। वहा ही हम बुद्धि-वृत्ति-पिचकारी मे ब्रह्म-विचार-रग भरकर ब्रह्मानन्द-फागोत्सव-खेल खेल रहे है।

दादू रँग भर खेलूं पीव सौं, तहँ बारह मास वसंत ।
सेवक सदा अनंद है, जुग जुग देखूं कंत ॥ ९ ॥

जिस पराभक्ति की अवस्था मे हम बुद्धि वृत्ति मे अखड ब्रह्माकार रूप रग भर कर, अभेद भावना रूप प्रेमोत्सव का खेल खेलते है, उसमे ससारी प्राणियो के दो मास की वसत ऋतु जैसा फागोत्सव नहीं होता किन्तु बारह मास ही वसत ऋतु जैसा अखड प्रेमोत्सव होता रहता है और हम भक्त जन वहा निरतर अपने स्वामी परब्रह्म का साक्षात्कार करते हुये सदा अखड ब्रह्मानन्द मे ही निमग्न रहते है।

दादू काया अंतरि पाइया, त्रिकुटी केरे तीर।
सहजें आप लखाइया, व्याप्या सकल शरीर ॥ १०॥

१०-१३ मे शरीर के भीतर भगवद उपलब्धि के स्थान और भगवान् का स्वरूप बता रहे है—हमने साधन द्वारा प्रथम शरीर के भीतर त्रिकुटी के तट पर (१ मन पवन बुद्धि वृत्ति की एकाग्रता पर, २ जाग्रतादि तीन अवस्था से आगे तुरीयावस्था मे, ३ तीन गुणो से परे निर्गुण स्थिति मे, ४ आज्ञा चक्र के ऊपर, ५ ज्ञान भक्ति वैराग्य की पूर्णावस्था मे, ६ स्थूल सूक्ष्म कारण शरीर से परे, ७ धारणा ध्यान सविकल्प समाधि से परे ८ ज्ञान की तीन भूमिकाओं से आगे चतुर्थ भूमिका मे, ९ श्रवण मनन निदिध्यासन की परिपाकावस्था मे) परब्रह्म को प्राप्त किया है। पश्चात् उस त्रिकुटी केन्द्र से स्वाभाविक ही हमे संपूर्ण शरीर मे व्यापक रूप भासने लगे थे।

दादू काया अंतरि पाइया, निरन्तर निरधार।
सहजें आप लखाइया, ऐसा समर्थ सार ॥ ११ ॥

हमने जो ब्रह्म शरीर के भीतर प्राप्त किया है, वह सदा एक रस, सपूर्ण मायिक आधारों से रहित माया और मायाकृत अखिल प्रपच का आधार, इच्छा मात्र से जगत् का सृजन, पालन, लय करने की सामर्थ्य संपन्न और ससार का सार तत्त्व है। हमारी अन्त साधना की परिपाकावस्था मे हमे अनायास ही ब्रह्म का ऐसा साक्षात्कार हुआ है।

दादू काया अंतरि पाइया, अनहद वेणु वजाइ।
सहजैं आप लखाइया, शून्य मंडल मे जाइ ॥ १२ ॥

शरीर के भीतर ब्रह्मरन्ध्र मे प्राण जाने पर अनाहत ध्वनि रूप वंशी वजती है, उसे बजाकर अर्थात् नादानुसधान का साधन पूर्ण करके, शून्य चक्र मे पहुँचकर निर्विकल्प सहजावस्था द्वारा हमने परब्रह्म को प्राप्त किया है और प्राप्त करते ही वह अपना निजस्वरूप होकर भासने लगा है।

दादू काया अंतरि पाइया, सब देवन का देव।
सहजैं आप लखाइया, ऐसा अलख अभेव ॥ १३ ॥

जो ब्रह्मादि सपूर्ण देवताओ का उपास्य देव है, मन इन्द्रियो के ज्ञान से परे और स्वय प्रकाश स्वरूप है। जिसका वास्तविक स्वरूप ऐसा रहस्यमय है, जो शब्द की शक्ति-वृत्ति से तो समझ मे नहीं आता। उसे हमने निर्विकल्पावस्था द्वारा शरीर के भीतर ही प्राप्त किया है। उसकी प्राप्ति होने पर वह अपने आप सब विश्व मे निज स्वरूप होकर भासने लगा है।

दादू भँवर कमल रस बेधिया, सुख सरवर रस पीव।
तहँ हसा मोती चुनैं, पिव देखै सुख जीव ॥ १४ ॥

१४-१७ मे परब्रह्म प्राप्ति से होने वाला लाभ बता रहे है—जैसे भ्रमर कमल की वास-रस से विद्ध होकर उसका पान करता है, वैसे ही साधन सम्पन्न हमारा मन अष्टदल-कमल मे प्रविष्ट होकर परब्रह्म रूप सुख-सरोवर का चिन्तनानन्द रूप रस पान करता है और जैसे मानसरोवर

को देखकर हस प्रसन्न होते है तथा मोती चुनकर तृप्त होते है, वैसे ही अष्टदल-कमल मे परब्रह्म का साक्षात्कार करके हम आनन्दित होते है और अभेद भावना रूप मोती चुनकर परम तृप्ति को प्राप्त हुये है।

दादू भँवर कमल रस बेधिया, गहे चरण कर हेत ।
पिवजी परसत ही भया, रोम रोम सब श्वेत ॥ १५ ॥

जब हमारे मन-भ्रमर ने ब्रह्म-रस की प्राप्ति के लिए कठस्थ विशुद्ध चक्र-कमल को भेदन किया तब सस्नेह परब्रह्म के स्वरूप-चरण ग्रहण किये और उन प्रभु के चरण स्पर्श करते ही उसकी वृत्तिया रूप सपूर्ण रोम वा शरीर के इन्द्रियादि सब अवयव रोम-रोम शुद्ध हो गये। यह हमे अनुभूत है।

दादू भँवर कमल रस बेधिया, अनत न भरमै जाइ।
तहाँ वास विलम्बिया, मगन भया रस खाइ ॥ १६ ॥

जब मन-भ्रमर ने ब्रह्म-रस में अनुरक्त हो आज्ञाचक्र-कमल को भेदन किया तब ब्रह्म चिन्तनानन्द-रस पान करने लगा और उसके आस्वादन मे इतना निमग्न हो गया कि अन्य स्थान मे जाकर भ्रमण करना छोड दिया है तथा वहा आज्ञाचक्र मे ही रम गया है।

दादू भँवर कमल रस बेधिया, गही जो पिव की ओट ।
तहा दिल भँवरा रहै, कौन करै शिर चोट ॥ १७ ॥

अब मन-भ्रमर ब्रह्म-रस मे आसक्त हो शून्य चक्र-कमल को भेदन करके ब्रह्म चिन्तनानन्द-रस पान करते हुये परब्रह्म के ही आश्रय रहने लगा है और परम निर्भयावस्था को प्राप्त हो गया है। क्योकि जब मन-भ्रमर निर्विकल्प समाधि अवस्था मे रहता है, तब वहाँ काल, कर्मादि किसी का भी बाण उस पर आघात नही कर सकता, यह नियम है। समाधि खुलने पर ही कालादि के बाण लगते है।

परिचय-जिज्ञासु-उपदेश।

दादू खोज तहां पिव पाइये, शब्द ऊपनै[1] पास ।
तहाँ एक एकान्त है, तहाँ ज्योति परकास ॥ १८ ॥

१८-२५ मे जिज्ञासु जनो को परब्रह्म के साक्षात्कार का हेतु उपदेश कर रहे है-मूल स्थान मे स्थित ब्रह्म-ग्रथि का भली-भाँति भेदन होने पर हृदय स्थान मे स्थित अनाहत-चक्र मे शब्द की उत्पत्ति[1] होती है। उसी के समीप अष्टदल कमल पर परब्रह्म की ध्यान द्वारा खोज करो। ध्यान द्वारा खोज करने के लिए अष्टदल-कमल ही एकमात्र एकान्त स्थान है। सर्व प्रथम अष्टदल कमल पर ही नित्य ज्ञान स्वरूप ब्रह्म-प्रकाश की अनुभूति होती है और वहा ही सम्यक् प्रकार ब्रह्म का साक्षात्कार होता है।

दादू खोज तहाँ पिव पाइये, जहँ चद न ऊगै सूर ।
निरन्तर निर्धार है, तेज रह्या भरपूर ॥ १९ ॥

जिस आज्ञा चक्र मे वाम नासिका से बहने वाली इडा नाड़ी-चन्द्र, दक्षिण नासिका से बहने वाली पिगला नाडी-सूर्य उदय नहीं होते, वे दोनो सुषुम्ना नाड़ी-अग्नि मे लय हो जाते है। वहा ही ध्यान द्वारा खोजने पर सदा एकरस, मायिक आधारो से रहित, सर्वत्र परिपूर्ण, नित्य ज्ञान-स्वरूप परब्रह्म की प्राप्ति होती है।

दादू खोज तहाँ पिव पाइये, जहँ बिन जिह्वा गुण गाइ।
तहँ आदि पुरुष अलेख है, सहजै रह्या समाइ ॥ २० ॥

जिस मन की स्थिरावस्था मे जिह्वा के बिना ही मन से भगवान् के दयालुता आदि गुणो का गान किया जाता है, वहा ही बुद्धि-वृत्ति के द्वारा ब्रह्म विचार रूप खोज करने से लेख-बद्ध नही होने वाले, मन इन्द्रियो के अविषय और स्वाभाविक रूप से सपूर्ण विश्व मे समाये हुये आदि पुरुष परमात्मा प्राप्त होते है।

दादू खोज तहाँ पिव पाइये, जहँ अजरा अमर उमंग।
जरा मरण भौ[1] भाजसी, राखै अपने सग ॥ २१ ॥

ब्रह्म-विचार करने पर जहाँ से अजर अमर आत्मानन्द की लहर उठती है उस हृदय देश मे ही अभेद-विचार द्वारा खोजो अभेद विचार की परिपाकावस्था मे वहा पर ही परब्रह्म की प्राप्ति होती है, फिर आत्मा को ब्रह्म अपने साथ सदा अभेद भाव से रखता है। यह एकता होने पर आगे जन्म-जरा मृत्यु रूप ससार[1] का सर्वथा अभाव हो जाता है।

दादू गाफिल छो[1] वतै[2], मझे रब्ब[3] निहार ।
मझेई[4] पिव पाण[5] जो, मझेई सु विचार ॥ २२ ॥

हे प्राणी ! भगवान् से विमुख असावधान होकर सासारिक भोग-सुखो के लिए तू क्यों[1] फिरता[2] है ? ये तो अनित्य होने से अन्त मे दु ख प्रद ही है। जो भीतर[4] नित्य सुख स्वरूप अपना[5] प्रियतम ब्रह्म[3] है, उसको सुविचार द्वारा भीतर ही देख।

दादू गाफिल छो वतैं, आहे मझि अलाह ।
पिरी[1] पाण[2] जो पाण सै, लहै सभोई[3] साव[4] ॥ २३ ॥

तू तीर्थादिक की फल स्तुति मे आसक्त हो, अचेत हुआ, आतर साधनो को त्याग कर भगवान् के लिए तीर्थादि मे क्यो फिरता है ? जो अपना[2] प्रियतम[1] परमेश्वर है वह तो अपने आत्म-स्वरूप के बोध से ही प्राप्त होता है और वह प्रभु भीतर ही है। जो आत्म-ज्ञान द्वारा ब्रह्म-साक्षात्कार का यत्न करता है, वही ब्रह्मात्मा के अभेद रूप सपूर्णानन्द[3] का आस्वादन[4] प्राप्त करता है।

दादू गाफिल छो वतै, आहे मझि मुकाम ।
दरगह[2] मे दीवान[1] तत, पसे[3] न बैठो पाण ॥ २४ ॥

तू परमात्मा के वियोग जन्य दु ख से अचेत हुआ क्यो फिरता है ? उसकी प्राप्ति का स्थान तो तेरे भीतर ही है। वह ससार का सार स्वरूप स्वय प्रकाश महान्[१] प्रभु तेरे अन्त.करण[२] मे ही है। अत: अपने पास ही बैठा है, फिर भी अपने आत्म-स्वरूप ब्रह्म को देखता[३] क्यो नही ?

दादू गाफिल छो वतैं, अंदर पीरी[१] पसु[२] ।
तखत रबाणी[३] बीच में, पेरे[४] तिन्ही[५] वसु[६] ॥ २५ ॥

तू अपनी बहिर्मुखता रूप अचेतता से ससार मे क्यो भटकता है ? निदिध्यासन के द्वारा निजी अन्त करण मे ही अपने परमप्रिय[१] परमात्मा को देख[२], उस परमेश्वर[३] का सिहासन तेरे शरीर के भीतर तेरा हृदय स्थान ही है। तू भी उन्हीं[५] परब्रह्म के स्वरूप रूप पद[४] मे एक होकर के निवास[६] कर।

परिचय

हरि चिन्तामणि चिन्तताँ, चिन्ता चित की जाइ।
चिन्तामणि चित में मिल्या, तहँ दादू रह्या लुभाइ॥ २६ ॥

२६-२८ मे साक्षात्कार सम्बन्धी विचार कर रहे है—इच्छा पूर्ति करने वाले हरि-चिन्तामणि का निरतर स्मरण करने से चित्त की सासारिक चिन्ताएँ नष्ट हो जाती है। उन चिन्तामणि रूप हरि का साक्षात्कार हमे अपने हृदय मे ही हुआ है। अब हमारा मन निरतर उसी मे लगा रहता है।

अपने नैनहुँ आप को, जब आतम देखै।
तहँ दादू परआतमा, ताही कों पेखै ॥ २७ ॥

जीवात्मा जब निज ज्ञान-नेत्रो से अपने वास्तविक स्वरूप का साक्षात्कार करता है, तब दूसरो की आत्मा मे भी परमात्मा का ही साक्षात्कार करता है। आत्मा के वास्तव स्वरूप से परमात्मा भिन्न नही है। अत हृदयस्थ आत्मदर्शन ही परमात्मदर्शन है।

दादू बिन रसना जहँ बोलिये, तहँ अंतरयामी आप ।
बिन श्रवणहुँ सांई सुनै, जे कुछ कीजै जाप ॥ २८ ॥

जिस अनाहत चक्र मे जिह्वा-मूलादि स्थान और वायु के आघात बिना सकल्प रूप से बोला जाता है, वहा ही स्वय परमात्मा अन्तर्यामी रूप से स्थित है और साधक जन जो भी कुछ जापादि साधन करते है, उन सब को भगवान् श्रवणादि इन्द्रियो के बिना भी सुनता देखता रहता है।

परिचय जिज्ञासु उपदेश

ज्ञान लहर जहां तैं उठै, वाणी का परकास।
अनुभव जहँ तैं ऊपजै, शब्दैं किया निवास॥ २९ ॥

सो घर सदा विचार का, तहाँ निरंजन वास ।
तहँ तू दादू खोज ले, ब्रह्म जीव के पास ॥ ३० ॥

२९-३७ मे साक्षात्कार के इच्छुक जिज्ञासु को उपदेश कर रहे है—जहा से ज्ञान की लहर उठकर वाणी का सूक्ष्म रूप प्रकट होता है, आत्मानुभव उद्भव होता है और जहा पर प्रणव रूप शब्द ब्रह्म का निवास है।। २९।। वही हृदय निरतर ब्रह्म-विचार का स्थान है, वहा ही माया-रहित परब्रह्म का विशेष रूप से निवास है। हे जिज्ञासु ! वहा पर ही निदिध्यासन द्वारा खोज करके तू ब्रह्म को प्राप्त कर ले, ब्रह्म जीव के पास ही है। अन्वेषण करने पर तुझे जीव ब्रह्म का अभेद रूप से ही साक्षात्कार होगा।। ३०।।

जहँ तन मन का मूल है, उपजै रव[1] ओंकार।
अनहद सेझा शब्द का, आतम करै विचार।। ३१।।
भाव भक्ति लै ऊपजै, सो ठाहर निज सार।
तहँ दादू निधि पाइये, निरन्तर निरधार।। ३२।।

जहा स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर का मूल कारण अज्ञान है, जहा ॐ की ध्वनि[1] प्रकट होती है, जो अनाहत शब्दो का उद्‌गम स्थान है, जिज्ञासु जन जहा विचार द्वारा आत्मा के सामान्य रूप को अज्ञान के प्रकाशक रूप से देखते है।। ३१।। जहाँ से भाव अर्थात् सपूर्ण त्रिपुटियो की उत्पत्ति होती है और लै अर्थात् सपूर्ण त्रिपुटिया जहा लीन होती है, भक्ति अर्थात् अनुराग वृत्ति का भी जहा से सूक्ष्म रूप निकलता है, वही मणि-पूरक चक्र (नाभि कमल) विश्व के सार स्वरूप अपने आत्मा की अनुभूति का स्थान है। उसी मे सपूर्ण आधारो से रहित, निराधार, सदा एक रस रूप, और सपूर्ण ससार प्रलय काल मे जिसमे अन्तर्हित रूप से रहता है, वह परमात्मा रूप निधि आत्मरूप से प्राप्त होती है।। ३२।। विशेष विवरण सुषुप्ति अवस्था मे पुरितत् नामक नाडियो के जाल नाभि स्थान मे ही "कुछ नही जान सका" ऐसी अज्ञान की प्रतीति होती है। ढाई वर्ष तक नाभि स्थान पर ॐ का ध्यान करने से वहा ही ओकार-ध्वनि प्रकट होती है और शात-ध्वनि एकान्त स्थान मे रात्रि के समय नाभि स्थान पर घड़ी की आवाज के समान साधक को कट-कट रूप से सुनाई पड़ती है। अनाहत शब्द प्रकट रूप से तो अनाहत चक्र मे ही सुनाई पड़ते है किन्तु निकलते नाभि स्थान से ही है, नाभि ही उनका सेझा (उद्‌गम स्थान) है। आत्मा के सामान्य रूप का अनुभव सुषुप्ति मे "सुख से सोया" के रूप मे नाभि-कमल मे ही होता है। सुषुप्ति समाप्त होने पर ही नाभि-कमल से त्रिपुटी रूप भाव व्यक्त होते है और सुषुप्ति के आरभ मे नाभि-कमल मे ही लय होते है। सुषुप्ति मे भक्ति का भी सस्कार ही रहता है और सुषुप्ति समाप्ति पर ही भक्ति प्रकट रूप से भासती है।

एक ठौर सूझै सदा, निकट निरंतर ठाव।
तहाँ निरंजन पूरि ले, अजरावर तिहि नांव।। ३३।।

देवताओ से भी अति श्रेष्ठ होने के कारण उन परमात्मा का नाम अजरावर है। उनका विशेष रूप से निरतर निवास स्थान अनाहत चक्र के समीप अष्टदल कमल है। ध्यानावस्था मे सदा एकमात्र अष्टदल कमल पर ही उनका साक्षात्कार होता है। वहा ही अपनी अन्त करण की वृत्ति को स्थिर करके माया रहित परब्रह्म का साक्षात्कार कर ले।

साधू जन क्रीडा करैं, सदा सुखी तिहिं गांव ।
चलु दादू उस ठौर की, मैं बलिहारी जांव ॥ ३४ ॥

जिसमे देव, दानव, नाग, नर आदि सपूर्ण ससार के प्राणी बसते है, उस ईश्वर रूप ग्राम के शुद्ध ब्रह्म रूप स्थान मे सतजन अभेद चिन्तन रूप क्रीडा करते हुये निरतर ब्रह्मानन्द मे निमग्न रहते है। मै उस शुद्ध ब्रह्म रूप स्थान की बलिहारी जाता हूँ। हे जिज्ञासु ! तू भी निदिध्यासन द्वारा उसी मे चल। वही नित्यानन्द स्वरूप है। जगत दु खमय है।

दादू पसु[1] पिरंनि[2] के, पेही[3] मंझि कलूब[4] ।
बैठो आहे बीच में, पाण[5] जो महबूब[6] ॥ ३५ ॥

जो ससार बन्धन से मुक्त करने वाले, अपने[5] आत्म स्वरूप प्रेम-पात्र[6] स्वामी[3] है, वे तेरे शरीर के मध्य हृदय[4] मे ही स्थित है, उन परम-प्रिय[2] परमेश्वर के वास्तव स्वरूप को देख[1] ।

नैनहुँ वाला निरख कर, दादू घालै हाथ ।
तब ही पावै राम-धन, निकट निरंजन नाथ ॥ ३६ ॥

आत्मानात्म विवेक-नेत्र वाला जिज्ञासु अनात्म रूप ससार को मिथ्या देखकर, सत्य-स्वरूप आत्मा की ओर अन्त करण-वृत्ति रूप हाथ डालता है अर्थात् आत्मा मे वृत्ति स्थिर करता है, तव ही निदिध्यासन द्वारा ज्ञान-नेत्र की ज्योति बढाकर विश्व के स्वामी माया रहित राम रूप धन को अत्यन्त समीप, आत्म स्वरूप से प्राप्त करता है।

नैनहुँ बिन सूझै नहीं, भूला कतहूं जाइ ।
दादू धन पावै नही, आया मूल गँवाइ ॥ ३७ ॥

विवेक-नेत्रो के बिना अनात्म-ससार मिथ्या नहीं भासता। इसलिए इन्द्रियो के विषयो मे आसक्त हो, परमात्मा को भूल कर विषय-प्राप्ति हित अनर्थ करने मे प्रवृत्त होता है। अत· राम रूप विशेष धन को न पाकर उलटा अपना मनुष्य शरीर रूप मूलधन भी खोकर शूकर-कूकरादि योनियो मे आकर जहा तहा भटकता है।

परिचय लै लक्षण सहज

जहाँ आत्म तहँ राम है, सकल रह्या भरपूर ।
अन्तरगति ल्यौ लाइ रहु, दादू सेवक सूर ॥ ३८ ॥

आन्तर आत्मा मे वृत्ति लगाने से सहज ही साक्षात्कार के लक्षण प्रकट हो जाते है, यह कह रहे है—साधक ! तुम अपने अन्त करण की वृत्ति को आन्तर आत्मा मे लगाये रहो, जहा आत्मा है, वहाँ ही राम है। आत्मा मे वृत्ति स्थिर होने पर सेवक को परमात्मा सर्वत्र परिपूर्ण हुआ, सूर्य के समान प्रकट रूप से भासने लगता है।

परिचय जिज्ञासु उपदेश

पहली लोचन दीजिये, पीछे ब्रह्म दिखाइ ।
दादू सूझै सार सब, सुख में रहै समाइ ।। ३९ ।।

३९-४० मे साक्षात्कार के इच्छुक जिज्ञासुओ को उपदेश कर रहे है—हे जिज्ञासु जनो ! प्रथम अपने विवेक-विचार-नेत्रो को ब्रह्म की ओर लगाओ अर्थात् ब्रह्म विचार करो। पीछे विचार की प्रौढावस्था मे तुम्हे ब्रह्म अपने आत्म रूप से ही दिखाई देगा। जब तुम्हे सपूर्ण विश्व के सार स्वरूप ब्रह्म का साक्षात्कार हो जायगा, तब तुम्हारा मन सुख-स्वरूप ब्रह्म मे ही निमग्न होकर रहेगा।

आँधी के आनद हुआ, नैनहुँ सूझन लाग ।
दर्शन देखै पीव का, दादू मोटे भाग ।। ४० ।।

विषयासक्ति रूप मोतिया-बिन्दु आ जाने से अधी हुई जीवात्मा-युवती के जब सत और शास्त्र की शिक्षा-औषधि से विवेक, विचार-नेत्र निर्मल हुए तो उससे ससार मिथ्या और परमात्मा सत्य भासने लगा, तब वह जीवात्मा अपने भाग्य को महान् जानकर निरतर प्रियतम परमात्मा का दर्शन करने लगी है।

य असमाव

दादू मिही[1] महल बारीक है, गाँव न ठांव न नाव ।
तासौ मन लागा रहै, मै बलिहारी जाव ।। ४१ ।।

४१-४९ मे ब्रह्म की अद्वैतता बता रहे है—जिसमे सब ससार विवर्त्त रूप से निवास करता है, तब ब्रह्म रूप महल अति सूक्ष्म है और व्यापक होने से सब के भीतर[1] है। वह बैकुण्ठादि किसी लोक विशेष मे नही रहता, न उसका शेष-शय्यादि कोई स्थान विशेष है और न उसका कोई नाम है। पुर, स्थान नाम ये सब माया से ही होते है। शुद्ध ब्रह्म माया रहित अद्वैत है। उसमे उक्त द्वैत प्रपच नही रह सकता। ऐसे शुद्ध ब्रह्म मे जिसका मन अद्वैत भाव से लगा रहता है, मै उस सत की बलिहारी जाता हूँ।

दादू खेल्या चाहै प्रेम रस, आलम अग लगाइ ।
दूजे को ठाहर नही, पुहुप न गंध समाइ ।। ४२ ।।

यदि कोई अपने अन्त करण इन्द्रियादि अगो मे सासारिक विषयो की आसक्ति रखकर भगवत्-प्रेम-रस मे निमग्न होना रूप खेल खेलना चाहे, तो वह सभव नही। कारण, जिसमे प्रेम रहता है, वह वृत्ति-स्थान अति सूक्ष्म है। जैसे पुष्प मे एक साथ दो गध नहीं रह सकती, वैसे ही उसमे एक साथ विषय-राग और प्रभु-प्रेम दोनो नही रह सकते। वृत्ति ब्रह्माकार होने पर ब्रह्म मे पुष्प-गध जितना भी द्वैत नही रहता।

नाही है कर नाम ले, कुछ न कहाई रे ।
साहिबजी की सेज पर, दादू जाई रे ।। ४३ ।।

देहादिक अध्यास रूप अहकार और सासारिक वासनादि से अन्त करण को रहित करके भगवान् का नाम स्मरण करो किन्तु अपने को भक्त, सत, योगी आदि कहलाने का यत्न मत करो। उक्त द्वैत प्रपच से जो मुक्त होता है, वही ब्रह्म की अद्वैत-शय्या पर जाता है। परब्रह्म अद्वैत है, उसे उससे भिन्न रह कर नही प्राप्त कर सकते।

जहाँ राम तहँ मैं नहीं, मैं तहँ नाहीं राम।
दादू महल बारीक है, द्वै को नाहीं ठाम ॥ ४४ ॥

जिस अद्वैतावस्था मे राम का साक्षात्कार होता है, वहाँ "मै ज्ञानी हूँ, मै गुणी हूँ" इत्यादिक अहकार रूप "मै" नही होता और जहा तक उक्त "मै" होता है, वहा तक राम का साक्षात्कार नही होता। जिसमे ससार विवर्त्त रूप से बसता है, वह अधिष्ठान चेतन रूप महल अति सूक्ष्म है। उसमे द्वैत-भाव को स्थान नही मिलता।

मैं नाहीं तहँ मैं गया, एकै दूसर नाँहिं।
नाहीं को ठाहर घणी, दादू निज घर माँहिं ॥ ४५ ॥

जिस ब्रह्म मे अनात्म अहता ममता नही है, उसको मै प्राप्त हुआ हूँ। उसे प्राप्त होते ही आत्मा उसमे अद्वैत रूप से होकर रहता है, द्वैत रूप से नही। अपने स्वस्वरूप ब्रह्म-घर मे अनात्म अहकार शून्य आत्मस्थिति को प्राप्त हुये ज्ञानी-सत के लिए ब्रह्मानन्द रूप स्थान बहुत है, अज्ञानी के लिए किचित् भी नही है।

मैं नाहीं तहँ मैं गया, आगे एक अलाव[1]।
दादू ऐसी बन्दगी, दूजा नाहीं आव ॥ ४६ ॥

जहाँ अनात्म देहादिक अहकार रूप "मै" नही रहता, उस अवस्था को जब मै आत्म रूप से प्राप्त हुआ, तब उस आगे की स्थिति मे एक मात्र "अह-ब्रह्म" यही ध्वनि[1] प्रतीत हुई। निर्गुण भक्ति की महिमा ऐसी ही है, उसकी परिपाकावस्था पर अन्त करण की वृत्ति मे अद्वैत ब्रह्म को छोड़ कर द्वैत-भाव आता ही नही।

दादू आपा जब लगै, तब लग दूजा होइ।
जब यहु आपा मिट गया, तब दूजा नाहीं कोइ ॥ ४७ ॥

जब तक अनित्य देहादिक मे आत्म-भ्राति-रूप अहकार रहता है, तब तक ही आत्मा और ब्रह्म मे द्वैत भासता है। जब उक्त मिथ्या अभिमान ज्ञान द्वारा नष्ट हो जाता है, तब अपने आत्मस्वरूप ब्रह्म को छोड़कर भिन्न कुछ नही प्रतीत होता। एक मात्र अद्वैत ब्रह्म ही भासता है।

दादू मैं नाहीं तब एक है, मैं आई तब दोइ।
मैं तै पडदा मिट गया, तब ज्यों था त्यों ही होइ ॥ ४८ ॥

जब तक शुद्ध चेतन मे अनित्य देहादिक "अह, त्व" भाव नही आता है, तब तक उसकी अद्वैत ब्रह्मरूप से ही प्रतीति होती है। अनित्य देहादिक मे "अह, त्व" भाव आते ही आत्मा और ब्रह्म मे द्वैत भाव भासने लगता है। फिर ज्ञान द्वारा "अह, त्व" भाव रूप अज्ञान नष्ट

हो जाता है, तब जैसा पूर्व मे अद्वैत रूप था वैसा ही अद्वैत रूप भासने लगता है। अत: द्वैत रूप विकार मध्य मे भ्रम से ही भासता है, आदि व अन्त मे परमार्थ रूप अद्वैत ही सिद्ध होता है।

दादू है को भै घणा, नाहीं को कुछ नाँहि।
दादू नाहीं होइ रहु, अपणे साहिब माँहिं ॥ ४९ ॥

जब तक अनात्म अहंकारादिक द्वैत-भाव अन्त करण मे है, तब तक उसको जन्मादि ससार का विशाल भय बना ही रहता है। जिसके हृदय मे उक्त द्वैत-भाव नहीं रहकर, अद्वैत-भाव प्राप्त हो गया, उसको जन्मादि ससार का भय लेश मात्र भी नहीं रहता। अत हे साधक! "अह, मम, त्व" आदि अनात्म अहकार से रहित होकर अपने आत्म स्वरूप ब्रह्म मे अद्वैत-भाव से स्थित रहो।

परिचय

दादू तीन शून्य आकार की, चोथी निर्गुण नाम।
सहज शून्य में रम रह्या, जहाँ तहाँ सब ठाम ॥ ५० ॥

५०-७७ मे नाना रूपको के द्वारा साक्षात्कार सम्बन्धी विचार बता रहे है—तीन लय रूप अवस्थाएँ आकार विशेष की होती है। जाग्रतावस्था के सहित स्थूल शरीर का लय स्वप्नावस्था मे होता है। यही प्रथम शून्य है। स्वप्नावस्था के सहित सूक्ष्म शरीर का लय सुषुप्ति अवस्था मे होता है, यही द्वितीय शून्य है। सुषुप्ति अवस्था के सहित कारण शरीर का लय तुरीयावस्था मे होता है, यही तृतीय शून्य है। ये तीनो त्रिगुणात्मक होने से माया रूप हैं। साक्षी के सहित तुरीयावस्था शुद्ध ब्रह्ममय होने से निर्गुण है, यही चतुर्थ शून्य है। त्रिगुणात्मक माया-रहित होने से इसका नाम निर्गुण शून्य है। उक्त तीनो ही पूर्वावस्था के उत्तरावस्था मे लय होने से सिद्ध होती है। चतुर्थ सहज रूप है, अत चतुर्थ शून्य मे सहज-स्वरूप ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। वह ब्रह्म जहा तहा सर्वत्र व्यापक रूप से रम रहा है।

अन्य अर्थ—यहा शून्य शब्द का अर्थ दशा है। माण्डूक्योपनिषद् मे ओकार की ४ मात्राओ तथा आत्मा के चार पदो का निरूपण किया है। उसमे ओकार की (अ, उ, म्) इन तीन मात्राओ तथा आत्मा के (विश्व, तैजस, प्राज्ञ) इन तीन पदो को आकार वाला बतलाया है और ओकार की चतुर्थ मात्रा तथा आत्मा के चतुर्थ तुरीय पाद को निर्गुण, निराकार बतलाया है। यहा उसी रहस्य का स्पष्टीकरण है। आत्मा के तीन पाद अर्थात् जाग्रदावस्था वाला चैतन्य विश्व, स्वप्नावस्था वाला चैतन्य तैजस, तथा सुषुप्ति दशा वाला प्राज्ञ, ये तीनो आकारवान् हैं और इनसे परे तुरीयावस्था वाला चैतन्य शुद्ध, निर्गुण व निराकार है। अत आरभ की तीन दशाएँ आकार की है और चौथी तुरीय दशा निर्गुण है अर्थात् निराकार है। वह निर्गुण निराकार ब्रह्म सहज दशा मे (शुद्धावस्था मे) सर्वत्र व्यापक है और आकार वाली तीनो दशाएँ सीमित है।

किया हे ॥ ५४ ॥ और जिनकी सत्ता से माया द्वारा काल, कर्म, मन, श्वासादि सूक्ष्म शरीर, जीवत्व भाव, स्थूल शरीर उत्पन्न होते है ओर ये सब विवर्त्त रूप से अपने अधिष्ठान सहज शून्य-ब्रह्म के अत्यत समीप ही रहते है, किन्तु वे निर्विकार राम उक्त विवर्त्त-कार्य मे रमते हुये भी उससे रहित ही रहते है ॥ ५५ ॥

सहज शून्य सब ठौर हे, सब घट सबही माँहिं।
तहाँ निरजन रम रह्या, कोई गुण व्यापै नाँहि ॥ ५६ ॥

सहज शून्य-निर्विकार ब्रह्म विश्व के स्वर्ग-नरकादिक सभी स्थानो मे स्थित है। उनके निवासी देवादिक सपूर्ण शरीर उस ब्रह्म मे व्याप्त रूप से स्थित है और ब्रह्म उन सब मे व्यापक रूप से स्थित है। उस माया रहित ब्रह्म मे जो ज्ञानी सत अद्वैत भाव से रम रहा है, उसे कोई भी मायिक गुण व्यथित नही कर सकता।

दादू तिस सरवर के तीर, सो हसा मोती चुनै ।
पीवै नीझर नीर, सो है हंसा सो सुनै ॥ ५७ ॥

उस सहज शून्य-ब्रह्म सरोवर के ध्येयाकार-वृत्ति रूप तट पर शब्द-ब्रह्म ओकार का चिन्तन रूप मोती चुनता है, वही सारग्राहक साधक हस है। आत्म-झरने का अनुभव जल-पान करता है अर्थात् ब्रह्मात्मा का अभेद रूप से साक्षात्कार करता है, वह साधक हस ही नाभि-कमल के पास होने वाली "प्रणव ध्वनि" और श्वास प्रश्वास से होने वाली "सोऽह हस " रूप ब्रह्मात्मा के अभेद की बोधक ध्वनि सुनता है, तब उक्त शब्द-ब्रह्म ओकार का चिन्तन करने वाले साधक-हसो मे यह अधिक शोभायमान होता है। (पाठान्तर — 'सोऽह हसा')

दादू तिस सरवर के तीर, जप तप सयम कीजिये।
तहँ सन्मुख सिरजनहार, प्रेम पिलावै पीजिये ॥ ५८ ॥

उस सहज शून्य-ब्रह्म सरोवर के ब्रह्माकार-वृत्ति रूप तट पर अर्थात् ब्रह्माकार-वृत्ति रखते हुये ही इन्द्रिय-निग्रह रूप तप और मनोनिग्रह रूप सयमपूर्वक ब्रह्म नाम का जप करो। इस साधना की परिपाकावस्था मे परमात्मा सन्मुख प्रकट रूप से भासते है ओर अपना प्रेम-रस पान कराते है। तुम भी उक्त प्रकार साधन करके उनके प्रेम-रस का पान करो।

दादू तिस सरवर के तीर, सगी सबै सुहावणै।
तहा बिन कर बाजे वेणु, जिह्वाहीणे गावणे ॥ ५९ ॥

उस सहज शून्य ब्रह्म-सरोवर के ब्रह्माकार वृत्ति रूप तट पर साथ रहने वाले विवेक, वैराग्य, विचारादि सभी दैवी सपदा के गुण सुन्दर है तथा वहा पर बिना हाथो के ही अखडानन्द प्रदायिनी ध्वनि रूप वशी बजती है और बिना जिह्वा के ही वृत्ति द्वारा स्तुति गायन होता है।

दादू तिस सरवर के तीर, चरण कमल चित लाइया ।
तहँ आदि निरजन पीव, भाग हमारे आइया ॥ ६० ॥

उस सहज शून्य-ब्रह्म सरोवर के ब्रह्माकार-वृत्ति-तट पर हमने ब्रह्म स्वरूप चतुर्थ पाद मे मन लगाया अर्थात् ध्यान द्वारा मन को ब्रह्म मे स्थापन किया, तब उसी अवस्था मे हमारे भाग्यवश ससार का आदि माया रहित प्रियतम ब्रह्म हमे प्राप्त हुआ है।

दादू सहज सरोवर आतमा, हंसा करै कलोल[1]।
सुख सागर सूभर[2] भरया, मुक्ताहल मन मोल॥ ६१॥

सहज-शून्य निर्विकल्प ब्रह्म-सरोवर मे सतात्मा-हस ब्रह्मानन्द का अनुभव रूप क्रीडा[1] करते है। उज्ज्वल नित्य सुख स्वरूप ब्रह्म समुद्र तो सर्वत्र परिपूर्ण[2] रूप से भरा है अर्थात् व्यापक है। तथापि जो अपना मन-समर्पण रूप मूल्य देते है, वे ही उसके दर्शन रूप मोती प्राप्त करते है, अन्य नही।

दादू हरि सरवर पूरण सबै, जित तित पाणी पीव।
जहॉ तहॉ जल अंचतां, गई तृषा सुख जीव॥ ६२॥

ब्रह्म-सरोवर व्यापक होने से सपूर्ण विश्व मे परिपूर्ण रूप से भरा है। उसका साक्षात्कार रूप जल भक्ति योग ज्ञानादिक जिस किसी भी घाट से पान कर सकते हो। घर तथा वन मे जहा तहा से साधन द्वारा साक्षात्कार-जल के पान करने से अनेक साधक जीवो की सासारिक नाना वासना रूप प्यास मिट गई है और वे परमानन्द को प्राप्त हुये है, यह प्रसिद्ध है।

सुख सागर सूभर भरया, उज्ज्वल निर्मल नीर।
प्यास बिना पीवै नहीं, दादू सागर तीर॥ ६३॥

आनन्द रूप सुन्दर ब्रह्म-समुद्र सपूर्ण विश्व मे परिपूर्ण रूप से भरा है। उसका साक्षात्कार रूप जल भी मायादि रूप काई आदि दोषो से रहित निर्मल और प्रकाशवान् है। सपूर्ण प्राणी उस सागर के तट पर है अर्थात् समीप है, जिस हृदय प्रदेश मे जीव रहता है वही वह निर्विकार ब्रह्म विद्यमान है। फिर भी उसके साक्षात्कार की इच्छा बिना वे साक्षात्कार-जल का पान नही करते है।

शून्य सरोवर हंस मन, मोती आप अनंत।
दादू चुगि चुगि चंचु भरि, यों जन जीवैं संत॥ ६४॥

निर्विकल्प समाधि ही सरोवर है और वह अनन्त ब्रह्म स्वय ही सत् चित्, आनन्द, अखडादि निज नाम भेद से मोती रूप बना हुआ है। साधक सतो का मन ही उक्त मोतियो को पुन २ चुनकर अपनी वृत्ति रूप चचु मे भरता है अर्थात् इच्छानुसार चिन्तन करता हुआ तदाकार होता है। इस प्रकार ही साधन करके सत जन ब्रह्म से अभिन्न होकर सदा जीवित रहते है।

शून्य सरोवर मीन मन, नीर निरंजन देव।
दादू यहु रस विलसिये, ऐसा अलख अभेव॥ ६५॥

त्रिपुटी शून्यावस्था रूप सरोवर मे निरजन देव ही जल है। सतो का मन-मीन इस अवस्था मे ब्रह्म-जल मे ही लीन रहता है। साधको ! इन्द्रियाँ जिसे लख नही सकती और साधन-शून्य मन भी जिसके रहस्यमय स्वरूप से अपरिचित रहता है, ऐसा वह ब्रह्म है। फिर भी तुम साधन द्वारा उक्त त्रिपुटी रहित अवस्था मे जाकर उस ब्रह्म के साथ ब्रह्मानन्द-रस का उपभोग करो।

शून्य सरोवर मन भॅवर, तहाँ कमल करतार।
दादू परिमल पीजिये, सन्मुख सिरजनहार ॥ ६६ ॥

निर्विकल्प-समाधि-अवस्था ही सरोवर है, उसमे विद्यमान निर्विकल्प ब्रह्म-कमल है। सतो का मन उसके मकरन्द का पान करने वाला आत्मानन्दानुभव रूप सुगन्ध-रस लेता रहता है। साधको ! तुम भी साधन द्वारा उक्त समाधि अवस्था मे विश्व-रचयिता ब्रह्म के सन्मुख होकर आत्मानन्द-सुगन्ध-रस का अनुभव रूप पान करो।

शून्य सरोवर सहज का, तहँ मरजीवा मन।
दादू चुणि चुणि लेयगा, भीतर राम रतन ॥ ६७ ॥

ज्ञान द्वारा प्राप्त सहज समाधि-अवस्था ही समुद्र है, सन्तो का मन ही उसमे गोता लगाने वाला मरजीवा है। जैसे मरजीवा समुद्र से मोती चुन लाता है, वेसे ही देहादिक अध्यास रहित, जीवन्मुक्त या जीवत-मृतक ज्ञानी सत का मन उक्त सहज-समाधि के परिपाकावस्था रूप समुद्र-तल से राम के साक्षात्कार रूप रत्नो को चुन-चुन कर प्राप्त कर सकेगा अर्थात् निरतर साक्षात्कार कर सकेगा।

दादू मझि सरोवर विमल जल, हंसा केलि[1] करांहिं।
मुक्ताहल[2] मुकता[3] चुगै, तिहि हसा डर नाहि ॥ ६८ ॥

शुद्ध और स्थिर हृदय-सरोवर मे भगवत् की विशेष स्थिति रूप विमल-जल भरा है। वहा ही सतजन-हस भगवत्-चिन्तन रूप क्रीडा[1] करते है और निरतर चिन्तन करते-करते ससार-बन्धन से मुक्त[3] होकर ब्रह्म-साक्षात्कार रूप मोती[2] चुगते है। उस साक्षात्कार रूप अद्वैतावस्था मे जीवन्मुक्त सत-हसो को काल, कर्म, मृत्यु आदि किसी का भी भय नही रहता।

अखड सरोवर अथग जल, हसा सरवर न्हाहि।
निर्भय पाया आप घर, अब उड अनत न जाहि ॥ ६९ ॥

सदा एक रस ब्रह्म-सरोवर मे आनन्द रूप अथाह जल भरा है। ज्ञानी सत-हस उस आनन्द-जल मे स्नान करते है अर्थात् अपार आनन्द का अनुभव करते है। जिसने काल-कर्मादि के भय से रहित अपना आत्म रूप घर प्राप्त कर लिया है, उसके इस आत्म प्राप्ति के पश्चात् प्राण-पक्षी उडकर अन्य शरीर को प्राप्त नही होते। वह मुक्त हो जाता है।

दादू दरिया प्रेम का, तामे झूलैं दोइ।
इक आतम परमातमा, एकमेक रस होइ ॥ ७० ॥

अनन्य अपार प्रेम का ही बना हुआ एक दरिया है। उसमे एक आत्मा और दूसरा परमात्मा दोनो चेतन होने से अद्वैत भाव से झूलते है, तब परमानन्द रूप रस प्राप्त होता है।

दादू हिण[1] दरियाव, माणिक मंझेई ।
टुबी[2] डेई[3] पाण[4] में, डिठो[5] हंझेई[6] ॥ ७१ ॥

इस[1] हृदय-दरियाव मे ही परमात्मा रूप माणिक्य है, सतो[6] ने अपने आप[4] मे ही वृत्ति की अन्तर्मुखता रूप गोता[2] लगाकर[3] देखा[5] है।

पर आतम सौं आतमा, ज्यौं हंस सरोवर मांहिं ।
हिलमिल खेलैं पीव सौं, दादू दूसर नांहिं ॥ ७२ ॥

जैसे हस सरोवर के जल मे एकमेक होकर क्रीडा करता है, वैसे ही साक्षात्कार की अवस्था मे आत्मा-परमात्मा की परस्पर एकरूपता हो जाने पर भी, सत अपने प्रियतम प्रभु से सेवक-सेव्य भाव द्वारा भजनानन्द का अनुभव रूप खेल खेलते ही रहते है, किन्तु इस खेल मे उनमे लेशमात्र भी द्वैत भाव नही आता। खेल के समय ब्राह्मण, क्षत्रिय बनता है किन्तु वह रहता ब्राह्मण ही है। जब ससार-दशा मे भी खेल से द्वैत नही होता तब परमार्थ-दशा मे तो हो ही कैसे सकता है ?

दादू सरवर सहज का, तामें प्रेम तरंग ।
तहँ मन झूलै आतमा, अपने सांई संग ॥ ७३ ॥

परा-भक्ति की सहजावस्था ही मानो सरोवर है। जैसे स्थिर सरोवर मे वायु से कभी-कभी तरग उठ जाती है, वैसे ही सहजावस्था मे भी पूर्वकृत भक्ति की स्मृति आ जाने से प्रभु-प्रेम की तरग उठ जाती है। जैसे तरग सरोवर से ऊची उठती हुई भी सरोवर के साथ ही रहती है, वैसे ही संतात्मा अपने प्रभु के साथ रहते हुये भी चित्त-वृत्ति द्वारा भजनानन्द मे झूलते है किन्तु तरग के समान थोडी देर मे ही पुन सहजावस्था मे आकर अद्वैत रूप हो जाते है, भिन्न नही रहते।

दादू देखूं निज पीव को, दूसर देखूं नांहि ।
सबै दिसा सौं सोध कर, पाया घट ही मांहिं ॥ ७४ ॥

विवेक, भक्ति, योग, ज्ञानादि सपूर्ण साधन रूप दिशाओ से खोजकर हमने अपने शरीर के भीतर हृदय-प्रदेश मे प्रभु को प्राप्त किया है और अब निरतर सपूर्ण परिस्थितियो मे अपने प्रियतम परमात्मा का ही साक्षात्कार करते है, उससे भिन्न मायिक प्रपच को सत्य रूप से नही देखते।

दादू देखूं निज पीव को, और न देखूं कोइ ।
पूरा देखूं पीव को, बाहर भीतर सोइ ॥ ७५ ॥

ब्रह्माण्ड के बाहर और भीतर परिपूर्ण रूप से हम प्रभु को देख रहे है। अब तो यही अभिलाषा रहती है—निरतर अपने प्रियतम प्रभु को ही देखते रहे, प्रभु से भिन्न कुछ भी न देखे।

दादू देखूं निज पीव को, देखत ही दुख जाइ ।
हूं तो देखूं पीव को, सब में रह्या समाइ ॥ ७६ ॥

जब हम अपने प्रभु को देखते है तो देखते ही हमारा सासारिक विक्षेप जन्य दु ख शात हो जाता है। इस कारण हम तो अब व्यापक रूप से सब मे समाये हुये प्रभु को ही देखते है।

दादू देखू निज पीव को, सोई देखन जोग।
परगट देखू पीव को, कहां बतावै लोग ॥ ७७ ॥

सकाम कर्म करने कराने वाले प्रभु को कहा बताते है ? वे तो वैकुण्ठादि लोको मे ही बताते है किन्तु हम तो प्रत्यक्ष रूप से अपने हृदय मे ओर विचार द्वारा सर्वत्र व्यापक रूप से प्रभु को देख रहे है और वही देखने योग्य है। अत हम तो मायिक प्रपच का बाध करके निरतर सर्वत्र अपने प्रियतम प्रभु को ही देखते है।

परिचय जिज्ञासु उपदेश

दादू देखु दयालु को, सकल रह्या भरपूर।
रोम-रोम मे रम रह्या, तू जनि जानै दूर ॥ ७८ ॥

७८-८० मे जिज्ञासु को साक्षात्कार की प्रेरणा रूप उपदेश कर रहे है—परमात्मा को अपने से दूर किसी लोक विशेष मे रहने वाला मत समझ। तू विचार द्वारा उस दयालु प्रभु को देख, वह व्यापक होने से तेरे रोम-रोम मे रम रहा है और सपूर्ण विश्व मे भी परिपूर्ण है।

दादू देखु दयालु को, बाहर भीतर सोइ।
सब दिशि देखूं पीव को, दूसर नाहीं कोइ ॥ ७९ ॥

तू उस दयालु परमात्मा को विचार-द्वारा देख, वह आकाश के समान सबके बाहर-भीतर स्थित है। हम तो सभी दिशाओ मे अपने प्रियतम को ही सत्य और व्यापक देखते है अन्य किसी को भी सत्य और व्यापक नही देखते।

दादू देखु दयालु को, सन्मुख साई सार।
जीधर देखू नैन भर, तीधर सिरजनहार ॥ ८० ॥

उस दयालु प्रभु को विचार द्वारा देख, वह ससार का सार तत्त्व प्रभु तेरे सन्मुख आने वाले सर्व पदार्थो मे स्थित होने से तेरे सन्मुख ही है। तेरे अन्त करण की वृत्ति प्रत्येक पदार्थ मे स्थित चेतन का आवरण भग करके उसे ही देखती है। हम तो बुद्धि नेत्र मे अद्वैत विचार कर के जिधर देखते है, उधर वह ब्रह्म ही भासता है।

दादू देखु दयालु को, रोक रह्या सब ठौर।
घट-घट मेरा साईया, तू जनि जाणै और ॥ ८१ ॥

तू परम दयालु प्रभु को अपने आत्मस्वरूप से भिन्न मत समझ। वह हमारा प्रभु प्रत्येक घट मे तथा दूध मे मक्खन के समान विश्व के प्रत्येक परमाणु मे अन्तर्हित रूप से स्थित है। उसे विचार द्वारा देख, तुझे अवश्य भासेगा।

उभय असमाव

तन मन नाहीं मैं नहीं, नहिं माया नहिं जीव।
दादू एकै देखिये, दह दिशि मेरा पीव ॥ ८२ ॥

अद्वैत स्थिति मे द्वैत नही रहता, यह कह रहे है—स्थूल शरीर, मन, अहकार, माया और जीवत्व भाव, ये सब द्वैत, अद्वैत स्थिति मे नही रहता। उस समय तो एक मात्र हमारे प्रियतम ही अद्वैत रूप से दसो दिशाओ मे देखने मे आते है।

पति पहचान

दादू पाणी मांहैं पैसि कर, देखै दृष्टि उधार।
जलाबिम्ब सब भर रह्या, ऐसा ब्रह्म विचार ॥ ८३ ॥

ब्रह्म पहचान की युक्ति बता रहे है—जैसे जल मे गोता लगाकर नेत्र खोल के देखने से सर्वत्र जल ही जल भरा दृष्टि आता है, वैसे ही ब्रह्म विचार द्वारा अन्त करण की वृत्ति को ब्रह्म मे लीन करने पर सर्वत्र परिपूर्ण ब्रह्म ही ब्रह्म भासता है।

अकबर बादशाह ने प्रश्न किया था, ज्ञान द्वारा ब्रह्म भासने कर कोई दृष्टात बताइये ? उसका उत्तर इस साखी से दिया था। प्रसग कथा - दृ सु सि त १२/२५ मे देखो।

परिचय पतिव्रत

सदा लीन आनन्द में, सहज रूप सब ठौर।
दादू देखै एक को, दूजा नांहीं और ॥ ८४ ॥

८४-९१ मे साक्षात्कार सम्बन्धी पतिव्रत दिखा रहे है—विश्व के सभी स्थलो मे माया रहित सहज स्वरूप ब्रह्म स्थित है। हम सदा आन्तर वृत्ति से उसी के आनन्द मे निमग्न रहते है और बाह्य दृष्टि से भी सर्वत्र सब वस्तुओ मे उसी को सत्य रूप से देखते है, अन्य कोई भी हमे सत्य नही भासता।

दादू जहँ तहँ साथी संग है, मेरे सदा आनन्द ।
नैन बैन हिरदै रहै, पूरण परमानन्द ॥ ८५ ॥

घरादि स्थलो मे, जाग्रतादि अवस्थाओ मे तथा सर्व देश काल मे जहा तहा व्यापक होने से, मेरे साथी प्रभु-दर्शन रूप से नेत्रो मे, नाम रूप से वाणी मे, स्मरण रूप से हृदय मे, इस प्रकार पूर्ण परमानन्द स्वरूप ब्रह्म निरन्तर मेरे साथ ही रहते है। इसीलिये मुझे सदा आनन्द का ही अनुभव होता रहता है।

जागत जगपति देखिये, पूरण परमानन्द।
सोवत भी सांई मिलै, दादू अति आनन्द ॥ ८६ ॥

हम जाग्रतावस्था मे विश्व मे परिपूर्ण जगत्पति परमानन्द रूप ब्रह्म को ब्रह्माकार वृत्ति द्वारा देखते रहते है और सोते समय भी तैजस् तथा प्राज्ञ के लक्ष्यार्थ रूप प्रभु हम से मिले हुये ही रहते है। इस प्रकार कभी भी वियोग न होने से हमे नित्यानन्द का अनुभव होता रहता है।

दह दिशि दीपक तेज के, बिन बाती बिन तेल।
चहुँ दिशि सूरज देखिये, दादू अद्‌भुत खेल ॥ ८७ ॥

ज्योति रूप ब्रह्म का ध्यान करने से ध्यान की परिपाकावस्था मे बिना वत्ती और बिना तेल के ही दसो दिशाओ मे दिव्य तेजोमय दीपक दृष्टि मे आते है और कभी कभी चारो ओर सूर्य ही सूर्य दीख पड़ते है। ऐसा ज्योतिर्मय अद्‌भुत खेल उस समय देखने मे आता है। बाह्य एक सूर्य भी अपने ताप से सबको जलाने लगता है किन्तु वहा के अनेक सूर्य भी नहीं तपाते, यह अद्‌भुतता है।

सूरज कोटि प्रकाश है, रोम रोम की लार।
दादू ज्योति जगदीश की, अत न आवै पार ॥ ८८ ॥

जगत् के स्वामी ब्रह्म की ज्योति का प्रकाश शरीर के प्रत्येक रोम के साथ कोटि सूर्यों के समान प्रतीत होता है। इस प्रकाश का कभी भी अन्त नही होता। विचार द्वारा निश्चय होता है कि—ब्रह्म की ज्योति का प्रकाश ब्रह्म रूप होने से अपार है।

ज्यो रवि एक अकाश है, ऐसे सकल भरपूर।
दादू तेज अनंत है, अल्लह आली[1] नूर ॥ ८९ ॥

जैसा आकाश मे एक सूर्य है, ऐसे ही सूर्यों से सपूर्ण विश्व को भर दे तो उनका प्रकाश भी बहुत भासेगा किन्तु उस प्रकाश से भी ब्रह्म-स्वरूप का तेजोमय प्रकाश श्रेष्ठ[1] और अनन्त सिद्ध होगा।

सूरज नहीं तहँ सूरज देखे, चंद नही तहँ चदा।
तारे नहीं तहँ झिलमिल देख्या, दादू अति आनदा ॥ ९० ॥

उस ध्यानावस्था मे बाह्य सूर्य चन्द्रमा नही होने पर भी हमने सूर्य-चन्द्रमा देखे है। बाह्य तारे न होने पर भी तारो की ज्योति की झिलमिलाहट देखी है। उक्त ब्रह्म-ज्योति रूप विभूतियो के दर्शन से वहा अति आनन्द का अनुभव होता है।

बादल नहि तहँ वरषत देख्या, शब्द नहीं गरजदा।
बीज नहीं तहँ चमकत देख्या, दादू परमानन्दा ॥ ९१ ॥

बादलो के बिना ही आज्ञा चक्र के ऊपर अमृत स्थान से अमृत वृष्टि होती है। जहा आघात जन्य शब्द कभी भी नही होता वहा ही अनाहत ध्वनि रूप गर्जना होती है। बिजली बिना ही बिजली के सामान आत्म-ज्योति का प्रकाश चमकता हुआ दृष्टि मे आता है। इन सबको देखकर हमे अति आनन्द होता है।

आत्म बल्लीतरु

दादू ज्योति चमकै झिलमिलै, तेज पुंज परकाश ।
अमृत झरै रस पीजिये, अमरबेलि आकाश ॥ ९२ ॥

ध्यान की प्रतीतियो का परिचय दे रहे है—ध्यान मे कभी ऐसा भान होता है कि तेज राशि ब्रह्म से प्रकट होकर आत्म-ज्योति झिलमिल-झिलमिल चमक रही है और कभी ऐसा भान होता है कि—चिदाकाश रूप ब्रह्म मे आत्म रूप अमर-बेलि चढ रही है अर्थात् ब्रह्म मे मिल रही है । अमृत स्थान से अमृत रस झरता रहता है। हे साधको ! तुम भी साधन द्वारा उस अवस्था मे जाकर वह रस पान करो।

परिचय

दादू अविनाशी अंग तेज का, ऐसा तत्त्व अनूप।
सो हम देख्या नैन भर, सुन्दर सहज स्वरूप ॥ ९३ ॥

93-95 मे साक्षात्कार सम्बन्धी परिचय दे रहे है—अविनाशी ब्रह्म के सभी अग तेजोमय है। उसका स्वरूप निर्द्वन्द्व होने से स्वाभाविक ही सुन्दर है और वह ऐसा अनुपम तत्त्व है कि—उसका कोई भी उपमा नही दी जा सकती है। उसको हमने विवेक-विचार-नेत्रो से इच्छा भर के देखा है।

परम तेज परगट भया, तहँ मन रह्या समाइ।
दादू खेलै पीव सौं, नहिं आवै नहिं जाइ ॥ ९४ ॥

साधन द्वारा हृदय मे आत्म-ज्ञान परम प्रकाश प्रकट हुआ है, तब से हमारा मन उसी प्रकाश मे समाया हुआ रहता है, उस ज्ञान को नही भूलता और उस प्रकाश के द्वारा जिस ब्रह्म का साक्षात्कार हुआ है, उसी ब्रह्म-प्रियतम से उसी का चिन्तन रूप खेल-खेलता रहता है। एक विषय मे आकर दूसरे विषय मे जाना छोडकर निरन्तर ब्रह्म-चिन्तन मे ही स्थित रहता है।

निराधार निज देखिये, नैनहुँ लागा बंद।
तहँ मन खेलै पीव सौ, दादू सदा अनंद ॥ ९५ ॥

पहले नेत्रादि द्वारा हमारी चित्त-वृत्ति बाह्य विषयो मे जाती थी। अब उसके प्रतिबन्ध लग गया है, क्योकि-मन तो अन्तर्मुख रहकर ध्यानावस्था मे अपने प्रियतम प्रभु से उसी का चिन्तन-खेल खेलता रहता है और उस खेल मे उसे सदा ही आनन्द का अनुभव होता रहता है। अत वह बाहर जाना चाहता ही नही। साधको ! तुम भी अपने मन को अन्तर्मुख करके ध्यानावस्था मे मायिक आधारो से रहित अपने आत्म-स्वरूप प्रभु को देखो।

आत्म बल्ली तरु

ऐसा एक अनूप फल, बीज बाकुला नांहिं।
मीठा निर्मल एक रस, दादू नैनहुँ माहिं ॥ ९६ ॥

अपने ज्ञान का परिचय दे रहे है—जीवात्मा रूप बेलि जब मननादि साधन-जल से वृद्धि को प्राप्त हुई, तब उसके उपमा रहित ब्रह्म ज्ञान रूप एक ऐसा फल लगा है, जिस मे अज्ञान-बीज नही है, भोग-वासना छिलका नही है। सशय-विपर्य्य दोषो से रहित होने से निर्मल है। आनन्द-मधुरता से सम्पन्न है, सदा एक रस है और हमारे विचार-नेत्रो मे स्थित है।

परिचय

हीरे हीरे तेज के, सो निरखे त्रय लोइ[1]।
कोइ इक देखै संत जन, और न देखै कोइ ॥ ९७ ॥

९७-१०२ मे साक्षात्कार सम्बन्धी परिचय दे रहे है—हीरो के समूह के तेज के समान वह ब्रह्म शीतल तेज स्वरूप है। ऐसा ही हमने अपने तृतीय ज्ञान-नेत्र[1] से समाधि मे देखा है। उसे समाधि प्राप्त कोई विरला सत ही देख पाता है। अन्य अज्ञानी प्राणी नही देख सकते।

नैन हमारे नूर[1] मा[2], तहाँ रहे ल्यौ लाइ।
दादू उस दीदार[3] को, निशदिन निरखत जाइ ॥ ९८ ॥

उस समाधि अवस्था मे हमारे विवेक विचार-नेत्र प्रकाशमय[1] ब्रह्म स्वरूप के बीच[2] मे ही लगे रहते है और मन भी वहा ही अपनी वृत्ति लगाये रहता है। हमारे सभी रात्रि-दिन उस अपने आत्म-स्वरूप ब्रह्म के दर्शन[3] करते-करते ही व्यतीत होते है।

नैनहुँ आगे देखिये, आतम अतर सोइ।
तेज पुँज सब भर रह्या, झिलमिल झिलमिल होइ ॥ ९९ ॥

वह ब्रह्म अपने भीतर ही है। तुम ससार दशा से आगे समाधि अवस्था मे जाकर अपने ज्ञान-नेत्रो से देखो, तुम्हे अवश्य वहा झिलमिल-झिलमिल होता हुआ वह प्रकाश रूप ब्रह्म दीखेगा। हमने समाधि अवस्था मे उस तेज-पुज ब्रह्म को सपूर्ण विश्व मे परिपूर्ण रूप से देखा है।

अनहद बाजे बाजिये, अमरापुरी निवास।
ज्योति स्वरूपी जगमगै, कोई निरखै निज दास ॥ १०० ॥

समाधि अवस्था मे मृत्यु नही मार सकती, अत समाधि स्थिति ही अमरापुरी निवास है। प्रथम जब अनाहत बाजे बजने लगते है, तब ही अमरापुरी मे निवास होता है। उस समाधि अमरापुरी मे ज्योति स्वरूप ब्रह्म का प्रकाश जगमगाता है किन्तु उसको कोई समाधि-स्थिति को प्राप्त भगवान् का निजी भक्त ही देख सकता है, सब नही।

परम तेज तहँ मन रहै, परम नूर निज देखै।
परम ज्योति तहँ आतम खेलै, दादू जीवन लेखै ॥ १०१ ॥

समाधि अवस्था मे हमारा मन परम तेज स्वरूप ब्रह्म के समीप ही रहता हुआ अपने आत्म-स्वरूप ब्रह्म-प्रकाश को ही देखता रहता है तथा उस समाधि की निर्विकल्पावस्था मे परम ज्योति-स्वरूप ब्रह्म के साथ आत्मा ब्रह्मानन्द का अनुभव रूप खेल खेलता है। इस ब्रह्मात्मा के अभेदानन्द का अनुभव होने पर साधक का जीवन सफल हो जाता है, वह मुक्त हो जाता है।

दादू जरै सु ज्योति स्वरूप है, जरै सु तेज अनंत ।
जरै सु झिलमिल नूर है, जरै सु पुंज रहंत ॥ १०२ ॥

जो साधक, साधन से प्रकट हुये प्रभु-प्रकाश के झिलमिलाहट को भली प्रकार पचा लेता है, किसी अन्य को नही कहता, तब वह प्रकाश-पुज उसके हृदय मे अच्छी प्रकार प्रकाशित होता रहता है, फिर उसके विशेष अनुभवो को भी जब भली प्रकार पचा जाता है, तब साधक का ब्रह्म तेज अपार हो जाता है और वह पारमार्थिक अनुभवो को सम्यक् पचाने वाला साधक ज्योति स्वरूप ब्रह्म ही हो जाता है।

परिचय पति पहचान

दादू अलख अल्लाह का, कहु कैसा है नूर ।
दादू बेहद[1] हद नहीं, सकल रह्या भरपूर ॥ १०३ ॥

१०३-११० मे प्रभु पहचान का परिचय दे रहे है—आगरा के पास सीकरी शहर मे वीरबल और अबुलफजल ने प्रश्न किया था—स्वामिन् ! मनइन्द्रियो के अविषय ब्रह्म का स्वरूप कैसा है, सो कहिये ? १०६ तक उसी का उत्तर दे रहे है—वह ब्रह्म जाति व्यक्ति आदि से रहित निराकार होने से असीम[1] है, उसकी कोई सीमा नही और व्यापक होने से सब विश्व मे परिपूर्ण है।

वार पार नहिं नूर का, दादू तेज अनंत ।
कीमत नहिं करतार की, ऐसा है भगवंत ॥ १०४ ॥

तेज स्वरूप ब्रह्म अनन्त है। ब्रह्म के स्वरूप प्रकाश का आदि अन्त नही ज्ञात होता। विश्व का आदि कर्त्ता होने से उसकी महिमा रूप कीमत, उसके कार्य से पूर्ण रूप से नही हो सकती। ऐसा विलक्षण ब्रह्म का स्वरूप है।

निर्संध नूर अपार है, तेज पुंज सब मांहिं ।
दादू ज्योति अनंत है, आगो पीछो नांहिं ॥ १०५ ॥

अवयव रहित होने से उसमे कोई सन्धि नही है। उसका स्वरूप अपार है। तेज राशि ब्रह्म आत्म रूप से सबके भीतर स्थित है। उसकी ज्ञान रूप ज्योति भी अनन्त है। निराकार होने से उसका अग्र भाग और पृष्ठ भाग नही सिद्ध होता।

खंड-खंड निज ना भया, इकलस[1] एकै नूर[2] ।
ज्यों था त्यों ही तेज है, ज्योति रही भरपूर ॥ १०६ ॥

निजात्म-स्वरूप ब्रह्म सदा अखड होने से उसके भिन्न-भिन्न अवतार रूप खड नही हुये है। अवतार माया विशिष्ट के ही होते है। शुद्ध ब्रह्म का स्वरूप[2] तो सदा एक-रस[1] अद्वैत ही है। वह तेज स्वरूप ब्रह्म आदि मे जैसा था वैसा ही अब भी है और उसकी सत्ता रूप ज्योति सब विश्व मे परिपूर्ण रूप से भरी हुई है। उसी के आधार पर विश्व का सचालन होता है।

परम तेज प्रकाश है, परम नूर निवास ।
परम ज्योति आनन्द मे, हसा दादू दास ॥ १०७ ॥

जो कुछ भी विश्व मे ज्ञान-प्रकाश है, वह उस परम तेज स्वरूप ब्रह्म का ही है। सतो का निवास स्थान भी परब्रह्म का स्वरूप ही है। हम सेवक जन जो उस परम ज्योति स्वरूप ब्रह्म के दर्शनानन्द-सरोवर मे हस बने रहते है अर्थात् निरन्तर उसका ही साक्षात्कार करते रहते है।

नूर सरीखा नूर है, तेज सरीखा तेज ।
ज्योति सरीखी ज्योति है, दादू खेलै सेज ॥ १०८ ॥

उस ब्रह्म स्वरूप के समान उसी का स्वरूप है। उसके तेज सदृश उसी का तेज है। उसकी ज्ञान ज्योति के समान उसी की ज्ञान ज्योति है। किसी प्रकार भी उसके विवर्त्त-ससार के किसी भी व्यक्ति, वस्तु आदि की उपमा उसे नही दी जा सकती। उसकी अष्टदल-कमल-शय्या पर हम उससे दर्शनानन्द का अनुभव रूप खेल खेलते रहते है।

तेज पुंज की सुन्दरी, तेज पुंज का कत ।
तेज पुज की सेज पर, दादू बन्या वसत ॥ १०९ ॥

आत्मा और परमात्मा दोनो चेतन रूप होने से तेज राशि है। अत तेज राशि ब्रह्म-स्वामी और तेज राशि हमारी आत्मा-सुन्दरी, तेज-पुज ब्रह्म की शय्या अष्टदल-कमल पर दोनो की एकता होने से वसत बन गई है अर्थात् हमे वसत के समान अखड आनन्द का अनुभव हो रहा है। शका-वसत मे तो वृक्षो के पुष्पो की अधिकता होने से पुष्प-वर्षा होती रहती है और नर-नारी फाग खेलते है। उत्तर—

पुहुप प्रेम बरषै सदा, हरिजन खेलै फाग ।
ऐसा कौतुक देखिये, दादू मोटे भाग ॥ ११० ॥

हमारे मन-वृक्ष से प्रेम-पुष्पो की वृष्टि सदा होती रहती है और भक्त जन चित्त से प्रेमोत्सव-फाग खेलते रहते है। इसी आत्मा-परमात्मा की एकता रूप वसत मे ऐसा अद्भुत खेल देखने मे आता है। इसे देखकर हम अपने भाग्य को महान् मानते है।

परिचय रस

अमृत धारा देखिये, पारब्रह्म बरषत ।
तेज पुज झिलमिल झरै, को साधू जन पीवंत ॥ १११ ॥

१११-११५ मे रस रूप ब्रह्म के दर्शन-रस-पान का परिचय दे रहे है-परब्रह्म से दर्शनामृत-धारा बरस रही है। साधको ! तुम भी समाधि अवस्था मे जाकर देखो ! उस तेज-राशि ब्रह्म से

झिलमिल-झिलमिल दर्शनामृत झरता हुआ दीखेगा। इस दर्शनामृत का पान समाधि अवस्था को प्राप्त कोई विरला सत ही कर सकता है, अन्य नही।

रस ही में रस बरषि है, धारा कोटि अनंत।
तहँ मन निश्चल राखिये, दादू सदा वसंत॥ ११२॥

जिस भक्त के हृदय मे प्रभु-प्रेम-रस रहता है, उसी में अनन्त प्रकार से ब्रह्म दर्शन-रसधारा की वर्षा होती है। उस भक्त को भगवान् समाधि अवस्था मे पूर्व कथित ज्योति आदि नाना प्रकार से दर्शन देते है। साधको! उस समाधि अवस्था मे जिस प्रभु के दर्शन-रसधारा की वृष्टि होती है, उसी प्रभु मे अपने मन को स्थिर रखो। उक्त स्थिरता की दृढता होने पर सदा वसत के समान आनन्द ही आनन्द रहेगा।

घन बादल बिन बरषि है, नीझर निर्मल धार।
दादू भीजै आतमा, को साधू पीवनहार॥ ११३॥

समाधि अवस्था मे प्राकृत मेघ समूह के बिना ही ब्रह्म-झरने से निर्मल ब्रह्म-दर्शन-धारा बरसती है, उससे जीवात्मा भीगता है अर्थात् दर्शन मे निमग्न होकर शांति प्राप्त करता है, किन्तु ब्रह्म के साथ अभेद होना रूप पान तो कोई विरला सत ही करता है। दर्शन तो योगियो को समाधि मे हो जाते है परन्तु ब्रह्म से अभेद तो ज्ञानी योगी का ही होता है।

ऐसा अचरज देखिया, बिन बादल बरषै मेह।
तहँ चित चातक ह्वै रह्या, दादू अधिक सनेह॥ ११४॥

समाधि अवस्था मे ऐसा आश्चर्य देखने मे आता है—प्राकृत बादल न होने पर भी ब्रह्म-मेघ से ब्रह्म-दर्शन वर्षा होती रहती है। उस समाधि अवस्था मे हमारा चित्त चातक पक्षी के समान अति प्रेम से ब्रह्म-दर्शन स्वाति बिन्दु के पान करने मे अनुरक्त हुआ रहता है।

महारस मीठा पीजिये, अविगत अलख अनंत।
दादू निर्मल देखिये, सहजैं सदा झरंत॥ ११५॥

साधको! तुम समाधि अवस्था मे जाकर देखो, मन का अविषय, इन्द्रियो से परे, अपार, संपूर्ण रसो का उद्गम स्थान महारस-ब्रह्म का दर्शन-रस परम निर्मल और परमानन्द-मधुरता से सम्पन्न है तथा समाधि अवस्था मे प्रतिक्षण झरता रहता है अर्थात् दर्शन होता रहता है। तुम अपने वृत्ति-नेत्रो से उसका पान करो।

कर्त्ता-कामधेनु

कामधेनु दुहि पीजिये, अकल अनूपम एक।
दादू पीवै प्रेम सौं, निर्मल धार अनेक॥ ११६॥

११६-१२१ मे ब्रह्म-कामधेनु का दर्शन-दुग्ध-पान करने की प्रेरणा कर रहे है— साधको! कला, विभाग और उपमा रहित अद्वैत, कामनाओ को पूर्ण करने वाली ब्रह्म-कामधेनु का दर्शन-

दुग्ध ध्यान-दोहन द्वारा पान करो। हम तो पूर्ण प्रेम से ध्येय, ज्ञेय और आत्मा रूप आदि अनेक निर्मल विचारधाराओ द्वारा दर्शन-दुग्ध पान करते है अर्थात् दर्शन करते ही रहते है।

कामधेनु दुहि पीजिये, ताको लखै न कोइ।
दादू पीवै प्यास सौ, महारस मीठा सोइ ॥ ११७ ॥

जो कामनाओ को पूर्ण करने वाली ब्रह्म-कामधेनु है, उसे कोई भी बहिर्मुख प्राणी नही देख सकता। साधको ! तुम अन्तर्मुख वृत्ति करके ध्यान-दोहन द्वारा उसके दर्शन-दुग्ध का पान करो। जो कोई दर्शन की उत्कृष्ट अभिलाषा वाला ज्ञान द्वारा ब्रह्म-दर्शन-महारस पान करता है तो उसके लिये वह ब्रह्म-दर्शन अति मधुर हो जाता है।

कामधेनु दुहि पीजिये, अलख रूप आनन्द ।
दादू पीवै हेत सौ, सुषमन लागा बन्द ॥ ११८ ॥

साधको ! समाधि अवस्था मे जाकर मन इन्द्रियो के अविषय, आनन्द स्वरूप ब्रह्म-कामधेनु का दर्शन-दुग्ध तदाकार वृत्ति-दोहन द्वारा पान करो। सुषुम्ना नाडी द्वारा प्राण सहस्रार चक्र मे जाकर निरुद्ध हो जाने से हमारा मन तो परम प्रेम से उसका पान करता है।

कामधेनु दुहि पीजिये, अगम अगोचर जाइ।
दादू पीवै प्रीति सौं, तेज पुज की गाइ ॥ ११९ ॥

ज्ञान-ज्योति राशि ब्रह्म-कामधेनु गो का दर्शन हम तो अति प्रेम से पान करते है। साधको ! तुम षट् प्रमाण की अविषय, इन्द्रियातीत निर्विकल्प समाधि अवस्था मे जाकर, ब्रह्म-कामधेनु का अभेद-दर्शन अह ब्रह्मास्मि अखड वृत्ति दोहन क्रिया द्वारा पान करो।

कामधेनु करतार है, अमृत सरवै सोइ।
दादू बछरा दूध को, पीवै तो सुख होइ ॥ १२० ॥

ब्रह्म ही कामधेनु है। वही निर्विकल्पावस्था मे अपना अमृतमय दर्शन-दुग्ध देती है। जब जिज्ञासु-बछड़ा उसके दर्शन-दुग्ध को पान करता है तब उसे अवश्य ही ब्रह्मानन्द प्राप्त होता है।

ऐसी एकै गाइ है, दूझै बारह मास ।
सो सदा हमारे सग है, दादू आतम पास ॥ १२१ ॥

वह एक मात्र ब्रह्म-गो ही ऐसी विलक्षण है जो बारह मास ही दर्शन-दुग्ध देती रहती है। ब्रह्म साक्षात्कार होने पर ब्रह्मात्मा का अभेद ही सदा भासता रहता है। वह ब्रह्म-गो आत्मा के अभेद भाव से अति निकट होने से सदा हमारे साथ ही है।

परिचय आत्म बल्ली तरु

तरुवर शाखा मूल बिन, धरती पर नांहीं ।
अविचल अमर अनन्त फल, सो दादू खाहीं ॥ १२२ ॥

१२२-१२६ में ब्रह्म, आत्मा का वृक्ष-बेलि के रूप मे परिचय दे रहे है—शुद्ध ब्रह्म-वृक्ष पृथ्वी पर नही लगता, कारण, वह तो सपूर्ण भौतिक प्रपच का अधिष्ठान है, अधिष्ठान विवर्त्त के आश्रय कैसे रह सकता है। न उसका कोई कारण रूप मूल और न कार्य रूप शाखा है। शुद्ध ब्रह्म किसी का कारण-कार्य नहीं हो सकता। उसी अविचल, अनन्त, ब्रह्म-वृक्ष का साक्षात्कार रूप फल हम साधक लोग खाते है अर्थात् ब्रह्मानन्द का अनुभव करते है।

तरुवर शाखा मूल बिन, धर अम्बर न्यारा ।
अविनाशी आनन्द फल, दादू का प्यारा ॥ १२३ ॥

शुद्ध ब्रह्म-वृक्ष माया-मूल और प्रपच-शाखाओ से रहित है। पृथ्वी और आकाश मे व्यापक रूप से रहता हुआ भी इनसे भिन्न है। उसका फल साक्षात्कार से जन्य अविनाशी आनन्द है, वह हमे बहुत प्यारा है।

तरुवर शाखा मूल बिन, रज वीरज रहिता ।
अजर अमर अतीत फल, सो दादू गहिता ॥ १२४ ॥

जैसे प्राणियो के शरीर रज-वीर्य से बनते है वैसे ही पृथ्वी-रज और जल-वीर्य के सयोग से शुद्ध ब्रह्म-वृक्ष नही उत्पन्न होता। इस कारण उसके न जड़ है और न शाखाये है। उस अजर-अमर, गुणातीत शुद्ध ब्रह्म-वृक्ष के दर्शन-फल को हम निरन्तर ग्रहण करते है, कभी भी उनके दर्शन से विमुख नही रहते।

तरुवर शाखा मूल बिन, उत्पति परलै नांहिं ।
रहिता रमता रामफल, दादू नैनहुँ मांहिं ॥ १२५ ॥

उत्पत्ति नाश रहित होने से शुद्ध ब्रह्म-वृक्ष के न जड़ और न शाखा ही है, वह निरजन राम-वृक्ष व्यापक होने से सम्पूर्ण प्राणियो को अपनी सत्ता से रमाता हुआ और सब मे आप रमता हुआ भी माया और माया के कार्य प्रपच से रहित ही रहता है। उसी का दर्शन-फल हमारे विचार-नेत्रो मे बसा है अर्थात् हमारे विचार ब्रह्म भिन्न नही होते।

प्राण तरुवर सुरति जड, ब्रह्म भूमि ता मांहिं ।
रस पीवै फूलै फलै, दादू सूखै नांहिं ॥ १२६ ॥

ब्रह्म की आधारता का परिचय दे रहे है—प्राणधारी साधक सत ही तरुवर है। उसकी ब्रह्माकार वृत्ति ही जड़ है। ब्रह्म ही भूमि है। ब्रह्म-भूमि मे स्थिर रहकर सत-तरुवर, उसी का चिन्तन-रस पान करता रहता है। इसी कारण सत-तरुवर प्रेमाभक्ति-फूल और ज्ञान-फलो से सम्पन्न रहता है और शोक, मोहादि ताप से नही सूखता।

जिज्ञासु उपदेश प्रश्नोत्तरी

ब्रह्म शून्य तहँ क्या रहै ? आतम के अस्थान ?
काया अस्थल क्या बसै ? सद्गुरु कहैं सु जान ॥ १२७ ॥

१२७-१४७ मे जिज्ञासुओ के प्रश्नो के उत्तर देते है-१२७ मे प्रतिलोम क्रम से वीरबल के प्रश्न है-हे श्रेष्ठ ज्ञान सम्पन्न सद्गुरो ! मायादि विकारो से शून्य ब्राह्मी स्थिति को प्राप्त मुक्त पुरुष के क्या लक्षण है ? सासारिक विषयो से विरक्त, आत्मा को शरीर से भिन्न मानकर सबको सम-भाव से देखना रूप आत्म स्थिति को प्राप्त मुमुक्षु के क्या लक्षण है ? और स्थूल शरीर को ही आत्मा मानकर, उसी के भरण-पोषण मे सलग्न रहने वाले मानव के क्या लक्षण है ? आप मेरे उक्त प्रश्नो के उत्तर देने की कृपा करे।

काया के अस्थल रहैं, मन राजा पंच प्रधान ।
पच्चीस प्रकृति तीन गुण, आपा[1] गर्व[2] गुमान[3] ॥ १२८ ॥

१२८-१३० मे अनुलोम क्रम से वीरबल के प्रश्नो का उत्तर दे रहे है—शरीर को ही आत्मा मानने वाले का मन राजा के समान इच्छानुसार धर्माधर्म मे विचरता रहता है। पच ज्ञानेन्द्रियो की मत्रियो के समान प्रधानता रहती है अर्थात् वे भी मन की इच्छानुसार विहित, अविहित विषयो मे भ्रमण करती रहती है। पच्चीस प्रकृति (पृथ्वी की पाच-१ अस्थि २ मेद ३ क्षुधा ४ रोध ५ भय। जल की पाच-१ त्वक् २ मूत्र ३ तृषा ४ भ्रमण ५ मोहादिक। अग्नि की पाच-१ मास २ रक्त ३ आलस्य ४ उर्ध्व गमन ५ क्रोध। वायु की पाच-१ नाड़ी २ वीर्य ३ सगम ४ अतिनिर्गमन ५ काम। आकाश की पाच-१ रोम २ कफ ३ निद्रा ४ उच्च स्थिति ५ लोभ) सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण मे मेरा-पन[1] विद्या रूप गुणादि-का अभिमान[2] और शारीरिक-शक्ति[3] आदि का अभिमान इत्यादिक होना ही कायास्थल के लक्षण है।

आतम के अस्थान है, ज्ञान ध्यान विश्वास ।
सहज शील संतोष सत, भाव भक्ति निधि पास ॥ १२९ ॥

सत्यासत्य का विवेक रूप ज्ञान, सच्छास्त्र मे विश्वास, स्वाभाविक ब्रह्मचर्य, यथालाभ सतोष, सत्यभाषण का अभ्यास, गुरुजनो मे श्रद्धा, भगवान् की भक्ति, भगवत् स्वरूप का ध्यान, इत्यादिक दैवीगुण रूप निधि, शरीर से भिन्न आत्मा मानने वाले विरक्त मुमुक्षु के पास रहती है।

ब्रह्म शून्य तहँ ब्रह्म है, निरजन निराकार ।
नूर तेज तहँ ज्योति है, दादू देखणहार ॥ १३० ॥

जहा समाधि अवस्था मे मायादिक विकार-शून्य ब्राह्मी स्थिति प्राप्त होती है, वहा ही निरजन, निराकार, प्रकाशस्वरूप ब्रह्म का साक्षात्कार होता है और वहा ब्राह्मी स्थिति प्राप्त पुरुष की आत्मज्योति ब्रह्म प्रकाश मे लीन हो जाती है, आत्मा परमात्मा का अभेद हो जाता है, तब वह ब्राह्मी स्थिति को प्राप्त पुरुष द्रष्टा होकर रहता है। क्रिया, कर्मादि से उसका कोई सम्बन्ध

नही रहता। यही विकार-शून्य ब्रह्म प्राप्त पुरुष का लक्षण है। वीरबल से प्रश्नोत्तर सीकरी मे हुये थे।

प्रश्न

मौजूद[1] खबर[2] माबूद[3] खबर, अरवाह[4] खबर वजूद[5]।
मक़ाम[6] चे[7] चीज हस्त[10], दादनी[8] सजूद[9] ॥ १३१ ॥

१३१ मे अकबर बादशाह के प्रतिलोम क्रम से प्रश्न है— स्वामिन्! आपको परमार्थ के सभी विषयो का पूर्ण ज्ञान[2] उपस्थित[1] है, अत मै विनय[9] करता हू-ब्रह्म[3] ज्ञान प्राप्त होने की स्थिति[6] के समय ज्ञानी मे आत्मानात्मा[4] विवेक होने पर, मुमुक्षुता की स्थिति के समय मुमुक्षु मे, और देहाध्यास की स्थिति के समय देहाध्यासी[5] मे क्या[7] क्या वस्तुये रहती है[10], उनमे कैसे लक्षण वर्तते है? इन प्रश्नो का उत्तर कृपा करके दे[8]।

उत्तर - वजूद मक़ाम हस्त (शरीअत)

नफ्स[1] गालिब[2] किब्र[3] काबिज[4], गुस्स:[5] मनी[6] एस्त[7]।
दुई[8] दरोग[9] हिर्स[10] हुज्जत[11], नाम[12], नेकी[13] नेस्त[14] ॥ १३२ ॥

१३२-१३४ मे अनुलोम क्रम से अकबर बाहशाह के प्रश्नो का उत्तर दे रहे है— जिसमे विषय-वासना[1] की प्रबलता[2], घमण्ड[3], क्रोध[5], काम[6], भेदभावना[8], मिथ्या[9] भोगो का लालच[10], झगडा[11], ये दृढ[4] रूप से रहते है[7]। ईश्वर-नामस्मरण[12] और भलाई[13] नही[14] रहती, यही देहाध्यासी पुरुष के लक्षण है।

अरवाह मकाम हस्त[13] (तरीक़त)

इश्क[1] इबादत[2] बंदगी[3], यगानगी[4] इखलास[5]।
महर[6] मुहब्बत[7] खैर[8] खूबी[9], नाम[10] नेकी[11] खास[12] ॥ १३३ ॥

अत्यन्त प्रेम[1] से ईश्वर उपासना[2] सेवाभाव[3], एकात्म भाव रूप एकता[4], सम से मित्रता[5], दीनो पर दया[6], सतो मे प्रेम[7], प्राप्त परिस्थिति मे आनन्द[8], दैवीगुण विशिष्टता[9], आत्म चिन्तन[10], परोपकारिता[11], यही मुख्य[12] लक्षण मुमुक्षु मे रहते है[13]।

माबूद मकाम हस्त (हकीकत)

यके[1] नूर[2] खूब[3] खूबां, दीदनी[4] हैरान[5]।
अजब[6] चीज[7] खुरदनी[8], पियालए[9] मस्तान[10] ॥ १३४ ॥

अद्वितीय[1] प्रकाश[2] स्वरूप, श्रेष्ठो[3] से भी अति श्रेष्ठ, दर्शनीय[4] ब्रह्म को देखकर, आश्चर्य[5] युक्त हुये, इस अद्भुत[6] ब्रह्म वस्तु[7] रूप भोजन[8] का अभेद चिन्तन रूप आस्वादन करते है और उस ब्रह्म के प्रेम-रस को मन-प्याले[9] से पान करके मस्त[10] हो रहे है। यही ब्रह्मविदो के लक्षण है।

हैवान[1] आलम[2] गुमराह[3] गाफिल[4], अव्वल[5] शरीयत पंद[6]।
हलाल[7] हराम[8] नेकी बदी, दर्से[9] दानिशमंद[10] ॥ १३५ ॥

उक्त प्रश्नो का उत्तर देकर, अकबर बादशाह को विशेष रूप से समझाने के लिये १३५-१३९ से मुसलमान धर्म की चार अवस्थाओ का वर्णन कर रहे है—१३५ मे शरीअत नामक प्रथमावस्था का परिचय दे रहे है—ससार[२] मे प्राणी विषय-विष के प्रभाव से अचेत[४] हुये, भगवान् के मार्ग[३] को भूलकर, नाना योनियो मे पशु[१] के समान भटक रहे है। अत बुद्धिमान्[१०] को चाहिये-उन्हे धार्मिक ग्रथ पढाकर[५] अथवा उपदेश[६] देते हुये उनसे बुरे[८] कर्म और पर निन्दादि बुराइया छुड़ाकर, अच्छे[७] कर्म और परोपकारादि भलाइया कराते हुये उनको शरीअत नामक प्रथमावस्था[९] मे स्थापन करे। हराम की बदी को छोड़कर नेकी पर रहना ही 'शरीअत' अवस्था है।

कुल[१] फारिग[२] तर्क[३] दुनिया, हररोज[४] हरदम[५] याद।
अल्लह[६] आली[७] इश्क[८] आशिक[९], दरूने[१०] फरियाद[११] ॥ १३६ ॥

१३६ मे तरीकत नामक दूसरी अवस्था को बता रहे है—सासारिक सपूर्ण[१] भोग-वासनाओ को त्याग[३] कर निश्चिन्त[२] हुआ प्रतिदिन[४] ही प्रतिश्वास[५] मे ईश्वर[६] का स्मरण करता रहता है। अखिल विश्व के श्रेष्ठो मे भी अति श्रेष्ठ[७] ईश्वर के अत्यन्त प्रेम[८] का प्रेमी[९] बना रहता है, ईश्वर प्रेम मे किचित् भी कमी नही आने देता और प्रभु के दर्शनार्थ हृदय[१०] से पुकार[११] करता रहता है। यही दूसरी शुद्धाचरण रूप 'तरीकत' अवस्था है।

(मारफत)

आब[१] आतश[२] अर्श[३] कुर्सी[४], सूरते[५] सुबहान[६]।
शरर[७] सिफत[८] करद[९] बूद[१०], मारफत मकाम[११] ॥ १३७ ॥

१३७ मे तीसरी मारफत अवस्था का परिचय दे रहे है— जल[१], अग्नि[२], आकाश[३], और पृथ्वी[४] ये सब उस परम पवित्र[६] परमात्मा के रूप[५] है। उस परमात्मा रूप अग्नि की चिनगारी[७] के समान रहते हुये जो परमात्मा के गुण-गान[८] करता[९] है[१०], उसकी उक्त अध्यात्म स्थिति[११] ही तीसरी 'मारफत' अवस्था कहलाती है।

हक[१] हासिल[२] नूर[३] दीदम[४], करारे[५] मकसूद[६]।
दीदार[७] दरिया[८] अरवाहे[९], आमद[१०], मौजूदे[११], मौजूद ॥ १३८ ॥

१३८ मे हकीकत नामक चतुर्थावस्था का परिचय दे रहे है—जिस अवस्था मे मन मे साधन का यथार्थ फल आता[१०] है तब प्रकाश[३] स्वरूप ईश्वर[१] का दर्शन[४] प्राप्त[२] करके गर्भ की प्रतिज्ञा[५] और साधन का अभिप्राय[६] पूर्ण कर लेता है तथा आत्माएँ[९] ब्रह्म[८] का साक्षात्कार[७] करके उसमे अभेद[११] हो जाती है। वही यथार्थ तत्व प्राप्ति रूप चतुर्थ 'हकीकत' अवस्था कहलाती है।

चहार[१] मजिल[२] बयान[३] गुफतम[४], दस्त[५] करद:[६] बूद[७]।
पीरां[८] मुरीदां[९] खबर करद., जा[१०] राहे[११] माबूद[१२] ॥ १३९ ॥

१३९ मे उक्त चार अवस्थाओ का उपसहार कर रहे है—चार[१] अवस्थाओ[२] की बात भली प्रकार वर्णन[३] करके कह दी[४] है। सिद्ध[८] सतो ने शिष्यो[९] को परमात्मा[१२] के स्थान[१०] का मार्ग[११]

हस्तगत[५] कर[६] दिया अर्थात् बता दिया है[७]। चार अवस्थाओ का सक्षिप्त स्वरूप—"शरीअत सेव शरीर की, तरीकत बे परवाह। मारफत माही रहे, हकीकत मिल जाय।"

पहली प्राण पशू नर कीजे, साच झूठ संसार।
नीति अनीति भला बुरा, शुभ अशुभ निर्धार॥ १४०॥

१४०-१४४ मे हिन्दी भाषा भाषियो के लिये उक्त चार अवस्थाओ का हिन्दी मे वर्णन कर रहे है—प्रथम विवेक रहित ससारी प्राणी पशु के समान ही होता है। अत विचारशील सज्जनो को चाहिये—उन्हे सत्य-मिथ्या, नीति-अनीति, भला- बुरा, शुभ और अशुभ के परिणाम का निर्णय सुनाकर मिथ्या, अनीति, बुराई और अशुभ कर्मों से हटाकर सत्य, नीति, भलाई और शुभ कर्मों मे लगा के मनुष्य बनावे। यह मानवता ही प्रथमावस्था है।

सब तज देखि विचार कर, मेरा नाहीं कोइ।
अनुदिन[१] राता राम सौं, भाव भक्ति रत होइ॥ १४१॥

जिज्ञासु ने आत्मानात्म विचार द्वारा देख करके सोचा—अनात्म-ससार तो मिथ्या है। इन स्त्री, पुत्र, तन, धनादि मे मेरा कोई भी नही है। इसलिए सबको त्याग कर प्रतिदिन[१] भगवत्-प्राप्ति के साधन-भाव, भक्ति आदि में लग कर भगवान् मे ही रत रहता है। यह जिज्ञासु की शुद्धाचरण रूप स्थिति ही दूसरी अवस्था है।

अंबर धरती सूर शशि, सांई सब लै लावै अंग।
यश कीरति करुणा करैं, तन मन लागा रंग॥ १४२॥

आकाश, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमादि सबको ही भगवान् स्वरूप जान कर अपने अन्त करण की वृत्ति भगवान् मे ही लगाता है, भगवान् का ही सृष्टि रक्षणादि रूप यश गान करता है। भक्त वत्सलतादि कीर्ति कथन करता है और विरह पूर्वक दर्शनार्थ विनय करता है तथा इस अवस्था मे साधक के शरीर पर भगवत् रूप सत-सेवा का और मन पर भगवत्-ध्यान का गहरा रग लगा रहता है। साधक की यह अध्यात्म स्थिति ही तीसरी अवस्था है।

परम तेज तहँ मैं गया, नैनहुँ देख्या आइ।
सुख संतोष पाया घणा, ज्योतिहिं ज्योति समाइ॥ १४३॥

जहा परम तेज स्वरूप ब्रह्म की अनुभूति होती है, उसी समाधि अवस्था मे जब 'मै' रूप जीवात्मा गया, तब वहा पहुँचते ही अपने ज्ञान-नेत्र से ब्रह्म का साक्षात्कार किया। साक्षात्कार होते ही महान् सतोष के सहित परमानन्द की प्राप्ति हुई और ब्रह्म रूप व्यापक ज्योति मे आत्म-ज्योति समा गई, जीवात्मा-परमात्मा का अभेद हो गया। यह अभेद स्थिति ही चतुर्थावस्था है।

अर्थ चार अस्थान का, गुरु शिष्य कह्या समझाइ ।
मारग सिरजनहार का, भाग बडे सो जाइ ॥ १४४ ॥

चारो अवस्थाओ का अर्थ गुरुदेव ने कह कर शिष्य को समझा दिया। यह परमात्मा की प्राप्ति का मार्ग हे। जो वडभागी होता हे वही इस मार्ग से जाकर परमात्मा को अभेद रूप से प्राप्त होता है।

आशिकां[1] मस्ताने आलम[2], खुरदनी[3] दीदार[4] ।
चद[5] रह[6] चे[7] कार[8] दादू, यार[9] मा[10] दिलदार[11] ॥ १४५ ॥

१४५ मे साधको की अनन्यता वता रहे है—ससार[2] मे भगवान् के प्रेमी[1]-जन भगवद्-दर्शन[4] रूप भोजन[3] करके और उदार[11] ईश्वर रूप प्रेमपात्र[9] का प्रेम-रस[10] पान करके मस्त रहते है। उन्हे स्वर्गादि के साधन रूप अल्प[5] मार्गो[6] से क्या[7] काम[8] हे ? वे स्वर्गादिक प्राप्ति के साधन नही करते। रह के स्थान मे दह पाठ भी मिलता है, चन्द दह का अर्थ १४ लोक करते है।

ब्रह्म साक्षात्कार धारणा

दादू दया दयालु की, सो क्यों छानी होइ ।
प्रेम पुलक मुलकत रहै, सदा सुहागनि सोइ ॥ १४६ ॥

१४६-१४९ मे साक्षज्ञात्कार की स्थिति के आनन्द का प्रदर्शन कर रहे है—जिस भक्त पर परम दयालु भगवान् की दर्शन देना रूप दया होती है, वह किसी भी प्रकार छिपती नही। जैसे महिला का पति पास रहने से महिला प्रसन्न रहती है वैसे ही वह भक्त सर्वदा अपने प्रभु का दर्शन करते हुये प्रेमानन्द मे पुलकित होकर प्रसन्न रहता है।

दादू विकस विकस दर्शन करै, पुलकि पुलकि रस पान ।
मगन गलित माता रहै, अरस परस मिल प्राण ॥ १४७ ॥

भक्त प्रफुल्लित हो-होकर प्रभु का दर्शन करते है और पुलकित हो-होकर प्रेम-रस का पान करते हुये देहाध्यास गल जाने पर ब्रह्मानन्द मे ही निमग्न हो परस्पर अभेद भाव से मिलकर मस्त रहते है।

दादू देखि देखि सुमिरण करै, देखि देखि लै लीन ।
देखि देखि तन मन विलै, देखि देखि चित दीन ॥ १४८ ॥

भगवन्नाम महिमा, शास्त्र व सत वाणियो मे पुन २ देख कर नाम स्मरण करते रहते है। ससार मे बारम्बार विक्षेप का अनुभव करके चित्त को भगवद्ध्यान मे ही लगाते है। बारम्बार विचार द्वारा ससार को असार समझकर अन्त करण की वृत्ति ब्रह्म मे ही लीन करते है। शरीर, मनादि को ब्रह्म का विवर्त्त समझकर बाधितानुवृत्ति से ब्रह्म मे विलीन करके अभेद रूप से निरन्तर ब्रह्म का ही साक्षात्कार करते रहते है।

दादू निरखि निरखि निज नाम ले, निरखि निरखि रस पीव।
निरखि निरखि पिव को मिलै, निरखि निरखि सुख जीव ॥ १४९ ॥

पुन २ परीक्षा करके भगवान् के सत्, चित्, आनन्द, ब्रह्म, राम आदि नि
चिन्तन करते है। पुन २ भगवान् की अपार महिमा को देख कर, उनकी प्रेमा भक्ति
करते है। अपने प्रियतम प्रभु को प्रत्येक प्राणी तथा वस्तुओं मे विचार द्वारा व्
बारम्बार देखकर आप व्याप्यभाव से मिलते रहते है। जीव-ब्रह्म को श्रुति औ
सुख-स्वरूप तथा एक जानकर आनन्दित रहते है।

आत्म स्मरण

तन सौं सुमिरण सब करैं, आतम सुमिरण एक ।
आतम आगे एक रस, दादू बडा विवेक ॥

१५०-१५४ मे मन के द्वारा अपने आत्म स्वरूप ब्रह्म-स्मरण की विशे
से माला फेरना और मुख से उच्चारण करना रूप स्मरण तो सभी करते हैं कि
आत्म-स्वरूप राम का स्मरण तो एक मात्र श्रेष्ठ सत ही करते है। आत्
आगे तो महान् विवेक द्वारा एक-रस अद्वैत ब्रह्म ही अनुभव होता है।

दादू माटी के मुकाम का, सब को जानैं जाप।
एक आध अरवाह का, विरला आपैं आप।

स्थूल शरीर की रक्षादि के लिये सकाम जप करना तो सभी
को परमात्मा से मिलाने योग्य निष्काम भाव से जप करने वाले
उनमे भी ब्रह्म को अपना स्वरूप जानकर स्वरूपानन्द मे निमग्न
होता है।

दादू जब लग अस्थल देह का, तब लग
निर्भय अस्थल आतमा, आगैं

जब तक स्मरण का स्थल स्थूल सूक्ष्म शरीर ही रहता है
उन्नति आदि के लिये ही सकाम स्मरण करता है, तब तक
सभी गुण व्यापते है और जब देहाध्यास रहित होकर स्मरण
निरन्तर आत्म-चिन्तन ही होने लगता है। उसके पश्चात्
है।

जब नाहीं सुरति शरीर की, बिसरे
आत्म न जानैं आपको, तब एक

जब स्मरण करते २ शरीर का भी ध्यान नहीं
भोग-वासनादि विकारो से मुक्त हो जाता है और जीव
तब विचार द्वारा यही निर्णय होता है- एक अद्वैत ब्रह्म

तन सौ सुमिरण कीजिये, जब लग तन नीका।
आतम सुमिरण ऊपजै, तब लागै फीका॥
आगैं आपै आप है, तहाँ क्या जीव का॥ १५४॥

जब तक विवेकहीन अवस्था मे असत्य, असुन्दर, अशिव शरीर—सत्य सुन्दर शिव रूप भासता है तब तक चित्त की एकाग्रता पूर्वक आत्म-स्वरूप राम का स्मरण तो हो नहीं पाता। अत मुख और हाथो से माला फेरना रूप स्मरण शरीर से ही करना चाहिये। जब मन मे आत्माराम के स्मरण करने की अवस्था उत्पन्न हो जाती है अर्थात् मन आत्माराम के स्मरण मे रत हो जाता है तब शरीर पूर्ववत् सुन्दर नही लगता। मानस जप की सिद्धि के पश्चात् वृत्ति का ब्रह्म मे लय होकर आत्मा व ब्रह्म मे अभेद हो जाता है, फिर उस अभेदावस्था मे जीव का जीवत्व-भाव क्या रह सकता है ? अर्थात् नही रहता।

परिचय

चर्म दृष्टि देखै बहुत, आतम दृष्टि एक।
ब्रह्म दृष्टि परचै भया, तब दादू बैठा देख॥ १५५॥

१५५-१५७ मे साक्षात्कार सम्बन्धी दृष्टि की विलक्षणता बता रहे है—ससार मे गौर, कृष्ण, स्थूल, कृश आदि रूपो को अपने चर्म चक्षुओ से देखने वाले बहुत है किन्तु विचार-नेत्रो द्वारा सबको एकात्म-भाव से देखने वाला आत्मज्ञानी कोई विरला ही होता है। ब्रह्म-ज्ञान की प्रौढावस्था रूप नेत्र से ब्रह्म साक्षात्कार हो जाने पर तो ब्रह्म मे ही स्थित रहकर सम्पूर्ण विश्व को ब्रह्म-रूप ही देखता है अथवा चर्मचक्षु वाला देहाध्यासी पुरुष ससार मे नानात्व का दर्शन करता है क्योकि वह देहादि को आत्मा मानता है और वे नाना है। आत्मदृष्टि वाला सब पदार्थों मे एकात्मभाव का दर्शन करता है। ब्रह्मदृष्टि वाला पुरुष विरला होता है और वह ब्रह्म-रूप, शुद्ध-साक्षी द्रष्टा मात्र बन जाता है।

ये ही नैना देह के, ये ही आतम होइ।
ये ही नैना ब्रह्म के, दादू पलटे दोइ॥ १५६॥

हमारे ये दोनो नेत्र अज्ञान दशा मे स्थूल शरीर को ही देखने वाले होते है, फिर गुरु द्वारा आत्म-ज्ञान होने पर ये ही दोनो सब शरीरो मे आत्मा को देखने लग जाते है। ब्रह्म-ज्ञान की प्रौढ़ावस्था होने पर ये ही नेत्र सबमे ब्रह्म को ही देखने लगते है। मन के भावानुसार दृष्टि बदलती है किन्तु वह देह-दशा और आत्म-दशा मे ही बदलती है, ब्रह्म-दृष्टि होने पर नहीं।

घट परचै सब घट लखै, प्राण परचै प्राण।
ब्रह्म परचै पाइये, दादू है हैरान॥ १५७॥

शरीर को आत्म रूप से पहचानता है, तब अन्य सबको भी सूक्ष्म शरीर रूप ही जानता है। ब्रह्म साक्षात्कार हो जाता है, तब स्वय को ब्रह्म रूप ही देखता है और अन्य जिज्ञासुओ को भी उसकी कृपा से ब्रह्म साक्षात्कार प्राप्त होता है। यह ब्रह्म-साक्षात्कार अवस्था प्राप्त होते ही साधक,

"अहो ! मै था तो सच्चिदानन्द स्वरूप और अपने को मान रहा था असत्य, जड दुःख-रूप", ऐसा विचार करके महान् आश्चर्य चकित होता है।

सूक्ष्म सौंज अर्चा बंदगी।

दादू जल पाषाण ज्यों, सेवै सब संसार।
दादू पाणी लौंण ज्यों, कोई विरला पूजणहार ॥ १५८ ॥

१५८-१६६ में सेवा-पूजा की सूक्ष्म सामग्री और उसकी पद्धति आदि बता रहे है—जैसे जल मे पत्थर रह कर भी जल से अभेद नही हो पाता, वैसे ही ससार के प्राणी व्यापक ब्रह्म मे निवास करते हुये, उसकी सेवा करने पर भी उससे अभेद नही होते। कारण—उनकी सेवा-पूजा बाह्य और कामना रूप स्थूलता से सम्पन्न होती है। कोई विरले सत ही निष्कामभाव से आन्तर सूक्ष्म सेवा-पूजा-द्वारा जल मे नमक के समान ब्रह्म मे लीन हो जाते है, अन्य नहीं।

अलख नाम अंतर कहै, सब घट हरि हरि होइ ।
दादू पाणी लौंण ज्यों, नाम कहीजे सोइ ॥ १५९ ॥

मन इन्द्रियो के अविषय परमात्मा का नाम, भीतर अन्त करण की वृत्ति से चिन्तन करते है तब अभ्यास बढने पर सम्पूर्ण शरीर के रोम २ से नाम ध्वनि होने लगती है और वह नाम जल मे नमक के समान साधक के शरीर मे व्याप्त हो जाता है। इस प्रकार का नाम-चिन्तन ही सूक्ष्म नाम-स्मरण कहलाता है।

छाडै सुरति शरीर को, तेज पुंज में आइ ।
दादू ऐसे मिल रहै, ज्यों जल जलहि समाइ ॥ १६० ॥

शरीर की आसक्ति रूप विशेष प्रीति को त्याग कर, तेज-पुज स्वरूप ब्रह्म का चिन्तन करने से साधक के अन्त करण की वृत्ति तेज-पुज-आत्मा मे आकर उसके अज्ञान को नष्ट कर देती है। अज्ञान नष्ट होते ही जैसे जल मे जल मिल जाता है, वैसे ही आत्मा ब्रह्म मे मिल जाता है।

सुरति रूप शरीर का, पिव के परसे होइ ।
दादू तन मन एक रस, सुमिरण कहिये सोइ ॥ १६१ ॥

प्रभु का साक्षात्कार रूप स्पर्श होने के समय शरीर का स्वरूप ब्रह्माकार-वृत्ति मात्र ही रहता है, शरीरादि मायिक प्रपच उस समय नही भासता। जब स्थूल शरीर और मन रूप सूक्ष्म-शरीर वृत्ति में लय होकर एक रस ब्रह्म ही भासने लगे, तब वही स्मरण की परिपाकावस्था कहलाती है।

राम कहत राम हि रह्या, आप विसर्जन होइ ।
मन पवना पचो विलै, दादू सुमिरण सोइ ॥ १६२ ॥

राम कहते २ जब अनात्म अहकार को भूल कर मन, प्राण और इन्द्रिया विशेष करके राम-परायण ही रहने लगे, अन्य बाह्य व्यवहार को भूल जाये तथा एकमात्र राम स्मरण ही रहे, उसी अवस्था का नाम-स्मरण सच्चा स्मरण है।

जहँ आतम राम संभालिये, तहँ दूजा नाहीं और ।
देही आगे अगम है, दादू सूक्षम ठौर ॥ १६३ ॥

जिस निर्विकल्पावस्था मे आत्म स्वरूप राम का साक्षात्कार होता है, उस अवस्था मे द्वैत भाव नहीं रहता। देहधारी प्राणियो की सविकल्पावस्था से निर्विकल्पावस्था आगे है। उस अवस्था मे प्राप्त होने योग्य और वृत्ति के विलय होने का ब्रह्म रूप धाम अति सूक्ष्म है।

परमातम सौ आतमा, ज्यो पाणी में लौण ।
दादू तन मन एक रस, तब दूजा कहिये कौण ॥ १६४ ॥

जब इन्द्रिय रूप तन सहित मन निरन्तर भगवत् परायण रहने लगता है, तब आत्म-ज्ञान होकर अज्ञान नष्ट हो जाता है और आत्मा जल मे नमक के समान परमात्मा मे लय हो जाता है। उस लयावस्था मे बताइये, नमक को जल से और आत्मा को परमात्मा से भिन्न कौन कहेगा ?

तन मन विलै यो कीजिये, ज्यो पाणी मे लौण।
जीव ब्रह्म एकै भया, तब दूजा कहिये कौंण ॥ १६५ ॥

जैसे जल मे नमक डालने से नमक जल के आकार का ही हो जाता है वैसे ही भगवत् स्वरूप सन्तो की सेवा तथा भगवत् ध्यान द्वारा इन्द्रिय रूप तन और मन को भगवान् मे लगाओ। हमारे तन-मन भगवत् परायण हुये थे, तब शीघ्र ही जीव ब्रह्म एक हो गये थे। जब उक्त रीति से जीव-ब्रह्म की एकता हो जायेगी तब बताइये, उनको भिन्न कौन कहेगा ?

तन मन विलै यों कीजिये, ज्यो घृत लागै घाम।
आत्म कमल तहँ बदगी, जहँ दादू प्रकट राम ॥ १६६ ॥

जैसे घृत-खड सूर्य की ताप से गलकर एक हो जाते है वैसे ही विवेक-वैराग्यादि साधन से इन्द्रिय रूप तन और मन को भगवत् परायण करो और जहा भगवान् प्रत्यक्ष रूप से दर्शन देते है, उसी अपने अष्टदल-कमल पर भगवान् की सेवा-पूजा करके प्रणाम करो।

नख शिख स्मरण

कोमल कमल तहँ पैसि कर, जहाँ न देखै कोइ।
मन थिर सुमिरण कीजिये, तब दादू दर्शन होइ ॥ १६७ ॥

१६७-१७६ में आन्तर स्मरण की विशेषता बताते हुये नख-शिख स्मरण का परिचय दे रहे है - अन्तर्मुख होकर सहज दशा द्वारा कोमल हुये अष्टदल-हृदय-कमल मे मन को स्थिर करके स्मरण करो। हृदय-स्मरण को कोई देख नही सकता, गुप्त रूप से होने के कारण वह विशेष माना जाता है। जब उक्त स्मरण-साधन परिपाकावस्था को प्राप्त होगा, तब वहा ही प्रभु-दर्शन हो जायेगा।

नख शिख सब सुमिरण करै, ऐसा कहिये जाप।
अंतर विकसै आतमा, तब दादू प्रकटै आप ॥ १६८ ॥

अष्टदल-कमल पर मन की स्थिरता बढकर निरन्तर स्मरण होने लगता है, तब वह स्मरण सपूर्ण शरीर मे व्याप्त हो जाता है। उस अवस्था मे साधक वृत्ति शरीर के किसी भी अग पर जाये, वहा ही उसे स्मरण होता हुआ ज्ञात होता है। उसी अवस्था का परिचय दे रहे है—जब पैर के नख से मस्तक की शिखा पर्यन्त प्रत्येक रोम से स्मरण होने लगता हे तब वह ऐसा स्मरण ही परम-जाप कहलाता है। इस परम-जाप की सिद्धावस्था आते ही अन्त·करण रूप आत्मा सशय, विपर्य्यादि दोषो से रहित होकर प्रफुल्लित होता है। उस प्रफुल्लित अन्त करण मे अपने आप ही आत्मा और परमात्मा का अभेद ज्ञान प्रकट होकर ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है।

अंतरगत हरि हरि करै, तब मुख की हाजत[1] नांहिं ।
सहजैं धुनि लागी रहै, दादू मन ही मांहिं ॥ १६९ ॥

जब साधक हृदय मे निरन्तर हरि २ करता रहता है और मन मे भी स्वाभाविक ध्वनि लगी रहती है तब उसे मुख से जाप करने की इच्छा[1] नही होती।

दादू सहजैं सुमिरण होत है, रोम रोम रमि राम।
चित्त चहूंट्या चित्त सौं, यों लीजे हरि नाम ॥ १७० ॥

आन्तर स्मरण का अभ्यास दृढ हो जाने पर रोम २ मे रमे हुए राम का स्मरण स्वाभाविक ही होता रहता है और उक्त प्रकार के स्मरण से व्यष्टि-चित्त समष्टि-चित्त से जुड़ जाता है तब आत्मा परमात्मा मे लीन हो जाता है। साधको ! तुमको भी उक्त प्रकार ही स्मरण करना चाहिये।

दादू सुमिरण सहज का, दीन्हा आप अनन्त।
अरस परस उस एक सौं, खेलैं सदा वसंत ॥ १७१ ॥

हमारे को सहज-स्मरण का उपदेश अनन्त शक्ति-सम्पन्न स्वय भगवान् ने ही वृद्ध ऋषि के रूप मे प्रकट होकर अहमदाबाद के काकरिया सरोवर पर दिया था। इस सहज स्मरण रूप साधन के प्रताप से ही हम उस अद्वैत ब्रह्म से एकमेक होकर सदा ही ब्रह्मानन्द का अनुभव रूप वसतोत्सव खेल खेलते रहते है। प्रसगकथा-दृ सु. सि त ११-/९९ मे देखो।

दादू शब्द अनाहद हम सुन्या, नखशिख सकल शरीर ।
सब घट हरि हरि होत है, सहजैं ही मन थीर ॥ १७२ ॥

हमने सहज स्मरण के प्रताप से ही पैर के नख से मस्तक की शिखा पर्यन्त कठ, तालु आदि के आघात बिना ही होने वाला " हरि हरि " रूप अनाहत शब्द सुना है। अब वह सपूर्ण शरीर मे प्रतिक्षण होता ही रहता है और उस पर हमारा मन भी स्वाभाविक ही स्थिर रहता है।

हुण[1] दिल लगा हिकसां[2], मे[3] कूं येहा[4] ताति[5] ।
दादू कम्म[6] खुदाय दे, वैठा डीहै[7] राति ॥ १७३ ॥

अब[1] तो हमारा मन एक[2] मात्र परमात्मा से ही लगा रहता है और मेरे[3] यही[4] लगन[5] है कि- हमारा मन कभी भगवान् से विमुख न हो। हे ईश्वर। आप कृपा करके हमे अपने दर्शन के साधन रूप कार्य[6] ही दे, हम दिन[7] रात बैठे हुये आपकी प्रतीक्षा कर रहे है।

दादू माला सब आकार की, कोई साधू सुमिरै राम।
करणी[1]- कर तैं क्या किया, ऐसा तेरा नाम ॥ १७४ ॥

सब लोक मायिक आकारो की प्राप्ति के लिये ही माला फेरते है। निरजन राम का रोम २ से स्मरण तो कोई विरला सत ही करता है। हे विश्व-कर्त्ता[1] ईश्वर ! आपने ऐसा क्या विधान बना रखा है— जिसको तोड़कर, अत्यन्त सुगम, अति श्रेष्ठ, आपकी प्राप्ति का साधन आपका नाम है, उस ऐसे नाम को राम रोम से सब नही भज सकते।

सब घट मुख रसना करै, रटै राम का नाम।
दादू पीवै राम रस, अगम अगोचर ठाम ॥ १७५ ॥

सम्पूर्ण शरीर के रोम कूपो को मुख ओर सम्पूर्ण रोमो को जिह्वा बनाकर राम-नाम का जप करे और जप से होने वाले आनन्द-रस का पान करे तो मन से परे इन्द्रियातीत ब्रह्म-धाम को प्राप्त होने मे कोई भी सशय नही रहता।

दादू मन चित सुस्थिर कीजिये, तो नखशिख सुमिरण होइ ।
श्रवण नेत्र मुख नासिका, पंचो पूरे सोइ ॥ १७६ ॥

अन्य स्मरण और अन्य चिन्तन त्याग कर निरन्तर मन से तथा चित्त से एक ईश्वर का ही स्मरण-चिन्तन होना मन-चित्त की स्थिरावस्था है। इसको सम्पादन करो, फिर अपने आप ही नख से शिखा पर्यन्त स्मरण होने लगेगा। जो नख शिख स्मरण करता है वही अपनी श्रवण, नेत्र, जिह्वा, नासिका, त्वचा इन पाचो ज्ञानेन्द्रियो को पूर्णतया प्रभु परायण कर पाता है।

साधु महिमा

आतम आसन राम का, तहा बसै भगवान ।
दादू दोनों परस्पर, हरि आतम का स्थान ॥ १७७ ॥

१७७-१८३ मे सतो की विशेषता बता रहे है—राम व्यापक है तो भी उनका विशेष आसन सन्तात्मा ही माना जाता है। सतो के हृदय मे भगवान् सन्तो को दीखते रहते है, अत. वे वहा बसते है। वैसे ही भगवान् सन्तो का निवास स्थान है, कारण, सन्तो का मन निरन्तर भगवान् मे ही लीन रहता है। अत दोनो का परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध होने से ससार में सन्त महान् माने जाते है।

राम जपै रुचि साधु को, साधु जपै रुचि राम।
दादू दोनों एकटग, यहु आरम्भ यहु काम ॥ १७८ ॥

सत प्रेम-पूर्वक राम का स्मरण करते है तब राम भी प्रीति-सहित सतो का योग-क्षेम करने के लिये उनका स्मरण करते रहते है। निरन्तर भगवत्-स्मरण करना ही सन्तो का मुख्य कार्य है। निरन्तर सन्तो की रक्षा करना ही भगवान् का मुख्य कार्य है। इस प्रकार दोनो प्रेम-पूर्वक एक दूसरे को निर्निमेष देखते रहते है।

जहाँ राम तहँ संत जन, जहाँ साधु तहँ राम ।
दादू दोनों एकठे, अरस परस विश्राम ॥ १७९ ॥

जिस निर्विकल्पावस्था मे राम का साक्षात्कार होता है उसी मे प्राय सतजन रहते है और जिस निर्विकल्पावस्था मे प्राय· सन्तजन रहते है उसीमे राम रहते है। इस प्रकार सत और राम दोनो परस्पर एक होकर आनन्द लेते है।

दादू हरि साधू यों पाइये, अविगत के आराध।
साधू संगति हरि मिलैं, हरि संगति तैं साध ॥ १८० ॥

सन्तो के आराध्य मन इन्द्रियो के अविषय भगवान् उक्त प्रकार से सन्तो को निर्विकल्पावस्था मे प्राप्त होते है और सन्तो की सगति से सर्व साधारण प्राणी भी भगवान् को प्राप्त करने की पद्धति जानकर उसके द्वारा भगवान् से मिलते है, फिर भगवान् का मिलन होने पर उनकी सगति से प्राणी सन्त हो जाता है।

दादू राम नाम सौं मिल रहै, मन के छाडि विकार ।
तो दिल ही मांहीं देखिये, दोनों का दीदार ॥ १८१ ॥

यदि मन के कामादिक सम्पूर्ण विकारो का त्याग करके वृत्ति राम-नाम से अभेद हो जाय तब तो सन्त रूप सगुण ब्रह्म और निर्गुण ब्रह्म तथा आत्मा-परमात्मा के दर्शन अपने हृदय मे ही किये जा सकते है।

साधु समाना राम में, राम रह्या भरपूर ।
दादू दोनों एक रस, क्यों कर कीजै दूर ॥ १८२ ॥

सन्तो का मन अभेद भावना द्वारा राम मे समाया हुआ रहता है और राम व्यापक रूप से उनमे परिपूर्ण रहते ही है। इस प्रकार वे दोनो निरन्तर मिले ही रहते है, भिन्न करके दूर कैसे किया जा सकता है ?

दादू सेवक साईं का भया, तब सेवक का सब कोइ ।
सेवक सांई को मिल्या, तब साईं सरीखा होइ ॥ १८३ ॥

जब सन्त-सेवक परमात्मा का बन जाता है, तब परमात्मा का सब ऐश्वर्य सत का हो जाता है और जब सन्त-सेवक परमात्मा को प्राप्त हो जाता है, तब वह परमात्मा रूप ही बन जाता है।

सत्संग-महिमा

मिश्री मांहीं मेलि कर, मोल बिकाना बंस ।
यों दादू महँगा भया, पारब्रह्म मिल हंस ॥ १८४ ॥

१८४-१८५ मे सत्सग महिमा कह रहे है-पूर्वकाल मे वास की सीको पर मिश्री जमाई जाती थी उसी के दृष्टान्त द्वारा कह रहे है-जैसे मिश्री मे मिलकर बास मिश्री के भाव महँगा बिकता है वैसे ही जीवात्मा परब्रह्म से मिलकर परब्रह्म के समान महँगा हो जाता है अर्थात् ब्रह्म ही हो जाता है।

मीठे मांहीं राखिये, सो काहे न मीठा होइ ।
दादू मीठा हाथ ले, रस पीवैं सब कोइ ॥ १८५ ॥

जैसे कषाय हरड़े मिश्री की चासनी मे डालने से मधुर हो जाती है, वैसे ही विषयासक्ति रूप कषायता से युक्त मन को मधुर-सत्सग मे रखने से वह क्यो नहीं मधुर होगा ? उसकी विषयासक्ति-कषायता अवश्य नष्ट हो जायेगी। फिर उस सत्सग-मधुरता का सार अति मधुर आत्मज्ञान अन्त करण की वृत्ति-हाथ मे धारण करके सभी जिज्ञासु जन ब्रह्म साक्षात्कार जन्य आनन्द-रस का पान करते है।

संगति कुसगति

मीठे सौ मीठा भया, खारे सौं खारा ।
दादू ऐसा जीव है, यहु रग हमारा ॥ १८६ ॥

सुसग कुसग का फल बता रहे है—जैसे जल मधुर मिश्री से मधुर और खारे नमक से खारा हो जाता है, ऐसा ही यह जीव है। मधुर-सत्सग से आत्म-ज्ञान-मधुरता सम्पन्न और कुसग रूप क्षार से विषय-वासना रूप क्षारता-सम्पन्न हो जाता है। यह सत्सग रूप हमारा रग जीव के कल्याण का साधन होने से अति श्रेष्ठ है। अत सत्सग करना चाहिये।

साधु महिमा

मीठै मीठे कर लिये, मीठा माही बाहि ।
दादू मीठा ह्वै रह्या, मीठे मांहिं समाइ ॥ १८७ ॥

१८७-१८८ मे सत महिमा कह रहे है—ब्रह्मज्ञान-मधुरता से युक्त सन्तो ने मधुर-सत्सग मे लगाकर जिज्ञासुओ को ज्ञान-मधुरता से युक्त किया है। जो जिज्ञासु सशय-विपर्य्यय रहित अपरोक्ष ज्ञान-मधुरता से मधुर हो जाता है, वह मधुर ब्रह्म मे ही समा जाता है।

राम बिना किस काम का, नहिं कौडी का जीव ।
सांई सरीखा ह्वै गया, दादू परसै पीव ॥ १८८ ॥

जो सन्तो के ज्ञान द्वारा अपने प्रियतम प्रभु को प्राप्त हो गया है, वह तो ब्रह्म रूप ही हो गया है और जो जीव राम से विमुख है वह किस काम का है ? एक कौडी का भी नही। अत सन्तो के सग से ही प्राणी की उन्नति होती है।

पारिख-अपारिख

हीरा कौडी ना लहै, मूरख हाथ गँवार ।
पाया पारिख जौहरी, दादू मोल अपार ॥ १८९ ॥

१८९-१९० मे परीक्षक का परिचय दे रहे है—जैसे मूर्ख के हाथ मे हीरा आने पर एक कौडी भी नही प्राप्त करता वैसे ही अज्ञानी के अन्त करण मे—नरदेह, राम नाम, आत्मज्ञान कुछ भी महत्व नही पाते किन्तु हीरा जौहरी के हाथ मे और नरदेह, राम-नाम, आत्मज्ञान विचारशील की बुद्धि मे जाकर अपार मूल्य पाते है।

अंधे हीरा परखिया, कीया कौडी मोल ।
दादू साधू जौहरी, हीरे मोल न तोल ॥ १९० ॥

विचार-नेत्रहीन अन्धा-नरदेह, राम नाम, आत्मज्ञानादि हीरो का मूल्य विषय रूप कौडी ही करता है किन्तु सन्त जौहरी उक्त हीरो का मूल्य-माप अपार ही बताते है।

साधु महिमा

मीरां[1] कीया महर सौं, परदे तैं लापर्द ।
राखि लिया दीदार मे, दादू भूला दर्द ॥ १९१ ॥

१९१-१९२ मे सन्त महिमा कह रहे है—हमारे धर्माचार्य[1] सन्तो ने अपनी कृपा से हमे माया रूप पड़दे से मुक्त करके ब्रह्म स्वरूप मे स्थिर किया है। जब से हम अभेद रूप से ब्रह्म मे स्थित हुये है तब से जन्मादि दु ख को भूल गये है।

दादू नैन बिन देखबा, अंग बिन पेखबा ।
रसन बिन बोलबा, ब्रह्म सेती ॥
श्रवन बिन सुनबा, चरण बिन चालबा ।
चित्त बिन चिन्तबा, सहज एती ॥ १९२ ॥

शरीर रहित ब्रह्म का देखना स्थूल नेत्रो से नही होता, वह तो विवेक विचार-नेत्रो से ही देखा जाता है। ब्रह्म से बोलना भी रसना द्वारा न होकर वृत्ति से ही होता है। ब्रह्मवाणी भी श्रवणो से न सुनकर हृदयाकाश मे ही सुनी जाती है। ब्रह्म-धाम को स्थूल चरणो से चल कर नही पहुच सकते, वृति से ही पहुँचते है और चित्त बिना ही ब्रह्म का चिन्तन होता है। सहजावस्था मे सन्त की ऐसी स्थिति रहती है, यही महिमा है।

पतिव्रत

दादू देख्या एक मन, सो मन सब ही माँहि ।
तिहि मन सौं मन मानिया, दूजा भावै नांहिं ॥ १९३ ॥

अपनी अनन्यता रूप पतिव्रत बता रहे है—हमने समाधि अवस्था मे अद्वैत ब्रह्म रूप मन देखा है। यह सभी मे है किन्तु समाधि बिना नही भासता। उसी मन के चिन्तन मे हमारा व्यष्टिमन सन्तोष मानता है। हमारे मन को उससे भिन्न कुछ भी अच्छा नही लगता।

पुरुष प्रकाशी

दादू जिहिं घट दीपक राम का, तिहिं घट तिमर न होइ ।
उस उजियारे ज्योति के, सब जग देखै सोइ ॥ १९४ ॥

ज्ञान प्रकाश सम्पन्न पुरुष का परिचय दे रहे है—जिस पुरुष के अन्त करण मे ब्रह्म का यथार्थ ज्ञान-दीपक है, उसके हृदय मे अज्ञानाधकार नहीं रहता। उस ज्ञान-ज्योति के प्रकाश से वह सम्पूर्ण जगत् को ब्रह्म रूप देखता है।

पतिव्रत

दादू दिल अरवाह[1] का, सो अपना ईमान[2] ।
सोई साबित[3] राखिये, जहँ देखै रहमान[4] ॥ १९५ ॥

१९५-१९६ मे अनन्यता की प्रेरणा कर रहे है—जो अपने मन का ईश्वर[1]-विश्वास[2] है वही प्राणियो के कल्याण का हेतु है। अत उसी को सावधानता से पूरा[3] दृढ़ रखो और जहा भी देखो वहा ही दयालु[4] ईश्वर को ही देखो वा जिस हृदय स्थल मे भगवान् देखते है उसके विश्वास को पूरा दृढ़ रखो।

अलह[1] आप ईमान[2] है, दादू के दिल मांहिं ।
सोई साबित राखिये, दूजा कोई नांहि ॥ १९६ ॥

तेरे मन मे तो स्वय सत्य[2] स्वरूप ब्रह्म[1] ही स्थित है। लोगो ! तुम भी सावधानी से हृदयस्थ सत्य ब्रह्म का चिन्तन ही पूरी दृढता से रखो, ईश्वर से अन्य कोई भी सत्य नही है।

अध्यात्म

प्राण पवन ज्यों पतला, काया करै कमाइ ।
दादू सब ससार में, क्यो ही गह्या न जाइ ॥ १९७ ॥
नूर तेज ज्यों ज्योति है, प्राण पिड यो होइ ।
दृष्टि मुष्टि आवै नहीं, साहिब के वश सोइ ॥ १९८ ॥

१९७-१९९ मे दो सिद्धो को उपदेश दे रहे है—प्राणी अपने स्थूल शरीर को योग साधन द्वारा सुधार कर वायु के समान सूक्ष्म बना ले जो सम्पूर्ण ससार मे किसी भी उपाय से पकड़ा न जाय ॥१९७॥ उसके प्राण तेज स्वरूप हो जाये तथा स्थूल शरीर भी ज्योतिर्मय बन जाय। वह देखने मे

न आवे तथा मुष्टि से पकडने मे भी नही आवे, ऐसा योगी भी ईश्वर के आधीन रहता है। प्रसग कथा-दृ सु सि त १०/३० मे देखो।

काया सूक्ष्म कर मिलै, ऐसा कोई एक ।
दादू आतम ले मिलैं, ऐसे बहुत अनेक ॥ १९९ ॥

श्रेष्ठ साधक की विशेषता का परिचय दे रहे है—सूक्ष्म शरीर को साथ लेकर वैकुण्ठादि लोको मे जाकर भगवान् से मिले ऐसे भक्त बहुत है किन्तु स्थूल शरीर को सूक्ष्म बनाकर ब्रह्म से मिले ऐसा सन्त तो कोई बिरला ही होता है। दादूजी स्थूल शरीर को सूक्ष्म करके ही प्रभु से मिले है। कहा भी है—"गुरु दादू रु कबीर की, काया भई कपूर। रज्जब रीझा देखकर, सहगुण निर्गुण नूर॥" प्रसग कथा-दृ.सु सि त. १०/३० मे देखो।

सुन्दरी सुहाग

आडा आतम तन धरै, आप रहै ता मांहिं ।
आपण खेलै आपसौं, जीवन सेती नांहिं ॥ २०० ॥

सुन्दरी के रूपक से अभेदानन्द प्राप्ति का परिचय दे रहे है—आत्म सुन्दरी अपने और अपने प्रियतम ब्रह्म के बीच से देहाध्यास-पड़दा दूर धर के निरन्तर स्वय अपने प्रियतम के चिन्तन मे रत रहती है तब अपने अन्त करण की वृत्ति द्वारा परब्रह्म से ब्रह्मानन्द खेल खेलने लगती है। अन्य जीवो से भेद व्यवहार रूप खेल कभी नही खेलती।

अध्यात्म

दादू अनभै तैं आनन्द भया, पाया निर्भय नाम ।
निश्चल निर्मल निर्बाण पद, अगम अगोचर ठाम ॥ २०१ ॥

२०१-२०७ मे अध्यात्म अनुभव की विशेषता बता रहे है—जिसकी प्राप्ति का स्थान षट्-प्रमाणो से परे इन्द्रियातीत निर्विकल्प समाधि है, जिसका नाम निर्भय, निश्चल, निर्मल है, जिसका स्वरूप काल कर्म के बाणघात से रहित है और जो नित्य प्राप्त है; उस ब्रह्म के साक्षात्कार से हमे आनन्द प्राप्त हुआ है।

दादू अनभै वाणी अगम को, ले गई संग लगाइ ।
अगह गहै अकह कहै, अभेद भेद लहाइ[1] ॥ २०२ ॥

आत्मानुभवी सन्तो की वाणी जिज्ञासु के अन्त.करण की वृत्ति को साथ लेकर मन इन्द्रियो के अविषय ब्रह्म मे जाती है और ब्रह्म साक्षात्कार करा देती है। जो तत्त्ववेत्ता से ग्रहण नही हो सका उस ब्रह्म को आत्मस्वरूप से ग्रहण करता है। शक्ति वृत्ति युक्त वाणी से न कहा जा सके उसी ब्रह्म का लक्षणा वृत्ति से कथन करता है और भेद को दूर करके अभेद रूप से आनन्द मे मग्न रहता है वा अद्वैत ब्रह्म का भी रहस्य प्राप्त[1] करता है।

जो कुछ वेद कुरान तैं, अगम अगोचर बात ।
सो अनभै साचा कहै, यहु दादू अकह कहात ॥ २०३ ॥

जो कुछ वास्तविक तत्त्व है सो वेद कुरान से भी अगम है, इन्द्रियातीत है। उस तत्त्व की बात यथार्थ रूप से अनुभव ज्ञान ही बताता है। वेदादिक से भी सम्पूर्ण रूप से नही कहा जाता, इसलिए यह अकह कहलाता है।

दादू जब घट अनभै ऊपजै, तब किया करम का नाश।
भय अरु भ्रम भागे सबै, पूरण ब्रह्म प्रकाश॥ २०४॥

जब अन्त करण मे ब्रह्म का अपरोक्ष ज्ञान होता है तब वह अनुभव ज्ञान सम्पूर्ण सचित कर्मों को नाश कर डालता हे और हृदय मे पूर्ण ब्रह्म का प्रकाश होते ही सम्पूर्ण भय तथा भ्रम हृदय को छोड भागते है। मुख्य भय सप्तविध है— "इह लोक, परलोक भय, मरण वेदना घात अनरक्षा असु गुप्त भय, अकस्मात् भय सात॥" मुख्य भ्रम पचविध है- "भेद भरम, कर्तृत्व भ्रम, पुनि भ्रम सग विकार। ब्रह्म इतर जग सत्य भ्रम, पचम भ्रम ससार॥"

दादू अनभै काटै रोग को, अनहद उपजै आइ।
सेझे का जल निर्मला, पीवै रुचि ल्यौलाइ॥ २०५॥

ब्रह्म का अपरोक्ष-ज्ञान जन्मादिक ससार-रोग को नष्ट करता है और उससे 'अह ब्रह्मास्मि' वृत्ति रूप अनाहत ध्वनि प्रकट होती है। उक्त ज्ञान रूप निर्मल-जल साधन-सेझे से निकलता है। ज्ञानी सन्त अपनी चित्त-वृत्ति को ब्रह्म मे लगाकर रुचि अनुसार अभेद ज्ञान-जल का पान करते है।

दादू वाणी ब्रह्म की, अनभै घट प्रकाश।
राम अकेला रह गया, शब्द निरजन पास॥ २०६॥

अन्त करण मे अपरोक्ष ज्ञान होने पर जो अनुभव वाणी प्रकट होती है, वह ब्रह्म की ही वाणी मानी जाती है। वह ब्रह्म-वाणी-शब्द जीव को निरजन ब्रह्म के पास पहुँचा देता है। ब्रह्म से मिलने पर जीव का जीवत्व भाव नष्ट होकर अद्वैत ब्रह्म रूप से ही रहता है।

जे कबहूँ समझै आतमा, तो दृढ गह राखै मूल।
दादू सेझा रामरस, अमृत काया कूल[1]॥ २०७॥

यदि जीवात्मा पूर्व-पुण्य, सन्त, शास्त्र, हरि, गुरु, कृपादि से कभी अपने वास्तविक स्वरूप ब्रह्म को समझ लेता है तब तो निज मन को दृढ़ता से अपने मूल-ब्रह्म मे ही रखता है, मायिक प्रपच मे नहीं जाने देता। इस एकाग्रता के प्रभाव से अन्त करण मे राम-प्रेम रस का सेझा निकलता है और हृदय सरोवर को भरता है। फिर साधक काया के भीतर हृदय-सरोवर के तट[1] पर वृत्ति द्वारा स्थित होकर, राम-प्रेम-रस का मन्थन करता है और उससे प्रकट अद्वैतामृत का पान करके ससार मे धन्यवाद के योग्य हो जाता है।

परिचय जिज्ञासु उपदेश

दादू मुझ ही मार्हीं मै रहूँ, मै मेरा घरबार।
मुझ ही मार्हीं मै बसू, आप कहै करतार॥ २०८॥

२०८-२१८ मे भगवान् किस देश, किस ग्राम, किस स्थान मे रहते है इत्यादिक जिज्ञासुजनो के प्रश्नो का उत्तर भगवद् वचनो द्वारा ही दे रहे है—मै अपनी महिमा रूप देश मे रहता हूँ, मेरी सर्वव्यापकता ही मेरा घरबार है, जिसमे मै निर्विकार स्वरूप से निवास करता हूँ। स्वय भगवान् ही अपना ऐसा वर्णन करते है।

दादू मैं ही मेरा अर्श[1] में, मैं ही मेरा स्थान।
मैं ही मेरी ठौर में, आप कहै रहमान ॥ २०९ ॥

मुसलमान सप्तम आकाश मे ईश्वर का स्थान मानते है, उन्हे कहते है—मै तो अपने स्वरूप चिदाकाश मे ही रहता हूँ, मायिक सप्तम आकाश[1] मे नही। मेरा ग्राम और मेरा स्थान भी मै ही हू। स्वय दयालु ईश्वर ही यह कहते है।

दादू मैं ही मेरे आसरे, मैं मेरे आधार।
मेरे तकिये मैं रहूं, कहै सिरजनहार ॥ २१० ॥

मेरा आश्रय, आधार और अधिष्ठान मै ही हू, अन्य सब तो मेरे विवर्त्त होने से मेरे आश्रयादि हो नही सकते। ससार के स्रष्टा भगवान् स्वय ही यह कहते है।

दादू मैं ही मेरी जाति में, मैं ही मेरा अंग।
मैं ही मेरा जीव में, आप कहै प्रसंग ॥ २११ ॥

मै ही मेरी जाति हूँ अर्थात् चेतन रूप हूँ, मेरे हाथ पैरादि अग भी मै सच्चिदानन्द ही हूँ और मेरे व्यष्टि स्वरूप जीव मे भी सार तत्त्व मै चेतन ही हूँ। यह प्रसग स्वय भगवान् ही कहते है।

दादू सबै दिशा सो सारिखा, सबै दिशा मुख बैन।
सबै दिशा श्रवणहुं सुनै, सबै दिशा कर नैन ॥ २१२ ॥

परमात्मा व्यापक और सर्वरूप होने से सभी दिशाओ मे समान है। उसके सब दिशाओ मे मुख, वचन, हाथ, नेत्र, श्रवण है और सभी दिशाओ मे वह खाता, बोलता, हाथ से ग्रहण करता, देखता व सुनता है।

सबै दिशा पग शीश है, सबै दिशा मन चैन ।
सबै दिशा सन्मुख रहै, सबै दिशा अँग ऐन[1] ॥ २१३ ॥

ईश्वर का सभी दिशाओ मे चरण, मस्तक और मन है। वह व्यापक होने से सभी दिशाओ मे सदा सबके सन्मुख रहता है। उसके स्वरूप का साक्षात्कार[1] जन्य आनन्द भी सभी दिशाओ मे प्राप्त होता है।

बिन श्रवणहुँ सब कुछ सुनै, बिन नैनहुं सब देखै ।
बिन रसना मुख सब कुछ बोलै, यहु दादू अचरज पेखै ॥ २१४ ॥

परब्रह्म निराकार है, अत हमारे समान उसके श्रवण, नेत्र, रसना और मुख नहीं है तो भी वह सब कुछ सुनता है, सब देखता है, सब रसो का आस्वादन करता है, सब कुछ बोलता है। परब्रह्म के स्वरूप मे ऐसा महान् आश्चर्य देखा जाता है।

सब अंग सब ही ठौर सब, सर्वंगी सब सार ।
कहै गहै देखै सुनै, दादू सब दीदार ॥ २१५ ॥

सपूर्ण विश्व जिसके अग उपाग है, ऐसा सर्वंगी और सब ससार का सार स्वरूप परमात्मा सर्व स्थलो मे बोलता है, ग्रहण करता है, देखता है, सुनता है। यह सब ससार उसी का स्वरूप है।

कहै सब ठौर, गहै सब ठौर, रहै सब ठौर, ज्योति परवानै ।
नैन सब ठौर, बैन सब ठौर, ऐन सब ठौर, सोई भल जानै ॥
शीश सब ठौर, श्रवण सब ठौर, चरण सब ठौर, कोई यहु मानै ।
अंग सब ठौर, सग सब ठौर, सबै सब ठौर, दादू ध्यानै ॥ २१६ ॥

वेदादिक शास्त्र ब्रह्म को सर्वत्र व्यापक बताते है। वह प्रभु सभी भक्तो के उपहार को सर्वत्र ग्रहण करता है। अत वह सर्व स्थलो मे स्थित है। जिस भक्त को जितनी उसकी ज्ञान-ज्योति प्राप्त हुई है, उतना ही वह उसको जानता है किन्तु सर्व स्थलो मे उसके नेत्र, वचन, मस्तक, श्रवण, चरणादि अग है। वह सर्व स्थलो मे सबके साथ रहता है तथा सर्व स्थानो पर सर्व रूप से रहता है। परन्तु कोई विरला व्यक्ति ही इस बात को मानता है। जो निरतर ब्रह्म ध्यान मे रत रहता है वही ब्रह्म को भली प्रकार सर्व स्थलो पर अपरोक्ष रूप से जानता है।

तेज ही कहना, तेज ही गहना, तेज ही रहना सारे ।
तेज ही बैना, तेज ही नैना, तेज ही ऐन हमारे ॥
तेज ही मेला, तेज ही खेला, तेज अकेला, तेज ही तेज सँवारे ।
तेज ही लेवै, तेज ही देवै, तेज ही खेवै, तेज ही दादू तारे ॥ २१७ ॥

निज निष्ठा का परिचय दे रहे है—ब्रह्म ध्यान द्वारा हमारी ऐसी स्थिति हो रही है—हम तेजोमय ब्रह्म का ही कथन करते है, आत्मरूप से उसे ही ग्रहण करते है। विश्व के सार-स्वरूप ब्रह्म मे ही वृत्ति द्वारा रहते है। हमारे वाणी और नेत्र ब्रह्म-परायण ही रहते है। हृदय मे भी ब्रह्म का प्रत्यक्ष अनुभव होता रहता है। ब्रह्म से ही हमारा मिलन और उसी से ही हमारी क्रीडा होती है। उस अद्वैत समष्टि तेज का चिन्तन ही जीव रूप व्यष्टि तेज का देहाध्यास-नाश द्वारा सुधार करता है। अब तो हमारा ग्रहण-त्याग सभी तेजोमय ही होता है। वह तेजोमय ब्रह्म ही हमारा खेवटिया है तथा वही अपने ज्ञान द्वारा सभी को ससार से पार करता है।

नूर हि का धर, नूर हि का घर, नूर हि का वर मेरा ।
नूर हि मेला, नूर हि खेला, नूर अकेला, नूर हि मझ बसेरा ॥
नूर हि का अग, नूर हि का संग, नूर हि का रंग मेरा ।
नूर हि राता, नूर हि माता, नूर हि खाता दादू तेरा ॥ २१८ ॥

हमारा आत्मरूप शरीर प्रकाशमय ही है और ब्रह्मरूप हमारा घर भी प्रकाशमय ही है। हमारा स्वामी प्रकाशमय है। आत्मरूप प्रकाश ब्रह्म प्रकाश से मिलता है और प्रकाशमय ब्रह्म मे ही क्रीडा करता है। इन्द्रिय अन्त:करणादि को त्यागकर एकमात्र आत्मप्रकाश ही ब्रह्मप्रकाश मे बसता है। हमारा आत्मा प्रकाशमय ब्रह्म का ही अग है और ब्रह्म के ही सग रहती है। हमारा रग-ढग भी ब्रह्म रचित ही है। हम ब्रह्म मे ही रत है, ब्रह्म मे ही मस्त है। हे प्रभो ! मेरा तो भोजन भी आपका ज्ञान-प्रकाश ही है।

सूक्ष्म सौंज अर्चा बंदगी

दादू नूरी[1] दिल अरवाह का, तहॉ बसै माबूदं[2]।
तहँ बन्दे की बन्दगी, जहॉ रहै मौजूदं ॥ २१९ ॥

२१९-२२५ मे आन्तर सूक्ष्म सेवा-पूजा की सामग्री बता रहे है—जीवात्माओ के शुद्ध[1] अन्त.करण मे ही ईश्वर[2] का विशेष रूप से निवास रहता है और जिस अन्त करण मे भगवान् विशेष रूप से स्थित रहता है, उसी शुद्ध अन्त करण मे भक्त की सच्ची उपासना होती है।

दादू नूरी दिल अरवाह का, तहँ खालिक[1] भरपूरं।
आली[2] नूर अल्लाह का, खिदमतगार[3] हजूरं ॥ २२० ॥

जीवात्माओ के शुद्ध अन्त करण मे ईश्वर[1] विशेष रूप से परिपूर्ण रहता है। उस सर्व श्रेष्ठ[2] परमात्मा के स्वरूप का दर्शन करने के लिए सेवक[3] निरतर साधन करते हुये प्रभु से सन्मुख रहते है।

दादू नूरी दिल अरवाह का, तहॅ देख्या करतारं।
तहँ सेवक सेवा करै, अनन्त कला रवि सारं ॥ २२१ ॥

हम साधक आत्माओ ने ज्ञान प्रकाश युक्त अन्त करण मे अनन्त कलाओ से सपन्न सूर्य प्रकाश के सार समान तेजोमय परमात्मा को देखा है और वहा ही उसकी सूक्ष्म सेवा मे रत रहने लगे है।

दादू नूरी दिल अरवाह का, तहाँ निरंजन वासं ।
तहँ जन तेरा एक पग, तेज पुंज प्रकाशं ॥ २२२ ॥

जीवात्माओ के ज्ञानप्रकाश युक्त अन्त.करण मे ही निरजन ब्रह्म का विशेष रूप से निवास रहता है। साधक ! उस शुद्ध ज्ञानयुक्त अन्त करण मे यदि तेरा वृत्ति रूप पाद एक रहे अर्थात् ब्रह्म-भिन्न वृत्ति न हो तो ज्ञान-राशि ब्रह्म-प्रकाश तेरे हृदय मे प्रकट रूप से भासने लगेगा।

दादू तेज कमल दिल नूर का, तहॉ राम रहमानं[1] ।
तहँ कर सेवा बंदगी, जे तू चतुर सयानं ॥ २२३ ॥

जिसका हृदय कमल शुद्ध और ज्ञान-तेज-सम्पन्न है, उसी मे दयालु[1] राम का विशेष रूप

से निवास रहता है। साधक! यदि तू विलक्षण चतुरता सपन्न विचारवान् है तो उस शुद्ध अन्त करण मे ही वृत्ति को स्थित करके सूक्ष्म रूप से सेवा-पूजा कर।

तहा हजूरी बन्दगी, नूरी दिल मे होइ।
तहँ दादू सिजदा करै, जहाँ न देखै कोइ॥ २२४॥

जब अन्त करण शुद्ध और ज्ञान प्रकाश युक्त होता है तब उसमे प्रत्यक्ष सूक्ष्म पूजा होने लगती है। उच्च कोटि के साधक जहा उनको कोई भी न देख सके, वहा हृदय के भीतर ही प्रणाम रूप वन्दना भक्ति करते है।

दादू देही माहीं दोइ दिल, इक खाकी इक नूर।
खाकी दिल सूझै नही, नूरी मझ हजूर॥ २२५॥

जीवात्मा के भीतर ही ब्रह्म का निवास है तथापि देहधारियो के कर्मानुसार उनका मन मलीन वा शुद्ध होता है। जिसका मन मलीन है, उसे ईश्वर नहीं भासते और जिसका मन शुद्ध है वह तो भगवान् के सन्मुख ही स्थित रहता है।

नमाज-सिजदा

दादू हौज[1] हजूरी दिल ही भीतर, गुसल[2] हमारा सार।
उजू[3] साजि अलह के आगे, तहां नमाज[4] गुजार[5]॥ २२६॥

२२६-२३० मे आन्तर उपासना का परिचय दे रहे है—हमारे हृदय के भीतर ही प्रभु-प्रेम रूप पानी का कुड[1] भरा है, उसी मे हमारा श्रेष्ठ रीति से स्नान[2] होता है और भीतर परमात्मा के सन्मुख ही अपनी पच ज्ञानेन्द्रिय रूप पच अगो को विषय रहित करना रूप सुधार[3] करना ही हमारी उजू है। हम शुद्ध अन्त करण मे ही उपासना[4] करते[5] है।

दादू काया मसीत कर पच जमाती, मन ही मुल्ला इमाम[1]।
आप अलेख इलाही[2] आगे, तहँ सिजदा[3] करै सलाम[4]॥ २२७॥

हमारा शरीर ही मस्जिद है और पच ज्ञानेन्द्रिया ही हमारा साथ देने वाले जमाती है। विवेक सम्पन्न मन ही मार्ग प्रदर्शक-मुल्ला[1] है। हम शुद्ध अन्त करण मे आत्मा रूप मे ईश्वर[2] के सन्मुख ही प्रणाम[4] पूर्वक उपासना[3] करते है।

दादू सब तन तसबी[1] कहै करीमं[2], ऐसा कर ले जापं।
रोजा[3] एक दूर कर दूजा, कलमा[4] आपै आप॥ २२८॥

अपने सब शरीर को ही माला[1] बनाकर ऐसा जाप करो जिससे रोम-रोम से दयालु[2] ईश्वर का नाम उच्चारण होता रहे। एकात्म भाव-व्रत[3] करके द्वैत भाव को हृदय से दूर हटाओ। अपने वास्तविक स्वरूप ब्रह्म मे ही निरन्तर स्थिति रूप मूल-मत्र[4] पढो, तब ही असत् ससार से मुक्त हो सकोगे।

दादू आठो पहर अलह के आगे, इकटक रहबा ध्यानं।
आपै आप अर्श[1] के ऊपर, जहा रहै रहमान[2]॥ २२९॥

हृदयाकाश[१] के ऊपर जहा अष्टदल कमल पर अपना आत्मस्वरूप दयालु[२] ईश्वर विराजमान है, वहा ही ईश्वर के सन्मुख रहकर आठो पहर ईश्वर के अखड ध्यान मे रहना चाहिए।

आठों पहर इबादती[१], जीवन मरण निबाहि।
साहिब दर सेवै खडा, दादू छाडि न जाइ ॥ २३० ॥

सेवक को चाहिये भगवत् भजन रूप भगवान् के द्वार पर सदा खड़ा रहकर भगवत् सेवा करे। कभी भी भजन को छोड कर विषयो मे नही जाय। जन्म से मरण पर्यन्त दिन के आठो पहर ही उपासना[१] होनी चाहिये। जो ऐसी उपासना को अन्त तक निभाता है, वह भगवान् को ही प्राप्त होता है।

साधु महिमा

अट्ठे[१] पहर अर्श[२] में, ऊभोई[३] आहे[४]।
दादू पसे[५] तिन्न के, अल्लह गाल्हाये[६] ॥ २३१ ॥

२३१-२३५ मे सन्त महिमा कहते हुये सन्त दर्शन की प्रेरणा कर रहे हैं—जो शुद्ध हृदयाकाश[२] मे आठो[१] पहर ही वृत्ति द्वारा भगवान् के सन्मुख खडे[३] ही रहते है[४] और ध्यानावस्था मे अन्तर्मुख वृत्ति द्वारा भगवान् से वार्तालाप[६] करते है, अपने कल्याणार्थ उन सन्तो के दर्शन[५] करने चाहिये।

अट्ठे[१] पहर अर्श में, बैठा पीरी[२] पसंनि[३]।
दादू पसे[४] तिन्न के, जे दीदार[५] लहंनि[६] ॥ २३२ ॥

जो आठो[१] पहर हृदयाकाश मे अपने प्रियतम[२] प्रभु का दर्शन[३] करने के लिये चित्त-वृत्ति ब्रह्म चिन्तन मे रखते हुये ब्रह्म का साक्षात्कार[५] कर[६] चुके है, उन सन्तो के दर्शन[४] अपने कल्याणार्थ अवश्य करने चाहिये।

अट्ठे पहर अर्श में, जिन्ही[१] रूह[२] रहंनि[३]।
दादू पसे तिन्न के, गुझ्यूं[४] गाल्ही[५] कंनि[६] ॥ २३३ ॥

हृदयाकाश मे अष्टदल-कमल पर स्थित परमात्मा मे ही जिनका[१] मन[२] आठो पहर लगा रहता[३] है और अपने प्रभु सम्बन्धी गूढ[४] विचार रूप वार्तालाप[५] करते-रहते[६] है, उन लोक कल्याण के कारण रूप सन्तो के दर्शन अवश्य करने चाहिये।

अट्ठे पहर अर्श में, लुडींदा[१] आहीन[२]।
दादू पसे तिन्न के, असां[३] खबर डीन्ह[४] ॥ २३४ ॥

प्रभु का साक्षात्कार करने पर भी हृदयाकाश मे स्थित प्यारे[१] प्रभु का साक्षात्कार करने मे ही लगे रहते[२] है और जिनने हमे[३] प्रभु प्राप्ति सम्बन्धी साधन-समाचार दिये[४] है, उन सन्तो के दर्शन अवश्य करने चाहिये।

अट्ठे पहर अर्श में, वजी[१] जे गाहीन[२]।
दादू पसे तिन्न के, कितेई आहीन[३] ॥ २३५ ॥

जो देहाध्यासादिक सासारिक भावनाओ को त्याग[1] कर हृदयाकाश मे स्थित प्रभु की खोज[2] करते है, ऐसे सन्त ससार मे कितनेक है[3] ? अर्थात् बहुत कम है। अत भाग्यवश कहीं सुन पाओ तो अवश्य उनके दर्शन-सत्सग से लाभ उठाना चाहिये।

रस (प्रेम-प्याला)

प्रेम पियाला नूर का, आशिक भर दीया।
दादू दर दीदार मे, मतवाला कीया॥ २३६॥

२३६-२४१ मे प्रभु प्रेम का परिचय दे रहे है—प्रभु ने निज स्वरूप का प्रेम प्याला आनन्द-रस से भरकर अपने प्रेमी-भक्त मुझ को दिया और हृदय मे ही दर्शन देकर अपने स्वरूप मे मस्त कर लिया, यह उनका अनुग्रह है।

इश्क सलूना[2] आशिकां, दरगह[1] तै दीया।
दर्द मुहब्बत प्रेम रस, प्याला भर पीया॥ २३७॥

प्रभु ने सत्सग-सभा[1] के द्वारा निज प्रेमी भक्तो को अपने अति सुन्दर[2] प्रेम-रस का प्याला दिया है। अत भक्तो ने भी वियोग-जन्य दर्द और प्रेम पूर्वक प्रेम-रस का प्याला इच्छा भर के पान किया है।

दादू दिल दीदार दे, मतवाला कीया।
जहाँ अर्श इलाही[1] आप[2] था, अपना कर लीया॥ २३८॥

हृदयाकाश मे जहा अष्टदल-कमल पर भगवान्[1] स्वय[2] प्रथम से ही थे, उनको जब हमने अपनाकर उनका आश्रय लिया, तब उन्होंने अनुग्रह करके हमारे मन मे ही अपना दर्शन देकर हमे दर्शनानन्द से मस्त कर लिया है।

दादू प्याला नूर[1] दा[2], आशिक अर्श पीवन्न[3]।
अठे पहर अल्लाहदा, मुँह दिट्ठे जीवन्न[4]॥ २३९॥

प्रेमी जन शुद्ध हृदयाकाश मे शुद्ध स्वरूप[1] ब्रह्म के प्रेम-रस का[2] प्याला पान[3] करते है और आठो पहर परब्रह्म का व्यापक रूप से दर्शन करते हुये ही जीवित[4] रहते है।

आशिकं अमली[1] साधु सब, अलख दरीबे[2] जाइ।
साहिब दर[3] दीदार[4] मे, सब मिल बैठे आइ॥ २४०॥

साधन-व्यसन के व्यसनी[1] भगवत् प्रेमी सभी सत मन इन्द्रियो के अविषय ब्रह्म वस्तु की प्राप्ति के लिये सत्सग बाजार[2] मे आते है और ब्रह्माकार वृत्ति रूप द्वार[3] पर कुछ ठहर कर फिर सभी ब्रह्म स्वरूप[4] से आकर अभेद भावना से ब्रह्म मे मिलकर स्थित होते है। यह एकता प्रभु-प्रेम का ही फल है।

राते माते प्रेम-रस, भर-भर देइ खुदाइ।
मस्तान मालिक कर लिये, दादू रहै ल्यौ लाइ॥ २४१॥

भगवान् अपने भक्तो को बारम्बार निज प्रेम-रस का प्याला भर-भर कर देते रहते है अर्थात् उनकी मनोवृत्ति मे अपना प्रेम जाग्रत करते रहते है। इसीलिये प्रेमीजन भगवान् मे ही अनुरक्त रहते हुये भगवत् नाम चिन्तन मे ही मस्त रहते है। इस प्रकार प्रभु ने ही जगत् चिन्ता से शून्य करके अपने भक्तो को मस्त बनाया है और वे मस्त भक्त भी अपनी चित्तवृत्ति निरन्तर प्रभु मे ही लगाकर ससार मे निर्द्वन्द्व रहते है।

लांबी (अगाध) भक्ति

दादू भक्ति निरंजन राम की, अविचल अविनाशी ।
सदा सजीवन आतमा, सहजैं परकाशी ॥ २४२ ॥

२४२-२४६ मे भक्ति की अपारता बता रहे है—अविचल, अविनाशी, निरजन राम की भक्ति भी अविचल, अविनाशी होती है। सद्गुरु की कृपा से जिनके हृदय मे वह प्रकट हुई है, वे साधक अनायास ही सदा के लिये अजर, अमर, ब्रह्म-स्वरूप सजीवन भाव को प्राप्त हुये है।

दादू जैसा राम अपार है, तैसी भक्ति अगाध।
इन दोनों की मित[1] नहीं, सकल पुकारैं साध॥ २४३ ॥

जैसा राम अपार है वैसे ही राम की भक्ति भी अपार है। सभी सत यही कहते आये है—"भगवान् और भक्ति इन दोनो का ही माप[1] नही हो सकता।"

दादू जैसा अविगत राम है, तैसी भक्ति अलेष।
इन दोनों की मित नहीं, सहस मुखां कह शेष॥ २४४ ॥

जैसे राम मन इन्द्रियो के अविषय है वैसे ही उनकी भक्ति भी इन्द्रियातीत है, शब्दो द्वारा लिखी नही जा सकती। भगवान् और भक्ति इन दोनों की ही महिमा असीम है। शेषजी भी अपने हजार मुखों से भगवान् और भक्ति की महिमा गान करते हुये थककर यही कहते है—"भगवान् और भक्ति की महिमा अपार है।"

दादू जैसा निर्गुण राम है, तैसी भक्ति निरंजन जाणि।
इन दोनों की मित नही, संत कहैं परमाणि ॥ २४५ ॥

जैसे राम गुणमयी माया से रहित है वैसे ही राम-भक्ति को भी माया रूप कालिमा से रहित ही जानो। प्रामाणिक सतो ने भी यही कहा है—भगवान् और भक्ति इन दोनो का माप किसी भी प्रकार नही हो सकता।

जैसा पूरा राम है, तैसी पूरण भक्ति समान।
इन दोनों की मित नहीं, दादू नाहीं आन ॥ २४६ ॥

जैसे राम व्यापक होने से विश्व मे परिपूर्ण है, वैसे ही उनकी भक्ति भी किसी न किसी रूप से विश्व मे परिपूर्ण है। अत दोनो समान ही है। इनके समान अन्य कोई नही है, इसलिये इन दोनों का माप और मूल्य हो नही सकता।

सेवा अखंडित

दादू जब लग राम है, तब लग सेवक होइ।
अखडित सेवा एक रस, दादू सेवक सोइ ॥ २४७ ॥

२४७-२४९ मे निरन्तर सेवा की विशेषता बता रहे है—जब तक राम अपने से भिन्न भासता है तब तक निरन्तर भक्ति करते हुये सेवक बना रहना चाहिये। जो सेवक अखण्डित सेवा से सेव्य मे एकरस होकर मिल जाय, वही सच्चा सेवक है।

दादू जैसा राम है, तैसी सेवा जाणि।
पावेगा तब करेगा, दादू सो परमाणि ॥ २४८ ॥

जैसा राम अखण्ड है, वैसी ही अखण्ड सेवा करने से राम की प्राप्ति होती है। ऐसा जानकर जो निरन्तर भक्ति करेगा, वह राम को अवश्य प्राप्त करेगा। जो राम को प्राप्त कर लेता है, वही प्रामाणिक भक्त माना जाता है।

साई सरीखा सुमिरण कीजै, साई सरीखा गावै।
साई सरीखी सेवा कीजै, तब सेवक सुख पावै ॥ २४९ ॥

जैसा परमात्मा सच्चिदानन्द स्वरूप है, वैसे ही सच्चिदानन्द रूप से उसका स्मरण करना चाहिये तथा जैसे परमात्मा के बल प्रभावादि अपार है, वैसे ही उसका यश-गान करना चाहिये तथा जैसा परमात्मा अखण्ड है, वैसी ही उसकी भक्ति भी अखण्ड ही करनी चाहिये। जब उक्त रीति से कीर्तन, स्मरण और प्रीति करता है, तब सेवक ब्रह्मानन्द को प्राप्त कर लेता है।

परिचय करुणा विनती

दादू सेवक सेवा कर डरै, हम तैं कछू न होइ।
तू है तैसी बदगी, कर नहि जानै कोइ ॥ २५० ॥

२५०-२५१ मे परिचय पश्चात् सेवक की करुणा-पूर्वक विनय का स्वरूप बता रहे है—सेवक सेवा करके सेव्य के सामने डरता हुआ करुणा पूर्ण विनय करता है-हे भगवन्! मुझसे आपकी कुछ भी सेवा नही हो पाती। मेरे से ही क्या-किन्तु जैसे आप सच्चिदानन्द, अखण्ड, एकरस हो, वैसी सेवा तो कोई भी नही कर जानता।

दादू जे साहिब मानै नहीं, तऊ न छाडू सेव।
इहि अवलम्बन जीजिये, साहिब अलख अभेव[1] ॥ २५१ ॥

यदि मेरे स्वामी मेरी सेवा को स्वीकार नहीं करेगे तो भी मै तो उनकी सेवा न छोडूगा। हे मन इन्द्रियो के अविषय अद्वैत[1] स्वरूप स्वामिन्! मै तो आपकी इस सेवा के अवलम्बन से ही जीवित रह रहा हूँ, अत इसे कैसे छोड़ सकता हू।

सूक्ष्म सौंज अर्चा बन्दगी

आदि अत आगे रहै, एक अनूपम देव[1]।
निराकार निज निर्मला, कोई न जानै भेव[2] ॥ २५२ ॥

२५२-२५५ मे सेव्य का स्वरूप बताते हुये सूक्ष्म सामग्री से अन्तर अर्चना भक्ति द्वारा साक्षात्कार की प्रेरणा कर रहे है—परब्रह्म व्यापक होने से प्रत्येक प्राणी की जन्म-मृत्यु के समय वा प्रत्येक वृत्ति की उत्पत्ति-लय के समय से पूर्व ही सर्व स्थलो मे स्थित है। वह त्रिविध भेद शून्य, तथा उपमा रहित, निराकार, निर्मल दिव्य[१]-स्वरूप और सबका निजात्मा रूप है किन्तु फिर भी अज्ञानी तो कोई भी उसके रहस्यमय[२] वास्तविक स्वरूप को नही जानता।

अविनाशी अपरंपरा, वार पार नहिं छेव[२] ।
सो तूं दादू देखि ले, उर अंतर कर सेव ॥ २५३ ॥

जो परब्रह्म अविनाशी, माया[१] से भिन्न, आदि अन्त की सीमा[२] से रहित है। साधक ! तू उसकी आन्तर भक्ति करके अपने हृदय मे ही उसका साक्षात्कार कर।

दादू भीतर पैसि कर, घट के जडै कपाट।
सांई की सेवा करै, दादू अविगत घाट ॥ २५४ ॥

अन्त करण की वृत्ति को अन्तर्मुख करके, शरीर के इन्द्रिय रूप कपाटो को प्रत्याहार द्वारा बन्द करे, फिर मन इन्द्रियो से अतीत ब्रह्म-सरोवर के निर्विकल्पावस्था रूप घाट पर ब्रह्म की ब्रह्म-चिन्तन रूप सेवा करे।

घट परिचय सेवा करै, प्रत्यक्ष देखै देव।
अविनाशी दर्शन करै, दादू पूरी सेव ॥ २५५ ॥

२५४ मे कथन करी पद्धति के अनुसार शरीर मे निर्विकल्पावस्था से परिचय होने पर विकल्प शून्य ब्रह्म-चिन्तन रूप सेवा करता है। वह साधक अपने अभीष्ट देव ब्रह्म का निजात्म रूप से प्रत्यक्ष दर्शन करता है। जब अविनाशी ब्रह्म का निजात्मरूप से साक्षात्कार करता है तब उस साधक की भक्ति पूर्णावस्था को प्राप्त हो जाती है।

भ्रम विध्वंसन

पूजनहारे पास है, देही मांहीं देव।
दादू ताको छाड कर, बाहर मॉडी सेव ॥ २५६ ॥

उपास्य-रूप के भ्रम का नाश कर रहे है—उपासक के अत्यन्त समीप शरीर के भीतर हृदयस्थल मे ही उपास्य देव निजात्मरूप से स्थित है। अज्ञानी प्राणी भ्रमवश उसे छोडकर, बाहर अनात्म-अचेतन पदार्थों को भगवान् मान कर उनकी सेवा में लगे है। अत उन्हे चाहिये—सत्सग द्वारा चेतन परमात्मा के स्वरूप को समझकर उसकी उपासना करे।

परिचय

दादू रमता राम सौं, खेलै अंतर मॉहिं।
उलट समाना आप में, सो सुख कतहूं नॉहिं ॥ २५७ ॥

२५७-२५९ मे साक्षात्कार की विशेपता दिखा रहे है—जो साधक सव मे रमने वाले व्यापक राम से अपने शरीर मे हृदय के भीतर ही राम का चिन्तन रूप खेल खेलता है, वह अपनी इन्द्रियो के प्रत्याहार द्वारा वृत्ति, सासारिक भावनाओ से वदल कर व्रह्माकार करता है और अपने आत्म-स्वरूप राम मे अभेद हो जाता है। उस अभेद अवस्था के सुख के समान सुख ससार मे कही भी नही है।

दादू जे जन बेधे प्रीति सौं, सो जन सदा सजीव ।
उलट समाने आप में, अतर नाही पीव ॥ २५८ ॥

जो साधक जन भगवत् प्रेम-वाण से विद्ध हो जाते है, उनकी चित्त-वृत्ति सासारिक राग के बन्धन से नही बँधती। वे निज वृत्ति को सासारिक भावनाओ से वदल कर, अपने आत्म-स्वरूप मे लीन होकर सदा के लिये व्रह्म प्राप्ति रूप अमरता को प्राप्त हो जाते है। उनका परव्रह्म से भेद नहीं रहता।

परगट खेलैं पीव सौ, अगम अगोचर ठाम ।
एक पलक का देखना, जीवन मरण का नाम ॥ २५९ ॥

परब्रह्म के एक क्षण मात्र दर्शन होने पर, क्या जीवन-मरण यह नाम रह जाता है ? अर्थात् नही, वह तो मुक्त हो जाता है। फिर जो जीवन्मुक्त निर्विकल्प समाधि अवस्था रूप अगम अगोचर स्थल मे प्रत्यक्ष रूप से परव्रह्म-प्रियतम से अभेद होकर आनन्द का अनुभव-खेल खेलते रहते है, उन्मे जन्म-मरणादि ससार का अवसर ही कहाँ है, वे तो व्रह्मरूप ही हो जाते है।

सूक्ष्म सौंज अर्चा बन्दगी

आतम माँहीं राम है, पूजा ताकी होइ ।
सेवा वन्दन आरती, साधु करैं सब कोइ ॥ २६० ॥

२६०-२६५ मे आन्तर सूक्ष्म अर्चना भक्ति की विशेषता बताते हुये उसके करने की प्रेरणा कर रहे है—शरीर के भीतर हृदय स्थल मे स्थित जो आत्म स्वरूप राम है, उनकी पूजा सूक्ष्म भाव-मय सामग्री से आन्तर ही होती है। श्रेष्ठ सन्त भावमय पदार्थों से ही सेवा करते है। भावमय ही आन्तर दण्डवत-वन्दना और भावमय ज्योति आदि से आरती करते है।

परिचै सेवा आरती, परिचै भोग लगाइ ।
दादू उस प्रसाद की, महिमा कही न जाइ ॥ २६१ ॥

श्रेष्ठ सन्तो की भगवत् सेवा परोक्ष नही होती, निरन्तर अपरोक्ष साक्षात्कार करना रूप ही होती है। स्थूल-सूक्ष्म सघात से भिन्न करके आत्म ज्योति ब्रह्म के समर्पण करना ही आरती होती है। साक्षात्कार के समय अपने मन-बुद्धि आदि को भगवत्-स्वरूप मे लीन करना ही भोग लगाना होता है। ऐसे सेवा, आरती करने और भोग लगाने पर भगवान् से मुक्ति रूप महाप्रसाद प्राप्त होता है। उस अभेद स्थिति रूप महाप्रसाद की महिमा वाणी से किसी प्रकार भी नहीं कही जा सकती।

मांहिं निरंजन देव है, मांहिं सेवा होइ ।
मांहिं उतारैं आरती, दादू सेवक सोइ ॥ २६२ ॥

शरीर के भीतर निरजन देव आत्म रूप से स्थित है। उनकी भावना मय सेवा-पूजा भी भीतर ही होती है। जो साधक हृदयस्थ परमात्मा रूप आत्मा की भावनामय आरती भीतर ही उतारते है, वे ही उत्तम सेवक है।

दादू मांहिं कीजै आरती, मांहिं पूजा होइ ।
मांहिं सद्गुरु सेविये, बूझै विरला कोइ ॥ २६३ ॥

साधको ! अपने निरजन देव की भावमय आरती हृदय के भीतर ही करो। उस निरजन देव की सम्पूर्ण सेवा-पूजा भीतर ही होनी चाहिये तथा ब्रह्म-रध्र मे स्थित गुरु चक्र-स्थल मे भीतर ही सद्गुरु की सेवा करो, किन्तु इस आन्तर सेवा की पद्धति कोई विरले सन्त ही जानते है। अत उनसे समझ करके ही करो।

संत उतारैं आरती, तन मन मंगल चार ।
दादू बलि बलि वारणैं, तुम पर सिरजनहार ॥ २६४ ॥

सन्त जन अपने हृदय के भीतर ही आपकी भावमय आरती उतारते है इसलिये उनके शरीर तथा मन मे आनन्द ही रहता है। अत हे ससार के स्रष्टा मगलप्रद प्रभो ! हम आप पर तन-मन-वचन से बलिहारी जाते है।

दादू अविचल आरती, जुग जुग देव अनंत ।
सदा अखंडित एक रस, सकल उतारैं संत ॥ २६५ ॥

हे अनन्त देव ! सम्पूर्ण सन्त आपकी निश्चल, अखडित, एक रस, आरती प्रत्येक युग मे सदा उतारते रहते है।

सौंज

सत्य राम, आत्मा वैष्णव, सुबुद्धि भूमि, संतोष स्थान, मूल मंत्र, मन माला, गुरु तिलक, सत्य संयम, शील शुचिता, ध्यान धोती, काया कलश, प्रेम जल, मनसा मंदिर, निरंजन देव, आत्मा पाती, पुहुप प्रीति, चेतना चंदन, नवधा नाम, भाव पूजा, मति पात्र, सहज समर्पण, शब्द घंटा, आनन्द आरती, दया प्रसाद, अनन्य एक-दशा, तीर्थ सत्संग, दान उपदेश, व्रत स्मरण, षट्गुण ज्ञान, अजपा जाप, अनुभव आचार, मर्यादा राम, फल दर्शन, अभि अन्तर सदा निरंतर, सत्य सौंज दादू वर्त्तते, आत्मा उपदेश, अंतरगति पूजा ॥ २६६ ॥

२६६-२६७ मे आन्तर अर्चना भक्ति का अधिकारी, सामग्री और उसकी विशेषता बताने मे प्रवृत्त हुये शिष्टाचारार्थ प्रथम वस्तु निर्देश मगल करते है—सत्यराम=निरजन राम त्रिकाल मे एक रस, अबाध होने से सत्य है। यही वस्तु निर्देश मगल है। अब पूजा का अधिकारी बता रहे

है-**आत्मा वैष्णव**=जिसका मन आन्तर आत्मा की ओर ही लगा है, वही पूजा करने वाला वैष्णव है। अर्चना की साधन सामग्री बता रहे है-**सुबुद्धि भूमि**= स्थिर और निर्मल बुद्धि ही पृथ्वी है। **सन्तोष स्थान**=आशा-तृष्णा-लोभ रहित हृदय ही स्थान है। **मूल मंत्र**= बीज मत्र 'रा' ही मूल मत्र है। **मन माला**=मन का भगवत् नामाकार सकल्प ही माला है। **गुरु तिलक**=गुरु का यथार्थ उपदेश ही तिलक है। **सत्य संयम**=तन, मन, वचन से सत्य का आश्रय लेना ही सयम है। **शील शुचिता**=निरन्तर ब्रह्मचर्य धारण करना ही पवित्रता है। **ध्यान धोती**=ध्येयाकार वृत्ति ही अधोवस्त्र है। **काया कलश**=मनुष्य शरीर ही पूजार्थ जल का कलश है। **प्रेम जल**=शुद्ध भगवत् प्रेम ही जल है। **मनसा मंदिर**=मन की ब्रह्माकार वृत्ति ही मदिर है। **निरंजन देव**=माया रहित ब्रह्म ही इष्ट देव है। **आत्मा पाती**=मन इन्द्रियो को अन्तर्मुख करना ही तुलसी-दल है। **पुहुप प्रीति**=अनन्य-प्रेम ही पुष्प है। **चेतना चन्दन**=चित्त को सावधान रखना ही चन्दन है। **नवधा नाम**=इष्ट देव का नाम ही नवधा भक्ति है। **भाव पूजा**=उत्कृष्ट श्रद्धा ही पूजा है। **मति पात्र**=ब्रह्म परायण बुद्धि ही पूजा पात्र है। **सहज समर्पण**=निर्द्वन्द्वावस्था मे स्थिति ही समर्पण है। **शब्द घण्टा**=अनाहत शब्द ध्वनि ही घण्टा ध्वनि है। **आनन्द आरती**=आनन्दानुभव ही आरती है। **दया प्रसाद**=आत्म स्वरूप पहचानने की दया ही प्रसाद है। **अनन्य एक दशा**=वृत्ति का अन्य मे न जाना ब्रह्माकार ही रहना एक दशा है। **तीर्थ सत्सग**=सत्सग ही तीर्थ है। **दान उपदेश**=यथार्थ उपदेश ही दान है। **व्रत स्मरण**=इष्ट देव का स्मरण ही व्रत है। **षट्गुण ज्ञान**=अमान, अदभ, अहिसा, क्षमा, आर्जव, वैराग्य, ये ६ गुण ही ज्ञान है। **अजपा जाप**=निरन्तर चलने वाला 'सोऽह' ही अजपा जाप है। **अनुभव आचार**=आत्मा का अनुभव ही आचार है। **मर्यादा राम**=निरजन राम को त्याग कर अन्य मे वृत्ति न जाना ही मर्यादा है। **फल दर्शन**=ब्रह्मात्मा का अभेद दर्शन ही फल है। **अभि अन्तर, सदा निरन्तर, सत्य सौंज दादू वर्तते, आत्मा उपदेश अन्तर्गत पूजा**=सच्चे साधक के हृदय मे निरन्तर सब काल, यथार्थ आन्तर अर्चना की यह सामग्री स्थित रहती है। यही साधक आत्माओ को आन्तर पूजा का उपदेश है।

पिव सौ खेलू प्रेम रस, तो जियरे जक होइ।
दादू पावै सेज सुख, पड़दा नाहीं कोइ ॥ २६७ ॥

उक्त सामग्री द्वारा अपने प्रियतम प्रभु की अर्चना भक्ति करते हुये उनके प्रेम-रस मे निमग्न होकर साक्षात्कार रूप खेल खेलेगे, तब ही हमारे हृदय को पूर्ण शाति प्राप्त होगी, फिर तो हमे अद्वैत स्थिति रूप शय्या का परमानन्द प्राप्त हो जायेगा।

सूक्ष्म सौंज

सेवक बिसरै आपको, सेवा बिसर न जाइ।
दादू पूछै राम को, सो तत कह समझाइ ॥ २६८ ॥ क
दादू सूता पीछे सुरति निरति सू, बालक ज्यू पय पीवै।
ऐसे अंतर लगन नाम सू, आतम जुग जुग जीवै ॥ २६८ ॥ ख

२६८-२७३ मे सूक्ष्म सामग्री से अर्चना करने की विशेषता बता रहे है—हे समर्थ सर्वज्ञ-

राम ! मै आपसे पूछता हूॅ, कृपा करके मुझे वह रहस्य मय साधन कह कर समझाइये, जिससे सेवक देहाध्यासादिक भ्रातिमय अपने रूप को तो भूल जाय, किन्तु आपकी भक्ति नही भूले।

ज्यों रसिया रस पीवतां, आपा भूलै और ।
यों दादू रह गया एक रस, पीवत पीवत ठौर ॥ २६९ ॥

२६८ मे स्थित प्रश्न का उत्तर दे रहे है—राम कहते है-जैसे कोई मादक रस का रसिया मदिरादि रस पीने लगता है, तब पीते२ अपने शरीर की सुध तथा अन्य को भी भूल जाता है और एक स्थान मे गिर जाता है वैसे ही मेरे प्रेम-रस का रसिया मुझमे प्रेम करते २ अपने को और अपने से भिन्न मायिक ससार को भूल जाता है किन्तु मेरी प्रेमाभक्ति को नही भूलता, उसकी वृद्धि होकर वह परा-भक्ति बन जाती है। ऐसा भक्त जो भी हुआ है, वह मेरे स्वरूप रूप स्थान मे एक रस होकर अर्थात् मेरा स्वरूप बनकर स्थिर रह गया है, पुन जन्मादिक ससार मे नही गया है।

जहॅ सेवक तहॅ साहिब बैठा, सेवक सेवा मांहिं ।
दादू सांई सब करै, कोई जानै नांहिं ॥ २७० ॥

जिस हृदय देश मे भक्त सेवक-भाव से आन्तर सेवा-भक्ति मे लगा रहता है, वहा ही प्रभु की विशेष रूप से स्थिति है और भक्त के योग-क्षेमादि की सब व्यवस्था करते रहते है किन्तु भगवान् के इन भक्त-सेवा रूप कार्यों को अभक्त कोई भी नही जानता।

दादू सेवक सांई वश किया, सौंप्या सब परिवार ।
तब साहिब सेवा करै, सेवक के दरबार ॥ २७१ ॥

जो भक्त अपने इन्द्रिय अन्त करणादि आन्तर और स्त्री पुत्रादि बाह्य परिवार तथा धनादि साधन भगवान् के समर्पण करके भगवान् को अपने अनुकूल कर लेता है, तब उस भक्त के घर के आवश्यक कार्य योग-क्षेमादिक रूप सेवा भगवान् करते है।

तेज पुंज को विलसना, मिल खेलैं इक ठाम ।
भर भर पीवैं राम रस, सेवा इस का नाम ॥ २७२ ॥

नित्य-ज्ञान राशि ब्रह्म स्वरूपानन्द का उपभोग करते हुये उपास्य उपासक एक अद्वैत स्थिति मे आकर भी वृत्ति रूप प्याले मे भर-भर के राम-प्रेम-रस का पान करते हुये सेवक जन साक्षात्कार रूप खेल खेलते रहते है। इस अभेद स्थिति मे भी भेदाभास प्रतीत होना रूप जो पराभक्ति है, इसी का नाम सच्ची सेवा है।

अरस परस मिल खेलिये, तब सुख आनन्द होइ ।
तन मन मंगल चहुँ दिश भये, दादू देखै सोइ ॥ २७३ ॥

आन्तर पराभक्ति की स्थिति मे आपस मे मिलकर परस्पर प्रेम रूप खेल खेलते है तब उपास्य-उपासक भाव-जन्य सुख और अभेदानन्द दोनो ही मिलते रहते है। पूर्वकाल मे इस पराभक्ति की स्थिति मे आते ही साधको के तन-मन मे चारो ओर से आनन्द मंगल ही हुये थे। वही उभय प्रकार का आनन्द हम भी अनुभव कर रहे है।

सुन्दरी सुहाग

मस्तक मेरे पांव धर, मदिर मांही आव ।
सॅइयाँ सोवै सेज पर, दादू चंपै पांव ॥ २७४ ॥

२७४-२७६ मे निरतर साक्षात्कार के लिए प्रार्थना तथा प्रेरणा कर रहे है—हे स्वामिन् ! आपके दर्शन की अभिलाषा रूप मेरे मस्तक पर अपना दर्शन रूप चरण रख कर मुझे तृप्त करो और मेरे हृदय-मदिर मे पधारो। प्रश्न-मदिर मे क्या करोगे ? उत्तर—आप मेरी ब्रह्माकार-वृत्ति रूप शय्या पर शयन करे और मै आपके ध्येय-ज्ञेय रूप उभय पद की अपने प्रेम और ज्ञान रूप हाथो से निरतर ध्यान और साक्षात्कार रूप सेवा करूगा।

ये चारों पद पलिग के, साई की सुख सेज।
दादू इन पर बैस कर, साई सेती हेज ॥ २७५ ॥

२७४ की साखी के चार पाद ही ब्रह्मानन्द को देने वाली निरतर ब्रह्माकार-वृत्ति रूप परमात्मा की शय्या के चार पाये है। प्रथम-श्रद्धा, द्वितीय-प्रेम, तृतीय-ध्यान, और चतुर्थ-ज्ञान का बोधक है। इन चार साधनो के द्वारा ही निरतर ब्रह्माकार-वृत्ति रहने लगती है। अत इन चारो की परिपाकावस्था मे स्थित होकर, ब्रह्माकार वृत्ति-शय्या पर पहुँचो और प्रभु से अभेद स्थिति रूप परम प्रेम करो वा १०वीं सिन्धु राग के आदि के ४ भजन ही चार पाये है। परपरागत जनश्रुति है कि वे चार भजन बनवारीजी (उत्तराधा) को सुनाकर यह साखी उच्चारण की थी।

प्रेम लहर की पालकी, आतम बैसै आइ ।
दादू खेलै पीव सौं, यहु सुख कह्या न जाइ ॥ २७६ ॥

प्रभु-प्रेम की लहरियो से बनी पालकी मे जब साधक आत्मा बैठता है अर्थात् प्रेम प्राप्त करता है, तब अपने प्रियतम प्रभु से अभेद भाव रूप खेल खेलता है। यह जो अभेद, स्थिति जन्य आनन्द है, सो किसी प्रकार भी कहा नहीं जा सकता।

पूजा-भक्ति सूक्ष्म सौंज

दादू देव निरंजन पूजिये, पाती पच चढाइ ।
तन मन चन्दन चर्चिये, सेवा सुरति लगाइ ॥ २७७ ॥

२७७-२८० मे सूक्ष्म सामग्री से अर्चना-भक्ति करने की प्रेरणा कर रहे है—पच ज्ञानेन्द्रियो को भगवत् परायण करना रूप तुलसी-दल चढ़ाकर, तन, मन, समर्पण करना रूप चन्दन लगाकर, निरजन देव की पूजा करो और अपनी वृत्ति प्रभु के स्वरूप मे लगा कर अखड चिन्तन रूप सेवा करो।

भक्ति भक्ति सबको कहै, भक्ति न जानै कोइ ।
दादू भक्ति भगवंत की, देह निंरतर होइ ॥ २७८ ॥

"भगवान् की भक्ति करो तथा मै भक्ति करता हूँ" ऐसे कहते तो सभी है किन्तु केवल कहने वालो मे कोई भी भक्ति के वास्तविक आन्तर स्वरूप को नहीं जानते। वे बाह्य प्रतिमा-पूजा

और माला-तिलकादिक चिन्ह धारण करने को ही भक्ति समझते है। वास्तविक भक्ति तो वही है जो शरीर के भीतर अन्त.करण में २७७ वी साखी में कही रीति से निरतर होती रहती है।

देही मांहीं देव है, सब गुण तैं न्यारा।
सकल निरंतर भर रह्या, दादू का प्यारा ॥ २७९ ॥

संपूर्ण मायिक गुणो से रहित और सारे विश्व मे एकरस, परिपूर्ण, आन्तर सूक्ष्म पूजा सामग्री से पूजने योग्य, हमारा परम प्रिय, आत्म-स्वरूप निरजन देव शरीर के भीतर ही स्थित है। अत· आन्तर पूजा करनी चाहिए।

जीव पियारे राम को, पाती पंच चढाइ।
तन मन मनसा सौंपि सब, दादू विलम्ब न लाइ ॥ २८० ॥

हे जीव ! अपने प्रियतम परमात्मा के पच विषयो की आसक्ति से रहित करके पच ज्ञानेन्द्रिय रूप तुलसी-पत्र चढ़ाकर, सर्व-भाव से तन, मन और बुद्धि आदि सभी भगवान् के समर्पण करो, इसमे देर न करो।

ध्यान-अध्यात्म

शब्द सुरति ले सान चित, तन मन मनसा मांहिं।
मति बुधि पंचों आतमा, दादू अनत न जांहिं ॥ २८१ ॥

२८१-२९१ मे आन्तर ध्यान द्वारा परमात्मा से अभेद होने की प्रेरणा कर रहे हैं—हे साधक ! अपनी वृत्ति को विषयो से उठाकर सद्गुरु शब्दो मे मिला अर्थात् लगा। चित्त से आत्म-चिन्तन कर, शरीर का अध्यास छोड़ कर, शरीर को आत्मा का विवर्त्त जान। मन से ब्रह्मात्मा के अभेद की बोधक युक्तियो का मनन कर। इच्छा भी ब्रह्म साक्षात्कार की ही कर और तेरा मन्तव्य भी आत्माराम की प्राप्ति ही हो बुद्धि से ब्रह्म-विचार ही कर। पच ज्ञानेन्द्रिय, पच कर्मेन्द्रिय और पच प्राणो को भी आत्म-परायण कर अर्थात् इन सबको आत्म-तत्त्व प्राप्ति के साधन रूप कार्यों मे लगा। इस प्रकार स्थूल-सूक्ष्म सघात को आन्तर आत्माराम मे ही लगा, आत्माराम को छोडकर अन्यत्र मत जाने दे।

दादू तन मन पवना पंच गहि, ले राखै निज ठौर।
जहां अकेला आप है, दूजा नाहीं और ॥ २८२ ॥

साधक को चाहिए—हिसादि से शरीर को, सासारिक वस्तुओ के मनन से मन को, प्राणायाम से प्राणो की शीघ्रगति को, प्रत्याहार से ज्ञानेन्द्रियो को, मिताहार से कर्मेन्द्रियो को रोके और आन्तरमुखता रूप हाथ से ग्रहण करके फिर जहा पर अपने आत्म स्वरूप ब्रह्म से भिन्न दूसरा कोई भी नही है, अद्वैत स्वरूप आप ही है, उसी निजात्म-रूप स्थल मे सबको स्थिर करके रक्खे।

दादू यहु मन सुरति समेट कर, पंच अपूठे आणि।
निकट निरजन लाग रहु, सग सनेही जाणि ॥ २८३ ॥

साधक ! इस मन की ससार मे फैली हुई वृत्तियो को एकत्र करके तथा पच ज्ञानेन्द्रियो को विषयो से लौटा कर ला। फिर व्यापक होने से अत्यन्त समीप निरजन राम को अपना सदा का साथी और स्नेही जान कर उसी के चिन्तन मे लगा रह।

मन चित मनसा आतमा, सहज सुरति ता मांहिं ।
दादू पंचो पूरले, जहँ धरती अम्बर नाहि ॥ २८४ ॥

साधक को चाहिए—मन को मायिक मनन से, चित्त को विषय-चिन्तन से, बुद्धि को व्यावहारिक विचारो से, पच ज्ञानेन्द्रियो को विषयासक्ति से हटा कर, सहज स्वरूप ब्रह्माकार वृत्ति द्वारा शरीर के भीतर जहा पृथ्वी-आकाशादि विकारो से रहित आत्म-स्वरूप ब्रह्म है, उसी मे सबको लय करे।

दादू भीगे प्रेम रस, मन पंचो का साथ।
मगन भये रस में रहे, तब सन्मुख त्रिभुवननाथ ॥ २८५ ॥

प्रथम साधक का मन पच ज्ञानेन्द्रियो के सहित प्रभु-प्रेम-रस से भीगता है अर्थात् प्रेम युक्त होता है। उस प्रेम-रस की वृद्धि होने पर मन व इन्द्रियाँ उसी के आनन्द मे निमग्न रहने लगते है, तब त्रिभुवननाथ परमात्मा उस साधक को प्रत्यक्ष दर्शन देते है।

दादू शब्दैं शब्द समाइ ले, परआतम सौं प्राण।
यहु मन मन सौ बधि ले, चित्तै चित्त सुजाण ॥ २८६ ॥

साधक को चाहिए—अनाहत नाद के श्रवण करने की प्रेरणा रूप गुरु के शब्दो से अपने श्रवण इन्द्रिय को आन्तर अनाहत नाद श्रवण करने मे लीन करे। ईश्वर के स्वरूप मनन द्वारा अपने चित्त को ईश्वर के चित्त मे लीन करे और विचार द्वारा प्राणधारी जीवात्मा को परमात्मा मे लीन करे।

दादू सहजै सहज समाइ ले, ज्ञानैं बंध्या ज्ञान ।
सूत्रै सूत्र समाइ ले, ध्यानैं बंध्या ध्यान ॥ २८७ ॥

निर्विकल्प समाधि रूप सहजावस्था द्वारा वृत्ति सहज-स्वरूप ब्रह्म मे विलीन करे। शास्त्र-विचार रूप परोक्ष ज्ञान द्वारा अपरोक्ष ज्ञान मे स्थित होवे। गुरु ज्ञान द्वारा व्यष्टि सूत्रात्मा तैजस को समष्टि सूत्रात्मा हिरण्यगर्भ मे विलीन करे। प्रतीक ध्यान द्वारा अह-ग्रह ध्यान मे स्थित होवे।

दादू दृष्टै दृष्टि समाइ ले, सुरतैं सुरति समाइ ।
समझैं समझ समाइ ले, लै सौ लै ले लाइ ॥ २८८ ॥

अपनी भेद दृष्टि को सात्त्विक विचार दृष्टियो द्वारा समदृष्टि मे विलीन करे। मायिक पदार्थाकार अपनी वृत्ति को सात्त्विक वृत्तियो के अभ्यास द्वारा ब्रह्माकार-वृत्ति मे लीन करे। अपनी अयथार्थ समझ को सतो की समझ-द्वारा ईश्वर के वेद, गीतादिक ज्ञान रूप मे लीन

करे। विषयो मे लीनता रूप वृत्ति को सन्तो की वैराग्य वृत्ति के द्वारा विषयो से हटा कर प्रभु मे लीन करे।

दादू भावैं भाव समाइ ले, भक्तैं भक्ति समान ।
प्रेमैं प्रेम समाइ ले, प्रीतैं प्रीति रस पान ॥ २८९ ॥

अपने साधारण भाव को वैराग्यादिक श्रेष्ठ भावो द्वारा परब्रह्म सच्चिदानन्दादि भाव मे, अपनी देहादिक भक्ति को नवधादि सुगण भक्तियो द्वारा निर्गुण भक्ति मे, अपने लौकिक प्रेम को प्रभु-प्रेमियो के प्रेम का अनुकरण करके प्रभु प्रेम मे, और अपनी प्रेमा भक्ति के प्रवाहो को परा-भक्ति मे लीन करके अद्वैतानन्द-रस का पान करे।

दादू सुरतैं सुरति समाइ रहु, अरु बैनहुँ सौं बैन।
मन ही सौं मन लाइ रहु, अरु नैनहुँ सौं नैन ॥ २९० ॥

ज्ञान-वैराग्य प्रधान वृत्तियो द्वारा वृत्ति को अद्वैत मे स्थिर करके स्थिर रहो। अद्वैत बोधक गुरु-वेदादिक वचनो द्वारा अपने वचनो को भी अद्वैत परायण करो। विवेक, विचार-नेत्रो द्वारा अपने बाह्य नेत्रो से सब मे अद्वैत का ही दर्शन करो, अद्वैत भावना को प्राप्त हुये ज्ञानी सतो के मन का अनुसरण करके अपने मन को अद्वैत ब्रह्म मे ही लीन करो।

जहाँ राम तहँ मन गया, मन तहँ नैना जाइ।
जहँ नैना तहँ आतमा, दादू सहज समाइ ॥ २९१ ॥

शरीर के भीतर हृदय देश मे जहा राम की अनुभूति होती है, वहा ही जाकर साधन सम्पन्न मन स्थिर होता है। जहा मन स्थिर होता है, वहा ही विचार-नेत्र जाते है अर्थात् उसी का विचार होता है और जहा विचार-नेत्र जाते है, उसी राम मे उक्त एकाग्रता के प्रभाव से अभेद ज्ञान होने पर जीवात्मा सहज स्वभाव से ही समा जाता है। अत. उक्त प्रकार साधन द्वारा अभेद स्थिति प्राप्त करो।

जीवन्मुक्ति (विषय-वासना निवृत्ति)

प्राणन खेलै प्राण सौं, मनन खेलै मन।
शब्दन खेले शब्द सौं, दादू राम रतन ॥ २९२ ॥

२९२-३४४ मे विषय-वासना निवृत्ति रूप जीवन्मुक्ति विषयक विचार कर रहे है—जो अपने प्राणो के व्यापार द्वारा ईश्वर के प्राणो से अभेद रूप खेल खेलता है, नाना प्रकार मनन द्वारा अपने मन को समष्टि मन मे मिलाना रूप और अपने शब्दो द्वारा शब्दब्रह्म से विचार रूप खेल खेलता है, वह पुरुष-रत्न राम-स्वरूप ही हो जाता है।

चित्तन खेलै चित्त सौं, वैनन खेले वैन।
नैनन खेले नैन सौं, दादू परकट ऐन ॥ २९३ ॥

अपनी चित्त वृत्तियो द्वारा समष्टि चित्त से चिन्तन रूप, अपनी वाणी द्वारा प्रभु के गीतादिक

वचनो का उच्चारण रूप, अपने नेत्रो से प्रभु के नेत्रो को एकटक देखना रूप खेल खेलता है, ऐसा पुरुष प्रत्यक्ष मे ही ब्रह्म-स्वरूप है ।

पाकन खेलै पाक सौ, सारन खेलै सार ।
खूबन खेलै खूब सौं, दादू अंग अपार ॥ २९४ ॥

पवित्र साधनो द्वारा प्रभु की सेवा रूप खेल पवित्र प्रभु से खेलता है। सार रूप विचारो द्वारा विश्व के सार स्वरूप ब्रह्म से ब्रह्म-विचार रूप खेल खेलता है। अपने सुन्दर स्वभाव के द्वारा प्रभु की सुन्दरता समझना रूप खेल सुन्दर प्रभु से खेलता है। ऐसा ईश्वर का अग रूप, वह जीवन्मुक्त आत्मा अपार ब्रह्म-रूप ही हो जाता है।

नूरन खेलै नूर सौ, तेजन खेलै तेज ।
ज्योतिन खेलै ज्योति सौ, दादू एकै सेज ॥ २९५ ॥

ससार के दिव्य रूपो के दर्शन द्वारा प्रभु का रूप देखना रूप खेल, शब्दो के ज्ञान प्रकाश से प्रभु के स्वरूप ज्ञान को समझना रूप खेल, आत्म ज्योति के द्वारा ब्रह्म ज्योति से ब्रह्म ज्योति की प्राप्ति रूप खेल, खेलता है। ऐसा पुरुष ब्रह्म की निर्विकल्प समाधि शय्या पर ब्रह्म रूप होकर रहता है।

पंच पदारथ मन रतन, पवना माणिक होइ ।
आतम हीरा सुरति सौ, मनसा मोती पोइ ॥ २९६ ॥

ब्रह्म को पहनाने योग्य हार बता रहे है—पच ज्ञानेन्द्रियो की अन्तर्मुखता रूप (१ स्वर्ण २ चादी ३ प्रवाल ४ नीलम ५ मरकत) पाचो पदार्थों के पाच मणिये, मन-रत्न, प्राण-माणिक्य, बुद्धि-मोती और जीवात्मा-हीरा इन सबको अद्वैत निष्ठा सूत्र मे अभेद वृत्ति से पोकर हार तैयार करो।

अजब अनूपम हार है, साई सरीखा सोइ ।
दादू आतम राम गल, जहाँ न देखै कोइ ॥ २९७ ॥

हार की विशेषता बताते हुए पहनाने की प्रेरणा कर रहे है—उक्त हार अति अद्भुत, अनुपम तथा परमात्मा को पहनाने जैसा ही है। इस हार को कोई भी न देख सके, ऐसे हृदय स्थान मे स्थित अपने शुद्ध साक्षी आत्मा राम के निर्विकल्प स्थिति रूप गले मे पहनाओ अर्थात् उक्त सबको निर्विकल्प बनाओ।

दादू पंचों संगी सग ले, आये आकासा ।
आसन अमर अलेख का, निर्गुण नित वासा ॥ २९८ ॥
प्राण पवन मन मगन है, सगी सदा निवासा ।
परचा परम दयालु सौं, सहजैं सुख दासा ॥ २९९ ॥

पूर्व साधको की तथा अपनी साक्षात्कार की पद्धति बता रहे है—जो साधक अपने पच

ज्ञानेन्द्रिय रूप साथियो को प्रत्याहार द्वारा साथ लेकर हृदयाकाश मे जहा अमर, अलेख, निर्गुण ब्रह्म का आसन है और जहा आत्म रूप से निर्गुण ब्रह्म का नित्य निवास रहता है, वहा आये।

तब उन साधक प्राणियो का प्राण रूप पवन वहा स्थिर हो गया अर्थात् समाधि लग गई, मन समाधि के परमानन्द मे मग्न हो गया। पच ज्ञानेन्द्रिय रूप साथी भी अन्तर्मुख होकर सदा मन के साथ ही रहने लगे। इस प्रकार परम दयालु परमात्मा का साक्षात्कार होने पर साधक-भक्तो को बहिरग कर्मों के परिश्रम बिना ही अनायास ब्रह्मानन्द की प्राप्ति हुई।

प्राण पवन मन मणि बसै, त्रिकूटी केरे संधि ।
पांचों इन्द्री पीव सौं, ले चरणों में बंधि ॥ ३०० ॥

वर्तमान साधको को साक्षात्कार की सुगम पद्धति बता रहे है—आज्ञा-चक्र और सहस्रार के मध्य मे जहा अपने परमात्मा-प्रियतम का विशेष रूप से निवास है, वहा ही पच-प्राण रूप वायु को स्थित करो। शुद्ध-मन-मणि प्रभु के तेजोमय चरणो पर चढाओ और पच ज्ञानेन्द्रियो को विषय-स्थान से प्रत्याहार द्वारा उठाकर प्रभु के पवित्र-पदो मे स्थिर करो। ऐसा करने से तुम्हे साक्षात्कार होगा।

प्राण हमारा पीव सौं, यों लागा सहिये ।
पुहुप वास, घृत दूध में, अब कासौं कहिये ॥ ३०१ ॥

साक्षात्कार की स्थिति को गुप्त रखने की प्रेरणा कर रहे है—जब हमारा प्राणधारी जीवात्मा, हृदय मे स्थित प्रियतम प्रभु का साक्षात्कार करके पुष्प मे गन्ध, दूध मे घृत के समान प्रभु के स्वरूप मे लगा हुआ प्रभु से अभेद हो जाय, उसके पश्चात् वह साक्षात्कार करने वाला अपनी यह अभेद स्थिति किससे कहे अर्थात् यह कहने योग्य नहीं।

पाहण लोह बिच वासदेव[1], ऐसे मिल रहिये ।
दादू दीन दयालु सौं, संगहि सुख लहिये ॥ ३०२ ॥

अभेदानन्द लेने की प्रेरणा कर रहे है—पत्थर और लोहे मे जैसे अग्नि[1] मिला हुआ रहता है, वैसे ही हमे दीनदयालु परब्रह्म से मिल के उनके अभेद रूप नित्य सग मे रह कर सदा ब्रह्मानन्द का ही अनुभव करना चाहिए।

दादू ऐसा बडा अगाध है, सूक्षम जैसा अंग।
पुहुप वास तैं पत्तला, सो सदा हमारे संग ॥ ३०३ ॥

ब्रह्म की महत्ता तथा सूक्ष्मता का परिचय दे रहे है—ब्रह्म महान् तो ऐसा है कि किसी प्रकार भी उसकी महानता का थाह नही आ सकता। लघु भी इतना है-इन्द्रियाँ नही देख पाती। यदि उसकी सूक्ष्मता का वाणी से परिचय दे तो इतना ही कह सकते है कि वह पुष्प-गध से भी अति सूक्ष्म है और व्यापक होने से सदा हमारे साथ है।

दादू जब दिल मिली दयालु सौं, तब अंतर कुछ नांहि ।
ज्यों पाला पाणी कों मिल्या, त्यों हरिजन हरि मांहिं ॥ ३०४ ॥

३०४-३०७ मे भक्त भगवान् मे मिल जाने पर भक्त भगवान् का भेद नहीं रहता यह कह रहे है—जब साधन द्वारा मन-वृत्ति दयालु प्रभु मे मिल जाती है तब भक्त और भगवान् मे कुछ भी भेद नही रहता। फिर तो जैसे हिम का पत्थर सूर्यादि के ताप से गलते ही जल मे मिल जाता है, वैसे ही प्रारब्ध समाप्ति पर शरीर गिरते ही भक्त भगवान् मे मिल जाता है।

दादू जब दिल मिली दयालु सौ, तब सब पडदा दूर ।
ऐसे मिल एकै भया, बहु दीपक पावक[1] पूर ॥ ३०५ ॥

भक्ति द्वारा जब अन्त करण की वृत्ति दयालु भगवान् मे मिलती है तब निज स्वरूप के ज्ञान से अविद्या रूप सब पड़दे दूर हो जाते है। फिर तो जैसे अनेक दीपक ज्योतियाँ दीपको को त्यागकर एक व्यापक अग्नि[1] मे मिल जाती है, वैसे ही आत्मा सूक्ष्म शरीर को त्यागकर ब्रह्म मे लय हो जाती है।

दादू जब दिल मिली दयालु सौं, तब अतर नाहीं रेख।
नाना विधि बहु भूषणा, कनक कसौटी एक ॥ ३०६ ॥

जब ज्ञान द्वारा मनोवृत्ति दयालु ब्रह्म मे लय हो जाती है तब उस साधक की आत्मा का ब्रह्म से एक रेखा मात्र भी अन्तर नही रहता। जैसे सुवर्ण के नाना प्रकार के भूषणो की कसौटी द्वारा परीक्षा करने पर एक सुवर्ण ही सिद्ध होता है, कसौटी नाम सिद्ध नही करती वा अग्नि द्वारा गल जाने पर एक सुवर्ण ही रहता है, भूषण नही, वैसे ही ब्रह्म ज्ञान होने पर नाना उपाधियो को त्याग कर आत्मा ब्रह्म-रूप ही हो जाता है।

दादू जब दिल मिली दयालु सौं, तब पलक न पड़दा कोइ।
डाल मूल फल बीज मे, सब मिल एकै होइ ॥ ३०७ ॥

जब अपरोक्ष ज्ञान द्वारा भगवान् मे मनोवृत्ति लय हो जाती है तब आत्मा और ब्रह्म के बीच मे एक पलक मात्र भी कामादि दोष रूप पड़दा नही रहता, निरतर ब्रह्माकार वृत्ति ही रहती है। जैसे वृक्ष के मूल, डाल और फल ये सब मिलकर बीज मे एक रूप हो जाते है, वैसे ही मनोवृत्ति के ब्रह्म मे लय होने पर कामादि सभी प्रपच एक ब्रह्म रूप ही हो जाता है।

फल पाका बेली तजी, छिटकाया मुख माहि।
सांई अपना कर लिया, सो फिर ऊगै नाहिं ॥ ३०८ ॥

जीवात्मा रूप फल ब्रह्मज्ञान-विचार-ताप से जब निरतर ब्रह्माकार वृत्ति रूप परिपाकावस्था को प्राप्त होता है तब वह अविद्या बेलि को त्याग देता है। अविद्या शून्य होते ही ब्रह्म-स्वामी जीवात्मा-फल को अपना कर, अभेद स्थिति-मुख मे डाल देता है। इस अभेद स्थिति रूप अपरोक्ष ज्ञान की ताप से जीवात्मा रूप फल का कर्म-बीज भुन जाता है। अत वह पुन जन्म-मरण रूप अँकुर वाला नही होता।

दादू काया कटोरा दूध मन, प्रेम प्रीति सौ पाइ।
हरि साहिब इहि विधि अचवै, बेगा बार न लाइ ॥ ३०९ ॥

साधक ! काया कटोरे मे स्थित शुद्ध मन-दूध मे प्रेम रूप मिश्री मिलाकर प्रीति-पूर्वक भगवान् को पिला। पाप-ताप हरने वाले भगवान् उक्त विधि से ही शुद्ध मन-दूध पीते है। तू भगवान् को उक्त प्रकार पय-पान कराने मे शीघ्रता कर, विलम्ब मत कर।

टकाटकी जीवन मरण, ब्रह्म बराबर होइ।
परगट खेलै पीव सौं, दादू विरला कोइ ॥ ३१० ॥

३०९ मे बताई हुई पद्धति से मन को ब्रह्म के समर्पण करके, ब्रह्म समान होकर प्रत्यक्ष मे अपने प्रियतम ब्रह्म से अभेद होकर आनन्द का अनुभव रूप खेल खेलते हुये, अपने जीवन मे मरण-पर्यन्त निरन्तर साक्षात्कार रूप टकटकी लगाये हुये स्थिर रहे, ऐसा कोई विरला ही होता है।

दादू निबरा[1] ना रहै, ब्रह्म सरीखा होइ।
लै समाधि रस पीजिये, दादू जब लग दोइ ॥ ३११ ॥

ब्रह्म साक्षात्कार के पश्चात् ब्रह्म सदृश बनकर भी निकम्मा[1] न रहे वा जो निरन्तर ब्रह्म प्राप्ति का साधन करता है, निकम्मा नही रहता, अथवा ब्रह्म से न्यारा[1] नही रहता, वह ब्रह्म के समान ही हो जाता है। अत जब तक हृदय मे द्वैत भाव है, तब तक वृत्ति को अन्तर्मुख करके समाधि द्वारा ब्रह्म चिन्तनानन्द-रस पान करते रहना चाहिए।

बे खुद खबर[1] होशियार[2] बाशद[3], खुद खबर पामाल[4]।
बे कीमत मस्तानः गलतान, नूर प्याले ख्याल ॥ ३१२ ॥

देहाध्यासादि रूप अपनी समझ[1] को नष्ट[4] करके बे-परवाह[3] बुद्धिमान्[2] मूल्य-मापादि रहित परमात्मा के ज्ञान मे मस्त और ब्रह्म मे ही अपनी वृत्ति को लय करके ब्रह्म-दर्शनानन्द-रस के प्याले का ही ख्याल रखता है, उसकी चित्त-वृत्ति ससार की ओर नही जाती।

दादू माता प्रेम का, रस में रह्या समाइ।
अंत न आवै जब लगैं, तब लग पीवत जांइ ॥ ३१३ ॥

प्रभु-प्रेम रूप साधना का साधक प्रेम-रस मे ही निमग्न होकर मस्त रहता है और जब तक भेद भावना का अन्त नही आता, तब तक प्रेम-रस का पान करता ही जाता है।

पीया तेता सुख भया, बाकी बहु वैराग[1]।
ऐसे जन थाकै नहीं, दादू उनमनि[2] लाग ॥ ३१४ ॥

भगवत् प्रेमियो ने जितना भजनानन्द-रस पान किया उतना तो उन्हे अक्षय आनद प्राप्त हुआ किन्तु भजन का अन्त तो आता नही, अत जो शेष रहा, उसके पान मे भी उनका निश्चय-पूर्वक बहुत प्रेम[1] रहा। इस प्रकार भजनानन्द-रस के रसिक-जन सासारिक भावनाओ से शून्य समाधि[2] अवस्था को प्राप्त करके भी भजनानन्द-रस पान से तृप्त नही हुये।

निकट निरंजन लाग रहु, जब लग अलख अभेव।
दादू पीवै राम रस, निहकामी निज सेव ॥ ३१५ ॥

निष्कामी भक्तजन जब तक मन इन्द्रियो के अविषय, रहस्यमय ब्रह्म को प्राप्त नही कर लेते, तब तक अपनी भक्ति द्वारा राम भजन-रस पान करते ही रहते है। अत साधक ! तू भी भजन द्वारा उस निरजन के निकट लगा रहे।

राम रटन छाडै नहीं, हरि लै लागा जाइ।
बीचैं ही अटकै नहीं, कला कोटि दिखलाइ ॥ ३१६ ॥

उत्तम साधक राम नाम की रटन को नही छोडता। माया यदि बीच मे अपनी चमत्कारमयी ऋद्धि-सिद्धि आदि कोटिन कला दिखाकर रोकना चाहे तो भी वह नही रुकता और अपनी वृत्ति निरन्तर हरि मे लगाता हुआ ब्रह्म साक्षात्कार के लिए बढ़ता ही जाता है।

दादू हरि रस पीवता, कबहूं अरुचि न होइ।
पीवत प्यासा नित नवा, पीवणहारा सोइ ॥ ३१७ ॥

भगवत् भजन-रस-पान मे जिसको कभी भी अरुचि नही होती, प्रत्युत पीते हुये भी प्यासा ही रहता है और पीने मे नित्य नूतन उत्साह बनाये रखता है, वही वास्तव मे भजन-रस पान करने वाला माना जाता है।

जैसे श्रवणां दोइ हैं, ऐसे हूंहि अपार।
राम कथा रस पीजिये, दादू बारबार ॥ ३१८ ॥

जैसे दो श्रवण है, वैसे ही अनन्त होवे तो राम कथा-रस बारम्बार अति मात्रा मे पिया जा सकता है।

जैसे नैना दोइ है, ऐसे हूहिं अनन्त।
दादू चद चकोर ज्यों, रस पीवै भगवत ॥ ३१९ ॥

जैसे दो नेत्र है, वैसे ही अनन्त होवे तो जिस प्रकार चकोर पक्षी चन्द्रमा का दर्शन-रस पान करता है, वैसे ही हम अनन्त नेत्रो द्वारा भगवद्-दर्शन-रस का पान कर सके।

ज्यौं रसना मुख एक है, ऐसे हूहिं अनेक।
तो रस पीवैं शेष ज्यों, यों मुख मीठा एक ॥ ३२० ॥

जैसे एक जिह्वा और एक मुख है, वैसे ही यदि अनन्त जिह्वा और अनन्त मुख होवे तो हम सहस्र मुख और दो सहस्र जिह्वा वाले शेषजी के समान नामोच्चारण रूप रस पान करे, इस प्रकार हमारे मुख को त्रिविध भेद शून्य एक परमात्मा का नाम उच्चारण ही मधुर लगे, अन्य नहीं।

ज्यों घट आतम एक है, ऐसे हूहि असंख।
भर भर राखै रामरस, दादू एकै अक ॥ ३२१ ॥

जैसे एक शरीर है, वैसे ही यदि हमारे असख्य शरीर होवे तो असख्य अन्त करण रूप प्यालो मे राम का चिन्तन रूप रस भर भर कर रक्खे और उस चिन्तन के प्रभाव से एक मात्र परब्रह्म की अभेद स्थिति रूप गोद मे जाकर स्थित होवे।

ज्यों ज्यों पीवै राम रस, त्यों त्यों बढै पियास ।
ऐसा कोई एक है, विरला दादू दास ॥ ३२२ ॥

जैसे-जैसे राम स्मरण-रस पान करे, वैसे-वैसे स्मरण की इच्छा बढती ही जाय, ऐसा एक मात्र परमात्मा का ही भक्त कोई विरला जन होता है।

राता माता राम का, मतिवाला मैमंत[1] ।
दादू पीवत क्यों रहै, जे जुग जांहिं अनन्त ॥ ३२३ ॥

राम के स्वरूप मे रत, राम का स्मरण करके मस्त हुआ बुद्धिमान् सत, राम प्रेम के प्रभाव से देहादिक की सुध न रहने पर बेसुध[1] हुआ भी राम चिन्तन-रस पान करता ही रहता है। यदि अनन्त युग व्यतीत हो जायँ तो भी वह उक्त रस पान करने से नही थकता।

दादू निर्मल ज्योति जल, वर्षा बारह मास ।
तिहिं रस राता प्राणिया, माता प्रेम पियास ॥ ३२४ ॥

परम निर्मल ब्रह्म ज्योति के साक्षात्कार होने पर आनन्द-जल की वर्षा बारह मास निरतर होती ही रहती है। उस ब्रह्म-साक्षात्कार जन्य आनन्द रस मे जो प्राणी रत होता है, वह मस्त हो जाता है फिर भी प्रेम पूर्वक उस रस की प्यास बनी ही रहती है।

रोम रोम रस पीजिये, एती रसना होइ ।
दादू प्यासा प्रेम का, यों बिन तृप्त न होइ ॥ ३२५ ॥

हमारे शरीर पर जितने रोम है, उतनी ही रसना बन जाये तो हम रोम-रोम से भजन रस का पान कर सकेगे। प्रभु प्रेम के प्यासे की तृप्ति उक्त प्रकार ही हो सकती है।

तन गृह छाडै लाज पति[1], जब रस माता होइ।
जब लग दादू सावधान, कदे न छाडै कोइ ॥ ३२६ ॥

जब तक सासारिक व्यवहार चातुर्य मे सावधान है तब तक देहाध्यास रूप तन, लज्जा और कुल परपरागत मर्यादा रूप घर की लज्जा[1] कभी भी कोई नहीं छोड सकता किन्तु जब भगवद् भजनानन्द-रस मे मस्त हो जाता है, तब उक्त तन और घर की लज्जा सहज ही छोड़ देता है।

आँगण एक कलाल के, मतवाला रस मांहिं।
दादू देख्या नैन भर, ताके दुविधा नांहिं ॥ ३२७ ॥

जैसे कलाल के घर के चौक मे मदिरा पान करके मतवाले हो जाते है, तब नेत्र भरके देखने पर भी उन्हे अपने पराये का भेद नही भासता, वैसे ही ब्रह्म के समाधि-ऑगन मे जाकर ब्रह्म चिन्तन-रस पान से मस्त हुआ ज्ञान-नेत्रो से तृप्त होकर जब ब्रह्म को देखता है, तब उसे ब्रह्म अपने से अभिन्न एक ही भासता है, उसके हृदय मे द्वैत रूप दुविधा नही रहती ॥

पीवत चेतन जब लगै, तब लग लेवै आइ ।
जब माता दादू प्रेम रस, तब काहे को जाइ ॥ ३२८ ॥

जैसे मद्यपी जब तक सचेत रहता है तब तक कलाल के पास आकर मद्य लेता रहता है और जब मद्य मे मस्त हो जाता है तब मद्य लाने को कब जाता है ? वह तो वही गिर पड़ता है। वैसे ही जब तक साधक को सत्य असत्य की भिन्न प्रतीति होती है तब तक असत्य ससार को त्याग कर सत्य ब्रह्म की ओर आता है तथा उसी का चिन्तन-रस प्रेमपूर्वक पान करता है और पीते-पीते जब प्रेम-रस मे मस्त हो जाता है तब उसी सत्य ब्रह्म मे स्थित हो जाता है, फिर उसकी वृत्ति असत्य मे किसलिये जायेगी ? वृत्ति परमसुख की प्राप्ति के लिए धावन करती है सो प्राप्त हो गया। अब वृत्ति के जाने का कोई कारण ही नहीं रहा।

दादू अतर आतमा, पीवै हरि जल नीर।
सौंज सकल ले उद्धरै, निर्मल होइ शरीर ॥ ३२९ ॥

जब अन्तर्मुख बुद्धि, हरिरूप जल प्रवाह का ज्ञान-नीर पान करती है, तब मन इन्द्रियादिक रूप सब सामग्री को ससार दशा से ऊपर उठाकर अपने सहित उन सबका उद्धार कर लेती है अर्थात् प्रभु मे स्थिर कर देती है तब दोनो शरीर निर्मल हो जाते है।

दादू मीठा राम रस, एक घूंट कर जाऊँ।
पुणग[1] न पीछे को रहै, सब हिरदै माहिं समाऊँ ॥ ३३० ॥

परा भक्ति की अवस्था मे ऐसी उत्कठा रहती है—मै राम के ध्यान रूप मधुर-रस की एक ही घूट कर जाऊ, पीछे को एक लघु बिन्दु[1] भी न रहे, सपूर्ण मेरे हृदय मे ही समा जाय, राम और मै दोनो एक रूप ही हो जायँ।

चिड़ी चचु भर ले गई, नीर निघट नहिं जाइ।
ऐसा बासण ना किया, सब दरिया माहि समाइ ॥ ३३१ ॥

समुद्र से चिडिया अपनी चचु जल से भर ले जाती है तब समुद्र का जल घट नही जाता और ऐसा पात्र भी सृष्टि-कर्त्ता ने नहीं रचा है, जिसमे सब समुद्र समा जाय, इसी प्रकार ब्रह्म अगाध है। उसका चिन्तन करके कबीर तृप्त हो गये, किन्तु ब्रह्म ज्यो का त्यो है।

अकबर ने—"तन मटकी मन मही, प्राण विलोवणहार। तत्त कबीरा ले गया, छाछ पिये ससार।" कहा, तब यह साखी कही थी। प्रसग कथा—दृ सु सि त ११।११८ मे देखो।

दादू अमली राम का, रस बिन रह्या न जाइ।
पलक एक पावै नहीं, तो तबहि तलफ मर जाइ ॥ ३३२ ॥

जो राम भजन-रस का सच्चा व्यसनी है, उससे भजन-रस बिना नही रहा जाता। यदि एक क्षण भी भजन-रस से वचित रहे तो जल बिना मच्छी के समान तड़फ-तड़फ कर तत्काल ही मर जाता है।

दादू राता राम का, पीवै प्रेम अघाइ।
मतवाला दीदार का, माँगै मुक्ति बलाइ[1] ॥ ३३३ ॥

जो राम-भक्त राम मे रत हो राम-प्रेम-रस को तृप्त होकर पीता है और राम के साक्षात्कार-जन्य आनन्द मे मस्त रहता है, वह सालोक्यादि मुक्तियो को दु ख[1] रूप समझता है और कैवल्य रूप आप ही हो जाता है। अत वह मुक्ति नही मागता।

उज्ज्वल भॅवरा हरि कमल, रस रुचि बारह मास ।
पीवै निर्मल वासना, सो दादू निज दास ॥ ३३४ ॥

जैसे भ्रमर रुचि पूर्वक कमल के वास-रस का पान करता है, वैसे ही जिसका शुद्ध मन हरि-दर्शन करके भी बारह मास ही प्रेमपूर्वक हरि की निर्मल भक्ति करता है, वही भगवान् का निजी भक्त कहलाता है।

नैनहुँ सौं रस पीजिये, दादू सुरति सहेत ।
तन मन मंगल होत है, हरि सौं लागा हेत ॥ ३३५ ॥

जब हरि से प्रेम लगता है तब शरीर से सत-सेवादि, और मन से भगवद्-ध्यानादि मागलिक कार्य ही होते है। अत. ब्रह्माकार वृत्ति रखते हुये विचार-नेत्रो से साक्षात्कार-रस पान करना चाहिए।

पीवै पिलावै राम रस, माता है हुसियार ।
दादू रस पीवै घणां, औरों को उपकार ॥ ३३६ ॥

पराभक्ति मे भक्त स्वय भजनानन्द-रस पान करके मस्त रहते हुये भी अन्य साधको को पान कराने मे सावधान रहता है। इस अवस्था मे आप भी अत्यधिक रस पान करता है और उपदेश द्वारा अन्यो का भी उपकार करता है।

नाना विधि पिया राम रस, केती भॉति अनेक ।
दादू बहुत विवेक सौं, आतम अविगत एक ॥ ३३७ ॥

सतो ने भक्ति, योग, वैराग्य, ज्ञानादि नाना साधन तथा हस, मीन, चातक, भ्रमरादि नाना रूपको द्वारा अनेक प्रकार से अत्यधिक राम-भजनानन्द-रस पान किया है और अत्यधिक विवेक, विचार द्वारा आत्मा को ब्रह्म मे लय करके बह्म-स्वरूप ही हो गये है।

परिचय का पय प्रेम रस, जे कोई पीवै ।
मतिवाला माता रहै, यों दादू जीवै ॥ ३३८ ॥

३३८-३४३ मे परिचय रूप परा-भक्ति का महत्त्व बता रहे है—जैसे स्तनो से दुग्ध पान किया हुआ अधिक लाभप्रद होता है, वैसे ही पराभक्ति मे साक्षात्कार होने पर जो कोई प्रभु-प्रेम-रस पान करता है, तो वह बुद्धिमान् भक्त परमानन्द मे मस्त रहता है। ज्ञानी भक्त इसी प्रकार जीवन्मुक्त होकर जीवित रहते है।

परिचय का पय प्रेम रस, पीवै हित चित लाइ ।
मनसा वाचा कर्मना, दादू काल न खाइ ॥ ३३९ ॥

साक्षात्कार रूप दुग्ध का परम प्रेम-रस स्नेह पूर्वक चित्त लगाकर मन, वचन और शारीरिक क्रियाओ द्वारा पान करते है अर्थात् मन से अभेद चिन्तन, वचन से जप, सकीर्तन, शरीर से सत सेवा करते है, उन्हे काम-क्रोधादि रूप काल नही खा सकता।

परिचय पीवै राम रस, युग युग सुस्थिर होइ।
दादू अविचल आतमा, काल न लागै कोइ ॥ ३४० ॥

जो पराभक्ति मे साक्षात्कार होने पर राम भक्ति-रस का पान करता है, वह निरतर राम मे ही सम्यक् स्थिर रहता है और निजात्मा को अविचल समझता है। इसीलिए उसके काल-कर्म का बाण नही लगता अर्थात् देह त्याग कर वह ब्रह्म मे ही लय होता है।

परिचय पीवै राम रस, सो अविनाशी अग ।
काल मीच लागै नही, दादू साई सग ॥ ३४१ ॥

जो राम का साक्षात्कार-रस पान करता है, वह अविनाशी राम का ही स्वरूप हो जाता है। ब्रह्म के साथ एक रूप होकर रहने से उस पर समय और मृत्यु का दाव नही लगता अर्थात् वह निजात्मा को शरीर से भिन्न और काल तथा मृत्यु से परे ही समझता है।

परिचय पीवै राम रस, सुख मे रहै समाइ।
मनसा वाचा कर्मना, दादू काल न खाइ ॥ ३४२ ॥

जो अभेदानन्द रूप राम-रस पान करता है, वह मन, वचन और शरीर से ब्रह्मानन्द मे ही निमग्न रहता है, उसे अभेद रूप काल नही खाता।

परिचय पीवै राम रस, राता सिरजनहार।
दादू कुछ व्यापै नहीं, ते छूटे संसार ॥ ३४३ ॥

जो परब्रह्म राम के साक्षात्कार रूप-रस-पान मे अनुरक्त है, उन पर काम-क्रोधादिक आसुरी गुण कुछ भी असर नहीं कर सकते, वे सदा के लिए ससार से मुक्त हो जाते है।

अमृत भोजन राम रस, काहे न विलसै खाइ।
काल विचारा क्या करै, रम रम राम समाइ ॥ ३४४ ॥

राम-रस रूप भोजन करने की प्रेरणा कर रहे है—साधक! राम-रस रूप अमृत भोजन खाकर क्यो नही आनन्द लेता अर्थात् राम का साक्षात्कार करके रामाकार वृत्ति क्यों नही रखता? निरतर चिन्तन द्वारा जब तेरे रोम-रोम मे राम समा जायगा, तब बेचारा काल तो तेरे अधीन हो जायगा, वह तेरी क्या हानि कर सकेगा ?

दादू जीव अजा[1] बिघ[2] काल है, छेली[1] जाया सोइ।
जब कुछ वश नहिं काल का, तब मीनी[3] का मुख होइ॥ ३४५॥

जीवात्मा रूप बकरी[1] है, उसने अपने प्रमाद-पूर्ण कर्मों के द्वारा काल रूप व्याघ्र[2] को जन्म दिया है किन्तु जीवात्मा जब साधना द्वारा अज्ञान नष्ट करके स्वरूप का साक्षात्कार कर लेता है तब इस पर काल का कुछ भी वश नही चलता। जैसे कुत्ते को देखकर बिल्ली[3] का मुख भयभीत होता है, वैसे ही काल इसको ब्रह्मरूप देखकर भयभीत होता है।

मन लवरू के पंख हैं, उनमनि चढै आकाश।
पगरहि[1] पूरे साच के, रोप रह्या हरि पास॥ ३४६ ॥

मन लौरू पक्षी है, उन्मनी-मुद्रा पक्ष है, उन्मनी-मुद्रा द्वारा समाधि रूप आकाश मे चढता है, तब उसके पूर्ण सत्य-निष्ठा रूप पैर[1] ही रह जाते है। उनको दृढ़ता से वहा ही रोपकर हरि के पास आनद मे निमग्न रहता है।

तन मन वृक्ष बबूल का, कांटे लागे शूल[1]।
दादू माखण ह्वै गया, काहू का इस्थूल[2] ॥ ३४७ ॥

मन, बुद्धि, इन्द्रियादि शरीर ही बबूल का वृक्ष है, बुरे सकल्प, बुरे विचार, सशय और निषिद्ध-विषय-सेवन ही इसके दुखद[1] कटक लगे है, किन्तु किसी साधक के साधन द्वारा स्थूल[2] शरीर मे रहने वाले उक्त कटक भी शुभ सकल्प, ब्रह्म विचार, असशय और विहित विषय-सेवन रूप मक्खन भाव को प्राप्त हो जाते है और जैसे मक्खन सुखद होता है, वैसे ही उक्त प्रकार से परिवर्तित मन प्रवृत्तियां ब्रह्मानन्द प्राप्ति का सुगम व सुखद साधन बन जाती है।

दादू संषा[1] शब्द है, सुनहां[2] संशा मारि।
मन मींडक सूं मारिये, शंका सर्प निवारि॥ ३४८ ॥

सद्गुरु शब्द रूप शशक[1] आत्म वस्तु विषयक सशय-श्वान[2] को मारता है। आत्म ज्ञान को प्राप्त हुआ मन रूप मेढक, शका-सर्प को मार कर फेक देता है।

दादू गांझी[1] ज्ञान है, भंजन है सब लोक।
राम दूध सब भर रह्या, ऐसा अमृत पोष॥ ३४९ ॥

सत्सग रूप विशाल देश मे, ब्रह्म ज्ञान रूप भेड[1] का निरजन राम रूप दुग्ध ज्यो-ज्यो निकलता है अर्थात् स्वस्वरूप का बोध होता है, त्यो-त्यो तुच्छ भाव सूखते जाते है और सत्सग मे ऐसा ज्ञात होता है कि वह राम रूप दुग्ध चौदह भुवनो मे परिपूर्ण भरा है तथा उसका भजन रूप पान करने से वह परमार्थ पुष्टि द्वारा मुक्ति रूप अमृत भाव से प्रदान करता है।

दादू झूठा जीव है, गढिया[1] गोविन्द बैन।
मनसा मूंगी[2] पंखि सौं, सूरज सरीखे नैन॥ ३५० ॥

गर्भ मे गोविन्द के आगे- "मुझे बाहर निकालो, आप का भजन करूँगा" यह वचन कहता है। इसको पूर्ण न करने से जीव झूठा हो जाता है, किन्तु सत्सग के द्वारा फिर उक्त वचन को सत्य करने के लिए दृढ प्रतिज्ञ होता है और दृढ[१] भक्त के समान व्यवहार करता है। तब इसकी बुद्धि वृत्तिरूप चीटी[२] के विवेक रूप पख आते है उनसे असत्य को त्याग कर सत्य की ओर उडती है और उसके सूर्य के समान अज्ञानाधकार को नष्ट करने वाले ज्ञान-नेत्र खुल जाते है। प्रसग—किसी साधक ने नामदेवजी का निम्नलिखित पद सुनाकर इसका भावार्थ समझाने की प्रार्थना की थी, इसको समझाने के लिए ही ३४५ से ३५० की साखी कही गई थी। नामदेवजी का पद—

लटके[३] न बोलूं बाप, व्रत मान[२] गाढ़ो,[१]
कोल्हा येवड़ा[४] मोतीड़ा, मैं मझे डोले[५] देखीला[६] ॥ टेक ॥
छेली[७] बैली[८] (ब्याली[८]) बाघ जैला[९], मांझरिया[१०] (माजरि) भय टूडै।
उड़त पंखि मै लवरू पेख्या, नरली[११] जे[१२] ह्वै टांडै ॥ १ ॥
बाबलिया[१३] चै षोटे[१४], मांखणियां[१५] चे पोटे[१६]।
संखे[१७] सुनहां[१८] मारीला[१९] तहां मींडक अभिला[२०] लोटे ॥ २ ॥
अम्हे[२१] जु गैला[२२] ब्राट[२३] देश, तहां गांझी[२४] दूध कैला[२५]।
स्रव आटे[२७] गांझीला[२६] तहा चौदह राजन[२८] भरिला ॥ ३ ॥
लटक्या[२९] गइया[३०] गढिया[३१] झोलै[३२], गढिया[३३] येवडे[३४] रोले[३५]।
उड़त पंखि मैं मूंगी[३६] पेखी, वाटी[३७] जे है डोले[३८] ॥ ४ ॥
विष्णु दास नामदेव इमि प्रणवै, येछै जीव ची[४०] उकती।
लटके आछे सांगीला,[३९] ता छै मोक्ष न मुकती ॥ ५ ॥

टेक का पूरा अर्थ और शेष पाच पदो का शब्दार्थ देते है, भावार्थ ३४५-३५० मे दिया है। हे बाप ! मेरा यह दृढ़[१] व्रत समझो[२] कि मै मिथ्या[३] नहीं बोलता, मैंने मेरे भीतर के नेत्रों[५] से कद्दू के बराबर[४] ध्येय ब्रह्म रूप मोती देखा[६] है॥ टेक ॥ बकरी[७] ब्याई[८] है, उससे बाघ उत्पन्न हुआ[९] है, वह बिल्ली[१०] के समान भयभीत होकर बोल रहा है (इतने का भावार्थ ३४५ मे है)। मैंने लवरू पक्षी को उडते हुये देखा है, वह ऊँट[११] के समान[१२] बोल रहा है (इतने का भावार्थ ३४६ मे है)। बबूल[१३] वृक्ष की शाखा[१४] पर मक्खन[१५] की पोटलियां[१६] लगी है (इतने का भावार्थ ३४७ मे है)। शशक[१७] ने श्वान[१८] को मारा[१९] है। जहा सर्प है, वहा ही उसे मारने की अभिलाषा[२०] से मेढक लौट रहा है। (इतने का भावार्थ ३४८ मे है)। हम[२१] विशाल[२३] देश मे गये[२२], वहा भेड़का[२४] दूध सग्रह किया[२५], उस भेड़ का दूध स्रवते २ विपत्ति प्रद तुच्छ[२६] भाव सूखते है[२७] हैं। उस भेड़ के दूध से चौदह बडे-बड़े मटके[२८] भरे है। (इतने का भावार्थ ३४९ मे है)। झूठा[२९] हो गया[३०] था किन्तु अब दृढ़[३१] हुआ[३२] है और दृढ़[३३] के समान[३४] चलता[३५] है। (इतने का भावार्थ ३५० के पूर्वार्ध मे है)। मैंने पक्षी के समान उड़ते हुये चींटी[३६] देखी है, उसके नेत्र[३८] कटोरे[३७] के आकार के सूर्य सम प्रकाशमान है। (इतने का भावार्थ ३५० के उत्तरार्ध मे है)। विष्णु के दास नामदेव ने भगवान् को प्रणाम करके यह अपने मन की[४०] विचित्र बात कही है। यह मिथ्या है, ऐसा कहता[३९] है उसे पापो से छुटकारा होकर मुक्ति प्राप्त नहीं होती।

सांई दीया दत घणां, तिसका वार न पार।
दादू पाया राम धन, भाव भक्ति दीदार ॥ ३५१ ॥

इति परिचय का अग समाप्त ॥ ४ ॥ सा ७९८ ॥

परमात्मा ने हमे अपना अनुग्रह रूप दान अत्यधिक मात्रा मे दिया है। उसका वार पार तो हमे दीखता ही नही। वह तो अपार है। उसी के प्रभाव से हमे भाव, भक्ति और परब्रह्म स्वरूप का साक्षात्कार रूप राम-धन प्राप्त हुआ है।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका परिचय का अग समाप्त ॥ ४ ॥

अथ जरणा का अंग ५

प्राप्त वस्तु को पचाने का नाम 'जरणा' है। साक्षात्कार का अनुभव पचना चाहिए, यह प्रसग आने पर जरणा का अंग कहने मे प्रवृत्त हुये मगल कर रहे है—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत:।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक जरणा युक्त हो ससार से पार जाकर परब्रह्म को प्राप्त होते है, उन निरजन राम, सद्गुरु और सर्व सतो को हम प्रणाम करते है।

को साधू राखै राम धन, गुरु बाइक[1] वचन विचार ।
गहिला दादू क्यों रहै, मरकत हाथ गॅवार ॥ २ ॥

२ मे जरणा का अधिकारी बता रहे है—कोई विरला साधु पुरुष ईश्वर दूत-गुरु वचनों[1] के विचार से प्राप्त राम-भजन-धन को सचय करके गुप्त रूप से रख सकता है। जैसे मूर्ख के हाथ मे मरकत-मणि आने पर भी वह उसे नही रख सकता, अल्प मूल्य मे ही बेच देता है, वैसे ही बुद्धिहीन व्यक्ति राम-भजन-धन को सिद्धि तथा प्रतिष्ठा-रूप अल्प-मूल्य मे ही खो देता है, पचाकर मुक्ति रूप महान् मूल्य प्राप्त नही कर सकता।

दादू मन ही मांहीं समझ कर, मन ही मांहिं समाइ।
मन ही मांहीं राखिये, बाहर कहि न जनाइ ॥ ३ ॥

३-६ मे जरणा करने की प्रेरणा कर रहे है—साधको! विचार पूर्वक भगवत् तत्त्व को मन मे ही समझ कर मनोनिग्रह द्वारा बुद्धि-वृत्ति को उसमे ही लीन करो और उससे होने वाले अनुभव को भी मन मे ही रक्खो, वाणी द्वारा मन से बाहर निकाल कर अनधिकारियो को मत कहो।

दादू समझ समाइ रहु, बाहर कहि न जनाइ ।
दादू अद्भुत देखिया, तहँ ना को आवै जाइ ॥ ४ ॥

सद्गुरु के उपदेश द्वारा ब्रह्म तत्त्व को समझ कर उसी मे अपनी वृत्ति लीन करके स्थिर रहो। बहिर्मुख होकर, उसका विचित्र अनुभव वाणी द्वारा कह कर अनधिकारियो को मत बताओ।

वह निजात्म स्वरूप अति अद्भुत देखने मे आता है। उस स्वरूप स्थिति देश मे अज्ञानी कोई भी नही आता और उसे छोड़कर कोई भी ज्ञानी ससार मे नहीं जाता।

कहि कहि क्या दिखलाइये, सांई सब जानै।
दादू परगट का कहै, कुछ समझ सयानै ॥ ५ ॥

हे चतुर साधक ! तेरे कायिक, वाचिक और मानसिक शुभाशुभ सभी कार्यों को तथा तेरी सभी परिस्थितियो को ईश्वर तो तेरे हृदय मे स्थित होने से प्रत्यक्ष रूप से जानते ही है, उन्हे तो कहना ही क्या है ? और लोगो को बारबार कह-कह कर दिखाने से लाभ ही क्या है ? कुछ समझ से काम ले, लोगो को बारबार कहने से अपने कथन किये हुए सुकृत का नाश होता है। अत गुप्त ही रखना चाहिए।

दादू मन ही माहीं ऊपजे, मन ही माहिं समाइ।
मन ही मांहीं राखिये, बाहर कहि न जनाइ ॥ ६ ॥

मन मे ही ब्रह्म-ज्ञान उत्पन्न होता है, उसे मन मे ही स्थिर करो। ज्ञान से प्राप्त ब्रह्मानन्द को भी मन मे ही गुप्त रखो, बाह्य वृत्ति मानवो को कहकर अपनी योग्यता मत बताओ।

लै विचार लागा रहै, दादू जरता जाइ।
कबहूं पेट न आफरै, भावे तेता खाइ ॥ ७ ॥

७ मे जरणा करने की पद्धति बता रहे है—जैसे भूख के अनुसार पथ्य भोजन करने से कभी भी पेट नही आफरता, सब पच जाता है, वैसे ही भजनादि साधन जन्य लाभ, बहिर्मुख मनुष्यो को कहने से हानि होती है और गुप्त रखने से सफलता मिलती है, ऐसे विचार द्वारा नम्रतापूर्वक वृत्ति भजन मे ही लगाये रक्खे तो भजनानन्द पच जायगा। कभी भी अहकार द्वारा वर, शापादि से नष्ट न हो सकेगा।

जनि[1] खोवे दादू रामधन, हृदय राखि जनि जाइ।
रतन जतन कर राखिये, चिन्तामणि चित लाइ ॥ ८ ॥

८ मे भजन और साक्षात्कार की रक्षार्थ प्रेरणा कर रहे है—साधको ! सचित किये हुये राम-भजन-धन को वर, शापादि द्वारा मत[1] खोओ और जरणा द्वारा हृदय मे गुप्त रक्खो ताकि जा न सके। राम-भजन-धन से प्राप्त राम रूप रत्न को अन्तर्मुखता-यत्न से ज्ञान नेत्रो के सामने ही रक्खो अर्थात् निरतर साक्षात्कार करते रहो। यह राम चिन्तामणि रूप है, इसी मे चित्त लगाओ, तुम्हे परमानन्द प्राप्त होगा।

सोई सेवक सब जरै, जेती उपजै आइ।
कह न जनावै और को, दादू माहि समाइ ॥ ९ ॥

९-१७ मे जरणा द्वारा ही सेवक उत्तम होता है, यह कह रहे है—जितनी भी सिद्धि आदि शक्तियाँ हृदय मे प्रकट हो, उन सबको अपने भीतर ही गुप्त रक्खे, अन्य अनधिकारियो को कह कर अपनी शक्ति का परिचय न दे, वही सच्चा सेवक कहा जाता है।

सोई सेवक सब जरै, जेता रस पीया।
दादू गूझ गंभीर का, प्रकाश न कीया॥ १०॥

जितना भी भगवद् भजन-रस-पान किया, उसे गुप्त ही रक्खा हो और भजन द्वारा जो भी गूढ गभीर अनुभव हुआ हो, उसका भी अनधिकारियो के आगे कथन नही किया हो, वही सच्चा सेवक है।

सोई सेवक सब जरै, जे अलख लखावा।
दादू राखै राम धन, जेता कुछ पावा॥ ११॥

जो भी कुछ राम भजन-धन प्राप्त हुआ है, उसे गुप्त ही रक्खे और मन इन्द्रियो के अविषय ब्रह्म का साक्षात्कार होने पर जितने भी विचित्र अनुभव, शक्ति आदि प्राप्त होते है, उन सबको भी रख सके, वही सुसेवक है।

सोई सेवक सब जरै, प्रेम रस खेला।
दादू सो सुख कस कहै, जहँ आप अकेला॥ १२॥

जो भक्त भगवत् प्रेम-रस मे निमग्न होकर भगवान् के साथ अनन्य भाव रूप खेल खेलता है, वह सभी विशेषताओ को गुप्त रख सकता है और जो ब्रह्म साक्षात्कार का आनन्द है, वह तो कह ही कैसे सकता है ? उस अवस्था मे तो स्वय अद्वैत रूप ही रहता है, कहने सुनने के साधन इन्द्रियादि से अतीत होने से वह नही कहा जा सकता।

सोई सेवक सब जरै, जेता घट परकास।
दादू सेवक सब लखै, कहि न जनावै दास॥ १३॥

अन्त करण मे जितना भी ब्रह्म ज्ञान-प्रकाश प्रकट होता है, उस सबको ही अन्त करण मे स्थिर रख सके, वही श्रेष्ठ सेवक कहलाता है। सेवक सब प्रकार से परब्रह्म को ही देखता है किन्तु अपनी अभेद स्थिति अनधिकारियो को कह कर नही बताता। उनके आगे तो भगवत् का दास ही बना रहता है।

अजर जरै रस ना झरै, घट मांहिं समावै।
दादू सेवक सो भला, जे कहि न जनावै॥ १४॥

जो सर्व साधारण से न पच सके, ऐसे क्रोध, लोभादि आसुर गुणो को पचावे और क्षमा, सन्तोषादि दैवी गुण रूप रस को अन्त करण के भीतर ही रक्खे, बाहर नही झरने दे अर्थात् अन्त करण से हटने नही दे और जो भी अपने दैवीगुण है, उनको अपने मुख से कह कर दूसरो को न बतावे, वही सेवक अच्छा माना जाता है।

अजर जरै रस ना झरै, घट अपना भर लेइ।
दादू सेवक सो भला, जारै जाण न देइ॥ १५॥

सर्व साधारण से नही पच सके, ऐसी वीर्य धातु को जो साधन शक्ति से पचाले, अधो मार्ग

से नही झरने दे, ऊर्ध्व रेता होकर वीर्य से अपना शरीर पूर्ण करे, अमोघ वीर्यवान् होकर भी अपनी शक्तियो को धैर्य द्वारा पचाले, दुरुपयोग न करे, वही सेवक अच्छा माना जाता है।

अजर जरै रस ना झरै, जेता सब पीवै।
दादू सेवक सो भला, राखै रस जीवै ॥ १६ ॥

सर्व साधारण जिसको गुप्त न रख सके, ऐसे प्रभु प्रेम को गुप्त रक्खे, हृदय से किंचित भी दूर न होने दे और सत्सग मे सन्तो द्वारा जितना भी प्रभु प्रेम का उपदेश मिले सो सब धारण करे तथा प्रभु प्रेम-रस को हृदय मे रख करके ही जीवित रहे। प्रभु-प्रेम बिना न जी सके, वही अच्छा सेवक है।

अजर जरै रस ना झरै, पीवत थाके नाहिं।
दादू सेवक सो भला, भर राखै घट मांहि ॥ १७ ॥

सर्व साधारण जिसको धारण न कर सके, ऐसे ब्रह्म ज्ञान को धारण करे, ब्रह्म-ज्ञान-रस को हृदय से लवमात्र भी दूर न होने दे और ज्ञानी सन्तो से ज्ञानामृत-रस के पान करने मे थके नहीं, ज्ञानोपदेश श्रवण करता ही रहे। परिपूर्ण रूप से अन्त करण मे अद्वैत भावना रक्खे, वही सेवक अच्छा माना जाता है।

साधु महिमा

जरणा जोगी जुग जुग जीवै, झरणा मर मर जाइ।
दादू जोगी गुरुमुखी, सहजैं रहै समाइ ॥ १८ ॥

१८-३० मे जरणा करने वालो की विशेषता बता रहे है—१ धन २ गुण ३ कर्म स्वभाव ४ प्रेम-रस ५ आनन्द ६ ब्रह्म-साक्षात्कार, इन ६ प्रकार की जो जरणा करता है वह योगी ससार से मुक्त होकर ब्रह्म रूप से युग-युग प्रति जीवित रहता है और जो उक्त ६ प्रकार जरणा नहीं कर सकता, वह बारम्बार मृत्यु को प्राप्त होकर नाना योनियो मे जाता है। जो योगी गुरुमुखी होता है, वह तो अनायास ही परब्रह्म मे एक होकर ही रहता है।

जरणा जोगी जग रहै, झरणा परलै होइ।
दादू जोगी गुरुमुखी, सहज समाना सोइ ॥ १९ ॥

जरणा युक्त योगी अपनी साधना मे जाग्रत रहता है। अत वह गुरु आज्ञा मे सावधान रहने वाला योगी सहज स्वरूप ब्रह्म मे ही लय होता है और जरणा रहित कुयोगी की साधना प्रमाद के कारण नष्ट हो जाती है।

जरणा जोगी थिर रहै, झरणा घट फूटै।
दादू जोगी गुरुमुखी, काल तैं छूटै ॥ २० ॥

जरणावान् योगी अपने भजनादि साधन मे स्थिर रहता है। इसी कारण वह गुरु आज्ञा मे चलने वाला योगी काम-क्रोधादि रूप काल की फाँसी से मुक्त हो जाता है और जरणा रहित कुयोगी का अन्त करण घट काम-क्रोधादि से छिन्न-भिन्न होता रहता है।

जरणा जोगी जगपती, अविनाशी अवधूत।
दादू जोगी गुरुमुखी, निरंजन का पूत ॥ २१ ॥

१९ मे लिखित ६ प्रकार की जरणा-युक्त मन-इन्द्रियो को जीतने वाला अवधूत योगी अविनाशी जगतपति ईश्वर के समान ही पूज्य हो जाता है, फिर गुरु आज्ञा मे दृढ रहने के कारण वह योगी निरजन ब्रह्म का पूत अर्थात् स्वरूप हो जाता है।

जरै सु नाथ निरंजन बाबा, जरै सु अलख अभेव।
जरै सु जोगी सब की जीवन, जरै सु जग में देव ॥ २२ ॥

सम्यक् रीति से सब प्रकार की जरणा तो विश्व का आधार और स्वामी निरजन देव ही कर सकता है किन्तु जो ब्रह्मज्ञान को अच्छी प्रकार धारण करता है, वह भी मन इन्द्रियो के अविषय ब्रह्म मे अभिन्न हो जाता है। जो योगी पूर्ण क्षमाशील होता है वह सभी का जीवन रूप अर्थात् प्रिय होता है। जो अपने किये हुये पुण्य कर्मों को अच्छी प्रकार गुप्त रखता है, वही ससार मे देव भाव को प्राप्त होता है।

जरै सु आप उपावनहारा, जरै सु जगपति सांईं।
जरै सु अलख अनूप है, जरै सु मरणा नांहीं ॥ २३ ॥

जो गुरुजनो से प्राप्त ज्ञान को भली प्रकार धारण करता है, वह स्वय दूसरो के हृदय मे ज्ञान उत्पन्न करने वाला हो जाता है। जो अपने किये हुये भगवद् भजन को गुप्त रखता है अर्थात् सिद्धि आदि के लिए खर्च नही करता, वह जगतपति ईश्वर को प्राप्त हो जाता है। जो अभेद भावना को भली प्रकार धारण करता है, वह मन इन्द्रियो के अविषय उपमा रहित ब्रह्म को प्राप्त होता है। जो ब्रह्माकार वृत्ति को निरतर स्थिर रखता है, वह बारबार मृत्यु को प्राप्त नही होता।

जरै सु अविचल राम है, जरै सु अमर अलेख।
जरै सु अविगत आप है, जरै सु जग में एक ॥ २४ ॥

अविद्या रहित स्थिति को सम्यक् धारण करने वाला अविचल राम को प्राप्त होता है। अमर ब्रह्म मे वृत्ति के प्रवाह को भली प्रकार स्थिर करने वाला अमर और अपरिमित ब्रह्म को प्राप्त होता है। जो सब प्रकार की परिस्थितियो मे समता को स्थिर रखता है, वह स्वय मन-इन्द्रियो का अविषय ब्रह्म ही है। जो अद्वैत भावना को धारण करता है, वह जगत मे अद्वैत होकर ही रहता है।

जरै सु अविगत आप है, जरै सु अपरंपार।
जरै सु अगम अगाध है, जरै सु सिरजनहार ॥ २५ ॥

जो सब विश्व को अपने स्वरूप मे पचाता है, अर्थात् विवर्त्त समझता है, वह स्वय ब्रह्म है। जो देशकालादि सीमा को अपने स्वरूप मे पचाता है अर्थात् असीम समझता है, वह अपरपार है। जो निन्दा स्तुति को पचाता है अर्थात् दुखित और हर्षित नही होता, उसका विचार अगम

अगाध है। जो कटु वचनो को सहन कर लेता है, वह अपने मे वा अन्य मे शाति सृजन करने वाला होता है।

जरै सु निज निराकार है, जरै सु निज निरधार।
जरै सु निज निर्गुणमयी, जरै सु निज तत सार॥ २६॥

जो निज स्वरूप मे सर्व मायिक आकारो का अभाव समझता है, वह निराकार ही हो जाता है। जो निज स्वरूप को सभी मायिक आधारो से रहित समझता है, वह निराधार ब्रह्म को ही प्राप्त होता है। जो निज स्वरूप को मायिक गुणो से परे जानता है, वह निर्गुण ब्रह्म को ही प्राप्त होता है। जो निज स्वरूप को मायिक तत्त्वो से अतीत मानता है, वह विश्व के सार तत्त्व ब्रह्म-स्वरूप को प्राप्त होता है।

जरै सु पूरण ब्रह्म है, जरै सु पूरणहार।
जरै सु पूरण परम गुरु, जरै सु प्राण हमार॥ २७॥

जो अपने आत्मा को अपूर्ण नही समझता, वह पूर्ण ब्रह्म को प्राप्त होता है। जो विश्व के भरण-पोषण करने वाले की उपासना करके उसे पचाता है अर्थात् भोगो के लिये खर्च नही करता, वह पूर्णाहार ईश्वर को ही प्राप्त होता है। जो सपूर्ण आसुर-गुणो और अज्ञान को पचाता है अर्थात् नष्ट करता है, वह परम गुरु हो जाता है। जो हर्ष-शोकादि को पचाकर ब्राह्मी स्थिति मे रहता है, वह तो हमारा प्राण ही है अर्थात् प्राणवत् प्रिय है।

दादू जरै सु ज्योति स्वरूप है, जरै सु तेज अनन्त।
जरै सु झिलमिल नूर है, जरै सु पुज रहंत॥ २८॥

जो तन-मनादि के विकारो को पचाता है = नष्ट करता है, वह ज्योति-स्वरूप प्रभु को प्राप्त होता है। जो वृत्ति को आन्तर स्थिर रखता है वह अनन्त तेज-स्वरूप प्रभु का दर्शन करता है। जो वृत्ति को ध्येय ब्रह्म मे लय करता है, वह विचित्र झिलमिलाहट युक्त प्रभु-स्वरूप का दर्शन करता है। जो उक्त प्रभु के प्रकाश-स्वरूप को देखकर किसी अन्य को नही कहता, तब उस प्रकाश-पुज प्रभु मे ही लय होकर रहता है।

दादू जरै सु परम प्रकाश है, जरै सु परम उजास।
जरै सु परम उदीत है, जरै सु परम विलास॥ २९॥

क्षमाशील मे व्यावहारिक-ज्ञान अच्छा रहता है, क्षमाशील मे शास्त्र-ज्ञान सम्यक् रहता है। क्षमाशील मे आत्म-ज्ञान भली प्रकार उदय होकर स्थिर रहता है। क्षमाशील को परमानन्द प्राप्त होता है।

दादू जरै सु परम पगार है, जरै सु परम विकास।
जरै सु परम प्रभास है, जरै सु परम निवास॥ ३०॥

जरणा करने वाले मे दिव्य गुण-राशि रहती है। क्षमाशील का हृदय-कमल विकसित होता है। दृढ़ क्षमाशील मे ब्रह्म-ज्ञान प्रकट होता है और परब्रह्म मे निष्ठा रूप निवास होता है।

परमेश्वर की दयालुता

दादू एक बोल भूले हरि, सु कोई न जानै प्राण ।
अवगुण मन आणै नहीं, अरु सब जाणै हरि जाण ॥ ३१ ॥

३१-३२ मे प्रभु की दयालुता दिखा रहे हैं—दयालु हरि एक बात भूले हुये से रहते है। इस बात को भली प्रकार अज्ञानी प्राणी तो कोई भी नही जानता। वह क्या है ? प्राणियो के अवगुण अपने मन मे नही लाते=नही देखते। शका - जानते नही होगे ? उत्तर-ऐसा नही, वे हरि तो सर्वज्ञ है, सभी कुछ जानते है किन्तु अवगुणो को जानकर भी प्राणियो का भरण-पोषण करते है, इससे उनकी अति दयालुता रूप जरणा ही सूचित होती है।

दादू तुम जीवों के औगुण तजे, सु कारण कौन अगाध ?
मेरी जरणा देख कर, मति को सीखें साध ॥ ३२ ॥

हे अगाध प्रभो ! आपने जीवो के अवगुण देखना त्याग रखा है, इसमे क्या हेतु है, सो कृपा करके बताइये ? उत्तर—"मेरी क्षमाशील बुद्धि को देखकर मेरा अनुकरण करने वाले साधक-सत भी क्षमा करना सीख कर क्षमाशील बन सके, यही कारण है।"

धारणा

पवना पानी सब पिया, धरती अरु आकास ।
चंद सूर पावक मिले, पंचौं एकै ग्रास ॥ ३३ ॥

१ शब्द रूप आकाश को सहन शक्ति द्वारा, २ स्पर्श रूप वायु को अनासक्ति द्वारा ३ रूप-मय अग्नि को आत्म समता द्वारा, ४ विषय-रस-जल को वस्तु विचार द्वारा, ५ गध रूप पृथ्वी को अन्तर्मुख वृत्ति द्वारा पूर्ण रूप से पान किया=पचालिया=इन सब को जय कर लिया। इडा नाडी चन्द्रमा, और पिगला नाड़ी सूर्य, सुषुम्ना नाडी रूप अग्नि मे मिले=प्राणायाम द्वारा एक किया और पाचो ज्ञानेन्द्रियो को मन के साथ एक करके ग्रासवत् अन्तर्हदय मे स्थित आत्मा मे स्थिर किया।

चौदह तीनो लोक सब, ठूंगे[1] श्वासैं श्वासै ।
दादू साधू सब जरै, सद्गुरु के विश्वास ॥ ३४ ॥

इति जरणा का अग समाप्त ॥ ५ ॥ सा ८३२ ॥

चौदह भुवन और तीनो लोको को श्वास २ प्रति अपने स्वरूप मे विवर्त्त रूप से धारण[1] किये है। उक्त प्रकार के सद्गुरु के उपदेश मे दृढ़ विश्वास करके साधक सत-धन, गुण, प्रेम-रस, आनन्द, प्रकाश, परिचयादि सभी प्रकार की जरणा करते आये है।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका जरणा का अग समाप्त ॥ ५ ॥

अथ हैरान का अंग ६

धारण किये हुए तत्त्व की आश्चर्यता का प्रदर्शन करने के लिये हैरान का अग कथन करने मे प्रवृत्त हुये मगल कर रहे है—

दादू नमो नमो निरजनं, नमस्कार गुरुदेवत: ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक सासारिक भावनाओ से पार होकर, आश्चर्य स्वरूप ब्रह्म को प्राप्त होते है, उन निरजन राम, सद्गुरु और सर्व सन्तो को हम अनेक बार प्रणाम करते है।

रतन एक बहु पारिखू, सब मिल करैं विचार।
गूंगे गहिले बावरे, दादू वार न पार ॥ २ ॥

२-५ मे ब्रह्म की आश्चर्य-रूपता दिखा रहे है—अद्वैत ब्रह्म ही रत्न है, उसके परीक्षक साधक सन्त-जौहरी बहुत है और सभी मिल कर अपने २ विचारानुकूल उसकी परीक्षा के प्रयत्न मे लगते है किन्तु कुछ तो विचारते २ ब्रह्म तत्त्व का आश्चर्य रूप से अनुभव होने पर उसे वाणी का अविषय जानकर मौन हो जाते है, कुछ मस्त हो जाते है और कुछ पागल के समान विशेष रूप से उसका वर्णन करने मे लगते हे फिर भी उस आश्चर्य स्वरूप ब्रह्म का आदि अन्त नहीं जान पाते।

केते पारिख जौहरी, पडित ज्ञाता ध्यान।
जाण्या जाइ न जाणिये, का कह कथिये ज्ञान ॥ ३ ॥

धर्म शास्त्रादि मे निपुण पडित, दर्शन शास्त्रो के ज्ञाता और योग निष्ठ ध्यानी आदि कितने ही राम-रत्न के परीक्षक जोहरी है किन्तु वे उसे नही जान पाते। कारण, न वह कर्म का फल है, न तर्क गम्य है और न मन का विषय है। किसी इन्द्रियादि साधन द्वारा वह नही जानने मे आता। उसे तो आत्मानुभव द्वारा ही जानो। वह कैसा है ? इस प्रश्न पर पडितादि क्या कह कर उसके ज्ञान का कथन करेगे ? उन्हे कहना ही पड़ेगा कि-वह आश्चर्य रूप है।

केते पारिख पच मुये, कीमत कही न जाइ।
दादू सब हैरान हैं, गूंगे का गुड खाइ ॥ ४ ॥

राम-रत्न के परीक्षक वेदादि सद्ग्रन्थ, व्यास, वाल्मिकादि अनेक ऋषि कथन करते २ थक गये किन्तु उसका मूल्य माप यथार्थ रूप से किसी से भी नही कहा गया। जैसे गूगा गुड़ खाकर उसके मधुरत्व का अनुभव करके काँख बजा कर आनन्द को सूचित करता है किन्तु कह नही सकता, वैसे ही सब अनुभव करके आश्चर्य चकित हो आनन्दित तो होते है परन्तु श्रुति के समान 'नेति नेति' कह कर मौन हो जाते है। वह ऐसा है, इतना है, ऐसा नही कह सकते।

सब ही ज्ञानी पंडिता, सुर नर रहे उरझाइ।
दादू गति गोविन्द की, क्यों ही लखी न जाइ ॥ ५ ॥

ज्ञानी, पडित, सुर, नरादि सभी इस उलझन मे उलझते हुये है कि—ब्रह्म को प्रत्यक्ष रूप से दिखा दे किन्तु वेद वाणी जिसका अनुभव लक्षणा द्वारा कराती है, उस गोविन्द को इन्द्रियो द्वारा दिखाने की पद्धति किसी भी प्रकार देखने मे नही आती=आश्चर्य रूप उसको "यह है", ऐसे नहीं बताया जा सकता।

जैसा है तैसा नाम तुम्हारा, ज्यों है त्यों कह सांईं ।
तूं आपै जाणै आपको, तहँ मेरी गम नाहीं ॥ ६ ॥

६ मे आश्चर्य रूप ब्रह्म का यथार्थ रूप जानने की प्रार्थना कर रहे है—स्वामिन् ! जैसा अपार महिमा सम्पन्न आपका नाम है वैसा ही असीम आपका स्वरूप है। आप स्वय ही अपने वास्तविक स्वरूप को जानते है। उसमे मेरी बुद्धि की गति नही हो पाती। अत. जैसा आपका वास्तविक स्वरूप है, वैसा ही कृपा करके मुझे कहे=अनुभव करावे।

केते पारिख अंत न पावैं, अगम अगोचर मांहीं।
दादू कीमत कोइ न जानै, क्षीर नीर की नांई ॥ ७ ॥

७ मे आश्चर्य रूप ब्रह्म की अपारता कह रहे है—बुद्धि से परे मन इन्द्रियो का अविषय ब्रह्म, आत्म रूप से अन्त करण मे ही स्थित है और अनेक परीक्षक विद्वान् विचार भी करते है तो भी उसकी आदि-अन्त-अन्वेषण रूप कीमत को कोई भी नही जानता, इससे उसका अन्त नहीं पाते। अत उसके आदि-अन्त को जानने का विचार छोड कर जैसे दूध मे जल मिल जाता है, वैसे ही ज्ञान द्वारा उसमे मिल कर एक हो जाना चाहिये।

जीव ब्रह्म सेवा करै, ब्रह्म बराबर होइ।
दादू जानै ब्रह्म को, ब्रह्म सरीखा सोइ ॥ ८ ॥

८ मे ब्रह्म से अभेद होने की पद्धति बता रहे है—जीव ब्रह्म की उपासना करता है तब मल-विक्षेप दोष से रहित हो जाता है। ब्रह्म भी मलविक्षेप रहित है। अत मलविक्षेप रहितता मे दोनो सम हो जाते है और ज्ञान द्वारा अज्ञान दूर करके अपने आत्मा को ब्रह्मरूप जानता है तब वह ब्रह्मरूप ही हो जाता है।

वार पार को ना लहै, कीमत लेखा नांहिं।
दादू एकै नूर है, तेज पुंज सब मांहिं ॥ ९ ॥

९ मे ब्रह्म की व्यापकता दिखा रहे है—निराकार होने से ब्रह्म का आदि अन्त कोई भी नही जान सकता। उसके समान अन्य कोई भी नही है, इसलिए उसकी कीमत की गणना हो नही सकी। हा, वह त्रिविध भेद शून्य अद्वैत स्वरूप ब्रह्म अखिल विश्व मे ज्ञान-राशि रूप से व्यापक है।

पीव पिछान

हस्त पाँव नहिं शीश मुख, श्रवण नेत्र कहुँ केसा ।
दादू सब देखे सुनै, कहे गहे है ऐसा ॥ १० ॥

१०-२५ मे ब्रह्म की पहचान के विषय मे कह रहे है-निराकार होने से उसके-हाथ, पैर-सिर और मुख भी नहीं है। मुख न होने मे श्रवण, नेत्रो का होना तो कहा ही कैसे जा सकता है? किन्तु फिर भी वह भक्तो की भेट ग्रहण करता है, भक्तो के घर जाता है, सहस्र सिर वाला कहलाता है, भक्तो से वार्तालाप करता है, भक्तो की प्रार्थना सुनता है, सबके सपूर्ण शुभाशुभ कर्मो को देखता है। उस का ऐसा अद्भुत स्वरूप है।

पाया पाया सब कहें, केतक देहुँ दिखाइ ।
कीमत किनहूं ना कही, दादू रहु ल्यो लाइ ॥ ११ ॥

सिद्ध सत और भक्त जन सभी कहते है—"हमने उसे प्राप्त कर लिया और कितने ही ऐसा भी कहते है—"हम उसे दिखा सकते है" किन्तु उस ब्रह्म का मूल्य अर्थात् स्वरूप का पूर्ण रूप से किसी ने भी नहीं कथन किया है। अत उसके आदि अन्त को जानने का विचार छोडकर, उसके स्वरूप मे वृत्ति लगाकर उसी मे स्थिर रहो।

अपना भंजन भर लिया, उहाँ उता ही जाण ।
अपणी अपणी सब कहै, दादू विडद बखाण ॥ १२ ॥

११ मे कहा है "प्राप्त कर लिया" तब उसके स्वरूप का कथन क्यो नही हो सकता इसका उत्तर १२ मे दे रहे है-जैसे कोई व्यक्ति समुद्र से अपना घट भर लेता है तब निश्चय पूर्वक जानो, घट मे घट जितना ही जल आता हे और समुद्र पूर्ववत् ही भरा रहता है। वैसे ही साधक सत साधना द्वारा अपना अन्त करण ब्रह्म-ज्ञान से भर लेते हे। आत्मा को ब्रह्म रूप निश्चय करके तृप्त हो जाते है। फिर अपनी २ अनुभूति का यश, विशेष रूप से, व्याख्यानो द्वारा सब कहते है किन्तु इससे ब्रह्म की अपारता मे कुछ भी कमी नहीं आती।

पार न देवै आपना, गोप गूझ मन माहिं ।
दादू कोई ना लहै, केते आवै जाहि ॥ १३ ॥

वह ब्रह्म इन्द्रियो से गुप्त रह कर, मन मे भी अति गूढ भाव से रहता है। इसलिये मन इन्द्रियादि को तो अपना पार देता नही। कितने ही योगीजन उसका पार पाने के लिये समाधि मे जाते है और बिना पार पाये ही लौट आते है। अत उसका पार कोई नहीं पा सकता।

गूंगे का गुड़ का कहूं, मन जानत है खाइ ।
त्यो राम रसायन पीवता, सो सुख कह्या न जाइ ॥ १४ ॥

उस ब्रह्म के साक्षात्कार का अनुभव गूगे के गुड़ खाने के समान है। जैसे गूगा गुड़ का स्वाद मन मे तो जानता है पर कह नही सकता, वैसे ही राम-दर्शन-रसायन का पान करते हुये जो

आनन्द प्राप्त होता है, उसके विषय मे क्या कहूँ ? बडा आश्चर्य रूप है और मुख से तो वह सुख कहा नही जाता, अनुभव मे ही आता है।

दादू एक जीभ केता कहू, पूरण ब्रह्म अगाध।
वेद कतेबां मिल नहीं, थकित भये सब साध ॥ १५ ॥

वह पूर्ण ब्रह्म अगाध है। उसका पार वेद, पुराण, कुरानादि के द्वारा भी नही आता। अनेक जिह्वा वाले शेषजी तथा अन्यान्य अनेक सत भी उसके विषय मे कहते २ थक गये है, तब मै तो एक जिह्वा वाला हूँ, उसके विषय मे कितनाक कह सकता हूँ, कहने से उसका पार नही आ सकता।

दादू मेरा एक मुख, कीर्ति अनन्त अपार।
गुण केते परिमित नही, रहे विचार विचार ॥ १६ ॥

हे अनन्त ! आपकी कीर्ति का पार जब अनेक मुख वाले शेषजी भी कथन करके नही पा सके, तब मै अपने एक मुख से कैसे पा सकता हू ? और बुद्धि के द्वारा भी कितने ही विचारक बारम्बार विचार करके हार गये किन्तु आपके गुणो का अन्त नही पा सके। अतः आपकी कीर्ति और गुण अपार है।

सकल शिरोमणि नाम है, तूं है तैसा नाहि ।
दादू कोई ना लहै, केते आवैं जाहिं ॥ १७ ॥

भगवन् ! आपको प्राप्त करने के सभी साधनो मे आपका नाम ही सर्वश्रेष्ठ है किन्तु वह भी शब्द रूप होने से श्रवण इन्द्रिय का विषय होता है। आप इन्द्रियातीत है, अत वह आपके समान नही हो सकता। ससार मे महान् विचित्र शक्तियो से सम्पन्न कितने ही पुरुष अवतरित होते है और अपना कार्य करके लौट जाते है, किन्तु आपका पार कोई भी नही पाता।

दादू केते कह गये, अंत न आवै ओर।
हम हूँ कहते जात हैं, केते कहसी होर ॥ १८ ॥

आश्चर्य रूप ब्रह्म और उसके नामो की महिमा अनेक ऋषि, दार्शनिक, पौराणिक आदि कथन कर गये है, हम भी कहते जा रहे है और भविष्य मे भी कितने ही महानुभाव सन्त कहेगे किन्तु फिर भी न नाम महिमा का और न ब्रह्म का ही पार आयेगा।

दादू मैं का जानूं का कहूं, उस बलिये की बात।
क्या जानूं क्यों ही रहै, मो पै लख्या न जात ॥ १९ ॥

मै उस सत्ता रूप महान् शक्ति वाले ब्रह्म को बुद्धि से कैसे जान सकता हू ? वह तो बुद्धि ज्ञान से परे है और बिना जाने उसकी वार्ता पूर्णत कैसे कह सकता हू ? उसके विषय मे जो कुछ भी कहा जाता है वह अपूर्ण ही रहता है। क्या पता, वह कैसे रहता है, निराकार होने से मेरे नेत्रो द्वारा तो देखा नही जाता तथा अन्य इन्द्रियो से भी नही जाना जाता। केवल अभेदानुभव से भान होता है। अत ज्ञेय रूप से अवाच्य है।

दादू केते चल गये, थाके बहुत सुजान ।
बातो नाम न नीकले, दादू सब हैरान ॥ २० ॥

कितने ही सन्त तो इसका विचार करते २ अद्वैत बोध हो जाने से ससार को त्याग कर उसी मे जा मिले और बहुत से पडित-जन तर्कों द्वारा उसके निर्णय मे सलग्न होकर थक गये किन्तु पार न पा सके। बातो के द्वारा किसी का भी ऐसा नाम नही निकल सकता कि—"उसने ब्रह्म का पार पा लिया।" वह तो वाणी का अविषय है। अत उसके आदि अन्त के निर्णय करने मे ज्ञानी, ध्यानी, पडितादि सभी आश्चर्य चकित है, निर्णय नही कर पाते।

ना कहि दिट्ठा ना सुण्या, ना कोई आखणहार।
ना कोई उत्थो थी फिर्‍या, ना उर वार न पार॥ २१ ॥

नेत्र-इन्द्रियो का अविषय होने से वह ब्रह्म कही भी देखा नही गया। श्रवण-इन्द्रिय का अविषय होने से सुना भी नही गया। वाक्-इन्द्रिय का अविषय होने से उसके वास्तव स्वरूप का कथन करने वाला भी कोई नही है। न कोई उसके वास्तव स्वरूप को पाकर वहा से लौटा है, जो उससे पूछ कर निर्णय लिया जाय और न वर्तमान के ज्ञानियो ने अपने हृदय मे उसका आदि अन्त अनुभव किया है, अत सर्वथा आश्चर्य रूप और अवाच्य है।

नहीं मृतक नहि जीवता, नहि आवै नहि जाइ।
नहि सूता नहि जागता, नहिं भूखा नहि खाइ॥ २२ ॥

वह ब्रह्म पचीकृत स्थूल भूतो का कार्य स्थूल शरीर रूप नहीं है, इसलिये मृतक को जीवित नही कहा जा सकता। मरणा और जीवित रहना स्थूल शरीर का ही धर्म है। वह अपचीकृत सूक्ष्म भूतो का कार्य सूक्ष्म शरीर रूप नही है, इसलिये आता जाता नही। सूक्ष्म शरीर ही आता जाता है। स्थूल शरीर मे गमनागमन सूक्ष्म शरीर के बिना नहीं होते। वह इन्द्रिय अन्त करण रूप नही है, इसलिये उसे सोता हुआ वा जागता हुआ नहीं कह सकते। वह प्राण रूप नहीं है, अत न भूखा है और न खाता है।

न तहाँ चुप ना बोलणा, मै तैं नाही कोइ ।
दादू आपा पर नही, न तहाँ एक न दोइ ॥ २३ ॥

ब्रह्म वाक इन्द्रिय रूप नही है इससे उसमे मौन और बोलना नही बनता तथा उसमे द्वैत भाव नही होने से "मै-तू" आदि व्यवहार भी नही बनता। सब आत्माओ का आत्म स्वरूप होने से अपना और पराया नही कहा जा सकता। अद्वैत रूप होने से उसमे एक या दो का व्यवहार नहीं हो सकता। एक की अपेक्षा से दो और दो की अपेक्षा से एक कहना बनता है। उससे भिन्न कुछ भी नही है। यह दृश्य रूप ससार भी उसी का विवर्त्त होने से भिन्न नही कहा सकता, अत वह ब्रह्म अद्वैत है।

एक कहूँ तो दोइ है, दोइ कहूँ तो एक ।
यों दादू हैरान है, ज्यो है त्यो ही देख ॥ २४ ॥

२३ मे अद्वैत सिद्ध हुआ है किन्तु अब २४ मे कहते है—मै उसे एक अद्वैत रूप कहूँ तो मै कहने वाला दूसरा सिद्ध होता हूँ और यदि दो कहूँ तो २३ के अनुसार दो सिद्ध नही होते। कारण-जीव और ब्रह्म दोनो चेतन होने से एक है और जड दृश्य-रूप ससार चेतन का विवर्त्त है, अत द्वैत सिद्ध नही होता। इस प्रकार हम तो ब्रह्म के स्वरूप का अनुभव करके आश्चर्य चकित हो रहे है। उस ब्रह्म में कुछ भी कहना नही बनता। वह जैसा है, वैसा ही है। साधन द्वारा उसके स्वरूप मे एक होकर अनुभव द्वारा ही उसके वास्तविक स्वरूप को देखो।

देख दीवाने ह्वै गये, दादू खरे सयान।
वार पार को ना लहै, दादू है हैरान॥ २५॥

जो सच्चे ज्ञानी हुये है वे भी आश्चर्य रूप ब्रह्म का आत्मा रूप से साक्षात्कार करके उसी मे निमग्न हो गये है, उन ज्ञानी जनो मे किसी ने भी ब्रह्म का आदि अन्त नही जाना, तब दूसरे तो जान ही क्या सकते है ? अत उसके स्वरूप निर्णय मे हम भी आश्चर्य युक्त है, किसी भी प्रकार उसका पार नही आता।

पतिव्रत निष्काम

दादू करणहार जे कुछ किया, सोई हूं कर जाण।
जे तूं चतुर सयाना जानराइ, तो या ही परमाण॥ २६॥

२६-२७ मे निष्काम पतिव्रत दिखा रहे है—किसी व्यक्ति ने प्रश्न किया था—"आप कौन है ?" २६ मे उसी का उत्तर दे रहे है—सृजन करने वाले ईश्वर ने जो कुछ बनाया है, वही मै हू और यदि तू चतुर है तो विचार द्वारा निश्चय करके मेरे वास्तव स्वरूप को जान। हे सयाने ! यदि तू जानने वालों मे श्रेष्ठ है तब तो यही बात प्रमाण रूप मान कि आश्चर्य रूप ब्रह्म को जानना ही सब कुछ जानना है। यह सुन कर प्रश्नकर्त्ता को सन्तोष हो गया।

दादू जिन मोहन बाजी रची, सो तुम पूछो जाइ।
अनेक एक तैं क्यों किये, साहिब कहि समझाइ॥ २७॥

इति हैरान का अग समाप्त॥ ६॥ सा ८५९॥

किसी ने प्रश्न किया था—ब्रह्म ने अपने एक स्वरूप से अनेक जीव क्यो बना दिये॥ २७ से उसी का उत्तर दिया था। जिन विश्व-मोहन भगवान् ने मोहनी माया द्वारा यह सृष्टि रूप मोहक बाजी रची है, वही उसका यथार्थ उत्तर दे सकेगा। तुम साधना द्वारा उसके पास जाकर पूछो। जब उसके वास्तव स्वरूप का साक्षात्कार करोगे, तब वे इन्हे समझा कर कहेगे—अपने एक स्वरूप से अनेक जीव क्यो रचे है अर्थात् उनका साक्षात्कार करते ही उक्त प्रश्न आप ही हल हो जायेगा अन्यथा साक्षात्कार से पूर्व उन आश्चर्य रूप की रचना के निर्माण मे विवाद ही रहेगा। उक्त प्रश्न का उत्तर समझने के लिये अग ४ की १५५-१५६--१५७ साखी देखो।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका हैरान का अग समाप्त ॥ ६॥

अथ लै का अंग ७

आश्चर्य रूप ब्रह्म के आदि अत जानने का विचार छोड़ कर उसी मे निरन्तर वृत्ति लगाना चाहिये। इसलिये अब वृत्ति का विचार करने को लै अग कहने मे प्रवृत्त हुये मगल कर रहे है—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत: ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणाम पारंगत: ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक अनात्माकार वृत्तियो से पार होकर ब्रह्माकार वृत्ति द्वारा ब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरजन राम, सद्गुरु और सर्व सन्तो को हम अनेक प्रणाम करते है।

दादू लै लागी तब जानिये, जे कबहूँ छूट न जाइ ।
जीवत यों लागी रहै, मूवॉ मंझ समाइ ॥ २ ॥

२ मे वृत्ति ब्रह्म मे लगने की पहचान बता रहे है—यदि वृत्ति अखड ब्रह्माकार बनी रहे, कभी भी ब्रह्म से अलग होकर सासारिक वस्तुओ मे नही जाय, तब जानना चाहिये— अब वृत्ति ब्रह्म मे लीन हुई है। जब तक प्राण पिड का वियोग न हो, तब तक तो उक्त प्रकार से वृत्ति निरन्तर ब्रह्म मे लगी रहती है और प्राण पिड का वियोग होते ही साधक की आत्मा ब्रह्म मे समा जाती है।

दादू जे नर प्राणी लै गता, सोई गत है जाइ ।
जे नर प्राणी लै रता, सो सहजैं रहै समाइ ॥ ३ ॥

३-५ मे ब्रह्म मे वृत्ति लगाने का फल कह रहे है—जो प्राणी नर-शरीर पाकर भी ब्रह्म मे वृत्ति नही लगाकर सासारिक पदार्थों मे ही लगाते है, उनका नर-शरीर व्यर्थ ही चला जाता है, सफल नही होता और जो प्राणी नर-शरीर प्राप्त कर ब्रह्म मे वृत्ति लगाने मे रत है वे अनायास ही ब्रह्म मे समाकर ब्रह्म रूप होकर ही रहते है।

सब तज गुण आकार के, निश्चल मन ल्यौ लाइ ।
आतम चेतन प्रेम रस, दादू रहै समाइ ॥ ४ ॥

जो मायिक देहादिक आकारो के सम्पूर्ण गुणो को त्याग कर विरक्त होकर अभ्यास द्वारा मन को निश्चल कर तथा बुद्धि-वृत्ति को चेतन आत्मा मे स्थिर करके सच्चिदानन्द ब्रह्म के परम प्रेम-रस मे निमग्न रहता है,वह ब्रह्म ज्ञान को प्राप्त होकर तथा ब्रह्म मे ही समाकर ब्रह्म रूप होकर रहता है।

तन मन पवना पंच गह, निरजन ल्यौ लाइ ।
जहँ आत्म तहँ परमात्मा, दादू सहज समाइ ॥ ५ ॥

जो शरीर को हिसादिक कुकर्मों से, मन को बुरे सकल्पो से, प्राणो की गति को प्राणायाम से, पच ज्ञानेन्द्रियो को निषिद्ध विषय प्रवृत्ति से रोककर निरजन ब्रह्म मे वृत्ति लगाता है, वह जहाँ अन्त करण मे आत्मा है, वहा ही परमात्मा का साक्षात्कार करके उस सहज स्वरूप ब्रह्म मे ही अभेद रूप से समा जाता है।

अर्थ अनूपं आप है, और अनर्थ भाई।
दादू ऐसी जान कर, तासौं ल्यौ लाई ॥ ६ ॥

६-७ मे ब्रह्म मे वृत्ति लगाने की प्रेरणा कर रहे है—हे भाई ! उपमा रहित परम अर्थ तो स्वय परब्रह्म ही है। अन्य मायिक प्रपच तो अनर्थ रूप ही है। "अनर्थ त्यागकर परमार्थ प्राप्त करो" ऐसी गुरु वेदादि की आज्ञा जानकर उस परमार्थ रूप परब्रह्म मे ही वृत्ति लगा।

ज्ञान भक्ति मन मूल गह, सहज प्रेम ल्यौ लाइ।
दादू सब आरम्भ तज, जनि काहू सँग जाइ ॥ ७ ॥

सत्यासत्य के विवेक रूप ज्ञान और नवधा भक्ति के द्वारा इन्द्रियो की विषय प्रवृत्ति के मूल कारण मन को रोक, सम्पूर्ण काम्य कर्मों को त्याग दे। मन किसी भी इन्द्रिय के साथ सासारिक वासना पूर्ति के लिये नही जाये। ऐसी स्थिति प्राप्त होने पर उस सहज स्वरूप परब्रह्म मे प्रेम-पूर्वक वृत्ति लगा,अवश्य लगेगी।

अगम संसार

पहली था सो अब भया, अब सो आगे होइ।
दादू तीनों ठौर की, बूझै विरला कोइ ॥ ८ ॥

किसी ने भूत, भविष्य, वर्तमान, जानने को प्रश्न किया था उसी का उत्तर ८ से दिया था- पूर्व जन्म मे जैसा कर्म किया था, वैसा ही वर्तमान जन्म मे सुख दु ख के रूप मे प्रकट हो रहा है और अब जैसा करता है वैसा ही फल आगे प्राप्त होगा। इन भूत, भविष्य, वर्तमान तीनो शरीरो की बात कोई विरला विचारशील ही समझता है और वह इस दुस्तर ससार से पार होने के लिये अपनी वृत्ति निरन्तर परब्रह्म में ही लगाता है।

अध्यात्म

योग समाधि सुख सुरति सौं, सहजैं सहजैं आव।
मुक्ता द्वारा महल का, इहै भक्ति का भाव ॥ ९ ॥

९-१० मे अध्यात्म साधन कह रहे है—अष्टाग योग समाधि और लय रूप पराभक्ति दोनो को मुक्ति का साधन बता कर लय रूप पराभक्ति की विशेषता बता रहे है —अष्टाग योग (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि) करने से शनै २ अष्ट साधनो की सिद्धि होने पर निर्विकल्प समाधि का आनन्द प्राप्त होता है और ज्ञान द्वारा वृत्ति को ब्रह्म मे लय करने से ब्रह्मात्मा का अभेद ज्ञान होकर अति शीघ्र ही मुक्ति-महल का द्वार खुल जाता है, साधक जीवन्मुक्त हो जाता है। यहा लय के अग मे लय रूप पराभक्ति की विशेषता कहने का हमारा यही भाव है।

अथवा—जो सुख अष्टागयोगजनित निर्विकल्प समाधि से प्राप्त होता है वही सुख सुरति (लय) द्वारा आसानी से प्राप्त हो जाता है। यह भगवद् दर्शन का खुला हुआ द्वार (मार्ग) है, भक्ति का रहस्य भी इसी मे है।

सहज शून्य मन राखिये, इन दोनों के माहिं।
लै समाधि रस पीजिये, तहां काल भय नांहिं ॥ १० ॥

अष्टाग योग समाधि और लय रूप पराभक्ति, इन दोनो साधनो मे स्थित होकर अपने मन को सहज शून्य रूप ब्रह्म मे ही रखो और लय रूप पराभक्ति तथा निर्विकल्प समाधि द्वारा ब्रह्मानन्द-रस का पान करो। समाधि मे सहज शून्य ब्रह्म मे मन की स्थिति के समय मृत्यु का भी भय नहीं रहता, अन्य भय की तो बात ही क्या ? समाधि के समय मृत्यु का कुछ भी जोर नहीं चलता किन्तु समाधि खुलने पर मृत्यु का भय होता है और प्राणपिड का वियोग ही हो जाता है तथापि लयरूप पराभक्ति मे मृत्यु का सर्वथा ही भय नही रहता, कारण, पराभक्ति का साधक ज्ञान द्वारा अपने को मृत्यु के ग्रास शरीर से भिन्न ब्रह्मरूप मानता है। अत काल से सर्वथा निर्भय रहता है। यही लय रूप पराभक्ति की विशेषता है।

सूक्ष्म मार्ग

किहिं मारग ह्वै आइया, किहिं मारग ह्वै जाइ।
दादू कोई ना लहै, केते करैं उपाइ ॥ ११ ॥

११-१३ मे सूक्ष्म मार्ग विषयक विचार कर रहे है—प्रश्न-सत लय योग मे किस साधन द्वारा आता है और लय योग से ब्रह्म मे किस साधन द्वारा पहुँचता है ? हम कितने ही साधारण साधक इसके जानने का उपाय करते है किन्तु हमारे मे से कोई भी नही जान पाया है।

शून्य हि मारग आइया, शून्य हि मारग जाइ।
चेतन पैडा सुरति का, दादू रहु ल्यौ लाइ ॥ १२ ॥

११ मे स्थित प्रश्न का उत्तर दे रहे है—अखिल अनात्मकार वृत्तियो से मन को शून्य करना रूप साधन से साधक ब्रह्माकार वृत्ति रूप लय योग मे आता है और सर्व प्रपच शून्य चेतन स्थिति रूप साधन से सहजावस्था मे जाकर ब्रह्म से अभेद हो जाता है। चेतन ब्रह्म मे अभेद होने के लिये, अखण्ड ब्रह्माकार वृत्ति का साधन-मार्ग ही श्रेष्ठ है। अत वृत्ति को निरन्तर ब्रह्म मे ही लगाकर स्थिर रहो।

दादू पारब्रह्म पैडा दिया, सहज सुरति लै सार।
मन का मारग माहि घर, सगी सिरजनहार ॥ १३ ॥

यह ब्रह्माकार वृत्ति रूप मार्ग गुरुजनो द्वारा परब्रह्म ने ही बताया है और सृष्टिकर्ता ईश्वर का वास्तव स्वरूप ब्रह्म व्यापक होने से सदा हमारे सग ही रहता है। हमारे शरीर के भीतर अन्त करण ही उसकी विशेष रूप से अनुभूति का स्थान है। इसलिये यह मार्ग बाहर के पैरो से चलने योग्य न होकर केवल मन से चलने का ही है। अत वृत्ति को निरन्तर सहज स्वरूप ब्रह्म मे ही लगाये रखो। यह ब्रह्माकार वृत्ति-साधन ही सर्व साधनो का सार साधन है।

राम कहै जिस ज्ञान सौं, अमृत रस पीवै ।
दादू दूजा छाडि सब, लै लागी जीवै ॥ १४ ॥

१४-१६ मे ब्रह्माकार वृत्ति की विशेषता दिखा रहे है—जिस ज्ञान के द्वारा साधक निरजन राम के स्वरूप को समझ कर निरन्तर राम-राम कहते हुये भी ज्ञानामृत-रस का पान करते रहे, वही उत्तम ज्ञान है। अत अन्य सब वाक्य-विस्तार को त्याग कर साधक निरन्तर अपनी वृत्ति निरजन राम मे लगाकर जीवन धारण करे जीवन पर्यन्त भजन करे।

राम रसायन पीवतां, जीव ब्रह्म है जाइ ।
दादू आतम राम सौं, सदा रहै ल्यौ लाइ ॥ १५ ॥

यदि जीवात्मा निरजन राम मे निरन्तर अपनी वृत्ति लगाकर राम-भजन-रसायन पान करता है तो पीते २ ब्रह्म ज्ञान प्राप्ति द्वारा जीव ब्रह्म रूप ही हो जाता है।

सुरति समाइ सन्मुख रहै, जुग जुग जन पूरा।
दादू प्यासा प्रेम का, रस पीवै सूरा ॥ १६ ॥

मन इन्द्रियो के जीतने मे शौर्य दिखाने वाला, प्रभु-प्रेम का प्यासा, अपनी वृत्ति निरन्तर निरजन राम मे लगाकर, राम की आज्ञा मे रहता हुआ राम भजन-रस का पान करता है, वह प्रत्येक युग मे ही पूरा भक्त माना जाता है।

अध्यात्म

दादू जहां जगद्गुरु रहत है, तहां जे सुरति समाइ।
तौ इन ही नैनहुं उलट कर, कौतुक देखै आइ ॥ १७ ॥

१७-२१ मे लययोग द्वारा साक्षात्कार की पद्धति बताते हुये इसे करने की प्रेरणा कर रहे है—जहा हृदय मे अष्टदल कमल पर सपूर्ण जगत् मे महान् जगद्गुरु परमात्मा का विशेष रूप से निवास है, वहां ही यदि निरन्तर वृत्ति लग जाय तो इन बाह्य विचार-नेत्रो को आन्तर ब्रह्म विचार मे बदल के निर्द्वन्द्व स्थिति मे आकर साधक आश्चर्य रूप ब्रह्म का साक्षात्कार करता है।

अख्यूं[1] पसण[2] के पिरी,[3] भिरे[4] उलथ्थौ[5] मंझ[6] ।
जित्ते[7] बैठो मां[8] पिरी, निहारी[9] दो हंझ[10] ॥ १८ ॥

हे साधक सन्तो[10] ! तुम अपने दोनो नेत्रो[1] को प्रियतम[3] प्रभु के दर्शनार्थ[2] ब्राह्य विषयो से फेर[4] कर तथा हृदय की ओर उलट[5] कर जहा[7] हृदय[6] मे हमारे[8] प्रियतम परमेश्वर विशेष रूप से स्थित है, वहां ही उनका साक्षात्कार[9] करो।

दादू उलट अनूठा आप में, अंतर शोध[1] सुजाण ।
सो ढिग तेरे बावरे, तज बाहर की बाण[2] ॥ १९ ॥

हे तत्त्वज्ञानहीन बावरे ! ब्रह्म विषयो मे निमग्न रहने का स्वभाव छोड, सत्सग द्वारा सुजान होकर अपने मन और इन्द्रियो को बाह्य-विषय-प्रवृत्ति से पीछे की ओर लौटाकर हृदयस्थ परमात्मा को अपने भीतर ही खोज । वह व्यापक होने से तेरे अत्यन्त समीप ही है=तेरा आत्मस्वरूप ही है।

सुरति अपूठी फेरि कर, आतम माहीं आण।
लाग रहै गुरुदेव सौ, दादू सोइ सयाण ॥ २० ॥

गुरुदेव के उपदेश विचार द्वारा अपनी वृत्ति को बाह्य विषयो से पीछे की ओर लौटाकर तथा आत्मा मे लाकर जो निरतर ब्रह्मात्मा के अभेद चिन्तन मे लगा रहता है, वही बुद्धिमान् साधक है।

जहाँ आत्म तहँ राम है, सकल रह्या भरपूर।
अन्तरगत ल्यौ लाइ रहु, दादू सेवक शूर ॥ २१ ॥

जहा शरीर के भीतर अन्त करण मे आत्मा है, वहा ही व्यापक होने से निरजन राम भी है। अत हे भगवत्-सेवको मे वीर या कामादि को जय करने वाले वीर साधक ! तुम भीतर स्थित ब्रह्म मे ही निरतर वृत्ति लगा करके ससार मे रहो।

सूक्ष्म सौंज अर्चा बदगी

दादू अंतरगत ल्यौ लाइ रहु, सदा सुरति सौ गाइ ।
यहु मन नाचै मगन ह्वै, भावै ताल बजाइ ॥ २२ ॥

२२-२३ मे अर्चना भक्ति की सूक्ष्म सामग्री बता रहे है—साधक ! भीतर हृदय मे स्थित परब्रह्म मे ही वृत्ति लगा कर, सदा वृत्ति द्वारा उसी के गुण-गाता रह और यह तेरा मन भाव-रूप ताल बजाता हुआ प्रभु-सेवा मे निमग्न होकर प्रभु के आगे नाचता रहना चाहिए, यही आन्तर भक्ति की सामग्री है।

दादू पावै सुरति सौ, वाणी बाजै ताल ।
यहु मन नाचै प्रेम सौ, आगे दीनदयाल ॥ २३ ॥

यदि कोई भक्त उक्त प्रकार से आन्तर अनाहत वाणी रूप ताल बजाता हुआ सुरति से प्रभु के गुण और आरती गाता है तथा उसका यह अन्तर्मुख मन प्रेमपूर्वक चिन्तन रूप नृत्य करता है, तो उसके आगे दीनदयालु भगवान् प्रकट होकर उसे दर्शन देते है।

विरक्तता

दादू सब बातन की एक है, दुनिया तै दिल दूर ।
साई सेती सग कर, सहज सुरति लै पूर ॥ २४ ॥

२४ मे जीवन की अल्पता पर दृष्टि रखते हुये वैराग्य पूर्वक वृत्ति ब्रह्म मे लगाने की प्रेरणा कर रहे है—सपूर्ण कथा-वार्ताओ की सार रूप यह एक ही बात है- "ससार से मन को हटा कर

नाम-चिन्तन द्वारा भगवान् को साथ करके लययोग द्वारा भगवत् के सहज स्वरूप मे वृत्ति लगा कर उससे अभेद हो जाय।

अकबर बादशाह ने प्रश्न किया था- सार साधन क्या है ? उसी का उत्तर इसी साखी से दिया था।

अध्यात्म

दादू एक सुरति सौं सब रहैं, पंचौं उनमनि लाग।
यहु अनुभव उपदेश यहु, यहु परम योग वैराग ॥ २५ ॥

२५-२६ मे ब्रह्माकार वृत्ति रूप अध्यात्म की विशेषता बता रहे है—जब अद्वैत ब्रह्म मे वृत्ति लग जाती है, तब पाचो इन्द्रिय और मन आदि सभी बाह्य विषयो मे जाने से रुक जाते है और समाधि अवस्था मे प्राप्त होने योग्य परमात्मा के स्वरूप मे ही लग जाते है। यह उक्त साधन ही अनुभव का हेतु है, यही उत्तम उपदेश का फल है। यही परम योग है, यही श्रेष्ठ वैराग्य है।

दादू सहजैं सुरति समाइ ले, पारब्रह्म के अंग।
अरस परस मिल एक ह्वै, सन्मुख रहबा संग ॥ २६ ॥

सासारिक भावनाओ से अपनी वृत्ति को उठाकर लय योग द्वारा अनायास ही परब्रह्म के स्वरूप मे लय करे और जल दूध के समान आपस मे दोनो एक हो जायँ। इसका नाम सदा सन्मुख रहकर सग रहना है।

सुरति सदा सन्मुख रहै, जहां तहां लै लीन।
सहज रूप सुमिरण करै, निष्कामी दादू दीन ॥ २७ ॥

२७-२८ मे लय योग और उसके साधक का परिचय दे रहे है—निष्कामी नम्र भक्त-जनों की वृत्ति सदा परब्रह्म के सन्मुख रहती है, सासारिक भोग-वासनादि मे नही जाती और वे घर, वनादि जिस किसी भी स्थान वा अवस्था मे सहज स्वरूप ब्रह्म का स्मरण करते हुये वृत्ति को ब्रह्म मे ही लीन रखते है। उनकी उक्त अवस्था का नाम ही लय-योग है।

लय

सुरति सदा साबित रहै, तिनके मोटे भाग।
दादू पीवैं राम रस, रहैं निरंजन लाग ॥ २८ ॥

जिनकी वृत्ति अखड ब्रह्माकार रहती है और जो निरजन राम के स्वरूप मे अभेद भाव से लगकर ब्रह्मानन्द-रस का पान करते है, वे ज्ञानी सत ही बडभागी है।

सूक्ष्म सौन्ज

दादू सेवा सुरति सौं, प्रेम प्रीति सौं लाइ।
जहँ अविनाशी देव है, तहँ सुरति बिना को जाइ ॥ २९ ॥

२९ मे ब्रह्म को प्राप्त करने की सूक्ष्म सामग्री बता रहे है—साधक ! अविनाशी ब्रह्म की सेवा प्रेमपूर्वक वृत्ति से ही होती है। अत प्रीति से वृत्ति उनमे लगा। जिस निर्विकल्प समाधि अवस्था मे अविनाशी देव ब्रह्म की प्राप्ति होती है उसमे ब्रह्माकार वृत्ति विना कोई भी बहिर्मुख प्राणी नही जा सकता। अत ब्रह्माकार वृत्ति रूप लय योग ही ब्रह्म प्राप्ति का मुख्य साधन है।

विनती

दादू ज्यो वै बरत[1] गगन तैं टूटै, कहां धरणी कहँ ठाम ।
लागी सुरति अंग तै छूटै, सो कत जीवै राम ॥ ३० ॥

३० मे अखड ब्रह्माकार वृत्ति रहने के लिए विनय कर रहे है—जैसे बहुत ऊचे आकाश मे रस्से[1] पर नृत्य करते हुए नट की वृत्ति रस्से से अलग हो जाय तो कहा उसको पृथ्वी और कहा अपना रस्सा रूप स्थान, रस्सा हाथ नही आ सकता और पृथ्वी पर पड़ने से जीवित नहीं रह सकता, वैसे ही हे राम ! साधक की वृत्ति आप मे लगी हुई आपके स्वरूप से अलग होकर ससार मे चली जाय तो उसको नित्य जीवन रूप आपका अद्वैत स्वरूप कहा और ससार मे नित्य जीवन कहा ? वह तो बारबार मृत्यु का दु ख ही अनुभव करेगा। अत हमारी वृत्ति आप से अलग न हो, ऐसी कृपा करिये।

अध्यात्म

सहज योग सुख मे रहै, दादू निर्गुण जाण ।
गंगा उलटी फेरि कर, जमुना मांही आण ॥ ३१ ॥

३१ मे लय रूप अध्यात्म साधन की प्रेरणा कर रहे है—लय रूप सहज योग का साधक निर्गुण ब्रह्म को अपना आतम स्वरूप जानकर ब्रह्मानन्द मे निमग्न रहता है। अत हे साधक ! ससार मे गमन करने वाली चचल वृत्ति रूप गगा को ससार से लौटा कर आन्तर स्थित ब्रह्माकार वृत्ति रूप यमुना मे मिला=अनात्माकार वृत्ति को हटाकर ब्रह्माकार वृत्ति की स्थिरता रूप लय योग कर !

लय

परमातम सौ आतमा, ज्यो जल उदक समान।
तन मन पाणी लौण ज्यो, पावै पद निर्वाण ॥ ३२ ॥

३२-३६ मे लय योग का परिचय दे रहे है—जैसे जल और उदक शब्द दो है किन्तु अर्थ दोनो का एक ही है, वैसे ही जीवात्मा और परमात्मा शब्द भेद होने पर भी वस्तुत दोनो एक ही है। जो साधक तन को देहाध्यास से हटाकर और मन को सकल्प शून्य करके जल मे नमक के समान ब्रह्म मे मिला देता है, वही काल कर्म के बाणाघात से रहित ब्रह्म पद को प्राप्त करता है।

मन ही सौ मन सेविये, ज्यों जल जल हि समाइ ।
आतम चेतन प्रेम रस, दादू रहु ल्यौ लाइ ॥ ३३ ॥

जैसे मित्र निज मन को अपने मित्र के मन के साथ मिलाता है-उसकी इच्छा के अनुसार ही

सब व्यवहार करता है, वैसे ही साधक अपने मन से प्रभु के मन की सेवा करे=प्रभु-आज्ञानुसार ही अपना साधनादि व्यवहार करे और जैसे जल मे जल मिल जाता है वैसे ही आत्मा को ब्रह्म चेतन से अभेद करके प्रेम-पूर्वक ब्रह्मानन्द-रस मे ही वृत्ति लगा कर स्थिर रहे।

यों मन तजे शरीर को, ज्यों जागत सो जाइ।
दादू बिसरै देखतां, सहज सदा ल्यौ लाइ ॥ ३४ ॥

जैसे जाग्रत मानव निद्रा-वश होता है तब उसे अपने जाग्रत शरीर का कुछ भी ज्ञान नही रहता, वैसे ही जब मन सहज स्वरूप ब्रह्म मे वृत्ति लगाकर स्थिर रहता है, तब देखते-देखते ही=शरीर के रहते ही, मन शरीर की सम्पूर्ण परिस्थितियो को भूल कर शरीराध्यास तज देता है।

जिहिं आसन पहली प्राण था, तिहिं आसन ल्यौ लाइ ।
जे कुछ था सोई भया, कछू न व्यापै आइ ॥ ३५ ॥

हे प्राणधारी जीव ! प्रथम जिस ब्रह्म रूप स्थान मे था उसी निर्द्वन्द्व ब्रह्म-स्थान मे वृत्ति लगा। जिसने उसमे वृत्ति लगाई है वह जो पूर्व मे था, उसी ब्रह्म रूप को प्राप्त हुआ है। ब्रह्म रूप हो जाने पर उस पर मायिक प्रपच का कुछ भी प्रभाव नही पड़ता।

तन मन अपना हाथ कर, ताही सौं ल्यौ लाइ।
दादू निर्गुण राम सौं, ज्यों जल जलहि समाइ ॥ ३६ ॥

साधक ! सयम के द्वारा निज शरीर और मन को अपने अधीन करके उस अपने आत्म-स्वरूप ब्रह्म से ही वृत्ति लगा और जैसे जल मे जल मिल जाता है वैसे ही निर्गुण राम से अपनी आत्मा को एक कर।

उपजनि

एक मना लागा रहै, अंत मिलेगा सोइ ।
दादू जाके मन बसै, ताको दर्शन होइ ॥ ३७ ॥

३७-३८ मे ज्ञानोत्पति द्वारा ब्रह्मसाक्षात्कार की पद्धति बता रहे है—यदि मन अनन्य भाव से एक परमात्मा के ही चिन्तन मे लगा रहेगा तो साधन पूर्ण होते ही ज्ञान होकर उस ब्रह्म का साक्षात्कार अवश्य होगा, क्योकि यह नियम है—जिसके मन में जो बसता है, उसको उसका दर्शन अवश्य होता है।

दादू निबहै त्यों चलै, धीरैं धीरज मांहिं ।
परसेगा पिव एक दिन, दादू थाकै नांहिं ॥ ३८ ॥

जिस साधक से जो साधन जितना निभ सके, उतना-उतना ही धैर्य पूर्वक शनैः शनै उसे करते हुये उसमे आगे बढ़ते चलना चाहिए। यदि साधक उक्त प्रकार से अपने साधन को साधन सिद्धि से पहले थककर त्यागेगा नहीं, तो ज्ञान प्राप्ति द्वारा एक दिन अवश्य ब्रह्म का साक्षात्कार कर सकेगा।

लय

जब मन मृतक है रहै, इन्द्री बल भागा ।
काया के सब गुण तजै, निरंजन लागा ॥ ३९ ॥

३९-४२ मे लय योग विषयक विचार कह रहे है—जब मन सासारिक भोग वासनाओ से रहित मृतकवत् स्थिर हो जाता है=प्रारब्ध वेग बिना स्वय अह भाव से किसी मे भी प्रवृत्त नहीं होता और इन्द्रियो का राजस-तामस निषिद्ध बल नष्ट हो जाता है। इस प्रकार ही शरीर के हिसादिक सम्पूर्ण गुणो को त्याग कर जो निरजन राम के चिन्तन मे लगा रहता है, तब जानना चाहिए कि यह लय-योग का साधक है।

आदि अंत मधि एक रस, टूटे नहिं धागा ।
दादू एकै रह गया, तब जाणी जागा ॥ ४० ॥

साधन आरभ काल से लेकर मध्य मे कही किसी हेतु को पाकर अपने साधन का तार टूटे नही, अन्त तक लगातार एक रस चलता रहे तथा साधन करते-करते अद्वैत ब्रह्म मे स्थिर होकर सासारिक भावनाओ मे जाने से रुक जाय, तब जानना चाहिए- यह अज्ञान निद्रा से जागकर अपने वास्तव स्वरूप मे स्थिर हुआ है।

जब लग सेवक तन धरै, तब लग दूसर आइ ।
एकमेक है मिल रहै, तो रस पीवन तैं जाइ ॥ ४१ ॥

इसमे अद्वैत और द्वैत वादियो के विचार का प्रदर्शन है—अद्वैत-वादी कहता है- "जब तक सेवक भाव से शरीर धारण किये रहता है तब तक तो द्वैत की भावना हृदय मे आती ही है, द्वैत नहीं मिटता।" द्वैत-वादी कहता है- 'भक्त यदि एक अद्वैत ब्रह्म मे मिलकर एक हो जायेगा तो वह भक्ति-रस-पान से वचित रह जायगा, जो शरीर रहते हुये आवश्यक है।'

ये दोनो ऐसी कहै, कीजे कौन उपाइ ।
ना मैं एक न दूसरा, दादू रहु ल्यौ लाइ ॥ ४२ ॥

इति लै का अग समाप्त ॥ ७ ॥ सा ९०१ ॥

४१ मे स्थित विवाद निर्णयार्थ प्रश्न करते है—भगवन् ! द्वैताद्वैत-वादी उक्त प्रकार विवाद मे रत है। इस विवाद से मुक्त होने के लिए हमे क्या उपाय करना चाहिये ? भगवान् उत्तर दे रहे है—न मै अद्वैत हूँ और न द्वैत हूँ। मुझ निर्विशेष मे एकत्व, अन्यत्व, सख्यादि विशेषण नही लग सकते। यदि मेरा वास्तव स्वरूप जानना चाहो तो अपनी भावनानुसार मेरे मे ही निरतर वृत्ति लगाकर स्थिर रहो। इस प्रकार लय योग की प्रेरणा भगवान् भी करते है। अत लय-योग कर्त्तव्य है।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका लै का अग समाप्त ॥ ७ ॥

अथ निष्कामी पतिव्रता का अंग ८

लय योग के साधक की निष्कामता और अनन्यता का परिचय देने को, निष्कामी पतिव्रता का अग कथन मे प्रवृत्त मगल कर रहे है—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत: ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक नाना कामना और प्रपच परायणता रूप व्यभिचार से पार होकर परब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरजन राम, सद्गुरु और सर्व सन्तो को हम अनेक बार प्रणाम करते है।

एक तुम्हारे आसरे, दादू इहि विश्वास ।
राम भरोसा तोर है, नहिं करणी की आस ॥ २ ॥

२ मे निष्काम पतिव्रत युक्त राम से विनय कर रहे है—राम ! आपकी दयालुता का ही मुझे भरोसा है। मेरे कर्त्तव्य कर्म की मुझे यह आशा नही है कि—मै अपने कर्मों से ही आपको प्राप्त कर लूगा, किन्तु आपके इस वचन पर—"मेरा भक्त मुझे ही प्राप्त होता है।" मुझे पूर्ण विश्वास है। अत एक मात्र आपके स्वरूप चिन्तन का ही आधार लेकर निष्काम भाव से आप मे ही अनन्य हो रहा हूँ।

रहणी राजस ऊपजै, करणी आपा होइ ।
सब तैं दादू निर्मला, सुमिरण लागा सोइ ॥ ३ ॥

३-४ मे निष्काम भाव और अनन्यता की विशेषता बता रहे है—ब्रह्मचर्यादि व्रतो से मन मे रजोगुण प्रधान अहकार उत्पन्न होता है और यज्ञदानादि करने से हृदय मे कर्त्तव्यता का अभिमान होता है। अत जो साधक निष्काम भाव से भगवत् मे अनन्य रहकर भगवत् स्मरण मे ही लगा रहता है, वही सबसे निर्मल माना जाता है।

मन अपना लै लीन कर, करणी सब जंजाल ।
दादू सहजैं निर्मला, आपा मेट सँभाल ॥ ४ ॥

निष्काम भाव और अनन्यता बिना यज्ञ-दानादि कर्त्तव्य-कर्म-बन्धन रूप है। अत ब्रह्म-चिन्तन मे ही वृत्ति लगाकर मन को ब्रह्म मे लीन करना चाहिए। जो कर्त्तव्य-कर्म का अभिमान हृदय से हटा कर निष्काम भाव और अनन्यता पूर्वक निरन्तर भगवान् का स्मरण करता है, वह अनायास ही अविद्या मल से रहित होकर ब्रह्म को प्राप्त होता है।

दादू सिद्धि हमारे सांइयां, करामात करतार ।
ऋद्धि हमारे राम है, आगम अलख अपार ॥ ५ ॥

५ मे पतिव्रत दिखा रहे है—हे साधको ! हमारी सिद्धि (अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशत्व, बशित्व) भगवान् ही है। सृष्टिकर्त्ता भगवान् ही हमारा चमत्कार है।

हमारा ऐश्वर्य भी राम ही है। भविष्य व शास्त्र भी हमारे मन इन्द्रियो का अविषय अपार भगवान् ही हे।

गोविन्द गोसांई, तुम्हीं आमचे[1] गुरु, तुम्हीं आमचा ज्ञान ।
तुम्हीं आमचे देव, तुम्हीं आमचा ध्यान ॥ ६ ॥

६-१२ मे अपने पतिव्रत की निष्ठा विनय रूप से भगवान् को कह रहे है—वेद वाणी से प्राप्त होने योग्य, विश्व के स्वामी गोविन्द ! हमारे तो आप[1] ही गुरु है, आप ही ज्ञान, देव और ध्यान है।

तुम्ही आमची पूजा, तुम्ही आमची पाती ।
तुम्हीं आमचा तीर्थ, तुम्हीं आमची जाती ॥ ७ ॥

आप ही हमारी अर्चना भक्ति और अर्चना मे उपयोगी तुलसी पत्र, तीर्थ जल तथा आपके धामो की यात्रा भी हमारे आप ही है।

तुम्ही आमचा नाद, तुम्ही आमचा भेद ।
तुम्हीं आमचा पुराण, तुम्ही आमचा वेद ॥ ८ ॥

आप ही हमारे बजाने का नाद व अनाहत नाद है। आप ही हमारे जानने योग्य रहस्य है। आप ही हमारे प्राचीन कथा रूप पुराण है। ओर आप ही आप का ज्ञान रूप वेद है।

तुम्ही आमची युक्ति, तुम्ही आमचा योग ।
तुम्हीं आमचा वैराग, तुम्हीं आमचा भोग ॥ ९ ॥

आप ही हमारे मोक्ष साधन मे सहायक युक्तियाँ है। आप ही हमारे वृत्ति निरोध रूप योग है। आप ही हमारे अनासक्ति रूप वैराग्य है। आप ही हमारे इष्ट वस्तु रूप भोग है।

तुम्हीं आमची जीवनि, तुम्ही आमचा जप ।
तुम्ही आमचा साधन, तुम्ही आमचा तप ॥ १० ॥

आप ही हमारी साधन वृत्तान्त रूप जीवनी वा जीवन शक्ति है। आप ही हमारे मूल मत्र का चिन्तन रूप जप है। आप ही हमारे स्वरूप ज्ञान के हेतु अतरग साधन है और आप ही तितिक्षादि बहिरग साधन रूप तप है।

तुम्ही आमचा शील, तुम्हीं आमचा सतोष ।
तुम्हीं आमची मुक्ति, तुम्हीं आमचा मोक्ष[1] ॥ ११ ॥

आप ही हमारा ब्रह्मचर्य रूप शील व्रत है। आप ही हमारा यथा लाभ सतोष है। आप ही हमारी सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य, चतुर्विधि मुक्तिया है और आप ही हमारी ब्रह्म प्राप्ति रूप कैवल्य मोक्ष[1] है।

तुम्हीं आमचा शिव, तुम्हीं आमची शक्ति ।
तुम्हीं आमचा आगम, तुम्हीं आमची उक्ति ॥ १२ ॥

आप ही हमारे कैलाशवासी शिव है। आप ही हमारी दानव-दल-निकदनी शक्ति है। आप ही हमारे शिव तथा शक्ति द्वारा कहे हुये आगम रूप शास्त्र हैं। आप ही हमारे विचित्र अनुभव-सपन्न कथन है।

तूं सत्य, तूं अविगत, तूं अपरंपार, तूं निराकार, तुम्हचा[1] नाम ।
दादू चा विश्राम, देहु देहु अवलम्बन राम ॥ १३ ॥

१३ मे पतिव्रत की अखडता के लिए प्रार्थना कर रहे है—प्रभो ! आप सत्य, मन इन्द्रियो के अविषय, अपरपार, निराकार है। आपका[1] नाम ही हमारे लिए विश्रामप्रद है। अत हे राम ! हमे आपके नाम का ही निरतर आश्रय दीजिये।

दादू राम कहूं ते जोडबा, राम कहूं ते साखि ।
राम कहूं ते गाइबा, राम कहूं ते राखि ॥ १४ ॥

१४-१६ मे अपनी पतिव्रत निष्ठा दिखा रहे है—राम नाम का उच्चारण ही हमारा भजन बनाना है। राम नाम बोलना ही साखियो का उच्चारण करना है। उच्च स्वर से राम नाम बोलना ही हमारा गायन हैं। राम नाम उच्चारण करना ही हमारी रक्षा है।

दादू कुल हमारे केशवा, सगा[1] तो सिरजनहार ।
जाति हमारी जगद्गुरु, परमेश्वर परिवार ॥ १५ ॥

हमारा वश भगवान् केशव है। सम्बन्धी[1] भी सृष्टिकर्त्ता ईश्वर ही है। सपूर्ण जगत् मे महान् प्रभु ही हमारी जाति है और परमेश्वर ही हमारा परिवार है।

दादू एक सगा संसार में, जिन हम सिरजे सोइ ।
मनसा, वाचा, कर्मना, और न दूजा कोइ ॥ १६ ॥

हम मन, वचन और कर्म से एक होकर कहते है—जिसने हमे रचा है वह एकमात्र परमात्मा ही हमारा निजी सबधी है और दूसरा कोई भी नही है, सर्व स्वार्थी है।

(कुलादि के विषय मे अकबर बादशाह ने पूछा, उसी का उत्तर १५-१६ से दिया था।)

स्मरण नाम निस्संशय

सांई सन्मुख जीवतां, मरतां सन्मुख होइ ।
दादू जीवन मरण का, सोच करै जनि कोइ ॥ १७ ॥

१७ मे संशय रहित नाम स्मरण निष्ठा दिखा रहे है—अपने जीवन काल मे भगवत् की आज्ञानुसार रहकर भगवद् भजन करना चाहिए और मृत्यु के समय भी सावधानता से अपनी वृत्ति भगवद्, ध्यान द्वारा भगवत् के सम्मुख ही होवे, ऐसा यत्न करना चाहिए। उक्त प्रकार व्यवहार करने पर, 'मै अधिक जीवित रहूगा तो अर्थाभाव के कारण दुखी रहूंगा और शीघ्र मर गया तो पीछे वालो का पालन कैसे होगा ?' ऐसी चिन्ता किसी को भी न करनी चाहिए। निस्सशय होकर भजन करना चाहिए। दृढ़ता रखने से सब ठीक ही होता है।

पतिव्रत

साहिब मिल्या तो सब मिले, भेंटै भेटा होइ।
साहिब रह्या तो सब रहे, नहीं तो नांहीं कोइ ॥ १८ ॥

१८-२७ मे पतिव्रत दिखा रहे है—यदि प्रभु प्राप्त हो जाते है तो सभी ऐश्वर्य प्राप्त हो जाते है। जीवात्मा की परमात्मा से भेट होती है तब सभी से भेट हो जाती है, उसे सब अपने आत्म स्वरूप ही भासते है। भगवान् से भक्त का भेद रहा तो सपूर्ण प्राणियो से भी भेद रहता ही है। इस प्रकार अभेद रूप पतिव्रत नहीं होता; तब अद्वैत भाव भी प्राप्त नहीं होता।

सब सुख मेरे सांइयां, मंगल अति आनन्द।
दादू सज्जन सब मिले, जब भेंटे परमानन्द ॥ १९ ॥

भगवान् ही मेरे सपूर्ण सासारिक सुख है। मगलमय भगवान् ही मेरे उत्तम लोको का अति आनन्द है। जब परमानन्द रूप ब्रह्म से मिलन होता है तब सभी दैवी गुण रूप सज्जनो का मिलन भी आप ही हो जाता है।

दादू रीझै राम पर, अनत न रीझै मन।
मीठा भावे एकरस, दादू सोई जन ॥ २० ॥

हमे तो एक निरजन देव का साक्षात्कार करके ही प्रसन्नता होती है। हमारा मन अन्य किसी भी वस्तु को देखकर प्रसन्न नही होता। जिसको एकरस निरतर मधुर परब्रह्म ही प्रिय लगता है, वही भक्त माना जाता है। (यह साखी, वाजीदजी ने एक गैंदे का विशाल पुष्प दिखाकर उसकी प्रशसा की थी, तब उन्हे कही थी-प्रसग कथा-दृ सु सि त ६/११ मे देखो।)

दादू मेरे हृदय हरि बसै, दूजा नांही और।
कहो कहा धौ राखिये, नहीं आन को ठौर ॥ २१ ॥

हमारे हृदय मे तो एक मात्र हरि का ही निवास है। अन्य दूसरा माया और मायिक कार्य कोई भी नही बस सकता। राम का पतिव्रत पालन करने वाले हृदय मे जब अन्य के लिए स्थान ही नही, तब हे सज्जनो ! निश्चय करके तुम ही कहो कि द्वैत को कहा रक्खे ?

दादू नारायण नैना बसै, मनहीं मोहन राइ।
हिरदा माही हरि बसै, आतम एक समाइ ॥ २२ ॥

नर शरीर ही जिनकी प्राप्ति का साधन है, ऐसे नारायण भगवान् हमारे नेत्रो मे बसते है। मोहन करने वाले मायादि के भी मोहक और शासक मोहनराय भगवान् हमारे मन मे है। हृदय मे हरि बसते है और आत्मा मे भी एक ब्रह्म ही समाये हुये है तथा अन्य इन्द्रियादि सभी प्रभु-परायण होकर भगवत् पतिव्रत मे ही रत है।

दादू तन मन मेरा पीव सौ, एक सेज सुख सोइ।
गहिला लोग न जाणही, पच-पच आपा खोइ ॥ २३ ॥

तन सत-सेवा द्वारा और मन चिन्तन द्वारा परमात्मा से ही लगाकर हम हृदयस्थ अद्वैत भावना रूप शय्या पर ब्रह्म के साक्षात्कार जन्य सुख में निमग्न रहते हुये समाधिस्थ है, किन्तु अज्ञानी लोग इस रहस्यमय तत्त्व को न जानने के कारण, सासारिक विषयो के लिए परिश्रम कर-करके आत्म-स्वरूप के आनन्द को खो रहे है।

दादू एक हमारे उर बसै, दूजा मेल्या दूर ।
दूजा देखत जाइगा, एक रह्या भरपूर ॥ २४ ॥

हमारे हृदय मे एकमात्र निरजन राम का ही पतिव्रत बसता है, माया और माया के कार्य रूप द्वैत को तो हमने ज्ञान द्वारा हृदय से दूर कर दिया है। कारण, माया और मायिक प्रपंच रूप द्वैत को देखते-देखते ही नष्ट हो जाएगा। एक परब्रह्म ही सृष्टि के आदि काल से अब तक दूध मे घृत के समान विश्व मे भरा हुआ है और आगे भी भरा ही रहेगा। अत. वह अविनाशी ही उपास्य है।

निश्चल का निश्चल रहै, चंचल का चल जाइ।
दादू चंचल छाडि सब, निश्चल सौं ल्यौ लाइ ॥ २५ ॥

२५-२६ मे पतिव्रत रखने की प्रेरणा कर रहे है—निश्चल ब्रह्म का भक्त जन्मादि से रहित निश्चल ब्रह्म को प्राप्त हो, निश्चल होकर ही रहता है। चचल मायादि का भक्त जन्मादि रूप ससार के मार्ग मे चलता ही रहता है। अत साधक को चाहिए—चचल मायादि की उपासना को त्याग कर निश्चल ब्रह्म से ही वृत्ति लगावे।

साहिब रहतां सब रह्या, साहिब जातां जाइ।
दादू साहिब राखिये, दूजा सहज स्वभाइ ॥ २६ ॥

परब्रह्म का पतिव्रत रूप अनन्य-भक्ति रहने से अन्य योग, यज्ञ, व्रतादि तो उससे अनायास ही होते रहते है। परब्रह्म का पतिव्रत रूप अनन्य-भक्ति नही हो, तो योगादिक भी निष्काम-भाव से नही होते और सकाम-भाव से किये हुये योगादि ससार के ही हेतु है। अत अनन्य-भाव से परब्रह्म का ही चिन्तन हृदय मे रखना चाहिए। दूसरे साधन तो फिर सहज स्वभाव ही होते रहते है।

मन चित मनसा पलक में, सांई दूर न होइ।
निष्कामी निरखै सदा, दादू जीवन सोइ ॥ २७ ॥

ब्रह्म का ही मन से मनन, चित्त से चिन्तन और बुद्धि से विचार होता रहना चाहिए। जीवन मे एक पलक मे भी परब्रह्म का चिन्तन चित्त से दूर नही होना चाहिए। इस प्रकार निष्काम भाव से पतिव्रत रखने वाला भक्त भगवान् को सदा ही सर्व देश, काल और वस्तुओ मे देखता रहता है। उसका जीवन वह परब्रह्म ही है वा उसका वह जीवन ही उत्तम जीवन है।

कथनी बिना करणी

जहाँ नाम तहँ नीति चाहिए, सदा राम का राज ।
निर्विकार तन मन भया, दादू सीझै काज ॥ २८ ॥

२८ मे कह रहे है—कथन के बिना ही कर्त्तव्य करना चाहिए—जिस शरीर मे, ''मै भक्त हूँ'' ऐसा नाम वर्तता है अर्थात् जिसको सब 'भक्त जी' कहते है और वह स्वय भी भक्त नाम से सहर्ष बोलता है, उसमे भक्तो की रीति-नीति भी होनी चाहिए तथा उसके हृदय मे सदा राम का ही राज्य रहना चाहिए अर्थात् रामाज्ञा उसे अवश्य पालनी चाहिये और अपने कर्त्तव्य का कथन अन्यो के आगे नही करना चाहिए। ऐसा जिन भक्तो ने किया है, उनके तन-मनादि सब विकारो से रहित हो गये है। इस निर्विकारावस्था के प्राप्त होते ही साधक का मुक्ति रूप कार्य सिद्ध हो जाता है।

सुन्दरी विलाप

जिसकी खूबी खूब सब, सोई खूब सँभार।
दादू सुन्दरि खूब सौं, नख शिख साज सँवार॥ २९॥

२९-३१ मे जीवात्मा सुन्दरी को परब्रह्म प्राप्ति के लिए विलापादि करने की प्रेरणा कर रहे है—जिस परब्रह्म की सुन्दरता से सब विश्व सुन्दर हो रहा है, उसी सत्य-शिव-सुन्दर ब्रह्म का ध्यान करो। इस प्रकार उस सुन्दर ब्रह्म के ध्यान और विलापादि द्वारा पैर के नख से लेकर शिर की शिखा पर्यन्त सारे शरीर को सर्वथा सुन्दर बना कर जीवात्मा रूप पतिव्रता सुन्दरी उस ब्रह्म से अभेद हो जाती है।

दादू पंच आभूषण पीव कर, सोलह सब ही ठांव।
सुन्दरि यहु श्रृगार कर, ले ले पीव का नाव॥ ३०॥

पाच आभूषण और सोलह श्रृगारो के सभी स्थानो मे परब्रह्म रूप पति को ही स्थापन करे। जीवात्मा-सुन्दरी यह उक्त श्रृगार करके विलापपूर्वक परब्रह्म पति का नाम लेते हुये उसी मे अपनी वृत्ति लगावे।

यहु व्रत सुन्दरि ले रहै, तो सदा सुहागिनि होइ।
दादू भावै पीव को, ता सम और न कोइ॥ ३१॥

यह उक्त प्रकार पतिव्रत यदि साधक-सुन्दरी धारण किये रहे तो सदा के लिए सुहागिनी हो जाती है। कारण वह परब्रह्म-पति को प्रिय लगती है, इससे ब्रह्म के साथ अभेद होकर रहती है। उसके समान भाग्यशालिनी अन्य कोई भी नही कही जा सकती।

मन हरि भावन

साहिब जी का भावता, कोइ करै कलि माहि।
मनसा वाचा कर्मना, दादू घट घट नाहि॥ ३२॥

३२ मे कहते है—हरि को प्रिय लगे ऐसा कार्य मन से कोई विरला व्यक्ति ही करता है—इस कलियुग मे भगवान् को प्रिय लगने वाला निष्काम भाव से पतिव्रत रूप कार्य मन, वचन और कर्म से कोई विरला भक्त ही कर पाता है। यह प्रत्येक शरीर से नहीं होता। कारण, श्रेष्ठ भक्त को छोड़कर अन्य सभी शरीरधारी इन्द्रियो को प्रिय लगने वाले कार्यों मे ही सलग्न रहते है।

पतिव्रता निष्काम

आज्ञा मांहीं बैसै ऊठैं, आज्ञा आवै जाइ ।
आज्ञा मांहीं लेवै देवै, आज्ञा पहरै खाइ ॥ ३३ ॥

३३-३५ मे पतिव्रता की निष्कामता दिखा रहे है—जीवात्मा-पतिव्रता अपने स्वामी परब्रह्म की आज्ञानुसार ही बैठती-उठती है, आती-जाती है, लेती-देती है, पहनती-खाती है।

आज्ञा मांहीं बाहर भीतर, आज्ञा रहै समाइ ।
आज्ञा मांहीं तन मन राखै, दादू रहै ल्यौ लाइ ॥ ३४ ॥

भक्त शरीर से होने वाले कार्य भगवदाज्ञानुसार ही करता है। शरीर के भीतर मन से सकल्प-विकल्प, चित्त से चिन्तन, बुद्धि से विचार आदि सभी भगवदाज्ञानुसार ही करता है। इस प्रकार अपने तन मन को भगवदाज्ञा मे रखकर निष्काम पतिव्रत से युक्त भक्त भगवदाज्ञा मे समाया हुआ रहता है तथा वृत्ति भगवत् स्वरूप मे ही लगाकर रहता है।

पतिव्रता गृह आपने, करै खसम की सेव ।
ज्यों राखे त्यों ही रहै, आज्ञाकारी टेव ॥ ३५ ॥

जैसे पतिव्रता अपने घर मे रहकर सदा स्वामी की सेवा करती है, वैसे ही निष्काम साधक भगवान् से पतिव्रत रखकर अपने अधिकारानुसार सेवा करता रहता है। उसे भगवान् जैसे रखता है, वैसे ही रहता है। उसका तो आज्ञा पालन करने का स्वभाव ही बन जाता है।

सुन्दरी विलाप

दादू नीच ऊँच कुल सुन्दरी, सेवा सारी होइ।
सोई सुहागिनि कीजिये, रूप न पीजै धोइ ॥ ३६ ॥

३६-३७ मे निष्काम पतिव्रत युक्त साधक-सुन्दरी का नित्य सुहाग-प्राप्ति हित विलाप दिखा रहे है—हे भगवान् ! साधक-सुन्दरी चाहे नीच कुल की हो वा उच्च कुल की, उसकी तो भक्ति पूर्ण-प्रेमयुक्त होनी चाहिए। जिसकी भक्ति निष्काम पतिव्रत-युक्त हो, वही आप की नित्य समीपता रूप सुहाग प्राप्त करने योग्य है, उसे सुहागिनी कीजिये। शेष जैसे प्राकृत-सुन्दरी का रूप धोकर नहीं पान किया जाता, वैसे ही बहिरग साधन-सौन्दर्य तो प्रदर्शन मात्र ही है, उससे क्या बनता है ?

दादू जब तन मन सौंप्या राम को, ता सन का व्यभिचार ।
सहज शील संतोष सत, प्रेम भक्ति लै सार ॥ ३७ ॥

राम ! जब आप को तन-मन समर्पण कर दिया, तब उस निष्काम पतिव्रतयुक्त साधक-सुन्दरी से व्यभिचार कैसा ? अर्थात् उसे अपने से दूर क्यो रखते हो ? उसने तो स्वभाव से ही शील-

व्रत, सतोष, सत्य, नवधा भक्ति, प्रेम और लय योग को ही सार समझ कर अपनाया है। अत उसे दूर रखना योग्य नही।

पर पुरुषा सब परहरै, सुन्दरि देखै जाग।
अपना पीव पिछान कर, दादू रहिये लाग॥ ३८॥

साधक-सुन्दरी को चाहिये—भगवान् से भिन्न देवतादि की उपासना छोड़ दे। फिर निष्काम-पतिव्रत रूप अनन्य भक्ति द्वारा ज्ञान-जाग्रत मे आकर प्रभु को देखे और उस अपने परब्रह्म पति को पहचान कर, उसी मे अद्वैत भाव से अपनी वृत्ति लगा कर रहे, तभी नित्य-सुहाग प्राप्त हो सकता है।

आन पुरुष हूं बहिनड़ी, परम पुरुष भरतार।
हूं अबला समझूं नही, तू जानै करतार॥ ३९॥

भगवान् से भिन्न जितने पुरुष है, उनकी तो मै बहिन हूँ, वे मेरे उपास्य हो नहीं सकते। मेरा स्वामी तो परम पुरुष ब्रह्म ही है। हे सृष्टि के निमित्त कारण परब्रह्म ! मै तो साधन-बल-हीन अबला हूँ, नित्य— सुहाग प्राप्त होने का उपाय भी नही जानती। अत आप ही कृपा करके मुझे अपनी नित्य समीपता रूप सुहाग दे।

पतिव्रत

जिसका तिसको दीजिये, सांई सन्मुख आइ।
दादू नख शिख सौप सब, जनि यहु बट्या जाइ॥ ४०॥

४०-४१ मे कहते है—पतिव्रत से कभी न हटो=नख से शिखा पर्यन्त सब शरीर जिस परमेश्वर का रचा हुआ है, उसी परमेश्वर की आज्ञा मे रहते हुये यह शरीर उसे ही समर्पण कर देना चाहिए और पूर्ण रूप से ध्यान रखना चाहिए कि कहीं स्थूल तन तथा मन, बुद्धि, इन्द्रियादि सूक्ष्म-शरीर भगवत् परायणता को छोडकर अपने-अपने विषयो की ओर बँट कर, मायिक पदार्थों मे ही न लग जाये।

सारा दिल सांई सौ राखै, दादू सोइ सयान।
जे दिल बटै आपना, सो सब मूढ अयान॥ ४१॥

जो अपना मन ईश्वर-चिन्तन करते हुये पूर्ण रूप से ईश्वर मे ही लगाये रखता है, वही बुद्धिमान् है, और जो मन को भगवत् चिन्तन से हटा कर मायिक पदार्थों मे लगा देते है, वे सब जीव और ब्रह्म का भेद मानने वाले अज्ञानी प्राणियो मे भी अति मूढ़ है।

विरक्तता

दादू सारो सौ दिल तोर कर, साई सौ जोरै।
सांई सेती जोड़ कर, काहे को तोरै॥ ४२॥

वैराग्यपूर्वक प्रभु मे निरतर मन लगाने की प्रेरणा कर रहे है—देवी, देव, लोग, कुटुम्ब, देह, घर आदि सपूर्ण मायिक प्रपच से मन को हटाकर भगवान् मे ही लीन करे और जब भगवान् मे मन

स्थिर हो जाय, तब किसलिये भगवत् चिन्तन से चित्त हटावे, नही हटाना चाहिए। भक्त के काम तो भगवान् कर ही देते है।

अन्य लग्न व्यभिचार

साहिब देवै राखणा, सेवक दिल चोरै।
दादू सब धन साह का, भूला मन थोरै ॥ ४३ ॥

४३ मे प्रभु से भिन्न मे मन लगाना व्यभिचार है, यह कह रहे है—प्रभु अपना निष्काम पतिव्रत रखने के लिए ही नर-शरीर देते है किन्तु अज्ञानी प्राणी रूप सेवक भगवान् से मन को हटाकर सिद्धि आदि मे लगाता है और अपना मानव-जीवन खो देता है। हे मन ! तू सावधान रह, इस अल्प मायिक सुख के लिए भगवान् को क्यो भूलता है ? यदि तू मायिक सुखो की आशा छोडकर निरतर निष्काम पतिव्रत रूप अनन्यता से भगवद् भजन करेगा तो सच्चिदानन्द ब्रह्म रूप साह का ब्रह्मानन्द रूप सम्पूर्ण धन तेरे को मिलेगा।

पतिव्रत

दादू मनसा वाचा कर्मना, अन्तर आवै एक ।
ताको प्रत्यक्ष रामजी, बातें और अनेक ॥ ४४ ॥

४४-४८ में पतिव्रत की विशेषता बता रहे है—जिसकी मन, वचन और शरीर से वृत्ति अन्तर्मुख होकर एक राम से ही लगी है, उसी को रामजी का प्रत्यक्ष दर्शन होता है और अनेक प्रकार की दार्शनिक, पौराणिक आदि बाते तो कला मात्र ही है।

दादू मनसा वाचा कर्मना, हिरदै हरि का भाव।
अलख पुरुष आगे खडा, ताके त्रिभुवन राव ॥ ४५ ॥

जिसके हृदय मे मन, वचन और देह द्वारा सात्विक श्रद्धापूर्वक निरन्तर ही हरि-चिन्तन का प्रेम रहता है, मन इन्द्रियो के अविषय, त्रिभुवन-पति, अलख पुरुष उसके आगे खड़े रहते है अर्थात् उसे निरन्तर साक्षात्कार होता रहता है।

दादू मनसा वाचा कर्मना, हरिजी सौं हित होइ।
साहिब सन्मुख संग है, आदि निरंजन सोइ ॥ ४६ ॥

जिसका मन-वचन-कर्म से भगवान् मे प्रेम होता है, भगवान् उस पर अनुकूल रह कर उसका योग-क्षेम करते रहते है और जो ससार के आदि निरंजन देव ब्रह्म है, वे तो सदा उसके सग ही रहते है=उसे निरतर ब्रह्म का साक्षात्कार होता रहता है।

दादू मनसा वाचा कर्मना, आतुर कारण राम।
समरथ सांई सब करै, परगट पूरे काम ॥ ४७ ॥

जो मन-वचन-कर्म से निरजन राम के साक्षात्कारार्थ व्याकुल रहता है, उसके सन्मुख समर्थ भगवान् प्रकट होकर उसकी सम्पूर्ण कामनाये पूर्ण करते है।

नारी पुरुषा देखि कर, पुरुषा नारी होइ।
दादू सेवक राम का, शीलवंत है सोइ ॥ ४८ ॥

जो नारी पर-पुरुष को नारी रूप देखकर अपने मन को पति-परायण रखती है और जो पुरुष पर-नारी को पुरुष रूप देख कर एक-पत्नी व्रत पालता है, वे शीलवान् कहलाते है। वैसे ही जो अपनी वृत्ति एक ब्रह्म से भिन्न किसी मे भी नही जाने देता, वही निष्काम-पतिव्रत युक्त राम का भक्त कहलाता है।

अन्य लग्न व्यभिचार

पर पुरुषा रत बांझणी, जानै जे फल होइ।
जन्म बिगोवै आपना, दादू निष्फल सोइ॥ ४९॥

४९-५० मे अन्य लग्न व्यभिचार से जीवन निष्फल जाता है, यह कह रहे है—जैसे कोई नारी स्वय तो वन्ध्या हो और अपने पति को नपुसक जान कर पुत्रोत्पत्ति के लिए पर-पुरुष का सग करे, तब जो फल होता है, सो सब जानते ही है, अर्थात् पुत्र भी नही होता और पतिव्रत-धर्म भी नष्ट होता है। वैसे ही सकाम, भक्ति वैराग्यादि साधन तो स्वय नही करता और निर्गुण ब्रह्म को असमर्थ जान कर अन्य देवी-देवादि की उपासना करता है, तब ब्रह्म-ज्ञान रूप फल से वचित रह कर वह अपने जन्म को भी निष्फल ही खो देता है।

दादू तज भरतार को, पर पुरुषा रत होइ।
ऐसी सेवा सब करैं, राम न जानैं सोइ॥ ५०॥

जैसे जारिणी नारी अपने पति को त्याग कर पर-पुरुष से प्रेम करती है तब पतिव्रत-धर्म बिना, उसकी सेवा और उसका मनुष्य जन्म व्यर्थ ही जाता है, उसे पति-लोक नहीं मिलता। वैसे ही भगवान् को त्याग कर देवी-देवादि की सेवा सभी सकामी करते है किन्तु देवी-देवादि की सेवा से राम के स्वरूप को वे नही जान पाते और अपना अमूल्य नर-तन व्यर्थ ही खो देते है।

पतिव्रत

नारी सेवक तब लगै, जब लग सांई पास।
दादू परसै आन को, ताकी कैसी आस॥ ५१॥

५१ मे कहते है—निष्काम पतिव्रत बिना सच्चा भक्त होने की क्या आशा है ? नारी पतिव्रता तब तक ही कहलाती है जब तक अपने पति की सेवा मे तत्पर रह कर पति के पास रहती है और जब अन्य पुरुष से मिलती है तब उसके पतिव्रता होने की क्या आशा है ? वैसे ही भक्त वह है, जो जीवन पर्यन्त भगवान् का ही चिन्तन करता है। जो अन्य देवी-देवादि की उपासना मे रत है, उसके भक्त होने की क्या आशा है ?

अन्य लग्न व्यभिचार

दादू नारी पुरुष को, जानै जे वश होइ।
पिव की सेवा ना करै, कामणगारी सोइ॥ ५२॥

५२ मे कहते है—प्रभु सेवा से अन्य, प्रभु को वश करने के काम मे लग्न रखना, व्यभिचार है-जैसे कोई नारी मन मे यह सोचती है-मेरा पति मेरे अधीन हो जाये, उसके लिये पतिव्रत-युक्त

पति-सेवा तो करती नही, जादू-टोना आदि करके वश करना चाहती है तो समझना चाहिए, यह कामणकारी होने से पतिव्रता नही है। वैसे ही जो साधक निष्काम-पतिव्रत रूप भगवत्-सेवा न करके ईश्वर के असीम ऐश्वर्य को प्राप्त करना चाहता है और नाना अनुष्ठानादि करता है, उसको भी उक्त नारी के समान ही समझो।

करणा

कीया मन का भावता, मेटी आज्ञाकार।
क्या ले मुख दिखलाइये, दादू उस भरतार॥ ५३॥

५३ मे भक्ति न करने से होने वाले पश्चात्ताप को दिखा रहे है—"निष्काम पतिव्रत रूप अनन्यता से मेरी शरण हो।" यह भगवान् की आज्ञा तो मानी नही और आजन्म मन को प्रिय लगने वाले कार्य किये। अब उन भगवान् रूप भरतार को क्या भेट लेकर मुख दिखलावे। उनको तो भक्ति ही प्रिय है, सो हमने की नही। अत उनके आगे लज्जित ही होना पडेगा।

अन्य लग्न व्यभिचार

करामात कलंक है, जाके हिरदै एक।
अति आनंद व्यभिचारिणी, जाके खसम अनेक॥ ५४॥

५४-५६ मे पतिव्रता और व्यभिचारिणी के रूपक से निष्कामी और सकामी विषयक परिचय दे रहे है—जिस निष्काम पतिव्रत युक्त साधक-सुन्दरी के हृदय मे एक परमात्मा पति ही बसता है, उसके लिए अनेक भोग-सामग्री और नाना चमत्कारादिक कलक रूप है किन्तु जो विषयी रूप व्यभिचारिणी है, और जिसके देव-यक्षादि अनेक स्वामी है, उसे तो उन भोगादि सामग्रियो और चमत्कारादि मे ही अति आनन्द प्राप्त होता है।

दादू पतिव्रता के एक है, व्यभिचारिणी के दोइ।
पतिव्रता व्यभिचारिणी, मेला क्यों कर होइ॥ ५५॥

निष्काम साधक रूप पतिव्रता के हृदय मे तो एक परमात्मा ही रहता है। सकाम विषयी रूप व्यभिचारिणी के हृदय मे देवादि तथा इन्द्रिय-विषयादि रूप द्वैत रहता है। अत पतिव्रता और व्यभिचारिणी का समता रूप मिलन कैसे हो सकता है?

पतिव्रता के एक है, दूजा नाहीं आन।
व्यभिचारिणी के दोइ हैं, पर घर एक समान॥ ५६॥

निष्काम पतिव्रत साधना की परिपाकावस्था मे साधक रूप पतिव्रता के हृदय मे ब्रह्मात्मा की एकता रूप अद्वैत ही रहता है। उसके हृदय मे द्वैत-भाव कभी भी नही आता। सकाम विषयी रूप व्यभिचारिणी के हृदय मे द्वैत ही रहता है। उसके विषय रूप पर-घर और परब्रह्म रूप निज-घर समान ही है। उसे सासारिक विषयो से विक्षेप नही होता, अपितु रस आता है।

सुन्दरी सुहाग

दादू पुरुष हमारा एक है, हम नारी बहु अंग।
जे जे जैसी ताहि सौं, खेलैं तिस ही रंग॥ ५७॥

५७ मे साधक-सुन्दरी का सुहाग-सुख दिखा रहे है—हमारा परम पुरुष रूप पति तो एक है और हम साधक-सुन्दरी निष्काम कर्म, भक्ति, योग और ज्ञानादि साधन रूप लक्षणो वाली बहुत है। जिसकी जैसी भावना हे, वह वैसे ही सगुण प्रेम का निर्गुण प्रेम रूप रग के द्वारा उस परब्रह्म से ही चिन्तनानन्द, दर्शनानन्द आदि का अनुभव रूप खेल खेलती है।

पतिव्रत

दादू रहता राखिये, बहता देइ बहाइ।
बहते संग न जाइये, रहते सौ ल्यौ लाइ ॥ ५८ ॥

५८-६३ मे पतिव्रत रूप अनन्यता प्राप्त करने की प्रेरणा कर रहे है—निश्चल ब्रह्म को ही हृदय मे रक्खो, चचल मायिक प्रपच को त्याग दो। परिवर्तनशील सासारिक देवादि के साथ मत लगो, सदा एकरस रहने वाले परब्रह्म मे ही वृत्ति लगाओ।

जनि बाझे[1] काहू कर्म सौ, दूजै आरंभ जाइ ।
दादू एकै मूल गह, दूजा देइ बहाइ ॥ ५९ ॥

द्वैत भाव के द्वारा बाह्य वृत्ति से व्यवहार मे जाकर किसी काम्य कर्म के आरभ से अपने को ससार मे न बाँधो[1]। एकमात्र अद्वैत ब्रह्म रूप अपने मूल को ही ग्रहण करके द्वैत भाव रूप व्यभिचार को त्यागो।

बावें देखि न दाहिने, तन मन सन्मुख राखि।
दादू निर्मल तत्त्व गह, सत्य शब्द यहु साखि ॥ ६० ॥

सासारिक दु ख-सुख रूप बार्यी-दाहिनी दिशा की ओर मत देख, ये दु ख-सुखादि तो आने जाने वाले है, सदा एकरस कोई भी नही रहता। तू तो अपने तन मन को साधन द्वारा भगवत् के सन्मुख रखते हुये परब्रह्म रूप निर्मल तत्त्व का अभेद चिन्तन ही ग्रहण कर। सत्य परमात्मा के वेदादिक शब्दो की यही साक्षी है कि परब्रह्म की प्राप्ति अभेद चिन्तन द्वारा ही होती है।

दादू दूजा नैन न देखिये, श्रवणहुँ सुनै न जाइ ।
जिह्वा आन न बोलिये, अंग न और सुहाइ ॥ ६१ ॥

जैसे चन्द्र के उदय होने पर चकोर चन्द्रमा को छोडकर अन्य कुछ भी नही देखता, वैसे ही अपने नेत्रो से सर्व देश, काल, वस्तु मे परब्रह्म को ही देखे, अन्य कुछ न देखे। जैसे मृग बरवै राग को छोड़कर अन्य कुछ भी नही सुनता, वैसे ही परब्रह्म सबधी वार्ता को छोडकर अन्य कुछ भी न सुने और न मन को अन्य पर जाने दे। जैसे चातक पक्षी स्वाति के लिए ही पी-पी रटता है, वैसे ही परब्रह्म प्राप्ति के लिए परब्रह्म के नाम ही बोले, अन्य कुछ न बोले। जैसे मच्छी के शरीर को जल बिना अन्य घृत, दूध नही सुहाते, वैसे ही परब्रह्म को त्यागकर अन्य कुछ भी अच्छा न लगना चाहिए।

चरणहुँ अनत न जाइये, सब उलटा मांहिं समाइ ।
उलट अपूठा आप में, दादू रहु ल्यौ लाइ ॥ ६२ ॥

चरणो से ब्रह्म प्राप्ति के साधन सत्सगादि को छोडकर पतन के हेतु स्थानो मे नही जाना चाहिए। इन्द्रिय, अन्त करणादि सभी समाज ससार को पीठ दे, अन्तर्मुख हो, भीतर स्थित आत्म स्वरूप ब्रह्म में ही लीन रहे। इस प्रकार ब्रह्म मे ही वृत्ति लगाकर स्थिर रहना चाहिए।

दादू दूजै अन्तर होत है, जनि आनै मन मांहिं ।
तहँ ले मन को राखिये, जहँ कुछ दूजा नांहिं ॥ ६३ ॥

द्वैत भाव से जीव और परमात्मा के मध्य मे अन्तराल पडता है। इसलिए द्वैत-भाव मन मे नही रखना चाहिए। अपने मन को निष्काम पतिव्रत द्वारा ससार दशा से उठाकर जहाँ किंचित् मात्र भी द्वैत भाव नही रहता, उस अद्वैत ब्रह्म मे ही स्थिर रखना चाहिए।

भ्रम विध्वंसन

भरम तिमिर भाजै नहीं, रे जिय आन उपाइ।
दादू दीपक साज ले, सहजैं ही मिट जाइ ॥ ६४ ॥

६४-६६ मे भ्रमनाश का उपाय बता रहे है—रे जीव ! असत्य मायिक प्रपच मे सत्य बुद्धि रूप भ्रम और जीव ब्रह्म का भेद रूप अज्ञान, ज्ञान के बिना अन्य तीर्थ व्रतादि उपायो से दूर नहीं होते। अत उनको दूर करने के लिए निष्काम पतिव्रतादि अन्तरग साधनो के अभ्यास द्वारा अपने हृदय-घर मे ब्रह्म ज्ञान-दीप जगाकर वासना-वायु के निरोध द्वारा स्थिर कर ले। ऐसा करने से असत्य मे सत्य, भ्रम और जीव-ब्रह्म का भेद रूप अज्ञान अनायास ही तेरे हृदय से हट जायगा।

दादू सो वेदन नहिं बावरे, आन किये जे जाइ ।
सब दुख भंजन सांइयां, ताही सौं ल्यौ लाइ ॥ ६५ ॥

हे अज्ञात तत्त्व साधक ! वह जन्म मरणादिक ससार-पीड़ा ऐसी नही है, जो ब्रह्म ज्ञान बिना किसी अन्य उपाय के करने से दूर हो जाय। सपूर्ण दुखो के नाशक भगवान् है, उन्ही भगवान् मे वृत्ति लगा कर ब्रह्म ज्ञान को प्राप्त कर, तभी तेरा ससार-दु ख नष्ट होगा।

दादू औषधि मूली कुछ नहीं, ये सब झूठी बात।
जे औषधि ही जीविये, तो काहे को मर जात ॥ ६६ ॥

हे लोगो ! तुम जिन रसायनादि औषधियो से दीर्घजीवी और अमर होना चाहते हो, वे जडी-बूटी आदि औषधिया अमरता मे लेश मात्र भी कारण नही है। और जो लोग कहते है—"औषधि आदि उपायो से अमरता प्राप्त होती है, उनकी ये सभी बाते मिथ्या है। कारण, औषधि आदि से जीवित रहना सभव होता तो ससार के श्रीमान् क्यो मर जाते है ? उनको तो औषधि आदि उपाय प्राप्त होते ही है। अत अमरता ब्रह्म-ज्ञान से ही प्राप्त होती है, अन्यथा नही।

पतिव्रत

मूल गहै सो निश्चल बैठा, सुख मे रहै समाइ।
डाल पान भरमत फिरै, वेदो दिया बहाइ ॥ ६७ ॥

६७-७७ मे निष्काम पतिव्रत की विशेषताए बता रहे है—निष्काम पतिव्रत पूर्वक ब्रह्म चिन्तन द्वारा जो अपने मूल ब्रह्म को ग्रहण करता है, वह ब्रह्मानन्द मे निमग्न हुआ निश्चल रूप से ब्रह्म मे ही स्थिर रहता है और जो देवता-उपासना रूप डाल तथा स्वर्गादि-भोग रूप पत्तो मे रत है, वह भ्रमित होकर ससार मे ही फिरता रहता है। शका - अपने सुख के साधन को त्याग कर भ्रमण करता है, ऐसा क्यो ? उत्तर - वेद के कर्म-काड रूप रोचक वचनो ने उसे प्रलोभन के द्वारा बहका कर चचल कर दिया है।

सौ धक्का सुनहा[1] को देवै, घर बाहर काढै।
दादू सेवक राम का, दरबार न छाडै ॥ ६८ ॥

जैसे श्वान[1] को चाहे उसका स्वामी सौ बार धक्के दे-देकर घर के बाहर निकाल दे तो भी वह स्वामी के घर-द्वार को नही त्यागता, वैसे ही निष्काम पतिव्रत-युक्त को किसी कारण से कुछ समय तक भगवान् नही भी अपनावे, तो भी वह भगवद्-भजन रूप भगवान् के दरबार को नहीं त्यागता।

साहिब का दर छाड़ि कर, सेवक कहीं न जाइ ।
दादू बैठा मूल गह, डालो फिरै बलाइ[1] ॥ ६९ ॥

निष्काम पतिव्रत युक्त भक्त भगवान् का भजन रूप द्वार छोडकर कहीं भी नही जाता=सकाम कर्मों द्वारा प्राप्त होने योग्य स्वर्गादि लोको के भोगादि मे उसकी वृत्ति नही जाती। वह तो ब्रह्म-रूप मूल को ब्रह्म-चिन्तन रूप हाथ से पकड़ कर स्थित है। देवादि उपासना रूप डालो पर उसकी वृत्ति क्यो फिरे, देवादि उपासना उसे दु ख-रूप[1] भासती है।

दादू जब लग मूल न सींचिये, तब लग हरा न होइ ।
सेवा निष्फल सब गई, फिर पछताना सोइ ॥ ७० ॥

जब तक वृक्ष की जड मे पानी न देकर डाल-पत्तो पर डाला जायगा, तब तक वृक्ष हरा नहीं हो सकता, पत्ते गलकर विरूप हो जायगा। सींचने वाले की सेवा निष्फल होगी और अन्त मे वह पश्चात्ताप ही करेगा। वैसे ही जब तक प्राणी भगवान् को छोड़कर देवादि की उपासना करेगा, तब तक सुखी नही हो सकता। उलटा, उसका जन्मादि दु ख बढेगा और दु ख के समय पश्चात्ताप भी करेगा।

दादू सींचे मूल के, सब सीच्या विस्तार ।
दादू सीचे मूल बिन, बाद गई बेगार ॥ ७१ ॥

जैसे वृक्ष के मूल को पानी देने से उसकी डाली-पत्ते आदि सभी का विस्तार हरा हो जाता है, वैसे ही निष्काम पतिव्रत युक्त निरजन राम की उपासना करने से देवादि सभी प्रसन्न हो जाते है। मूल न सीचकर पत्तो पर पानी डालने से सेवा व्यर्थ जाती है, वैसे ही भगवद्-भजन न करके देवादि की उपासना की जाय, तो उसे परमानन्द की प्राप्ति नही होने से उपासक की अभिलाषा पूर्ण नही होती।

सब आया उस एक में, डाल पान फल फूल।
दादू पीछे क्या रह्या, जब निज पकड्या मूल ॥ ७२ ॥

जैसे वृक्ष का मूल पकड़ लेने पर उसके, डाल, पात, फूल, फलादि सभी हाथ मे आ जाते है, वैसे ही जब निष्काम पतिव्रत साधना द्वारा अपना मूल परब्रह्म पकड़ लिया जाता है, तब बिना पकडा क्या रह जाता है ? अन्य सब तो उसी के विवर्त्त है।

खेत न निपजे बीज बिन, जल सींचे क्या होइ।
सब निष्फल दादू राम बिन, जानत हैं सब कोइ ॥ ७३ ॥

पृथ्वी मे बीज नही डाले और जल निरतर डाले तो क्या होगा ? परिश्रम ही होगा, खेत तो निपजेगा नही। वैसे ही निष्काम पतिव्रत-साधन द्वारा राम-भजन किये बिना सभी बहिरग साधन तीर्थादि राम का साक्षात्कार कराने मे सफल नही हो सकते, यह बात सन्त विद्वान् आदि सभी जानते है।

दादू जब मुख मांहीं मेलिये, तब सबही तृप्ता होइ ।
मुख बिन मेले आन दिश, तृप्ति न मानै कोइ ॥ ७४ ॥

जब सात्विक भोजन का ग्रास मुख मे रखा जाता है, तब इन्द्रियाँ मनादि सभी तृप्त होते है और मुख को छोडकर दूसरे नाक-कानादि द्वारो मे ग्रास रखा जाय तो किसी की भी तृप्ति नही होगी, उलटी हानि की सभावना रहती है। वैसे ही यह जीव अपनी वृत्ति परब्रह्म मे रक्खे तो गुरु, सन्त, देवादि सभी की तृप्ति होगी और स्वय मुक्त होगा। अन्य किसी मे रखता है तो तृप्ति के स्थान मे जन्मादि क्लेश ही पाता है। अत वृत्ति ब्रह्म मे ही रखनी चाहिए।

जब देव निरंजन पूजिये, तब सब आया उस मांहिं ।
डाल पान फल फूल सब, दादू न्यारे नांहिं ॥ ७५ ॥

जैसे वृक्ष का मूल सीचने मे डाल, पत्र, फूल, फलादि सभी का पोषण होता है, उन्हे अलग नही सीचा जाता, वैसे ही निष्काम पतिव्रत पूर्वक निरजन देव की ब्रह्म-चिन्तन रूप पूजा की जाती है तब देवादि उपासना और सम्पूर्ण साधन उसी मे आ जाते है, साध्य प्राप्ति के लिए अन्य साधन करने की आवश्यकता नही रह जाती।

दादू टीका राम को, दूसर दीजे नांहिं।
ज्ञान ध्यान तप भेष पख, सब आये उस मांहिं ॥ ७६ ॥

साधक-सुन्दरी को चाहिए-वह निरजन राम के ही तिलक लगावे, वृत्ति राम के स्वरूप मे ही लीन करे, अन्य मे नही। उक्त निष्काम पतिव्रत पूर्वक राम मे वृत्ति लगाने रूप साधन मे ज्ञान, ध्यान, तप, भेष, पक्ष आदि सभी साधन आ जाते है। अन्य साधन करने की आवश्यकता नहीं रहती।

साधू राखै राम को, ससारी माया।
ससारी पल्लव गहै, मूल साधो पाया॥ ७७॥

सतजन तो अपने हृदय मे नाम चिन्तन द्वारा राम को ही रखते है—और ससारी जन अपने हृदय मे माया को रखते है। इसलिए सतो ने तो निरजन राम रूप मूल को प्राप्त किया है और ससारी जनो ने भोग रूप कोपले प्राप्त की है।

अन्य लग्न व्यभिचार

दादू जे कुछ कीजिये, अविगत बिन आराध।
कहबा सुनबा देखबा, करबा सब अपराध॥ ७८॥

७८-७९ मे कहते है—निरजन राम की उपासना छोड़ अन्य जो भी करना है सो व्यभिचार है। मन इन्द्रियो के अविषय परब्रह्म की उपासना बिना जो कुछ कहना, सुनना, देखना और कार्य करना, वह सब जन्मादि रूप अनर्थ का हेतु होने से अपराध है।

सब चतुराई देखिये, जे कुछ कीजै आन।
दादू आपा सौपि सब, पिव को लेहु पिछान॥ ७९॥

निरजन राम से निष्काम पतिव्रत को छोडकर अन्य जो कुछ भी ससारी प्राणी करते है, वह सब ससार बन्धन मे फँसने की चतुराई ही देखी जाती है। अत निष्काम पतिव्रत द्वारा अपने को परब्रह्म के समर्पण करके निरजन राम रूप स्वामी को आत्म रूप से पहचानो।

पतिव्रत

दादू दूजा कुछ नही, एक सत्य कर जान।
दादू दूजा क्या करै, जिन एक लिया पहचान॥ ८०॥

८०-८६ मे पतिव्रत सम्बन्धी विचार प्रकट कर रहे है—परब्रह्म से भिन्न जो ससार प्रतीत हो रहा है, वह ब्रह्म का विवर्त्त है, ब्रह्म से भिन्न नहीं। मात्र एक ब्रह्म को ही सत्य जानो। जिन ज्ञानी जनो ने अद्वैत ब्रह्म को आत्म रूप से जान लिया है, उनका यह विवर्त्त रूप द्वैत क्या कर सकता है ?

कोई बाँछै मुक्ति फल, कोई अमरापुरि बास।
कोई बाँछै परमगति, दादू राम मिलन की प्यास॥ ८१॥

कोई तो अपने किये कर्म का फल—सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सायुज्य, नामक चार प्रकार की मुक्ति चाहते है। कोई देवताओ की पुरी स्वर्ग का निवास चाहते है। कोई अति उत्तम गति चाहते है किन्तु हमे तो केवल निरजन राम का साक्षात्कार करने की ही अभिलाषा है।

तुम हरि हिरदै हेत सौं, प्रकटहु परमानन्द ।
दादू देखे नैन भर, तब केता होइ आनन्द ॥ ८२ ॥

हे परमानन्द रूप हरे ! हमारा साधन तो ऐसा दिखाई नही देता कि—हम आप को प्रत्यक्ष रूप से देख सके किन्तु आप अपने भक्त-वत्सलता रूप प्रेम से ही हमारे हृदय मे प्रकट होने की कृपा करे। हम अपने नेत्रो को तृप्त करते हुए आपका साक्षात्कार करेगे। जब आपका दर्शन होगा तब हमे कितना आनद प्राप्त होगा, वह अकथनीय ही होगा, किसी प्रकार कहा न जा सकेगा।

प्रेम पियाला राम रस, हमकों भावे येह ।
रिधि सिधि मांगैं मुक्ति फल, चाहै तिनकों देइ ॥ ८३ ॥

भगवन् ! हमको तो आपके प्रेम रूप प्याले मे निरजन राम का साक्षात्कार रूप भर करके दीजिये। हमे तो यही अच्छा लगता है। ऋद्धि, सिद्धि और मुक्ति आदि फल तो जो इनकी इच्छा करते है, उनको ही दीजिये, हमे नही चाहिए।

कोटि वर्ष क्या जीवनां, अमर भये क्या होइ ।
प्रेम भक्ति रस राम बिन, का दादू जीवन सोइ ॥ ८४ ॥

प्रेमाभक्ति द्वारा राम-रस का पान किये बिना कोटि वर्ष जीवित रहने वा अमर होने से क्या लाभ होता है ? दु ख ही मिलता है। वह दु ख रूप जीवन क्या है ? व्यर्थ ही है।

इस साखी से करडाले के दीर्घजीवी प्रेत को उपदेश कर भक्ति करने की आज्ञा दी थी। प्रसग कथा - दृ सु सि त. ११-१२ मे देखो।

कछू न कीजे कामना, सहगुण निर्गुण होहि ।
पलट जीव तैं ब्रह्म गति, सब मिल मानैं मोहि ॥ ८५ ॥

यदि मन बुद्धि इन्द्रियॉ अन्य कुछ भी सासारिक कामना न करे और सब मिलकर निष्काम पतिव्रत द्वारा मुझ निर्गुण ब्रह्म की ही सत्ता स्वीकार करके मेरा ही चिन्तन करे तो यह सगुण जीव जीवत्व-भाव से बदल कर निर्गुण हो जाता है। फिर ब्रह्म मे गति करता है=ब्रह्म रूप ही हो जाता है।

घट अजरावर ह्वै रहै, बन्धन नाही कोइ ।
मुक्ता चौरासी मिटै, दादू संशय सोइ ॥ ८६ ॥

उक्त प्रकार निष्काम पतिव्रत रूप अनन्य भक्ति करने वालो का शरीर देवताओ से भी श्रेष्ठ हो जाता है और पूर्व अज्ञान काल मे जो चौरासी लक्ष योनियो मे भ्रमण कराने का हेतु जीव-ब्रह्म विषयक सशय रहता है, वह भी नष्ट हो जाता है तथा कोई भी सासारिक बन्धन बॉधने वाला नही रहता, वह जीवन्मुक्त होकर विचरता है।

परिचय पतिव्रत

सालोक्य संगति रहै, सामीप्य सन्मुख सोइ।
सारूप्य सारीखा भया, सायुज्य एकै होइ॥ ८७॥

८७-८८ मे परिचय पूर्वक पतिव्रत दिखा रहे है—उपासना द्वारा प्राप्य चतुर्विध मुक्ति वता रहे है-उपास्य के लोक मे रहना सालोक्य मुक्ति कहलाती हे। उपास्य के समीप सन्मुख रहे, उसे ही सामीप्य मुक्ति कहते है। उपास्य के समान उपासक का रूप हो जाना ही सारूप्य मुक्ति कहलाती है। उपास्य से एक हो जाय उसे ही सायुज्य मुक्ति कहते है।

राम रसिक बाँछै नही, परम पदारथ चार।
अठ सिधि नव निधि का करै, राता सिरजनहार॥ ८८॥

निरजनराम के दर्शन-रस के रसिक सन्त ८७ मे बताई हुई चार मुक्ति रूप परम पदार्थो की भी इच्छा नही करते, फिर अष्ट सिद्धि और नवनिधियो को तो वे करे ही क्या ? इस प्रकार परिचय पूर्वक पतिव्रत युक्त भक्त पूर्णत निष्काम होकर एक परमेश्वर मे ही रत रहते है। अष्ट सिद्धि, नवनिधि अग २-१०४ मे देखो।

अन्य लग्न व्यभिचार

स्वारथ सेवा कीजिये, तातै भला न होइ।
दादू ऊसर बाहिकर, कोठा भरै न कोइ॥ ८९॥

८९-९२ मे स्वार्थ सिद्धि के लिए प्रेम करना व्यभिचार ही है—जैसे ऊसर पृथ्वी मे बीज डाल कर उससे उत्पन्न धान्य से कोई भी मकान नही भर सकता। वैसे ही सकामी स्वार्थ सिद्धि के लिए सेवा करता है, तब उससे आत्म-कल्याण रूप भला नही होता, स्वार्थ ही सिद्ध होता है।

सुत वित[1] मागै बावरे, साहिब-सी निधि मेलि।
दादू वे निर्फल गये, जैसे नागर बेलि॥ ९०॥

निरजन राम जैसी अपूर्व सम्पत्ति को त्याग कर जो मूर्ख लोग अपने साधन का फल पुत्र और कनकादिक धन[1] ही मागते है, वे लोग जैसे नागर-बेलि फल से वचित रहती है, वैसे ही आत्म-ज्ञान फल से वचित रहकर लौकिक अभिलाषा पूर्ति मे ही अपना जीवन खो देते है।

फल कारण सेवा करैं, जाचै[1] त्रिभुवनराव।
दादू सो सेवक नही, खेलै अपना डाव॥ ९१॥

जो लोक सासारिक भोग रूप फल के लिए ही भक्ति करते है और त्रिभुवनपति परमात्मा से स्त्री, पुत्र, धनादि की याचना[1] करते है वे निष्काम पतिव्रत युक्त भक्त नही है। वे तो जुआरी के समान अपना दाँव खेल रहे है। जैसे जुआरी पासे की इच्छानुसार सख्या आते ही पैसे माँग लेता है, वैसे ही समय आने पर भगवान् से भोग पदार्थ माँग लेते है, वे भक्ति नही करते, भक्ति का ढोग ही करते है।

सहकामी सेवा करैं, मॉगैं मुग्ध[1] गॅवार।
दादू ऐसे बहुत हैं, फल के भूंचनहार॥ ९२॥

सकामी जन भक्ति करते है तब फलाशा से मोहित[1] होकर वे मूर्ख भगवान् से सासारिक भोग ही मॉगते है। ऐसे ही भक्त ससार मे बहुत मिलते है जो भक्ति करके सासारिक भोग ही मॉगते है।

स्मरण नाम माहात्म्य

तन मन ले लागा रहै, राता सिरजनहार।
दादू कुछ मॉगै नहीं, ते विरला संसार॥ ९३॥

९३-९४ मे नाम-स्मरण का माहात्म्य कह रहे है—शरीर और मन को सयम द्वारा अनुचित कर्म और भावनाओ से उठकर विश्व रचयिता भगवान् के भजन मे रत रहता है और कुछ भी नही मॉगता, ऐसा निष्काम भक्त ससार मे कोई विरला ही होता है। ऐसा होना नाम-स्मरण का ही माहात्म्य है।

दादू कहै—साई को संभालतां, कोटि विघ्न टल जाहिं।
राई मान बैसंदरा[1], केते काठ जलाहिं॥ ९४॥

जैसे राई जितनी अग्नि[1] से कितने ही काष्ठ-खड भस्म हो जाते है, वैसे ही निष्काम पतिव्रत पूर्वक भगवन्नाम स्मरण से कोटि विघ्न भी टल जाते है।

करतूति कर्म

कर्मैं कर्म काटै नहीं, कर्मैं कर्म न जाइ।
कर्मैं कर्म छूटैं नहीं, कर्मैं कर्म बॅधाइ॥ ९५॥

इति निहकर्मी पतिव्रता का अग समाप्त॥ ८॥ सा ९९६॥

९५ मे कहते है कर्म से कर्म नहीं कटते—उद्योग रूप कर्मों द्वारा कोई भी प्रारब्ध कर्म को नही काट सकता। न कर्मों से आगामी कर्मों का अभाव होता है और न कर्मों से वर्तमान कर्म ही छूटते है। प्रत्युत कर्मो द्वारा कर्म-बन्धन बढता ही जाता है। अत कर्म बन्धन से मुक्त होने के लिए निष्काम पतिव्रत रूप अनन्य भक्ति द्वारा ब्रह्मज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका निष्कामी पतिव्रता का अग समाप्त॥ ८॥

अथ चेतावनी का अंग ९

भगवान् को निष्काम पतिव्रत रूप अनन्यता प्रिय है। उसी की चेतावनी देने के लिए "चितावनी का अग" कथन करने मे प्रवृत्त मगल कर रहे है—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत:।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत:॥ १॥

जिनकी दी हुई चेतावनी द्वारा साधक मायिक प्रपच से पार होकर परब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरजन राम, सद्गुरु और सर्व सन्तो को हम प्रणाम करते है।

दादू जे साहिब को भावै नहीं, सो हम तै जनि होइ ।
सतगुरु लाजै आपना, साधु न मानै कोइ ॥ २ ॥

२ मे अपने को ही सावधान कर रहे है—जो परमात्मा को प्रिय न हो ऐसे सकल्प, वचन और कार्य का व्यवहार हमसे कभी भी नही होना चाहिए। कारण, ऐसे व्यवहार से अपने सद्गुरु को भी लज्जित होना पड़ता है और न कोई सत ही अच्छा मानते है।

दादू जे साहिब को भावै नहीं, सो सब परहर प्राण ।
मनसा वाचा कर्मना, जे तूं चतुर सुजाण ॥ ३ ॥

३-१५ मे सभी प्राणियो को सचेत कर रहे है—हे प्राणधारी जीव ! यदि तू व्यवहार मे चतुर और समझदार है तो ईश्वर को जो प्रिय नही लगे सभी व्यवहार त्याग दे और भगवान् को प्रिय लगने वाली अनन्य भक्ति मन, वचन और कर्म से कर। मन से ध्यान, वाणी से नाम उच्चारण और शरीर से सत-सेवादि कर।

दादू जे साहिब को भावै नहीं, सो जीव न कीजी रे ।
परहर विषय विकार सब, अमृत रस पीजी रे ॥ ४ ॥

हे जीव ! पर-पीड़नादि जो भी कुत्सित व्यवहार भगवान् को प्रिय न लगे, वह कभी भी मत किया कर। सासारिक विषय और कामादि सभी विकारो को त्याग कर भगवद् भजनामृत-रस का ही पान किया कर।

दादू जे साहिब को भावै नहीं, सो बाट न बूझी रे ।
सांई सौ सन्मुख रही, इस मन सौ झूझी रे ॥ ५ ॥

हे जीव ! जो भगवान् को प्रिय नही लगता है ऐसे अन्याय-प्रधान पाप-मय मार्ग मे चलना तो दूर, किन्तु तू तो उसके विषय मे कोई भी बात मत पूछ। कदाचित् तेरा मन उधर जाय तो भी मन से प्रत्याहार रूप युद्ध करके उसे रोक और सदा भगवद्-भजन द्वारा भगवान् के सन्मुख ही स्थित रह।

दादू अचेत न होइये, चेतन सौ चित लाइ ।
मनवा सूता नींद भर, साई सग जगाइ ॥ ६ ॥

प्राणी ! अपने कल्याण मार्ग मे अचेत न रह, सावधान होकर ज्ञान स्वरूप ब्रह्म मे चित्त लगा। यह तेरा मन मोह रूप घोर निद्रा मे सूता पड़ा है। इसे ज्ञान द्वारा जगा कर प्रभु के सग करके प्रभु मे लीन कर।

दादू अचेत न होइये, चेतन सौं कर चित्त ।
ये अनहद जहा तैं ऊपजै, खोजो तहाँ ही नित्त ॥ ७ ॥

हे प्राणियो ! धनादि जड़ पदार्थों के मोह से अचेत मत होओ, सावधान होकर चेतन आत्मा की ओर चित्त को फेरो और जहा अनाहत चक्र मे अनाहत ध्वनि उत्पन्न होती है, वहा ही मन को अन्तर्मुख करके ब्रह्म को नित्य प्रति खोजो। अवश्य साक्षात्कार होगा।

दादू जन ! कुछ चेत कर, सौदा लीजै सार ।
निखर कमाई न छूटणा, अपने जीव विचार ॥ ८ ॥

हे जन ! कुछ तो चेत कर, असत्य व्यापार मे क्यो फँसा है ? तुझे ज्ञान, भक्ति आदि सार वस्तुए ही अपने श्वास-द्रव्य से खरीदनी चाहिए। तू अपने हृदय मे ही विचार करके देख, आत्म-ज्ञान रूप शुद्ध कमाई के बिना इस ससार बन्धन से कभी भी नही छूट सकेगा।

दादू कर साई की चाकरी, ये हरि नाम न छोड।
जाणा है उस देश को, प्रीति पिया सौं जोड ॥ ९ ॥

प्राणी ! परमात्मा की निष्काम भक्ति कर, भक्ति के साधक ये जो-निरजन-राम, परब्रह्म आदि हरि के नाम है, उन्हे कभी भी मत छोड। जो तुझ को प्रिय लगे उसी नाम का निरतर चिन्तन कर। तू स्वय इस ससार देश मे दु ख से व्याकुल होकर सुख-स्वरूप ब्रह्म-प्रदेश की अभिलाषा कर ही रहा है। अत तुझे वहा जाना है तो ब्रह्मरूप स्वामी से प्रीति कर, तब ही जा सकेगा, अन्यथा नही।

आपा पर सब दूर कर, राम नाम रस लाग ।
दादू अवसर जात है, जाग सकै तो जाग ॥ १० ॥

देहादि अहकार—"मै मेरा, तू तेरा" आदि सब भेद भावनाए दूर करके राम-नाम चिन्तन-रस के पान करने मे सलग्न हो। इस कार्य के लिए यह मनुष्य शरीर ही उत्तम अवसर है और तुझे प्राप्त भी है, किन्तु तेरे ही प्रमाद से यह तेरे हाथ से जा रहा है। अत तू मोह निद्रा से जाग सके तो शीघ्र ही जागकर कल्याण का साधन कर, नही तो फिर पश्चात्ताप ही करना होगा।

बार बार यहु तन नही, नर नारायण देह।
दादू बहुरि न पाइये, जन्म अमोलक येह ॥ ११ ॥

नारायण की प्राप्ति का साधन यह नरदेह बारबार नही मिलता। अन्य देव, पशु, पक्षी, कीटादि शरीरो मे भी भ्रमण होता ही रहता है। नर शरीर के छोडते ही पुन नर शरीर ही मिले, यह नियम नही है, न जाने पुन कब मिले। अत. इस अमूल्य शरीर को भगवद्-भक्ति द्वारा सफल बनाना चाहिए।

एका-एकी राम सौं, कै साधू का सग ।
दादू अनत न जाइये, और काल का अंग ॥ १२ ॥

नर जन्म को सफल बनाने के लिए निष्काम होकर अकेला ही निरजन राम से वृत्ति लगाये रक्खे और यदि सग करना ही हो तो राम के स्वरूप को समझने वाले निष्कामी सतो का ही करे। अन्य सकाम साधना व सकामी मानवो के सग मे नही जाना चाहिए। कारण, वे तो काल के ही अग है-जन्मादि ससार को बढाने वाले ही है।

दादू तन मन के गुण छाडि सब, जब होइ नियारा ।
तब अपने नैनहुँ देखिये, परगट पीव प्यारा ॥ १३ ॥

जब जीव शरीर के हिसादि और मन के कामादि सब गुणो को त्याग कर देहादि ससार से अलग हो जाता है, तब अपने विचार-नेत्रो से वा वाह्य नेत्रो से भी अपने प्रियतम परब्रह्म स्वामी को प्रत्यक्ष ही देखता है।

दादू झाती[१] पायें[२] पसु[३] पिरी[४], अंदर सो आहे[५] ।
होणी[६] पाणे[७] बिच्च मे, महर न लाहे[८] ॥ १४ ॥

वे प्रियतम[४] प्रभु तेरे भीतर ही है[५]। तू अन्तर्मुख[१] होकर देख[३], तुझे प्राप्त होंगे। हमे भीतर ही मिले[२] है। अब[६] अपने[७] मन मे उस परमेश्वर की कृपा का अनुभव करना कभी भी मत छोड[८]।

दादू झाती[१] पाये[२] पसु[३] पिरी[४], हांणें[५] लाइ[६] न बेर ।
साथ सभोई[७] हल्लियो[८], पोइ[९] पसंदो[१०] केर[११] ॥ १५ ॥

इति चितावनी का अग समाप्त ॥ ९ ॥ सा १०११ ॥

प्रियतम[४] प्रभु को अन्तर्मुख[१] होकर देख[३], तुझे प्राप्त होंगे, हमे भीतर ही प्राप्त[२] हुये है। अब[५] देर मत लगा[६], तेरे साथी सभी[७] चले[८] गये है। तू पीछे[९] मायिक ससार मे क्या[११] देख[१०] रहा है ?

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका चेतावनी का अंग समाप्त ॥ ९ ॥

अथ मन का अंग १०

चेतावनी सुनकर मानव के हृदय मे मनो-निग्रहादिक मन विषयक अनेक प्रश्न उठते है। इसलिए अब "मन का अग" कहने मे प्रवृत्त मगल कर रहे है—

दादू नमो नमो निरजन, नमस्कार गुरुदेवत ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणाम पारगत ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक मन के विकारो से पार होकर ज्ञान द्वारा परब्रह्म को प्राप्त होता है उन निरजन राम, सद्गुरु और सर्व सतो को हम अनेक प्रणाम करते है।

दादू यहु मन बरजी बावरे, घट मे राखी घेरि ।
मन हस्ती माता बहै, अकुश दे दे फेरि ॥ २ ॥

२ मे मनोनिरोध की प्रेरणा कर रहे है—हे अज्ञात तत्त्व साधक ! यह मन कुकर्म मे जा रहा है, इसे कुकर्मों का फल दु खदायी दिखा कर रोक। यह मन-हस्ती विषय-मद से मस्त होकर ससार वन मे जा रहा है। इसे ससार को मिथ्या बताने वाले वैराग्य-वर्धक सद्गुरु के वचन रूप अकुश मार-मार कर परब्रह्म की ओर लौटा तथा हृदयस्थ आत्मस्वरूप ब्रह्म मे ही निरतर स्थिर कर।

हस्ती छूटा मन फिरै, क्यों ही बँध्या न जाइ।
बहुत महावत पच गये, दादू कछु न वशाइ ॥ ३ ॥

३ मे मन की शक्ति का परिचय दे रहे है—कालादि मद से मस्त हुआ मन-हस्ती जब मर्यादा-निगड से खुलकर विषय वन मे फिरता है, तब तीव्र वैराग्य और सतत अभ्यास बिना अन्य किसी भी उपाय से नही बाधा जाता। उसको बाधने के लिए, तीव्र वैराग्य और अभ्यास से रहित, अनेक साधक रूप महावत अन्य नाना साधन रूप प्रयत्न करके थक गये किन्तु उनका कुछ भी वश न चला-वे उसे वश मे न कर सके।

जहाँ तैं मन उठ चलै, फेरि तहाँ ही राखि।
तहँ दादू लै लीन कर, साध कहैं गुरु साखि ॥ ४ ॥

४-५ मे मनोनिग्रह का उपाय बता रहे है—साधक ! जिस आत्मा की सत्ता प्राप्त करके यह मन अपनी अप्रकट अवस्था से प्रकट होकर विषयो की ओर चले, तब इसको विषयो से पीछे लौटा कर तथा इसकी अप्रकटावस्था मे ही इसे रोककर, आत्म चिन्तन द्वारा उसी आत्मा के स्वरूप मे लीन कर। मन को जीतने वाले सत मनो-निग्रह का यही उपाय कहते है और सद्गुरु की भी इसमे साक्षी है।

थोरे थोरे हठ किये, रहेगा ल्यौ लाइ।
जब लागा उनमनि सौं, तब मन कहीं न जाइ ॥ ५ ॥

४ मे बताई हुई रीति से किचित २ रोकने का अभ्यास शनै -शनै करते रहने से मन अपनी वृत्ति आत्म-स्वरूप ब्रह्म मे लगाकर रहने लगेगा। इस प्रकार अभ्यास की प्रौढावस्था मे जब सहजावस्था रूप उनमनी नामक समाधि मे लगेगा, तब उस अवस्था को छोड कर यह मन सासारिक विषयो के किसी भी प्रदेश मे नही जायगा। इस लोक और स्वर्ग के भोगो की इच्छा न करेगा, निरतर ब्रह्म मे ही लीन रहेगा।

आडा दे दे राम को, दादू राखै मन।
साखी दे सुस्थिर करै, सोई साधू जन ॥ ६ ॥

६-७ मे मनोनिग्रह करने वाले श्रेष्ठ साधक का परिचय दे रहे है—जो विषयो मे जाते हुये मन का राम-नाम-स्मरण रूप आड लगा कर स्वस्थान मे ही रोक लेता है और गुरु-वेदादि के ज्ञान-वैराग्य प्रधान वचन साक्षी द्वारा समझा कर सम्यक् ब्रह्म मे ही स्थिर करता है, वही श्रेष्ठ सत है।

सोई शूर जे मन गहै, निमष न चलनै देइ।
जब ही दादू पग भरै, तब ही पाकड लेइ ॥ ७ ॥

जो विषयो मे जाते हुये मन को विषयो का मिथ्यात्व और भगवद् भजन का लाभ दिखाकर भगवत् स्मरण द्वारा ग्रहण कर लेता है तथा भगवत् स्वरूप से एक पलक भी दूर नही जाने देता, कदाचिद् विषयो की ओर वासना-पैर उठाता भी है, तो उसी क्षण अनासक्ति रूप हाथ से पकड लेता है, वही साधक वीर माना जाता है।

जेती लहर समद की, ते ते मनहि मनोरथ मार।
बैसे सब संतोष कर, गह आतम एक विचार ॥ ८ ॥

८-१० मे मनोनिग्रह का उपाय कह रहे है—जैसे समुद्र की लहरे अपार है वेसे ही मन के मनोरथ अपार हे। उन सव मनोरथो को मार कर, सतोप ओर व्रह्म विचार द्वारा अद्वैत आत्म स्वरूप व्रह्म को ग्रहण करके बैठता हे—व्रह्म भिन्न वृत्ति नही होने देता, तव ही मन निरुद्ध होता है।

दादू जे मुख मांहीं बोलता, श्रवणहुँ सुनता आइ ।
नैनहुँ मॉही देखतां, सो अंतर उरझाइ ॥ ९ ॥

जो वाक् इन्द्रिय रूप मुख मे आकर यथा योग्य वोलता है, श्रवण इन्द्रिय मे आकर सम्यक् सुनता है, नेत्र इन्द्रिय मे आकर देखता है, जिसके विना इन्द्रिया अपना काम करने मे समर्थ नही होती, वही मन है। उसे ही अन्तरात्मा मे लगा। ऐसा अभ्यास करने से मन निरुद्ध होगा।

दादू चुम्बक देखि कर, लोहा लागै आइ ।
यो मन गुण इन्द्री एक सौं, दादू लीजे लाइ ॥ १० ॥

जैसे चुम्बक पत्थर को समीप देख कर उसके आस पास का लोहा उसी के आकर लग जाता है वैसे ही गुरु उपदेश के द्वारा आत्मा के स्वरूप को जान कर मन और मन के गुण मननादि तथा इन्द्रियादि सभी को अद्वैत आत्मा के स्वरूप मे ही लगा देना चाहिए। ऐसा करने से मन निरुद्ध हो जाता है।

मन का आसन जे जिव जानै, तो ठौर ठौर सब सूझै।
पचो आनि एक घर राखै, तब अगम निगम सब बूझै ॥ ११ ॥

११-१२ मे मन स्थिरता पूर्वक ज्ञान का फल बता रहे है—यदि मन के आश्रय रूप आसन आत्म स्वरूप ब्रह्म को जीव जान जाय तो प्रत्येक स्थान की सभी वस्तुओ मे उसे ब्रह्म ही भासने लगता है और पच ज्ञानेन्द्रियो को उनके विषयो से लौटा कर एक अद्वैत ब्रह्म-परायण ही रख सके तब तो, मन इन्द्रियो के अविषय, वेद के सर्वस्व ब्रह्म विषयक सभी रहस्य समझने लगता है।

बैठे सदा एक रस पीवै, निर्वैरी कत झूझै।
आत्मराम मिजै जब दादू, तब अग न लागे दूजै ॥ १२ ॥

जब मन स्थिर होकर सदा एक अद्वैत ब्रह्म चिन्तन-रस का पान करता है, तब वह स्वस्वरूप ब्रह्म को जानकर निर्वैरी हो जाता है। अत कही किसी से भी शास्त्र विषयक वादविवाद रूप युद्ध नही करता। जब आत्म स्वरूप राम की प्रांप्ति हो जाती है, तब उसका मन द्वैत के स्वरूप मे तो लगता ही नही।

जब लग यहु मन थिर नहीं, तब लग परस न होइ ।
दादू मनवा थिर भया, सहज मिलैगा सोइ ॥ १३ ॥

१३ मे कहते है—मन स्थिरता से ही प्रभु प्राप्त होते है—जब तक भगवद् भजन मे मन स्थिर नही होता तब तक परमात्मा का मिलन नही होता और जब स्थिर हो जाता है, भजन को छोड कर विषयो मे नही दौडता, तब अनायास ही ब्रह्म साक्षात्कार हो जाता है।

दादू बिन अवलम्बन क्यों रहै, मन चंचल चल जाइ।
सुस्थिर मनवा तो रहै, सुमिरण सेती लाइ ॥ १४ ॥

१४ मे मन स्थिरता का साधन कह रहे है—यह चचल मन बिना किसी आश्रय के स्थिर नही रह सकता, तत्काल ही विषयो मे दौड जाता है। जब इसे हरि-स्मरण मे लगाया जाय तब ही यह मन सुस्थिर रहता है।

मन स्थिर कर लीजे नाम, दादू कहै तहाँ ही राम ॥ १५ ॥

१५ मे मन स्थिर होने से साक्षात्कार होता है यह कह रहे है—जहा मन को राम के नाम मे स्थिर करके नाम स्मरण करोगे, वहा ही राम का साक्षात्कार हो जायगा।

हरि सुमिरण सौं हेत कर, तब मन निश्चल होइ ।
दादू बेध्या प्रेम रस, बीष[1] न चालै सोइ ॥ १६ ॥

१६-१९ मे मनोनिग्रह का उपाय कह रहे है—हरि स्मरण से प्रेम करो तब ही मन स्थिर होगा। जब मन भगवत् प्रेम-रस से विद्ध हो जायगा तब भगवद् भजन को छोडकर विषय की ओर या दूसरी ओर एक पग[1] भी न उठा सकेगा=अन्य सकल्प नहीं कर सकेगा।

जब अंतर उरझ्या एक सौ, तब थाके सकल उपाइ ।
दादू निहचल थिर भया, तब चल कहीं न जाइ ॥ १७ ॥

जब मन आन्तर आतम स्वरूप अद्वैत ब्रह्म के ध्यान मे फँस जाता है तब बहिर्मुख करने के उपाय विषय-वासनादि उसे बहिर्मुख करने मे सफल नही होते। जब उसकी ब्रह्माकार वृत्ति निश्चल होकर ब्रह्म मे स्थिर होती है तब वह ब्रह्म से चलकर लोक-परलोकादि के विषयो मे कही भी नही जाता।

दादू कौवा बोहित[1] बैस कर, मंझ समंदाँ जाइ।
उड उड थाका देख तब, निश्चल बैठा आइ ॥ १८ ॥

प्राचीन काल मे समुद्र यात्रा करने वाले दिशा ज्ञान के लिए अपने साथ काक पक्षी रखते थे और समुद्र मे दूर जाकर उसे छोड देते थे। वह उड-उड कर थक जाता था तब जहाज के वास के स्तभ पर अपने देश की ओर मुख करके बैठ जाता था। उसीके रूपक से कह रहे है— मन-काक जब आत्मज्ञान-जहाज[1] पर बैठकर ससार-समुद्र के वास्तविक-विचार मध्य देश मे चला जाता है, तब उसे ससार असत्य भासने लगता है। फिर उसमे सत्यता को देखने के लिए वारवार विचार-उड़ान लगाकर थक जाता है, किन्तु उसमे सत्यता नही मिलती, इसलिए निश्चल होकर ज्ञान रूप जहाज पर बैठ जाता है। इसी प्रकार हमारा मन निश्चल होकर आत्म-स्वरूप ज्ञान मे ही आ बैठा है।

यहु मन कागद की गुडी, उड़ी चढी आकास ।
दादू भीगै प्रेम जल, तब आइ रहे हम पास ॥ १९ ॥

यह मन-पतग आत्म रूप उडाने वाले की सत्ता से वासना-वायु द्वारा उड़कर विषयाकाश मे चढ गया है किन्तु भाग्यवश सत्सग बादल से भगवत् प्रेम-जल की वृष्टि द्वारा भीग जाय=भक्ति प्राप्त हो जाय तो पुन हमारे आत्म स्वरूप ब्रह्म के पास ही आकर स्थिरता से ब्रह्म-परायण होकर ही रहेगा ।

दादू खीला गार का, निश्चल थिर न रहाइ ।
दादू पग नहिं साच के, भरमै दह दिशि जाइ ॥ २० ॥

२० मे कहते है—सासारिक विषयो मे स्थित मन स्थिर नही होता—जैसे कीचड मे कीला रोपने पर भी निश्चल नही रह सकता, वैसे ही मन सत्य स्वरूप भगवत् चरणो का आश्रय लिये बिना विषय-वासना से नाना योनियो मे जाकर दश दिशा रूप ससार मे भ्रमण करता रहता है, स्थिर नही हो सकता ।

तब सुख आनन्द आतमा, जे मन थिर मेरा होइ ।
दादू निश्चल राम सौ, जे कर जाने कोइ ॥ २१ ॥

२१-२२ मे मन स्थिरता का लाभ बता रहे है—जो कोई राम से सम्बन्ध करा करके मन को निश्चल करना जानता हो, उस महानुभाव की कृपा से मेरा मन राम के स्वरूप मे स्थिर हो जाय, तब ही आत्मानन्द रूप परमसुख मुझे प्राप्त हो सकता है ।

मन निर्मल थिर होत है, राम नाम आनन्द ।
दादू दर्शन पाइये, पूरण परमानन्द ॥ २२ ॥

जब मन निष्काम कर्म द्वारा निर्मल होकर स्थिर होता है तब ही राम-नाम चिन्तन के शास्त्र और सतो द्वारा कथित भजनानन्द प्राप्त होता है । फिर ब्रह्म-साक्षात्कार होकर परिपूर्ण रूप से ब्रह्मानन्द रूप परमानन्द प्राप्त होता है ।

विषय-विरक्ति

दादू यो फूटे तै सारा भया, सधे सधि मिलाइ ।
बाहुड[२] विषय न भूचिये[१], तो कबहुँ फूट न जाइ ॥ २३ ॥

२३-२६ मे वैराग्य का लाभ बता रहे है—विषयासक्ति चोट द्वारा भगवत् चिन्तन से टूटे हुये मन को पूर्व कथित साधन पद्धति और वैराग्य द्वारा पुन भगवन्नाम मे स्थिरता रूप सारापन साधको को प्राप्त हुआ है और यह स्थिरता मन और परमात्मा को मिला देती है । उनकी भेद रूप स्थिति नहीं रहती, मन प्रभु मे लय हो जाता है । यदि पुन विषयो की ओर बदल[२] कर विषय भोगने[१] मे आसक्त नही हो तो कभी भी जीव, परमात्मा से अलग होकर नाना योनि मे नही जा सकता ।

दादू यहु मन भूला सो गली, नरक जाण के घाट ।
अब मन अविगत नाथ सौ, गुरु दिखाई बाट ॥ २४ ॥

जब सद्गुरु ने वैराग्य और अभ्यास उपदेश द्वारा भगवत् प्राप्ति का मार्ग दिखा दिया, तब यह ससार-सागर के नरक रूप घाट को जाने वाली विषयासक्ति रूप गली, जिसमे बारंबार जाता था, उसे भूल गया=दु खप्रद जानकर त्याग दिया और अब इन्द्रियो के अविषय अपने स्वामी परमात्मा के चिन्तन मे ही लगा रहता है।

दादू मन शुध साबित आपना, निहचल होवे हाथ ।
तो इहाँ ही आनन्द है, सदा निरंजन साथ ॥ २५ ॥

यदि अपना मन शुद्ध और सम्यक् निश्चल होकर अपने अधीन रहे तो इस वर्तमान शरीर मे ही निरतर निरजन ब्रह्म के साथ अभेद होने से प्राप्त होने वाला ब्रह्मानन्द प्राप्त हो सकता है।

जब मन लागै राम सौं, तब अनत काहे को जाइ ।
दादू पाणी लौंण ज्यों, ऐसे रहै समाइ ॥ २६ ॥

जब मन निष्काम कर्मों द्वारा शुद्ध और भगवद् भजन द्वारा स्थिर होकर निरजन राम के स्वरूप मे लीन होगा तब राम को छोडकर अन्य सासारिक विषयादि मे किस लिये जायगा ? सुख की अभिलाषा को लेकर जाता है, सो परम-सुख उसे वहा ही प्राप्त है। इसलिए अन्य मे जाने का उसे अवसर ही नही मिलता। वह तो जैसे नमक जल मे एक होकर रहता है वैसा ही ब्रह्म मे समाकर रहता है।

करुणा

सो कुछ हम तैं ना भया, जापर रीझै राम।
दादू इस ससार मे, हम आये बेकाम ॥ २७ ॥

२७-३२ मे मनोनिग्रह मे असफल साधक का पश्चात्ताप दिखा रहे है—जिस मनोनिग्रह पूर्वक भक्ति रूप साधना पर राम प्रसन्न होते है वह तो हमसे कुछ भी नही हो सकी, इसलिए इस ससार मे मानव शरीर धारण करके हमारा आना व्यर्थ ही हुआ।

क्या मुँह ले हँस बोलिये, दादू दीजै रोइ।
जन्म अमोलक आपना, चले अकारथ खोइ ॥ २८ ॥

हमे अपने मनोनिग्रह रूप साधन मे सफलता तो मिली नही, अत· हम किस मुख से हँसकर भगवत् प्राप्ति सम्बन्धी वार्त्ता करे। हमे तो असफलता के कारण रोना ही आता है। खेद है—हम अपने अमूल्य मनुष्य जन्म को व्यर्थ ही खोकर पुन जन्म मरण रूप ससार मे ही चले जा रहे है।

जा कारण जग जीजिये, सो पद हिरदै नांहिं ।
दादू हरि की भक्ति बिन, धिक् जीवन कलि मांहिं ॥ २९ ॥

जगत मे जिसके लिए जीना चाहिए, वह भगवत् पद और भगवद् भक्ति तो हमारे हृदय मे है नही और हरि की भक्ति बिना इस कलियुग मे धिक्कार के योग्य ही है। कारण, योग-यज्ञादि साधन तो कलियुग मे सम्यक् होते नही और भक्ति हो नही सकी, अत धिक्कार ही है।

कीया मन का भावता, मेटी आज्ञाकार ।
क्या ले मुख दिखलाइये, दादू उस भरतार ॥ ३० ॥

हम भगवान् की आज्ञा और ऋषियो की बाँधी हुई मर्यादा को तोड़कर मन को प्रिय लगने वाले ही काम करते रहे। अत उस विश्व का भरण-पोषण करने वाले हमारे स्वामी को कौनसी सफलता का आश्रय लेकर मुख दिखावे ? हम उनके आगे जाने योग्य ही नहीं हैं।

इन्द्री स्वारथ सब किया, मन माँगै सो दीन्ह ।
जा कारण जग सिरजिया, सो दादू कछू न कीन्ह ॥ ३१ ॥

हमने इन्द्रियो को तृप्त करने रूप स्वार्थ के लिए तो सभी अर्थ, अनर्थ रूप कार्य किये और मन ने जो भी माँगा, वही उसे दिया। धर्माधर्म का कुछ भी विचार नही रखा, किन्तु जिस कार्य के लिए ईश्वर ने जगत् मे हमे मनुष्य रूप से रचा, वह मनोनिग्रह पूर्वक भगवद्-भक्ति कुछ भी नहीं की। अत हम पश्चात्ताप के योग्य ही है।

कीया था इस काम को, सेवा कारण साज ।
दादू भूला बंदगी, सस्या न एकौ काज ॥ ३२ ॥

यह मनुष्य शरीर रूप साज ईश्वर ने इस काम के लिए रचा था—इसमे मनोनिग्रह पूर्वक मेरी भक्ति करेगा किन्तु ईश्वर भक्ति को तो भूल गया और सासारिक विषय सुख की ओर जा रहा है। परन्तु याद रख ऐसा करने वालो का परमार्थ ओर व्यवहार रूप दोनो कार्यों मे से एक भी पूर्ण नहीं हुआ है, तब तेरा कैसे होगा ? यही साखी दूल्हा बने रज्जबजी को कही थी, जिससे वे तत्काल विरक्त हो गये थे। प्रसग कथा- दृ सु सि त ३। ५४ मे देखो।

मन प्रबोध

बाद हि जन्म गँवाइया, कीया बहुत विकार ।
यहु मन सुस्थिर ना भया, जहँ दादू निज सार ॥ ३३ ॥

३३ मे मन की कृति पर पश्चात्ताप करते हुये मन को शिक्षा दे रहे है—यह मन विकार बढ़ाने वाले कार्य अधिकतर करता रहा है और जिस हृदय स्थान मे अपने स्थूल सूक्ष्म सघात का सार आत्मा है, उसमे अब तक सम्यक् स्थिर नही हुआ। अत हे मन ! तूने यह मानव-जन्म विषय-विकारो मे व्यर्थ ही खो दिया।

विषय-अतृप्ति

दादू जनि विष पीवै बावरे, दिन दिन बाढै रोग ।
देखत ही मर जाइगा, तज विषया रस भोग ॥ ३४ ॥

३४ मे विषय-रस त्याग की प्रेरणा कर रहे है—हे अज्ञात तत्त्व मानव ! विषय-विष को क्यो पान करता है ? इससे कभी भी तृप्ति नही होती। प्रत्युत अधिक भोग प्रवृत्ति से प्रति दिन रोगो

की वृद्धि ही होती है और रोग से पीडित होकर देखते-देखते शीघ्र ही मर जायगा। अत परमसुख चाहता है तो विषय-रस का उपभोग त्याग करके मनोनिग्रह पूर्वक भगवद् भजन कर।

मन हरि भावन

दादू सब कुछ विलसतां, खातां पीतां होइ।
दादू मन का भावता, कह समझावै कोइ ॥ ३५ ॥

३५-३८ मे मन और हरि को प्रिय लगने वाली बातो का विचार कर रहे हैं—अखाद्य खाते हुये, अपेय के पीते हुए, इसी प्रकार निषिद्ध विहित सभी भोगो को भोगते हुये भगवद् दर्शन हो जाते है, ये बाते मन को प्रिय लगने वाली है। कोई भगवद् भक्ति हीन दुर्जन ही ऐसी उलटी बाते कह कर भोले लोगो को अशुद्ध मार्ग समझाते है।

दादू मन का भावता, मेरी कहै बलाइ[1]।
साच राम का भावता, दादू कहै सुन आइ ॥ ३६ ॥

मन को प्रिय लगने वाली बाते हमारी विचार धारा से विपरीत व्यक्ति ही कहेगा, हम विपत्ति[1] के समय भी नही कहेगे। हम तो राम को प्रिय लगने वाली सयमता पूर्वक— भक्ति, वैराग्य, ज्ञानादि दैवीगुणो की सत्य-सत्य बाते ही कहते है। यदि सयमी बनना चाहते हो तो आकर श्रवण करो।

ये सब मन का भावता, जे कुछ कीजै आन।
मन गह राखै एक सौं, दादू साधु सुजान ॥ ३७ ॥

ज्ञान, भक्ति, वैराग्यादि दैवी गुणो से भिन्न निषिद्ध विषय-भोगादि की बाते और क्रियाये की जाती है, वे सभी मन को ही प्रिय लगने वाली है, कल्याणकारक नही। जो मन को अभ्यास, वैराग्य द्वारा पकड़ कर एक अद्वैत ब्रह्म के चिन्तन मे ही सलग्न रखता है, वही उत्तम ज्ञान सपन्न सत है।

जे कुछ भावै राम को, सो तत कह समझाइ।
दादू मन का भावता, सबको कहैं बनाइ ॥ ३८ ॥

मन को प्रिय लगने वाली बातो की रचना करके तो सभी कोई कहते है किन्तु उन से मानव का पतन ही होता है। अत जो कुछ राम को प्रिय लगने वाली भक्ति ज्ञानादि की बाते है, उन्ही को कहकर अज्ञानियो को वह राम-तत्त्व समझाना चाहिए।

चानक-उपदेश

पैंडे पग चालै नहीं, होइ रह्या गलियार।
राम रथ निबहै नहीं, खाबे[2] को हुशियार ॥ ३९ ॥

३९ मे साधन मे सावधान करने का आक्षेप पूर्वक उपदेश कर रहे है—यह अजित मन साधक-अश्व, निरजनराम की प्राप्ति के साधन भक्ति वैराग्यादि-रथ को लेकर परमार्थ-पथ मे

एक पेर भी आगे नही चलता, बड़ा आलसी हो रहा है किन्तु विपय-उपभोग-दाँणा खाने' के लिए तो वहुत होशियार रहता है। ऐसा करना उचित नही, साधन सप्रेम सदा करना चाहिए।

(पाठान्तर - 'खावे' के साथ पर 'खैवे' = खाइवे मिलता है। - स)

पर प्रबोध

दादू का परमोधे आन को, आपण वहिया जात ।
औरो को अमृत कहे, आपण ही विष खात ॥ ४० ॥

४०-४३ मे धारणा रहित उपदेशक को सावधान कर रहे हे—हे अजितमन उपदेशक! तू अन्यो को आत्म ब्रह्म की एकता का क्या उपदेश कर रहा है ? अपनी ओर तो देख, तू स्वयम् माया-गुण प्रवाह मे वहा जा रहा है। तू अवश्य ही अन्यो को तो अमृत के समान वाते कहता है किन्तु स्वय तो विषय-विष ही खाने मे सलग्न हे। अत यह तेरी प्रवृत्ति तेरे लिये हानिकारक ही सिद्ध होगी।

दादू पंचो का मुख मूल है, मुख का मनवा होइ ।
यहु मन राखै जतन कर, साधु कहावै सोइ ॥ ४१ ॥

पच ज्ञानेन्द्रियो के जीतने मे मूल कारण रसना का जीतना है। सात्त्विक मिताहार किया जाय तो सभी इन्द्रिये सतोगुण प्रधान होकर अपने अधीन रहेगी और रसना इन्द्रिय के जीतने मे मूल कारण मन का जीतना है, मन वश रखने से आहार का सयम स्वत ही हो जाता है। जो इस मन को अभ्यास-वैराग्य-यत्न से अपने आत्म स्वरूप ब्रह्म मे ही स्थिर रखता है, वही सत कहलाता है।

दादू जब लग मन के दोइ गुण, तब लग निपना[1] नाहि ।
द्वै गुण मन के मिट गये, तब निपना मिल मांहि ॥ ४२ ॥

जब तक मन के काम क्रोधादिक दो-दो गुण रूप द्वन्द्व नष्ट नही होते तब तक मन शुद्ध और स्थिर[1] नहीं कहा जाता। जब द्वन्द्व नष्ट हो जाये तो समझो वह शुद्ध और स्थिर हो गया तथा आत्म-स्वरूप ब्रह्म मे लय हो जायेगा।

काचा पाका जब लगै, तब लग अतर होइ ।
काचा पाका दूर कर, दादू एकै होइ ॥ ४३ ॥

जब तक मन मे कभी तो विषय प्राप्ति हित कायरता रूप कच्चापन आ जाता है और कभी विषयो मे दोष दृष्टि से वैराग्य रूप पक्कापन आ जाता है तब तक जीव ब्रह्म का भेद ही रहता है। उक्त प्रकार का कच्चा-पक्का पन दूर करके जिसका मन वास्तविक विवेक-वैराग्य पूर्वक निरतर ब्रह्म-परायण रहता है। वह अपने आत्मा को ब्रह्मरूप जान कर ब्रह्म से अभेद हो जाता है।

मध्य निर्पक्ष

सहज रूप मन का भया, तब द्वै द्वै मिटी तरग।
ताता शीला सम भया, तब दादू एकै अग ॥ ४४ ॥

४४ मे कहते है—निर्द्वन्द्व निर्पक्ष रूप मध्य स्थिति में मन आता है, तभी ब्रह्म से अभेद होता है। जब मन राग-द्वेषादि से रहित सहज स्वभाव से रहता है तब उसकी काम-क्रोधादि तरगे शान्त हो जाती है और जब सुख, दु ख रूप शीतोष्ण की प्राप्ति मे सुखी-दुखी न होने रूप समता आ जाती है, तब उसी समय साधक एक अद्वैत स्वरूप अपने प्रियतम ब्रह्म से अभेद हो जाता है।

मन

दादू बहु रूपी मन तब लगै, जब लग माया रंग।
जब मन लागा राम सौं, तब दादू एकै अंग ॥ ४५ ॥

४५-४८ मे मन की उभयावस्था का परिचय दे रहे है—जब तक मन पर माया का प्रभाव रूप रग है तब तक ही मन बहुत रूप धारण करता है=जो भी गुण वा वस्तु मन के सामने आती है, मन उसके समान ही हो जाता है, और जब मन निरजन राम के स्वरूप विचार मे लग जाता है, तब एक मात्र रामाकार होकर ही रहता है, अन्य रूप नही धारण करता।

हीरा मन पर राखिये, तब दूजा चढै न रंग।
दादू यों मन थिर भया, अविनाशी के संग ॥ ४६ ॥

निरजन राम का चिन्तन रूप हीरा मन मे रखना चाहिए। जब निरतर चिन्तन बना रहेगा तब मायिक राग-द्वेषादि द्वैत रग मन पर नही चढ सकेगा। इस प्रकार ही भूतकाल के साधको का मन अविनाशी ब्रह्म के साथ स्थिर हुआ था।

सुख दुख सब झांई पडै, तब लग काचा मन।
दादू कुछ व्यापै नहीं, तब मन भया रतन ॥ ४७ ॥

जब तक मन पर सुख-दु खादि द्वन्द्वो का प्रतिविम्ब पडता है=वृत्ति सुखाकार-दु खाकार होती है तब तक मन साधना मे कच्चा है और जिस समय मन पर सुख-दु खादि द्वन्द्वो का लेश-मात्र भी प्रभाव न पडेगा, तब समझना चाहिये—अब मन शुक्ति मे स्वाति बिन्दु से बने हुए मोती रूप रत्न के समान ब्रह्म-भाव को प्राप्त हो गया।

पाका मन डोलै नहीं, निहचल रहै समाइ।
काचा मन दह दिशि फिरै, चंचल चहुँ दिशि जाइ ॥ ४८ ॥

साधन द्वारा अपरोक्ष ज्ञान रूप परिपाकावस्था को प्राप्त हुआ मन सासारिक विषयाशा से चचल होकर विषयो मे नही जाता, प्रत्युत निश्चल होकर निरतर ब्रह्म चिन्तन मे ही सलग्न रहता है और साधन-हीनता रूप कचाई से सपन्न कच्चा मन दशो दिशाओ मे भ्रमण करता हुआ पामर, विषयी, जिज्ञासु और परोक्ष ज्ञानी के व्यवहार रूप चारो दिशाओ मे जाता है=कभी पामर, कभी विषयी, कभी जिज्ञासु और कभी परोक्ष ज्ञानी के समान विचार करता है।

विरक्तता

सीप सुधा रस ले रहै, पीवै न खारा नीर ।
माही मोती नीपजै, दादू बंद शरीर ॥ ४९ ॥

४९ मे कहते है—वैराग्य हो तभी अपरोक्ष ज्ञान होता है-जैसे शुक्ति स्वाति विन्दु को लेकर अपना सपुट वन्द कर लेती है, समुद्र का खारा जल नहीं पान करती, तव ही उसमे स्वाति बिन्दु मोती रूप को धारण करती हे। (समुद्र का जल उसमे प्रवेश कर जाय तो मोती खराव हो जाता है)। वैसे ही साधक सत्सग-समुद्र से विचार-सुधा-रस ग्रहण करके अपने मन को विषय-प्रवाह मे जाने से वैराग्य द्वारा वन्द करके निरतर ब्रह्म-चिन्तन मे ही सलग्न रहता है तब उसमे अपरोक्ष-ज्ञान-रूप मोती अवश्य उत्पन्न होता है।

मन

दादू मन पंगुल भया, सब गुण गये बिलाइ ।
है काया नव जोबनी, मन बूढा ह्वै जाइ ॥ ५० ॥

५०-५१ मे अपरोक्ष-ज्ञान प्राप्त मन की अवस्था बता रहे है—अपरोक्ष-ज्ञान प्राप्त होते ही आशा-तृष्णा रूप पैर टूट जाने से मन पगु हो जाता है और कामादि सभी गुण उसे त्याग देते है। इस समय साधक का शरीर तो नव यौवन सम्पन्न दिखाई देता है किन्तु मन अति वृद्ध हो जाता है=अति वृद्ध पुरुष के शरीर की प्रकृति के समान उसकी प्रवृत्ति रुक जाती है।

दादू कच्छप अपने कर लिये, मन इन्द्री निज ठौर ।
नाम निरजन लाग रहु, प्राणी परहर और ॥ ५१ ॥

जैसे कछुआ अपने अगो को अपनी ढाल के नीचे ले आता है वैसे ही अपरोक्ष-ज्ञान को प्राप्त प्राणी का मन अन्य सासारिक विषयो को त्याग कर तथा अपनी इन्द्रियो को बाह्य विषयो से खीच कर ब्रह्मात्मा रूप निजस्थान पर ले आता है और ब्रह्मात्मा के अभेद चिन्तन मे ही सलग्न रहता है। हे साधक प्राणी ! तू भी अन्य सबको त्याग कर निरजन ब्रह्म के नाम चिन्तन मे ही लगा रह।

याचक

मन इन्द्री अधा किया, घट मे लहर उठाइ ।
साई सद्गुरु छाड कर, देख दीवाना जाइ ॥ ५२ ॥

५२-५७ मे इन्द्रियाधीन तथा मनाधीन मन की अवस्था बता रहे है—इन्द्रियो ने हृदय मे विषय-उपभोग की लहर उठाकर मन को सत्यासत्य विवेक-नेत्रो से रहित अन्धा कर दिया है। अत भगवान् और सद्गुरु का बताया हुआ कल्याण का मार्ग छोड कर तथा विषय-उपभोग मे बुराइयो को देखकर भी उन्मत्त हुआ विषयो की ओर ही जाता है।

दादू कहै–राम बिना मन रक है, जाचै[1] तीनो लोक ।
जब मन लागा राम सौ, तब भागै दारिद दोष ॥ ५३ ॥

राम-भजन के बिना मन इन्द्रियो के अधीन होकर सतोष न होने से रक बन गया है और स्वर्ग, मृत्यु, पाताल इन तीनो मे कही भी जाय, सभी जगह भोगो की याचना[१] करता है किन्तु किसी-किसी का मन जब राम-भजन मे लग जाता है तब उसके भोगाशा रूप दरिद्रता और याचनादि दोष हट जाते है।

इन्द्री के आधीन मन, जीव जन्तु सब जाचै।
तिणे तिणे के आगे दादू, तिहुं लोक फिर नाचै॥ ५४॥

इन्द्रियाधीन मन, शीतला के वाहन गधा, भैरू के वाहन कुत्ते आदि सभी जीव जन्तुओ से याचना करता है और अधिक क्या कहै—यह तो तुलसी, विल्व, बेरी आदि वृक्ष तृणो के आगे भी याचना करता हुआ भोगाशा पूर्ति के लिए तीनो लोको मे नाचता फिरता है।

इन्द्री अपने वश करै, सो काहे जाचन जाइ।
दादू सुस्थिर आतमा, आसन बैसै आइ॥ ५५॥

जिस साधक का मन साधन, सपन्न होकर इन्द्रियो को अपने वश मे कर लेता है वह किस लिये भोगो की याचना करने जायेगा ? उसकी बुद्धि तो ब्रह्म मे सम्यक् स्थिर हो जाती है। अत उसका मन भी अपने ब्रह्मरूप अचल आसन पर आकर स्थिरता पूर्वक बैठ जाता है, विषयाशा मे नही दौडता।

मन मनसा दोनों मिले, तब जीव कीया भांड।
पंचों का फेर्या फिरै, माया नचावे राड॥ ५६॥

इन्द्रियाधीन मन और विचार-हीन बुद्धि जब दोनो मिल जाते है तब जीव को भाड-वृत्ति वाला बना देते है, फिर तो वह पचो इन्द्रियो की प्रेरणा से पचविषयो की प्राप्ति के लिये भाड के समान जन-जन की स्तुति करता फिरता है। इस प्रकार विषय-वासना रूप राड माया और मायिक पदार्थों के लिए जीव को ससार मे नचाती है।

नकटी आगै नकटा नाचै, नकटी ताल बजावै।
नकटी आगै नकटा गावै, नकटी नकटा भावै॥ ५७॥

सुविचार—नाक से रहित विषय-वासना सपन्न बुद्धि रूप नकटी के आगे सतोष-नाक हीन मन रूप नकटा विषय-वासना की पूर्ति के लिए उद्योग-नृत्य करता है और बुद्धि-नकटी उसका समर्थन रूप ताल बजाती है। बुद्धि-नकटी के आगे मन-नकटा विषय प्रशसा रूप गीत गाता है और बुद्धि-नकटी को मन-नकटा का उक्त गीत गाना प्रिय लगता है। इस प्रकार ये दोनो जीव को विषयो मे फसा कर व्यथित करते है।

अन्य लग्न व्यभिचार

पंचों इन्द्री भूत हैं, मनवा क्षेतरपाल।
मनसा देवी पूजिये, दादू तीनों काल॥ ५८॥

५८-५९ मे आत्मा से भिन्न के पीछे लगना व्यभिचार है, यह कह रहे है—भगवान् से

विमुख विषयासक्त ससारी प्राणी भूत, भविष्यत् और वर्तमान तीनो ही कालो मे, पच-इन्द्रिय रूप, भूत, मन क्षेत्र-पाल, और विषय-वासना रूप मनसा देवी को ही पूजते है।

जीवत लूटै जगत सब, मृतक लूटै देव।
दादू कहां पुकारिये, कर कर मूये सेव ॥ ५९ ॥

ये पच इन्द्रिय, मन और वासना जीते जी तो जगत् के जीवो को लूटते ही है किन्तु मरने पर भी भूत, भैरव, क्षेत्रपाल और मनसा देवी आदि देव बन कर सभी जगत् को लूटते है अर्थात् मनादि के भ्रम से ही भूतादि की पूजा करते है। इनके उपद्रव के विषय मे हम कहाँ-कहाँ पुकार के कहे, कोई भी नही सुनता, प्राय सभी लोगो के जीव इनकी सेवा करते-करते मर जाते है किन्तु भगवान् की ओर उनका ध्यान ही नही जाता।

मन

अग्नि धूम ज्यो नीकलै, देखत सबै विलाइ।
त्यो मन बिछुटा राम सौ, दह दिशि बीखर जाइ ॥ ६० ॥

६०-६९ मे मन की चपलता तथा निग्रहादि विषयक विचार दिखा रहे है—जैसे अग्नि से धुआँ निकल कर देखते-देखते सभी अदृश्य हो जाता है वैसे ही निरजन राम के चिन्तन से अलग हुआ मन दश इन्द्रियो के विषय रूप दशो दिशाओ मे फैल कर अदृश्य हो जाता है=विषय के आकार का ही हो जाता है।

घर छाडे जब का गया, मन बहुरि न आया।
दादू अग्नि के धूम ज्यो, खुर खोज न पाया ॥ ६१ ॥

जैसे अग्नि से निकल कर धुआँ पीछे अग्नि मे नही आता वैसे ही मन जब से अपने चेतन रूप घर को छोड कर विषयो मे गया है, तब से पुन बहिर्मुखता के कारण चेतन मे लीन नहीं हुआ। विषयो मे ही अदृश्य रहता है अज्ञानियो को उसका कुछ भी पता नही लगा है।

सब काहू के होत है, तन मन पसरै जाइ।
ऐसा कोई एक है, उलटा मांहिं समाइ ॥ ६२ ॥

मन के विषयो मे जाने वाली घटना सभी के यहा होती है। सभी के इन्द्रियरूप शरीर और मन विषय प्राप्ति की अभिलाषा से फैल कर विषयो मे जाते है। ऐसा भगवद् भक्त कोई विरला ही होता है, जो इन्द्रिय और मन को प्रत्याहार द्वारा विषयो से लौटा कर भीतर स्थित आत्म स्वरूप ब्रह्म मे ही लीन करके ब्रह्मानन्द मे निमग्न रहे।

क्यो कर उलटा आनिये, पसर गया मन फेरि।
दादू डोरी सहज की, यो आनै घर घेरि ॥ ६३ ॥

प्रश्न-यह मन विषयाशा से फैल कर माया के छल मे फँस गया है। इसे किस प्रकार लौटाकर आत्म स्वरूप मे लगाया जाय? उत्तर—सकल्प-विकल्प रहित सहजावस्था रूप डोरी से ताडित करते हुये घेर कर इस प्रकार चेतन रूप घर मे लावे कि वह पुन विषयो मे न दौड सके, ब्रह्माकार ही बना रहे।

दादू साधु शब्द सौं मिल रहै, मन राखै विलमाइ ।
साधु शब्द बिन क्यों रहै, तब ही बीखर जाइ ॥ ६४ ॥

सत्पुरुषो के ज्ञान, भक्ति, वैराग्यादि पूर्ण श्रेष्ठ शब्दो का विचार करता रहे, उन्ही मे अपने मन को रोके रक्खे, क्योकि यह मन सत्पुरुषो के शब्दो के आश्रय बिना रुक नही सकता, इन्द्रियो के साथ होकर तत्काल विषयो मे फैल जाता है।

एक निरंजन नाम सौं, कै साधू संगति मांहिं ।
दादू मन विलमाइये, दूजा कोई नांहिं ॥ ६५ ॥

मन को निरतर निरजन राम के नाम चिन्तन मे और सदा सन्तो की सगति मे रखना चाहिए। ये दो ही मनोनिग्रह के सुगम साधन है। इन दोनो से मन को रोक कर अद्वैत ब्रह्म मे लीन करो। ब्रह्म से भिन्न कुछ भी सत्य नही है।

तन में मन आवै नहीं, निश दिन बाहर जाइ।
दादू मेरा जीव दुखी, रहै नहीं ल्यौ लाइ ॥ ६६ ॥

यह मन शरीर के हृदय प्रदेश मे नही आता। बहिर्मुख होकर रात्रि दिन विषयो मे ही जाता है। अपनी वृत्ति हृदयस्थ आतमस्वरूप ब्रह्म मे लगाकर स्थिर नही रहता। इसी से मेरा हृदय व्यथित रहता है।

तन में मन आवै नहीं, चंचल चहुँ दिशि जाइ ।
दादू मेरा जीव दुखी, रहै न राम समाइ ॥ ६७ ॥

यह चचल मन शरीर मे स्थित आत्मस्वरूप ब्रह्म की ओर नही आता। विषयाशा से चारो ओर दौडता है, यह राम मे लय होकर नही रहता, इसलिए मेरा हृदय व्यथित रहता है।

कोटि यत्न कर कर मुये, यहु मन दह दिशि जाइ ।
राम नाम रोक्या रहै, नाहीं आन उपाइ ॥ ६८ ॥

अनेक साधक कोटि यत्न करते-करते मर गये किन्तु उनका मन दश इन्द्रियो के विषय रूप दिशाओ मे जाता ही रहा। राम नाम के निरन्तर चिन्तन रूप अभ्यास से रोका हुआ, आत्म स्वरूप ब्रह्म मे स्थिर रह जाता है। अन्य ऐसा सुगम उपाय कोई भी नही है।

यहु मन बहु बकवाद सौं, बाय भूत[1] ह्वै जाइ।
दादू बहुत न बोलिये, सहजैं रहै समाइ ॥ ६९ ॥

यह मन अति विवादादि करने से वायु रूप[1] हो जाता है=अति चंचल हो जाता हे। अत मनोनिरोध की इच्छा वाले साधक को वहुत नही बोलना चाहिए, प्रत्युत निर्द्वन्द्व रूप सहजावस्था द्वारा ब्रह्म मे लीन रहना चाहिए।

स्मरण नाम चेतावनी

भूला भोदू फेर मन, मूरख मुग्ध गँवार।
सुमिर सनेही आपना, आतम का आधार ॥ ७० ॥

७०-७१ मे भगवन्नाम स्मरणार्थ चेतावनी दे रहे है—हे विषयो मे भूले हुये भोदू ! अपने मन को प्रत्याहार द्वारा विषयो से लौटा और हे माया से मोहित, सज्जन-सभ्यता से रहित मूर्ख ! आत्मा के आधार अपने सतत स्नेही परमात्मा का स्मरण कर।

मन माणिक मूरख राखि रे, जन जन हाथ न देहु ।
दादू पारिख जौहरी, राम साधु दोइ लेहु ॥ ७१ ॥

रे मूर्ख ! अपने मन-माणिक्य को परमात्मा मे ही रख, स्त्री, पुत्र, मित्र, धन, धामादि विषयो के हाथ मे मत दे=इनमे मन लगा कर अनर्थ मत कर। ये सब तेरे मन-माणिक्य की परीक्षा नही कर पाते। केवल राम और सत ये दो ही तेरे मन-माणिक्य के परीक्षक जौहरी है। ये ही तेरे मन के भावना-मूल्य को जानते है। अत तू इन्ही को अपनाकर इन्ही को अपना मन दे।

मन

मन मिरगा मारै सदा, ता का मीठा मांस ।
दादू खाबे को हिल्या, तातै आन उदास ॥ ७२ ॥

७२ मे मनोजय-जन्य आनन्द का परिचय दे रहे है—साधक अपने मन-मृग को निरन्तर मारता रहता है=उसकी भोग-वासना और मनोरथ रूपी जीवन शक्ति को अभ्यास-वैराग्य द्वारा नष्ट करता रहता है। उक्त जीवन शक्ति के नष्ट होने पर जो विषयो मे अनासक्ति और एक तत्त्व पर स्थिरता रूप उसका मास रहता है, वह बहुत मधुर है, अनासक्ति और स्थिरता पूर्वक भगवत् चिन्तन करने से महान् आनन्द प्राप्त होता है। उस परमानन्द के आस्वादन मे साधक अनुरक्त हो जाता है। इसी से अन्य मायिक विषयो से विरक्त हो जाता है।

मन प्रबोध

कह्या हमारा मान मन, पापी परिहर काम ।
विषयो का सग छाड़ दे, दादू कह रे राम ॥ ७३ ॥

७३-७४ मे मन को उपदेश कर रहे है—रे पापी मन ! सासारिक कामनाओ का त्याग कर, विषयासक्ति छोड़ फिर निरतर निरजन राम का चिन्तन कर, यह हमारा कहना मान ले।

केता कह समझाइया, मानै नही निलज्ज ।
मूरख मन समझै नहीं, कीये काज अकज्ज ॥ ७४ ॥

इस मन को अनेको बार कह-कह कर समझावे तो भी यह निर्लज्ज मानता ही नही। यह मूर्ख मन समझाने पर भी नही समझता, इसीलिए तो इसने न करने के योग्य कार्य भी कर डाले है।

साच

मन ही मंजन कीजिये, दादू दरपण देह।
मांहीं मूरति देखिये, इहिं अवसर कर लेह ॥ ७५ ॥

७५ मे सत्य वचन कह रहे है—स्थूल शरीर मे स्थित मन-दर्पण को भगवद् भजन द्वारा माजकर कामादि विकार निकालो फिर उसमे भगवत् मूर्ति देखो। यह कार्य इस मनुष्य शरीर के अवसर मे ही सत्सग द्वारा कर लेना चाहिए नही तो फिर पश्चात्ताप ही होगा।

अन्य लग्न व्यभिचार

तब ही कारा होत है, हरि बिन चितवत आन।
क्या कहिये, समझै नहीं, दादू सिखवत ज्ञान ॥ ७६ ॥

हरि बिना अन्य चिन्तन व्यभिचार है—जब साधक का मन हरि चिन्तन को छोडकर अन्य विषयादि के चिन्तन मे लगता है तब उसी क्षण मलीन हो जाता है। इस मन के स्वभाव की क्या बात कहे-यह तो ज्ञान सिखाते रहने पर भी नही समझता, विषय चिन्तन मे लग कर मलीन हो जाता है।

साच

दादू पाणी धोवैं बावरे, मन का मैल न जाइ।
मन निर्मल तब होइगा, जब हरि के गुण गाइ ॥ ७७ ॥

७७-९३ में सत्य उपदेश कर रहे है—अज्ञानी प्राणी जल से स्नान करते रहते है किन्तु जल से धोने से स्थूल शरीर ही शुद्ध होता है, मन का मैल नष्ट नही होता। मन तो तभी निर्मल होगा, जब भगवद् भक्ति की जायेगी।

दादू ध्यान धरे का होत है, जे मन नहिं निर्मल होइ।
तो बक सब ही उद्धरैं, जे इहिं विधि सीझै कोइ ॥ ७८ ॥

यदि मन निर्मल नही हो, तब ध्यान करने से भी क्या लाभ है ? उलटी दभ से हानि ही होती है। दभ पूर्वक ध्यान करने से यदि मुक्ति रूप सिद्धावस्था को प्राप्त हो जाय तब तो सभी बगुलो का ससार से उद्धार हो जाना चाहिए। वे मच्छी[1]पकडने के समय ध्यान तो करते ही है।

दादू ध्यान धरे का होत है, जे मन का मैल न जाइ।
बक मीनी[1] का ध्यान धर, पशू बिचारे खाइ ॥ ७९ ॥

यदि मन का मैल नष्ट नही हो तो ध्यान करने से क्या लाभ होता है ? पारमार्थिक लाभ तो कुछ भी नही होता। वह तो जैसे बगुला ध्यान करता है और अवसर पाते ही मच्छी[1] पकड कर खा जाता है वैसे ही मलीन-मन व्यक्ति ध्यान तो करते हुये दिखाई देते है किन्तु साथ ही बेचारे दीन-हीन पशुओ को भी खा जाते है। अत दयाहीन ध्यान से लाभ नही होता।

दादू काले ते धोला भया, दिल दरिया में धोइ।
मालिक सेती मिल रह्या, सहजें निर्मल होइ ॥ ८० ॥

हृदय-दरिया के भगवद् भजन-जल से स्नान करके जव मन मलीनता त्याग कर शुद्ध हो जाता है तब परमात्मा रूप अपने स्वामी से मिल कर उमी मे स्थिर रहता है। यह हमारा अनुभव है—उक्त मानस स्मरण से मन अनायास ही निर्मल हो जाता है।

दादू जिसका दर्पण ऊजला, सो दर्शन देखै माहि ।
जिसकी मैली आरसी[1], सो मुख देखै नांहि ॥ ८१ ॥

जिसका दर्पण' मैला होता है, उसमे मुख साफ नहीं दीखता और जिसका दर्पण साफ होता हे उसमे साफ दीखता है वेसे ही जिसका मन-दर्पण शुद्ध होता है, वह अपने हृदय मे ही आत्म स्वरूप ब्रह्म का साक्षात्कार करता है। मलीन मन वाला नही।

दादू निर्मल शुद्ध मन, हरि रँग राता होइ।
दादू कचन कर लिया, काच कहै नहीं कोइ ॥ ८२ ॥

जैसे किसी ने अपने हाथ मे सुवर्ण ले रक्खा हो तो उसे काच कोई भी नहीं कहता वैसे ही जिसने अपना मन निर्मल कर लिया हे, उसे अशुद्ध कोई नही कहता और वह शुद्ध मन हरि-भक्ति-रग मे ही रत होता है, विपयो मे नही।

यहु मन अपना थिर नहीं, कर नहीं जानै कोइ ।
दादू निर्मल देव की, सेवा क्यो कर होइ ॥ ८३ ॥

यह अपना मन निर्मल और स्थिर नही हे तथा निर्मल-स्थिर करने का कोई उपाय भी नहीं जानता तव निर्मल निरजन देव की सेवा मलीन और चचल मन से किस प्रकार हो सकती है ? ऐसे प्राणी तो ग्राम्य-देवादि की ही उपासना करते है।

दादू यहु मन तीनों लोक में, अरस परस सब होइ ।
देही की रक्षा करै, हम जनि भीटै[1] कोइ ॥ ८४ ॥

ससारी जन अपने शरीर की बड़े प्रयत्न से रक्षा करते है—"हमे कोई छू' न ले।" किन्तु यह मन तो तीनो लोको मे सबके साथ एकमेक होता रहता है, इसकी ओर किसी भी आचारवान् व्यक्ति का ख्याल नही है=मन के रोकने का विचार कोई नही करता।

दादू देह जतन कर राखिये, मन राख्या नहि जाइ ।
उत्तम मध्यम वासना, भला बुरा सब खाइ ॥ ८५ ॥

ससारी जन किसी प्रकार लोक-लज्जादि द्वारा देह को तो प्रयत्न करके अस्पर्श्य और अखाद्यादि से बचा लेते है किन्तु मन को तो नही बचा सकते। अच्छी तथा बुरी वासना सम्पन्न हुआ मन न छूने योग्य सबको जा छूता है और न खाने योग्य सबको खाता रहता है।

दादू हाडों मुख भर्‍या, चाम रह्या लिपटाइ ।
मांहीं जिह्वा मांस की, ताही सेती खाइ ॥ ८६ ॥

विचारहीन प्राणी हड्डी आदि के छू जाने से अपने को अपवित्र मान लेते है किन्तु यह नही समझते कि—वे सब हमारे शरीर मे भी है। दॉत हड्डी है, उनसे मुख भरा है। चर्म शरीर पर लिपट ही रहा है और मुख मे जिह्वा मास की है ही, उसी से तो यह पवित्र वस्तुओ का आस्वादन करता है।

नौओं द्वारे नरक के, निश दिन बहै बलाइ ।
शुचि कहां लौं कीजिये, राम सुमिर गुण गाइ ॥ ८७ ॥

दो कान, दो नेत्र, दो नाक, मुख, मलेन्द्रिय और मूत्रेन्द्रिय ये नौओ द्वार मल निकलने के है। इनसे रात्रि दिन दु खप्रद मल बहता ही रहता है। कहो, फिर कहा तक पवित्रता के लिए प्रयत्न किया जाय ? ये मलीन वस्तुए तो शरीर से दूर हो नही सकती। शरीर बना ही इनसे है। अब यदि पवित्र होना चाहता है तो निरजन राम का स्मरण कर और उन्ही के गुणो का सकीर्तन कर, जिससे मन निर्मल होगा, मन निर्मल होने से ही प्राणी पवित्र माना जाता है।

प्राणी तन मन मिल रह्या, इन्द्री सकल विकार ।
दादू ब्रह्मा शूद्र घर, कहां रहै आचार ॥ ८८ ॥

जैसे ब्राह्मण वश मे उत्पन्न कोई ब्राह्मण शूद्र के घर मे रहता है तब उसका ब्राह्मण के योग्य आचार कहा रहता है ? वैसे ही जब सपूर्ण विकारो से युक्त प्राणी के शरीर और इन्द्रियो मे मन मिल कर रहता है तब शरीर और इन्द्रियो के मल से वह कैसे बचेगा ? उसे हरि भजन मे लगाया जाय तो शरीरादि के मल उसे विकृत नही कर सकेगे।

दादू जीवै पलक में, मरतां कल्प बिहाइ ।
दादू यहु मन मसखरा, जनि कोई पतियाइ ॥ ८९ ॥

इस मन का निर्विषय रूप मरण होने मे तो कल्प व्यतीत हो जाते है किन्तु विषय-सबन्ध रूप जीवित होना एक पल मे ही हो जाता है। यह मन मसखरा है, जैसे मसखरा मनुष्य हॅसी के लिए जो कुछ कह देता है, उसे करता नही, वैसे ही मन जो परमार्थ सम्बन्धी सकल्प करता है, उसे पूर्ण कर दे, यह निश्चय नही होता। अत· कोई भी साधक इस मन पर विश्वास न करे।

दादू मूवा मन हम जीवित देख्या, जैसे मरघट भूत ।
मूवां पीछे उठ उठ लागै, ऐसा मेरा पूत[1] ॥ ९० ॥

जैसे मरा हुआ मनुष्य श्मशान मे भूत होकर लोगो को व्यथित करता है वैसे ही यह मन भी निर्विषय रूप मृत्यु को प्राप्त होकर भी विषय-सम्बन्ध रूप जीवितावस्था मे आ जाता है, यह हमने देखा है। यह मन निस्सकल्प हो जाने पर भी विषय प्राप्ति के लिए पुन सकल्प रूप से उठ-उठ कर विषयो मे लग जाता है। यह हमारा मन छोटे पुत्र[1] के समान चचल है।

निश्चल करतां जुग गये, चंचल तव ही होहि ।
दादू पसरे पलक मे, यहु मन मारै मोहि ॥ ९१ ॥

इस मन को निश्चल करते-करते तो युग व्यतीत हो जाते है और चचल तो तत्काल ही होकर एक पल मे विपयो मे फैल जाता है तथा यह साधक को मायिक पदार्थों से मोहित करके पुन विपयासक्त करना रूप ताडना देता है।

दादू यहु मन मीडका, जल सों जीवै सोइ ।
दादू यहु मन रिद[1] है, जनि रु पतीजे कोइ ॥ ९२ ॥

यह मन मेढक के समान है जैसे मेढक मर कर भी वर्पा के जल से पुन जीवित हो जाता है वैसे ही मन भी निर्विपय रूप मत्यु को प्राप्त होने पर भी विपय जल स्पर्श होते ही पुन विपयासक्ति रूप जीवित भाव को प्राप्त हो जाता है और यह मन है भी स्वेच्छाचारी[1]। अत इसका कोई भी साधक विश्वास न करे।

मांहीं सूक्षम है रहै, वाहर पसारे अंग।
पवन लाग पौढा भया, काला नाग भुवंग ॥ ९३ ॥

जैसे काला सर्प शीतकाल मे वाँवी आदि मे छिपा रहता है तव तक तो वह कृश रहता है किन्तु उष्णकाल मे पूर्वी वायु लगते ही वह पुन प्रौढ़ावस्था को प्राप्त हो जाता है। वैसे ही यह मन भी गुरु उपदेश ओर साधन द्वारा जव तक अन्तर्मुख रहता है तव तक तो सूक्ष्म वना रहता है किन्तु वहिर्मुख होते ही पुन अपने सकल्प-विकल्प अगो को मायिक प्रपच मे फैला देता है।

आशय-विश्राम

स्वप्ना तब लग देखिये, जब लग चचल होइ ।
मन निश्चल लागा नाम सौ, तब स्वप्ना नाहीं कोइ ॥ ९४ ॥

९४-१०९ मे कहते है—प्राणी आशा के अनुसार स्थान मे ही जाकर वसता है—जव तक मन चचल रहता है, तव तक स्वप्न भासता हे और जव मन सुषुप्ति मे निश्चल हो जाता है, तब स्वप्न नही दीखता। वैसे ही जब तक मन निरजन राम के नाम-चिन्तन मे सलग्न नही होता तब तक ही ससार-स्वप्न भासता है और नाम मे स्थिर होते ही ससार, ससार रूप से नही भासता, ब्रह्म रूप से भासता है।

जागत जहँ जहँ मन रहै, सोवत तहँ तहँ जाइ ।
दादू जे जे मन बसै, सोइ सोइ देखै आइ ॥ ९५ ॥

जाग्रतावस्था मे मन जिन-जिन कार्यों मे सलग्न रहता है, स्वप्नावस्था मे भी प्राय उन-२ मे ही जाता है। कभी-कभी ऐसे स्वप्न भी आते है जिनका वर्तमान जीवन से कुछ भी सम्बन्ध नही है किन्तु वे भी किसी पूर्व जन्म की जाग्रतावस्था के सस्कार से ही आते है। अत जाग्रत मे जो-जो मन मे रहता है, वही-२ स्वप्नावस्था मे आकर देखता है।

दादू जे जे चित बसै, सोइ सोइ आवै चीति।
बाहर भीतर देखिये, जाही सेती प्रीति ॥ ९६ ॥

जाग्रतावस्था मे जो जो चित्त मे रहता है, स्वप्नावस्था मे भी वही-२ चित्त मे आता है। जिसके साथ प्रेम होता है वही बाह्य जाग्रतावस्था मे और वही आन्तर स्वप्नावस्था मे देखने मे आता है। अत प्रीति भगवान् मे ही रखनी चाहिए।

श्रावण हरिया देखिये, मन चित ध्यान लगाइ।
दादू केते जुग गये, तो भी हर्‍या न जाइ ॥ ९७ ॥

जैसे कोई श्रावण मे अधा हो जाय तो वह अपने मन मे श्रावण की हरियाली का ही ध्यान लगाता रहता है। बहुत समय व्यतीत हो जाने पर भी वह हरियाली मन से दूर नही होती। वैसे ही मायिक प्रपच मे अपने ज्ञान नेत्रो को खोकर अधा हुआ प्राणी अपने मन मे मायिक प्रपच का ही ध्यान लगाता रहता है। कितने ही युग व्यतीत हो गये तो भी अभी तक इस मायिक प्रपच का ध्यान मन से दूर नही होता।

जिसकी सुरति जहाँ रहै, तिसका तहँ विश्राम।
भावै माया मोह में, भावै आतम राम ॥ ९८ ॥

जिसकी वृत्ति जिसमे रहती है, उसकी उसी मे जाकर स्थित होती है, चाहे मायिक मोह मे रहे वा आत्मस्वरूप राम मे रहे। मायिक मोह मे वृत्ति रहने से जन्मादि ससार की प्राप्ति होती है और आत्माराम मे रहने से अपने आत्मस्वरूप राम की प्राप्ति होती है। अत आत्माराम मे ही वृत्ति रखनी चाहिए।

जहँ मन राखे जीवता, मरतां तिस घर जाइ।
दादू बासा प्राण का, जहँ पहली रह्या समाइ ॥ ९९ ॥

लोक मे देखा जाता है—जिसका मन पहले जिसमे सलग्न रहता है, आगे चलकर उस प्राणी का निवास वहा ही होता है। वैसे ही जीवितावस्था मे विशेष करके जिसमे मन रखा जाता है, मृत्यु होने पर उसका पुनर्जन्म उसी घर मे होता है।

जहाँ सुरति तहँ जीव है, जहँ नांहीं तहँ नांहिं।
गुण निर्गुण जहँ राखिये, दादू घर वन मांहिं ॥ १०० ॥

जहा प्राणी की वृत्ति अन्त समय मे रहती है, वहा ही जीव चला जाता है और जहा वृत्ति अन्त समय मे नहीं रहती, वहा नही जाता। अत स्मरण रखना चाहिए-तुम अपनी वृत्ति गुणमय ससार के किसी घर या वन मे रखोगे तो वहा ही जा जन्मोगे और निर्गुण ब्रह्म मे रक्खोगे तो निर्गुण ब्रह्म मे ही लय हो जाओगे।

जहाँ सुरति तहँ जीव है, आदि अन्त अस्थान।
माया ब्रह्म जहँ राखिये, दादू तहँ विश्राम ॥ १०१ ॥

जहाँ वृत्ति आदि से अन्त तक लगी रहती है, वही जीव का स्थान बन जाता है। यदि माया मे वृत्ति रखोगे तो मायिक संसार ही तुम्हारा विश्राम स्थान होगा और ब्रह्म मे रखोगे तो ब्रह्म विश्राम स्थान होगा।

जहाँ सुरति तहँ जीव है, जीवन मरण जिस ठौर।
विष अमृत जहँ राखिये, दादू नाहीं ओर ॥ १०२ ॥

जहाँ वृत्ति रहती है वहा ही जीव रहता है और जिस स्थान मे वृत्ति रहती है, मरके वहा ही जन्मता है। चाहे विषय-विष मे वृत्ति रखो वा ब्रह्म-चिन्तनामृत मे रखो। जिसमे वृत्ति रखोगे उसे ही प्राप्त होगे।

जहाँ सुरति तहँ जीव है, जहँ जानै तहँ जाइ।
गम अगम जहँ राखिये, दादू तहाँ समाइ ॥ १०३ ॥

वृत्ति को जहा के पदार्थों का ज्ञान होता है, वहा के पदार्थों मे ही जाती है और जहा वृत्ति जाती है, वहा ही जीव भी जाता है। इन्द्रियो की जिसमे गति होती है, ऐसी मायिक सृष्टि के पदार्थों को वृत्ति जानती है और उनमे ही सतत जाती है। उनमे ही वृत्ति रक्खी जाय तो, मायिक ससार मे ही समाया रहता है और यदि सत, शास्त्रादि द्वारा अगम ब्रह्म को जान कर ब्रह्म मे ही वृत्ति रक्खी जाय तो ब्रह्म मे समा जाता है।

मन मनसा का भाव है, अन्त फलेगा सोइ।
जब दादू बाणक[1] बण्या, तब आशय[2] आसन होइ ॥ १०४ ॥

कुछ लोग भक्त न होने पर भी भक्त से दिखाई देते है किन्तु अन्त मे वही फलेगा, जो उनके मन मे छिपा हुआ मनोरथ और बुद्धि का विचार है। ऐसे लोगो का जब मनोरथ सिद्ध होने का योग[1] बैठता है तब अपनी वासना[2] के अनुसार ही वे ससार मे फँस कर बैठ जाते है और भक्ति का ढोग छोड देते है।

जप तप करणी कर गये, स्वर्ग पहूंते जाइ।
दादू मन की वासना, नरक पडे फिर आइ ॥ १०५ ॥

अनेक प्रकार से सकाम जप-तपादि कर्त्तव्य कर्म करके अपनी वर्तमान स्थिति से आगे बढ गये और स्वर्ग मे भी जा पहुँचे किन्तु फिर भी मन की कुत्सित वासना के प्रभाव से नरक मे आ पड़े है। ऐसे नहुषादि के चरित इतिहास प्रसिद्ध है।

पाका काचा है गया, जीत्या हारै डाव।
अन्त काल गाफिल भया, दादू फिसले पाँव ॥ १०६ ॥

यह मन निर्विषय रूप परिपाकावस्था को प्राप्त होकर भी सूक्ष्म विषय वासना के प्रभाव से पुन विषयासक्ति रूप कच्ची अवस्था को प्राप्त हो जाता है। यह अपने कामादि विकारो को जीत करके भी मुक्त होने के अवसर पर कामादि से हार जाता है। इस प्रकार अन्तिम सिद्धावस्था के पास पहुँच कर भी सूक्ष्म विषय-वासना के जाग्रत होने से साधक लोग गाफिल होते रहे है और

उनके सत्य निष्ठा रूप पैर फिसलते रहे है। अतः साधक को मन के धोखे से सदा सचेत रहना चाहिए।

यहु मन पंगुल पंच दिन, सब काहू का होइ।
दादू उतर आकाश तैं, धरती आया सोइ॥ १०७॥

सत्सग, क्लेश और शव आदि को देखने से जब वैराग्य हो जाता है तब यह विषयी मन भी कुछ दिन तो प्राय सभी का विषयाशा रूप चरण-शक्ति से रहित पगुल हो जाता है और भगवत् चिन्तन मे सलग्न रहता है किन्तु फिर भगवत् चिन्तन रूप आकाश से उतर कर विषय-चिन्तन रूप पृथ्वी पर आ जाता है।

ऐसा कोई एक मन, मरै सो जीवै नांहिं।
दादू ऐसे बहुत हैं, फिर आवैं कलि मांहिं॥ १०८॥

कोई एक ज्ञानी सत का ही ऐसा मन होता है, जो निर्विषय रूप मृत्यु को प्राप्त होकर पुन विषयासक्ति रूप जीवितावस्था को प्राप्त न हो। ऐसे मन तो बहुत है, जो निर्विषय होकर फिर सूक्ष्म विषय-वासना के बल से पाप मे पड जाते है।

देखा देखी सब चले, पार न पहुँच्या जाइ।
दादू आसन पहल के, फिर फिर बैठे आइ॥ १०९॥

ससार से पार जाने के साधन सतो की देखा-देखी करते तो सब है किन्तु देखा-देखी करने वालो मे ससार के पार जाकर कोई भी ब्रह्म-स्वरूप को प्राप्त नही हुआ। वे लोग तो, पहले जो उनका अज्ञान काल मे विषयाशा रूप आसन था, उसी पर लौट-लौट कर आ बैठते है-उनकी वृत्ति सूक्ष्म विषय-वासना के बल से विषयो पर ही आ जाती है और वे साधन का उपयोग भी विषय प्राप्ति मे ही करते है।

जग जन विपरीत

वर्तन[1] एकै भांति सब, दादू संत असंत।
भिन्न भाव अन्तर घणा, मनसा तहँ गच्छंत॥ ११०॥

११० मे सत असत का भेद बता रहे है—क्या सत और क्या असत सभी का बाह्य साधन रूप व्यवहार वर्तना[1] तो समान ही होता है किन्तु भीतर के भाव की भिन्नता से सत और असतो मे महान् अन्तर है। जिसकी जैसी कामना होती है, वे वही जाते है। सत ब्रह्म को और असत जन्मादि ससार को प्राप्त होते है।

मन शक्ति

यहु मन मारै मोमिनों, यहु मन मारै मीर।
यहु मन मारै साधकों, यहु मन मारै पीर॥ १११॥

१११-११३ मे मन की शक्ति का परिचय दे रहे है—यह मन धर्मनिष्ठ मोमिन, धर्माचार्य, मीर, साधन-रत साधक और सिद्धावस्था को प्राप्त पीरो की भी विषयो मे जाना रूप मार मारता है=इन सबका मन विषयो मे दौडता है।

दादू मन मारे मुनिवर मुये, सुर नर किये सहार ।
ब्रह्मा विष्णु महेश सब, राखै सिरजनहार ॥ ११२ ॥

मन के द्वारा मुनिवर भी विषय प्रवृत्ति रूप मृत्यु को प्राप्त हुये है । देवता और मानवो का भी मन अपनी इच्छा पूर्ति के लिए सहार करता रहता है । अन्यो की तो बात ही क्या ! ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरादि सभी मन के कारण विक्षिप्त हुये है । मुनिवरादि की कथाएँ पुराणो मे प्रसिद्ध है । इस चचल मन की मार से तो भक्ति द्वारा भगवान् ही रक्षा करते है, अन्यथा यह सबको मारता है ।

मन बाहे मुनिवर बडे, ब्रह्मा विष्णु महेश ।
सिध साधक योगी यती, दादू देश विदेश ॥ ११३ ॥

इस मन ने मुनिवरो मे बडे-बडे मुनियो को भी विषय-प्रसग द्वारा बहका कर डिगाया है । ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर को भी क्षुब्ध किया है । सिद्ध, साधक, योगी और यतियो को भी साधन द्वारा प्राप्त अपनी स्थिति रूप देश से डिगाकर विषय रूप विदेश मे स्थित किया है ।

मन मुखी मान

पूजा मान बडाइयां, आदर मांगै मन ।
राम गहै सब परिहरै, सोई साधू जन ॥ ११४ ॥

११४-११५ मे स्वेच्छाचारी मनुष्य का परिचय दे रहे है—मन की इच्छानुसार चलने वाले ससारी प्राणी का मन अपनी अर्चना, प्रतिष्ठा, प्रशसा और सत्कार चाहता है किन्तु श्रेष्ठ जन तो वही है जो पूजादि, सबकी इच्छा त्याग कर निरतर भजन द्वारा राम को ही ग्रहण करता है ।

जहँ जहँ आदर पाइये, तहां तहा जिव जाइ ।
बिन आदर दीजे रामरस, छाड हलाहल खाइ ॥ ११५ ॥

जहाँ-जहाँ आदर मिलता है वहा-वहा ही ससारी प्राणी जाता है । बिना सत्कार के यदि उसे राम भक्ति-रस पान कराया जाय तो उस सत्सग स्थान को त्याग कर वह विशेष सत्कार प्राप्ति के स्थान मे तीव्र विषय-विष को भी खाता है=नारी प्रसगादि की बाते बडे प्रेम से कहता-सुनता है ।

करणी बिना कथनी

करणी किरका[1] को नहीं, कथनी अनन्त अपार ।
दादू यो क्यो पाइये, रे मन मूढ गँवार ॥ ११६ ॥

११६ मे कहते है—कथन तुल्य कर्त्तव्य बिना तत्त्व प्राप्त नहीं होता—कोई-कोई ऐसा वाचिक ज्ञानी देखा जाता है—"मै अनन्त ब्रह्म स्वरूप हूँ।" ऐसा कहते हुये ब्रह्म सम्बन्धी बाते तो बहुत कहता है किन्तु उसमे साम्यता, सत्यता, असगतादि धारणा रूप कर्त्तव्य लेश[1] मात्र भी नही होता । ऐसे व्यक्ति को ही लक्ष्य करके कह रहे है—रे मूढ अज्ञानी-मन प्राणी ! इस प्रकार केवल कथन मात्र से ही ब्रह्म तत्त्व कैसे प्राप्त होगा ?

जाया माया मोहनी

दादू मन मृतक भया, इन्द्री अपने हाथ।
तो भी कदे न कीजिये, कनक कामिनी साथ॥ ११७॥

११७ मे साधक को कनक कामिनी के त्याग की प्रेरणा कर रहे है। यद्यपि अभ्यास वैराग्यादि साधन द्वारा मन मर गया हो और इन्द्रिया भी अपने अधीन हो गई हो तो भी साधक को कनक-रजतादि माया का सग्रह और कामिनी का सग कभी भी नही करना चाहिए। ये दोनो मोहक है और मन को पुन॰ जीवित कर देती है।

मन

अब मन निर्भय घर नहीं, भय में बैठा आइ।
निर्भय संग तैं बीछुट्या, तब कायर ह्वै जाइ॥ ११८॥

११८-१२५ मे मन विषयक विचार कर रहे है—यह मन भयप्रद भोगासक्ति रूप वन मे आकर बैठ गया है। इस कारण ही अब इसे भय रहित निजात्म स्थिति रूप घर नही मिल रहा है। जब से यह निर्भय निरजन राम के चिन्तन-सग से अलग होता है, तब से ही कायर हो जाता है=साधन-शौर्य से कामादि को जीतकर निर्भय घर प्राप्त करने मे समर्थ नही होता।

दादू मन के शीश मुख, हस्त पॉव है जीव।
श्रवण नेत्र रसना रटै, दादू पाया पीव॥ ११९॥

मन की सासारिक इच्छा के अनुसार शीश-मुखादिक रहते है तब तक मन के ही कहलाते है किन्तु जिस जीवात्मा ने शास्त्र सतो के उपदेश से शीश को हरि चरणो मे झुका कर, मुख को स्तुति गाकर, हाथो को सेवा करके, पैरो को भगवद्धाम सत्सगादि मे जाकर, श्रवणो को कथा सुनाकर, नेत्रो को दर्शन कराके, रसना को नाम रटा के भगवत् परायण किया है, उसने अपना स्वामी परमात्मा प्राप्त किया है। सुन्दरदासजी ने मन के अग इस प्रकार बताये है -

मन गयद बलवत, तास के अग दिखाऊ। काम क्रोध अरु लोभ, मोह चहुँ चरण सुनाऊ॥
मद मत्सर है शीश, सूड तृष्णा सु डुलावे। द्वन्द्व दशन है प्रकट, कल्पना कान हिलावै॥
पुनि द्विविधा दृग देखत सदा, पूछ प्रकृति पीछे फिरे।
कहि सुन्दर अकुश ज्ञान के, पीलवान गुरु वश करे॥

जहँ के नवाये सब नवैं, सोइ शिर कर जाण।
जहँ के बुलाये बोलिये, सोई मुख परमाण॥ १२०॥

जिस ब्रह्म की सत्ता से सब प्राणी नीचे झुकना आदि क्रिया करने मे समर्थ होते है वेही सब विश्व मे शिरोमणि है और उसको जो मस्तक नमता है, उस मस्तक को ही श्रेष्ठ जानो। जिसकी सत्ता से सब बोलते है, उसी के नामो का उच्चार करता है, वही मुख प्रामाणिक है=श्रेष्ठ है वा वह ब्रह्म ही शिर और मुख है।

जहँ के सुनाये सब सुनैं, सोई श्रवण सयान।
जहँ के दिखाये देखिये, सोई नैन सुजान॥ १२१॥

जिसकी सत्ता से श्रवणेन्द्रिय सब कुछ सुनती है, उसी ब्रह्म के स्वरूप सम्बन्धी कथा सुनने मे जिस चतुर मानव के श्रवण सलग्न है, वे श्रवण श्रेष्ठ है। जिसकी सत्ता से नेत्रेन्द्रिय देखती है, उसी ब्रह्म को सर्वत्र देखता है, उस बुद्धिमान् मानव के ही नेत्र श्रेष्ठ है। वे ब्रह्ममय ही श्रवण और नेत्र है।

दादू मन ही माया ऊपजे, मन ही माया जाइ।
मन ही राता राम सौं, मन ही रह्या समाइ ॥ १२२ ॥

मन के अबोध से ही मन मे माया और मायिक प्रपच उत्पन्न होकर सत्य-सा दीख रहा है और मन मे यथार्थ ज्ञान होते ही माया निज कार्य सहित मन से हट जाती है=मन आसक्ति रहित हो जाता है। फिर तो मन अपने आप ही निरजन राम मे अनुरक्त होकर उसी मे समाया हुआ रहता है।

मन ही मरणा ऊपजै, मन ही मरणा खाइ।
मन अविनाशी ह्वै रह्या, साहिब सौ ल्यौ लाइ॥ १२३ ॥

सकाम मन से ही कर्मों द्वारा जन्म-मरणादि होते है और निष्काम मन ज्ञान प्राप्ति द्वारा जन्म-मरणादि के कारण अज्ञान को नष्ट करके निरतर परब्रह्म मे अपनी वृत्ति लगाता हुआ अविनाशी ब्रह्मरूप होकर रहता है।

मन ही सन्मुख नूर[1] है, मन ही सन्मुख तेज।
मन ही सन्मुख ज्योति है, मन ही सन्मुख सेज॥ १२४ ॥

शुद्ध मन के सामने ज्ञान-तेज रहता है=अज्ञान नही रहता। शुद्ध और ब्रह्म ज्ञान युक्त मन के सन्मुख निरतर आत्म स्वरूप[1] रहता है=वह सर्वत्र आत्मा को ही देखता है। ध्यान द्वारा निरुद्ध मन के सामने ब्रह्म ज्योति भासती रहती है। अद्वैत-निष्ठ मन के सन्मुख जीव और ब्रह्म की एकता रूप शय्या सदा रहती है=उसमे जीव ब्रह्म का भेद नही भासता।

मन ही सौ मन थिर भया, मन ही सौ मन लाइ।
मन ही सौ मन मिल रह्या, दादू अनत न जाइ॥ १२५ ॥

इति मन का अग समाप्त ॥ १० ॥ सा ११३६ ॥

हमारा मन, मन के द्वारा साधन करने से ही स्थिर हुआ है। अत हे साधक! मन के द्वारा साधन करके ही मन को परब्रह्म मे लगा। हमारा मन, मन के द्वारा साधन करने से ही निर्विषय होकर परब्रह्म मे मिल रहा है, वह अन्य मायिक प्रपच मे नही जाता।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका मन का अग समाप्त ॥ १० ॥

अथ सूक्ष्म जन्म का अंग ११

मन के अग के पश्चात् मन के मनोरथ रूप सूक्ष्म जन्म का परिचय देने के लिए "सूषिम जन्म का अग" कथन करने मे प्रवृत्त मगल कर रहे है—

दादू नमो नमो निरजन, नमस्कार गुरुदेवत ।
वन्दन सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत ॥ १ ॥

जिन की कृपा से साधक मन के मनोरथ रूप सूक्ष्म जन्म से पार होकर परब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरजन राम, सद्गुरु और सर्व सतो को हम अनेक प्रणाम करते है।

दादू चौरासी लख जीव की, प्रकृति[1] घट मांहिं।
अनेक जन्म दिन के करैं, कोई जानै नांहिं ॥ २ ॥

२ मे सूक्ष्म जन्मो का सामान्य परिचय दे रहे है—प्राणी के अन्त करण मे चौरासी लाख योनियो के जीवो के स्वभाव[1] रहते है और वे दिन के अल्प काल मे भी मनोरथ रूप अनेक जन्म देते रहते है, किन्तु इन जन्मो को ससारी प्राणी कोई भी नही जान सकता। उच्च कोटि के साधक ही जान पाते है।

दादू जेते गुण व्यापै जीव को, ते ते ही अवतार ।
आवागमन यहु दूर कर, समर्थ सिरजनहार ॥ ३ ॥

३-८ मे सूक्ष्म जन्मो को विस्तार से बता रहे है—इस जीवात्मा के अन्त करण में जितने गुण प्रकट होते है, उतने ही इसके जन्म होते है। जेसे शौर्य की प्रधानता जब होती है, तब सिह का जन्म होता है। ऐसे ही मन मे अनेक कामादि प्रकट और लय होते है, यही सूक्ष्म जन्म-मरण है। हे समर्थ सृष्टिकर्त्ता ईश्वर ! हमारा यह सूक्ष्म जन्म-मरण रूप आना-जाना कृपा करके दूर करे।

सब गुण सब ही जीव के, दादू व्यापैं आइ ।
घट मांहीं जामै मरै, कोइ न जानै ताहि ॥ ४ ॥

सभी जीवो के सभी गुण जीव के मन मे आकर व्याप्त होते रहते है। शरीर मे उनका व्याप्त होना और नष्ट होना ही जन्म-मरण है किन्तु उस जन्म-मरण को विचारादि साधनहीन कोई भी प्राणी नही जानता।

जीव जन्म जानै नही, पलक पलक में होइ ।
चौरासी लख भोगवै, दादू लखै न कोइ ॥ ५ ॥

गुण विकारादि के उत्पत्ति-लय रूप जन्म-मरण पलक-पलक मे होते ही रहते है किन्तु सत्सगादि साधन से रहित वहिर्मुख जीव उनको नही जान पाता। इन सूक्ष्म-जन्मादि से प्राणी एक शरीर मे स्थित रहते हुये ही चौरासी लक्ष योनियो के सुख-दु खादि भोग भोगता रहता है किन्तु यह नही जान पाता कि अब मै किस योनि मे हूँ। कारण, गुण के तीव्र वेग को वहिर्मुख कैसे जान सकता है ? उसे जानने की शक्ति तो उच्चकोटि के अन्तर्मुख सन्त मे ही होती है।

अनेक रूप दिन के करै, यहु मन आवै जाइ ।
आवागमन मन का मिटै, तब दादू रहै समाइ ॥ ६ ॥

यह मन दिन के अल्प-काल मे भी अनेक मनोरथ रूप आकारो को धारण करता है। एक विषय से दूसरे विषय पर आता है और दूसरे विषय से तीसरे विषय पर जाता है। यदि इस मन का यह आना-जाना मिट जाय तब तो आत्मा ब्रह्म मे समा कर अद्वैत रूप से ही रहता है, लेशमात्र भी भेद नही रहता।

निश वासर यहु मन चलै, सूक्ष्म जीव सहार ।
दादू मन थिर कीजिये, आतम लेहु उबार ॥ ७ ॥

यह मन रात-दिन निरन्तर एक विषय से दूसरे विषय पर और एक सकल्प से दूसरे सकल्प पर जाता रहता है। यही जीवो का सूक्ष्म सहार है। अत मन को परब्रह्म मे स्थिर करके, मन ही स्थिरता के द्वारा जीवात्माओ को सूक्ष्म सहार से बचावे, तब ही पूर्ण अहिसक हो सकते है।

यह साखी जीव दया के प्रसग मे ढूढिये जैन सन्तो को कही थी। उन्होंने नत मस्तक होकर इसे स्वीकार किया था।

कबहूँ पावक कबहूँ पाणी, धर अम्बर गुण बाइ ।
कबहूँ कुजर कबहूँ कीडी, नर पशुवा ह्वै जाइ ॥ ८ ॥

कभी अग्नि के गुण रूप मे, कभी जल के गुण रस मे, कभी पृथ्वी के गुण गध मे, कभी आकाश के गुण शब्द मे और कभी वायु के गुण स्पर्श मे आसक्त होता है। कभी हस्ति के प्रधान गुण काम के अधीन होता है। कभी दूसरो के छिद्र खोजना रूप चीटी के गुण मे सलग्न होता है और बहिर्मुख होकर पशु-तुल्य हो जाता है, इसीलिए मानव अपने उक्त सूक्ष्म जन्मो को और उनसे उद्धार होने के उपाय को नही जान पाता।

करणी बिना कथनी

शूकर श्वान सियाल सिंह, सर्प रहै घट माहि ।
कुजर कीडी जीव सब, पांडे जानै नांहिं ॥ ९ ॥

इति सूषिम जन्म का अग समाप्त ॥ ११ ॥ सा ११४५ ॥

९ मे कह रहे है-साधन रूप कर्त्तव्य के बिना केवल शास्त्र कथन करने वाले पडित सूक्ष्म जन्मो को नही जान सकते। अग्राह्य-ग्रहण वृत्ति रूप शूकर, ईर्ष्या वृत्ति रूप श्वान, भय वृत्ति रूप सियार, शौर्य वृत्ति रूप सिह, कोप वृत्ति रूप सर्प, काम वृत्ति रूप हस्ति और छिद्रान्वेषण वृत्ति रूप चीटी इत्यादि वृत्ति रूप सभी सूक्ष्म प्राणी शरीर के भीतर अन्त करण मे जन्मते मरते रहते है, किन्तु इस सूक्ष्म जन्म-मरण को अन्तरग साधन हीन बहिर्मुख केवल शब्दार्थ जानने वाले पडित लोग नही जान पाते।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका सूक्ष्म जन्म का अग समाप्त ॥ ११ ॥

अथ माया का अंग १२

सूक्ष्म जन्म के अग के पश्चात् सूक्ष्म जन्मो के कारण "माया का अग" कथन मे प्रवृत्त मगल कर रहे है।

दादू नमो नमो निरजनं, नमस्कार गुरुदेवत ।
वन्दन सर्व साधवा, प्रणामं पारगत ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक माया से पार होकर परब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरजन राम, सद्गुरु और सर्व सन्तो को हम अनेक प्रणाम करते है।

साहिब है पर हम नहीं, सब जग आवे जाइ ।
दादू स्वप्ना देखिये, जागत गया बिलाइ ॥ २ ॥

२ मे मायिक ससार की असत्यता बता रहे है—परब्रह्म सत्य है किन्तु हम शरीर रूप से सत्य नही है। सभी जगत् के शरीरादि पदार्थ आते जाते है, उत्पन्न होते है और नष्ट होते है। फिर भी जैसे स्वप्न स्वल्पकाल मे सत्य-सा भासता है वैसे ही जाग्रत के शरीरादि सत्य से दीखते है। परन्तु जागते ही स्वप्न लय हो जाता है, वैसे ही ब्रह्मज्ञान होते ही शरीरादि की सत्यता नष्ट हो जाती है।

माया का सुख पंच दिन, गर्व्यो कहा गँवार ।
स्वप्नै पायो राज धन, जात न लागै बार ॥ ३ ॥

३-८ मे मायिक सुख की असत्यता दिखा रहे है—अज्ञानी प्राणी ! यह मायिक सुख स्वप्न-सुख के समान क्षणिक है। इस पर क्या गर्व करता है ? जैसे स्वप्न मे किसी ने राज्य और महान् धन प्राप्त कर लिया किन्तु उसे नष्ट होते क्या देर लगती है, वैसे ही तेरे मायिक सुख को भी नष्ट होते देर न लगेगी।

दादू स्वप्नैं सूता प्राणियाँ, कीये भोग विलास ।
जागत झूठा ह्वै गया, ताकी कैसी आस ॥ ४ ॥

सोते समय प्राणी स्वप्न मे भोग भोगता है किन्तु निद्रा टूटते ही उसे वे सब मिथ्या ज्ञात होते है। वैसे ही आत्म-ज्ञान होने पर मायिक सुख मिथ्या ज्ञात होते है। अत उनकी आशा करना उचित नही।

यों माया का सुख मन करै, सेज्या सुन्दरी पास ।
अन्त काल आया गया, दादू होहु उदास ॥ ५ ॥

४ मे कहे प्रकार से मन मायिक सुखो का उपभोग करता रहता है। शय्या पर सुन्दरी युवती के पास रहता है किन्तु देहान्त का समय आते ही सभी मायिक सुख इसके हाथ से चले जाते है। उस समय इसे बडा दु ख होता है। अत उस दु ख की निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति के लिए प्रथम ही विरक्त हो जाना चाहिए।

जे नांहीं सो देखिये, सूता स्वप्नै मांहिं ।
दादू झूठा ह्वै गया, जागै तो कुछ नांहिं ॥ ६ ॥

अज्ञान निद्रा मे प्रसुप्त प्राणी जो सत्य नही है, उसी मायिक प्रपच को सत्य देखता है, किन्तु ज्ञान रूप जाग्रत मे तो वह मिथ्या हो जाता है। उसका कुछ भी अस्तित्व नही मिलता।

यहु सब माया मृग जल, झूठा झिलमिल होइ ।
दादू चिलका देख कर, सत कर जाना सोइ ॥ ७ ॥

ये सब मायिक भोग मृग-तृष्णा-जल के झिलमिलाहट के समान मिथ्या है किन्तु जैसे मृग उस जल के चिलके को देखकर उसके लिए दौड-दौड कर व्यथित होते है, वैसे ही अज्ञानी प्राणी

मायिक भोगो के क्षणिक सुख रूप चमत्कार को सत्य जानकर उनके लिए नाना क्लेश उठाते है।

झूठा झिलमिल मृग जल, पाणी कर लीया।
दादू जग प्यासा मरै, पशु प्राणी पीया॥ ८॥

मृग-तृष्णा के मिथ्या जल के झिलमिलाहट को मृग-गण सत्य मान लेते है, तभी वे उसके लिए दौड-दौड़ कर दुखी होते है। वैसे ही ससार के पशुवत् पामर प्राणी मायिक भोगो के क्षणिक सुख को सत्य मानकर, उसमे आसक्त होते है किन्तु अभी तक तृप्त नही हुये, भोगाशा से बारबार जन्म-मरण रूप क्लेश ही पा रहे है।

पति पहचान

छलावा छल जायगा, स्वप्ना बाजी सोइ।
दादू देख न भूलिये, यहु निज रूप न होइ॥ ९॥

९ मे ब्रह्म रूप स्वामी को पहचानने का सकेत कर रहे है—साधको ! जैसे स्वप्न और बाजीगर की इन्द्रजाल-बाजी मिथ्या होती है वैसे ही ध्यान के समय नाना दृश्य और प्रकाश जो दीख-दीख कर छिप जाते है वा मायिक सिद्धिया है ये सब छलने वाले छलावे है। सचेत रहना, ये तुम्हे छल कर ब्रह्म-साक्षात्कार से वचित रख देगे। इन्हे देखकर परब्रह्म को मत भूलो। वह छलावा आदि मायिक प्रपच परब्रह्म नही हो सकते, परब्रह्म तो इनका अधिष्ठान है।

माया

स्वप्नै सब कुछ देखिये, जागै तो कुछ नाहिं।
ऐसा यहु ससार है, समझ देख मन मांहि॥ १०॥

१०-१६ मे मायिक प्रपच को मिथ्या बताते हुए ब्रह्म मे वृत्ति लगाने की प्रेरणा कर रहे है—जैसे स्वप्न मे सब कुछ सत्य भासते है किन्तु जागने पर लेशमात्र भी सत्य नही ज्ञात होते, ऐसा ही यह जाग्रत का ससार है। तू सतो द्वारा ब्रह्मज्ञान को मन मे समझकर देख, फिर तो तुझे भी मिथ्या ही भासेगा।

दादू ज्यो कुछ स्वप्नै देखिये, तैसा यहु ससार।
ऐसा आपा जानिये, फूल्यो कहा गँवार॥ ११॥

जैसे स्वप्न मे बिना हुये पदार्थ देखे जाते है वैसा ही यह ससार है और ऐसा ही इन मायिक पदार्थो मे प्राणी का अपनेपन का अभिमान भी मिथ्या ही है। ये देखते-देखते दूसरो के हो जाते है। अत अज्ञानी ! इनको देखकर क्यो भूल रहा है। ब्रह्म मे वृत्ति लगा।

दादू जतन जतन कर राखिये, दृढ गह आतम मूल।
दूजा दृष्टि न देखिये, सब ही सेमल फूल॥ १२॥

अपने मूल ब्रह्म के स्वरूप चिन्तन को विवेक-वैराग्यादि प्रयत्नो द्वारा दृढता से हृदय मे रखना चाहिए। ब्रह्म भिन्न मायिक प्रपच को सत्य दृष्टि से नही देखना चाहिए। यह सव सेमल वृक्ष

के फूल समान बहकाने वाला है। सेमल के फूल की डोडी को फल समझकर शुक पक्षी, खिल जाने पर मास राशि समझकर गिद्ध गण, और सिन्दूर गिरि समझकर अपसरागण बहकते है।

दादू नैनहुँ भर नहिं देखिये, सब माया का रूप ।
तहँ ले नैना राखिये, जहँ है तत्त्व अनूप ॥ १३ ॥

यह जो भी बाह्य दृष्टि से दिखाई दे रहा है, सब माया का ही रूप है। इसे सत्य समझकर अनुराग पूर्ण दृष्टि से नही देखना चाहिए। जहा हृदय मे उपमा रहित ब्रह्म तत्त्व आत्म रूप से स्थित है, वहा ही निरन्तर अपने विचार रूप नेत्र रखने चाहिए।

हस्ती, हय, बर, धन, देखकर, फूल्यो अंग न माइ।
भेरि[१] दमामा[२] एक दिन, सब ही छाडे जाइ ॥ १४ ॥

हे अज्ञानी ! तू द्वार पर हाथी, घोडे, दल-बल, सुवर्णादि धन और बडे-बडे ढोल[१] तथा नगारे[२] बजते देखकर फूल रहा है, अपने शरीर मे भी नहीं समाता, किन्तु याद रख, एक दिन सबको छोडकर चला जायगा।

दादू माया बिहडै देखतां, काया संग न जाइ।
कृत्रिम[१] बिहडै बावरे, अजरावर ल्यौ लाइ ॥ १५ ॥

हे अज्ञानी ! तेरा मायिक ऐश्वर्य देखते-देखते ही तुझसे अलग हो जायगा वा नष्ट हो जायेगा। यह तेरा सुन्दर शरीर भी साथ नही जायगा। जो भी माया कृत नकली[१] ऐश्वर्य स्वर्गादि लोको मे है, वह भी सब सदा साथ नही रहता, नष्ट होने वाला ही है। अत सदा साथ रहने वाले इन्द्रादि देवो से भी श्रेष्ठ परब्रह्म मे ही अपनी वृत्ति लगा।

दादू माया का बल देख कर, आया अति अहंकार ।
अंध भया सूझै नहीं, का करि है सिरजनहार ॥ १६ ॥

ससारी प्राणी के हृदय मे मायिक ऐश्वर्य के बल से महान् अहकार आ जाता है और वह धन-मद से अपने विवेक-विचार-नेत्रो को खोकर अधा हो जाता है। उसे यथार्थता नही दीखती, इसीलिए कहता रहता है-ईश्वर क्या करता है ? सब कुछ हम ही करते है।

विरक्तता

मन मनसा माया रती, पंच तत्त्व प्रकास ।
चौदह तीनों लोक सब, दादू होइ उदास ॥ १७ ॥

१७-२० मे मायिक प्रपच से विरक्त होने की प्रेरणा कर रहे है—माया के कार्य आकाशादि पच तत्त्वो से ही चौदह भुवन और तीनो लोको की उत्पत्ति होती है। इसीलिए मन और बुद्धि की प्रीति मायिक पदार्थों मे ही होती है। किन्तु मायिक पदार्थों की प्रीति से जन्मादि खेद ही मिलता है। अत·जन्मादि दु खो की निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति के लिए मायिक प्रपच से उदास होकर मन बुद्धि को परब्रह्म मे ही लगाओ।

माया देखे मन खुशी, हिरदै होइ विकास।
दादू यह गति जीव की, अंत न पूगे[1] आस॥ १८॥

ससारी प्राणियो का मन मायिक पदार्थों को देखकर प्रसन्न होता है और हृदय भी प्रफुल्लित होता है किन्तु यह जो मायिक पदार्थों को प्राप्त करने के लिए जीव को दौड़ाता है, इससे कल्पान्त तक भी इसकी परमसुख की आशा पूर्ण[1] न हो सकेगी।

मन की मूठि न माडिये, माया के नीशाण।
पीछे ही पछताहुगे, दादू खूटे[1] बाण॥ १९॥

माया रूप लक्ष्य पर, माया से ही कल्याण होगा, ऐसा निश्चय रूप मूठी विषयाशा-धनुष पर बॉधकर श्वासो के बाण मत मारो=मायिक पदार्थों के लिए ही आयु मत व्यतीत करो। ऐसे व्यर्थ श्वास खोने से तुम्हारे श्वास व्यर्थ ही समाप्त[1] हो जायेंगे और पीछे तुम पश्चात्ताप मे ही जलोगे।

शिश्न स्वाद

कुछ खाता कुछ खेलतां, कुछ सोवत दिन जाइ।
कुछ विषया रस विलसता, दादू गये विलाइ॥ २०॥

२० मे कहते है—इन्द्रिय स्वादार्थ प्रयत्न मे ही शरीर नष्ट हो जाते है-प्राणी के आयु के दिन कुछ तो बाल्यावस्था मे खाने खेलने मे, कुछ युवावस्था के विषय-रस उपभोग मे और कुछ सोने मे चले जाते है। ऐसे ही इन्द्रिय भोगो मे शरीर नष्ट हो जाते है।

संगति-कुसगति

माखन मन पाहन भया, माया रस पीया।
पाहन मन माखन भया, राम रस लीया॥ २१॥

२१-२८ मे सग कुसग का फल बता रहे है—मक्खन के समान कोमल मन भी मायिक विषय-रस के पान करने से पत्थर के समान कठोर हो जाता है और राम-भक्ति-रस के पान करने से पत्थर के समान कठोर मन भी दयादि से युक्त होकर मक्खन के समान कोमल हो जाता है।

दादू माया सौ मन बीगड़्या, ज्यो काजी कर दुग्ध।
है कोई ससार मे, मन कर देवै शुद्ध॥ २२॥

जैसे काजी से दूध खराब हो जाता है वैसे ही प्राणियो का मन माया से खराब हो गया है। ससार मे ऐसा कोई विरला ही सन्त मिलता है जो माया से बिगड़े हुये मन को शुद्ध कर दे।

गंदी सौ गदा भया, यो गंदा सब कोइ।
दादू लागै खूब सौं, तो खूब सरीखा होइ॥ २३॥

जैसे शुद्ध मन गदी माया से मिलकर गदा हो गया है, वैसे ही माया के सग से सब गदे हो जाते है और मैला मन यदि सर्व श्रेष्ठ ब्रह्म-चिन्तन मे लगता है तो द्वन्द्वो से रहित होकर श्रेष्ठ सन्तो के मन के समान ही हो जाता है।

माया सौं मन रत भया, विषय रस माता।
दादू साचा छाड कर, झूठे रंग राता ॥ २४ ॥

जब से मन माया मे अनुरक्त हुआ है तभी से विषय-रस मे मस्त हो सत्य ब्रह्म का चिन्तन छोड कर मिथ्या मायिक राग-रगादि मे आसक्त हो रहा है।

माया के संग जे गये, ते बहुरि न आये।
दादू माया डाकिनी, इन केते खाये ॥ २५ ॥

जो भी मायिक विषयो मे आसक्त होकर व्यवहार मे प्रवृत्त हुये है वे पुन सत्संगादिक कल्याण मार्ग मे नही आ सके है। यह माया डाकिनी के समान है, इसने कितने ही साधको को कल्याण मार्ग से भ्रष्ट किया है।

दादू माया मोट विकार की, कोइ न सकई डार ।
बह बह मूये बापुरे, गये बहुत पच हार ॥ २६ ॥

यह माया विकारो की गठरी है। तुच्छ प्राणी तो इसके बोझ को ढो-ढो कर मर गये है। बहुत-से अज्ञानी लोग इसको पटकने के लिए प्रयत्न करके हार गये है किन्तु इसे अपने शिर से नीचे कोई भी नही डाल सका।

दादू रूप राग गुण अणसरे[1], जहँ माया तहँ जाइ ।
विद्या अक्षर पंडिता, तहां रहे घर छाइ ॥ २७ ॥

जिनको सत्सग प्राप्त नही होता, वे जहा रूप-रागादि मायिक गुण होते है वहा ही जाते है। माया के बिना उनका काम नही चलता[1]। नाना प्रकार की कला जानने वाले, अक्षर, विज्ञान तथा शब्दार्थों के जानने मे निपुण पडित तो जहा माया होती है, वहाँ ही घर बनाकर बस जाते है।

साधु न कोई पग भरै, कबहूँ राज दुवार ।
दादू उलटा आप में, बैठा ब्रह्म विचार ॥ २८ ॥

सत्सग को प्राप्त कोई भी सन्त माया की अधिकता वाले राजादि के द्वार पर माया की प्राप्ति के लिए नही जाता, प्रत्युत ब्रह्म-विचार द्वारा अपने स्वरूप मे ही स्थिर होता है।

आशय-विश्राम

दादू अपने अपने घर गये, आपा अंग विचार।
सहकामी माया मिले, निष्कामी ब्रह्म संभार ॥ २९ ॥

२९ मे कहते है—प्राणी को अपनी वासनानुसार ही स्थान मिलता है। जिनके अन्त करण मे जैसा अहकार था, उस अहकार के अनुसार विचारो से जिन-जिन स्थानो की उन्होंने आशा की थी, उन-उन अपनत्व वाले स्थानो मे ही वे चले गये है। सकामियो को मायिक भोग मिल गये और निष्कामियो को ब्रह्म विचार द्वारा प्राप्त हो गया है।

माया

दादू माया मगन जु हो रहे, हम से जीव अपार ।
माया माहीं ले रही, डूबे काली धार ॥ ३० ॥

३० मे कहते है—माया प्रेमियो का उद्धार नही होता-हमारे समान मानव देह धारण करने वाले अपार जीव जो मायिक पदार्थों के राग मे निमग्न होकर रहे है, उनको माया ने अपने बाहर परब्रह्म की ओर नही जाने दिया, वे माया की अज्ञान रूप काली-धार मे डूबकर कर जन्मादि क्लेश ही भोग रहे है।

शिश्न स्वाद

दादू विषय के कारणै रूप राते रहै, नैन नापाक यो कीन्ह भाई ।
बदी की बात सुनत सारा दिन, श्रवण नापाक यो कीन्ह जाई ॥ ३१ ॥

३१-३२ मे कहते है—राग पूर्वक अविहित भोगो मे प्रवृत्त होने से इन्द्रिया और शरीर अपवित्र हो जाते है—हे भाई ! विषयासक्ति के कारण नेत्र सुन्दर रूप मे अनुरक्त रहते है, इसलिए अपवित्र हो जाते है। दुर्जनो मे जाकर सारे दिन पर-निन्दादि बुरी बाते सुनते है, इसीलिए श्रवण अपवित्र हो जाते है।

स्वाद के कारणै लुब्धि[1] लागी रहै, जिह्वा नापाक यो कीन्ह खाई।
भोग के कारणै भूख लागी रहै, अग नापाक यो कीन्ह लाई ॥ ३२ ॥

अखाद्य के स्वाद के लिए लोभ[1] ग्रसित वृत्ति अखाद्य मे लगी रहती है और उसे खाता है, तब जिह्वा अपवित्र हो जाती है। नारी प्रसग के लिए अभिलाषा लगी रहती है, उसके शरीर को स्पर्श करता है, तब शरीर अपवित्र हो जाता है।

माया

दादू नगरी चैन सब, जब इक राजी होइ ।
दोइ राजी दुख द्वन्द्व मे, सुखी न बैसे कोइ ॥ ३३ ॥

३३-३४ मे कहते है—अन्त करण मे मायिक प्रभाव रहने से दु ख ही होता है—कायानगरी मे जब एक विवेक का ही राज्य होता है तब तो सुख शाति रहती है। जब विवेक और महा मोह दोनो का राज्य होता है, तब दोनो राजाओ मे द्वन्द्व-युद्ध चलते रहने से इन्द्रिय अन्त करणादि प्रजा मे से कोई भी सुख से नही बैठ सकता।

इक राजी आनन्द है, नगरी निश्चल बास ।
राजा प्रजा सुखि बसै, दादू ज्योति प्रकास ॥ ३४ ॥

जब काया नगरी मे एक विवेक का ही राज्य होता है, तब काया नगरी हलचल रहित निश्चल बसती है। विवेक नृपति और इन्द्रियादि प्रजा सुख से रहते है तथा आत्म-ज्योति का प्रकाश भासते रहने से परमानन्द भी प्राप्त होता है।

शिश्न स्वाद

जैसे कुंजर काम वश, आप बँधाना आइ।
ऐसे दादू हम भये, क्यों कर निकस्या जाइ॥ ३५॥

३५-४१ मे कहते है—जीव इन्द्रियो के वश होकर ही बँधता है और नष्ट होता है- जैसे हाथी कामवश होकर अपने आप ही बन्धन मे आ जाता है। (हाथी को पकडने वाले वन मे हाथी समा सके, ऐसा खड्डा खोदकर उसे पतली लकडी और पत्तो से छाप कर उस पर कागज की हथनी रख देते है। उसे सच्ची हथनी जान कर हाथी उस के पास आता है, तब खड्डे मे पड़ जाता है, फिर उसे भूख प्यास से कमजोर करके पकड लाते है) वैसे ही अज्ञानी प्राणी काम की फॉसी मे फँस जाते है। फॅसने के पश्चात् निकलना अति कठिन हो जाता है।

जैसे मर्कट जीभ रस, आप बँधाना अंध।
ऐसे दादू हम भये, क्यों कर छूटै फंध॥ ३६॥

जैसे वानर जिह्वा के स्वादवश अपने आप ही अधा होकर बॅध जाता है। (वानर को पकडने वाले छोटे मुख के बर्तन मे चने भर कर भूमि मे गाड देते है। वानर उससे अपने दोनो हाथो की मुट्ठियो मे चने भर कर एक साथ निकालना चाहता है। मुख सकडा होने से मुट्ठियॉ नहीं निकलती, आगे पीछे निकालने की समझ नही। इतने मे पकडने वाला आकर पकड लेता है) वैसे ही अज्ञानी जीव जिह्वा के स्वाद से कर्म बन्धन मे बॅध जाते है, फिर उनका बन्धन कटना कठिन हो जाता है।

ज्यों सूवा सुख कारणै, बंध्या मूरख मांहिं।
ऐसे दादू हम भये, क्यों ही निकसैं नांहि॥ ३७॥

जैसे मूर्ख शुक पक्षी पानी पीने के सुख के लिए नलिका मे बॅध जाता है। (तोते को पकडने वाले जल के कुडे पर पानी खेचने की चकली के समान नलिका लगा देते है। तोता उस पर बैठकर पानी पीने के लिए नीचे झुकता है तब वह घूम जाती है, तोते का मस्तक नीचे लटक जाता है। पैरो से नलिका पकडे रहता है और मुझे किसी ने बॉध लिया, ऐसा समझ कर बोलने लगता है, तब पकडने वाला आकर पकड लेता है) ऐसे ही अज्ञानी प्राणी विषय-जाल मे फॅस जाते है, फिर उनका निकलना किसी प्रकार भी सभव नही होता।

जैसे अंध अज्ञान गृह, बंध्या मूरख स्वाद।
ऐसे दादू हम भये, जन्म गमाया बाद॥ ३८॥

जैसे मूर्ख भ्रमर कमल गध की मस्ती से अधा होकर वास-रस आस्वादन के लिए सूर्यास्त के समय कमल-कोश मे बॅध जाता है, वैसे ही ससारी प्राणी अज्ञान वश घर के कार्यों मे फॅस कर अपना जन्म व्यर्थ ही खो देते है।

दादू बूड रह्या रे बापुरे[1], माया गृह के कूप ।
मोह्या कनक रु कामिनी, नाना विधि के रूप ॥ ३९ ॥

माया ने कनक, कामिनी आदि प्रकार के रूपो से तुच्छ' जीवो को मोहित करके गृह-कूप मे डाल दिया है। इसीलिए विषय-जल मे निमग्न हो रहे है।

दादू स्वाद लाग संसार सब, देखत पर लै जाइ ।
इन्द्री स्वारथ साच तज, सबै बँधाणै आइ ॥ ४० ॥

स्वार्थ वश सत्य परमात्मा का चिन्तन त्याग कर तथा शिश्नेन्द्रिय के स्वाद मे लग कर प्राय सभी ससार के प्राणी देखते-देखते परमार्थ से भ्रष्ट होकर विषय-जाल मे बँधते जा रहे है।

विष सुख मांहीं रम रहै, माया हित चित लाइ ।
सोइ सत जन ऊबरै, स्वाद छाड गुण गाइ ॥ ४१ ॥

सभी अज्ञानी प्राणी मायिक पदार्थों मे हित की दृष्टि से चित्त लगाकर विष तुल्य विषय-सुख मे ही रम रहे है। जो इन्द्रिय स्वादो की इच्छा को छोड कर गोविन्द-गुण-गान मे रत है, वे ही सतजन इस माया से बचते है।

आसक्तता मोह

दादू झूठी काया झूठ घर, झूठा यहु परिवार ।
झूठी माया देखकर, फूल्यो कहा गँवार ॥ ४२ ॥

४२ मे मोह वश विषयासक्त को चेतावनी दे रहे है—हे अज्ञानी ! यह शरीर, घर, परिवार और धन मिथ्या है ! इन्हे देखकर तू क्यो फूल रहा है ?

विरक्तता

दादू झूठा ससार, झूठा परिवार, झूठा घरबार, झूठा नर नारि,
तहा मन मानै । झूठा कुल जात, झूठा पितु मात, झूठा बन्धु भ्रात,
झूठा तन गात, सत्य कर जानै ॥ झूठा सब धध, झूठा सब फध,
झूठा सब अध, झूठा जाचन्ध[1], कहा मग छानै ।
दादू भाग, झूठ सब त्याग, जाग रे जाग, देख दीवानै ॥ ४३ ॥

४३ मे मिथ्या को त्याग कर सत्य को प्राप्त करने की प्रेरणा कर रहे है—हे माया मद से अधे प्राणी ! परिवार, घर, कुल, कुल के नर-नारिया, जाति, पिता, माता, भ्राता, बान्धव, शरीर, शरीर के अग, व्यापार और सबधादि सभी ससार मिथ्या है। हे अज्ञानी ! तुझे जन्माध' के समान कुछ भी नही दीखता, इस मिथ्या ससार-मार्ग की क्या खोज कर रहा है ? अरे दीवाने ! मोह निद्रा से जाग, झट-पट जाग और सपूर्ण मिथ्या-मायिक प्रपच को त्याग कर सत्य ब्रह्म की प्राप्ति के मार्ग मे आगे बढ कर परब्रह्म का साक्षात्कार कर।

आसक्तता

दादू झूठे तन के कारणै, कीये बहुत विकार।
गृह दारा[1] धन संपदा, पूत कुटुंब परिवार ॥ ४४ ॥

४४-४५ मे कहते है—प्राणी शरीर मे आसक्त होकर ही परमार्थ से गिरता है—मिथ्या शरीर की आसक्ति के कारण ही प्राणी काम-क्रोधादि बहुत-से विकारो का आदर करता है। घर, स्त्री[1], धनादि ऐश्वर्य, पुत्र आदि कुटुम्बियो से घिरा रहता है।

ता कारण हत आतमा, झूठ कपट अहंकार।
सो माटी मिल जायगा, विसर्‍या सिरजनहार ॥ ४५ ॥

शरीर के लिए झूठ, कपट, अहकारादि करके अपनी आत्मा का हनन करता है, आत्म-ज्ञान से वचित रहता है तथा भगवान् को भी भूल जाता है, वही शरीर एक दिन मिट्टी मे मिल जायगा।

विरक्तता

दादू जन्म गया सब देखतां, झूठी के संग लाग ।
साचे प्रीतम को मिलै, भाग सकै तो भाग ॥ ४६ ॥

४६-४७ मे मन को माया से विरक्त होकर ब्रह्म चिन्तन करने की प्रेरणा कर रहे है—हे मन ! मिथ्या मायिक प्रपच मे लगकर तूने नरजन्म का सब समय देखते-देखते ही खो दिया। अब भी यदि इससे दूर हो सके तो शीघ्र दूर होजा। जिससे शेष समय मे अपने प्रियतम सत्य ब्रह्म का चिन्तन करके उससे मिल सके।

दादू गतं गृहं, गतं धनं, गतं दारा सुत यौवनं।
गतं माता, गतं पिता, गतं बन्धु सज्जनं ॥
गतं आपा, गतं परा, गतं संसार कत रंजन।
भजसि भजसि रे मन, परब्रह्म निरंजनं ॥ ४७ ॥

हे मन ! घर, धन, स्त्री, पुत्र, यौवन, माता, पिता, बान्धव, प्रिय मित्रगण, अपना, पराया जो भी कुछ यह ससार है सो सब नष्ट हुआ ही समझ। इस विनाशी ससार मे तेरे को किस लिये प्रसन्नता होती है ? इसमे तो प्रसन्नता का कोई भी कारण नही है, अत· इसको त्याग कर शीघ्र ही निरजन परब्रह्म का भजन कर।

आसक्तता मोह

जीवों मांहीं जीव रहै, ऐसा माया मोह ।
सांई सूधा[1] सब गया, दादू नहिं अंदोह[2] ॥ ४८ ॥

मोह-जन्य आसक्ति का प्रभाव बता रहे है—यह मायिक मोह ऐसा है-इसके वश होकर प्राणी का मन स्त्री-पुत्रादिक जीवो मे ही आसक्त रहता है। इस आसक्ति के कारण ही भगवत्-प्राप्ति के अवसर के सहित[1] जीवन का सभी समय व्यर्थ नष्ट हो जाता है तो भी प्राणी को दु ख[2] नही होता।

विरक्तता

माया मगहर खेत खर[1], सद्गति कदे न होइ ।
जे वंचे ते देवता, राम सरीखे सोइ ॥ ४९ ॥

४९-५१ मे मायिक ससार से विरक्त होने की प्रेरणा कर रहे है—जैसे मगहर क्षेत्र (काशी के समीप गगा पार) मे मरने वाला गधे[1]की योनि मे जाता है, वैसे ही माया मे अनुरक्त रहने वाले की सद्गति नही होती। जो मायिक मोह से बचे है, वे मनुष्य होते हुये भी देवता है और निर्द्वन्द्व होने से राम के समान ही है।

कालर खेत न नीपजे, जे वाहे सो वार ।
दादू हाना बीज का, क्या पच मरे गँवार ॥ ५० ॥

यदि ऊसर भूमि मे सौ बार बीज डाला जाय तो भी कुछ नहीं उत्पन्न होगा, प्रत्युत बीज की ही हानि होगी। वैसे ही अज्ञानी प्राणी मायिक पदार्थो से परम सुख प्राप्ति के लिए कितना ही प्रयत्न करे तो भी क्या परमसुख प्राप्त होगा ? अर्थात् नही।

दादू इस संसार सों, निमष न कीजे नेह ।
जामण मरण आवटणा, छिन छिन दाझै देह ॥ ५१ ॥

इस मायिक ससार से एक निमेष जितने समय भी प्रेम नही करना चाहिए। इसमे स्नेह करने से जन्म-मरण रूप अग्नि मे उबलना पड़ता है और जीवन काल मे क्रोध, ईर्ष्यादि से क्षण-क्षण मे हृदय जलता रहता है।

आसक्तता=मोह

दादू मोह संसार का, विहरे तन मन प्राण ।
दादू छूटे ज्ञान कर, को साधू संत सुजाण ॥ ५२ ॥

५२-५३ मे मोह का प्रभाव बता रहे है—इस मायिक ससार का मोह प्राणियो के तन, मन और प्राणो को ससार मे भटकाता रहता है। कोई श्रेष्ठ ज्ञानी सन्त ही ब्रह्म-ज्ञान के द्वारा ससार के आवागमन से मुक्त होकर ब्रह्म मे लय होता है।

मन हस्ती माया हस्तिनी, सघन वन ससार ।
तामे निर्भय हो रह्या, दादू मुग्ध गँवार ॥ ५३ ॥

इस ससार रूप सघन वन मे अज्ञानी प्राणी का मन-हस्ति माया-हस्तिनी से मोहित होकर उस भय के स्थान मे भी निर्भय हो रहा है।

काम

दादू काम कठिन घट चोर है, घर फोडे दिन रात ।
सोवत साह न जागई, तत्त्व वस्तु ले जात ॥ ५४ ॥

५४-५६ मे काम का उपद्रव बता रहे है—अन्त करण मे काम रूप विकट चोर है, वह सात्त्विक वृत्ति रूप घर को रात-दिन तोड़ता ही रहता है। जीव रूप साह मोहनिद्रा मे सो रहा है।

सत और शास्त्रो के जगाने पर भी नही जागता। इसीलिए काम-चोर स्थूल शरीर की सार वस्तु वीर्य और सूक्ष्म शरीर की सार-वस्तु ज्ञान चुरा ले जाता है।

काम कठिन घट चोर है, मूसे[1] भरे भडार।
सोवत ही ले जायगा, चेतन पहरे चार॥ ५५॥

यह काम-चोर ऐसा निष्ठुर है—मोह निद्रा मे सोते ही ज्ञान वैराग्यादि दैवी गुण-रत्नो का भडार चुरा[1] ले जायेगा। अत आयु की १ शिशु २ किशोर ३ युवा ४ वृद्ध, चारो ही अवस्थाओ मे सावधान रहना चाहिए।

ज्यों घुण लागै काठ को, लोहे लागै काट।
काम किया घट जाजरा, दादू बारह बाट॥ ५६॥

जैसे घुण लगने से काष्ठ और मैल लगने से लौह निरर्थक हो जाते है वैसे ही काम से शरीर जर्जर हो जाता है और अन्त करण की वृत्ति नाना वासनाओ के द्वारा छिन्न-भिन्न हो जाती है, भगवत्-स्वरूप मे स्थिर नही रहती।

करतूति=कर्म

राहु गिलै ज्यो चन्द को, गहण गिलै ज्यों सूर।
कर्म गिलै यों जीव को, नखशिख लागै पूर॥ ५७॥

५७-५९ मे कहते है—निज कर्म से ही पतन और उन्नति होती है—जैसे ग्रहण के समय राहु चन्द्रमा को और केतु सूर्य को निगल जाते है, तब अधकार हो जाता है। वैसे ही जब निषिद्ध सकाम कर्मों की अधिकता से जीव का मन रूप चन्द्रमा मलीन हो जाता है और विवेक रूप सूर्य भी भोग-वासनाओ से आच्छादित हो जाता है, तब जीव के शरीर मे नख से शिखा पर्यन्त अज्ञानाधकार ही परिपूर्ण हो जाता है, यही कर्म का जीव को निगलना है।

दादू चन्द गिलै जब राहु को, गहण गिलै जब सूर।
जीव गिलै जब कर्म को, राम रह्या भरपूर॥ ५८॥

चन्द्र और सूर्य का राहु केतु की राशि को उल्लघन कर जाना ही राहु केतु का निगलना है। वैसे ही जब जीव का मन रूप चन्द्रमा शुभ निष्काम कर्म से निर्मल हो जाता है, तब भोग-वासनाओ की कमी से विवेक रूप सूर्य भी चमकने लगता है। विवेक होते ही जीव वैराग्यादि साधनो द्वारा ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त करके सचित और आगामी कर्मो को नष्ट कर डालता है, यही जीव का कर्मों को निगलना है। इस प्रकार अपने आत्मा को कर्म रहित जान कर अपने रोम-रोम मे तथा सपूर्ण विश्व मे अपने आत्म-स्वरूप राम को परिपूर्ण रूप से देखता है।

कर्म कुहाडा, अंग वन, काटत बारंबार।
अपने हाथों आपको, काटत है संसार॥ ५९॥

सभी ससार के प्राणी अपने ही हाथो से सकाम कर्म रूप कुठार द्वारा अपने शरीर वन को काटते है। एक ही बार नही, किन्तु बारबार काटते ही रहते है= कर्मों द्वारा जन्मते मरते है।

स्वकीय शत्रु मित्रता

आपै मारै आप को, यहु जीव विचारा ।
साहिब राखणहार है, सो हितू हमारा ॥ ६० ॥

६०-६१ मे कहते है—जीव आप ही अपना शत्रु और मित्र है। यह जीव अविद्या के वश होकर निषिद्ध कर्मों द्वारा आप ही अपना पतन करता है, अत शत्रु है। जब हम विचार करके देखते है तो हमारा सच्चा हितैषी और रक्षक एक परमात्मा ही दीखता है, उसकी उपासना करे तो जीव आप ही अपना मित्र हो जाता है।

आपै मारै आप को, आप आपको खाइ ।
आपै अपना काल है, दादू कहै समझाइ ॥ ६१ ॥

हम ठीक समझाकर कहते है—यह जीव आप ही अपनी बुरी वासनाओ के द्वारा अपने को ताडित करता है। आप ही क्रोधादि आसुर गुणो के द्वारा अपने को दु खी करता है और आप ही अपने अज्ञान द्वारा अपना काल बन रहा है। यदि साधन द्वारा आत्म-ज्ञान कर ले तो आप ही अपना मित्र हो सकता है।

करतूति=कर्म

मरबे की सब ऊपजै, जीबे की कुछ नाहि ।
जीबे की जानै नही, मरबे की मन मांहि ॥ ६२ ॥

६२-६३ मे कहते है—प्राय जीव निज कर्म द्वारा पतन की ओर ही जाता है। इस जीव के मन मे सभी इच्छाये पतन की ओर ले जाने वाली ही उत्पन्न होती है, उन्नति की ओर ले जाने वाली कुछ भी नही होती। यह अपने ब्रह्म प्राप्ति रूप जीवन का उपाय तो जानता ही नही। इसके मन मे तो सकाम कर्म रूप जन्म-मरण का उपाय ही बसा रहता है।

बध्या बहुत विकार सौ, सर्व पाप का मूल ।
ढाहै सब आकार को, दादू येह स्थूल ॥ ६३ ॥

प्राणी का यह स्थूल शरीर अन्त करण के कामादिक बहुत-से विकारो से बँधा हुआ है और अपनी भोगाशा की पूर्ति के लिए सभी आकृतियो को नष्ट करता रहता है। इसलिए सर्व पाप का मूल है।

काम

दादू यहु तो दोज़ख देखिये, काम क्रोध अहकार ।
रात दिवस जरबो करै, आपा अग्नि विकार ॥ ६४ ॥

६४-६९ मे कहते है—कामादि गुण और कामियो का सग त्याज्य है। हे साधको ! इन काम, क्रोध अहकारादि को नरक रूप देखकर इनसे दूर रहो। इस विकार रूप नरकाग्नि मे प्राणियो के अन्त करण रात-दिन जलते रहते है।

विषय हलाहल खाइ कर, सब जग मर मर जाइ ।
दादू मोहरा नाम ले, हृदय राखि ल्यौ लाइ ॥ ६५ ॥

सब जगत के प्राणी विषयासक्ति-महाविष खाकर बारबार जन्मते मरते जा रहे है। उससे बचने के लिए निरजन राम का नाम रूप जहरमोहरा (विषघ्न वस्तु) हृदय मे रखते हुये राम मे ही वृत्ति लगानी चाहिए।

जेती विषया विलसिये, तेती हत्या होइ ।
प्रत्यक्ष मानुष मारिये, सकल शिरोमणि सोइ ॥ ६६ ॥

जितना वीर्य का पतन होता है उतनी ही प्रत्यक्ष मे सब प्राणियो मे श्रेष्ठ मानव को मारने की अघन्य हत्या होती है, जो सभी हत्याओ मे शिरोमणि हत्या है।

विषया का रस मद भया, नर नारी का मॉस ।
माया माते मद पिया, किया जन्म का नाश ॥ ६७ ॥

विषयासक्ति रूप मद्य और नरनारी का सयोग ही मास है। मनुष्य इस मास और मद्य को खा पीकर तथा कनकादिक धन से मतवाले होकर मानव जन्म का नाश कर देते है।

दादू भावै शाक्त भक्त हो, विषय हलाहल खाइ ।
तहँ जन तेरा रामजी, स्वप्नै कदे न जाइ ॥ ६८ ॥

चाहे शक्ति का उपासक शाक्त हो वा विष्णु का उपासक भक्त हो, यदि वह विषय रूप हलाहल विष खाता हो तो, हे रामजी! आपके सेवक भक्त को तो कभी भी उसके पास नही जाना चाहिए।

खाडा बूजी भक्ति है, लोहरवाडा मांहिं ।
प्रकट पैंडाइत[1] बसैं, तहँ संत काहे को जांहिं ॥ ६९ ॥

लोहरवाडे ग्राम मे धोखा देकर गड्ढे मे पटकने की भक्ति रखने वाले बटमार[1] बसते है। यह प्रत्यक्ष ही है, अत वहा सन्तो को नही जाना चाहिए।

लोहरवाडे मे श्री दादूजी महाराज को मारने का षड्यत्र रचा था, उसे देखकर ही यह साखी कही थी। प्रसग कथा- दृ सु सि त ७/२७२ मे देखो।

काम-शीर्षक के अनुकूल अर्थ इस प्रकार है—रक्त और मास के बाडे (अहाते) नारी के शरीर मे प्राणियो को धोखा देकर मूत्र-मार्ग रूप गड्ढे मे पटककर वीर्य-धन को अपहरण करने की भक्ति रखने वाला काम रूप बटमार प्रत्यक्ष मे ही रहता है। वहा सन्त किस लिये जायेगे ? वह तो भक्ति मे परम बाधक है।

माया

सॉपनि एक सब जीव को, आगे पीछे खाइ ।
दादू कह उपकार कर, कोइ जन ऊबर जाइ ॥ ७० ॥

७०-७२ मे माया का प्रभाव बता रहे है—जैसे सर्पणी अपने बच्चो को आगे पीछे आप ही खा जाती है, जो उसकी निकाली हुई लकीर से बाहर हो जाता है, वही बचता है। वैसे ही माया भी अपने कार्य रूप जीवो का आगे पीछे जन्म-मरण रूप भोजन करती रहती है=जन्म-मरण के चक्र मे घुमाती रहती है। कोई विरला ही जन सन्तो के उपदेश रूप उपकार द्वारा माया की अविद्या रूप लकीर से बाहर निकल कर परब्रह्म को प्राप्त होता है और माया से बच पाता है।

दादू खाये सॉपनी, क्यो कर जीवै लोग ।
राम मंत्र जन गारुडी, जीवै इहिं संजोग ॥ ७१ ॥

माया रूप सर्पणी ने जीवो को काटा है। अब वे जीव किस उपाय से जीवित रह सकते है ? उत्तर—राम नाम रूप गारुड़ (सर्प विष नाशक) मत्र और सन्त जन रूप गारुडी (सर्प विष उतारने वाले) का सयोग इस मनुष्य जन्म मे हो जाय तो विष उतर कर ब्रह्म-प्राप्ति रूप अखड जीवन प्राप्त हो जायगा।

दादू माया कारण जग मरै, पिव के कारण कोइ ।
देखो ज्यो जग परजलै, निमष न न्यारा होइ ॥ ७२ ॥

माया की प्राप्ति के लिए सब जगत् के प्राणी पच-पच कर मर रहे है किन्तु परमात्मा की प्राप्ति के लिए तो कोई विरला ही प्रयत्न करता है। जैसे अग्नि मे पडकर तृण जलते है वैसे ही देखो ! प्राणी मायिक विषयो मे पड़कर कामादि से जल रहे है, फिर भी एक निमेष मात्र भी विषयो से अलग नही होना चाहते। ऐसा माया का प्रभाव है।

जाया माया मोहनी

काल कनक अरु कामिनी, परिहर इनका सग ।
दादू सब जग जल मुवा, ज्यो दीपक ज्योति पतग ॥ ७३ ॥

७३-७४ मे साधक को कनक कामिनी-सग त्याग की प्रेरणा कर रहे है—कनक और कामिनी काल रूप है, इनका सग छोड। जैसे दीपक ज्योति मे पतग जल मरते है, वैसे ही कनक-कामिनी के मोह मे पडकर सब जगत् काम-लोभादि से जल-जल कर मर रहा है।

जहा कनक अरु कामिनी, तहँ जीव पतगे जाहि।
अग्नि अनन्त सूझै नहीं, जल-जल मूये माहि ॥ ७४ ॥

जहा भी कनक और कामिनी रूप अग्नि होती है, वहा ही जीव-पतग चले जाते है और काम, लोभ, राग, द्वेषादि रूप अग्नि की अनन्त ज्वालाये उन्हे दाहक रूप नही दीखती, इसीलिए उनमे जल-जल कर मर जाते है।

चित्त कपटी

घट मांहीं माया घणी, बाहर त्यागी होइ ।
फाटी कंथा पहर कर, चिन्ह करै सब कोइ ॥ ७५ ॥

७५-७६ मे दभी त्यागी का परिचय दे रहे है—अन्त करण मे तो अत्यधिक माया की आशा रखते है और बाहर से त्यागी-से बने रहते है। फटी गुदडी पहन कर त्यागियो के सभी चिन्ह करके दिखाते है।

काया राखे बंद दे, मन दह दिशि खेलै ।
दादू कनक अरु कामिनी, माया नहिं मेलै ॥
दादू मनसौं मीठी मुख सौं खारी, माया त्यागी कहैं बजारी ॥ ७६ ॥

शरीर को तो गुफा मे बन्द करके वा आसन स्थिर करके रखते है किन्तु उनका मन दशो दिशाओ मे दौड-दौड कर कामिनी से क्रीडा करता रहता है और कनक रूप माया को कभी नही त्यागता। वे लोग मन से तो माया को आदर देते है और मुख से बुरी बताते है। इसीलिए अनजान बाजार के लोग उन्हे माया-त्यागी कहते है, किन्तु वे वास्तव मे त्यागी नही होते।

माया

माया मंदिर मीच का, तामें पैठा धाइ ।
अंध भया सूझै नहीं, साधु कहैं समझाइ ॥ ७७ ॥

जीव पर माया-मद के प्रभाव का परिचय दे रहे है—माया मृत्यु का घर है। प्राणी परमात्मा की ओर से दौडकर उसी मे आ घुसा है। यद्यपि सन्त समझा-समझा कर कहते है—"यह माया जन्म-मरण रूप दु:ख की हेतु है, तू इसकी आसक्ति छोड कर भगवद् भजन कर।" किन्तु यह तो माया-मद से अपने विचार-नेत्र खोकर अधा हो गया है। इसे कुछ समझ मे ही नहीं आता।

विरक्तता

दादू केते जल मुये, इस जोगी की आग।
दादू दूरै बंचिये, योगी के संग लाग ॥ ७८ ॥

७८ मे माया से विरक्त होने का आदेश दे रहे है—इस परमेश्वर रूप योगी की माया-अग्नि की काम-क्रोधादि-ज्वालाओ मे अनेक जल कर मर गये है। अत शीघ्र ही परमेश्वर-योगी की भजन रूप समीपता मे जाकर मायाग्नि से बचो।

माया

ज्यों जल मैंणी[1] माछली, तैसा यहु संसार ।
माया माते जीव सब, दादू मरत न बार ॥ ७९ ॥

७९-८० मे माया मद का प्रभाव बता रहे है—जैसे जल मे रहनेवाली[1] मच्छी रसना-वश बसी पकड कर तत्काल मर जाती है। वैसे ही इस ससार के जीव माया के मद से मस्त होकर मरते रहते है।

दादू माया फोडे नैन दो, राम न सूझै काल ।
साधु पुकारै मेर[1] चढ, देख अग्नि की झाल[2] ॥ ८० ॥

कनक कामिनी आदि के मोह मे फँसा कर, माया ने जीव के विवेक-विचार दोनो नेत्र फोड डाले है । इसलिए उसे अपना नाशक काल और रक्षक राम दोनो ही नही दीखते । मायाग्नि की काम-क्रोधादि ज्वालाओ[2] मे जलते हुये जीवो को देखकर भगवत् साक्षात्कार रूप पर्वत[1] पर चढ़े हुये सन्त पुकार-पुकार कर बारम्बार कह रहे है—"भगवद् भजन मे मन लगाओ, तभी इन ज्वालाओ से बचोगे ।" किन्तु वे अधस जीव सुनते ही नही ।

जाया माया मोहनी

बिना भुवंगम हम डसे, बिन जल डूबे जाइ ।
बिन ही पावक ज्यो जले, दादू कुछ न बसाइ ॥ ८१ ॥

कनक कामिनी की मोहकता बता रहे है—ससारी प्राणी बिना सर्प डसे ही काम-वश सर्प डसे हुये के समान आत्मज्ञान-शून्य हो रहे है । बिना जल ही विषय मोह मे डूबते जा रहे है । जैसे तृण अग्नि से जलते है, वैसे ही बिना अग्नि ही शोक से जल रहे है । उक्त उपद्रवो से बचना भी चाहते है किन्तु भगवद् भजन बिना कोई शक्ति काम नही देती ।

विषय अतृप्ति

दादू अमृत रूपी आप है, और सबै विष झाल ।
राखणहारा राम है, दादू दूजा काल ॥ ८२ ॥

८२ मे कहते है—एक राम ही रक्षक है—राम अमृत रूप है, भजन द्वारा अमर करते है । अन्य सब विष की ज्वालाओ के समान दाहक है । राम ही रक्षक है, अन्य सब तो स्वार्थी होने से काल रूप ही है ।

जग भुलावनि

बाजी चिहर रचाय कर, रह्या अपरछन होइ ।
माया पट पडदा दिया, तातैं लखै न कोइ ॥ ८३ ॥

८३-९२ मे कहते है—ईश्वर-बाजीगर ने ससार-बाजीगरी द्वारा जीवो को भ्रमा रक्खा है—ईश्वर-बाजीगर अद्भुत चहल-पहल रूप ससार-बाजी रच के अपने आड़े माया-पट का पड़दा लगा कर छिप रहा है । इसलिए उसके वास्तव स्वरूप को कोई भी अज्ञानी नही जान पाता ।

दादू बाहे[1] देखतां, ढिग ही ढोरी लाइ ।
पिव पिव करते सब गये, आपा दे न दिखाइ ॥ ८४ ॥

जैसे बाजीगर पास खड़ा देखता हुआ ही दर्शको को अपनी बाजी से बहकाता है[1] । वैसे ही ईश्वर ने जीवो के साथ ही रहकर सब कुछ देखते हुये भी उनमे अपने मिलन की लग्न लगाकर उन्हे

बहका दिया है। वे विरही जीव पीव-पीव करते हुये सब वैकुण्ठादि लोको को चले गये किन्तु उनको अपना वास्तविक स्वरूप नही दिखाया। यही उसकी बाजीगरी है।

८३-८४ का अर्थ पद न १४० और १५४ से स्पष्ट होता है।

मैं चाहूं सो ना मिलै, साहिब का दीदार।
दादू बाजी बहुत हैं, नाना रंग अपार॥ ८५॥

माया रूप बाजी तो नाना प्रकार के रगो वाली बहुत सामने आती है किन्तु मै चाहता हूँ परमात्मा का साक्षात्कार, सो हो नही रहा है।

हम चाहैं सो ना मिलै, अरु बहुतेरा आहि।
दादू मन मानै नहीं, केता आवै जाहि॥ ८६॥

ध्यानावस्था मे भी हम जो चाहते है, उस परब्रह्म का साक्षात्कार तो नही होता और ही बहुत-से दृश्य देखने मे आते है, किन्तु उनको हमारा मन सत्य मान कर तृप्त होता नही। ऐसे मायिक दृश्य कितने ही आते है और चले जाते है।

बाजी मोहे जीव सब, हमको भुरकी बाहि[1]।
दादू कैसी कर गया, आपण रह्या छिपाइ॥ ८७॥

ईश्वर यह कैसी विचित्र लीला कर गया है—हम सब जीवो को माया रूप भुरकी डाल[1] कर मोहित कर दिया है और आप हमारे हृदय मे रहकर भी हमसे छिप रहा है।

दादू सांई सत्य है, दूजा भरम विकार।
नाम निरंजन निर्मला, दूजा घोर अंधार॥ ८८॥

इस ससार-बाजी का स्वामी परमात्मा ही सत्य है। उससे भिन्न जो भी विकार है, वे भ्रम रूप है। प्राणी को निरजन राम का नाम ही निर्मल करता है। दूसरे विकार तो घोर मोहान्धकार मे डालते है।

दादू सो धन लीजिये, जे तुम सेती होइ।
माया बॉधे कई मुये, पूरा पड्या न कोइ॥ ८९॥

हे साधको ! यदि तुमसे प्रयत्न हो सके तो ब्रह्म साक्षात्कार-धन को ही प्राप्त करो, सासारिक माया रूप धन को सग्रह करते-करते तो कितने ही मर गये है किन्तु किसी को भी पूर्ण सतोष नही हुआ है।

दादू कहै–जे हम छाडैं हाथ तैं, सो तुम लिया पसार।
जे हम लेवैं प्रीति सौ, सो तुम दीया डार॥ ९०॥

जिन मायिक कनकादि पदार्थों और विकारो को सत जन त्यागते है, ससारी जन उन्हे हाथ पसार कर अनुराग पूर्वक ग्रहण करते है। जिन परोपकारादि दैवी गुण और परब्रह्म के चिन्तन को सतजन प्रेम पूर्वक ग्रहण करते है, उनको ससारी जनो ने भ्रम-वश छोड दिया है।

दादू हीरा पग सौ ठेलि कर, ककर को कर लीन्ह।
पारब्रह्म को छाड कर, जीवन सौ हित कीन्ह ॥ ९१ ॥

जैसे कोई हीरे को पग से ठुकरा कर ककर को प्रेम पूर्वक हाथ मे उठावे, वैसे ही ससारी प्राणी परब्रह्म का भजन छोड़ कर, अपने कुटुम्बी आदि ससारी जीवो मे ही प्रेम करते है।

दादू सब को बणिजै खार खल, हीरा कोइ न लेय ।
हीरा लेगा जौहरी, जो मागै सो देय ॥ ९२ ॥

सभी ससारी लोग विषय-विकार रूप क्षार-खल का ही व्यापार करते है, निरजन राम का नाम रूप हीरा नही लेते-देते। जैसे हीरा का परीक्षक-जौहरी हीरा का जो भी मूल्य माँगे, वही देकर हीरा ले लेता है, वैसे कोई सन्त ही अपना सर्वस्व देकर भी निरजन राम का नाम चिन्तन ग्रहण करते है।

माया

दडी[1] दोट[2] ज्यो मारिये, तिहू लोक में फेर।
धुर[3] पहुँचे सतोष है, दादू चढबा मेर[4] ॥ ९३ ॥

९३-१०० मे कहते है—सतो को छोड कर माया का प्रभाव सब पर पड़ता है—जैसे गेद[1] जब तक अपनी सीमा पर न पहुच जाय तब तक उस पर चोटे[2] पड़ती ही रहती है, वैसे ही जीव को माया विषय-वासना रूप प्रहार से तीनो लोको मे घुमाती रहती है। जब जीव साधन बल से त्रिगुण रूप माया पर्वत[4] की सीमा पर चढकर उसे उल्लघन कर जाता है और अपने लक्ष्य[3] आत्म स्वरूप ब्रह्म[3] को प्राप्त कर लेता है, तब उसका भ्रमण रुक कर अखड शाति मिल जाती है।

अनल पखि आकाश को, माया मेर[1] उलघ।
दादू उलटे पथ चढ, जाइ विलबे अग ॥ ९४ ॥

जैसे अनल (अनिल) पक्षी का बच्चा आकाश से गिरकर, इधर-उधर घूमते हुये पुन आकाश की ओर उडता हुआ पर्वतो[1] को लाघ कर अपने माता-पिता से जा मिलता है। वैसे ही जीव ससार मे आकर इधर-उधर घूमते हुये सद्गुरु प्राप्त होने पर ससार से विपरीत परब्रह्म के स्वरूप मे पहुँचने वाले ज्ञान-मार्ग से मायिक ससार को लाघ कर अपने आतम स्वरूप ब्रह्म मे स्थिर हो जाता है।

(अनिल पक्षी = सऊदी अरब निवासी वहाँ पाये जाने वाले अनिल पक्षी को 'सहदूल' या 'उकाब' कहते थे, जो हाथी जैसे विशाल जानवर को अपने पजे मे लेकर उड़ जाता था। -स)

दादू माया आगे जीव सब, ठाढे रह कर जोड।
जिन सिरजे जल बूद सौ, तासौ बैठे तोड ॥ ९५ ॥

ससारी प्राणी मायिक पदार्थों के लिए माया वालो के सामने हाथ जोड कर खड़े रहते है, किन्तु जिस परमात्मा ने वीर्य के बिन्दु से इनके कैसे सुन्दर शरीर बना दिये है, उससे प्रेम का सम्बन्ध तोड़ बैठे है अर्थात् उस परमात्मा को भूल गये है।

सुर नर मुनिवर वश किये, ब्रह्मा विष्णु महेश।
सकल लोक के शिर खडी, साधु के पग हेठ[1] ॥ ९६ ॥

इस माया ने देवता, नर, मुनिवर, ब्रह्मा, विष्णु और महादेव को भी अपने अधीन किया है। और अधिक क्या कहै—माया सतो के पद तले[1] रहती है, बाकी तो सभी लोगो के शिर पर खडी रहती है। (महेश = भवेष्ट)

दादू माया चेरी संत की, दासी उस दरबार।
ठकुराणी सब जगत की, तीनों लोक मंझार ॥ ९७ ॥

माया सतो की तो सेविका है। सतो के दरबार मे दासी के समान सतोगुण द्वारा सेवा करती रहती है। अन्य सब जगत के जीवो को स्वामिनी के समान रजोगुण-तमोगुण द्वारा तीनो लोको मे घुमाती रहती है।

दादू माया दासी संत की, शाकत[1] की शिरताज।
शाकत सेती भांडनी, सतों सेती लाज ॥ ९८ ॥

सतो की माया दासी है,शाक्त और असतो[1] की स्वामिनी है। असतो को निर्लज्ज होकर इधर-उधर घुमाती रहती है और सतो के पास लज्जाशील होकर शात रहती है।

चार पदारथ मुक्ति बापुरी, अठ सिधि नौ निधि चेरी।
माया दासी ताके आगे, जहँ भक्ति निरजन तेरी॥
दादू कहै—ज्यों आवै त्यों जाइ विचारी।
विलसी[1], वितडी[2], न माथै[3] मारी ॥ ९९ ॥

हे निरजन राम! जहाँ आपकी भक्ति होती है वहा-अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष ये चारो पदार्थ और सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सायुज्य चार मुक्ति सेवा मे रहती हैं तथा अष्ट सिद्धि, नौ निधि तो बेचारी बहुत मात्रा मे सेविका के समान सेवा करती रहती है। इस प्रकार माया भक्त के आगे दासी के समान खडी रहती है। दादूजी महाराज कहते है—विरक्त सतो के माया आती है वैसे ही चली जाती है। क्योकि-विरक्तो ने न तो इसे भोगी[1] और न वितरण[2] ही की, उन्होंने तो जब आई तब ही त्याग[3] दी। यही विरक्तो का व्यवहार रहा है।

अष्ट सिद्धि, नौ निधि नाम, अग २-१०४ मे देखो।

दादू माया सब गहले किये, चौरासी लख जीव।
ताका चेरी क्या करै, जे रँग राते पीव ॥ १०० ॥

माया ने चौरासी लक्ष योनियो के सभी जीवो को उन्मत्त कर दिया है किन्तु जो भगवान् की भक्ति के रग मे अनुरक्त है, उनका यह क्या कर सकती है? उन्हे उन्मत्त न बना कर सेविका के समान उनकी सेवा करती है।

विरक्तता

दादू माया वैरिणि जीव की, जनि[1] को लावै प्रीति ।
माया देखै नरक कर, यहु संतन की रीति ॥ १०१ ॥

माया से विरक्त रहने की प्रेरणा कर रहे है—माया जीव की वैरिणी है। इससे कोई भी प्रेम न[1] करे। विरक्त सन्तो की तो यही रीति है—वे माया को नरक रूप से देखते है।

माया

माया मति चकचाल[1] कर, चंचल कीये जीव ।
माया माते मद पिया, दादू बिसर्या पीव ॥ १०२ ॥

माया की क्षोभण शक्ति का परिचय दे रहे है—माया ने बुद्धि को भ्रमित[1] करके जीवो को चचल कर दिया है, इसी से ये माया-मद से मस्त हो, विषय-मद्य पीकर परमात्मा को भूल गये है।

अन्य लग्न व्यभिचार

जने जने की राम की, घर घर की नारी ।
पतिव्रता नहि पीव की, सो माथै मारी ॥ १०३ ॥

१०३-१०४ मे माया का व्यभिचार दिखा रहे है—माया-नारी एक पति के साथ रहने वाली पतिव्रता नही है। किन्तु प्रत्येक गृह-त्यागी मानव की भक्ता है और गृहस्थो के घर-घर की नारी है। इसके इस व्यभिचार को देख करके ही सतो ने इसका त्याग किया है।

जन जन के उठ पीछे लागै, घर घर भरमत डोलै ।
तातैं दादू खाइ तमाचे, मादल[1] दुहुँ मुख बोलै ॥ १०४ ॥

माया प्रत्येक मानव के पीछे लगती है, घर-घर मे भ्रमण करती फिरती है। जैसे मृदग[1] दोनो मुखो से बोलती है तब उसके दोनो ओर आघात पडते है। वैसे ही माया भी एक की नही होने से विरक्त सतो के आते-जाते दोनो ही बार अनादर रूप थप्पडे खाती है=सत माया के आने पर उससे राग नही करते, जाने पर शोक नही करते, वे तो भगवत्-परायण रहते है।

विषय विरक्तता

जे नर कामिनि परिहरै, ते छूटै गर्भवास ।
दादू ऊधे मुख नही, रहै निरजन पास ॥ १०५ ॥

१०५-१०७ मे विषय-विरक्तो की विशेषता बता रहे है—जो कामिनी का त्याग करते है वे सन्त गर्भवास मे अधोमुख लटकने के दु ख से मुक्त हो जाते है, पुन वह दु ख उन्हे नहीं होता। वे सदा के लिए निरजन ब्रह्म के स्वरूप मे समा जाते है।

रोक न राखै, झूठ न भाखै, दादू खरचै खाइ ।
नदी पूर[1] प्रवाह ज्यो, माया आवै जाइ ॥ १०६ ॥

सतो के पास माया नदी—जल[१]-समूह-प्रवाह के समान आती है और चली जाती है। वे आते ही परोपकार मे खर्च कर देते है, कुछ खा जाते है। सग्रह नही रखते और माया के लिये मिथ्या नही बोलते।

सदका[१] सिरजनहार का, केता आवै जाइ।
दादू धन संचय नही, बैठ खुलावै खाइ ॥ १०७ ॥

भगवान् का दिया हुआ दान[१] रूप धन बहुत ही आता जाता है किन्तु सत भगवद् भरोसे बैठे हुये खिलाते व खाते रहते है, सग्रह नहीं करते।

माया

जोगिनि ह्वै जोगी गहै, सूफिनि ह्वै कर शेख।
भक्तिनि ह्वै भक्ता गहै, कर कर नाना भेख ॥ १०८ ॥

१०८-१११ मे माया का प्रभाव बता रहे है—माया ने योगिनी होकर योगियो को, सूफिनी (मुसलमानो के एक सम्प्रदाय की स्त्री) होकर शेखो (मुसलमानो की चार जातियो मे से एक जाति) को, भक्तानी होकर भक्तो को पकडा है। इस प्रकार भेष बनाकर यह सबको पकडती है।

बुद्धि विवेक बल हारिणी, त्रय तन ताप उपावनी।
अंग अग्नि प्रजालिनी, जीव घरबार नचावनी ॥ १०९ ॥

माया बुद्धि के विवेक-बल को मोह द्वारा हरने वाली है, शरीर की बाल, युवा और वृद्धा, तीनो अवस्थाओ मे अबोध, काम और तृष्णा द्वारा दु ख उत्पन्न करने वाली है वा शरीर मे त्रिताप उत्पन्न करने वाली है। अन्त करण मे ईर्ष्या, चिन्ता, क्रोधादि रूप अग्नि प्रज्वलित करने वाली है। भोगाशा द्वारा घर-घर के द्वार पर नचाने वाली है।

नाना विधि के रूप धर, सब बाँधे भामिनी।
जग बिटंब[१] परलै किया, हरि नाम भुलावनी ॥ ११० ॥

हरि नाम को भुलाने वाली माया रूप स्त्री ने नाना प्रकार के रूप धारण करके सबको अपने अधीन किया है और जगत् के जीवो को लपट[१] बना कर जीवो का पतन किया है।

बाजीगर की पूतली, ज्यों मर्कट मोह्या।
दादू माया राम की, सब जगत विगोया[१] ॥ १११ ॥

बाजीगर एक सुन्दर वानरी की पुतली, जहा वानर हो, रख देता है, आप उसके हाथ से बँधी डोरी पकड़, छिप कर बैठ जाता है। वानर वानरी के पास आता है तब डोरी खेचकर वानरी के हाथ की थप्पड वानर के मुख पर मारता है। वानर हट जाता है फिर आता है। इस प्रकार वानर को घायल करके पकडा देती है। वैसे ही राम की माया ने सब जगत् को मोहित करके अज्ञान-पटल के नीचे छिपा[१] दिया है।

शिश्न स्वाद

मोरा मोरी देखकर, नाचै पंख पसार।
यो दादू घर आगणै, हम नाचै कै बार ॥ ११२ ॥

११२ मे कहते है—जीव विषय-सुखार्थ मायाधीन हो नाचता हे-जैसे मोरनी को देखकर मोर पखो को फैलाकर नाचने लगता है। वेसे ही ससारी जन माया-मोहित होकर माया वाले घर के आगन मे अनेक बार नाचते है।

माया

जेहि घट ब्रह्म न प्रकटै, तहँ माया मंगल गाइ।
दादू जागै ज्योति जब, तब माया भरम विलाइ ॥ ११३ ॥

११३ मे कहते है—ब्रह्म साक्षात्कार होने पर माया भ्रम नहीं रहता। जिस अन्त करण मे ब्रह्म का साक्षात्कार नही होता, उसी मे माया के मगल गीत गाये जाते है। फिर जब उसी मे साधन द्वारा ब्रह्म-ज्ञान-ज्योति जग कर ब्रह्म-साक्षात्कार हो जाता है, तब माया-भ्रम नष्ट हो जाता है।

पति पहचान

दादू ज्योति चमकै तिरवरे[1], दीपक देखै लोइ[2]।
चंद सूर का चांदणा, पगार[3] छलावा[4] होइ ॥ ११४ ॥

११४ मे कहते हे—ध्यान के समय दिखने वाला प्रकाश ब्रह्म नही है-साधन काल मे ध्यान मे बिजली की-सी चमकती हुई ज्योति; अग्नि के कणो[1] का-सा झिलमिलाहट, दीपक की-सी ज्योति[2], चन्द्र, सूर्य और अरुणोदय का-सा प्रकाश[3], भूताग्नि[4], ये सब दिखाई देते है, इनमे ब्रह्म कोई नही है। ये सब तो माया रूप ही है और बह्म-साक्षात्कार मे बाधक है।

माया

दादू दीपक देह का, माया परकट होइ।
चौरासी लख पखिया, तहा परै सब कोइ ॥ ११५ ॥

११५ मे कहते है—देहाध्यासी जीव माया की ओर ही जाते है-चौरासी लक्ष योनियो मे जो देहाध्यासी जीव है, वे पतग-पक्षियो के समान है। देह-दीपक की जो मायिक सौन्दर्य रूप प्रत्यक्ष ज्योति है, सब उसी मे जाकर पडते है=सौन्दर्य के पीछे लगते है।

पुरुष प्रकाशी

यहु घट दीपक साध का, ब्रह्म ज्योति परकास।
दादू पंखी सतजन, तहां परै निज दास ॥ ११६ ॥

११६ मे कहते है—परम भक्त सतजन ब्रह्म-परायण ही रहते है-सतो का अन्त करण दीपक है, उसी मे ब्रह्म ज्ञान-ज्योति का प्रकाश है। उसी मे जिज्ञासु सतजन-पतगे जाकर परमानन्द प्राप्त करते है।

विषय विरक्तता (पुरुष नारी सम्बन्ध)

जानैं बूझैं जीव सब, त्रिया पुरुष का अंग।
आपा पर भूला नहीं, दादू कैसा संग॥ ११७॥

११७-१२२ मे साधको को काम-जन्य सुख से विरक्त होने का परामर्श देते है। नारी-पुरुष के शरीर भूतो के ही कार्य है, यह सभी जीव जानते बूझते है फिर भी भोगासक्ति मे फँसकर चिन्ह भेद से अपने को भोक्ता और दूसरे को भोग्य रूप देखते है। माया ने यह कैसा विलक्षण मेल मिला दिया है जिसको सृष्टि के आदि से अब तक जीव नही भूल सका।

माया के घट साजि द्वै, त्रिया पुरुष धर नांव।
दोनों सुन्दर खेलै दादू, राखि लेहु बलि जांव॥ ११८॥

माया रचित शरीर के स्त्री, पुरुष दो नाम रख कर सजाया गया है और दोनो एक दूसरे मे सुन्दरता की भावना करके क्रीड़ा करते है, अपने पतन पर ध्यान नही देते। हे परमेश्वर! इस विषय-जाल से हमारी रक्षा करो, हम आपकी बलिहारी जाते है।

बहिन बीर सब देखिये, नारी अरु भरतार।
परमेश्वर के पेट के, दादू सब परिवार॥ ११९॥

विश्व के सभी परिवार परमेश्वर की ही सतान होने से नारी और पति भी बहिन-भाई है। अत साधको को काम-जन्य सुख से बचना ही चाहिए।

पर घर परिहर आपनी, सब एकै उनहार।
पशु प्राणी समझै नहीं, दादू मुग्ध गॅवार॥ १२०॥

हे साधक! क्या अपनी और क्या अन्य की बिन्दु-अपहरण मे दोनो ही नारी समान है। अत पराई स्त्री को क्या तकता है? दोनो ही को त्याग। जो कहते है-"अन्य की ही त्याज्य है", वे अज्ञानी विषय सुख से मोहित होने के कारण पशु-प्राणियो के समान समझते नही है।

पुरुष पलट बेटा भया, नारी माता होइ।
दादू को समझै नहीं, बडा अचंभा मोहि॥ १२१॥

सत प्रवर दादूजी अपने शिष्यो के साथ मार्ग से जा रहे थे। एक घर के द्वार पर एक जाटणी अपने पुत्र को बडे प्रेम से खिला रही थी। उसे देखकर दादूजी को हॅसी आ गई। शिष्यो ने हॅसी का कारण पूछा, उत्तर मे १२१ की साखी सुनाई थी। यह पुत्र इसका पति था, छोटी अवस्था मे मर गया। इसने दूसरा पति बना लिया। पूर्व पति का इसमे बहुत प्रेम था, इससे वही इसके पुत्र रूप मे जन्मा है, उसे ही यह खिला रही है। इसी प्रकार नारी भी माता हो जाती है किन्तु इस बात को अज्ञानी कोई भी नही समझता। यह महान् आश्चर्य देख करके ही मुझे हॅसी आ गई थी अथवा पुरुष ही वीर्य रूप से स्त्री के गर्भ मे पहुॅच कर पुत्र बनता है, जैसा कि—"आत्मा वै जायते पुत्र." श्रुति बतला रही है। और नारी जो की पुरुष की भार्या है, वही उस पुरुष के पुत्र रूप मे उत्पन्न होने पर उसकी माता बन जाती है।

माता नारी पुरुष की, पुरुष नारि का पूत।
दादू ज्ञान विचार कर, छाड गये अवधूत ॥ १२२ ॥

उपर्युक्त रीति से नारी पुरुष की माता बन जाती है और पुरुष नारी का पुत्र हो जाता है। ससार मार्ग को ऐसा विपरीत समझ कर, ज्ञान-विचार बल से विचारशील पुरुष नारी को छोड़कर अवधूत हो गये है वा अवधूत छोडकर चले गये है।

विषय अतृप्ति

ब्रह्मा विष्णु महेश लौ, सुर नर उरझाया।
विष का अमृत नाम धर, सब किनहूँ खाया ॥ १२३ ॥

१२३ मे कहते है—विषय उपभोग से तृप्ति नहीं होती—ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, देवता, नर आदि सभी विषय जाल मे फँसे है। सभी ने विषय-विष का नाम आनन्दामृत रख कर उपभोग किया है किन्तु तृप्त कोई भी नही हो सका।

अध्यात्म

दादू माया का जल पीवतां, व्याधी होइ विकार।
सेझे का जल पीवता, प्राण सुखी सुध सार ॥ १२४ ॥

मायिक विषय-सुख का उपभोग झरणे के जल-पान के समान शरीर मे रोग और मन मे कामादि विकार बढ़ाता है। भगवद् भक्ति से सेझे के जल के समान प्राणी का शरीर निरोग होता है और वह अविद्या-मल रहित विश्व का सार ब्रह्मानन्द प्राप्त करके परम सुखी होता है।

विषय अतृप्ति

जीव गहिला जीव बावला, जीव दिवाना होइ।
दादू अमृत छाड कर, विष पीवै सब कोइ ॥ १२५ ॥

जीव की विषयातृप्ति बता रहे है—माया से मस्त जीव विवेक-शून्य हो पागल हो रहे है, इसीलिए भगवद्-भजनामृत को छोड़ कर सभी विषय-विष का पान कर रहे है।

माया

माया मैली गुणमयी, धर धर उज्ज्वल नाम।
दादू मोहे सबन को, सुर नर सब ही ठाम ॥ १२६ ॥

माया की मोहक पद्धति बता रहे है—माया गुणमयी होने से तमोगुण द्वारा मैली है इसीलिए मलीन वस्तुओ के अधरामृतादि उज्जवल नाम रख-रख कर सुर, नर, नागादि, सबको सभी स्थानो मे मोहित करती है।

विषय अतृप्ति

विष का अमृत नाम धर, सब कोई खावै ।
दादू खारा ना कहै, यहु अचरज आवै ॥ १२७ ॥

१२७-१३१ मे विषय-विष त्याग की प्रेरणा कर रहे है—विषय-विष का अमृत नाम रखकर सभी कोई उपभोग करते है। उसका परिणाम दुख प्रद होने पर भी उसे बुरा नही कहते, यही हमे महान् आश्चर्य होता है।

दादू जे विष जारे खाइ कर, जनि मुख में मेलै ।
आदि अंत परलै गये, जे विष सौं खेलै ॥ १२८ ॥

योग साधन मे प्रवृत्त जो व्यक्ति वज्रोली आदि क्रियाओ द्वारा रज-वीर्य का उर्ध्व आकर्षण करके विषय-विष को पचा जाते है=उसके उपद्रव से बच जाते है, उन्हे भी विषय विष का सेवन कभी भी नही करना चाहिए। क्योकि जो भी विषय-विष की क्रीडा मे प्रवृत हुये है, उनके किये हुये साधन अन्त मे नष्ट ही हो गये है।

जिन विष खाया ते मुये, क्या मेरा तेरा ।
अग्नि पराई आपनी, सब करै निबेरा[1] ॥ १२९ ॥

विष चाहे अपना हो वा अन्य का खाने से दोनो ही मारते है, जिनने खाया है वे मृत्यु को ही प्राप्त हुये है। अग्नि अपने घर की हो वा दूसरे के घर की हो, वह तो जहा पडती है वहा के तृणादि को जला कर नष्ट[1] कर ही देती है। वैसे ही नारी-पुरुष चाहे अपने हो वा दूसरे, ससर्ग से हानि ही होती है।

दादू कहै–जनि विष पीवै बावरे, दिन–दिन बाढै रोग ।
देखत ही मर जायगा, तज विषया रस भोग॥ १३० ॥

हे बावरे ! विषय-विष का उपभोग मत कर, इससे प्रतिदिन मन मे विषयाशा रूप रोग और तन मे व्याधिया बढती है। तू विषय-रस का उपभोग त्याग दे। नही त्यागने से कल्याण का साधन बिना किये ही देखते-देखते मृत्यु को प्राप्त हो जायगा।

अपना पराया खाइ विष, देखत ही मर जाइ।
दादू को जीवै नहीं, इहिं भोरै जनि खाइ ॥ १३१ ॥

तू इस भूल मे आकर विषय-विष का उपभोग मत करना कि "अपनी को भोगने से हानि नही।" परमार्थ-जीवन तो कोई का भी नही रहता, चाहे अपनी हो वा पराई। विष चाहे अपना हो या अन्य का, खाने पर खाने वाला देखते-देखते मर ही जाता है, यह प्रसिद्ध है।

माया

ब्रह्म सरीखा होइ कर, माया सौं खेलै ।
दादू दिन दिन देखतां, अपने गुण मेलै ॥ १३२ ॥

१३२-१३४ मे माया की शक्ति बता रहे है—ब्रह्मवेत्ता होकर भी यदि मायिक प्रपच मे

फँसेगा तो देखते-देखते ही रज-तम प्रवृत्ति द्वारा माया अपने काम-क्रोधादिक गुण उसके हृदय मे उपस्थित कर देती है।

माया मारै लात सौ, हरि को घालै हाथ।
सग तजै सब झूठ का, गहै साच का साथ॥ १३३॥

माया सपूर्ण जीवो को रजोगुण, तमोगुण, लातो से मारती है और विष्णु को भी पकडने के लिए अपना सतोगुण-हाथ आगे बढाती है। अत मिथ्या मायिक प्रपच की आसक्ति रूप सग त्याग कर सत्य परब्रह्म का अभेद चिन्तन रूप साथ ही ग्रहण करे।

घर के मारे वन के मारे, मारे स्वर्ग पयाल।
सूक्ष्म मोटा गूंथ कर , माड्या माया जाल॥ १३४॥

माया ने—घर, वन, स्वर्ग और पाताल के निवासी, गृहस्थ, सन्यासी, देवता और नागो को भी बाँधने के लिए भोग-वासना रूप सूक्ष्म तथा कामिनी रूप मोटा जाल गूथ कर बिछा रक्खा है और उसमे फँसा कर सबको मारती रहती है।

विषय अतृप्ति

ऊभा सार बैठ विचारं, सभार जागत सूता।
तीन लोक तत जाल विडारण, तहा जाइगा पूता॥ १३५॥

१३५-१३६ मे कहते है—प्राणी विषयो से तृप्त नही होते। ससारी प्राणी अपनी उन्नति के लिए खडे होते है तो भी मायिक विषयो को ही सार समझ कर उन्ही की प्राप्ति के लिए यत्न करते है, बैठ कर भी विषयो का ही विचार करते है, सोते जागते भी मन से विषयो का ही चिन्तन करते है। कोई विरला विचारशील पवित्र पुरुष ही तीनो लोको पर फैले हुये माया-जाल को तत्त्व-ज्ञान से नाश करके ब्रह्म को प्राप्त होता है।

मुये सरीखे ह्वै रहे, जीवन की क्या आस।
दादू राम विसार कर, बाँछे भोग विलास॥ १३६॥

विषयो का उपभोग करते-करते अति कमजोर हो जाते है तो भी भगवान् को भूलकर भोग भोगने की ही इच्छा करते है। उनके ब्रह्म-प्राप्ति रूप नित्य जीवन की क्या आशा है?

कृत्रिम कर्ता

माया रूपी राम को, सब कोई ध्यावै।
अलख आदि अनादि है, सो दादू गावै॥ १३७॥

१३७-१५१ मे कहते है—अज्ञानियो ने माया को ही भगवान् मान लिया है। सभी लोग माया रूप राम का ही ध्यान करते है किन्तु हम तो जो सम्पूर्ण ससार का आदि और स्वय अनादि, मन इन्द्रियो का अविषय है, उसी निरजन राम का गुण गाते है।

ब्रह्मा का वेद, विष्णु की मूरति, पूजे सब संसारा।
महादेव की सेवा लागे, कहाँ है सिरजनहारा॥ १३८॥

कुछ तो ब्रह्मा के द्वारा उपदेश किये हुये वेद के अनुसार सकाम यज्ञादिक कर्मों मे लगे हुये है। कुछ विष्णु मूर्ति की उपासना और कुछ महादेव की भक्ति मे लगे है। इस प्रकार सब ससार गुणमयी माया को ही पूज रहा है। इन ससारी जनो को निर्गुण परमात्मा का तो पता ही नही कि वह कहा है और कैसा है ?

माया का ठाकुर किया, माया की महमाइ।
ऐसे देव अनन्त कर, सब जग पूजन जाइ ॥ १३९ ॥

मायिक वस्तुओ का ही ठाकुर जी और मायिक वस्तुओ की ही महामाई। ऐसे देवी-देवता बना कर जगत् के अज्ञानी लोग उन्हे पूजते है और सच्चे परमात्मा को भूल जाते है।

माया बैठी राम ह्वै, कहै मैं ही मोहन राइ।
ब्रह्मा विष्णु महेश लौं, जोनी आवै जाइ ॥ १४० ॥

त्रिगुणमयी माया ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश के रूप मे परमात्मा होकर विराजमान है और पुराणादि द्वारा अपनी त्रिमूर्तियो को ही परमात्मा बताती है, किन्तु ब्रह्मा, विष्णु, महेश की उत्पत्ति-विनाश बारबार होने से वे परब्रह्म कैसे हो सकते है ?

माया बैठी राम ह्वै, ताको लखै न कोइ।
सब जग मानै सत्य कर, बडा अचभा मोहि ॥ १४१ ॥

माया ही ब्रह्मादिक के रूप मे परमात्मा होकर मदिरो मे बैठी है, इस बात को कोई भी अज्ञानी नही जानता। इसीलिए जगत् के सभी अज्ञानी जीव मायिक परमात्मा को ही सच्चा परमात्मा मान कर उसी की उपासना मे लगे है। यही हमे महान् आश्चर्य हो रहा है !

अजन कीया निरंजना, गुण निर्गुण जानै।
धरा[1] दिखावैं अधर[2] कर, कैसे मन मानै ॥ १४२ ॥

अज्ञानी लोगो ने माया को निरजन परमात्मा बना लिया, गुणवान् को निर्गुण जानने लग गये। सासारिक[1] वस्तुओ को परमात्मा[2] रूप से दिखाते है। उसे हमारा मन कैसे सत्य माने ?

निरंजन की बात कह, आवै अंजन मांहिं।
दादू मन मानै नहीं, सर्ग[1] रसातल[2] जांहिं ॥ १४३ ॥

उपदेश तो माया रहित निरजन का करते है किन्तु कार्य सब माया की प्राप्ति के लिए ही करते है। बाते तो वे स्वर्ग[1] की करते है किन्तु उनके कार्य नरक[2] मे ले जाने वाले है। ऐसे वाचिक ज्ञानी को हमारा मन नही मानता।

कामधेनु के पटंतरे[1], करै काठ की गाइ।
दादू दूध दूझै नहीं, मूरख देइ बहाइ ॥ १४४ ॥

कामधेनु के समान[1] आकार वाली काष्ठ की गो बना ले तो भी वह दूध तो नही देगी। इस प्रकार देवताओ की मूर्तियो को निरंजन देव के समान मानकर उपासना करते है किन्तु ये मुक्ति तो नही दे सकेगी। अत हे अज्ञानी ! इनकी उपासना त्याग कर निरजन देव की ही आराधना कर।

चिन्तामणि ककर किया, माँगे कछु न देइ।
दादू कंकर डारदे, चिन्तामणि कर लेइ ॥ १४५ ॥

जैसे कोई सुन्दर ककर को चिन्तामणि मान तो ले किन्तु उससे जब इच्छानुकूल कुछ याचना करे तो वह न दे सकेगा। वैसे ही ककर रूप देव मूर्तिया मुक्ति न दे सकेगी। चिन्तामणि रूप भगवान् की उपासना ही अन्त करण हाथो मे धारण करो।

पारस किया पषाण[1] का, कंचन कदे न होइ।
दादू आतम राम बिन, भूल पड्या सब कोइ ॥ १४६ ॥

जैसे किसी पत्थर[1] को पारस मान ले तो भी उससे लोहा सुवर्ण नहीं बन सकता। वैसे ही किसी देवता को उपासना से ब्रह्म भाव प्राप्त नही होता, किन्तु फिर भी ससार के सभी अज्ञानी प्राणी अपने आत्म-स्वरूप राम को छोडकर भ्रम मे पड़ रहे है।

सूरज फटिक पषाण का, ता सौ तिमर न जाइ।
साचा सूरज परगटै, दादू तिमर नशाइ ॥ १४७ ॥

स्फटिक जाति के पत्थर का भी सूर्य बनाया जाय तो भी उससे अधकार नष्ट न होगा और जब सच्चा सूर्य उदय होता है तब अन्धकार नहीं रहता। वैसे ही देवादि की उपासना से अज्ञान दूर न होगा और निरजन राम की उपासना करने पर अज्ञान नही रह सकेगा।

मूर्ति घड़ी पाषाण की, कीया सिरजनहार।
दादू साच सूझै नही, यो डूबा संसार ॥ १४८ ॥

अज्ञानी प्राणियो को सत्य परमात्मा का स्वरूप तो नहीं दीख सकता। अत उन्होंने पत्थर की मूर्ति घड कर उसे ही भगवान् बना लिया। इस प्रकार ससार के प्राणी माया मे ही निमग्न हो रहे है।

पुरुष विदेश कामिनी किया, उसही के उनहार ।
कारज को सीझै नही, दादू माथे[1] मार ॥ १४९ ॥

जैसे किसी स्त्री का पति विदेश मे हो और वह अपने पति के समान ही पुतला बना कर घर मे रक्खे, तो भी उस पुतले से पति के समान कोई भी कार्य सिद्ध न होगा। वैसे ही अपने बनाये हुये भगवान् से मुक्ति रूप कार्य सिद्ध न होगा। अत उसे त्याग[1] कर सत्य परमात्मा की ही उपासना करो।

कागद का मानुष किया, छत्रपति शिरमौर ।
राज पाट साधै नहीं, दादू परिहर और ॥ १५० ॥

कागज का मानव बनाकर उसे मानवो का शिरोमणि चक्रवर्ती राजा बना दिया जाय तो भी वह राज्य शासन की व्यवस्था तो नहीं कर सकेगा। वैसे ही देवी देवता मुक्ति नही दे सकेगे। अत अन्य सबको त्याग कर सत्य स्वरूप निरजन राम की ही उपासना करनी चाहिए।

सकल भुवन भानै घडै, चतुर चलावनहार।
दादू सो सूझै नहीं, जिसका वार न पार ॥ १५१ ॥

जो सपूर्ण भवनो की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय करने मे निपुण है=आप अलग रह, सत्ता मात्र देकर माया से सब कुछ कराता है और जिसका आदि अत ज्ञात नही होता, वह ब्रह्म अज्ञानियो के समझ मे नही आता किन्तु ध्येय और ज्ञेय वही है।

कर्ता साक्षीभूत

दादू पहली आप उपाइ कर, न्यारा पद निर्वाण ।
ब्रह्मा विष्णु महेश मिल, बॉध्या सकल बॅधाण ॥ १५२ ॥

साक्षी रूप कर्ता का परिचय दे रहे है—सर्व प्रथम एक ही ब्रह्म था फिर इच्छा मात्र से प्रकृति द्वारा सृष्टि रचना करके आप तो काल-कर्म के बाणाघात से रहित निर्वाण पद मे ही स्थित रहा और त्रिगुणात्म ब्रह्मा, विष्णु, महेश ने ही सपूर्ण जगत् प्रवाह के उत्पत्ति, पालन, सहार की व्यवस्था का नियम नियत किया है।

कृत्रिम कर्ता

नाम नीति अनीति सब, पहली बॉधै बंध।
पशू न जाने पारधी, दादू रोपे फंद ॥ १५३ ॥

१५३-१५४ मे कृत्रिम कर्ता के कार्य बता रहे है—माया रूप नकली कर्ता ने पहले ही नीति नाम रख के अनीति के बन्धन मे सबको बॉध रखा है किन्तु माया रूप शिकारी के रचे हुये इस जाल को जीव-पशु जान नही पाते।

दादू बाँधे वेद विधि, भरम कर्म उरझाइ ।
मर्यादा मांहीं रहै, सुमिरण किया न जाइ ॥ १५४ ॥

माया ने जीवो को वेद के बाधे हुये विधान के अनुसार सकाम-कर्म रूप भ्रम मे फँसा दिया है। उनसे वर्णाश्रम रूप सीमित मर्यादा मे बँधे हुये रहने से निरजन राम का स्मरण किया ही नही जाता। नाना कार्यों से वृत्ति विक्षिप्त रहती है।

माया (नारी दोष निरूपण)

माया मीठी बोलणी, नइ[1] नइ लागै पाइ ।
दादू पैसै पेट में, काढ कलेजा खाइ ॥ १५५ ॥

१५५-१६६ मे नारी से होने वाली हानि बता रहे है—नारी रूप माया छली-मानव के समान मधुर वचन बोलती है, अति नम्रता पूर्वक झुककर[1] चरणो मे लगती है। इस प्रकार मानव को अपने अनुकूल करके उसका शील-सतोष रूप कलेजा निकाल कर खा जाती है, हृदय मे शील-सतोष नही रहने देती।

नारी नागिन जे डसै, ते नर मुये निदान।
दादू को जीवै नही, पूछो सबै सयान ॥ १५६ ॥

नारी-सर्पिणी ने जिनको खाया है, उन नरो का अन्त मे परमार्थ से पतन रूप मरण ही हुआ है। चाहे सभी वयोवृद्ध अनुभवी लोगो को पूछ लो, नारी मे आसक्त होने वाला कोई भी व्यक्ति परमार्थ मे उन्नति रूप जीवन धारण नही कर सका हे।

नारी नागिन एक-सी, बाघिन बडी बलाइ।
दादू जे नर रत भये, तिनका सर्वस खाइ ॥ १५७ ॥

नारी और सर्पिणी दोनो समान ही है तथा नारी सिहिनी के समान महान् विपत्ति है। जो मानव नारी मे आसक्त होते है, उनको जैसे सर्पिणी और सिहिनी प्राण रूप सर्वस्व हरकर नष्ट कर देती है, वैसे ही नारी भी शरीर का सर्वस्व बिन्दु और मन का सर्वस्व सद्गुण व सद्-विचार हरकर परमार्थ से नष्ट कर देती है।

नारी नैन न देखिये, मुख सौं नाम न लेइ।
कानों कामिनि जनि सुनै, यहु मन जाण न देइ ॥ १५८ ॥

नारी को भोग दृष्टि द्वारा नेत्रो से मत देखो, मुख से नाम मत लो, कानो से मत सुनो और अपना मन भी मत जाने दो किन्तु रक्षक दृष्टि द्वारा माता रूप से देखो, सुनो, व अपनी आत्मा समझ करके ही उक्त व्यवहार करो, फिर हानिकर न होगी।

सुन्दरि खाये साँपिनी, केते इहिं कलि माहि।
आदि अत इन सब डसे, दादू चेते नाहि ॥ १५९ ॥

इस कलियुग मे तो सुन्दरी-सर्पिणी ने अनेको को नष्ट किया है। आदि युवावस्था के ब्रह्मचारिया से लेकर अतिम सन्यासियो तक को इसने अपने अधीन किया है। बडे-बडे तपस्वी और विचारशील भी इससे सावधान नही रह सके है।

दादू पैसै पेट मे, नारी नागिन होइ।
दादू प्राणी सब डसे, काढ सकै ना कोइ ॥ १६० ॥

नारी सर्पिणी के समान होती है और भोगासक्ति के कारण हृदय मे घुसकर सब प्राणियो को भोगेच्छा रूप दाँतो से काटती रहती है। नारी मे आसक्त प्राणी के हृदय से नारी को कोई भी नहीं निकाल सकता।

माया साँपिनि सब डसे, कनक कामिनी होइ।
ब्रह्मा विष्णु महेश लौ, दादू बचे न कोइ ॥ १६१ ॥

माया-सर्पिणी कनक और कामिनी का रूप धारण करके सबको डसती है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश तक भी इससे नही बच पाते।

माया मारै जीव सब, खड खंड कर खाइ।
दादू घट का नाश कर, रोवै जग पतियाइ[1] ॥ १६२ ॥

माया-भोग-वासना के बल से सब जीवो की वृत्ति को खड-खड करके अन्त.करण को खराब करती है फिर परमार्थ से गिरा देती है। इस प्रकार सब जीवो को मारती है। इस दु ख से रोते हुये जीव पुन रक्षार्थ उसी का विश्वास[१] करते है।

बाबा बाबा कह गिले, भाई कह कह खाइ।
पूत पूत कह पी गई, पुरुषा जनि पतियाइ ॥ १६३ ॥

यह नारी रूप माया बाबा-बाबा, भाई-भाई और पुत्र-पुत्र कह कर भी अनुराग द्वारा परमार्थ से गिराती है। अत पुरुषो को इसका विश्वास नही करना चाहिए।

ब्रह्मा विष्णु महेश की, नारी माता होइ।
दादू खाये जीव सब, जनि रु पतीजै कोइ ॥ १६४ ॥

यह माया ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश की भी प्रकृति रूप से माता हो जाती है और स्त्री रूप से पत्नी हो जाती है। इसी प्रकार इसने सभी जीवो को परमार्थ से गिराया है। अत: इसका विश्वास किसी को भी नही करना चाहिए।

माया बहुरूपी नटणी नाचै, सुर नर मुनि को मोहै ।
ब्रह्मा विष्णु महेश्वर बाहे, दादू बपुरा को है ॥ १६५ ॥

बहु रूप धारण करने वाली माया-नटनी नृत्य करती है तब सुर, नर और मुनियो को भी मोहित कर लेती है। ब्रह्मा, विष्णु और महादेव को भी बहका देती है। तब बेचारे साधारण जीव को बहका दे, इसमे तो कहना ही क्या है ?

माया फॉसी हाथ ले, बैठी गोप[१] छिपाइ।
जे कोइ धीजे[२] प्राणियां, ताही के गल बाहि ॥ १६६ ॥

माया विषयासक्ति रूप फाँसी हाथ मे लेकर सम्पूर्ण पृथ्वी के रक्षक परमात्मा[१] को छिपाकर बैठी है, जो कोई प्राणी इस पर रक्षक रूप से विश्वास[२] करता है उसी के अन्त करण रूप गले मे विषयासक्ति-पाश डालकर विषयो मे आसक्त कर लेती है। अत इस पर रक्षक रूप से विश्वास न करना चाहिए।

पुरुषा फाँसी हाथ कर, कामिनि के गल बाहि।
कामिनि कटारी कर गहै, मार पुरुष को खाइ ॥ १६७ ॥

१६७-१७१ मे कहते है—कामुक दृष्टि से नारी को पुरुष और पुरुष को नारी हानिकर है। पुरुष विषय-वासना से अपने हाथो की पाश बनाकर तथा कामिनी के गले मे डालकर प्रेम करता है। कामिनी कटाक्ष-कटारी नेत्र-हाथ मे पकड़ कर पुरुष के मारती है और अपने मे आसक्त करके परमार्थ से गिरा देती है।

नारी बैरिण पुरुष की, पुरुषा बैरी नारि।
अंतकाल दोनों मुये, दादू देखि विचारि ॥ १६८ ॥

कामुक दृष्टि से नारी पुरुषो की बैरिन है और पुरुष नारी के बैरी है। कुछ विचार करके देखो, काम-वासना से अन्त मे दोनो ही परमार्थ से गिर जाते है।

नारि पुरुष को ले मुई, पुरुषा नारी साथ।
दादू दोनो पच मुये, कछु न आया हाथ ॥ १६९ ॥

नारिया पुरुषो को अपने मे अनुरक्त करके परमार्थ से गिरी है और पुरुप नारियो मे आसक्त होकर परमार्थ से गिरे हैं। इस प्रकार विषय-सुख के लिए वारवार प्रयत्न करके मर गये किन्तु किचित् मात्र भी उन्हे सतोष नहीं हुआ।

भँवरा लुब्धी वास का, कमल बँधाना आइ।
दिन दश मांहीं देखतां, दोनो गये विलाइ ॥ १७० ॥

भोगी पुरुष-भ्रमर भोग-वासना-सुगध का लोभी होकर नारी-कमल के मुख-पुष्प मे आसक्ति-बन्धन से बँध जाता है किन्तु कुछ दिनो मे ही देखते-देखते नारी और पुरुष दोनो अतृप्तावस्था मे ही नष्ट हो जाते है।

नारी पीवै पुरुष को, पुरुष नारि को खाइ।
दादू गुरु के ज्ञान बिन, दोनो गये विलाइ ॥ १७१ ॥

इति माया का अग समाप्त ॥ १२ ॥ सा १३१६।

नारी वीर्य अपहरण द्वारा पुरुष का पुरुषत्व नष्ट करती है। पुरुष नारी को अपने अधीन करके परमार्थ से गिराता है। इस प्रकार गुरु के ज्ञानोपदेश बिना मर्यादा रहित व्यवहार से दोनो ही नष्ट हो जाते है। अत गुरु के उपदेश द्वारा इस पतन से अपने को बचाना चाहिए।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका माया का अग समाप्त ॥ १२ ॥

अथ साच का अंग १३

मिथ्या के निरूपण-पश्चात् सत्य की जिज्ञासा होती है—इसलिए अब "साच का अग" कहने मे प्रवृत्त मगल कर रहे है—

दादू नमो नमो निरजन, नमस्कार गुरुदेवत ।
वन्दन सर्व साधवा, प्रणाम पारगत ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक सत्य के द्वारा मिथ्या से पार होकर परब्रह्म को प्राप्त होता है—उन निरजन राम, सद्गुरु और सर्व सतो को हम अनेक प्रणाम करते है।

अदया-हिंसा

दादू दया जिन्हो के दिल नहीं, बहुरि कहावै साध ।
जे मुख उन का देखिये, तो लागै बहु अपराध ॥ २ ॥

२-११ मे कहते है—दयाहीन मानव अच्छे नही होते। जिनके हृदय मे दया नही है, फिर भी जो सत कहलाते है, उनके दर्शन से अति पाप लगता है।

दादू महर मुहब्बत मन नहीं, दिल के बज्र कठोर ।
काले काफिर[1] ते कहिये, मोमिन[2] मालिक और ॥ ३ ॥

जिनके मन मे दया और प्रेम नही, जो वज्र समान कठोर हृदय के है—वे मलीन और नास्तिक[1] है। धर्मनिष्ठ[2] रक्षक स्वामी तो और ही होते है।

दादू कोई काहू जीव की, करै आतमा घात।
साच कहूँ संशय नहीं, सो प्राणी दोजख जात॥ ४॥

यदि कोई किसी जीव के शरीर को नष्ट करता है तो, हम सशय रहित सत्य कहते है, वह नष्ट करने वाला नरक को जाता है।

दादू नाहर[1] सिंह सियाल सब, केते मुसलमान।
मांस खाइ मोमिन[2] भये, बडे मियां[3] का ज्ञान॥ ५॥

कितने ही मुसलमान मास खाते हुये भी धर्मनिष्ठ[2] बन रहे है और मुहम्मद[3] साहब की कुरान से मास खाने का समर्थन भी करते है किन्तु मास खाने वाले सभी मानव व्याघ्र[1], सिह और सियार के समान है। मानव का आहार तो अन्न ही है।

दादू मांस अहारी जे नरा, ते नर सिंह सियाल[1]।
बक[2] मंजार[3] सुनहॉ[4] सही, येता प्रत्यक्ष काल॥ ६॥

जो मास खाने वाले नर है, वे ठीक प्रत्यक्ष ही सिह, सियार[1], बगुला[2], बिलाव[3] और कुत्ते[4] के समान काल रूप ही है।

दादू मुई[1] मार मानुष घणे, ते प्रत्यक्ष जम काल।
महर दया नहिं सिंह दिल, कूकर काग सियाल॥ ७॥

मृतकवत्[1] कबूतर आदि गरीव प्राणियो को मारने वाले मनुष्य बहुत है, वे प्रत्यक्ष ही मृत्यु ओर काल के समान है। जैसे सिह, कुत्ते, काक और सियार के मन मे दया नही होती वैसे ही उनके मन मे भी दया नहीं होती।

मांस अहारी मद पिवै, विषय विकारी सोइ।
दादू आत्मराम बिन, दया कहां थीं होइ॥ ८॥

जो मासाहार और मदिरा पान करते है, वे विषय विकारो मे फॅसे रहते हैं। सत्सगादि के विना, 'सभी आत्मा एक है और राम सब मे व्यापक है' ऐसा ज्ञान नही होने से उनके हृदय मे दया कहा से आयेगी ?

लंगर[1] लोग लोभ सौं लागैं, बोलै सदा उन्हीं की भीर।
जोर[2] जुल्म[3] बीच[4] बटपारे[5], आदि अत उनहीं सौं सीर॥ ९॥

निर्लज्ज उद्धत[1] मनुष्य भी लोभ वश सदा मासाहारियो की ही पक्ष करते है और बलात्कार[2], अत्याचार[3], भेदनीति[4], बटमारी[5] करने वाले भी आदि अन्त तक उन्ही से मेल रखते है।

तन मन मार रहैं साँई सौं, तिनको देखि करैं ताजीर[1]।
यह वडि बूझ कहां तैं पाई, ऐसी कजा[2] अवलिया[3] पीर॥ १०॥

जो सत तन-मन का सयम करके भगवद्-भजन मे लगे रहते है, उन्हे देखकर ईर्ष्या[1], उपहास करना, यह महान् बुद्धि कहा से प्राप्त की है। यह बात तो ऐसी हे, जेसे नमाज[2] का समय निकल जाने पर नमाज पढ़ना और सिद्ध[3] सत भी कहलाना मर्यादा रहित बात है।

बे महर गुमराह[1] गाफिल, गोश्त—खुरदनी[2] ।
बे दिल[3] बदकार[4] आलम, हयात[5] मुरदनी[6] ॥ ११ ॥

दया हीन, परमार्थ पथ-को-भूला-हुआ[1] असावधान, मासाहारी[2], मलीन हृदय[3], नीच-कर्म-करने वाला[4], ससार मे जीवित[5] रहते हुये भी मरे हुये के समान है।

साच

छल कर बल कर घाइ[1] कर, मारे जिहिं तिहिं फेरि ।
दादू ताहि न धीजिये, परणै सगी पतेरि[2] ॥ १२ ॥

१२ मे सत्य बात कह रहे है—जो छल, बल तथा घात[1] करके, जिस किसी भी प्रकार से जीवो को अपने फँदे मे फँसा कर मारते है और अपने पिता के छोटे भाई की पुत्री[2] से विवाह कर लेते है, उनका विश्वास नही करना चाहिए।

अदया-हिंसा

दादू दुनिया सौ दिल बॉधकर, बैठे दीन[1] गमाइ ।
नेकी नाम बिसार कर, करद कमाया खाइ ॥ १३ ॥

१३-१९ मे अधिक हिसा करने वालो के व्यवहार का परिचय दे रहे है—सासारिक विषयो मे मन को फँसा कर सच्चे धर्म[1] को खो बैठे है। भलाई और भगवान् का नाम भूल कर छुरी के द्वारा गले काटने से कमाये हुये पैसे से अपना पेट भरते है।

दादू गल काटै कलमा[1] भरै, अया[2] विचारा दीन ।
पंचो वक्त नमाज गुजारै[3], साबित[4] नही यकीन[5] ॥ १४ ॥

प्राणियो के गले काटते है और हर समय खुदा का स्मरण[1] करते हुये विश्वासी भक्त भी बनते है। क्या यही[2] धर्म का विचार है ? पाचो समय नमाज भी पढ़ते[3] है, फिर भी भगवान् का पूर्ण[4] विश्वास[5] नही रखते।

दुनिया के पीछे पडा, दौड़ा दौड़ा जाइ।
दादू जिन पैदा किया, ता साहिब को छिटकाइ ॥ १५ ॥

जिसने उत्पन्न किया है, उस परमात्मा को त्याग कर ससारी प्राणियो के पीछे-पीछे फिरता है और कुरबानी आदि कार्यों के लिए दौड-दौड कर जाता है।

कुफ्र[1] जे[2] के मन मे, मीया मुसलमान ।
दादू पेया[3] झग[4] मे, बिसारे रहमान[5] ॥ १६ ॥

जिनके[2] मन मे नास्तिकता[1], हठ, द्वेष है, ऐसे मुसलमान मिया साहिब भी कहलाते है किन्तु दयालु[5] भगवान् को भूल कर ससार के झगड़ो[4] मे ही पडे[3] रहते है।

आपस को मारै नहीं, पर को मारन जाइ ।
दादू आपा मारे बिना, कैसे मिलै खुदाइ ॥ १७ ॥

अपने अहकार को तो मारते नही, दूसरो को मारने जाते है। अपने अहकार की बलि दिये बिना भगवान् कैसे मिल सकते है ?

भीतर द्वन्द्वर भर रहे, तिनको मारै नांहिं ।
साहिब की अरवाह[1] है, ताको मारन जांहि ॥ १८ ॥

अपने हृदय मे काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग द्वेषादि द्वन्द्व भरे है, उनको तो नहीं मारते और परमात्मा की जीवात्माएँ[1] है, उनको मारने जाते है।

दादू मूये को क्या मारिये, मीयां मूई मार ।
आपस को मारै नही, औरों को हुसियार ॥ १९ ॥

अपने कर्मों से ही मरे हुये जीवो को क्यो मारता है ? हे मुई जीवात्माओ को मारने वाले मियॉ ! तू अपने अहकारादिक को तो नही मारता और दूसरे जीवो को मारने मे बडा निपुण वीर बना है।

साच

जिसका था तिसका हुआ, तो काहे का दोष ।
दादू बंदा बंदगी, मीयॉ ना कर रोष ॥ २० ॥

२०-२५ मे जो मुसलमान जीव को ब्रह्म-भाव की प्राप्ति नही मानते, उन्हे सत्य चेतावनी दे रहे है—आत्मा जिस ब्रह्म का स्वरूप था, ज्ञान प्राप्त होने पर उसी का स्वरूप हो गया तो इसमे क्या दोष है ? और भक्त को भक्ति का ही अधिकार है, वह भक्ति कर रहा है। दोनो ही ठीक है। हे मियाँ ! इस विषय मे क्रोध पूर्वक विवाद करने की आवश्यकता नही है।

सेवक सिरजनहार का, साहिब का बंदा ।
दादू सेवा बंदगी, दूजा क्या धंधा ॥ २१ ॥

परमात्मा के सच्चे सेवक और खुदा के बदो के लिए आन्तर सेवा बदगी के बिना दूसरे भक्ति व बदगी के लिए किये जाने वाले बाहर के आडम्बर रूप धधे क्या महत्त्व रखते है ? अर्थात् सच्चे भक्त आडम्बर मे नही पडते।

सो काफिर[1] जे बोलै काफ[2], दिल अपना नहिं राखै साफ।
सांई को पहचानै नाहीं, कूड कपट सब उनही मांहीं ॥ २२ ॥

वे ही नास्तिक[1] है जो सत्य को मिथ्या[2] कहते है, अपना हृदय शुद्ध नही रखते, ईश्वर को नही पहचानते। उन्ही मे सब बुराइया और कपट रहते है।

सांई का फरमान न मानैं, कहां पीव ऐसे कर जानैं ।
मन अपने में समझत नांहीं, निरखत चलैं आपनी छांहीं ॥ २३ ॥

परमात्मा की आज्ञा नही मानते। 'ईश्वर कहा है ? उसकी केवल कल्पना कर रक्खी है', ऐसा जानते है। अपने मन मे वास्तविकता को नही समझते। अपने को शरीर रूप मान कर, शरीर की छाया देखते हुये चलते है और छाया देख कर फूलते है।

जोर करै मसकीन[1] सतावै, दिल उसके मे दर्द न आवै।
सांई सेती[2] नाही नेह, गर्व करै अति अपनी देह ॥ २४ ॥

अपनी शक्ति से गरीबो[1] को सताते है और गरीबो को विपत्ति मे देखकर भी उनके हृदय मे दया नही आती। ईश्वर से[2] तो उनका प्रेम होता ही नही। वे तो अपने शरीर के बल आदि का ही गर्व करते रहते है।

इन बातन क्यो पावै पीव, पर धन ऊपर राखै जीव।
जोर जुल्म कर कुटुम्ब सौ खाइ, सो काफिर दोजख मे जाइ ॥ २५ ॥

बलपूर्वक अन्याय कर के कुटुम्बियो से खाते पीते है और पराए धन को छीनने का विचार रखते है। वे नास्तिक लोग नरक मे ही जाते है। ऐसी बातो से भगवान् तो कैसे प्राप्त हो सकते है ?

अदया-हिंसा

दादू जाको मारण जाइये, सोई फिर मारै।
जाको तारण जाइये, सोई फिर तारै ॥ २६ ॥

२६-२७ मे अदया-हिसा का फल बतला रहे है—जो जिसको मारने जाता है, वह पुन उसको मारता है और जो जिसकी रक्षा करने जाता है, वह फिर उसकी रक्षा करता है।

यह साखी साभर मे भूधरदास के शिष्य को कही थी, जो गुरु-शिष्य ईर्ष्यावश दादूजी को पीटने आये थे। प्रसग कथा- दृ सु सि त ११-१२४ मे देखो।

दादू नफस[1] नाम सौ मारिये, गोशमालि[2] दे पंद[3]।
दूई[4] है सो दूर कर, तब घर मे आनन्द ॥ २७ ॥

वृत्ति रूप कान[2] को मरोड़ कर, मन को शिक्षा[3] दो। नाम चिन्तन द्वारा विषय वासना[1] को नष्ट करके हृदय मे जो द्वैत[4] भावना है, उसे दूर करो। तब घर मे रहते हुये भी परमानन्द का अनुभव होगा।

साच (मुसलमान के लक्षण)

मुसलमान जो राखे मान, साई का माने फरमान।
सारो को सुखदाई होइ, मुसलमान कर जानो सोइ ॥ २८ ॥

२८-३१ मे मुसलमान के लक्षण कहते है—जो ईमान रखता है, ईश्वर की आज्ञा मानता है, सन्मान आदि द्वारा सबको सुख देता है, उसी को हम मुसलमान जानते है।

दादू मुसलमान महर गह रहै, सबको सुख किस ही न दहै।
मुवा न खाइ, जीवत नहि मारै, करै बंदगी राह सँवारै ॥ २९ ॥

जो दया धारण करे, सबको सुख दे, कटु बचनादि से किसी का भी हृदय नही जलावे, मुरदे को खाये नही, जीवित को मारे नही, भगवान् की भक्ति करके मुक्ति का मार्ग ठीक करे, वही सच्चा मुसलमान है।

सो मोमिन[1] मन में कर जान, सत्य सबूरी[2] वैसे आन।
चालै साँच सँवारै बाट, तिनको खुलै बहिश्त[3] के पाट॥ ३०॥

जिनके हृदय मे सत्य और सतोष[2] आकर बैठे है—जो सत्य मार्ग को ठीक करके उसमे चलते है, वे ही सच्चे ईमानदार[1] मुसलमान है। उसके लिए ही स्वर्ग[3] द्वार के कपाट खुले रहते है।

सो मोमिन[1] मोम[2] दिल होइ, सांई को पहचानै सोइ।
जोर न करै हराम न खाइ, सो मोमिन[3] बहिश्त में जाइ॥ ३१॥

जो भगवान् को पहचानता है, वही कोमल[2] हृदय वाला ईमानदार[1] कहलाता है। जो बलात्कार नही करता, हराम का नही खाता, वही धर्मनिष्ठ[3] स्वर्ग मे जाता है।

जैसा करना वैसा भरना

जो हम नहीं गुजारते, तुमको क्या भाई।
सीर नहीं कुछ बंदगी, कहु क्यों फरमाई॥ ३२॥

यदि हम आप लोगो के कथनानुसार नही करते तो हे भाइयो! इसमे तुम्हे क्या हानि है? भक्ति मे कुछ सीर नही होता। जो हम नही करेंगे तो तुम्हे हिस्सा न मिलेगा। फिर आप लोग ऐसा क्यो कहते है?

अपने अमलों[1] छूटिये, काहू के नांहीं।
सोई पीड पुकारसी, जा दूखै मांहीं॥ ३३॥

अपने कर्मों[1] से ही प्राणी सासारिक पाप-ताप से छूटता है, किसी अन्य के कर्म से नही। जिसके हृदय मे प्रभु वियोग का दु ख है, वही भगवान् को वेदना पूर्वक पुकारेगा। अन्य सब तो बाह्याडम्बर मे ही रत है।

कोई खाइ अघाइ कर, भूखे क्यों भरिये।
खूटी[1] पूगी[2] आन की, आपन क्यों मरिये॥ ३४॥

कोई मानव पेट भरके खा लेता है, तब दूसरे भूखे मनुष्य का पेट कैसे भरेगा? किसी अन्य की आयु समाप्त[1] होकर मृत्यु की पल आ पहुँची[2] हो, तब अपन कैसे मर सकते है? अत अपने कर्म का ही फल अपने को मिलता है।

फूटी नाव समंद में, सब डूबन लागे।
अपना अपना जीव ले, सब कोई भागे॥ ३५॥

जैसे समुद्र मे नौका फूट जाय, सब डूबने लगे, तब कौन किसके भरोसे रहता है? सभी अपने को बचाने का प्रयत्न करते है। वैसे ही सबको अपने-अपने उद्धार का साधन करना चाहिए। दूसरे की ओर देखने से क्या लाभ है?

दादू शिर शिर लागी आपने, कहु कौन बुझावै ।
अपना अपना साँच दे, सांई को भावै ॥ ३६ ॥

जैसे अनेक मनुष्यो के शिर पर अग्नि लगे, तब सब अपनी ही बुझाते है, कहो दूसरा कौन बुझाता है ? वैसे ही त्रिताप से सब जल रहे है। जो सत्यतापूर्वक अपने साधन-जल का छिडकाव देकर स्वय ही तापाग्नि को बुझाते है, वे ही प्रभु को प्रिय लगते है।

साँभर मे हिन्दू-मुसलमानो ने एक मत हो महाराज से कहा था-आप तीर्थ व्रतो को नहीं मानते, न रोजा करते हो, न कलमा पढते हो, नमाज नही गुजारते, ऐसा ठीक नही। उक्त दोनो मतो मे से किसी एक मत के अनुसार साधन अवश्य करने चाहिए। उन्ही को ३२ से ३६ तक उत्तर दिया था।

स्मरण चेतावनी

साचा नाम अल्लाह का, सोइ सत्य कर जाण।
निश्चल कर ले बदगी, दादू सो परमाण ॥ ३७ ॥

३७-३९ मे भगवद् भक्ति करने के लिए सावधान कर रहे है—ईश्वर का नाम ही सत्य है। उसी को मुक्ति का सच्चा साधन जान कर, मन को स्थिर करके अखड भक्ति करो। उक्त प्रकार की भक्ति ही प्रामाणिक मानी जाती है।

आवट[1] कूटा[2] होत है, अवसर बीता जाइ ।
दादू कर ले बदगी, राखणहार खुदाइ ॥ ३८ ॥

छल[2] आदि के द्वारा प्राणियो के हृदय मे हलचल[1] मच रही है। इसी स्थिति मे मानव जीवन का सुअवसर नष्ट हो रहा है। जो बचा समय है, उसमे तो भगवान् की भक्ति कर लो। सासारिक दु खो से रक्षा करने वाले एक मात्र भगवान् ही है।

इस कलि केते ह्वै गये, हिन्दू मुसलमान ।
दादू साची बदगी, झूठा सब अभिमान ॥ ३९ ॥

इस कलियुग मे अपने बाह्य धर्म का अभिमान रखने वाले अनेक हिन्दू और मुसलमान हो गये है। किन्तु वह सम्पूर्ण अभिमान भगवत् प्राप्ति का सच्चा साधन नही सिद्ध हुआ। भगवत् प्राप्ति का सच्चा उपाय तो भगवान् की भक्ति ही है।

कथनी बिना करणी

पोथी अपना पिड कर, हरि यश माहीं लेख ।
पडित अपना प्राण कर, दादू कथहु अलेख ॥ ४० ॥

४०-४७ मे कथन बिना कर्त्तव्य के विषय मे कह रहे है—अपने शरीर को ही पुस्तक बना कर उसमे भगवान् का यश लिखो। अपने जीवात्मा को ही पडित बना कर मन इन्द्रियो के अविषय परब्रह्म का ही कथन करो, अर्थात् अपने स्थूल-सूक्ष्म सघात को भगवत्-परायण करके समाधिस्थ रहो।

काया कतेब बोलिये, लिख राखूं रहमान[1] ।
मनवा मुल्ला[2] बोलिये, श्रोता है सुबहान[3] ॥ ४१ ॥

हम तो काया को ही किताब कहते है, उसमे दयालु[1] ईश्वर का यश लिख कर रखते है। मन पडित[2] बोलता है और स्वय पवित्र[3] ईश्वर श्रोता बन कर सुनता है।

दादू काया महल में नमाज गुजारूं, तहँ और न आवन पावै ।
मन मणके कर तसबीह[1] फेरूं, तब साहिब के मन भावै ॥ ४२ ॥

जहा अन्य कोई भी नही आ सकता, उसी काया नगरी के हृदय महल मे हम भक्ति करते है। मन के मनिये बनाकर माला[1] फेरते है। तब ही हमारी उपासना भगवान् को प्रिय लगती है।

दिल दरिया में गुसल[1] हमारा, ऊजू[2] कर चित लाऊं ।
साहिब आगे करूं बंदगी, बेर बेर बलि जाऊं ॥ ४३ ॥

हृदय-दरिया के नाम-चिन्तन-जल से हमारा स्नान[1] होता है। सयम-लोटा के प्रत्याहार-जल से पचेन्द्रिय रूप पाचो (हाथ[2]-पैर-मुख) अगो को धोकर, भगवान् मे चित्त लगाते है। इस प्रकार हम भगवान के आगे भक्ति करते है और बारबार बलिहारी जाते है।

दादू पंचों संग सँभालूं सांई, तन मन तब सुख पाऊं ।
प्रेम पियाला पिवजी देवै, कलमा ये लै लाऊं ॥ ४४ ॥

पाचो ज्ञानेन्द्रियो को भगवत् परायण करके भगवद् भजन करते है, तभी परमात्मा हमे अपने प्रेम-रस का प्याला प्रदान करते है। उसके प्रताप से हम तन-मन से आनन्दित रहते है। हमारा कलमा पढना यही है कि "परब्रह्म मे ही अपनी वृत्ति लगावे।"

शोभा कारण सब करै, रोजा बांग नमाज ।
मुवा न एकौ आह सौं, जे तुझ साहिब सेती काज ॥ ४५ ॥

सभी प्रशसा के लिए रोजा करते है। नमाज के समय आवाज लगाते है। यदि ऐसा नही हो और तुझे परमात्मा से मिलने का ही काम हो तो, एक आवाज से ही क्यो न मरा। कारण, इतने जोर से बोलने वाला वियोगी तो प्रेम पात्र के बिना जीवित रह नही सकता।

हर रोज हजूरी होइ रहु, काहे करै कलाप[3] ।
मुल्ला तहां पुकारिये, जहँ अर्श[1] इलाही[2] आप ॥ ४६ ॥

हे मुल्ला ! नित्य परमात्मा की भक्ति मे स्थिर रह, रोजा आदि का कष्ट[3] क्यो उठाता है ? यदि बाग लगाना ही है तो वहा लगा, जहा हृदयाकाश[1] मे अपना आत्म स्वरूप परब्रह्म[2] है अर्थात् भीतर ही प्रार्थना कर।

हरदम हाजिर होना बाबा, जब लग जीवै बंदा ।
दायम[1] दिल सॉई सौं साबित, पंच वक्त क्या धंधा ॥ ४७ ॥

हे बाबा ! जब तक दास जीवित रहता है, तब तक स्वामी के सम्मुख ही रहना पडता है। वैसे ही अपना मन सदा[1] प्रति श्वास परमात्मा मे ही लगाये रखना चाहिये।

हिन्दू मुसलमानो का भ्रम

दादू हिन्दू मारग कहै हमारा, तुर्क कहै रह मेरी।
कहां पंथ है कहो अलह का, तुम तो ऐसी हेरी ॥ ४८ ॥

४८-५० मे हिन्दू मुसलमानो के भ्रम का दिग्दर्शन करा रहे है—हिन्दू कहते है—हमारा मार्ग श्रेष्ठ है, मुसलमान कहते है—हमारा श्रेष्ठ है। किन्तु वताओ, इन वाद-विवाद पूर्ण पथो मे परमात्मा की प्राप्ति का मार्ग कहा है ? तुम लोगो ने तो केवल विवाद वृद्धि की ही खोज की है।

दादू दुई[1] दरोग[2] लोग को भावै, सांई साँच पियारा।
कौन पंथ हम चलै कहो धू[3], साधो करो विचारा ॥ ४९ ॥

द्वैत[1] भाव और मिथ्या[2] व्यवहार ही ससारी लोगो को प्रिय लगता है, किन्तु भगवान् को तो सत्य ही प्रिय हे। हे सतो ! विचार द्वारा निश्चय[3] करके कहो, हम किस मार्ग का अनुसरण करे अर्थात् हमे सत्य अद्वैत मे ही स्थित रहना चाहिए।

खंड खंड कर ब्रह्म को, पख पख लीया बांट।
दादू पूरण ब्रह्म तज, बँधे भरम की गांठ ॥ ५० ॥

अविद्या की ग्रथि मे बँध जाने के कारण व्यापक ब्रह्म को त्याग कर, हिन्दू, वैष्णव शैव,शाक्त,सौर, गणपत्य, बौद्ध, जैन, पारसी, ईसाई,मुसलमान आदि ससारी लोगो ने अपने-अपने मत की रक्षा के अनुसार ब्रह्म को खड-खड करके बाँट लिया है और विवाद द्वारा झगडते रहते है।

मन विकार औषधि

जीवत दीसै रोगिया, कहै मूवाँ पीछै जाइ।
दादू दुँह[1] के पाढ[2] में, ऐसी दारू[3] लाइ ॥ ५१ ॥

५१-५२ मे मन के विकार हटाने की प्रेरणा कर रहे है—जीवनकाल मे तो विषय-वासना-रोग से पीडित दिखाई दे रहे है और कहते है कि मरने के पश्चात् मुक्तिधाम को चले जायेगे, सो ठीक नही। त्रिविधि ताप रूप दावाग्नि[1] के आश्रय अन्त करण रूप पर्वत[2] मे जीते ही ऐसी औषधि[3] की वृष्टि करो जिससे उसकी ज्वालाये शात हो जायँ, अर्थात् जीवन काल मे ही ब्रह्म ज्ञान प्राप्त करो। वा द्वैत के[1] आश्रय अन्त करण रूप मचान[2] पर ब्रह्म ज्ञान रूप ऐसी बारूद[3] जलाओ, जिससे विषय-वासना रूप रोग जीवन-काल मे ही नष्ट होकर मुक्त हो जाओ।

सो दारू किस काम की, जातै दर्द न जाइ।
दादू काटै रोग को, सो दारू ले लाइ ॥ ५२ ॥

जिससे जन्म-मरण रूप पीड़ा नही नष्ट हो, वह सकाम कर्म रूप औषधि किस काम की है ? जो मन के विकार विषय-वासनादि उपद्रवो के सहित जन्म-मरण-रोग को मूल से नष्ट कर सके, वह ब्रह्माकार वृत्ति रूप औषधि सद्गुरु-वैद्य से लेकर मन मे लगा=निरतर ब्रह्माकार वृत्ति रख।

चानक उपदेश

एक सेर का ठॉवडा, क्यों ही भऱ्या न जाइ ।
भूख न भागी जीव की, दादू केता खाइ ॥ ५३ ॥

५३-५६ मे चुभता उपदेश कर रहे है—प्राणी का पेट रूप बर्तन प्राय: एक सेर का है, वह कैसे नही भरेगा ? वह तो भर ही जाता है और यह कितना ही खाता भी रहता है किन्तु इसके मन की अभिलाषा नही मिटती।

पशुवां की नांई भर भर खाइ, व्याधि घणेरी बधती जाइ ।
पशुवां की नांई करै अहार, दादू बाढे रोग अपार ।
राम रसायन भर भर पीवै, दादू जोगी जुग जुग जीवै ॥ ५४ ॥

मानव होकर भी पशुओ के समान पेट भर-भर के खाते है, इससे शरीर मे बहुत-सी व्याधियॉ बढ जाती हैं तथा सिहादि पशुओ के समान मासाहार करते है, जिससे मन मे पापादि विकार रूप अपार रोग बढते रहते है किन्तु जो योगी सर्व-रोग नाशक राम-भक्ति रूप रसायन का रुचि भर-भर कर पान करते है, वे परब्रह्म को प्राप्त होकर अमर हो जाते है।

दादू चारै चित दिया, चिन्तामणि को भूल ।
जन्म अमोलक जात है, बैठे मॉझी फूल ॥ ५५ ॥

ईश्वर वा नाम-चिन्तामणि को भूल कर भोजनादि मे ही चित्त लगाये रखते है—इस प्रकार अपना अमूल्य मानव-जन्म विषयो मे व्यर्थ ही जा रहा है, तो भी मानव-समाज के मध्य बैठकर प्रसन्न होते है, किन्तु इस प्रसन्नता का परिणाम दु ख ही है।

भरी अधौडी[1] भावठी[2], बैठा पेट फुलाइ ।
दादू शूकर श्वान ज्यों, ज्यों आवै त्यों खाइ ॥ ५६ ॥

मन को भाने[2] वाली वस्तुये जैसे-जैसे आती है, वैसे-वैसे ही शूकर व श्वान के समान अमर्यादित मात्रा मे खाता रहता है और चमार की भट्टी पर पानी से भरी हुई लटकती कच्ची चमडी[1] की मश्क के समान पेट फुला कर बैठा रहता है।

शिश्न स्वाद

दादू खाटा मीठा खाइ कर, स्वाद चित दीया।
इनमें जीव विलंबिया, हरि नाम न लीया ॥ ५७ ॥

५७-५८ मे कहते है, इन्द्रियाधीन भजन नही कर पाता है—खट्टे, मीठे आदि रसो वाले पदार्थों को खाकर-खाकर उनके स्वाद मे ही मन लगा देते है। इसीलिए प्राणी उन्ही मे फॅस जाते है, भगवान् का नाम स्मरण नही कर पाते।

भक्ति न जानैं राम की, इन्द्री के आधीन।
दादू बध्या स्वाद सौं, तातैं नाम न लीन ॥ ५८ ॥

इन्द्रियो के अधीन रहने से, विषयो के स्वाद मे ही फँसे रहते है, राम की भक्ति नही जानते, इसलिए नाम स्मरण नही कर पाते।

साच

दादू अपना नीका राखिये, मै मेरा दिया बहाइ।
तुझ अपने सेती काज है, मै मेरा भावै तीधर जाइ ॥ ५९ ॥

५९-६० मे किसी वादी को सत्य बात कह रहे है—हे वादी ! तुम अपने धर्म को अच्छी प्रकार धारण करो, मैंने मेरा भाव अपनत्व त्याग दिया है तो इससे तुम्हे क्या हानि है ? तुमको अपने धर्म से काम है। मै और मेरा धर्म चाहे कही भी जाय।

जे हम जाण्या एक कर, तो काहे लोक रिसाइ।
मेरा था सो मै लिया, लोगों का क्या जाइ ॥ ६० ॥

यदि हमने आत्मा और ब्रह्म को एक जाना है—तो इससे कर्मकाडी लोग हम पर क्यो कुपित होते है ? हमारा जो वास्तविक स्वरूप था, वही हमने प्राप्त किया है। इससे लोगो का क्या बिगडता है ?

करणी बिना कथनी

दादू द्वै द्वै पद किये, साखी भी द्वै चार।
हमको अनुभव ऊपजी, हम ज्ञानी संसार ॥ ६१ ॥

६१-६८ मे वाचिक ज्ञानियो के विषय मे कह रहे है—वाचिक ज्ञानी दो-चार गाने के पद और दो चार साखिया बना कर कहते है- हमारे हृदय मे अनुभव ज्ञान उत्पन्न हुआ है। ससार मे हम ही ज्ञानी है।

सुन सुन पर्चे ज्ञान के, साखी शब्दी होइ।
तब ही आपा ऊपजै, हम-सा और न कोइ ॥ ६२ ॥

ज्ञान की बाते लिखे हुये कागज के टुकड़े सुनते-सुनते यदि कोई साखी, शब्दी बन जाती है तो उसी क्षण इतना अभिमान हृदय मे उत्पन्न हो जाता है कि हमारे समान कोई भी नही है।

सो उपजी किस काम की, जे जन जन करै कलेश।
साखी सुन समझै साधु की, ज्यो रसना रस शेष ॥ ६३ ॥

वह अनुभव की उपज किस काम की है ? जिसके द्वारा विवाद करके व्यक्ति-व्यक्ति को दु खी करे। अनुभवी सतो की तो साखी सुनकर समझते ही भजन मे मन लगता है और नाम उच्चारण से जैसे शेषजी की रसना को रस आता है, वैसे ही रसना पर रस का अनुभव होने लगता है।

दादू पद जोडै साखी कहै, विषय न छाडै जीव।
पानी घाल बिलोइये, क्यों कर निकसै घीव ॥ ६४ ॥

जो ज्ञान के पद और साखिया बना कर सुनाते रहते है, किन्तु विषयो का त्याग नही करते प्रत्युत उनमे आसक्त हुये रहते है। उनका यह कार्य पानी मे मथानी डाल कर, मथन करने के समान है। जैसे पानी से घृत नही निकलता वैसे ही उक्त व्यवहार से ब्रह्म साक्षात्कार नही होता।

दादू पद जोडे का पाइये, साखी कहे का होइ।
सत्य शिरोमणि सांइयां, तत्त्व न चीन्हा सोइ ॥ ६५ ॥

जो सत्य और सर्व श्रेष्ठ-ब्रह्म तत्व है, उसे नही पहचाना तो पद और साखिया बनाकर सुनाने से क्या होता है ? जन्मादि बन्धन तो कटता नही, भोग प्राप्त होते है।

कहबे सुनबे मन खुसी, करबा औरै खेल।
बातों तिमिर न भाजई, दीवा बाती तेल ॥ ६६ ॥

कहने-सुनने से तो केवल मन प्रसन्न होता है। साधन करना और ही काम है। जैसे दीपक बत्ती और तेल की बाते करने से अधकार नही जाता किन्तु इन सबको सग्रह करके दीपक जलाने से ही जाता है। वैसे ही ज्ञान साधनो द्वारा ज्ञान उत्पन्न करने से ही अज्ञान नष्ट होता है।

दादू करबे वाले हम नहीं, कहबे को हम शूर।
कहबा हम तैं निकट है, करबा हम तैं दूर ॥ ६७ ॥

वाचिक ज्ञानी करने वाले नही होते, कहने मे ही वीर होते है। कहना उनके अति समीप है किन्तु करना उनसे अति दूर रहता है। वे कथनानुसार नही करते।

कहे कहे का होत है, कहे न सीझै काम।
कहे कहे का पाइये, जब लग, हृदय न आवै राम ॥ ६८ ॥

कहने से ही क्या होता है ? करे बिना कहने मात्र से तो कोई व्यावहारिक काम भी सिद्ध नही होता। इसी प्रकार परमार्थ की बाते कहते रहने से भी क्या मिलता है ? जब तक हृदय मे निरजन राम का साक्षात्कार नही होता तब तक परमानन्द कहा प्राप्त होता है ?

चौप (चाह) बिन चौंप चर्चा

दादू श्रोता घर नहीं, वक्ता बकै सु बादि।
वक्ता श्रोता एक रस, कथा कहावै आदि ॥ ६९ ॥

६९-७० मे कहते है—उत्कट अभिलाषा से कहना-सुनना सार्थक होता है, शेष सब व्यर्थ है-यदि श्रोता की वृत्ति अन्त करण-घर मे स्थिर नही है और वक्ता भी कल्याण की उत्कठा बिना ही बोल रहा है तो वह कथा व्यर्थ है और श्रोता-वक्ता दोनो कल्याण की उत्कठा से एकाग्रता पूर्वक कह-सुन रहे है तो वह कथा प्रथम श्रेणी की है=श्रेष्ठ है।

वक्ता श्रोता घर नही, कहै सुनै को राम।
दादू यहु मन स्थिर नहीं, बाद बकै बेकाम ॥ ७० ॥

जिन वक्ता श्रोताओ की वृत्ति अन्त करण-घर मे स्थिर नही रहती उनको कहते सुनते रहने पर भी, यह ज्ञान नही होता कि-"राम कौन है।" वे राम को नही जान पाते। अत॰ जव तक यह मन स्थिर नही होता, तब तक वाचिक ज्ञानी निष्प्रयोजन व्यर्थ ही वकते रहते हे।

विचार-दृढ़ ज्ञान

अंतर सुरझे समझ कर, फिर न अरूझे जाइ।
बाहर सुरझे देखतां, वहुरि अरूझे आइ ॥ ७१ ॥

७१ मे विवेक विचार और अदृढ विवेक विचार वालो की गति वता रहे है—जो दृढ़ विवेक विचार द्वारा अपने स्वरूप को समझकर आतर विषय-वासनादि विकारो से मुक्त हो गये है, वे पुन विषयादि विकारो मे प्रवृत्त होकर ससार-वन्धन मे नही वँधते। जो केवल वाणी से या भेष-परिवर्तन द्वारा ही विषयादि का त्याग करते है, वे विषय-राग नष्ट न होने के कारण पुन विषयो मे प्रवृत्त होकर ससार-वन्धन मे वँध जाते है।

झूठे गुरु

आतम लावै आप सौ, साहिव सेती नांहिं।
दादू को निपजे नहीं, दोन्यो निष्फल जाहि ॥ ७२ ॥

७२-७३ मे झूठे गुरु लोगो का व्यवहार वता रहे हे—जीवात्माओ को उपदेशादि द्वारा अपनी भक्ति मे लगाते है, भगवद्-भक्ति करा कर भगवान् के वास्तविक स्वरूप मे नही लगाते। उन गुरु-शिष्यो मे कोई भी ब्रह्म-ज्ञान को प्राप्त नही होता। ऐसे गुरु-शिष्य दोनो ही जीवन को निष्फल खोकर जन्मादि ससार को प्राप्त होते है।

तू मुझ को मोटा कहै, हौ तुझे बडाई मान ।
साई को समझै नहीं, दादू झूठा ज्ञान ॥ ७३ ॥

गुरु शिष्य को कहता है—तू मुझे लोगो के सामने महान् बता कर मेरा सन्मान किया कर और मै तेरी बड़ाई करके तेरा सन्मान किया करूँगा। इस प्रकार के मिथ्या ज्ञान मे ही फँसे रहने के कारण वे परमात्मा के वास्तविक स्वरूप को नही समझ पाते।

कस्तूरिया मृग

सदा समीप रहै सग सन्मुख, दादू लखै न गूझ[1]।
स्वप्नै ही समझै नहीं, क्यो कर लहै अबूझ ॥ ७४ ॥

७४ मे कहते है—ब्रह्म अति समीप है किन्तु अज्ञानी को नही भासता-जैसे कस्तूरी मृग की नाभि मे होती है किन्तु वह अज्ञानवश नाभि स्थित को न जानकर बाहर घासादि मे खोजता है, वैसे ही ब्रह्म व्यापक तथा सबका आत्मा होने से सदा ही सबके सग, अत्यन्त समीप और सन्मुख रहता है किन्तु अज्ञानी उस गुप्त[1] ब्रह्म को नही देख सकता, जो उसके साक्षात्कार के साधनो को स्वप्न मे भी गुरु द्वारा समझ कर नही करते, वे अज्ञानी उसे कैसे प्राप्त कर सकते है ?

बेखर्च व्यसनी

दादू सेवक नाम बोलाइये, सेवा स्वप्नै नांहिं ।
नाम धराये का भया, जे एक नहीं मन मांहिं ॥ ७५ ॥

७५-८१ मे कहते है—भक्ति आदि साधनो के बिना भक्त कहलाने से लाभ नही—अपना नाम सेवक रख कर दूसरो से बुलाने का प्रयत्न तो करते है किन्तु सेवा स्वप्न मे भी नही करते। जब सेवक का एक भी लक्षण मन मे नही है, तब केवल नाम धराने से क्या लाभ है ?

नाम धरावैं दास का, दासातन तैं दूर ।
दादू कारज क्यों सरै, हरि सौं नहीं हजूर ॥ ७६ ॥

नाम तो दास का-सा रखा लेते है किन्तु सच्चे दास भाव से तो अति दूर रहते है। जब भगवान् की भक्ति द्वारा भगवान् के सन्मुख नही रहते तब भगवत् प्राप्ति रूपी कार्य कैसे सिद्ध होगा ?

भक्त न होवै भक्ति बिन, दासातन बिन दास ।
बिन सेवा सेवक नहीं, दादू झूठी आस ॥ ७७ ॥

भक्ति बिना भक्त, दास भाव बिना दास, सेवा बिना सेवक, कोई भी नही हो सकता। कर्त्तव्य करे बिना कार्य सिद्धि की आशा व्यर्थ है।

राम भक्ति भावै नहीं, अपनी भक्ति का भाव ।
राम भक्ति मुख सौं कहै, खेलै अपना डाव ॥ ७८ ॥

प्रतिष्ठा-प्रिय लोगो को राम-भक्ति प्रिय नही होती। उनके मन मे तो अपनी प्रतिष्ठा कराने का ही भाव रहता है। केवल मुख से राम भक्ति का उपदेश करके प्राणियो को अपने जाल मे फँसाने का अवसर देखते रहते है। फँसने पर अपनी ही सेवा-भक्ति मे लगाते है।

भक्ति निराली रह गई,हम भूल पडे वन मांहिं ।
भक्ति निरंजन राम की, दादू पावै नांहिं ॥ ७९ ॥

भक्ति तो अलग रही, प्रतिष्ठा-प्रिय लोग, प्रतिष्ठार्थ विवाद द्वारा भेद-विपिन मे पडकर ईर्ष्या, द्वेषादि कटको से व्यथित होते है। उन्हे निरजन राम की भक्ति रूप राज-मार्ग नही मिलता।

सो दशा कतहूँ रही, जिहिं दिशि पहुँचै साध ।
मैं तैं मूरख गह रहे, लोभ बडाई वाद ॥ ८० ॥

भक्ति आदि साधनो द्वारा सत-जन जिस उत्तम अवस्था को प्राप्त हुये थे, वह अवस्था तो कही अन्यत्र ही रही, इन प्रतिष्ठा-प्रिय लोगो मे आई नही, ये लोग तो मूर्खता वश, मै सर्व श्रेष्ठ हूँ, तू मेरे समान नही, इत्यादिक अहकार को पकड कर लोभ, बडाई और विवादादि मे पडे हुये है।

दादू राम विसार कर, कीये बहु अपराध ।
लाजों मारे संत सब, नाम हमारा साध ॥ ८१ ॥

प्रतिष्ठा प्रिय लोगो ने हृदय से भगवान् को भूल कर बाहरी भक्ति के ढोग द्वारा बहुत अपराध किये है और अपना नाम सत रखकर सब सतो को भी लज्जित किया है।

करणी बिना कथनी

मनसा के पक्वान्न सौ, क्यों पेट भरावै ।
ज्यों कहिये त्यो कीजिये, तब ही बन आवै ॥ ८२ ॥

८२-८५ मे कहते है—करे बिना कथन मात्र से कार्य सिद्ध नहीं होता-मनोरथ से बनाये हुये पक्वान्न से पेट कैसे भर सकता है ? वैसे ही जैसा कहा जाय, वैसा ही किया जाय, तब ही कार्य बनता है।

दादू मिश्री मिश्री कीजिये,मुख मीठा नांहीं ।
मीठा तब ही होइगा, छिटकावै मांही ॥ ८३ ॥

जैसे मिश्री २ बोलते रहने से मुख मधुर नही होता, किन्तु मिश्री मुख मे डालते ही मुख मधुर हो जाता है, वैसे ही भगवत् प्राप्ति के साधनो की बाते करने से भगवान् प्राप्त नही होते, साधन करने से ही होते है।

दादू बातो ही पहुँचै नहीं, घर दूर पयाना ।
मारग पथी उठ चलै, दादू सोई सयाना ॥ ८४ ॥

कर्म-काड रूप देश से ब्रह्म-साक्षात्कार रूपी अपना घर दूर है। वहा केवल बातो से नहीं पहुँचा जाता, चलना पडता है=अतरग साधन करना पडता है। जो जिज्ञासु-पथिक ससार दशा से उठकर अतरग साधन-मार्ग मे चलता है, वही बुद्धिमान् है।

बातों सब कुछ कीजिये, अत कछू नहि देखै ।
मनसा वाचा कर्मना, तब लागे लेखे ॥ ८५ ॥

बातो से तो ब्रह्म-प्राप्ति तक सभी कुछ करके दिखा देते है किन्तु उन बातो का फल अन्त मे कुछ भी नही देखते। अत प्राणी जब मन, वचन और शरीर से भगवत् प्राप्ति का साधन करता है, तभी जीवन सफल होता है।

समझ सुजानता=सब जीवो मे ज्ञान

दादू कासौ कह समझाइये, सब को चतुर सुजान।
कीड़ी कुजर आदि दे, नाहि न कोई अजान ॥ ८६ ॥

८६ मे कहते है—सब प्राणी अपने को ज्ञानी मानते है-हम कथन द्वारा सत्य तत्व समझाना तो चाहते है किन्तु किसको समझावे ? कारण, माया से मोहित सभी अपने को व्यवहार मे कुशल और ब्रह्म ज्ञानी मानते है, अत सुनते ही नहीं। और तो क्या कहे, हमे तो चींटी से लेकर हस्ति तक कोई भी प्राणी अनजान नही ज्ञात होते, सभी अपने को समझदार मानते है।

करणी बिना कथनी

दादू सूना घट सोधी नहीं, पंडित ब्रह्मा पूत।
आगम निगम सब कथैं, घर में नाचैं भूत ॥ ८७ ॥

८७-९५ मे कहते है—कर्त्तव्य-रहित केवल कथन से परमार्थ लाभ नही होता -केवल शब्दार्थ को जानने वाले पडित जन अपने को ब्रह्मा के पुत्र वसिष्ठ के समान मानते है और वेद-शास्त्रो का कथन भी करते है किन्तु उनका अन्त करण भक्ति, वैराग्य, ज्ञानादि साधन रूपी कर्त्तव्य से शून्य रहता है। ब्रह्म ज्ञानियो मे जो निर्द्वन्द्वता और समता बुद्धि होती है, वह उन मे नही होती। अत उनके अन्त करण-घर मे काम-क्रोधादि-भूत नाचते ही रहते है।

पढे न पावे परमगति, पढे न लंघे पार।
पढे न पहुँचे प्राणियॉ, दादू पीड पुकार ॥ ८८ ॥

कर्त्तव्य किए बिना पढने मात्र से किसी की भी उत्तम गति नही होती। न कोई ससार से पार होता और न कोई स्वस्वरूप स्थिति तक पहुँचता। प्राणी जब विरह-व्यथा युक्त प्रभु को पुकारता है, तभी प्रभु का साक्षात्कार होता है।

दादू निवरे[1] नाम बिन, झूठा कथैं गियान।
बैठे शिर खाली करैं, पंडित वेद पुरान ॥ ८९ ॥

भगवन्नाम चिन्तन से शून्य[1] वर्णाश्रम-धर्मादि का निर्णय करने वाले पडित-जन वेद-पुराणादि के यथार्थ ब्रह्म-ज्ञान को छोडकर वेद के कर्म-काड और पुराणो के आख्यान रूप मिथ्या ज्ञान को ही सुनाते रहते है। इस प्रकार निष्प्रयोजन मस्तिष्क खाली करते है। कारण, कर्त्तव्य किए बिना कथन से लक्ष्य प्राप्ति नही होती।

दादू केते पुस्तक पढ मुये, पंडित वेद पुरान।
केते ब्रह्मा कथ गये, नांहिं न राम समान ॥ ९० ॥

कितने ही पडित वेद-पुराणादि पुस्तके पढते-पंढते मृत्यु के मुख मे चले गये और कितने ही ब्रह्मा आदि ऋषि भी कथन करते-करते चले गये किन्तु सबका सार यही है-"निरजन राम के अभेद-चिन्तन के समान मुक्ति का साधन अन्य कोई भी नही है।" अत कथन मात्र से मुक्ति नही होती।

सब हम देख्या सोध कर, वेद कुरानों मांहिं।
जहां निरंजन पाइये, सो देश दूर इत नांहिं ॥ ९१ ॥

जो वेद कुरानादि मे विचार है, उनको हमने भली प्रकार विचार करके देखा है। उनसे ज्ञात होता है—जिस निर्विकल्प समाधि मे निरजन राम की प्राप्ति होती है, वह समाधि-देश वेदादि के कथन मात्र से ही प्राप्त नही होता। कथन-व्यवहार से वह अति दूर है, साधन करने से ही प्राप्त होता है।

काजी कजा न जानही, कागज हाथ कतेब।
पढता पढता दिन गये, भीतर नाही भेद ॥ ९२ ॥

काजी कुरान की पुस्तक के कागज हाथ मे रखता है किन्तु यह नही जान पाता—मै मरने वाला हूँ। इस प्रकार पढ़ते-पढ़ते आयु के दिन व्यतीत हो जाते है किन्तु अपने अन्तर-रहस्य मय स्वरूप को नही जान पाता।

मसि कागज के आसरे, क्यो छूटै ससार।
राम बिना छूटै नही, दादू भ्रम विकार ॥ ९३ ॥

केवल स्याही और कागज से बनी पुस्तको के पढ़ने-सुनने मात्र से ससार-बन्धन कैसे छूट सकता है ? निरजन राम के भजन बिना अन्य उपाय से भ्रम और कामादिक विकार नष्ट होते ही नही।

कागद काले कर मुये, केते वेद पुरान।
एकै अक्षर पीव का, दादू पढै सुजान ॥ ९४ ॥

कितने ही विद्वान् वेदो पर भाष्य और पुराणो पर टीका तथा अन्यान्य ग्रन्थ रचना द्वारा बहुत-से कागज काले करके मृत्यु को प्राप्त हुये है किन्तु अद्वैत अविनाशी परमात्मा का नाम कोई विरले बुद्धिमान् ही पढ़ते है।

कहतां कहता दिन गये, सुनता सुनतां जाइ।
दादू ऐसा को नही, कह सुन राम समाइ ॥ ९५ ॥

कथन करते-करते वक्ता की आयु के दिन व्यतीत हो गये और सुनते-सुनते श्रोता के भी व्यतीत हो रहे है किन्तु वक्ता-श्रोताओ मे ऐसा कोई नही दिखाई देता, जो कह कर वा सुन कर राम के स्वरूप मे ही समा जाये।

मध्य निष्पक्ष

मौन गहैं ते बावरे, बोलै खरे अयान।
सहजै राते राम सौं, दादू सोई सयान ॥ ९६॥

निर्पक्ष मध्य मार्ग के साधन का परिचय दे रहे है—जो बोलते तो नही किन्तु मन उनका निरतर सासारिक सकल्प विकल्प मे ही रत रहता है, वे पागल है और जो ब्रह्म-ज्ञान की बाते तो बहुत करते है किन्तु धारण लेश मात्र भी नही करते, वे भी सच्चे अज्ञानी है। जो सहज स्वभाव से ही निरजन राम मे रत है, वे ही समझदार है।

करुणा

कहतां सुनतां दिन गये, ह्वै कछू न आवा।
दादू हरि की भक्ति बिन, प्राणी पछतावा ॥ ९७ ॥

कर्त्तव्य शून्य जीवो पर दया दिखा रहे है—कहते-कहते और सुनते-सुनते आयु के दिन समाप्त हो गये किन्तु कहने-सुनने मात्र से कुछ भी लाभ सामने नहीं आया। भगवान् की भक्ति करे विना कहने-सुनने वाले अन्त मे पश्चात्ताप ही करते है।

दुर्जन

दादू कथनी और कुछ, करणी करैं कुछ और ।
तिन तैं मेरा जीव डरै, जिनके ठीक न ठौर ॥ ९८ ॥

९८-९९ मे दुर्जन का परिचय दे रहे है—जो कहते कुछ और है तथा करते कुछ और ही है। जिनके हृदय मे निश्चित विचारो के लिए कोई स्थान नही, उनसे हमारा मन डरता है। कारण, वे दुर्जन है। दुर्जनो से दूर ही रहना चाहिए।

अंतरगत औरै कछू, मुख रसना कुछ और ।
दादू करणी और कुछ, तिनको नाही ठौर ॥ ९९ ॥

जिनके मन मे भावना तो अन्य है और वाणी से कुछ अन्य ही कहते है, करते कुछ और ही है। उनको उत्तम स्थान की प्राप्ति नही होती।

मन प्रबोध

राम मिलन की कहत हैं, करते कुछ औरे ।
ऐसे पीव क्यों पाइये, समझि मन बौरे ॥ १०० ॥

मन को उपदेश कर रहे है—जो बाते तो ब्रह्म-साक्षात्कार की कहते है और काम पामर-प्राणियो जैसे करते है। हे पागल मन! उनका विश्वास मत कर, कुछ समझ कर देख, उक्त व्यवहार से परब्रह्म प्राप्ति कैसे हो सकती है ?

बेखर्च व्यसनी

दादू बगनी भंगा खाइ कर, मतवाले मांझी ।
पैका[1] नाहीं गॉठडी, पातशाही[3] खांजी[2] ॥ १०१॥

१०१-१०२ मे योग्यता न होने पर भी बडी बाते बनाने वालो का परिचय दे रहे है—बगनी (नशीला घास) और भाग आदि नशीली वस्तुये खाकर मतवाले हो जाते है और अपनी मित्र-मडली के मध्य मे बैठकर, पास मे एक पैसा[1] न होने पर भी कहते है-हम बादशाही[3] खजाने के खजान्ची[2] है। वैसे ही हृदय में ज्ञान-लेश भी नहीं होने पर कहते है-हम तो ब्रह्मज्ञानी है।

दादू टोटा दालिदी, लाखों का व्यौपार ।
पैका नाहीं गांठडी, सिरै[1] साहूकार ॥ १०२ ॥

घर मे धन की कमी होने से दरिद्रता छा रही है किन्तु बाते लाखो के व्यापार की करता है। पास मे एक पैसा नही होने पर भी बातो से श्रेष्ठ[1] साहूकार बना रहता है। वैसे ही हृदय मे दैवी सपदा-धन न होने पर भी बातो से सत बना रहता है।

मध्य निष्पक्ष-सब मतों का निशाना एक

दादू ये सब किसके पंथ में, धरती अरु आस्मान ।
पानी पवन दिन रात का, चंद सूर, रहमान ॥ १०३ ॥

१०३-१०६ मे कहते है सब मतो का लक्ष्य एक ब्रह्म ही है। प्रश्न—पृथ्वी,आकाश, जल, वायु, दिन, रात्रि, चन्द्रमा सूर्य ये सब किसके पथ मे है ? उत्तर—ये सब निष्पक्ष दयालु परमात्मा के पथ मे है। इसीलिए सबका हित करते हुए निष्पक्ष रूप मध्य-मार्ग से चलते है।

ब्रह्मा विष्णु महेश का, कौन पथ गुरदेव।
साई सिरजनहार तूं, कहिये अलख अभेव ॥ १०४ ॥

ब्रह्मा, विष्णु और महेश का पथ कौन सा है ? हे स्वामिन् सृष्टि-कर्त्ता गुरुदेव ! आप कहिये ? उत्तर-मन इन्द्रियो के अविषय अद्वैत-ब्रह्म का निष्पक्ष मध्य-मार्ग ही इन का पथ है।

मुहम्मद किसके दीन मे, जिब्राइल किस राह।
इनके मुर्शिद[1] पीर[2] की, कहिये एक अल्लाह ॥ १०५ ॥

मुहम्मद किस के धर्म मे है ? जिब्राईल फरिश्ता किस के पथ मे है ? इन दोनो के उपदेशक[1] महात्मा[2] की कथा कहिये, वे कौन है ? उत्तर—एक परमात्मा ही है।

दादू ये सब किसके ह्वै रहे, यहु मेरे मन माहिं।
अलख इलाही जगत-गुरु, दूजा कोई नाहि ॥ १०६ ॥

पृथ्वी से जिब्राईल तक ये सब किस के बन कर रहे है ? यही मेरे मन मे शका है। उत्तर—ये सब मन इन्द्रियो के अविषय जगद्गुरु परमात्मा के ही होकर रहे है। इनका उपास्य अन्य कोई भी नही है।

पतिव्रत व्यभिचार

दादू औरै ही औला[1] तके, थीया[2] सदै[3] बियनि[4]।
सो तू मीया ना घुरै[5], जो मीया[6] मीयनि ॥ १०७ ॥

अन्य की उपासना त्याग कर ईश्वर की ही करने की प्रेरणा कर रहे है—हे मिया ! तू तो स्वामियो का भी स्वामी[6] परमात्मा है, उसे तो नहीं पुकारता[5], अन्य पैगम्बरादिको का ही आश्रय[1] लेता है। यह उचित नही। जो सदैव[3] स्थिर[2] रहता है, उसी ईश्वर की चर्चा[4] (बयान) कर।

सद् असद् गुरु परीक्षा लक्षण

आई रोजी ज्यो गई, साहिब का दीदार।
गहला लोगो कारणै, देखै नही गँवार ॥ १०८ ॥

सद्गुरु और असद् गुरु की परीक्षा के लक्षण कह रहे है—जिसकी साधना रूप कमाई ज्यो ज्यो हो पाती है, त्यो-त्यो ही ईश्वर साक्षात्कारार्थ खर्च होती है, प्रतिष्ठादि के लिए नही, वही सद्गुरु है। और जो अज्ञानी अपनी साधना रूप कमाई से ईश्वर साक्षात्कार तो नही करता, किन्तु लोगो को चमत्कारादि दिखाने मे ही खो देता है, वह असद् गुरु है।

पतिव्रत निष्काम

दादू सोई सेवक राम का, जिसे न दूजी चिंत ।
दूजा को भावै नहीं, एक पियारा मिंत ॥ १०९ ॥

निष्काम पतिव्रत का परिचय दे रहे है—जिसे एक अपना सच्चा मित्र राम ही प्यारा लगता है, अन्य कोई भी प्रिय नही होता। जिसके मन मे राम को छोडकर अन्य का चिन्तन होता ही नही, वही राम का सच्चा सेवक है।

जाति पांति भ्रम विध्वंसन

अपनी अपनी जाति सौं, सबको बैसैं पांति।
दादू सेवक राम का, ताके नही भरांति ॥ ११० ॥

११०-११७ मे जाति पाँति का भ्रम दूर कर रहे है—ससारी जन अपनी-अपनी जाति से प्रेम करते है और एक जाति वाले सब एक पक्ति मे बैठते है किन्तु जो निरजन राम का सच्चा सेवक होता है, उसके हृदय मे उक्त भ्राति नही रहती, वह सबसे प्रेम करता है।

चोर अन्याई मसखरा, सब मिल बैसैं पांति।
दादू सेवक राम का, तिनसौं करै भरांति ॥ १११ ॥

ससारी जन चोर, अन्यायी, मसखरे आदि को तो साथ लेकर अपनी पक्ति मे बैठाते है और जो राम-भक्त होता है, उससे भ्राति करते है, उसे दूर बैठाते है, उसका अनादर करते है।

दादू सूप[1] बजायाँ क्यो टलै, घर में बडी बलाइ।
काल झाल इस जीव का, बातन हीं क्यों जाइ ॥ ११२ ॥

जैसे घर मे घुसी हुई बडी विपत्ति छाज[1] बजाने से नही निकलती, वैसे ही कालाग्नि की काम-क्रोधादिक-ज्वालाये केवल जाति-पक्षपातादि की बातो से ही कैसे नष्ट हो सकती है ? वे तो जीव को जलाती ही रहती है।

सांप गया सहनाण[1] को, सब मिल मारैं लोक ।
दादू ऐसा देखिये, कुल का डगरा फोक[2] ॥ ११३ ॥

जैसे अधेरी रात्रि के समय रेतीली भूमि से सर्प तो चला गया हो फिर सब लोग मिल कर उसकी लकीर[1] पर दडे मारने लगे, तो व्यर्थ है, वैसे ही मन तो सब जातियो मे घुस जाता है, केवल शरीर को ही स्पर्शादि से स्नानादि-दड देते है—इस प्रकार जाति-कुलादि के पक्षपात का मार्ग व्यर्थ[2] ही देखा जाता है।

दादू दोन्यों भरम हैं, हिन्दू तुरक गॅवार ।
जे दुहुवाँ तैं रहित है, सो गह तत्त्व विचार ॥ ११४ ॥

हे अज्ञानी ! हिन्दू-पना और तुरक-पना दोनो बुद्धि की कल्पना होने से भ्रम रूप हैं, जो दोनो से रहित आत्म-तत्त्व है, वही विचार द्वारा ग्रहण कर।

अपना अपना कर लिया, भजन माहीं बाहि।
दादू एकै कूप जल, मन का भरम उठाहि ॥ ११५ ॥

जैसे एक ही कूप जल को अपने-अपने बर्तनो मे भरकर अपना-अपना कहने लगते है, वैसे ही एक आत्मा मे शरीर भेदो से जाति की कल्पना कर लेते है। यह मन का भ्रम है, इसे त्याग देना चाहिए।

दादू पानी के बहु नाम धर, नाना विधि की जात।
बोलणहारा कौन है, कहो धौ कहाँ समात ॥ ११६ ॥

जैसे एक ही कूप जल के ब्राह्मण-जल आदि बहुत नाम रख लेते है, वैसे ही एक आत्मा मे नाना प्रकार की जाति की कल्पना कर लेते है। किन्तु हे भ्रान्त लोगो! कहो तो सही, इन सब शरीरो मे बोलने वाला चेतन आत्मा कौन जाति का है और अन्त मे कहाँ समाता है ? अर्थात् आत्मा की कोई जाति नही, वह सब शरीरो मे एक है और अज्ञान बन्धन कटने पर जाति रहित ब्रह्म मे ही समाता है।

जब पूरण ब्रह्म विचारिये, तब सकल आत्मा एक।
काया के गुण देखिये, तो नाना वरण अनेक ॥ ११७ ॥

जब व्यापक ब्रह्म का विचार करते है, तब तो सभी आत्मा ब्रह्म रूप होने से एक है और जब शरीरो के गुण-धर्म देखते है तो कोई तम, कोई रज, और कोई सतोगुण सस्था के गुणो वाले होने से नाना गुण तथा श्याम, गौर, गेहुँआ आदि नाना वर्ण वाले दिखाई देते है किन्तु गुण और वर्ण परिवर्तनशील होने से विनाशी है और ब्रह्मात्म दृष्टि सत्य है।

अमिट पाप-प्रचंड

भाव भक्ति उपजै नहीं, साहिब का प्रसग।
विषय विकार छूटै नहीं, सो कैसा सतसग ॥ ११८ ॥

११८-११९ मे कहते है—प्रचड पाप अमिट हो जाता है-सत्सग मे बैठने पर भी जिसके मन से न विषय-विकार हटते, न सतो मे भाव होता, न हृदय मे भगवद्-भक्ति उत्पन्न होती और न भगवान् से सम्बन्ध होता, वह कैसा सत्सग है ? अर्थात् प्रचड पापियो को सत्सग से भी लाभ नहीं होता।

बासन[1] विषय विकार के, तिनको आदर मान।
संगी सिरजनहार के, तिनसौ गर्व गुमान ॥ ११९ ॥

जो विषय विकारो से भरे पात्र[1] रूप मनुष्यो का तो आदर-सम्मान करते है और भगवद् भक्तो के आगे अपने धनादि का घमड तथा शरीर-वल और सौन्दर्य का गर्व करते है। उनमे घमण्ड और प्रचड पाप भरे है, जो नष्ट नहीं होते।

अज्ञ स्वभाव अपलट

अंधे को दीपक दिया, तो भी तिमिर न जाइ ।
सोधी नहीं शरीर की, तासनि का समझाइ ॥ १२० ॥

१२० मे कहते है—अज्ञानी का स्वभाव नही बदलता-जैसे अधे के हाथ मे दीपक दे दिया जाय तो भी उसका अधेरा दूर नही होता। वैसे ही जिसको शरीर का भी ज्ञान नही होता कि-"यह विनाशी है", उसे आत्म-ज्ञान कैसे समझाया जाय अर्थात् उसे उपदेश देने पर भी ज्ञान नही होता।

सगुण निगुण कृतघ्नी

दादू कहिये कुछ उपकार को, मानैं अवगुण दोष[1] ।
अंधे कूप बताइया, सत्य न मानैं लोक ॥ १२१ ॥

उपकारक का उपकार न मानने वाले कृतघ्नी का परिचय दे रहे है—ज्ञान-नेत्र हीन अधो को सतो ने यह बता दिया है—"ससार-वासना कूप है, इसमे गिरोगे तो बारबार जन्म-मरण रूप डुबकियाँ लगाते हुये क्लेश ही पाओगे।" किन्तु लोग सत्य नही मानते। कृतघ्नी लोगो का स्वभाव ही ऐसा होता है उनको कुछ उपकार की बात कहै तो उसको भी वे दोष दृष्टि द्वारा अवगुण रूप ही मानते है। (प्राचीन हिन्दी लिपि मे 'ष'[1] को 'ख' लिखा व बोला जाता था।)

कृत्रिम कर्ता

दादू जिन कंकर पत्थर सेविया, सो अपना मूल गॅवाइ ।
अलख देव अंतर बसै, क्या दूजी जगह जाइ ॥ १२२ ॥

१२२-१२४ मे मायिक पदार्थों को ईश्वर मान कर उपासना करने से ब्रह्म प्राप्ति नही होती, जिन्होंने ककर पत्थरो की ही उपासना की है, उन्होंने लाभ की आशा से अपना मूलधन मनुष्य-जीवन भी खो दिया है। हे प्राणी ! मन इन्द्रियो के अविषय परमात्मा देव तो तेरे हृदय मे ही बसते है, फिर अन्य स्थानो मे भटकने से क्या लाभ है ?

पत्थर पीवै धोइ कर, पत्थर पूजे प्राण ।
अन्तकाल पत्थर भये, बहु बूडे इहि ज्ञान ॥ १२३ ॥

जो प्राणी पत्थर को धोकर पान करते है और पत्थर को ही पूजते है, वे इस शास्त्रीय सिद्धान्त के अनुसार—"ध्याता ध्येय के रूप को ही प्राप्त होता है" अन्त मे पत्थर-भाव को ही प्राप्त होते है। पत्थर को ही परब्रह्म मानने के ज्ञान से बहुत-से अज्ञानी ससार-सिन्धु मे डूबे है।

कंकर बंध्या गांठडी, हीरे के बेसास[1] ।
अंतकाल हरि जौहरी, दादू सूत कपास ॥ १२४ ॥

यदि कोई हीरा के भरोसे[1] ककर को, अपनी गठरी मे बॉध तो ले किन्तु जौहरी के पास वह हीरा सिद्ध न होगा। वैसे ही कोई पत्थर को परमात्मा मान ले, किन्तु अन्त मे परमात्मा के स्वरूप

को पहचानने वाले सतो के पास वह परमात्मा सिद्ध न होगा। कपास का काता हुआ सूत कपास ही रहेगा। वैसे ही पत्थर का माना हुआ परमात्मा पत्थर ही रहेगा।

संस्कार आगम

पहली पूजे ढूढसी, अब भी ढूढस बाणि।
आगे ढूढस होइगा, दादू सत्य कर जाणि॥ १२५॥

१२५ मे कहते है—पूर्व जन्म के सस्कारो के समान ही अगले जन्मो मे सस्कार होते है—पूर्व जन्म मे भी, जिनसे घर बनते है, उन मिट्टी-पत्थरो के बने हुये देवी-देवताओ की ही पूजा की। उन्ही सस्कारो के बल से वर्तमान मे भी उन्ही की पूजा करता है और आगे भी उन्ही को पूजने वाला होगा। यह बात सत्य ही जानो।

अमिट पाप प्रचड

दादू पैंडे पाप के, कदे न दीजै पाँव।
जिहि पैडे मेरा पिव मिलै, तिहि पैंडे का चाव॥ १२६॥

१२६-१२७ मे कहते है—प्रचड पाप अमिट होता है, उसमे कभी भी प्रवृत्त नही होना चाहिये—पाप के मार्ग मे कभी भी पैर न रखो। जिस भक्ति-ज्ञानादि साधन-मार्ग मे हमारे प्यारे प्रभु प्राप्त होते है, उसी मार्ग मे चलने की उत्कठा रखनी चाहिए।

दादू सुकृत मारग चालता, बुरा न कबहूँ होइ।
अमृत खाता प्राणिया, मुवा न सुनिये कोइ॥ १२७॥

सुकृत मार्ग पर चलते हुये लोक-लज्जादि का भय मत करो। जैसे अमृत खाने से कोई भी प्राणी मरा नही सुना जाता, वैसे ही सुकृत कार्य करने से बुरा कभी भी नही होता। पाप कर्म से ही बुरा होता है, सो वह नही करना चाहिये।

भ्रम विध्वसन

कुछ नाहीं का नाम क्या, जे धरिये सो झूठ।
सुर नर मुनि जन बधिया, लोका आवट[2] कूट[1]॥ १२८॥

१२८-१३१ मे लोगो का भ्रम दूर कर रहे है—जिस परब्रह्म मे नाम, रूप, गुण, क्रियादि कुछ भी नही है, उसका जो भी नाम धरेगे अथवा माया कृत मिथ्या आकारो को उसका स्वरूप मान कर उसमे गुण क्रियादि का आरोप करेगे, वह सब मिथ्या ही होगा किन्तु फिर भी सुर, नर, मुनिजनादि अपने स्वरूप परब्रह्म को भूल कर, माया कृत मिथ्या[1] नाम रूपादि के आग्रह मे बद्ध होकर ऊचे-नीचे लोक रूप मिथ्या प्रपच मे घटी-यत्र के समान चक्कर[2] लगा रहे है।

कुछ नाहीं का नाम धर, भरम्या सब ससार।
साच झूठ समझै नहीं, ना कुछ किया विचार॥ १२९॥

जिस परब्रह्म मे नाम, रूप, गुण, क्रियादि कुछ भी नही बनते, मायिक पदार्थों से उसके

मिथ्या आकार बना कर, उनमे नाम, रूप, गुण, क्रियादि का आरोप करके, सब ससार के प्राणी भ्रम मे पड रहे है। सत्य और मिथ्या को समझते नही, कारण, समझने के लिये सत्पुरुषो के पास बैठ कर कुछ विचार किया ही नही, फिर कैसे समझै ?

दादू केई दौडे द्वारिका, केई काशी जांहिं।
केई मथुरा को चले, साहिब घट ही मांहिं ॥ १३० ॥

परब्रह्म तो आत्म रूप से हृदय मे ही स्थित है किन्तु बहिर्मुख प्राणी उसके दर्शनार्थ कितने ही द्वारिका, कितने ही काशी और कितने ही मथुरा को जाते है।

ऊपरि आलम[1] सब करैं, साधू जन घट मांहिं ।
दादू एता अंतरा, तातैं बनती नांहिं ॥ १३१ ॥

ऊपर से माला-तिलकादिक चिह्न और बाह्य-पूजा दिखावे के लिये तो ससार[1] के सभी जन करते है किन्तु सतजन तो अपने हृदय मे ही भगवद् आराधना करते है। ससारी-जन और सतजन की साधना मे, इतना ही भेद रहता है। इसीलिये दोनो की साधना मे एकता नही बनती।

दादू सब थे एक के, सो एक न जाना।
जने जने का ह्वै गया, यहु जगत दिवाना ॥ १३२ ॥

ससार के सभी प्राणी परमात्मा के अश होने से उसी के थे, किन्तु उस अपने अद्वैत स्वरूप को न जानकर, अनेक देवी-देवतादि के पूजक बन गये है। इससे ज्ञात होता है-यह जगत् पागल है।

सॉच

झूठा साचा कर लिया, विष अमृत जाना।
दुख को सुख सब को कहै, ऐसा जगत दिवाना ॥ १३३ ॥

१३३-१४७ मे सत्य का विशेष विचार कर रहे है—जगत् के प्राणी सत्य को न पहचान कर, ऐसे पागल हो रहे है-देहादिक मिथ्या ससार को सत्य मान लिया है, विषय-विष को अमृत मान बैठे है और दु खप्रद बिन्दु-पतनादि क्रियाओ को भी सभी सुख रूप बताते है।

सूधा मारग साच का, साचा हो सो जाइ।
झूठा कोई ना चलै, दादू दिया दिखाइ ॥ १३४ ॥

सतो ने सभी को सत्य का सरल मार्ग दिखा दिया है किन्तु उसमे जो सच्चा होता है वही गमन करता है। झूठा कोई भी नही चल पाता।

साहिब सौं साचा नहीं, यहु मन झूठा होइ।
दादू झूठे बहुत हैं, साचा विरला कोइ ॥ १३५ ॥

प्राणियो का यह मन झूठे विषयो मे लग कर झूठा हो रहा है। सत्य परब्रह्म परायण होकर सच्चा नही रहता। उक्त प्रकार से झूठे मन वाले, झूठे प्राणी ससार मे बहुत है। सत्य ब्रह्म-परायण मनवाला सच्चा साधक कोई विरला ही है।

दादू साचा अग न ठेलिये, साहिब माने नाहि।
साचा शिर पर राखिये, मिल रहिये ता मांहिं ॥ १३६ ॥

सत्य-स्वरूप को अन्त करण से दूर न करो, सत्य के त्याग को भगवान् अच्छा नही मानते। सत, शास्त्र, सद्गुरु का सत्य ब्रह्म सम्बन्धी उपदेश शिरोधार्य समझ कर धारण करो और आत्म रूप से उस परब्रह्म मे ही मिल कर रहो=आत्मा को ब्रह्म भिन्न मत समझो।

जे कोइ ठेले साच को, तो साचा रहै समाइ।
कौडी बर क्यो दीजिये, रत्न अमोलक जाइ ॥ १३७ ॥

यदि कोई ससारी जन परब्रह्म की प्राप्ति विषयक सत्य उपदेश को धारण न करे तो सत्योपदेश देने वाला सच्चा महानुभाव उन्हे उपदेश क्यो दे ? उसे तो चाहिये-सत्य परब्रह्म मे ही अपने वृत्ति लीन करके समाहित रहे। धारण न करने वालो को उपदेश देने से, उनसे केवल भोग ही प्राप्त होते है। अत भोग रूप कौडी के बदले अपने अमूल्य श्वास-रत्न व्यर्थ ही जाते है।

साचे साहिब को मिलै, साचे मारग जाइ।
साचे सौं साचा भया, तब साचे लिये बुलाइ ॥ १३८ ॥

सच्चे साधक भक्ति-ज्ञान-वैराग्यादि सच्चे साधन करते है। सच्चे साधन से जिनका मन जब सच्चा निर्द्वन्द्व हुआ, तब ही सत्य ब्रह्म ने उनके आत्मा को ससार से आह्वान किया और वे सत्य परब्रह्म को प्राप्त हो गये।

दादू साचा साहिब सेविये, साची सेवा होइ।
साचा दर्शन पाइये, साचा सेवक सोइ ॥ १३९ ॥

सत्य परब्रह्म की ही भक्ति करो, जब निष्काम भाव से अहग्रह उपासना रूप सच्ची भक्ति होती है, तब ही सत्य परब्रह्म का साक्षात्कार होता है और जो परब्रह्म का साक्षात्कार कर पाता है, वही सच्चा भक्त कहलाता है।

साचे का साहिब धणी, समर्थ सिरजनहार।
पाखंड की यहु पृथ्वी, प्रपंच का ससार ॥ १४० ॥

सच्चे भक्त को साथ देने वाला तो एक ससार का स्रष्टा समर्थ स्वामी परमात्मा ही है। कारण, यह पृथ्वी तथा सब ससार ही पाखड प्रपच से पूर्ण है। अत ससारी लोग पाखडी-प्रपची का ही साथ देते है।

झूठा परगट, साचा छानै, तिनकी दादू राम न मानै ॥ १४१ ॥

झूठे भक्त तो पाखड प्रपच-द्वारा लोगो मे प्रतिष्ठित होकर अति प्रकट रहते है और पाखड प्रपच से रहित सच्चे भक्त वर्तमान मे छिपे ही रहते है किन्तु अति प्रकट होने पर भी पाखडियो की भक्ति भगवान् नही मानते और छिपे रहने पर भी सच्चे भक्त की भक्ति का सम्मान करते है।

दादू पाखंड पीव न पाइये, जे अन्तर साच न होइ ।
ऊपरि तैं क्यों ही रहो, भीतर के मल धोइ ॥ १४२ ॥

यदि हृदय में सच्ची भक्ति नही हो तो पाखड करके बाहर लोगो को दिखाने वाली भक्ति से भगवान् प्राप्त नही होते, बाहर के भक्ति -चिन्हादि हो या न हो, कैसे भी रह सकते है किन्तु हृदय के मलादि दोष तो अवश्य नष्ट होने ही चाहिये। सच्ची भक्ति द्वारा निष्पाप होने से ही भगवान् अपनाते है।

साच अमर जुग जुग रहै, दादू विरला कोइ।
झूठ बहुत संसार में, उत्पति परलै होइ ॥ १४३ ॥

कोई विरला साधक सच्ची साधना द्वारा सत्य परब्रह्म को प्राप्त हो, सदा के लिये अमर होकर परब्रह्म रूप से रहता है। झूठे भक्त ससार मे बहुत है किन्तु वे ससार मे जन्मते-मरते रहते है । परब्रह्म को प्राप्त नही होते।

दादू झूठा बदलिये, साच न बदल्या जाइ।
सॉचा शिर पर राखिये, साध कहै समझाइ ॥ १४४ ॥

मिथ्या मायिक प्रपच परिवर्तनशील है। सत्य परब्रह्म एक रस रहता है। अत पाखड रहित सच्ची साधना द्वारा परब्रह्म की ही उपासना करो, यही बात सत जन ठीक समझा २ कर कहते है।

साच न सूझै जब लगैं, तब लग लोचन अंध।
दादू मुक्ता छाड कर, गल में घाल्या फंध ॥ १४५ ॥

जब तक सत्य परब्रह्म नही दीखता तब तक ज्ञान-नेत्र अज्ञान के द्वारा आवृत्त होने से जीव अधा ही है। अधा होने के कारण ही जीवन्मुक्त सतो का सग छोड कर गले मे सकाम कर्म रूप फदा डाल रखा है।

साच न सूझै जब लगैं, तब लग लोचन नांहिं।
दादू निर्बध छाडकर, बंध्या द्वै पख मांहिं ॥ १४६ ॥

जब तक सत्य परब्रह्म का ज्ञान नही होता तब तक ज्ञान-नेत्र खुले नहीं माने जाते। ज्ञान-नेत्र न होने के कारण ही नाम-रूपादि बन्धन से रहित परब्रह्म को त्याग, द्वैतवाद की पक्षपातो मे पकड़कर प्राणी जन्मादि क्लेश भोगता है।

एक साच सौ गहगही[1], जीवन मरण निबाहि।
दादू दुखिया राम बिन, भावै तीधर[2] जाहि ॥ १४७ ॥

सत्य परब्रह्म के चिन्तन से प्रफुल्लित[1] होकर जीवन से मरण पर्यन्त परब्रह्म की भक्ति को ही निभावे। कारण, निरजन राम की भक्ति बिना प्राणी चाहे कहीं[2] भी जाय, दु खी ही रहता है।

चेतावनी

दादू छानै छाने कीजिये, चौड़ै परकट होइ।
दादू पैस[1] पयाल[2] मे, बुरा करै जनि कोइ ॥ १४८ ॥

१४८-१४९ मे सत्य चेतावनी दे रहे है—जो ससारी जीवो से छिप २ कर भी चोरी व्यभिचारादि पाप किये जाते है, वे भी प्रकट हो ही जाते है। अत कोई पाताल[2] मे प्रवेश[1] करके भी बुरा काम न करे।

अनकीया लागै नही, कीया लागै आइ।
साहिब के दर न्याय है, जे कुछ राम रजाइ ॥ १४९ ॥

विना पाप-कर्म करे पाप नही लगता, करने पर ही लगता है। परमात्मा के दरवार मे न्याय होता है। राम जो कुछ भी हमारे लिये सुख दु ख की आज्ञा देते है, वह हमारे कर्मानुसार ही देते है।

आत्मार्थी भेष

सोइ जन साधू सिद्ध सो, सोइ सतवादी शूर।
सोइ मुनिवर दादू बडे, सन्मुख रहनि हजूर ॥ १५० ॥

१५०-१५४ मे कहते है—जो भगवान् मे रत है, उन्हीं के भक्त-सतादि भेष उत्तम है—वही भक्त, सत, सिद्ध, सत्यवादी, वीर, मुनिवर और महान् है, जिसकी वृत्ति सदा नाम-चिन्तनादि द्वारा परमात्मा के सन्मुख स्थित रहती है।

सोइ जन साचे सो सती, साधक सोइ सुजान।
सोइ ज्ञानी, सोइ पडिता, जे राते भगवान ॥ १५१ ॥

वही सच्चा मानव, सत्य का धारण करने वाला सती, साधक, चतुर, ज्ञानी और पडित है जो भगवान् के वास्तव स्वरूप मे रत है।

सोइ जोगी[1], सोइ जगमा, सोइ सूफी, सोइ शेख।
सोइ सन्यासी, सेवडा, दादू एक अलेख ॥ १५२ ॥

वही नाथ[1], वही टाली बजाते हुये भिक्षा माँगने वाला जगम, वही मुसलमानो की सप्रदाय का सूफी, साधू, वही मुसलमानो की चार जातियो (शेख, सैयद, मुगल, पठान) मे शेख, वही सन्यासी और वही जैन मत के साधुओ के एक भेद का साधू सेवडा श्रेष्ठ है, जो मन इन्द्रियो के अविषय एक परब्रह्म के चिन्तन मे ही लगा है। इन सबकी विशेषता भगवत्-परायणता से ही है।

सोइ काजी, सोई मुल्ला, सोइ मोमिन मुसलमान।
सोइ सयाने, सब भले, जे राते रहमान ॥ १५३ ॥

वही मुसलमानी कानून के अनुसार फैसला करने वाला काजी, वही नमाज पढ़ाने वाला विद्वान् मुल्ला, वही धर्मनिष्ठ मोमिन, और वे ही चतुर मुसलमान, सब अच्छे है जो दयालु परमात्मा के भजन मे रत है।

राम नाम को बणिजन बैठे, तातैं मांड्या हाट।
सांई सौं सौदा करैं, दादू खोल कपाट ॥ १५४ ॥

राम-नाम का व्यापार करने के लिये ही सतो ने उक्त जोगी-जगमादि षट् दर्शन रूप हाट लगाई है, गृह-कार्यो से मुक्त होकर निश्चिन्त बैठे हुये अपने हृदय के मल-विक्षेप-कपाट हटा कर के, परमात्मा को अपना सर्वस्व देकर, स्वरूप स्थिति लेना रूप व्यापार करते है। तथा सत्सग के द्वारा मानवो की वस्तुये भगवत् के समर्पण करा कर उन्हे भक्ति दिलाते है।

सज्जन दुर्जन

बिच के शिर खाली करैं, पूरे सुख संतोष।
दादू सुध[1] बुध[2] आतमा, ताहि न दीजै दोष ॥ १५५ ॥

१५५-१५७ मे सज्जन, दुर्जन-सपर्क से लाभ हानि दिखा रहे है—जिनको न पूर्ण शास्त्र-ज्ञान ही है और न आत्मनिष्ठा ही प्राप्त है, ऐसे बीच के लोग विवाद द्वारा व्यर्थ ही मस्तिष्क खाली करते है। जो अपनी साधना मे पूर्ण है, उन सज्जनो के सपर्क से तो विचार द्वारा सतोष और आनन्द ही प्राप्त होता है। जो शुद्ध[1] बुद्धि[2] सरल-स्वभाव के जीवात्मा है उन्हे तो कोई दोष नही देना चाहिये। वे तो सतो के बताये हुये साधन मार्ग से चलकर भगवत् तत्व को प्राप्त कर लेते है।

सुध बुध सौं सुख पाइये, कै साधु विवेकी होइ।
दादू ये बिच के बुरे, दाधे[1] रीगे[2] सोइ ॥ १५६ ॥

शुद्ध बुद्धि सरल स्वभाव के साधक कथनानुसार साधन कर लेते है, उनकी साधन-सिद्धि को देख कर आनन्द ही होता है वा विवेकी सतो के सग से आनन्द होता है किन्तु विवाद मे तत्पर बीच के लोग अच्छे नही होते, वे तो त्रिताप मे जलते[1] हुये ससार मे ही घूमते[2] रहते है।

जनि कोई हरिनाम में, हमको हाना बाहि।
तातैं तुम तैं डरत हूं, क्यों ही टलै बलाइ ॥ १५७ ॥

वितडा वाद करने वालो को कहते है—किसी भी प्रकार से हमारे हरिनाम-चिन्तन मे विघ्न नही हो, इसीलिये हम तुमसे डरते है। क्योकि हरिनाम चिन्तन मे विघ्न को ही हम बडी विपत्ति मानते है। अत यह विपत्ति किसी भी प्रकार हम से दूर रहे, ऐसा ही हम चाहते है और वैसा ही व्यवहार करते रहते है।

परमार्थी

जे हम छाडैं राम को, तो कौन गहेगा।
दादू हम नहिं उच्चरैं, तो कौन कहेगा ॥ १५८ ॥

१५८ मे कह रहे है—परमार्थी पुरुष यथार्थ ही कहते है-यदि हम अकबर की सभा मे राम-नाम को बोलना छोड दे तो उसको कौन ग्रहण करेगा ? यदि हम उसको सच्ची बाते न कहेगे तो कौन कहेगा ?

प्रसग कथा-अकबर बादशाह के आह्वान पर आमेर से सीकरी जाते समय मार्ग मे शिष्यो ने प्रार्थना की थी-अकबर मुसलमान है, उसके आगे राम-नाम वा उसे अच्छी न लगे, ऐसी सच्ची बाते न कहियेगा। उन्ही को १५८ से उत्तर दिया था।

साधक को उपदेश

एक राम छाडै नहीं, छाडै सकल विकार।
दूजा सहजै होइ सब, दादू का मत सार ॥ १५९ ॥

१५९-१६० मे राम दर्शनार्थी साधक को उपदेश कर रहे है—साधक को चाहिये-एक राम का चिन्तन न छोडे और सपूर्ण विकार छोड दे। राम-चिन्तन के समय अन्य जो दैवी सपदा के गुण-सपादन और योग-क्षेमादि रूप सब कार्य तो अपने आप सहज स्वभाव से ही होते रहते है। हमारा यही सार मत है।

जे तूं चाहै राम को, तो एक मना आराध।
दादू दूजा दूर कर, मन इन्द्री कर साध ॥ १६० ॥

यदि तू राम का साक्षात्कार करना चाहता है तो पहले देवी-देवतादि अन्य की उपासना रूप कार्य त्याग दे और मन इन्द्रियो को भोग वासना से रहित करके उत्तम बना, फिर एकाग्र मन से राम की आराधना कर।

विरक्तता

कबीर विचारा कह गया, बहुत भाति समझाइ।
दादू दुनिया बावरी, ताके सग न जाइ ॥ १६१ ॥

ससारी प्राणियो के प्रभु प्राप्ति के साधनो से वैराग्य का परिचय दे रहे—विचारशील कबीरजी आदि सत बहुत प्रकार समझा २ कर कह गये है-विषयासक्ति, जन्मादि क्लेश प्रदायिनी है किन्तु ससारी जन तो माया मद से उन्मत्त हो रहे है। अत कबीरादि के विचारो के साथ चलते ही नही।

सूक्ष्म मार्ग

पावैगे उस ठौर को, लंघैंगे यहु घाट।
दादू क्या कह बोलिये, अजहूँ बिच ही बाट ॥ १६२ ॥

सूक्ष्म अध्यात्म मार्ग की प्रगति का विचार कर रहे है—जब ससार वन के द्वैत अहकार-पर्वत की भोग-वासना-घाटी को लाघ जायेगे तभी उस परम धाम को प्राप्त कर सकेगे। किन्तु अभी तो उस घाटी को नही लाघ सके, बीच के मार्ग मे ही है। अत भगवान् को अपना क्या साधना-बल बता रहे है कि—हमे परमधाम मे क्यो नहीं बुलाते ?

साँच

साचा राता साच सौ, झूठा राता झूठ।
दादू न्याय नबेरिये, सब साधो को पूछ ॥ १६३ ॥

सत्य प्राप्ति के साधन-निर्णय की प्रेरणा कर रहे है—सच्चा सत सत्य परब्रह्म मे ही रत रहता है। झूठा व्यक्ति मिथ्या सासारिक भोगो मे रत रहता है। अत: सभी सच्चे सतो से परामर्श करके सत्य परब्रह्म की प्राप्ति के साधन का उचित निर्णय करो।

जे पहुँचे ते कह गये, तिन की एकै बात।
सबै सयानै एक मत, उनकी एकै जात ॥ १६४ ॥

१६४-१६८ मे सज्जन-दुर्जन विचार और गति भेद बता रहे है—जो ज्ञानी महानुभाव स्वस्वरूप-स्थिति तक पहुँचे है, वे सभी स्वस्वरूप स्थिति की साधना पद्धति कह गये है। उन सबकी बातो मे भेद नही ज्ञात होता। अत ये सब एक मत है और एक ब्रह्म ही उनकी जाति है।

जे पहुँचे ते पूछिये, तिनकी एकै बात।
सब साधों का एक मत, ये बिच के बारह बाट॥ १६५ ॥

जो स्वस्वरूप स्थिति तक पहुँचे है, उनसे परामर्श करो तो उनकी बाते एक सिद्धान्त पर आ मिलती है। अत सभी श्रेष्ठ सतो का एक मत ज्ञात होता है किन्तु ये बीच के लोग बुद्धि द्वारा कल्पना किये हुये नाना मार्गों मे तितर-बितर होकर नष्ट-भ्रष्ट हो रहे है।

सबै सयाने कह गये, पहुँचे का घर एक।
दादू मारग माँहिले, तिनकी बात अनेक ॥ १६६ ॥

सभी ज्ञानीजन कहे गये है—स्वस्वरूप स्थिति तक पहुँचे हुये सत का घर एक ब्रह्म ही होता है=वह ब्रह्म मे ही लय होता है और जो साधन-मार्ग मे है उनके हृदय के विचार वासना के अनुसार अनेक होते है, अत वासनानुसार ही उनका जन्म होता है।

सूरज साक्षीभूत है, साच करे परकाश।
चोर डरै चोरी करै, रैनि तिमिर का नाश॥ १६७ ॥

जैसे सूर्य सबको प्रकाश प्रदान करते है, वैसे ही ब्रह्मज्ञानी सज्जन ससार मे साक्षी रूप रह कर सत्य ब्रह्म का उपदेश करते है। जैसे रात्रि का अँधकार नाश होने पर चोर चोरी करने मे डरता है, वैसे ही स्वार्थी दुर्जन सत्य उपदेश करने से डरते है। वे सोचते है, सत्य उपदेश होने पर प्राणी हमारे फँदे से मुक्त हो जायेगा।

चोर न भावै चाँदणा, जनि उजियारा होइ।
सूते का सब धन हरूँ, मुझे न देखै कोइ॥ १६८ ॥

चोर को प्रकाश अच्छा नही लगता, वह यही चाहता है—प्रकाश न हो। अँधेरी रात्रि मे मुझे कोई देख न सकेगा और मै सूते प्राणी का सब धन अपहरण कर लूगा। वैसे ही स्वार्थी दुर्जन चाहता है—किसी को भी यथार्थ ज्ञान न हो। अज्ञान मे रहेगे तो लोग मेरी चालाकी जान न सकेगे और मै इनसे मेरा स्वार्थ सिद्ध करता रहूगा।

संस्कार आगम

घट घट दादू कह समझावै, जैसा करे सो तैसा पावै।
को काहू का सीरी नाहीं, साहिब देखै सब घट माहीं ॥ १६९ ॥

इति साच का अग समाप्त ॥ १३ ॥ सा १४८५ ।

१६९ मे कहते है—सस्कार के समान आगे कर्म होता है और कर्म के समान फल मिलता है-महानुभाव सत सदा समझा २ कर कहते है-जो जैसा करता है वैसा ही फल पाता है। कर्म-फल भोग मे कोई भी किसी का साझेदार नही होता। परमात्मा सबके अन्त करण मे रह कर सबकी भावना और कर्म देखते रहते है और उनके अनुसार फल की व्यवस्था करते है।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका साच का अग समाप्त ॥ १३ ॥

अथ भेष का अंग १४

साच-अग के अनन्तर इन्द्रियार्थी और आत्मार्थी भेष का विचार करने के लिये "भेष का अग" कथन करने मे प्रवृत्त प्रथम मगल कर रहे है—

दादू नमो नमो निरजन, नमस्कार गुरुदेवत. ।
वन्दन सर्व साधवा, प्रणाम पारंगत ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक, भेष की पक्षपात से पार होकर, निरजन राम को प्राप्त होता है, उन निरजन राम, सद्गुरु, और सर्व सतो को हम अनेक प्रणाम करते है।

पतिव्रत निष्काम

दादू बूडे ज्ञान सब, चतुराई जल जाइ।
अजन मंजन फूँक दे, रहै राम ल्यौ लाइ ॥ २ ॥

२-३ मे अनन्यता की प्रेरणा कर रहे है—साधक ! सपूर्ण सासारिक ज्ञान चाहे समुद्र मे डूब जायँ, सब चतुराई जल जाय, तुझे इनसे क्या लाभ है ? तू तो सौदर्य के साधन-नेत्राजन, दात-मजन, उबटनादि पूर्वक स्नानादि को त्याग दे। केवल निरजन राम मे ही अपनी वृत्ति लगा कर रह।

राम बिना सब फीके लागै, करणी कथा गियान ।
सकल अविरथा कोटि कर, दादू जोग धियान[1] ॥ ३ ॥

निरजन राम की अनन्य भक्ति बिना, तीर्थ, व्रत, यज्ञादि कर्त्तव्य और ज्ञानादि की कथाएँ भी बिना नमक के शाक समान फीके ही लगते है। चाहे सकाम देवतादि के ध्यान[1], हठ योगादिक नाना साधन करो, बिना परब्रह्म की अनन्यता के वे सभी व्यर्थ है=ब्रह्म साक्षात्कार करने मे वे सार्थक नही है।

इन्द्रियार्थी भेष

ज्ञानी पंडित बहुत है, दाता शूर अनेक ।
दादू भेष अनत हैं, लाग रह्या सो एक ॥ ४ ॥

४-२४ मे इन्द्रिय-पोषणार्थ भेष बनाना उत्तम नही, यह कह रहे है—परोक्ष-ज्ञान युक्त ज्ञानी, शास्त्र के विद्वान्, दाता, वीर तो अनेक मिलते है और भेषधारियो का तो अन्त ही नही है किन्तु निरन्तर भगवद् भजन मे ही लगा रहे, ऐसा तो कोई विरला ही मिलेगा।

कोरा कलश अवाह[1] का, ऊपरि चित्र अनेक।
क्या कीजे दादू वस्तु बिन, ऐसे नाना भेष ॥ ५ ॥

कुम्हार के आवाँ[1] मे पके हुये कोरे कलश पर अनेक चित्र होऔर उसमे वस्तु कुछ भी न हो तो वह देखने मात्र का ही है। वैसे ही भगवद् भक्ति बिना नाना मतो के नाना भेषो का क्या करे ? वे भी देखने मात्र के ही है। (प्राचीन लिपि मे 'भेष' को 'भेख' पढते है।)

बाहर दादू भेष बिन, भीतर वस्तु अगाध।
सो ले हिरदै राखिये, दादू सन्मुख साध ॥ ६ ॥

जिनके शरीर पर भेष तो कुछ भी नहीं है किन्तु अन्त.करण मे भक्ति-ज्ञानादि वस्तुएँ अथाह भरी है, ऐसे सतो के सत्सग मे रहकर उनकी भक्ति-ज्ञानादि वस्तुएँ लेकर अपने हृदय मे धारण करनी चाहिये।

दादू भांडा भर धर वस्तु सौं, ज्यों महँगे मोल बिकाइ।
खाली भांडा वस्तु बिन, कौडी बदले जाइ ॥ ७ ॥

बर्तन यदि उत्तम वस्तु से भरा हो तो अधिक मूल्य मे बिकता है, खाली हो तो कौडियो मे जाता है। वैसे ही भक्ति-ज्ञानादि वस्तुओ से पूर्ण अन्त करण महान् माना जाता है, खाली नही।

दादू कनक कलश विष सौं भस्या, सो किस आवै काम।
सो धन कूटा चाम का, जामें अमृत राम ॥ ८ ॥

यदि सोने का सुन्दर कलश विष से भरा हो तो वह किस काम आयेगा ? विष तो पान करने से मारक होगा और मलीन चमडे का कुप्पा यदि अमृत से भरा हो तो अमर करने वाला होने से धन्य है। वैसे ही यदि शरीर तो भेषादि द्वारा सुन्दर है और अन्त करण विषय विकार-विष से भरा है, तो वह त्याज्य है। शरीर तथा भेष सुन्दर न होने पर भी जिसके हृदय मे अमृतत्व देने वाला निरजन राम के वास्तव स्वरूप का ज्ञान रूप अमृत भरा है= निरतर ब्रह्माकार वृति रहती है, वह धन्यवाद के योग्य है।

दादू देखै वस्तु को, बासन[1] देखै नांहिं।
दादू भीतर भर धस्या, सो मेरे मन मांहिं ॥ ९ ॥

लोग बर्तन[1] की सुन्दरता न देख कर वस्तु की ही श्रेष्ठता देखते है। वैसे ही हम भेषादि से सजे हुये शरीर को नही देखते, किन्तु हृदय मे जो भाव भरा होता है, उसी से हमारे मन मे उसके भले-बुरे का निश्चय होता है।

दादू जे तूं समझै तो कहूं, साचा एक अलेख।
डाल पान तज मूल गह, क्या दिखलावै भेख ॥ १० ॥

हे भेष प्रिय व्यक्ति ! अपना सुन्दर भेष क्या दिखलाता है ? इसके परमार्थ मे कुछ ही लाभ नही है। यदि तू समझना चाहे तो मै कहता हू-सत्य तो एक परब्रह्म ही है। ब्रह्मादि त्रिदेव शाखा और इन्द्रादि देव पत्तो के समान है, सबके मूल परब्रह्म की ही आराधना ग्रहण कर।

दादू सब दिखलावैं आपको, नाना भेष बनाइ।
जहँ आपा मेटन हरि भजन, तिहिं दिशि कोइ न जाइ ॥ ११ ॥

नाना भेष बनाकर सब लोग अपने सप्रदायादि के अभिमान को ही प्रकट रूप से दिखाते है किन्तु जो सब प्रकार के अभिमान को नष्ट करके भगवद्-भजन करने को निष्कपट निराभिमान अवस्था रूप दिशा है, उसकी ओर आगे कोई नही बढ़ता।

सो दशा कतहूँ रही, जिहि दिशि पहुँचे साध।
मै तैं मूरख गह रहे, लोभ बडाई वाद ॥ १२ ॥

सतजन साधन द्वारा जिस अद्वैत अवस्था को प्राप्त हुये है, वह अवस्था तो इन भेष प्रिय मूर्ख लोगो से अत्यधिक दूर ही रही है, ये तो "मै-तू" आदि द्वैत को ग्रहण करके लोभ, बडाई और विवाद मे ही फँस रहे है।

दादू भेष बहुत संसार मे, हरिजन विरला कोइ।
हरिजन राता राम सौं, दादू एकै होइ ॥ १३ ॥

ससार मे भेषधारी बहुत है किन्तु भगवान् का भक्त कोई विरला ही होता है। भगवान् के भक्त तो भेष पक्ष को छोडकर, सब एक मत हो भगवद्-भजन में ही रत रहते है वा भक्त भगवद्-भजन मे ही रत हो भगवान् मे मिल कर एक हो जाते है।

हीरे रीझे जौहरी, खल रीझे संसार।
स्वांगि साधु बहु अंतरा, दादू सत्य विचार ॥ १४ ॥

जिज्ञासु रूप जौहरी तो सच्चे सत-हीरे से ही प्रसन्न होते है और ससारी जन तो पशु के समान है। जैसे पशु तेल रहित खल से ही प्रसन्न हो जाता है, वैसे ही ससारी ऊपर के भेष से ही प्रसन्न हो जाते है किन्तु भेषधारी और सच्चे सत मे बहुत अन्तर रहता है। अत सत्यासत्य का विचार करके सच्चे सतो का ही आदर करो।

स्वागी साधु बहु अतरा, जेता धरणि आकाश ।
साधू राता राम सौ, स्वागी जगत की आश ॥ १५ ॥

जितना पृथ्वी और आकाश मे अन्तर है, उतना ही अत्यधिक अन्तर भेषधारी और सच्चे सत मे रहता है। पृथ्वी मे जैसे रूप, रसादि रहते है वैसे ही भेषधारी मे विषय-विकार और ससारी जनो की आशा रहती है। आकाश मे एक शब्द ही रहता है, वैसे ही सच्चे सत मे राम की अनन्य भक्ति ही रहती है।

दादू स्वांगी सब संसार है, साधू विरला कोइ।
जैसे चन्दन बावना, वन वन कहीं न होइ ॥ १६ ॥

जैसे अन्य साधारण वृक्ष तो प्रत्येक वन मे मिल जाते है किन्तु बावना चन्दन प्रत्येक वन मे कहा मिलता है ? वैसे ही भेषधारी सभी ससार मे भरे है, किन्तु सच्चा सत कोई विरला ही मिलता है।

दादू स्वांगी सब संसार है, साधु कोई एक।
हीरा दूर दिशंतरा, कंकर और अनेक ॥ १७ ॥

जैसे बहुमूल्य हीरे जैसे ककर तो सभी स्थानो मे अनेक मिलते है किन्तु असली हीरा तो कही दूर-दराज राजा-महाराजा या सेठ-साहूकार के पास ही मिलेगा। वैसे ही भेषधारी साधु तो सब ससार मे मिलते है, किन्तु सच्चा सत तो कोई विरला ही कही मिलेगा।

दादू स्वांगी सब संसार है, साधू सोध सुजाण।
पारस परदेशों भया, दादू बहुत पषाण[1] ॥ १८ ॥

जैसे साधारण पत्थर[1] तो जहां तहा बहुत है किन्तु पारस तो विलुप्त प्राय है और खोज करने पर भी मुश्किल ही मिले। वैसे ही भेषधारी तो सब ससार मे है किन्तु हे बुद्धिमान् जिज्ञासु ! सच्चा सत तो खोज करने पर भी विरला ही मिलता है।

दादू स्वांगी सब संसार है, साधु समंदां पार।
अनल पंखि कहँ पाइये, पंखी कोटि हजार ॥ १९ ॥

अन्य पक्षी तो पृथ्वी पर अनन्त मिलते है किन्तु अनल पक्षी कहा मिलता है ? वह तो कही आकाश मे ही रहता है। वैसे ही भेषधारी तो ससार मे अपार भरे है किन्तु सच्चा सत कहा है ? वह तो सासारिक विषय-विकार-समुद्र से पार, परब्रह्म के चिन्तन मे लगा हुआ कही एकान्त देश मे ही मिलेगा।

दादू चन्दन वन नहीं, शूरन के दल नांहिं।
सकल खानि[1] हीरा नही, त्यों साधू जग मांहिं ॥ २० ॥

वन मे चन्दन का वृक्ष विरला ही होता है, चन्दन का वन नही होता। सेना मे वीर विरला ही होता है, वीरो का दल नही होता। सब खानियो मे हीरा नही होता, वैसे ही ससार मे सच्चा साधू विरला ही मिलता है।

('मूल ग्रन्थो मे खानि की जगह 'समद' (समुद्र) पाठ मिलता है जो सही है। वैज्ञानिको का मत है कि प्रलयकाल मे अथवा अतिवृष्टि जन्य बाढ के कारण वन पृथ्वी के गर्त समुद्र मे समा गये और भूगर्भ स्थित अग्नि-ताप से दग्ध होकर कोयला बन गये। मिट्टी की परतों के भार से यह कोयला पत्थर के समान कठोर हो गया। समुद्रतल हटने से निकले भूभाग की इन्ही पत्थर के कोयले की खानो मे कही-कही पर कार्बन का शुद्ध रूप हीरा पाया जाता है। - स)

जे सांई का ह्वै रहै, सांई तिसका होइ।
दादू दूजी बात सब, भेष न पावै कोइ ॥ २१ ॥

जो सर्व भाव से भगवत् के समर्पण होकर भगवद्-भजन मे लीन रहता है तब भगवद् उसके अनुकूल होकर साक्षात्कार के साथ २ उसके योग-क्षेमादि कार्य भी करते है, अन्य बाह्य साधन भेषादि सब तो दिखावा मात्र ही है। भेषादि बाह्याडम्बर से कोई भी भगवान् को प्राप्त नही कर सकता।

स्वाग सगाई कुछ नहीं, राम सगाई साच।
दादू नाता नाम का, दूजै अंग न राच ॥ २२ ॥

केवल भेष से ही प्रेम का सम्बन्ध बाँधने से कोई लाभ नही किन्तु निरजन राम के नाम-चिन्तन से प्रेम सम्बन्ध बाँधने से सत्य परब्रह्म की प्राप्ति रूप लाभ होता है। अत हे साधक! नाम-चिन्तन से ही प्रेम का सम्बन्ध बाँध, अन्य भेषादि के स्वरूप मे अनुरक्त मत हो।

दादू एकै आतमा, साहिब है सब माहि।
साहिब के नाते मिलै, भेष पथ के नांहिं ॥ २३ ॥

सभी प्राणी आत्म रूप से एक है और साक्षी रूप से परमात्मा सब मे स्थित है। अत परमात्मा के सम्बन्ध से ही सबसे प्रेम का व्यवहार करना चाहिये। भेष व पथ का पक्षपात नही करना चाहिये।

दादू माला तिलक सौ कुछ नहीं, काहू सेती काम।
अतर मेरे एक है, अहनिशि[1] उसका नाम ॥ २४ ॥

माला तिलकादि बाह्य-चिन्हो से मेरा कुछ भी सम्बन्ध नही और न किसी देवी-देवता से ही मेरा काम है। मेरे हृदय मे तो रात्रि-दिन[1] उस एक परब्रह्म के नाम का चिन्तन ही रहता है।

अमिट पाप प्रचण्ड

भक्त भेष धर मिथ्या बोलै, निन्दा पर अपवाद।
साचे को झूठा कहै, लागै बहु अपराध ॥ २५ ॥

२५-२६ मे सहज न मिटने वाला प्रचड पाप का परिचय दे रहे है— जो भक्त भेष बना कर मिथ्या बोलता है, दूसरो की निन्दा करता है, सच्चे सतो को पाखडी कह कर उनसे विरोध करता है, उसे सहज न मिटने वाला महान् पाप लगता है।

दादू कबहूँ कोई जनि मिलै, भक्त भेष सौ जाइ।
जीव जन्म का नाश है, कहै अमृत, विष खाइ ॥ २६ ॥

भक्त भेषधारी पाखडी के पास जाकर उससे कभी भी कोई प्रेम न करे, कारण, वह कथन तो भक्ति-ज्ञानादि रूप अमृत का करता है और खाता विषय-विष है। उससे प्रेम करने वाले मे भी उसी के सस्कार पड़ते है और जीव के मानव जन्म का व्यर्थ ही नाश हो जाता है।

चित्त कपटी

दादू पहुँचे पूत बटाऊ होइ कर, नट ज्यो काछा भेष।
खबर न पाई खोज की, हम को मिल्या अलेख ॥ २७ ॥

२७-२८ मन मे कपट रखने वाले भेषधारियो का व्यवहार बता रहे है—पाखडी परमात्मा के पास पहुँचे हुये पवित्र सत का-सा भेष नट के समान बना, विरक्त होकर पथिक के समान ग्राम २ मे घूमते है। ज्ञान तो परमात्मा के अन्वेषण के उपाय भक्ति-ज्ञानादि का भी नही होता किन्तु कहते रहते है—हमे परब्रह्म का साक्षात्कार हो गया है। (भेष मे ष को ख पढे)

दादू माया कारण मूंड मुँडाया, यहु तो योग न होई।
पारब्रह्म सौं परिचय नांही, कपट न सीझै कोई ॥ २८ ॥

मायिक पदार्थों के उपभोग और सग्रह के लिये शिर-मुडन करा कर भेष बना लिया किन्तु परब्रह्म से परिचय होने का कुछ भी साधन नही लिया, उक्त व्यवहार तो योग नही कहा जाता और ऐसे कपट से कोई भी ब्रह्म-प्राप्ति रूप सिद्धावस्था को भी प्राप्त नही होता।

अन्य लग्न व्यभिचार

पीव न पावे बावरी, रचि रचि करै श्रृंगार।
दादू फिर फिर जगत सौ, करेगी व्यभिचार ॥ २९ ॥

२९-३१ मे कहते है—परमात्मा को छोड अन्य से प्रेम करना व्यभिचार है-हे पाखडपूर्ण व्यक्ति रूप बावरी सुन्दरी! विषयो मे लग्न रख करके बडी सावधानी से रुचि पूर्वक भेष रूप श्रृगार करने पर भी परमात्मा-पति को प्राप्त नही कर सकेगी, प्रत्युत पुन॰ २ विषय प्राप्ति के लिये ससारी प्राणियो से प्रेम रूप व्यभिचार करेगी।

प्रेम प्रीति सनेह बिन, सब झूठे श्रृंगार।
दादू आतम रत नही, क्यों मानैं भरतार ॥ ३० ॥

सतो से प्रेम, नाम चिन्तन से प्रीति और परमात्मा से स्नेह बिना सभी भेष रूप श्रृगार व्यर्थ है। जब तक जीवात्मा परमात्मा मे अनुरक्त न हो तो तब तक परमात्मा उसे कैसे अपना भक्त मानेगे? भगवान् भेषादि बाह्य चिन्हो से ही भक्त नही मानते।

दादू जग दिखलावे बावरी, षोडश[1] करै श्रृंगार।
तहँ न सँवारै आपको, जहँ भीतर भरतार ॥ ३१ ॥

जैसे व्यभिचारिणी नारी पति को दिखाने के लिये ऊपर तो सोलह[1] श्रृगार करती है किन्तु चित्त जार की ओर लगा रहता है। वैसे ही पाखड पूर्ण व्यक्ति रूप-बावरी सुन्दरी दिखाने के लिये भेष तो बहुत अच्छा करती है किन्तु जहा अन्त करण मे परमात्मा देखता है, वहाँ अपने को नही सुधारती=परमात्मा से निष्कपट प्रेम नही करती।

इन्द्रियार्थी भेष

सुध बुध जीव धिजाइ[1] कर, माला संकल बाहि।
दादू माया ज्ञान सौं, स्वामी बैठा खाइ ॥ ३२ ॥

३२-३७ मे कहते है—इन्द्रिय पोषणार्थ भेष उत्तम नहीं। इन्द्रिय पोषण के लिये भेष धारण करने वाले दभी लोग, भोले लोगो को कपट पूर्ण ज्ञान की बाते सुना कर अपने मे विश्वास[1] करा

लेते है और गले मे अपनी कठी माला रूप साकल डाल, गुरु बन कर बाँध लेते है। फिर गुरुजी बैठे २ उनके मायिक पदार्थों का उपभोग करते है।

जोगी जंगम सेवडे, बौद्ध सन्यासी शेख ।
षट् दर्शन दादू राम बिन, सबै कपट के भेख ॥ ३३ ।

जोगी (नाथ), जगम (टाली बजाते हुये भिक्षा मागने वाले शैव साधु), सेवड़े (एक प्रकार के जैन साधु), बौद्ध धर्म के साधु, सन्यासी, शेख (मुसलमानो का एक भेद), इन छ दर्शनो के समान सभी भेष धारी, भगवान् की भक्ति के बिना कपट के ही माने जाते है।

दादू शेख[1] मुशायख औलिया[2], पैगम्बर सब पीर[4]।
दर्शन[5] सौ परसन[6] नही, अजहूँ वैली[7] तीर ॥ ३४ ॥

परमात्मा भेष[5] से नही मिलते[6]। गुरुजन[1] मुशायख (शेख मुल्लादि धर्म के ज्ञाता) सत[2], पैगम्बर (ईश्वर का संदेश वाहक) और सिद्ध महात्मा[4] आदि के भेष को धारण करने वाले, सभी अभी तक ससार समुद्र से पार नही हो सके है, अभी इधर[7] के किनारे पर ही है।

नाना भेष बनाइ कर, आपा देख दिखाइ ।
दादू दूजा दूर कर, साहिब सौं ल्यौ लाइ ॥ ३५ ॥

प्राणी नाना प्रकार के भेष बनाके स्वय देखकर प्रसन्न होते है और दूसरो को धोखे मे डालते है किन्तु इससे परमार्थ मे कोई लाभ नहीं है। अत भेषादि अन्य प्रपच को हृदय से दूर करके परब्रह्म चिन्तन मे ही वृत्ति लगाओ।

दादू देखा देखी लोक सब, केते आवै जांहि ।
राम-सनेही ना मिलै, जे निज देखै मांहिं ॥ ३६ ॥

आने जाने वाले लोगो के देखा-देखी हमारे पास कितने ही भेषधारी आते है किन्तु उनमे जो अपने भीतर हृदयस्थ आत्माराम को देखते हो, ऐसे राम के प्यारे भक्त नहीं मिलते।

दादू सब दैखै अस्थूल को, यहु ऐसा आकार ।
सूक्ष्म सहज न सूझही, निराकार निरधार ॥ ३७ ॥

प्राय सब लोग सच्चे सत और दभी के स्थूल शरीर का भेष ही देखते है और दभी के भेष को देखकर तो कहने लगते है—इनका यह ऐसा स्वरूप है कि देखते ही मन प्रसन्न हो जाता है, किन्तु उन लोगो को दभी और सच्चे सत के हृदय की सूक्ष्म स्थिति सहज ही नहीं ज्ञात होती। दभी के हृदय मे विषय-वासना रहती है और सच्चे सत के हृदय मे निराकार, निराधार, परब्रह्म का चिन्तन रहता है। यह न जानने के कारण ही लोग दभियो द्वारा धोखा खाते है।

परीक्षक अपरीक्षक

दादू बाहर का सब देखिये, भीतर लख्या न जाइ।
बाहर दिखावा लोक का, भीतर राम दिखाइ ॥ ३८ ॥

३८-४० मे कहते है—यथार्थ परीक्षक राम है, अपरीक्षक ससारी जन है-प्राय सब लोग

बाह्य भेष को ही देखते है। ससारी प्राणियो से हृदय के भीतर का भाव नही देखा जाता। बाहर का भेष लोगो को दिखाने का ही है। इससे राम प्रसन्न नही होता। भीतर हृदय को भक्ति आदि से सजा कर राम को दिखा, तभी राम प्रसन्न होगा।

दादू यहु परिख सराफी ऊपली[1], भीतर की यहु नांहिं ।
अंतर की जानैं नहीं, तातैं खोटा खाहिं ॥ ३९ ॥

ससारी जनो की यह भेष की परीक्षा ऊपर[1] की ही परीक्षा है। हृदय के भीतर की परीक्षा यह नही है। हृदय के भीतर की बात न जानने के कारण सत का अनादर करते है और दभियो का आदर करके बुरी तरह धोखा खाकर दु ख भोगते है।

दादू झूठा राता झूठ सौं, साँचा राता साच ।
एता अंध न जानहीं, कहँ कंचन, कहँ काच ॥ ४० ॥

झूठे भेषधारी का मन मिथ्या विषयो मे रत रहता है और सच्चे सत का मन सत्य परब्रह्म मे रत रहता है। विचार-नेत्रो से हीन अधे ससारी इस भेद को नही जानते। जैसे कचन और काच एक नही हो सकते, वैसे ही सच्चा सत और दभी एक समान नही हो सकते।

इन्द्रियार्थी भेष

दादू सचु बिन सांई ना मिलै, भावै भेष बनाइ।
भावै करवत ऊर्ध्व मुख, भावै तीरथ जाइ ॥ ४१ ॥

४१-४२ मे कहते है—यथार्थ साधन बिना भेष आदि से भगवान् नहीं मिलते, चाहे भेष धारण करो, काशी मे उर्ध्व मुखवाली करवत से कट कर प्राण त्यागो, आकाश की ओर ऊचा मुख कर खडे रहते हुये अन्न-जल छोड़ कर प्राण त्यागो, या तीर्थों मे भ्रमण करो, किन्तु सच्चे साधन द्वारा यथार्थ-ज्ञान बिना ब्रह्म का साक्षात्कार कभी भी नही होता।

दादू साचा हरि का नाम है, सो ले हिरदै राखि।
पाखंड प्रपच दूर कर, सब साधों की साखि ॥ ४२ ॥

परमात्मा के नाम का अखड चिन्तन ही सच्चा साधन है, उसकी विधि सतो से ग्रहण करके तथा पाखड प्रपच को त्याग करके उसे निरन्तर हृदय मे रक्खो, उससे ज्ञान द्वारा ब्रह्म का साक्षात्कार होगा। यही सब सतो की साक्षी है।

आपा निर्द्वेष

हिरदै की हरि लेइगा, अतरजामी राइ।
साच पियारा राम को, कोटिक कर दिखलाइ ॥ ४३ ॥

४३-४४ मे कहते है—अन्तर-हृदय द्वैत रूप द्वेष से रहित होना चाहिये-अन्तर्यामी परमात्मा हृदय की भावना ही ग्रहण करेगा। राम को सत्य ही प्रिय है। सत्य उसी का नाम है—"जैसी भावना, वैसा ही वचन और कार्य हो।" हृदय मे द्वैत रूपी द्वेष है तो बाहर से चाहे कोटि प्रकार के वचन और भेषादि से अद्वैत दिखावे, वे सब व्यर्थ ही होगे, मुक्तिप्रद सिद्ध न होगे।

दादू मुख की ना गहै, हिरदे की हरि लेइ ।
अंतर सूधा एक सौ, तो बोल्याँ दोष न देइ ॥ ४४ ॥

परमात्मा मुख के वचन पर ध्यान न देकर हृदय की वात को ही ग्रहण करते है। यदि आन्तर हृदय सरलता पूर्वक अद्वैत भावना मे रत हो तो वाणी द्वारा भक्ति आदि का उपदेश देने पर द्वैत का दोष न हरि देते और न विचारशील पुरुष ही देते है।

इन्द्रियार्थी भेष

सब चतुराई देखिये, जो कुछ कीजै आन ।
मन गह राखै एक सौ, दादू साधु सुजान ॥ ४५ ॥

४५ मे कहते है—इन्द्रिय-पोषणार्थ भेष उत्तम नही-आन्तर साधना विना अन्य जो कुछ भी भेषादि है, वे सब इन्द्रिय-पोषणार्थ चतुराई ही दिखाई देती है। अत समझदार साधक सत को चाहिये-अपने मन को प्रत्याहार द्वारा ग्रहण करके एक अद्वैत परब्रह्म के चिन्तन मे ही लगाये रखे।

आत्मार्थी भेष

शब्द सुई सुरति धागा, काया कथा लाइ ।
दादू जोगी जुग जुग पहरै, कबहूँ फाट न जाइ ॥ ४६ ॥

४६-४८ मे आत्म-स्वरूप ब्रह्म की प्राप्ति का हेतु भेष बता रहे है—वृत्ति धागा को, सद्गुरु शब्द-सुई मे पिरो कर स्थूल-सूक्ष्म शरीर को परमात्म-परायण करना रूप कथा बना कर योगी लोग निरन्तर पहनते है=ब्रह्मनिष्ठ रहते है। यह कथा बाहरी कथा के समान कभी भी जीर्ण-शीर्ण अवस्था को प्राप्त नही होती।

ज्ञान गुरु का गूदडी, शब्द गुरु का भेख ।
अतीत हमारी आतमा, दादू पथ अलेख ॥ ४७ ॥

हमारी जीवात्मा ही विरक्त है, सद्गुरु का यथार्थ ज्ञान ही उसकी गुदडी है। गुरु प्रदत्त प्रणव रूप शब्द का चिन्तन ही उसका भेष चिह्न है और वह इन्द्रियातीत परब्रह्म के ही पथ मे है।

इश्क अजब[1] अबदाल[2] है, दर्दवद दरवेश[3] ।
दादू सिक्का[4] सब्र[5] है, अक्ल[6] पीर[7] उपदेश ॥ ४८ ॥

इति श्री भेष का अग समाप्त ॥ १४ ॥ सा १५३३ ॥

भेषादि के विषय मे बुद्धिमान्[6] सिद्ध[7] सतो का उपदेश यह है—भगवान् के वियोग-व्यथा से सम्पन्न होने का नाम साधु[3] होना है। भगवान् का अद्भुत[1] प्रेम ही सिद्धि[2]-चमत्कारादि है। सतोष[5] ही भेष चिह्न[4] है।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका भेष का अग समाप्त ॥ १४ ॥

अथ साधु का अंग १५

भेष-अग के अनन्तर सत विषयक विचार करने के लिये "साध का अग" कहने मे प्रवृत्त मगल कर रहे है—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत: ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक भेषादि बाह्य चिह्नो के आग्रह से पार होकर वास्तविक साधुता द्वारा मुक्ति प्राप्त करता है, उन निरजन राम, सद्गुरु और सर्व सतो को हम अनेक प्रणाम करते है ।

साधु महिमा

दादू निराकार मन सुरति सौं, प्रेम प्रीति सौं सेव।
जे पूजै आकार को, तो साधू प्रत्यक्ष देव ॥ २ ॥

२-४ मे साधु महिमा कहते है—मन की वृत्ति स्थिर करके प्रेम पूर्वक निराकार परमात्मा की उपासना करो । यदि निराकार मे मन स्थिर न होने के कारण आकार की ही उपासना करना चाहते हो तो ज्ञानी ब्रह्म रूप होने से उपास्य देव के प्रतीक ज्ञानी सत प्रत्यक्ष ही है, प्रीति से उनकी सेवा करो ।

दादू भोजन दीजे देह को, लीया मन विश्राम ।
साधू के मुख मेलिये, पाया आतमराम ॥ ३ ॥

जैसे भोजन स्थूल शरीर के अग पेट मे डालते है किन्तु उससे सूक्ष्म मन भी सतुष्ट होता है, वैसे ही सतो को भोजन कराने से आत्म स्वरूप राम भी प्रसन्न होते है ।

ज्यों यहु काया जीव की, त्यों सांई के साध ।
दादू सब संतोषिये, मांहीं आप अगाध ॥ ४ ॥

जैसे सम्पूर्ण शरीरो मे जीवन को यह मनुष्य शरीर अति प्रिय है, वैसे ही सपूर्ण प्राणियो मे परमात्मा को सत ही अतिप्रिय है । व्यापक होने पर भी अगाध स्वरूप परमात्मा सतो के हृदय मे विशेष रूप से रहते है । अत सब सतो को वा सर्व प्रकार से सतो को सेवा से सतुष्ट करना चाहिये ।

सत्संग माहात्म्य

साध जन संसार मे, भवजल बोहिथ[1] अंग ।
दादू केते उद्धरे, जेते बैठे संग ॥ ५ ॥

५-११ मे सत्सग का माहात्म्य बता रहे है—सत जन ससार मे भव-सागर के जन्म-मरण रूप जल-प्रवाह से पार उतारने के लिये जहाज[1] है । जैसे जहाज से अनेक मानव समुद्र से पार हो जाते है, वैसे ही जितने भी सतो के सत्सग मे बैठते है, वे सभी भवसागर से पार हो जाते है ।

साधू जन संसार में, शीतल चन्दन वास ।
दादू केते उद्धरे, जे आये उन पास ॥ ६ ॥

सत जन ससार मे शीतल चन्दन के समान है और उनकी वाणी चन्दन की सुगध के समान है। चन्दन की गध से पास के वृक्षो मे परिवर्तन हो जाता है वैसे ही सतो के पास आकर जिन्होने उनकी वाणी सुनी है, वे भी काम क्रोधादि से पार होकर निष्कामतादि अवस्था को प्राप्त हुये है।

साधू जन ससार मे, हीरे जैसा होइ।
दादू केते उद्धरे, संगति आये सोइ ॥ ७ ॥

ससार मे सत हीरे के समान है। जैसे हीरा प्रकाश देता है, वैसे ही सत जन ज्ञान प्रकाश प्रदान करते है। जो भी उनकी सत्सगति मे आये है, वे सभी अज्ञानाधकार से पार हुये है।

साधू जन संसार मे, पारस परगट गाइ।
दादू केते उद्धरे, जेते परसे आइ ॥ ८ ॥

ससार मे सत जन पारस और कामधेनु गो के समान प्रकट है। जैसे पारस और कामधेनु दरिद्रता को हर लेते है वैसे ही सत जनो के सत्सग मे जितने भी आ मिले है वे सभी जीव-भाव रूपी दरिद्रता से पार हो गये है।

रूख वृक्ष वनराइ सब, चन्दन पासै होइ।
दादू बास लगाइ कर, किये सुगधे सोइ ॥ ९ ॥

सपूर्ण वन समूह के छोटे-बडे वृक्षो मे से जो भी चन्दन के पास होते है, उनको चन्दन अपनी सुगध देकर सुगध युक्त कर देता है। वैसे ही सत ससार की जाति समूह मे से छोटी बडी जाति का कोई भी उनके पास जाता है तो उसे अपना ज्ञान देकर ज्ञानी बना देते है।

जहां अरंड अरु आक थे, तहँ चन्दन ऊग्या माहिं।
दादू चन्दन कर लिया, आक कहै को नाहि ॥ १० ॥

जैसे जहा आक, एरड के वृक्ष हो वहा यदि चन्दन का वृक्ष लग जाय तो उन आकादि को भी सुगध देकर चन्दन बना देता है फिर उन्हे कोई भी आकादि नाम से नहीं बोलता। वैसे ही ज्ञान विचारादि से हीन जातियो के मनुष्यो मे ज्ञान भक्ति आदि से युक्त सत उत्पन्न हो जाय तो उनको भी ज्ञान भक्ति आदि से युक्त कर देता है। फिर उन्हे कोई भी अभक्त और अज्ञानी नहीं कहता।

साधु नदी, जल रामरस, तहां पखालै अग।
दादू निर्मल मल गया, साधू जन के संग ॥ ११ ॥

सत जनो के सत्सग मे जाओ। सत नदी के समान है। उनमे राम की पराभक्ति रस रूप जल भरा है। उससे जिनने अपना अन्त करण धोया है, उनका अविद्या मैल नष्ट हो गया है और वे निर्मल ब्रह्म को प्राप्त हुये है।

परमार्थी

साधू बरषैं राम रस, अमृत वाणी आइ ।
दादू दर्शन देखतां, त्रिविध ताप तन जाइ ॥ १२ ॥

१२ मे सत परमार्थी है, यह कहते है—सतजन जहा तहा से आकर अमृत समान प्रिय वाणी द्वारा राम-भक्ति-रस की वर्षा करते है। उनके दर्शन करते ही शरीर के दैहिक, दैविक और भौतिक तीनों ताप नष्ट हो जाते है।

साधु संग महिमा

संसार विचारा जात है, बहिया लहरि तरंग ।
भेरे[1] बैठा ऊबरे, सत साधू के संग ॥ १३ ॥

१३-२२ मे सत-सग की महिमा कह रहे है—ससार के दीन प्राणी विषय-समुद्र की वासना रूप लहर और तृष्णा-तरगो मे बहे जा रहे है, उनमे से कोई सच्चे सत के सग रूप बेडे[1] (जहाज) मे बैठता है, वही उक्त तरगो से पार होता है।

दादू नेडा परम पद, साधू संगति मांहिं ।
दादू सहजैं पाइये, कबहूँ निष्फल नांहिं ॥ १४ ॥

सत-सग मे बैठने से परमपद स्वरूप ब्रह्म समीप ही ज्ञात होता है और व्यापक होने से अनायास ही प्राप्त होता है। सत-सग कभी भी निष्फल नही होता।

दादू नेड़ा परम पद, कर साधू का संग ।
दादू सहजैं पाइये, तन मन लागै रंग ॥ १५ ॥

परम पद रूप ब्रह्म पास ही है, सतो के सत्सग द्वारा जब तन मन मे ब्रह्म-परायणता रूप रग लगता है, तब वह अनायास ही प्राप्त हो जाता है।

दादू नेडा परम पद, साधू संगति होइ ।
दादू सहजैं पाइये, साबित सन्मुख सोइ ॥ १६ ॥

सतो की सगति द्वारा जब ब्रह्म की व्यापकता का ज्ञान होता है तब परम पद रूप ब्रह्म समीप ही प्रतीत होने लगता है और जब वृत्ति ब्रह्म-परायण होकर अखड ब्रह्माकार रहती है तब वह ब्रह्म अनायास ही प्राप्त होता है।

दादू नेडा परम पद, साधू जन के साथ ।
दादू सहजैं पाइये, परम पदारथ हाथ ॥ १७ ॥

सतो के साथ रहकर उनके समान साधन करने से प्राणी को परम पद अत्यन्त समीप अर्थात् अपना स्वरूप ही भासने लगता है और निदिध्यासन की परिपाकावस्था मे वह परम पदार्थ स्वरूप ब्रह्म अनायास ही अभेद रूप से प्राप्त हो जाता है।

साधु मिलै तब ऊपजै, हिरदै हरि का भाव ।
दादू संगति साधु की, जब हरि करै पसाव[1] ॥ १८ ॥

सतो का समागम होता है तब प्राणी के हृदय मे भगवान् का विश्वास उत्पन्न होता है और जब हरि अनुकूल होकर कृपा करते है तब सतो की संगति प्राप्त होती है।

साधु मिले तब ऊपजे, हिरदे हरि का हेत।
दादू संगति साधु की, कृपा करे तब देत॥ १९॥

सत मिलते है तब प्राणी के हृदय मे भगवद् विषयक स्नेह उत्पन्न होता है और जब भगवान् कृपा करते है, तब सतो की सगति देते है।

साधु मिलै तब ऊपजे, प्रेम भक्ति रुचि होइ।
दादू संगति साधु की, दया कर देवै सोइ॥ २०॥

सत मिलते है तब भगवान् के मिलने की रुचि होकर प्राणी के हृदय मे प्रेमाभक्ति उत्पन्न होती है और वे भगवान् ही दया करके सतो की सगति देते है।

साधु मिले तब ऊपजै, हिरदै हरि की प्यास।
दादू सगति साधु की, अविगत पुरवै आस॥ २१॥

सत मिलते है तब प्राणी के हृदय मे परमात्मा को प्राप्त करने की तीव्र अभिलाषा उत्पन्न होती है और सतो की सगति द्वारा मन इन्द्रियो के अविषय परमात्मा ही उसे पूर्ण करते है।

साधु मिलै तब हरि मिले, सब सुख आनंद मूर।
दादू संगति साधु की, राम रह्या भरपूर॥ २२॥

शुभ कर्मो की प्रेरणा द्वारा सपूर्ण सासारिक सुखो के और ज्ञान द्वारा परमानन्द के कारण सत जब मिलते है, तब हरि अवश्य मिल जाते है, और क्या कहे-सतो की सगति से तो राम सपूर्ण विश्व मे परिपूर्ण रूप से भासने लगता है।

चौप चर्चा

परम कथा उस एक की, दूजा नाही आन।
दादू तन मन लाइ कर, सदा सुरति रस पान॥ २३॥

२३ मे उत्कठा पूर्वक भगवत् कथा सुननी चाहिये, यह कहते है—सत-सग मे एक उस परब्रह्म की ही श्रेष्ठ कथा होती है, अन्य सासारिक दूसरे विचार नहीं होते। अत शरीर और मन की स्थिरता पूर्वक वृत्ति लगाकर सदा भगवत्-कथा-रस पान करना चाहिये।

साधु स्पर्श विनती

प्रेम कथा हरि की कहै, करै भक्ति ल्यौ लाइ।
पीवै पिलावै राम रस, सो जन मिलियौ आइ॥ २४॥

२४-२९ मे सत मिलनार्थ विनय कर रहे है—जो हरि-प्रेम की कथा कहते है, चित्त-वृत्ति लगाकर भगवान् की भक्ति करते है, इस प्रकार राम-रस का स्वय पान करते है और अन्यो को कराते है, वे ही सतजन हमसे आकर मिले, अन्य नही।

दादू पीवै पिलावै राम रस, प्रेम भक्ति गुण गाइ ।
नित प्रति कथा हरि की करै, हेत सहित ल्यौ लाइ ॥ २५ ॥

प्रेम पूर्वक राम-गुण गान करते हुये कीर्तन भक्ति करते है, नित्य प्रति हरि की कथा सुनाते रहते है। इस प्रकार स्वय राम-रस का पान करते हुये अन्यो को भी पान कराते है और स्नेह पूर्वक अपनी चित्त-वृत्ति ब्रह्म मे ही लगाते है, ऐसे ही सत हमको मिलने चाहिए।

आन कथा संसार की, हमहिं सुनावै आइ ।
तिस का मुख दादू कहै, दई[1] न दिखाई ताहि ॥ २६ ॥

जो हमारे पास आकर सासारिक विषय-विकारादि की अन्यान्य कथाएँ हमको सुनावे, हे ईश्वर[1] ! उसका मुख हमको न दिखलावे। वह हमारे पास न आवे।

दादू मुख दिखलाई साधु का, जे तुमहीं मिलावै आइ ।
तुम मांहीं अंतर करै, दई न दिखाई ताहि ॥ २७ ॥

हे परमेश्वर ! जो आकर अपने सत्सग द्वारा आपकी प्राप्ति करा सके, ऐसे ही सतो का मुख हमे दिखलाइये, किन्तु जो आपके भजन मे अन्तराय करे, उनका मुख हमे न दिखलाइये।

जब दरवो[1] तब दीजियो, तुम पै मॉगूं येहु ।
दिन प्रति दर्शन साधु का, प्रेम भक्ति दृढ देहु ॥ २८ ॥

हे परमेश्वर ! जब भी आप प्रसन्न[1] हो, तब ही एक तो प्रतिदिन सतो का दर्शन और दूसरा आपकी दृढ प्रेमाभक्ति, ये दोनो देने की कृपा अवश्य करना।

साधु सपीडा मन करै, सद्गुरु शब्द सुनाइ ।
मीरां[1] मेरा महर कर, अंतर विरह उपाइ ॥ २९ ॥

'भगवत् प्राप्ति बिना जीवन व्यर्थ है' इत्यादिक उपदेशपूर्ण शब्द सुनाकर सत और सद्गुरु मन को भगवद्-वियोग व्यथा से युक्त करते है। अत हे मेरे स्वामिन्[1] परमेश्वर ! दया करके सतो का समागम दीजिये, जिससे वे हमारे हृदय मे आपका विरह उत्पन्न कर सके।

सज्जन

ज्यों ज्यों होवै त्यों कहै, घट बध कहै न जाइ ।
दादू सो सुध आतमा, साधू परसै आइ ॥ ३० ॥

३० मे कहते है यथार्थ कहने वाले जिज्ञासु वा सत मिलने चाहिये-जैसी हृदय मे बात हो, वैसी की वैसी कहते हो, कही भी जाकर न्यून अधिक न कहते हो, ऐसे ही शुद्ध बुद्धि वाले सन्त जिज्ञासु को मिलने चाहिए वा शुद्ध बुद्धि वाले जिज्ञासुओ को ऐसे ही सज्जन सत मिलने चाहिए।

सत्सग महिमा

साहिव सौ सन्मुख रहै, सत्संगति मे आइ।
दादू साधू सव कहे, सो निष्फल क्यों जाइ ॥ ३१ ॥

३१-३८ मे सत्सग महिमा कह रहे है—जो सत्सग मे आकर भजन द्वारा भगवान् के सन्मुख रहता है, उसका यह साधन किसी प्रकार भी निष्फल नहीं जाता, सभी सत ऐसा ही कहते है।

ब्रह्म गाइ त्री लोक मे, साधू अस्तन पान।
मुख मारग अमृत झरै, कत ढूंढै दादू आन ॥ ३२ ॥

त्रिलोक रूप ब्रह्माण्ड मे ब्रह्म-गो का स्थूल शरीर है, सतजन उसके स्तन है, उनके मुख से ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप का वोध रूप अमृत झरता है। जिज्ञासु जनो को चाहिए, सत्सग मे जाकर उस अमृत के पान द्वारा ब्रह्म को प्राप्त करे, अन्य स्थानो मे व्यर्थ क्यो खोजते है ?

दादू पाया प्रेम रस, साधू संगति मांहि।
फिर फिर देखे लोक सब, यहु रस कतहूँ नाहि ॥ ३३ ॥

भगवत् प्रेम-रस की प्राप्ति के इच्छुक लोग प्रथम सब लोगो मे घूम-घूम कर देख आये है किन्तु यह भगवत् प्रेम-रस कही भी न मिला, सतो की सगति मे आने पर ही प्राप्त हुआ है।

दादू जिस रस को मुनिवर मरैं, सुर नर करै कलाप[1]।
सो रस सहजै पाइये, साधू सगति आप ॥ ३४ ॥

जिस ब्रह्म-रस की प्राप्ति के लिए मुनिवर नाना साधनो द्वारा व्यथित होते है, देवता तथा नर भी जिसे पाने के लिए नाना उद्यम[1] करते है, वह ब्रह्म-रस सतो की सगति मे अनायास अपने आप ही प्राप्त हो जाता है।

सगति बिन सीझै[1] नहीं, कोटि करै जे कोइ।
दादू सद्गुरु साधु बिन, कबहूँ शुद्ध न होइ ॥ ३५ ॥

सतो की सगति बिना प्राणी का परमार्थ रूप कार्य सिद्ध[1] नही होता। चाहे वह अन्यान्य कोटि साधन करे किन्तु सद्गुरु कृपा और सतो की सगति बिना शुद्ध होकर ब्रह्म के शुद्ध स्वरूप को प्राप्त नहीं होता।

दादू नेड़ा दूर तैं, अविगत का आराध।
मनसा वाचा कर्मणा, दादू संगति साध ॥ ३६ ॥

सतो की सगति मे जाकर, उनके कथनानुसार मन, वचन और कर्म से परमात्मा की उपासना करने पर दूर प्रतीत होने वाला अज्ञात परमात्मा, अत्यन्त समीप अपने हृदय मे ही भासने लगता है।

स्रग[1] न शीतल होइ मन, चंद न चंदन पास।
शीतल संगति साधु की, कीजै दादू दास ॥ ३७ ॥

गुलाबादि के शीतल पुष्पो की माला[1] पहनने से, चन्द्रमा की शीतल किरण सेवन करने से, और चन्दन के पास जाने से वा चन्दन के पासे को घिस कर लेप करने से, विषय-वासनादि से होने वाली मन की जलन नष्ट नही होती। भक्तो को चाहिए—मन की उक्त जलन मिटाने के लिए शाति-प्राप्त शीतल स्वभाव वाले सतो की सगति करे।

दादू शीतल जल नहीं, हिम नहि शीतल होइ।
दादू शीतल संत जन, राम सनेही सोइ ॥ ३८ ॥

शीतल जल और शीतल बर्फ से मन की जलन नही मिटती, किन्तु राम के प्यारे शीतल स्वभाव वाले सत जन ही अपने उपदेश द्वारा मन की जलन मिटा कर मन को शाति रूप शीतलता प्रदान करते है।

साधु बेपरवाही

दादू चंदन कद कह्या, अपना प्रेम प्रकास।
दह[1] दिशि प्रकट ह्वै रह्या, शीतल गंध सुवास ॥ ३९ ॥

३९-४० मे कहते है—सत निज गुण कथन द्वारा लोगो को आकर्षण करने की परवाह नही रखते—चदन ने कब कहा है कि मेरी गध शीतल और सुखद है किन्तु फिर भी वह दशो[1] दिशाओ मे प्रकट हो रहा है। वैसे ही सच्चा सत अपने भगवत् प्रेम का कथन अपने मुख से कब करता है, किन्तु वह अपने आप ही सब दिशाओ मे प्रकट हो जाता है।

दादू पारस कद कह्या, मुझ थी कंचन होइ।
पारस प्रकट ह्वै रह्या, साच कहैं सब कोइ ॥ ४० ॥

पारस ने कब कहा है—मेरे स्पर्श से लोहा सोना बन जाता है किन्तु वह अपने गुण के कारण आप ही प्रकट हो रहा है। पारस से लोहा सोना बन जाता है, इस बात को सभी सत्य कहते है। वैसे ही सच्चे सत अपने गुण-कथन द्वारा अपनी प्रतिष्ठा कराने की परवाह नही रखते, किन्तु अपने आप ही उन्हे सब लोग सच्चे सत मानने लगते है।

नर बिडरूप (हठीजन)

तन नहिं भूला, मन नहिं भूला, पंच न भूला प्राण।
साधु शब्द क्यों भूलिये, रे मन मूढ अजाण ॥ ४१ ॥

विषयो मे दुराग्रह रखने वाले को चेतावनी दे रहे है—हे मूढ़-मन अज्ञानी प्राणी। जो भूलने योग्य जन्म-मरण रूप दु ख के हेतु देहाध्यास, ईर्ष्या, द्वेषादि पूर्ण मन के मनोरथ और ज्ञानेन्द्रियो के पच विषयो को तो नही भूला, फिर मुक्ति प्रदाता सत्योपदेश-पूर्ण सतो के शब्द क्यो भूल रहा है ?

साधु महिमा

रत्न पदारथ माणिक मोती, हीरौं का दरिया।
चिन्तामणि चित रामधन, घट अमृत भरिया ॥ ४२ ॥

४२-४६ मे साधु महिमा कह रहे है—सत दैवीगुण रूप माणिक्य, मौक्तिक, हीरा आदि रत्नो के समुद्र है। अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष इन चारो पदार्थों के प्रदाता है। भक्ति-चिन्तामणि और राम का साक्षात्कार रूप धन जिनके चित्त मे स्थित है व अन्त करण ज्ञानामृत से भरा है।

समर्थ शूरा साधु सो, मन मस्तक धरिया।
दादू दर्शन देखतां, सब कारज सरिया ॥ ४३ ॥

जिसने मन का चपलता रूप मस्तक पकड के मन को परमात्मा के स्वरूप मे स्थिर किया है वह समर्थ सत योग सग्राम मे वीर कहलाता है, ऐसे सत के दर्शन-सत्सग से सभी कार्य सिद्ध होते है।

धरती अबर रात दिन, रवि शशि नावै शीश।
दादू बलि बलि वारणे, जे सुमिरै जगदीश ॥ ४४ ॥

जो जगदीश्वर का स्मरण करते हुए जगदीश्वर पर निछावर होते है, उन सतो के चरणो मे पृथ्वी, आकाश, रात्रि और दिन के अभिमानी देव तथा सूर्य चन्द्र भी मस्तक झुकाकर बलिहारी जाते है।

चद सूर सिजदा करै, नाम अलह का लेइ।
दादू जमीं असमान सब, उन पावों शिर देइ ॥ ४५ ॥

जो भगवान् के नाम का स्मरण करते है, उन सतो के चरणो मे मस्तक रखकर चन्द्रमा, सूर्य, पृथ्वी, आकाश के अभिमानी देवता आदि सब प्रणाम करते है।

जे जन राते राम सौ, तिनकी मै बलि जांव।
दादू उन पर वारणे, जे लाग रहे हरि नांव ॥ ४६ ॥

जो ज्ञानी सत राम के वास्तविक स्वरूप मे अद्वैत भाव से रत है, उनकी हम बलिहारी जाते है और जो हरि नाम चिन्तन मे लगे हुये भक्त जन है, उन पर भी हम निछावर होते है।

साधु परीक्षा लक्षण

जे जन हरि के रंग रगे, सो रँग कदे न जाइ।
सदा सुरगे सत जन, रंग मे रहे समाइ ॥ ४७ ॥

४७-४८ मे सतो की परीक्षा करने योग्य लक्षण कहते है—जो सत हरि की भक्ति रूप रग मे रग गये है, उनका वह रग कभी भी नहीं जाता। वे तो उस रग को सदा सुन्दर बनाते हुये, उसी रग मे समाये हुये रहते है।

दादू राता राम का, अविनाशी रंग मांहिं ।
सब जब धोबी धो मरै, तो भी खूटै[1] नांहिं ॥ ४८ ॥

राम भक्त राम की अविनाशी भक्ति रूप रग मे रत रहता है। यदि सब जगत् के प्राणी धोबी बन कर निन्दा, ईर्ष्या द्वारा उसको छुड़ाना चाहे तो भी वह घटता[1] नही।

साहिब किया सो क्यों मिटै, सुन्दर शोभा रंग ।
दादू धोवैं बावरे, दिन होइ सुरंग ॥ ४९ ॥

परमात्मा ने अनुग्रह किया है, तब सुन्दर शोभायुक्त भक्ति रूप रग सतो को प्राप्त हुआ है। वह कैसे मिट सकता है ? अज्ञानी लोग निन्दा-ईर्ष्यादि द्वारा सतो को कष्ट देकर ज्यो-ज्यो उसे धोना चाहते है, त्यो-त्यो भगवद् द्वारा की जाने वाली रक्षा से विश्वास बढ़ कर प्रतिदिन सुन्दर होता जाता है।

साधु परमार्थी

परमारथ को सब किया, आप स्वारथ नांहिं।
परमेश्वर परमारथी, कै साधू कलि मांहिं ॥ ५० ॥

५०-५४ मे सतो की परोपकार परायणता बता रहे है—परमेश्वर और सतो ने जो कुछ किया है, वह परमार्थ के लिये ही किया है, अपने स्वार्थ के लिये कुछ भी नहीं किया। अत इस कलियुग मे परमेश्वर और सन्त ही परमार्थी है, अन्य सब स्वार्थी है।

पर उपकारी सत सब, आये इहिं कलि मांहिं।
पीवे पिलावैं राम रस, आप सवारथ नांहिं ॥ ५१ ॥

इस कलियुग मे जितने भी सत आये है, वे सब परोपकारी है। स्वय राम-भक्ति-रस पान करते है, अन्यो को भी कराते है और अपना कोई स्वार्थ नही रखते।

पर उपकारी संत जन, साहिब जी तेरे ।
जाती देखी आतमा, राम कह टेरे ॥ ५२ ॥

हे रामजी ! आपके सत जन इतने परोपकारी है—किसी भी जीवात्मा को पतन की ओर जाते देखते है तो राम-नाम उच्चारण करते हुये पुकार करके कहते है—"राम राम कर, तेरा उद्धार होगा।"

चंद सूर पावक पवन, पाणी का मत सार ।
धरती अंबर रात दिन, तरुवर फलैं अपार ॥ ५३ ॥

चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, वायु, जल, पृथ्वी, आकाश, रात्रि, दिन, और फल देने वाले अनन्त वृक्षो का भी सार रूप परोपकार ही माननीय सिद्धान्त है। ये सब और सब सत परोपकार-परायण ही रहते है।

छाजन भोजन परमारथी, आतम देव अधार ।
साधू सेवक राम के, दादू पर उपकार ॥ ५४ ॥

जिनके आधार पर निर्वाह करते हुये जीवात्मा, परब्रह्म देव की आराधना करता है, वे वस्त्र, भोजन भी परम परोपकारी हे जो अपना अभाव करके भी दूसरो की रक्षा करते है। वैसे ही राम के भक्त सतजन भी परोपकार-परायण है।

साधु साक्षी भूत

जिसका तिसको दीजिये, सुकृत पर उपकार।
दादू सेवक सो भला, शिर नहि लेवै भार ॥ ५५ ॥

५५-५७ मे कहते है—सन्त साक्षीरूप रह कर परोपकार करते है—जिसकी प्रेरणा से सुकृत रूप परोपकार होता है, उसी परमेश्वर को, उसके कर्तापन और फल का भार देना चाहिए। जो अपने शिर पर उक्त भार नही लेता वही सत साक्षी रूप होने से अच्छा माना जाता है।

परमारथ को राखिये, कीजे पर उपकार।
दादू सेवक सो भला, निरंजन निराकार ॥ ५६ ॥

अपना शरीर आदि सभी वस्तुएँ परोपकार के लिए ही धारण करनी चाहिए और साक्षी रूप रहकर उनसे परोपकार करना चाहिए। जो कर्तापन तथा फलाशा से रहित साक्षी रूप रह कर परोपकार करता है, वही उत्तम भक्त निरजन निराकार को प्राप्त होता है।

सेवा सुकृत सब गया, मैं मेरा मन माहि।
दादू आपा जब लगै, साहिब मानै नाहिं ॥ ५७ ॥

जिनने मन मे "मै कर्ता हूँ, इसका फल मेरा है" ऐसी भावना रखकर भक्ति और सुकृत रूप परोपकार किया है, वह सब भगवत् की प्राप्ति कराने मे समर्थ न होने से परमार्थ दृष्टि से निष्फल हो गया। कारण, जब तक मन मे अहकार रहता है, तब तक भगवान् सेवादि स्वीकार नहीं करते।

साधु परीक्षा लक्षण

साधु शिरोमणि शोध ले, नदी पूर पर आइ।
सजीवनि साम्हा चढै, दूजा बहिया जाइ ॥ ५८ ॥

सत परीक्षा का लक्षण बता रहे है—जैसे सजीवनी बूटी की परीक्षा नदी के प्रवाह पर आकर की जाती है, जल-प्रवाह मे डालने पर उसका तृण मच्छी के समान प्रवाह के सन्मुख चलता है, अन्य तृण प्रवाह के साथ ही बहते है, वैसे ही उत्तम सत को ससार के प्रवाह मे खोजो। जो सासारिक वृत्ति रूप प्रवाह मे न बहकर ब्रह्माकार-वृत्ति की स्थिरता रूप प्रवाह के सामने चलता है, वही सजीवन (जीवन्मुक्त) सन्त है।

सज्जन-दुर्जन

जिनके मस्तक मणि बसै, सो सकल शिरोमणि अग।
जिनके मस्तक मणि नहीं, ते विष भरे भुवंग[1] ॥ ५९ ॥

सज्जन, दुर्जन का लक्षण कह रहे है—जिन सर्पों के मस्तक मे मणि होती है, वे ही उत्तम माने जाते है। वैसे ही जिनके मन रूप मस्तक मे पराभक्ति-मणि होती है, वे ही उत्तम सज्जन सत कहलाते है और जैसे मणि-रहित सर्प' केवल विष से ही भरे होते है, वैसे ही जो भक्ति-मणि से रहित विषय-वासना विष से भरे हुये है, वे ही दुर्जन है।

यह साखी ठट्ठा नगर से आई हुई माता को कही थी। प्रसग कथा—दृ सु सि ११-१३२ मे देखो।

साधु महिमा

दादू इस संसार में, ये द्वै रत्न अमोल।
इक सांई अरु संतजन, इनका मोल न तोल॥ ६०॥

६०-६१ मे सत महिमा कहते है—इस ससार मे एक परमात्मा और सत ये दो ही अमूल्य रत्न है। इनका मूल्य वा माप नही हो सकता।

दादू इस संसार में, ये द्वै रहे लुकाइ।
रामसनेही संतजन, औ[१] बहुतेरा आइ॥ ६१॥

इस ससार मे एक तो हमारे प्यारे-निरजन राम, दूसरे सच्चे सत, ये दोनो छिपे ही रहते है। कारण, ज्ञानहीन ससारी प्राणी निरजन राम को नही जानते और सच्चे सत प्रतिष्ठादि के द्वारा ब्रह्म-चिन्तन मे विघ्न के भय से छिपे ही रहते है। अन्य' साकार राम की मूर्तियो के दर्शन मदिरो मे होते है और' प्रतिष्ठा प्रिय साधु भी बहुत से आते है।

साधु परीक्षा लक्षण

जिनके हिरदै हरि बसै, सदा निरंतर नांउँ।
दादू साचे साधु की, मैं बलिहारी जांउँ॥ ६२॥

६२-६३ मे सत परीक्षा के लक्षण कहते है—जिनके हृदय मे सदा हरि बसते है, निरतर नाम का चिन्तन रहता है, वे ही सच्चे सत है। हम उनकी बलिहारी जाते है।

साचा साधु दयालु घट, साहिब का प्यारा।
राता माता राम रस, सो प्राण हमारा॥ ६३॥

जिसका अन्त कण दयालु है, जो परमात्मा का प्यारा है, रामभक्ति-रस मे रत्त-मत्त है, वह सच्चा सत हमारा तो मानो प्राण ही है।

सज्जन विपरीत (संसार से)

दादू फिरता चाक कुम्हार का, यों दीसै संसार।
साधू जन निहचल भये, जिनके राम अधार॥ ६४॥

६४ मे सत और ससारियो की गति का भेद कह रहे है—ससारी प्राणी विषय-वासना से कुम्हार के चाक के समान ससार मे फिरते है और जिनके एक मात्र निरजन राम का ही आश्रय है, उन सत जनो की वृत्ति ब्रह्माकार रहने से, वे ब्रह्म के स्वरूप को प्राप्त करके निश्चल हुये है।

सत्संग महिमा

जलती बलती आत्मा, साधु सरोवर जाइ।
दादू पीवै राम रस, सुख मे रहै समाइ॥ ६५॥

सत्सग महिमा कहते है—क्रोधादि विकारो से दग्ध, त्रिताप से सतप्त जो जीवात्मा सत-सरोवर पर जाकर सत्सग मे राम भक्ति-रस का पान करता है, वह परम सुख स्वरूप ब्रह्म मे समा कर ब्रह्म से स्थित रहता है।

कृत्रिम कर्ता

काजी माही भेल कर, पीवै सब ससार।
कर्ता केवल निर्मला, को साधू पीवनहार॥ ६६॥

६६ मे ससारी प्राणी परमेश्वर का रूप कृत्रिम बना लेते है, यह कहते है—ससारी प्राणी परमात्मा के स्वरूप मे माया-काजी मिलाकर फिर उनकी भक्ति-रस का पान करते है। माया-मल रहित ब्रह्म के स्वरूप को हृदय मे अद्वैत रूप से धारण करके तो केवल सतजन ही पराभक्ति-रस का पान करते है।

सगति कुसंगति

दादू असाधु मिलै अतर पडै, भाव भक्ति रस जाइ।
साधु मिलै सुख ऊपजै, आनद अंग न माइ॥ ६७॥

६७-६९ मे सुसगति कुसगति का फल बता रहे है—असत के मिलने से साधन मे व्यवधान पडता है, भगवद्-विश्वास तथा भक्ति-रस चला जाता है। सत के मिलने से हृदय मे सुख उत्पन्न होता है और परमानन्द शरीर मे समाता भी नही, सतो की स्तुति आदि के रूप मे बाहर उमड़ पडता है।

दादू साधू संगति पाइये, राम अमी फल होइ।
ससारी संगति पाइये, विष फल देवै सोइ॥ ६८॥

सतो की सगति प्राप्त होती है तो उसका फल अमृतत्व देने वाला राम का साक्षात्कार होता है और ससारी प्राणियो की सगति प्राप्त होती है तो वह बारबार मृत्यु देने वाला विषय-वासना रूप फल देती है।

दादू सभा संत की, सुमति उपजै आइ।
शाक्त की सभा बैसता, ज्ञान काया तै जाइ॥ ६९॥

सतो की सभा मे आकर बैठने से हृदय मे सुमति उत्पन्न होती है और दुर्जनो की सभा मे बैठने से पूर्व-प्राप्त ज्ञान भी अन्त करण से चला जाता है।

जग जन विपरीत

दादू सब जग दीसै एकला, सेवक स्वामी दोइ।
जगत दुहागी राम बिन, साधु सुहागी सोइ॥ ७०॥

७०-७२ मे ससारी जन और भक्त जन की विपरीतता दिखा रहे है—सब जगत् के प्राणी भगवान् की भक्ति न करने के कारण भगवत् साक्षात्कार बिना अकेले ही दिखाई देते है। सेवा करने के कारण सेवक और स्वामी दोनो साथ रहते है। राम-भजन बिना जगत् के प्राणी दुर्भाग्य-युक्त है और जन्म-मरण के प्रवाह मे बहे जाते है। जो भक्ति करने वाला सन्त है, वह भगवान् की समीपता के कारण सौभाग्य-सपन्न है।

दादू साधू जन सुखिया भये, दुनिया को बहु द्वन्द ।
दुनी दुखी हम देखतां, साधुन सदा अनन्द ॥ ७१ ॥

सन्त-जन निर्द्वन्द्व होने से सुखी हुये है, सासारिक प्राणियो के काम-क्रोधादिक बहुत द्वन्द्व लगे हुये है। अत हम देखते है कि ससारी प्राणी दु खी है और निर्द्वन्द्व होने से सन्तो को आनन्द रहता है।

दादू देखत हम सुखी, सांई के संग लाग ।
यों सो सुखिया होयगा, जाके पूरे भाग ॥ ७२ ॥

देखो, सबके देखते हुये हम भक्ति-ज्ञानादि द्वारा परमात्मा के सग लगकर आनद मे है तथा जिसका भाग्य महान् होगा, वह भी भक्ति ज्ञानादि द्वारा परमात्मा के सग लग कर हमारे समान आनन्द प्राप्त करेगा।

रस

दादू मीठा पीवै रामरस, सो भी मीठा होइ ।
सहजैं कडवा मिट गया, दादू निर्विष सोइ ॥ ७३ ॥

भक्ति-रस का फल बता रहे है—जो साधक मधुर सन्तो के सत्सग मे जाकर मधुर राम-रस का पान करता है, वह भी मधुर सन्त हो जाता है। जिनने पूर्व मे पान किया है, उनका क्रोधादिक कटुपना सहज ही नष्ट हो गया और वे विषय-वासना-विष से रहित हुये है।

साधु परीक्षा लक्षण

दादू अंतर एक अनंत सौं, सदा निरंतर प्रीति ।
जिहिं प्राणी प्रीतम बसै, सो बैठा त्रिभुवन जीति ॥ ७४ ॥

सन्त परीक्षा का लक्षण बता रहे है—जो सदा प्रतिक्षण प्रीति पूर्वक अन्तर वृत्ति द्वारा एक अनन्त परमात्मा के चिन्तन मे तत्पर रहता है, इस प्रकार साधन करने पर जिसके हृदय मे प्रियतम परमात्मा विशेष रूप से निवास करते है, वह त्रिभुवन को विजय करके परब्रह्म के स्वरूप मे स्थित हुआ है।

साधु महिमा

दादू मैं दासी तिहि दास की, जिहिं संग खेलै पीव ।
बहुत भॉति कर वारणे, तापर दीजै जीव ॥ ७५ ॥

प्रभु प्राप्त सन्त पर अपनी श्रद्धा प्रकट कर रहे है—जो महानुभाव सन्त अपने स्वामी

परमात्मा को प्राप्त करके उसके सग आनन्द लेते है, हम उनकी सेविका के समान है। हे साधको। उक्त प्रकार के सन्तो पर अपने प्राण बहुत-भाति से निछावर कर देना चाहिए।

भ्रम विध्वंसन

दादू लीला राजा राम की, खेलै सब ही सन्त।
आपा पर एकै भया, छूटी सबै भरत[1] ॥ ७६ ॥

टीलाजी का भ्रम दूर कर रहे है—जिनकी सासारिक भ्राति[1] नष्ट होकर अपना पराया एक हो गया, उन अद्वैत स्थिति को प्राप्त हुये सतो मे राजा राम की शक्ति आ जाती है। उस शक्ति के द्वारा सभी सत ऐसी लीला करते रहते है।

टोक मे अनेक शरीर धारण करके सबको एक साथ प्रसाद देने से आश्चर्ययुक्त टीलाजी ने पूछा था-यह कैसे हुआ ? तब यह उत्तर दिया था। प्रसग कथा दृ सु सि त १०/५२ देखो।

जग जन विपरीत

दादू आनंद सदा अडोल सौं, राम स्नेही साध।
प्रेमी प्रीतम को मिलै, यहु सुख अगम अगाध ॥ ७७ ॥

जगत् से विपरीत परमात्मा की ओर जाने वाले सन्तो के सुख का परिचय दे रहे है—राम के प्यारे सन्त सदा निश्चल परमात्मा के चिन्तन मे लगे रहने से आनन्द मे रहते है। ससारी प्राणी विषयो मे लगे रहने से दुखी रहते है। परमात्मा के प्रेमी सन्त अपने प्रियतम परमात्मा को प्राप्त होते है। यह ब्रह्म-प्राप्ति रूप आनन्द अगम अगाध है।

पुरुष प्रकाशी

घर वन माहीं राखिये, दीपक ज्योति जगाइ।
दादू प्राण पतंग सब, जहँ दीपक तहँ जाइ ॥ ७८ ॥

७८-८२ मे ज्ञान दीपक से प्रकाशित हृदय सन्त का परिचय दे रहे है—दीपक की ज्योति जगाकर चाहे घर मे रक्खो वा वन मे, पतग तो वहा ही चले जायेगे। वैसे ही ज्ञान-दीपक के प्रकाश से युक्त पुरुष घर मे रहो या वन मे, जिज्ञासु प्राणी तो सब वहा ही पहुँच जायेंगे।

घर वन मांहीं राखिये, दीपक जलता होइ।
दादू प्राण पतंग सब, जाइ मिलैं सब कोइ ॥ ७९ ॥

ज्ञान-दीपक प्रज्वलित हो जाने पर शरीर को चाहे घर मे रक्खो या वन मे, जिज्ञासु प्राणी रूपी पतग तो सब वहा ही पहुँच जायेगे।

घर वन मांहीं राखिये, दीपक प्रकट प्रकास।
दादू प्राण पतग सब, आइ मिलैं उस पास ॥ ८० ॥

हृदय मे ज्ञान-दीपक का प्रकाश प्रकट हो जाने पर शरीर को घर मे रक्खो वा वन मे, जिज्ञासु प्राणी रूपी पतग तो सब अपने आप उस ज्ञानी के पास आकर ब्रह्म-प्रकाश मे लय हो जाते है।

घर वन मांहीं राखिये, दीपक ज्योति सहेत ।
दादू प्राण पतंग सब, आइ मिलैं उस हेत ॥ ८१ ॥

ज्ञान-दीपक की ज्योति सहित शरीर को घर मे रखो वा वन मे, जिज्ञासु प्राणी-पतग तो सब उस ज्योति के लिए वहा ही आकर ब्रह्म प्रकाश मे मिल जायेगे।

जिहिं घट प्रकट राम है, सो घट तज्या न जाइ ।
नैनहुँ मांहीं राखिये, दादू आप नशाइ ॥ ८२ ॥

जिस शरीर के अन्त.करण मे राम का ज्ञान-प्रकाश प्रकट रूप से है, ऐसे सत के शरीर की सेवा हम से त्यागी नही जाती। ऐसे ज्ञानी सन्त को नेत्रो के आगे रखते हुये अपना सासारिक अहकार हटाकर सदा उसका सत्सग करना चाहिए।

साधु अबिहड़

कबहुँ न बिहडै सो भला, साधू दिढ मति होइ।
दादू हीरा एक रस, बाँध गांठडी सोइ ॥ ८३ ॥

साधक वा सत की श्रेष्ठता बता रहे है—जो ज्ञानी सत मे दृढ बुद्धि से श्रद्धा करके सत्सग करे और उनका जो एकरस ज्ञानरूप हीरा है, उसे अन्त करण रूप गठरी मे बॉध कर कभी भी न त्यागे, वही साधक श्रेष्ठ है वा जो सन्त दृढ मति होकर, एकरस ब्रह्म रूप हीरे को ब्रह्माकार-वृत्ति रूप गठरी मे बाँध कर कभी भी न त्यागे, वही ज्ञानी सत श्रेष्ठ है।

साधु परीक्षा लक्षण

गरथ[1] न बाँधै गांठडी, नहीं नारी सौं नेह ।
मन इन्द्री सुस्थिर करै, छाड सकल गुण देह ॥ ८४ ॥

८४-९१ मे सतो की परीक्षा के लक्षण कहते है—जो धन[1] का सग्रह नही करते, नारी से कामुक दृष्टि द्वारा प्रेम नही करते और स्थूल-सूक्ष्म शरीर के सपूर्ण दोष रूप गुणों को त्याग कर मन इन्द्रियो को परमात्मा के स्वरूप मे स्थिर करते है, वे ही सच्चे सत है।

निराकार सौं मिल रहै, अखंड भक्ति कर लेह।
दादू क्यो कर पाइये, उन चरणों की खेह ॥ ८५ ॥

जो अखड भक्ति द्वारा निराकार ब्रह्म से मिलकर अपने को अखड बना लेते है, वे ही सत है। उन सतो के चरणो की रज सहज मे कैसे प्राप्त हो सकती है ?

साधु सदा संयम रहै, मैला कदे न होइ ।
दादू पंक परसै नही, कर्म न लागै कोइ ॥ ८६ ॥

सत सदा सयम से रहता है, उसका अन्त.करण कभी भी मैला नही होता। कारण, वह किसी भी निषिद्ध कर्म मे नही लगता, इसीलिए उसे पाप रूप कीचड़ स्पर्श नही करता।

साधु सदा सयम रहै, मैला कदे न होइ।
शून्य सरोवर हसला, दादू विरला कोइ॥ ८७॥

सन्त सदा सयम से रहता है, उसका अन्त करण अविद्या-मल से मैला कभी नहीं होता, किन्तु ब्रह्म-सरोवर पर रहने वाला ऐसा जीवन्मुक्त सत-हस कोई विरला ही मिलता है।

साहिब का उनहार सब, सेवक माहीं होइ।
दादू सेवक साधु सो, दूजा नाही कोइ॥ ८८॥

परमात्मा के समान ही भक्त मे दिव्य गुण होते है। अत वह परमात्मा ही श्रेष्ठ भक्त के रूप मे अवतरित होता है। इस कारण कोई भी श्रेष्ठ भक्त परमात्मा से भिन्न नही होता।

जब लग नैन न देखिये, साधु कहै ते अंग।
तब लग क्यो कर मानिये, साहिब का प्रसंग॥ ८९॥

सतजन मे ब्रह्म साक्षात्कार होने पर जो निर्द्वन्द्वता, समतादि लक्षण आते बताते है, जब तक वे लक्षण विचार-नेत्रो से जिस व्यक्ति मे नही दिखाई देते, तब तक उस व्यक्ति की यह बात कि—"मुझे ब्रह्म का साक्षात्कार हो गया है" कैसे मानी जा सकती है?

दादू सो जन साधू सिद्ध सो, सोइ सकल शिरमौर।
जिहि के हिरदै हरि बसै, दूजा नाही और॥ ९०॥

जिसके हृदय मे हरि का विशेष रूप से निवास है, वही सत है, वही सिद्ध है और वही सर्व-श्रेष्ठ है। दूसरा और कोई भी सत, सिद्ध और सर्वश्रेष्ठ नही हो सकता।

दादू अवगुण छाडै गुण गहै, सोई शिरोमणि साध।
गुण अवगुण तै रहित है, सो निज ब्रह्म अगाध॥ ९१॥

जो अपने हृदय के काम-क्रोधादिक अवगुणो को त्यागे और दूसरो के अवगुण देखना त्यागे तथा क्षमादि दैवी गुणो को धारण करे और दूसरो के गुण ही देखे, वही शिरोमणि सत माना जाता है और जो गुण-अवगुण से रहित है, वह तो सबका निज-स्वरूप अगाध ब्रह्म रूप ही होता है।

जग जन विपरीत

दादू सैन्धव फटिक पषाण[1] का, ऊपरि एकै रंग।
पानी मांही देखिये, न्यारा न्यारा अग॥ ९२॥

९२-९४ मे जगत् के पाखडी जन और सन्त जन की विपरीतता बता रहे है—सैधव नमक का और श्वेत बिल्लौर पत्थर[1] का ऊपर से तो एक-सा ही रग दिखाई देता है, किन्तु जल मे डालकर देखो तो उनका स्वरूप भिन्न-भिन्न प्रतीत होता है। सैधव पानी मे घुल जायगा, किन्तु पत्थर नहीं। वैसे ही सन्त और पाखडी जनो का ऊपर से भेष तो एक सा ही भासता है किन्तु साधना की परिपाकावस्था मे अपने आप ही भेद खुल जाता है, वही आगे दिखा रहे है।

दादू सैंधव के आपा नहीं, नीर खीर परसंग।
आपा फटिक पषाण के, मिलै न जल के संग॥ ९३॥

सैधव मे कठोरता न होने से वह जल मे दुग्ध के समान मिल जाता है। श्वेत पत्थर मे कठोरता होने से वह जल मे नही मिलता। वैसे ही सच्चे सत मे जीवत्व अहकार न होने से वह ब्रह्म मे लय हो जाता है। दभी मे जीवत्व अहकार होने से वह ब्रह्म मे लय नही हो पाता।

दादू सब जग फटिक पषाण है, साधू सैन्धव होइ।
सैन्धव एकै ह्वै रह्या, पानी पत्थर दोइ॥ ९४॥

सपूर्ण जगत के दभी-जन श्वेत पत्थर के समान है और सत सैन्धव के समान है। सत-सैन्धव ब्रह्म-जल मे मिल कर अद्वैत भाव से रहता है और दभी-पत्थर ब्रह्म-जल से भिन्न द्वैत भाव से रहता है।

साधु परमार्थी

को साधु जन उस देश का, आया इहिं संसार।
दादू उसको पूछिये, प्रीतम के समचार॥ ९५॥

९५-९८ मे सत परमार्थी होते है, यह कह रहे है—जिसमे परब्रह्म का साक्षात्कार होता है, उस निर्विकल्प समाधि देश का यदि कोई सत लोक-कल्याणार्थ इस ससार दशा मे उतर कर उपदेश करता हो तो उसको अपने प्रियतम परब्रह्म की प्राप्ति के साधन रूप समाचार पूछना चाहिए, क्योकि उसे पूरा अनुभव है।

समाचार सत पीव के, को साधू कहैगा आइ।
दादू शीतल आतमा, सुख में रहै समाइ॥ ९६॥

परब्रह्म-प्राप्ति के सच्चे साधन रूप समाचारो का उपदेश, परब्रह्म को प्राप्त कोई विरला ही सन्त आकर करेगा। उसके उपदेश द्वारा विषमता रूप जलन मिट कर बुद्धि को समता रूप शीतलता प्राप्त होगी और वह मनन-निदिध्यासन द्वारा ब्रह्मानन्द मे लीन रहेगी।

साधु शब्द सुख बरषि हैं, शीतल होइ शरीर।
दादू अंतर आतमा, पीवै हरि जल नीर॥ ९७॥

सत अपने शब्दो द्वारा आनन्द की वर्षा करते है जिससे ईर्ष्यादि रूप जलन मिट कर अन्त करण समता रूप शीतलता को प्राप्त होता है और जैसे तालाब का जल नदी के जल को पान करता है, वैसे ही अन्तर-साक्षी आत्मा रूप नीर ब्रह्म-साक्षात्कार रूप जल को पान करता है=ब्रह्म से अभेद हो जाता है।

दादू दत[1] दरबार का, को साधू बाँटै आइ।
तहाँ रामरस पाइये, जहँ साधू तहँ जाइ॥ ९८॥

कोई विरले उत्तम सत ही आकर सत्सग-सभा मे भगवद् प्राप्ति का हेतु उपदेश रूप दान[1] वितरण करते है। अत जहा सन्त हो, वहा ही साधक जाय, क्योकि वहा ही राम-भक्ति-रस का उपदेश प्राप्त होता है।

चौप चर्चा

दादू श्रोता स्नेही राम का, सो मुझ मिलवहु आणि[1]।
तिस आगे हरिगुण कथू, सुनत न करई काणि[2] ॥ ९९ ॥

भगवत्-कथा कहने की उत्कठा दिखा रहे है—हे परमेश्वर ! हमे वह श्रोता आकर[1] मिले जो आपका स्नेही हो और सत्सग मे आकर श्रवण करते समय लोक-लज्जादि[2] न करके प्रेम-पूर्वक मनन द्वारा धारण करे। हम उसके आगे हरिगुण कथन करेंगे।

साधु परमार्थी

सब ही मृतक समान हैं, जीया तब ही जाणि ।
दादू छांटा अमी का, को साधू बाहै आणि ॥ १०० ॥

१००-१०४ मे साधु परमार्थी होते है यह कहते है—हरि-विमुख सभी प्राणी बारबार मरने के कारण मृतक समान ही है। यदि कोई ज्ञानी सन्त भाग्यवश आकर ज्ञानामृत की उपदेश रूप विदु जिस पर डालता है और वह उसे धारण करके ब्रह्म को अभेद रूप से प्राप्त कर लेता है, तब ही उसे जीवित जानो।

सब ही मृतक ह्वै रहे, जीवैं कौन उपाइ।
दादू अमृत रामरस, को साधू सींचै आइ ॥ १०१ ॥

सभी ससारी प्राणी मृतक तुल्य हो रहे है, वे किस उपाय से जीवित हो सकते है ? हा, एक उपाय है, यदि कोई परमार्थी सन्त आकर उन पर राम-रस रूप अमृत का छिडकाव करे तो वे जीवित हो सकते है।

सब ही मृतक देखिये, क्यों कर जीवैं सोइ।
दादू साधू प्रेमरस, आणि पिलावै कोइ ॥ १०२ ॥

सभी ससारी प्राणी हरि-भक्ति से हीन होने से भीतर से मृतक तुल्य ही है। वे किस प्रकार जीवित हो सकते है ? हाँ, यदि कोई परमार्थी सन्त आकर भगवत् प्रेमा-भक्तिरस पान करावे तो जीवित हो सकते है।

सब ही मृतक देखिये, किहि विधि जीवै जीव ।
साधु सुधारस आन कर, दादू बरषै पीव ॥ १०३ ॥

सभी ससारी प्राणी आत्मज्ञान न होने से मृतकवत् ही देखे जाते है। ये जीव किस प्रकार जीवित हो सकते है ? हा, यदि परमात्मा, परमार्थी सन्त-बादल को यहा ही लाकर ब्रह्म-ज्ञान-सुधा-रस की वृष्टि करावे, तो जीवित हो सकते है।

हरिजल बरषै बाहिरा[1], सूखै काया खेत।
दादू हरिया होइगा, सीचनहार सुचेत ॥ १०४ ॥

सत-बादल से हरि-भक्तिप्रद उपदेश रूप जल की वर्षा हो किन्तु श्रोता यदि बहिर्मुखी हो तो उसकी काया-भूमि का अन्त करण खेत सूखेगा व उपदेश धारण न करने से काम-क्रोधादि के झझावात[१] द्वारा विनष्ट होगा। यदि अन्त करण खेत को सीचने वाला जिज्ञासु भली प्रकार सावधान होगा तो श्रुति द्वारा उपदेश-जल को अन्त करण खेत मे ले जायेगा और उससे भक्ति ज्ञानादि की उत्पत्ति द्वारा अन्त करण-खेत ब्रह्मानन्द रूप हरियाली को प्राप्त होगा।

कुसंगति

गंगा यमुना सरस्वती, मिलैं जब सागर मांहिं ।
खारा पानी है गया, दादू मीठा नांहिं ॥ १०५ ॥

१०५-११० मे कुसगति के त्याग की प्रेरणा कर रहे है—गगा, यमुना, सरस्वती आदि नदिया जब क्षार-समुद्र मे मिलती है, तब उनका मधुर जल, मधुर न रहकर खारा हो जाता है। वैसे ही कुसग से अच्छा अन्त करण भी बुरा बन जाता है। अत कुसगति को त्यागो।

दादू राम न छाडिये, गहिला तज संसार ।
साधू संगति शोध ले, कुसंगति संग निवार ॥ १०६ ॥

हे बावरे प्राणी ! सासारिक प्रीति को त्याग दे किन्तु राम-नाम चिन्तन को कभी मत त्याग। कुसगति और साधारण मनुष्यो के सग को त्याग कर सतो की सगति द्वारा अपने स्वरूप की खोज कर।

दादू कुसंगति सब परिहरै, मात पिता कुल कोइ ।
सजन स्नेही बान्धवा, भावै आपा होइ ॥ १०७ ॥

माता, पिता, बान्धव, कुल, जाति, प्रेम, मित्रादिक का सग यदि बुरा हो तो त्याग देना चाहिए और चाहे अपने ही क्रोधादिक अवगुण हो, उन सबको को भी त्याग देना चाहिए।

अज्ञान मूर्ख हितकारी, सज्जन॰ समो रिपुः ।
ज्ञात्वा त्यजंति ते, निरामयी मनोजितः ॥ १०८ ॥

आत्म-ज्ञान तथा व्यावहारिक ज्ञान से शून्य मूर्ख यदि शुभ-चिन्तक मित्र भी हो तो भी उसको शत्रु के समान जान कर त्यागते है, वे ही मन को जीत कर जन्म-मरण-रोग से मुक्त होते है।

कुसंगति केते गये, तिनका नांव न ठांव ।
दादू ते क्यों उद्धरैं, साधु नहीं जिस गांव ॥ १०९ ॥

कुसगति के द्वारा कितने ही प्राणी नष्ट हो गये है, उनका ससार मे न नाम रहा है और न स्थान ही रहा है। जिस ग्राम मे सत नही रहते, उस ग्राम के लोगो का उद्धार कैसे हो सकता है ?

भाव भक्ति का भंग कर, बटपारे[१] मारहिं बाट[२] ।
दादू द्वारा मुक्ति का, खोले जडैं कपाट ॥ ११० ॥

जो लोग भाव-भक्ति के द्वारा मुक्ति-धाम-द्वार के कपाट खोलते है और उसमे प्रवेश करने के लिए आगे बढते है, तब दुर्जन और दुर्गण रूप लुटेरे' मार्ग' मे ही विषयो मे प्रवृत्त करना रूप मारपीट द्वारा उनके भाव-भक्ति को छीन कर, मुक्ति-धाम-द्वार के कपाट बन्द कर देते है।

सत्संग महिमा

साधु सँगति अंतर पडे, तो भागेगा किस ठौर ।
प्रेम भक्ति भावै नहीं, यहु मन का मत और ॥ १११ ॥

१११-११२ मे किसी साधक को सत्सग का माहात्म्य कह रहे है—हे साधक ! यदि सत-सगति से तू उपराम (अन्तराय) करने लगेगा, तो इस सासारिक कष्ट निवारण के लिए सत-सगति से भाग कर किस स्थान मे जायगा ? सत्सगति के अतिरिक्त कोई उपाय नही है। यदि तुझे भगवान् की प्रेमाभक्ति अच्छी नही लगती तो तेरे मन का यह सिद्धान्त परमार्थ-पथ से भिन्न ही है।

दादू राम मिलन के कारणैं, जे तू खरा उदास ।
साधू सगति शोध ले, राम उन्हो के पास ॥ ११२ ॥

हे साधक ! यदि तू राम के साक्षात्कारार्थ सच्चा आतुर है तो सन्तो की सगति द्वारा राम की खोज कर। कारण, राम विशेष रूप से सन्तो के पास ही रहते है।

पुरुष प्रकाशी (संत महिमा)

ब्रह्मा, शंकर, शेष, मुनि, नारद, ध्रुव, शुकदेव ।
सकल साधु दादू सही, जे लागे हरि सेव ॥ ११३ ॥

११३-११४ मे ज्ञान-प्रकाश युक्त सतो की महिमा कह रहे है—ब्रह्मा, शकर, शेष, वशिष्ठादि मुनि, नारदादि देवर्षि, ध्रुवादि राजर्षि, शुकदेवादि विरक्त, जो भी भगवद् भक्ति मे लगे हुये ज्ञानी सन्त है, वे सब ही सच्चे सत है और उनकी महिमा ससार मे प्रकट है।

साधु कमल हरि बासना, सत भ्रमर सग आइ।
दादू परिमल ले चले, मिले राम को जाइ ॥ ११४ ॥

ससार-सरोवर मे ज्ञानी सन्त कमल रूप है। ब्रह्म का अपरोक्ष ज्ञान ही उनमे सुगध है। साधक सन्त-भ्रमर उनके सत्सग मे आकर, ब्रह्म का मूल तत्त्व-ज्ञान रूप परागण लेकर, देहाध्यासादि रहित आगे चल पड़ते है और निर्विकल्प अवस्था मे जाकर अभेद रूप से राम मे मिल जाते है।

साधु सज्जन

दादू सहजैं मेला होइगा, हम तुम हरि के दास ।
अतरगति तो मिल रहे, पुन. प्रकट परकास ॥ ११५ ॥

सभी सन्त एकात्मभाव से मिले ही रहते है, यह कहते है—हम और तुम हरि के भक्त है, अत अन्त मे तो हरि के स्वरूप मे अपना एकता रूप मिलन सहज ही होने वाला है और अब भी बुद्धि की विचार रूप गति एक होने से वा साक्षी रूप से भीतर से तो मिल ही रहे है, फिर कभी प्रकट रूप से शरीरो द्वारा मिल कर भी अपने हृदय के भावो को प्रकाशित करेंगे।

प्रसग कथा—सन्त प्रवर दादूजी महाराज आँधी ग्राम मे आये हुये है, यह जान कर दोसा की टहलडी पहाडी पर साधना कर रहे उनके शिष्य जगजीवन जी ने गुरुजी के दर्शन की इच्छा की, तब उनके सतोषार्थ दादूजी ने यह साखी लिख भेजी थी।

साधु महिमा

दादू मम शिर मोटे भाग, साधों का दर्शन किया।
कहा करै जम काल, राम रसायन भर पिया॥ ११६॥

सन्त-महिमा कह रहे है—आज बडे भाग्य से ही हमने सन्तो का दर्शन किया है। जिनने सतो के सत्सग मे राम-भक्ति-रसायन रुचि भर पान किया है, उनका नरक के अधिदेव यम और काल क्या कर सक्ते हैं ? यही साखी नारायणा ग्राम मे प्राचीन सतो के दर्शन करके कही थी। प्रसग कथा दृ मु सि त ११—२६३ मे देखो।

साधु सामर्थ्य

दादू एता अविगत आप तें, साधों का अधिकार।
चौरासी लख जीव का, तन मन फेरि सँवार॥ ११७॥

११७-१२१ मे सन्तो की सामर्थ्य बता रहे है—मन-वाणी के अविषय परमात्मा ने अपने आप प्रसन्नता से ही ससार के संतो को इतना अधिकार दे रक्खा है कि वे चौरासी लाख योनियो के जीवो के बिगडे हुये तन-मन को पुन सुधार देते है।

विष का अमृत कर लिया, पावक का पाणी।
बाँका सूधा कर लिया, सो साधु विनाणी[1]॥ ११८॥

जो पहले अन्त करण की वृत्ति विषयाकार होने से विष रूप थी, उसे ब्रह्माकार करके जिसने अमृत कर लिया, क्रोधाग्नि को क्षमा रूप जल बना लिया, भगवत् से विमुख चलने वाले मन को विचार द्वारा सरल करके भगवान् के सन्मुख कर लिया, वही विज्ञानी[1] सन्त है।

दादू ऊरा[1] पूरा कर लिया, खारा मीठा होइ।
फूटा सारा कर लिया, साधु विवेकी सोइ॥ ११९॥

दैवी गुणों की संख्या जो कम[1] थी उसे दैवी गुणों से परिपूर्ण किया, विषय-वासना रूप खारेपन को हटा कर मधुर भक्ति-रस से अन्त करण को मधुर बनाया, आशा रूप छिद्र को वैराग्य रूप लारा लगा कर अन्त करण-घट को ब्रह्मज्ञान-रस रखने योग्य बनाया, वही विवेकी सन्त है।

बंध्या मुक्ता कर लिया, उरझ्या सुरझ समान।
वैरी मिंता कर लिया, दादू उत्तम ज्ञान॥ १२०॥

झूठा साचा कर लिया, काचा कंचन सार।
मैला निर्मल कर लिया, दादू ज्ञान विचार ॥ १२१ ॥

जिसने मिथ्यावादियो को सत्यवादी बना लिया, साधन मे कच्चो को सुवर्ण-सार के समान पक्का और सुन्दर बना लिया, अविद्या-मल को ज्ञान द्वारा नष्ट करके निर्मल ब्रह्म रूप बना लिया, उसी सन्त का ज्ञान विचारने योग्य है और वही श्रेष्ठ सन्त है।

अमिट पाप

काया कर्म लगाइ कर, तीरथ धोवै आइ।
तीरथ मांहीं कीजिये, सो कैसे कर जाइ ॥ १२२ ॥

१२२-१२३ मे कहते है—पवित्र होने के स्थान पर पाप करने से वह पाप अमिट हो जाता है-कुकर्मों द्वारा अन्त.करण के पाप लगाते है और तीर्थों मे आकर उसे धोते है किन्तु तीर्थों मे जो पाप किया जाता है, वह किस प्रकार जायगा ? वह तो अमिट हो जाता है।

जहँ तिरिये तहँ डूबिये, मन मे मैला होइ।
जहँ छूटै तहँ बंधिये, कपट न सीझै कोइ ॥ १२३ ॥

जिस मनुष्य शरीर मे आकर भवसागर को पार किया जाता है, उस मनुष्य शरीर को पाकर भी यदि मन मे अविद्या-मल रहेगा तो डूबेगा ही । जिन सन्तो के सत्सग मे मुक्ति प्राप्त होती है, उसमे जाकर भी यदि मन मे विषय-चिन्तन ही रहा तो उल्टा बन्धन मे ही पड़ेगा। क्योकि, कपट से कोई भी ब्रह्म प्राप्ति रूप सिद्धावस्था को प्राप्त नही होता।

सत्संग महिमा

दादू जब लग जीविये, सुमिरण संगति साध।
दादू साधू राम बिन, दूजा सब अपराध ॥ १२४ ॥

इति साध का अग समाप्त ॥ १५ ॥ सा १६५७ ॥

सन्त-महिमा पूर्वक सत्सग करने की प्रेरणा कर रहे है—ससार मे जब तक जीवित रहे तब तक राम-नाम का स्मरण और सन्तो की सगति करते ही रहना चाहिए। क्योकि राम-भजन और सन्त-सगति से अन्य जो भी कार्य है, वे पाप मिश्रित होने से पाप रूप है।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका साधु का अग समाप्त ॥ १५ ॥

अथ मध्य का अंग १६

साधु-अग के अनतर सतो की पक्ष-विपक्ष से रहित मध्य स्थिति का वर्णन करने के लिए, 'मधि का अग' कथन मे प्रवृत्त मगल कर रहे है—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत. ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक पक्ष-विपक्ष से पार होकर मध्य मार्ग द्वारा ब्रह्म को प्राप्त करते है, उन निरजन राम, सद्गुरु और सतो को हम अनेक प्रणाम करते है।

दादू द्वै पख रहिता सहज सो, सुख दुख एक समान ।
मरै न जीवै सहज सो, पूरा पद निर्वाण ॥ २ ॥

२-६ मे मध्य-मार्ग के साधक की विशेषता तथा उसकी सेवा करने की प्रेरणा कर रहे है—जिसकी विचार दृष्टि मे सासारिक सुख-दु ख एक समान है, वह अनायास ही सम्प्रदायादि द्वैत-भाव के पक्ष-विपक्ष से रहित होता है और वही सन्त जन्म-मरण से रहित सहज-स्वरूप निर्वाण-पद को प्राप्त होता है।

सुख दुख मन मानै नहीं, राम रंग राता ।
दादू दोन्यों छाड सब, प्रेम रस माता ॥ ३ ॥

जो सन्त राम-रग मे रत होने के कारण सुख-दु ख होने पर भी मन मे नही मानता और द्वैत भाव जन्य पक्ष-विपक्ष दोनो भावनाओ से होने वाले सभी विचारो को छोडकर प्रेमाभक्ति-रस मे मस्त है, वही मध्य-मार्ग का साधक है।

मति मोटी उस साधु की, द्वै पख रहित समान।
दादू आपा मेट कर, सेवा करै सुजान ॥ ४ ॥

जो बुद्धिमान् सन्त द्वैत भाव से उत्पन्न अपने-पराये सम्प्रदाय के पक्ष-विपक्ष से रहित अहकार को हटाकर सबकी सेवा करते हुये भगवद् भक्ति करता है, उस मध्य मार्ग मे स्थित सन्त का ज्ञान महान् है।

कछु न कहावै आपको, काहू संग न जाइ ।
दादू निर्पख ह्वै रहै, साहिब सौं ल्यौ लाइ ॥ ५ ॥

जो अपने को योगी, ज्ञानी आदि कहलाने का प्रयत्न नही करता और किसी के सग लगकर राग-द्वेषादि द्वन्द्वो मे नही पडता, पक्ष-विपक्ष से रहित होकर सदा परब्रह्म मे अपनी वृत्ति लगाये रहता है, वही मध्य-मार्ग मे स्थित सन्त है।

सुख दुख मन मानै नहीं, आपा पर सम भाइ ।
सो मन मन कर सेविये, सब पूरण ल्यौ लाइ ॥ ६ ॥

जो सुख-दुःख होने पर भी मन मे नही मानता, अपने पराये सबको सम भाव से देखता है और सपूर्ण विश्व मे व्यापक ब्रह्म मे ही अपने मन की वृत्ति निरतर लगाये रहता है, वही मध्यमार्ग मे स्थित मन वाला सन्त है। उसकी सेवा मन से करनी चाहिए।

ना हम छाड़ै ना गहै, ऐसा ज्ञान विचार।
मध्य भाव सेवै सदा, दादू मुक्ति द्वार ॥ ७ ॥

७-८ मे मध्यमार्ग के सन्त की स्थिति बता रहे है—हम न कुछ त्यागते और न ग्रहण करते, ऐसे जिनके ज्ञान के विचार है और पक्ष-विपक्ष से रहित मध्य-भाव से सदा भगवद्-भक्ति करते है, वे ही मुक्ति-धाम के द्वार पर स्थित है।

आपा[२] मेटे मृत्तिका[१], आपा[३] धरै अकास ।
दादू जहँ जहँ द्वै नही, मध्य निरंतर वास ॥ ८ ॥

पृथ्वी[१] आदि भूतो से रचित मरण-धर्मा स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर के दुर्वल, गौर, सुखी, दु खी आदि अहकार[२] को त्याग करके, मै उसी व्रह्म का स्वरूप हूँ, इस प्रकार अपना अहकार[३] परव्रह्म-आकाश मे स्थापन करे और जिस-जिस भावना मे पक्ष-विपक्ष रूपादि द्वैत न हो, उसी मध्य मार्ग की भावना मे सदा रहे, वही मध्य-मार्ग का सन्त है ।

ध्येय-परम स्थान निरूपण

दादू इस आकार ते, दूजा सूक्षम लोक ।
तातैं आगैं और है, तहँवाँ हर्ष न शोक ॥ ९ ॥

९-१६ मे ध्येय व्रह्म सवधी विचार कर रहे है—इस स्थूलाकार अन्नमय कोश से आगे प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय कोशरूप सूक्ष्म-लोक है और आगे आनन्दमय कोश है। उससे आगे साक्षी रूप व्रह्म है, उसमे हर्ष-शोकादि द्वन्द्व नही है ।

दादू हद्द छाड बेहद्द में, निर्भय निर्पख होइ ।
लाग रहै उस एक सौ, जहां न दूजा कोइ ॥ १० ॥

१०-११ मे ध्येय स्वरूप मे वृत्ति लगाने की प्रेरणा कर रहे है—सप्रदायादि की पक्षरूप हद्द छोड़, निर्पक्ष होकर तथा घटा, दो घटा साधन करने की हद्द को छोड़कर जिसमे किसी भी प्रकार का द्वैत भाव नहीं हे, उस एक अद्वेत व्रह्म के चिन्तन मे निरतर वृत्ति लगाये रहना चाहिए।

निराधार घर कीजिये, जहँ नाहीं धरणि अकास ।
दादू निश्चल मन रहै, निर्गुण के विश्वास ॥ ११ ॥

जहा पृथ्वी और आकाश आधार रूप से नही रहते, उस निराधार परव्रह्म को ही अपना आश्रय रूप घर वना कर, उसी का चिन्तन करो, कारण, निर्गुण व्रह्म के दृढ विश्वास से ही मन निश्चल रहता है ।

अधर चाल कबीर की, आसघी[१] नहि जाइ ।
दादू डाकै मिरग ज्यों, उलट पड़ै भुइ आइ ॥ १२ ॥

१२-१३ मे अपने को कबीर के समान बताने वाले एक साधु को कह रहे है—भाई ! कबीर की साधना रूप गति, माया रहित अधर ब्रह्म मे थी। वह साधन पद्धति सर्वसाधारण से नहीं अपनाई[१] जाती । पक्षी के समान आकाश मे मृग उछलता तो है, किन्तु पुन पृथ्वी पर ही आ पडता है। वैसे ही कोई कबीर की चाल पकड़ता है तो भी पुन गिर जाता है, उस स्थिति मे रहना कठिन है।

दादू रहणि[१] कबीर की, कठिन विषम यहु चाल[२] ।
अधर[३] एक सौ मिल रह्या, जहा न झंपै काल ॥ १३ ॥

कबीर जैसी निष्ठा[1] कठिन है और उसकी यह निर्गुण साधना[2] भी अति कठिन है। अपनी साधना और निष्ठा द्वारा, जहा काल झपट नही मार सकता, उस अद्वैत ब्रह्म[3] मे ही वह मिल कर रह रहा है।

निराधार निज भक्ति कर, निराधार निज सार ।
निराधार निज नाम ले, निराधार निराकार ॥ १४ ॥

१४-१६ मे निर्गुण ब्रह्म की उपासना का फल कहते है—जो विश्व का सार अपना निज-स्वरूप निराधार ब्रह्म है, अपने मन को मायिक आधारो से रहित करके उसी की भक्ति करो। जो निराधार ब्रह्म के गुण, कर्म, स्वभावादि जन्य नामो से रहित ॐ, सत्यराम आदि नामो का चिन्तन करता है, वह निराधार निराकार ब्रह्म को ही प्राप्त होता है।

निराधार निज रामरस, को साधू पीवनहार ।
निराधार निर्मल रहै, दादू ज्ञान विचार ॥ १५ ॥

मायिक आधारो से रहित होकर निज स्वरूप राम का चितन-रसपान करने वाले कोई विरले ही सन्त होते है और वे ब्रह्म ज्ञान के विचार द्वारा निराधार निर्मल ब्रह्म रूप होकर ही रहते है।

जब निराधार मन रह गया, आतम के आनन्द ।
दादू पीवै रामरस, भेटै परमानन्द ॥ १६ ॥

जब मन मायिक विषयो के आश्रय से रहित, आत्म-सुख मे स्थिर रहने लगता है तब साधक राम-भक्ति-रस पान करके ज्ञान द्वारा परमानन्द को प्राप्त होता है।

माया

दुहुँ बिच राम अकेला आपै, आवण जाण न देई ।
जहँ के तहँ सब राखे दादू, पार पहुँते सेई ॥ १७ ॥

१७ मे कहते है—सन्त को राम ही मध्य-मार्ग मे रखते है-मायिक प्रपच और सत के बीच मे स्वय अद्वैत राम रहते है। मायिक प्रपच को सन्त के अन्त करण मे नही आने देते और सन्त की वृत्ति अपने मे ही रोक लेते है, मायिक प्रपच मे नही जाने देते। इस प्रकार राम बीच मे रह कर माया और सन्तो को अपने-अपने स्थान मे ही रखते है , तब ही सन्त राम की भक्ति द्वारा ससार के पार पहुँच कर परमानन्द स्वरूप को प्राप्त हुये है।

मध्य निष्पक्ष

चलु दादू तहँ जाइये, जहँ मरै न जीवै कोइ ।
आवागमन भय को नहीं, सदा एक रस होइ ॥ १८ ॥

१८-२१ मे मध्य मार्ग द्वारा ब्रह्म-देश मे जाने की प्रेरणा कर रहे है—हे साधको ! निर्विकल्प समाधि-भूमि मे एक ब्रह्म देश है। वहाँ जन्म-मरण और लोकातरो मे जाने-आने आदि किसी भी प्रकार का भय नही है। वहा जो जाता है वह भी सदा एक रस रूप होकर ही रहता है। अत मध्य निष्पक्ष मार्ग द्वारा चलकर वहा ही जाना चाहिए।

चलु दादू तहँ जाइये, जहँ चद सूर नहिं जाइ।
रात दिवस की गम नहीं, सहजै रह्या समाइ ॥ १९ ॥

जहाँ इस देश के चन्द्र-सूर्य वा इड़ा-पिगला, हमारे रात्रि-दिन वा ज्ञान-अज्ञान आदि नही जा सकते, मध्य निष्पक्ष मार्ग द्वारा चल कर हमे उस ब्रह्म-देश मे जाना चाहिए। जो भी वहा गया है, वह अनायास उसी मे समाकर उसी का रूप होकर रहा है।

चलु दादू तहँ जाइये, माया मोह तै दूर।
सुख दुख को व्यापै नहीं, अविनाशी घर पूर ॥ २० ॥

जो मायिक-मोह से परे, सब विश्व मे परिपूर्ण, सासारिक सुख-दुख के प्रभाव से रहित हमारा अविनाशी ब्रह्मरूप घर है, मध्य मार्ग द्वारा चल कर उसी ब्रह्म मे जाना चाहिए।

चलु दादू तहँ जाइये, जहँ जम जौरा को नाहिं।
काल मीच लागै नहीं, मिल रहिये ता माहि ॥ २१ ॥

जहा यम का दड देना आदि कोई भी बल नही चलता, काल का भेद वा आयु क्षीण होने का और मृत्यु का भय भी नही लगता, मध्य निष्पक्ष मार्ग द्वारा चलकर वहा ही जाना चाहिए और उसी ब्रह्म मे मिल कर रहना चाहिए।

एक देश हम देखिया, तहँ ऋतु नहि पलटै कोइ।
हम दादू उस देश के, जहाँ सदा एक रस होइ ॥ २२ ॥

२२-२७ मे निर्विकल्प समाधि मे अनुभूत ब्रह्म-देश का परिचय दे रहे है—हमने निर्विकल्प समाधि मे अद्वैत ब्रह्म रूप देश देखा है। वहा षट् ऋतु परिवर्तन वा अवस्था परिवर्तन नहीं होता, जहा पहुँचने पर साधक एकरस होकर ही सदा रहता है। हम भी उसी देश के है।

एक देश हम देखिया, जहँ बस्ती ऊजड नाहिं।
हम दादू उस देश के, सहज रूप ता माहि ॥ २३ ॥

जहा दैवी-गुण और आसुर-गुण रूप ग्रामो का बसना उजडना नहीं होता तथा जिसमे रहने वाले का स्वरूप सहज निर्द्वन्द्व होता है, वही अद्वैत ब्रह्म-देश हमने निर्विकल्प समाधि मे देखा है और हम उसी देश के है।

एक देश हम देखिया, नहि नेडे नहिं दूर।
हम दादू उस देश के, रहै निरंतर पूर ॥ २४ ॥

निर्विकल्प समाधि मे हमने अद्वैत ब्रह्म रूप देश देखा है। वह सबका निज होने से समीप वा दूर नही है। निरतर सब मे परिपूर्ण रूप से रहता है। उसी देश के हम है।

एक देश हम देखिया, जहँ निश दिन नाहीं घाम।
हम दादू उस देश के, जहँ निकट निरंजन राम ॥ २५ ॥

जहाँ इन्द्रिय मन का अज्ञान रूप रात्रि, ज्ञान रूप दिन, अज्ञान जन्य दु ख रूप घाम, इन्द्रिय ज्ञान जन्य सुखरूप छाया नही है और जहा निरजन राम अति निकट निज स्वरूप से प्रतीत होते है, वह निर्विकल्प समाधि रूप एक देश हमने देखा है और हम उसी देश के है।

बारह मासी नीपजै, तहां किया परवेश ।
दादू सूखा ना पडै, हम आये उस देश ॥ २६ ॥

जहा बारह मास ही परमानन्द रूप अन्न उत्पन्न होता रहता है, अज्ञान रूप अनावृष्टि कभी नही होती, हमने उसी निर्विकल्प समाधि-देश मे आकर ब्रह्म मे प्रवेश किया है।

जहॅ वेद कुरान की गम नहीं, तहां किया परवेश ।
तहँ कछु अचरज देखिया, यहु कछु औरै देश ॥ २७ ॥

जिस निर्विकल्प समाधि-भूमि के ब्रह्म-देश मे हमने आत्म रूप से प्रवेश किया है वहा एकरसता, सत्यतादि आश्चर्य देखने मे आते है। यह देश मायिक ससार से भिन्न ही है।

घर वन

काहे दादू घर रहै, काहे वन-खड जाइ ।
घर वन रहिता राम है, ताही सौ ल्यौ लाइ ॥ २८ ॥

२८-३२ मे घर वा वन मे रहने से ब्रह्म प्राप्ति नही होती, यह कहते है—क्यो तो घर मे रहने का आग्रह रक्खे और क्यो वन मे जाय, राम तो घर और वन के आश्रय से रहित सर्वत्र व्यापक है। अत मध्य निष्पक्ष मार्ग की साधन पद्धति से उस व्यापक राम मे ही वृत्ति लगा।

दादू जिन प्राणी कर जानिया, घर वन एक समान ।
घर मांहीं वन ज्यों रहै, सोई साधु सुजान ॥ २९ ॥

जिस प्राणी ने राम को व्यापक समझ कर घर और वन को एक जैसा जाना है और वन के समान विरक्त भाव से घर मे रहकर भजन करता है , वही बुद्धिमान् सन्त है।

सब जग माहीं एकला, देह निरंतर वास ।
दादू कारण राम के, घर वन मांहिं उदास ॥ ३० ॥

जगत् मे रहता हुआ भी सम्पूर्ण सासारिक भोग-वासनाओ से अलग रहकर निरतर शरीर के भीतर अन्त करण मे ही वृत्ति का निरोध करके घर-वनादि सभी स्थानो मे राम के साक्षात्कारार्थ खिन्न रहता है वही श्रेष्ठ भक्त है।

घर वन मांहीं सुख नहीं, सुख है सांई पास ।
दादू तासौं मन मिल्या, इन तैं भया उदास ॥ ३१ ॥

घर वा वन मे सुख नही है, सुख तो भजन द्वारा परमात्मा के समीप रहने मे है। अत इन घर, वनादि से विरक्त होकर हमारा मन तो चिन्तन द्वारा परमात्मा से मिल रहा है।

बैरागी वन मे बसे, घरबारी घर माहि ।
राम निराला रह गया, दादू इनमे नाहि ॥ ३२ ॥

विरक्त वन मे रहते है और गृहस्थ घर मे। यदि वन वा घर मे निवास करने से राम मिले तो सभी विरक्तो को वा सभी गृहस्थो को मिल जाना चाहिए। राम तो घर-वनादि मे व्यापक रह कर भी इनसे अलग है। वह मध्य निष्पक्ष साधना द्वारा ही मिलता है।

सुमिरण नाम निस्संशय

दादू जीवन मरण का, मुझ पछतावा नाहि ।
मुझ पछतावा पीव का, रह्या न नैनहुँ मांहि ॥ ३३ ॥

३३-३५ मे सशय रहित नाम-स्मरण की निष्ठा दिखा रहे है—अधिक आयु से कमजोर होकर जीने का वा शीघ्र मरने का मुझे दु ख नही, किन्तु मुझे तो यही अनुताप है कि—मेरे अन्त - नेत्रो से परमात्मा का साक्षात्कार नही हो रहा है।

स्वर्ग नरक संशय नही, जीवन मरण भय नाहि ।
राम विमुख जे दिन गये, सो सालै मन माहिं ॥ ३४ ॥

स्वर्ग-नरक है या नही, पुण्य-पाप करने वाले स्वर्ग-नरक मे जाते है या नहीं, मुझे स्वर्ग मिलेगा या नरक, इत्यादिक सशय तो हमारे मन मे नही है। न अधिक आयु से वृद्धावस्था के कष्ट और न शीघ्र मृत्यु का ही हमे भय है। राम-भजन बिना जो दिन व्यर्थ चले गये है, उन्ही का हमारे मन मे दु ख है।

स्वर्ग नरक सुख दुख तजै, जीवन मरण नशाइ ।
दादू लोभी राम का, को आवे को जाइ ॥ ३५ ॥

नाश होने वाले स्वर्ग-नरक के सुख-दु ख और जीवन-मरण के भय सतो ने कर्तव्य-भाव और द्वन्द्वो को छोड कर त्याग दिये है। कारण, राम के साक्षात्कार का लोभी कौन सत स्वर्ग मे जाकर जन्म-मृत्यु मय मृत्युलोक मे आयेगा ? वह तो राम मे ही मिलना चाहता है।

मध्य निष्पक्ष

दादू हिन्दू तुरक न होइबा, साहिब सेती काम ।
षट् दर्शन के संग न जाइबा, निर्पख कहबा राम ॥ ३६ ॥

३६-३९ मे सीकरी शहर मे अकबर बादशाह ने प्रश्न किये थे—आप हिन्दू-मुसलमानो मे से किस धर्म मे है ? और आप का षट् दर्शन मे से कौन दर्शन (भेष) है ? इन प्रश्नो का मध्य निष्पक्ष सिद्धान्त द्वारा उत्तर दे रहे है—हम हिन्दू वा मुसलमान नही होते, हमारा तो एक परब्रह्म से ही काम है। न हम षट् दर्शन (नाथ, जगम, सेवडे, बौद्ध, सन्यासी और शेख) के साथ होकर उनके भेष को अपनाने वाले है। हम तो निष्पक्ष रहकर निरजन राम का स्मरण करते है।

षट् दर्शन दोन्यो नहीं, निरालब निज बाट ।
दादू एकै आसरे, लघै औघट[1] घाट ॥ ३७ ॥

सत-जन, षट् दर्शन वा हिन्दू-मुसलमान दोनो की ही पक्ष नही रखते। सभी मत-मतान्तरो का आश्रय त्याग, एक परमात्मा का आश्रय लेकर अपने निष्पक्ष मध्य-मार्ग द्वारा ससार-समुद्र के जन्म-मृत्यु मय भयकर' घाट को लाघते है।

दादू ना हम हिन्दू होहिंगे, ना हम मुसलमान ।
षट् दर्शन में हम नहीं, हम राते रहमान ॥ ३८ ॥

न हम हिन्दू बनेगे, न मुसलमान। षट् दर्शन के भेषो मे भी हम नही प्रवेश करेगे। हम तो दयालु राम के चिन्तन मे रत हैं। हमे अन्यो से क्या काम है ?

दादू अल्लह राम का, द्वै पख तैं न्यारा ।
रहिता गुण आकार का, सो गुरु हमारा ॥ ३९ ॥

जो अल्लाह और राम इन दोनो नामो मे सम-भाव रखकर दोनो के पक्षपात से अलग है, और नामो, गुणो तथा आकारो से रहित है, वही परब्रह्म हमारा गुरु है।

उभय असमाव

दादू मेरा तेरा बावरे, मैं तै की तज बाण।
जिन यहु सब कुछ सिरजिया, करता ही का जाण ॥ ४० ॥

४०-५० मे निष्पक्ष अद्वैत और पक्ष द्वैत, दोनो एक साथ हृदय मे नही रहते, यह कहते है—हे बावरे प्राणी ! जिस परमेश्वर ने यह ससार रचा है, सब कुछ उसी का जानकर ''मेरा-तेरा, मै-तू'' आदि व्यवहार का स्वभाव त्याग दे।

दादू करणी हिन्दू तुरक की, अपनी अपनी ठौर ।
दुहुं बिच मारग साधु का, यहु संतों की रह और ॥ ४१ ॥

हिन्दू और मुसलमानो का कर्त्तव्य कर्म-उपासनादि अपने अपने पक्ष द्वारा मदिर-मस्जिदो मे ही होता है किन्तु सत तो परमात्मा को सर्वत्र व्यापक समझ कर निष्पक्ष मध्य-मार्ग द्वारा उपासना करते है। अत सतो का मार्ग उक्त दोनो से अन्य ही है।

दादू हिन्दू तुरक का, द्वै पख पंथ निवार ।
संगति साचे साधु की, सांई को संभार ॥ ४२ ॥

हिन्दू और मुसलमान दोनो के पक्ष-विपक्ष पूर्ण मार्ग को छोडकर सच्चे सतो की सगति द्वारा परमात्मा का भजन करो।

दादू हिन्दू लागे देहुरे, मुसलमान मसीति ।
हम लागे एक अलेख सौं, सदा निरंतर प्रीति ॥ ४३ ॥

हिन्दू मदिरो की और मुसलमान मस्जिदो की उपासना मे लगे है, किन्तु हम तो सदा प्रतिक्षण प्रीतिपूर्वक मन-इन्द्रियो के अविषय सर्वत्र व्यापक एक परब्रह्म के चिन्तन मे लगे है।

न तहां हिन्दू देहुरा, न तहां तुरक मसीति ।
दादू आपै आप है, नहीं तहां रह रीति ॥ ४४ ॥

सतो की निष्पक्ष मध्य-मार्ग की साधना मे न हिन्दुओ के मदिर तथा न मुसलमानो की मस्जिद जैसे पूजा-स्थल होते है और न उनके जैसे आरती-नमाज आदि करने के आचरण व रीति-रिवाज होते है। सन्तो का उपास्य देव तो उनके घट मे स्थित स्वय आत्मरूप परमात्मा ही है।

दोनों हाथी ह्वै रहे, मिल रस पिया न जाइ।
दादू आपा मेट कर, दोनों रहैं समाइ ॥ ४५ ॥

धर्म के पक्ष से बँधकर हिन्दू-मुसलमान मदोन्मत्त दो हाथियो के समान हो रहे है। जैसे वे एक साथ जल नही पी सकते, वैसे ही हिन्दू-मुसलमान मिलकर भक्ति-रस पान नही कर सकते। यदि ये धर्म-पक्ष रूप अहकार को हटाकर भक्ति करे तो दोनो ही परमात्मा मे समा कर रहेंगे।

भयभीत भयानक ह्वै रहै, देख्या निर्पख अंग ।
दादू एकै ले रह्या, दूजा चढै न रंग ॥ ४६ ॥

हमारे निर्गुण निष्पक्ष साधन स्वरूप को देख कर कुछ लोग तो यह समझकर कि "यह कैसे हो सकता है", भयभीत हो रहे है और कुछ लोग यह समझकर कि "यह मार्ग दोनो धर्मों से भिन्न होने से अच्छा नहीं", भयानक हो रहे है। किन्तु हमने तो निष्पक्ष होकर उपास्य रूप से एक परब्रह्म को ही ग्रहण किया है। हमारे दूसरा रग नही चढ सकता।

जानै बूझै साच है, सब को देखन धाइ ।
चाल नही संसार की, दादू गह्या न जाइ ॥ ४७ ॥

निष्पक्ष मध्य-मार्ग के सतो को उनके वैराग्यादि गुणो द्वारा जानते है और यह समझ कर कि ये सच्चे सत है, उनके दर्शन करने भी सब जाते है किन्तु उनका निष्पक्ष मध्य-मार्ग, जो ससार के मत-मतान्तरो के बाह्य-भेषादि चिन्ह मूर्ति-पूजादि न होने से, लोगो द्वारा ग्रहण नहीं किया जाता।

दादू पख काहू के ना मिलै, निर्पख निर्मल नांव ।
साई सौ सन्मुख सदा, मुक्ता सब ही ठांव ॥ ४८ ॥

सत किसी के मत रूप पक्ष मे नही मिलते। वे तो सर्व-मतो से निष्पक्ष रह कर, निर्मल नाम-स्मरण द्वारा सदा परमात्मा के सन्मुख रहते है। इस प्रकार मत-मतान्तरो के पक्ष से मुक्त होकर लोक-कल्याणार्थ सभी स्थानो मे विचरते है।

दादू जब तैं हम निर्पख भये, सबै रिसाने लोक ।
सतगुरु के परसाद से, मेरे हर्ष न शोक ॥ ४९ ॥

जब से हम निष्पक्ष हुये है, तब से हम पर सभी लोग रुष्ट है, किन्तु सद्गुरु कृपा से हमारे हृदय मे उनकी प्रसन्नता से न हर्ष था और न उनके रुष्ट होने से कोई शोक है।

निर्पख ह्वै कर पख गहै, नरक पड़ैगा सोइ ।
हम निर्पख लागे नाम सौ, कर्ता करै सो होइ ॥ ५० ॥

निष्पक्ष होकर यदि कोई पक्ष ग्रहण करेगा तो वह दु ख रूप नरक मे ही पड़ेगा। हम तो निष्पक्ष होकर निरजन राम के नाम-स्मरण मे लगे है।आगे जो परमेश्वर करेंगे, वही होगा।

हरि भरोस

दादू पख काहू के ना मिलैं, निष्कामी निर्पख साध ।
एक भरोसे राम के, खेलै खेल अगाध ॥ ५१ ॥

निष्पक्ष मध्य-मार्ग के सतो का हरि विश्वास दिखा रहे है—निष्पक्ष निष्कामी सत किसी मतादि के पक्ष मे न मिलकर निरजन राम के भरोसे भक्ति रूप खेल खेलते हुये अगाध आनन्द लेते है।

मध्य

दादू पखा पखी संसार सब, निर्पख विरला कोइ ।
सोई निर्पख होइगा, जाके नाम निरंजन होइ ॥ ५२ ॥

५२-५४ मे निष्पक्ष मध्य-मार्ग की विशेषता दिखा रहे है—सब ससार के प्राणी पक्ष-विपक्ष मे बद्ध है। कोई विरला ही निष्पक्ष होता है, जिसके हृदय मे निरन्तर निरजन राम का चिन्तन होता है, वही सत निष्पक्ष हो सकेगा।

अपने अपने पंथ की, सब को कहै बढाइ ।
तातैं दादू एक सौं, अंतरगति ल्यौ लाइ ॥ ५३ ॥

सब कोई अपने-अपने पथ की महिमा बढा कर ही कहते है। इसलिये सब से निष्पक्ष होकर शरीर के भीतर हृदय मे स्थित एक आत्म-स्वरूप राम मे ही वृत्ति लगाओ।

दादू द्वै पख दूर कर, निर्पख निर्मल नांव ।
आपा मेटै हरि भजै, ताकी मैं बलि जांव ॥ ५४ ॥

जो भेदवादियो के पक्ष को दूर कर निष्पक्ष हो, सब प्रकार के अनात्म अहकार को मिटा कर निर्मल नाम द्वारा परमात्मा को भजता है; उसकी हम बलिहारी जाते है।

सजीवन

दादू तज संसार सब, रहै निराला होइ ।
अविनाशी के आसरे, काल न लागै कोइ ॥ ५५ ॥

जीवन्मुक्त का परिचय दे रहे है—जो ससार के सपूर्ण मतो के पक्ष को और सपूर्ण वासनाओ को त्याग, सपूर्ण द्वद्वो से रहित होकर अविनाशी ब्रह्म के अभेद रूप आश्रय मे रहता है-उसे किसी प्रकार भी काल का भय नही लगता है।

मत्सर=ईर्ष्या

कलियुग कूकर कलमुहाँ, उठ-उठ लागै धाइ ।
दादू क्यों कर छूटिये, कलियुग बडी बलाइ ॥ ५६ ॥

५६ मे कहते है—कलियुगी प्राणी सतो से ईर्ष्या करते है-कलियुगी प्राणी काले मुँह के कुत्ते के समान उठ-उठ कर वेग-पूर्वक निष्पक्ष सतो के पीछे लगते है और ईर्ष्यापूर्ण दुर्वचनो द्वारा

कष्ट देते है। ये कलियुगी प्राणी भजन मे विघ्न करने के कारण निष्पक्ष सतो के लिये बडी विपत्ति रूप है। इनसे कैसे बचे ? अर्थात् इनसे सावधान रहना चाहिये।

निन्दा

काला मुँह ससार का, नीले कीये पाँव।
दादू तीन तलाक दे, भावै तीधर जाव ॥ ५७ ॥

५७-५९ म कृतघ्नियो से उपेक्षा दिखा रहे है—वर्षा भगवान् ने बरसायी और पूजने जाते है पीर को। अत ये ससारी प्राणी कृतघ्न है। इनका काला मुँह और नीले पैर कर दिये है=अर्थात् हम इनसे सम्बन्ध ही नही रखते। हम तो हरि, गुरु और सतो की शपथ करके कहते है, हमारी ओर से ये चाहे किधर ही जायँ।

अनावृष्टि से पीडित आँधी ग्राम की जनता के लिये दादूजी ने भगवान् से प्रार्थना करके वर्षा कराई थी, उसको पीर की कृपा मान कर लोगो द्वारा पीर को पूजने जाते देख कर ५७ वी साखी कही थी। प्रसग कथा दृ स सि त ५।२६० मे देखो।

दादू भाव हीण जे पृथमी, दया विहूणा देश।
भक्ति नही भगवत की, तहँ कैसा परवेश ॥ ५८ ॥

पृथ्वी का जो प्रदेश विचार, दया और भगवान् की भक्ति से रहित हो, उसमे कैसा प्रवेश ? अर्थात् उसमे नही जाना चाहिये, वह तो त्यागने योग्य ही है।

जे बोलूं तो चुप कहैं, चुप तो कहै पुकार।
दादू क्यो कर छूटिये, ऐसा है ससार ॥ ५९ ॥

यदि हम उपदेश करते है तब तो कहते है, चुपचाप बैठकर भजन ही करना चाहिये और जब ध्यानस्थ रहने लगते है तो कहते है, उपदेश करो। ससारी प्राणी ऐसे कृतघ्न है- उभय प्रकार ही असन्तुष्ट रहते है। इनसे कैसे छुटकारा पावे ? अर्थात् अपने मध्य निष्पक्ष सहज स्वभाव से ही रहना चाहिये।

मध्य

न जाणू, हांजी, चुप गहि, मेट अग्नि की झाल।
सदा सजीवन सुमिरिये, दादू बचै काल ॥ ६० ॥

निष्पक्ष मध्य रहने की पद्धति बता रहे है—मत-मतान्तरो के पक्ष वाले विवाद मे प्रवृत्त व्यक्तियो को प्रथम तो कह दे—मै शास्त्रार्थ करना नही जानता, वा योग्य वार्ता हो तो "हा जी, ठीक है", ऐसा कह दे वा मौन रह कर ही वाद-विवाद रूप अग्नि की ज्वालाओ को मिटाकर सदा सजीवन-स्वरूप परब्रह्म का स्मरण करे, तब जन्म-मरण रूप काल-चक्र से बच सकता है।

पंथापथी

पथ चलै ते प्राणिया, तेता कुल व्यवहार।
निर्पख साधू सो सही, जिन के एक आधार ॥ ६१ ॥

६१-६२ मे कह रहे है, सासारिक पंथो के पथिको का सग न करो—जो प्राणी विभिन्न पथो मे प्रविष्ट होकर चलते है, उनके उन पथो के समान ही सम्पूर्ण व्यवहार होते है, जो बन्धन रूप है। निष्पक्ष सच्चे सत तो वे ही है, जिनके एक परमात्मा का ही आश्रय है।

दादू पंथों पड गये, बपुरे[1] बारह-बाट[2] ।
इनके संग न जाइये, उलटा अविगत[3] घाट ॥ ६२ ॥

विचारहीन[1] प्राणी पथो के फद मे पड गये है, इसी से वास्तविक मार्ग भूलकर दर-दर[2] के हो रहे है। सच्चे साधक को इन पथो के साथ नही होना चाहिये। मन-इन्द्रिय के अविषय[3] परमात्मा की प्राप्ति का निर्विकल्प-समाधि रूप घाट इनके भेष-व्यवहारादि प्रपच से उलटा है। वह अन्तर्मुख हो कर साधन करने से प्राप्त होता है, पथो के बाह्य व्यवहार से नही।

आशय विश्राम

दादू जागे को आया कहैं, सूते को कहैं जाइ।
आवन जाना झूठ है, जहॉ का तहॉ समाइ ॥ ६३ ॥

इति मधि का अग समाप्त ॥ १६ ॥ सा १७२० ॥

६३ मे कहते है—प्राणी का जैसा विचार होता है, वैसी ही मान्यता मे उसे आनन्द मिलता है—सोकर जागे हुये व्यक्ति की आत्मा को कहते है "जाग आया" और सोये हुये व्यक्ति आत्मा को कहते है, "सो गया"। किन्तु आत्मा मे आने-जाने का व्यवहार मिथ्या है, वह तो व्यापक होने से जहा-तहा सर्वत्र समाया हुआ है, परन्तु मन मे जैसा विचार होता है, वैसी ही मान्यता मे प्राणियो को विश्राम मिलता है। मध्य, निष्पक्ष-मार्ग के सत की मान्यता यथार्थ होती है।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका मध्य का अग समाप्त ॥ १६ ॥

अथ सारग्राही का अंग १७

मध्य-अग के अनन्तर सारग्राहक सबधी विचार करने के लिये 'सारग्राही का अग' कहने मे प्रवृत्त मगल कर रहे है—

दादू नमो नमो निरजनं, नमस्कार गुरुदेवत. ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत. ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक असार ससार से पार होकर सार-स्वरूप परब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरजन राम, सद्गुरु और सर्व सतो को हम अनेक प्रणाम करते है।

दादू साधू गुण गहै, अवगुण तजै विकार ।
मानसरोवर हंस ज्यों, छाडि नीर, गहि सार ॥ २ ॥

२-१६ मे सार और असार ग्राहको का परिचय दे रहे है—जैसे मानसरोवर के हस जल को छोड कर सार रूप दुग्ध को पान करते है, वैसे ही सत अवगुणो को विकार रूप जान कर त्याग देते है और उत्तम गुणो को ग्रहण करते है।

हस गियानी सो भला, अंतर राखे एक ।
विष मे अमृत काढ ले, दादू बड़ा विवेक ॥ ३ ॥

जो महान् विवेक द्वारा अनात्म-देहादि ससार रूप विष मे से आत्मरूप अमृत को निकाल कर अपनी चित्त-वृत्ति मे उस एक का ही चिन्तन रखता है, वही हस के समान सार ग्राहक ज्ञानी और श्रेष्ठ सत है।

पहली न्यारा मन करै, पीछे सहज शरीर ।
दादू हस विचार सौ, न्यारा कीया नीर ॥ ४ ॥

साधक को चाहिये—प्रथम विषय-वासनाओ से मन को हटावे, पीछे वैराग्य विवेक द्वारा अनायास ही शरीर से आत्म-भ्राति हट जायगी और जैसे हस जल से दूध को अलग करके पान करता है, वैसे ही अनात्मा से आत्मा को अलग करके अद्वैतामृत पान कर सकेगा।

आपै आप प्रकाशिया, निर्मल ज्ञान अनन्त ।
क्षीर नीर न्यारा किया, दादू भज भगवन्त ॥ ५ ॥

जिनने भगवद् भजन करके विवेक द्वारा आत्म रूप दूध और अनात्म रूप जल को अलग कर लिया है, उनके अन्त करण मे अपने आप ही अनन्त ब्रह्म का निर्मल ज्ञान प्रकाशित हुआ है।

क्षीर नीर का सन्त जन, न्याव नबेरैं आइ ।
दादू साधू हंस बिन, भेल सभेले जाइ ॥ ६ ॥

जैसे दूध और जल भिन्न करने का न्याय हस ही निबटाता है, वैसे ही आत्म-अनात्म रूप सार-असार को भिन्न करने मे सत ही समर्थ है। हस बिना अन्य सब जल दूध मिला ही पान करते है। वैसे ही सतो के अतिरिक्त अन्य आत्मा-अनात्मा को एक रूप से ही भजते है।

दादू मन हसा मोती चुणै, ककर दीया डार ।
सद्गुरु कह समझाइया, पाया भेद विचार ॥ ७ ॥

सतो के निर्मल मन-हस ने विषय-वासना वा सकाम-साधना रूप ककर पटक दिये हैं और अब आत्म-चिन्तन रूप मोती ही चुगता है। यह उक्त त्याग व ग्रहण का रहस्य सद्गुरुओ ने कह कर समझाया है, तब ही हमे विचार द्वारा प्राप्त हुआ है।

दादू हस मोती चुणै, मानसरोवर जाइ ।
बगुला छीलर बापुड़ा, चुण चुण मछली खाइ ॥ ८ ॥

सत-हस सत्सग-सरोवर मे ब्रह्मानन्द-मोती चुगता है और बेचारा ससारी प्राणी रूप बक तो कुसग रूप छोटी तलैया मे विषय-रूप मच्छी ही खाता है।

दादू हस मोती चुगै, मानसरोवर न्हाइ ।
फिर फिर बैसै बापुड़ा, काग करका आइ ॥ ९ ॥

सत-हस तो सत्सग-मानसरोवर मे अविद्या-मल की निवृत्ति रूप स्नान करके ब्रह्मानन्द

रूप मोती चुगते है और बेचारे कामी प्राणी रूप कौए, नारी के शरीर रूप पजर पर ही बारबार आकर बैठते है।

दादू हंसा परखिये, उत्तम करणी चाल।
बगुला बैसे ध्यान धर, प्रत्यक्ष कहिये काल ॥ १० ॥

सत और हस सार ग्रहण रूप श्रेष्ठ कर्त्तव्य से ही पहचाने जाते है, भेषादि से नही। हस के समान श्वेत होने पर भी बक जब ध्यान धरके बैठता है, तब प्रत्यक्ष ही मच्छियो का काल कहा जाता है। वैसे ही सतो का भेष धारण करने वाले कपटी बक-ध्यानी भी घातक होते है।

उज्ज्वल करणी हंस है, मैली करणी काग।
मध्यम करणी छाडि सब, दादू उत्तम भाग ॥ ११ ॥

सत का ब्रह्म-चिन्तनादि, हस का पय-पानादि, सार-ग्रहण रूप कर्त्तव्य पवित्र है। काक का पजर पर जाना, कामी का नारी मे आसक्ति से पापादि रूप कर्त्तव्य मलीन है। सपूर्ण नीच कार्यों को त्याग कर जो उत्तम कार्य करता है, वही सौभाग्यशाली है।

दादू निर्मल करणी साधु की, मैली सब संसार ।
मैली मध्यम ह्वै गये, निर्मल सिरजनहार ॥ १२ ॥

सत का कर्त्तव्य निर्मल होता है और ससारी प्राणियो का मलीन होता है। मलीन कर्त्तव्य वाले मध्यम होकर ससार के बीच ही रह गये और निर्मल कर्त्तव्य वाले सत परमात्मा को प्राप्त हो गये।

दादू करणी ऊपरि जाति है, दूजा सोच निवार।
मैली मध्यम ह्वै गये, उज्ज्वल ऊंच विचार ॥ १३ ॥

जाति भी कर्त्तव्य पर ही निर्धारित होती है, पान बेचने वाला ब्राह्मण तबोली कहलाता है, इत्यादिक लोक मे प्रसिद्ध है। अत जाति किस प्रकार बनती है ? ऐसी शका रूप अन्य चिन्ता को छोडो। मलीन कर्त्तव्य वाले मध्यम जाति के और उज्ज्वल कर्त्तव्य वाले उच्च जाति के समझो।

उज्ज्वल करणी राम है, दादू दूजा धंध।
का कहिये समझैं नहीं, चारों लोचन अंध ॥ १४ ॥

राम-भजन ही पवित्र कर्त्तव्य है, दूसरे सासारिक कार्य तो पाप-मिश्रित होने से मलीन ही है, किन्तु क्या कहे, ससारी प्राणी इस रहस्य को समझते ही नही। ये विवेक, विचार और दोनो बाह्य नेत्रो से अधे ही हो रहे है अर्थात् सत्सग न होने से विवेक-विचार तो है ही नही और बाह्य नेत्रो से प्रत्यक्ष देख रहे है कि बुरा करने से दड मिलता है, फिर भी करते ही है, यही अधा होना है।

दादू गऊ बच्छ का ज्ञान गह, दूध रहै ल्यौ लाइ ।
सीग पूंछ पग परिहरै, अस्तन लागै धाइ ॥ १५ ॥

जैसे गौ का वत्स, गौ के श्रृग, पुच्छ, पैर आदि अगो को त्याग, दौडकर स्तन पकड के दुग्धपान करता है, वैसे ही विराट् रूप, ब्रह्म-गौ के सन्त रूप स्तनो से ज्ञान-दुग्ध ग्रहण करके अपनी वृत्ति परब्रह्म मे ही लगानी चाहिए।

दादू काम गाइ के दूध सौं, हाड चाम सौ नाहि ।
इहि विध अमृत पीजिये, साधू के मुख मांहि ॥ १६ ॥

जैसे गौ-वत्स का काम गौ के दुग्ध पान से होता है, अस्थि-चर्मादि से नहीं, वैसे ही साधक को सन्त के गौर-वर्ण, स्थूलादि शारीरिक अगो की ओर न देखकर सारग्राहक दृष्टि से उनके मुख द्वारा स्रवित ज्ञानामृत का पान करना चाहिए।

स्मरण नाम

दादू काम धणी के नाम सौ, लोगन सौ कुछ नांहि ।
लोगन सौं मन ऊपली, मन की मन ही मांहि ॥ १७ ॥

१७-२३ मे नाम-स्मरण को ही सार साधन बता रहे है—साधक का मुक्ति रूप कार्य परमात्मा के नाम-स्मरण से ही सिद्ध होगा, सासारिक लोगो से कुछ न होगा। अत लोगो से व्यावहारिक वार्ता करनी ही पडे तो वह मन के बाहर ही रहे, मन मे प्रवेश नही होनी चाहिए। मन मे तो मन की स्मरण रूप साधना ही रहनी चाहिए।

जाके हिरदै जैसी होइगी, सो तैसी ले जाइ ।
दादू तूं निर्दोष रह, नाम निरन्तर गाइ ॥ १८ ॥

हे साधक ! जिसके हृदय मे जैसी भावना होगी, वह वैसी ही वस्तु अपने आप तेरे से ले जायगा, तू तो वर-शाप देने से उपराम होकर निर्दोष रहते हुये नाम स्मरण ही कर।

दादू साध सबै कर देखना, असाध न दीसै कोइ ।
जिहि के हिरदै हरि नहीं, तिहिं तन टोटा होइ ॥ १९ ॥

सभी को साधु समझकर देखना चाहिये। कारण, आत्म-दृष्टि से वा सार-ग्राहक दृष्टि से कोई भी असाधु नहीं दिखाई देता। हा, जिसके हृदय मे हरि-चिन्तन नही होता, उस शरीर मे साधुता की कमी रहती ही है, किन्तु हम अपने भाव मे कमी क्यो रक्खे ?

साधू सगति पाइये, तब द्वन्द्वर दूर नशाइ ।
दादू बोहिथ[2] बैस कर, डूडे[1] निकट न जाइ ॥ २० ॥

जब सत-सगति प्राप्त होती है तब काम-क्रोधादि द्वन्द्व हृदय से दूर होकर नष्ट हो जाते है। फिर जैसे जहाज[2] पर बैठ कर यात्रा करने वाला छोटी-नाव[1] के पास नही जाता, वैसे ही द्वन्द्वो से रहित व्यक्ति नाम-स्मरण को छोड कर तीर्थ-व्रतादि के पास भी नहीं जाता। नाम-स्मरण मे ही रत रहता है।

जब परम पदारथ पाइये, तब कंकर दीया डार ।
दादू साचा सो मिले, तब कूडा[1] काच[2] निवार ॥ २१ ॥

जब परम श्रेष्ठ रत्न मिलता है, तब ककर-काँचादि को कूड़ा समझकर पटक दिया जाता है। वैसे ही जब साधक को सच्चे साधु द्वारा सिखाये नाम-स्मरण से सच्चा आत्म-तत्त्व प्राप्त होता है, तब वह विषय-सुख जैसे बुरे[1] काम-काज[1], निस्सार[2] कार्यों[2] को अपने आप ही छोड़ देता है।

जब जीवन-मूरी पाइये, तब मरबा कौन बिसाहि[1] ।
दादू अमृत छाड कर, कौन हलाहल खाहि ॥ २२ ॥

जब सजीवनी-बूटी प्राप्त हो जाती है, तब मृत्यु कौन मोल[1] लेता है ? तथा अमृत को छोडकर हलाहल विष कौन खाता है ? वैसे ही नाम-स्मरण का आनन्द मिलने पर विषय-सुख कौन चाहता है ?

जब मानसरोवर पाइये, तब छीलर को छिटकाइ ।
दादू हंसा हरि मिले, तब कागा गये विलाइ ॥ २३ ॥

जब मानसरोवर प्राप्त होता है, तब हस छोटी तलैया को त्याग देता है। वैसे ही हस रूपी साधक को जब नाम-स्मरण द्वारा हरि की प्राप्ति होती है, तब काम-क्रोधादिक वासना सेवी मन की काक-वृत्ति अपने आप ही नष्ट हो जाती है।

उभय असमाव

जहँ दिनकर तहँ निश नहीं, निश तहँ दिनकर नांहि ।
दादू एकै द्वै नहीं, साधन के मत मांहिं ॥ २४ ॥

२४-२५ मे दो विरोधी एक साथ नही रहते, यह कहते है—जहाँ सूर्य होता है, वहा रात्रि नही होती, जहा रात्रि होती है वहा सूर्य नही होता। वैसे ही ज्ञान के स्थान मे अज्ञान और अज्ञान के स्थान मे ज्ञान नही रहता। सतो के सिद्धान्त मे जहा अद्वैत ब्रह्म की भक्ति होती है, वहा माया रूप द्वैत नही होता।

दादू एकै घोडे चढ चलै, दूजा कोतिल[1] होइ ।
दुहुं घोडों चढ बैसतां, पार न पहुँता कोइ ॥ २५ ॥

इति सारग्राही का अग समाप्त ॥ १७ ॥ सा १७४५ ॥

जिसके साथ दो अश्व होते है, तब एक पर चढकर चलता है और दूसरे को खाली[1] रखता है। कारण, दोनो पर चढ कर बैठने से तो आज तक कोई भी जाने योग्य स्थान को नही पहुँचा। वैसे ही प्रवृत्ति और निवृत्ति का एक साथ निर्वाह नहीं हो सकता, प्रवृत्ति को गौण और निवृत्ति को मुख्य रख कर ब्रह्म-परायण रहने से ही प्राणी ससार के पार पहुँच सकता है। सच्चे साधक को चाहिये कि वह ब्रह्म-चिन्तनादि आध्यात्मिक कार्यों को ही प्रमुखता दे, सासारिक व्यवहार को तो उसके सहायक रूप मे ही रखे।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका सारग्राही का अग समाप्त ॥ १७ ॥

अथ विचार का अंग १८

सारग्राही-अग के अनन्तर अद्वैत-प्रधान विचार करने के लिये ''विचार का अग'' के कथन मे प्रवृत्त मगल कर रहे है —

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत. ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक द्वैत से पार होकर अद्वैत विचार द्वारा परब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरजन राम, सद्गुरु और सर्व सतो को हम अनेक प्रणाम करते है।

प्रज्ञान परिचय

दादू जल में गगन, गगन में जल है, पुनि[1] वै गगन निराल[2]।
ब्रह्म जीव इहि विधि रहै, ऐसा भेद विचारं ॥ २ ॥

२-३ मे प्रज्ञान (जीव) का परिचय दे रहे है—जैसे जल मे प्रतिविम्ब रूप से आकाश विद्यमान है तथा जल की सत्ता-आधार भूत व्यापक आकाश मे है, अत जल भी आकाश मे है, इस प्रकार बाहर-भीतर आकाश का जल से सबध होने पर भी आकाश जल के आर्द्रतादि धर्मों से युक्त नही होता, वैसे ही जीव (बुद्धि) मे शुद्ध कूटस्थ चैतन्य प्रतिबिम्ब रूप से विद्यमान है तथा जीव (बुद्धि) भी आधार भूत शुद्ध चैतन्य के आश्रित है। अत बाहर व भीतर जीव का ब्रह्म से सबध होने पर भी वह ब्रह्म, जीव (बुद्धि=अत करण) के धर्म अल्पज्ञत्वादि से युक्त नहीं होता। जीव और ब्रह्म के इस भेद का विचार करना चाहिये।

ज्यो दर्पण मे मुख देखिये, पानी मे प्रतिबिम्ब ।
ऐसे आतमराम है, दादू सब ही संग ॥ ३ ॥

जैसे दर्पण मे मुख का और जल मे सूर्यादि का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है, वैसे ही ब्रह्म का प्रतिबिम्ब अत करण मे आत्म रूप से रहता है। उसी की सत्ता से सब व्यवहार चलता है। अत ब्रह्म सब के साथ ही है।

साँच

जब दर्पण मांहीं देखिये, तब अपना सूझै आप ।
दर्पण बिन सूझै नही, दादू पुन्य रु पाप ॥ ४ ॥

यथार्थ बात कह रहे है—जब दर्पण मे देखा जाय तो अपना मुख और उस के गुण-दोष अपने आप ही दीख जाते है, दर्पण बिना नही दीखते। वैसे ही अत करण द्वारा ब्रह्म का प्रतिबिम्ब और पाप-पुण्य रूप ससार प्रतीत होता है। अत करण न हो तो एक अद्वैत ब्रह्म ही है।

ज्ञान परिचय

जीयें[1] तेल तिलन्न में, जीये गध फूलन्न ।
जीयें माखन खीर में, ईंये रब्ब[2] रूहन्न[3] ॥ ५ ॥

५-८ मे ज्ञान द्वारा ब्रह्म का परिचय करा रहे है—जैसे[1] तिलो मे तेल, पुष्पो मे सुगध, दुग्ध मे मक्खन है, वैसे ही सब जीवात्माओं[3] मे ब्रह्म[2] व्यापक है।

अकबर बादशाह ने पूछा था ब्रह्म सब मे कैसे है, दृष्टात द्वारा बताइये ? उसको ५-६ से उत्तर दिया था। प्रसग कथा दृ सु सि त १२-३४२ मे देखो।

ईंये[1] रब्ब रूहन्न मे, जीयें रूह[2] रगन्न ।
जीयें जेरो[3] सूर मा, ठंढो चन्द्र बसन्न ॥ ६ ॥

जैसे शरीर का नाडियो मे आत्मा[२], सूर्य मे प्रकाश[३], चन्द्रमा मे शीतल गुण रहता है, ऐसे[४] ही जीवात्माओ मे ब्रह्म व्यापक है।

दादू जिन यहु दिल मंदिर किया, दिल मंदिर में सोइ ।
दिल मांहीं दिलदार है, और न दूजा कोइ ॥ ७ ॥

जिस परमात्मा ने अन्त करण-मन्दिर बनाया है, वही साक्षी रूप से अन्त करण मे रहता ह। अन्त करण मे स्थित परमात्मा ही हमारा परम मित्र है, अन्य दूसरा कोई नही।

मीत तुम्हारा तुम कनै[१], तुम ही लेहु पिछान ।
दादू दूर न देखिये, प्रतिबिम्ब ज्यों जान ॥ ८ ॥

हे साधको ! जैसे सूर्यादिक का प्रतिबिम्ब सर्वत्र रहता है किन्तु जलादिक बिना नहीं दीखता। वैसे ही तुम्हारा परम मित्र परब्रह्म व्यापक होने से तुम्हारे पास[१] ही है, किन्तु ब्रह्माकार वृत्ति बिना नही भासता। अत अपनी वृत्ति को ब्रह्माकार करके तुम ही उसे पहचानो।

विरक्तता

दादू नाल[१] कमल जल ऊपजै, क्यों जुदा जल मांहिं ।
चंद हि हित चित प्रीतडी, यों जल सेती नांहिं ॥ ९ ॥

९-११ मे वैराग्यपूर्वक विचार की विशेषता दिखा रहे है—कमल नारी[१] (कमोदनी) जल मे उत्पन्न होती है फिर भी जल मे न रहकर जल से ऊपर क्यो रहती है ? उत्तर-उसकी प्रीति जैसी चन्द्रमा मे होती है, वैसी जल में नही होती। इसीलिये जल से ऊपर रहती है। वैसे ही वैराग्य-विचार द्वारा साधक के चित्त मे जैसे परब्रह्म के लिये प्रीति होती है, वैसी ससार के लिये नही होती। अत वह ससार मे रह कर भी ससार से असग ही रहता है।

दादू एक विचार सौं, सब तैं न्यारा होइ ।
मांही है पर मन नहीं, सहज निरंजन सोइ ॥ १० ॥

साधक वैराग्य-पूर्वक एक विचार-बल द्वारा सब ससार से अलग हो जाता है। यद्यपि शरीर ससार मे ही रहता है किन्तु मन ससार मे न रह कर निरन्तर राम के चिन्तन मे ही रहता है और वह अनायास ही निरजन ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है।

दादू गुण निर्गुण मन मिल रह्या, क्यों बेगर[१] ह्वै जाहि।
जहँ मन नाहीं सो नहीं, जहँ मन चेतन सो आहि ॥ ११ ॥

दैवीगुणो से रहित मूर्ख-मन विषयो मे मिल रहा है, वह कैसे विरक्त[१] होकर परमात्मा की ओर जाय ? उत्तर-जिस वस्तु मे मन नही होता, वह वस्तु उस के लिये नही के समान ही होती है और जिसमे मन सावधानी से लगा रहता है, वह उसके सामने रहती है। अत वैराग्य-पूर्वक विचार द्वारा मन को परमात्मा मे लगाने से वह विषयो से अलग होकर परमात्मा की ओर जाता है।

विचार

दादू सब ही व्याधि की, औषधि एक विचार।
समझे तै सुख पाइये, कोई कुछ कहो गँवार ॥ १२ ॥

१२-१५ मे विचार की विशेषता कह रहे है—जन्म के पश्चात् ही सर्व व्याधियाँ होती है। ब्रह्म विचार द्वारा जन्माभाव होने से सर्व व्याधियो की औषधि एक विचार ही है। प्राणी को अपना वास्तविक स्वरूप समझने पर ही परमानन्द प्राप्त होता है, फिर चाहे कोई मूर्ख कुछ भी कहे, दु ख नही होता।

दादू इक निर्गुण इक गुणमयी, सब घट ये द्वै ज्ञान ।
काया का माया मिलै, आतम ब्रह्म समान ॥ १३ ॥

सभी शरीरो मे एक निगुर्ण रूप और दूसरा सगुणरूप ये दो ज्ञान रहते है। जिसमे माया कृत शरीरादि का सगुण ज्ञान ही प्रधान होता है वह माया मय ससार मे मिल कर जन्मता-मरता रहता है और जिस मे निर्गुण आत्मा का निर्गुण ज्ञान प्रधान होता है, वह ब्रह्म समान ही होता है।

दादू कोटि अचारिन एक विचारी, तऊ न सरबरि[1] होइ ।
आचारी सब जग भरा, विचारी विरला कोइ ॥ १४ ॥

बाह्य स्नानादि आचारवान् कोटि व्यक्ति भी एक ब्रह्म विचारवान् के समान[1] नही हो सकते। आचारवान् व्यक्तियो से तो सर्व जगत् भरा है। विचारवान् ब्रह्म-ज्ञानी तो कोई विरला ही मिलता है।

दादू घट मे सुख आनन्द है, तब सब ठाहर होइ।
घट मे सुख आनन्द बिन, सुखी न देख्या कोइ॥ १५ ॥

विचार द्वारा जिसके अन्त करण मे ब्रह्मानन्द प्राप्त है, तो उसे सभी स्थानो मे आनन्द प्राप्त होता है और जिसके अन्त करण मे वस्तु-जन्य सुख तथा ब्रह्मानन्द दोनो ही नहीं है, ऐसा व्यक्ति कोई भी सुखी नही देखा गया।

विरक्तता

काया लोक अनन्त सब, घट मे भारी भीर।
जहा जाइ तहाँ सग सब, दरिया पैली तीर ॥ १६ ॥

१६-२१ म विरक्तता का निर्देश कर रहे है—शरीर रूप लोक अनन्त है और शरीरो के अन्त करणो मे कामादि की बहुत भीड रहती है। जिस शरीर मे जाय, वहाँ ही कामादि सब विकार साथ मे ही रहते है। अत प्राणी ससार-सागर से पार कैसे जाय ?

काया माया ह्वै रही, जोधा बहु बलवन्त ।
दादू दुस्तर क्यो तिरै, काया लोक अनन्त ॥ १७ ॥

यह काया ही ससार से पार होने मे इन्द्रजाल रूप माया के समान बाधक हो रही है। जैसे बाजीगर के खेल मे मन जाता है, वैसे ही शरीर के पोषण, अध्यासादि मे ही मन रुक जाता है और

कुछ बढना भी चाहे तो कामादिक महा बलवान् योद्धा रोकने वाले बहुत है। अत ये अनन्त शरीर रूप लोक दुस्तर है, इनसे कैसे पार हो ?

मोटी माया तज गये, सूक्ष्म लीये जाइ।
दादू को छूटै नहीं, माया बडी बलाइ ॥ १८ ॥

घर, सम्पत्ति आदि स्थूल रूप माया को तो त्याग कर विरक्त भेष धारण कर लेते है किन्तु प्रतिष्ठा की वासना तथा राग-द्वेषादि रूप सूक्ष्म माया साथ ही ले जाते है। अत यह माया महा विपत्ति है, इससे कोई भी नही बचता।

दादू सूक्ष्म मांहिंले, तिनका कीजे त्याग।
सब तज राता राम सौं, दादू यहु वैराग ॥ १९ ॥

जो अन्त करण मे अहकार, प्रतिष्ठा की इच्छा, राग,द्वेष, विषय-वासनादि सूक्ष्म माया रूप गुण है, उन सब का त्याग करो। कर्तृत्वादि सभी विकारो को त्याग कर राम भजन मे अनुरक्त होना, इसी का नाम वैराग्य है।

गुणातीत सो दर्शनी,आपा धरै उठाइ।
दादू निर्गुण राम गह, डोरी लागा जाइ ॥ २० ॥

जो देहादिक अनात्म अहकार को अन्त करण से उठाकर दूर धर देता है और निरतर ब्रह्माकार-वृत्ति अभ्यास रूप डोरी के साथ लगा हुआ अभ्यास बढाता जाता है, इस प्रकार साधन की परिपाकावस्था मे निर्गुण राम को स्वस्वरूप से ग्रहण करके गुणातीत होता है, वही सत दर्शन के योग्य है।

पिंड मुक्ति सबको करै, प्राण मुक्ति नहिं होइ।
प्राण मुक्ति सद्गुरु करै, दादू विरला कोइ ॥ २१ ॥

शरीर को शीतोष्ण, दुर्बलतादि दु खो से बचाना रूप वा देहपात होने पर पिडादिक प्रदान रूप कर्म-काड के द्वारा स्थूल शरीर की मुक्ति सभी करते है किन्तु प्राणी की जन्म-मरण रूप ससार से मुक्ति कोई नही करता। हा, कोई विरला सद्गुरु अपने ज्ञानोपदेश द्वारा सूक्ष्म-शरीर रूप प्राण की जन्मादि से मुक्ति करके आत्मा को ब्रह्म मे अभेद करता है।

शिष्य जिज्ञासा-प्रश्न

दादू क्षुधा तृषा क्यों भूलिये, शीत तप्त क्यो जाइ।
क्यों सब छूटै देह गुण, सद्गुरु कहि समझाइ ॥ २२ ॥

२२ मे शिष्य का प्रश्न है—हे सद्गुरो ! भूख, प्यास, आशा-तृष्णा, शीतोष्णादि, तथा राग-द्वेषादि देह के द्वन्द्व रूप सब गुणो से कैसे छुटकारा हो ? कृपया इसका उपाय सरल रीति से समझा कर कहिये।

उत्तर

मांहीं तैं मन काढ कर, ले राखै निज ठौर।
दादू भूलै देह गुण, बिसर जाइ सब और ॥ २३ ॥

२३-२६ मे २२ मे कथित प्रश्न का उत्तर दे रहे है—देहादिक से मन को निकाल कर स्वस्वरूप स्थान मे स्थिर रखने से मन देह के गुणो को भूल जाता है और सपूर्ण मायिक प्रपच को भी भूल जाता है।

नाम भुलावै देह गुण, जीव दशा सब जाइ।
दादू छाड़ै नाम को, तो फिर लागै आइ ॥ २४ ॥

निरतर नाम-चिन्तन देह-गुणो को भुला देता है और निरतर नाम-चिन्तन से ही ज्ञान होकर कर्त्तृत्व, भोक्तृत्व आदि सपूर्ण जीव भाव की अवस्था भी दूर हो जाती है, किन्तु नाम-चिन्तन को छोडकर यदि मन सासारिक विषयो मे लग जायगा तो देह-गुण और जीव-भाव फिर आ लगेगा।

दादू दिन दिन राता राम सौ, दिन दिन अधिक स्नेह ।
दिन दिन पीवै रामरस, दिन दिन दर्पण देह ॥ २५ ॥

प्रतिदिन राम-भजन मे अनुरक्त रहे और प्रतिदिन राम मे अधिक ही प्रेम बढ़ाता जाय। इस प्रकार प्रतिदिन राम-भजन-रस पान करने से प्रतिदिन ही द्वन्द्व रूप देह-गुणो को त्यागता हुआ अन्त करण दर्पणवत् स्वस्वरूप साक्षात्कार मे सहायक होगा।

दादू दिन दिन भूलै देह गुण, दिन दिन इन्द्रिय नाश ।
दिन दिन मन मनसा मरै, दिन दिन होइ प्रकाश ॥ २६ ॥

राम-भजन के अभ्यास द्वारा प्रतिदिन ही मन देह-गुणो को भूलता जायगा। प्रतिदिन ही इन्द्रियो की विषयासक्ति तथा मन की सासारिक इच्छाये नष्ट होती जायेगी। इस प्रकार प्रतिदिन के अभ्यास से हृदय मे ब्रह्म का प्रकाश प्रकट होकर जीवन्मुक्त होगा।

सजीवन

देह रहै ससार में, जीव राम के पास।
दादू कुछ व्यापै नहीं, काल झाल दुख त्रास ॥ २७ ॥

२७-३० मे जीवन्मुक्त का परिचय दे रहे है—शरीर ससार मे रहे और जीवात्मा विचार द्वारा अभेद रूप से निरजन राम के पास रहे तो उसे कालाग्नि की ज्वाला रूप आधि-व्याधि कुछ भी नही व्यथित करती।

काया की सगति तजै, बैठा हरि पद माहिं ।
दादू निर्भय ह्वै रहै, कोइ गुण व्यापै नाहि ॥ २८ ॥

शरीर का अध्यास त्याग कर जो परमात्मा के स्वरूप मे स्थित रहता है, उस पर काम-क्रोधादिक किसी भी गुण का प्रभाव नही पड़ता। वह निर्भय होकर ससार मे रहता है।

काया माहीं भय घणा, सब गुण व्यापै आइ।
दादू निर्भय घर किया, रहै नूर में जाइ ॥ २९ ॥

देह मे आत्म-भ्राति होने से जन्म-मरणादि बहुत भय है और कामादि सभी आसुर गुण भी हृदय मे आकर व्यथित करते है। इसीलिए सत-जनो ने देहाध्यास से दूर जाकर भय-रहित प्रकाश स्वरूप ब्रह्म को ही अपना घर बनाया है और उसी मे अभेद रूप से रहते है।

खड्ग धार विष ना मरै, कोइ गुण व्यापै नांहिं।
राम रहै त्यों जन रहै, काल झाल जल मांहिं ॥ ३० ॥

प्रकाश-स्वरूप ब्रह्म मे अभेद रूप से रहने वाला जीवन्मुक्त प्राणी तलवार की धार तथा हलाहल विष से भी नही मरता। न उसे आसुर गुणो मे से कोई गुण ही व्यथित कर सकता है। वह तो जैसे निरजन राम सर्वदा निर्विकार रहते है, वैसे ही कालाग्नि की ज्वाला तथा जल मे भी निर्विकार ही रहता है।

विचार

सहज विचार सुख में रहै, दादू बड़ा विवेक।
मन इन्द्रिय पसरै नहीं, अंतर राखै एक ॥ ३१ ॥

३१-४९ मे विचार की विशेषता दिखा रहे है—जिसके मन-इन्द्रिय विषयो मे नहीं जाते, जो चित्त को एक आन्तर आत्मा मे ही रखता है और सहज स्वरूप ब्रह्म-विचार द्वारा ब्रह्मानन्द मे ही निमग्न रहता है, उसका विवेक श्रेष्ठ है।

मन इन्द्रिय पसरै नहीं, अहनिश एकै ध्यान।
पर उपकारी प्राणिया, दादू उत्तम ज्ञान ॥ ३२ ॥

जिसके मन-इन्द्रिय विषयो मे नही फैलते, वह दिन-रात एक परब्रह्म के ध्यान मे ही अनुरक्त रहता है और जो सत्योपदेश द्वारा परोपकार करता रहता है, उस प्राणी का ज्ञान उत्तम है।

दादू मैं नांहीं तब नाम क्या, कहा कहावै आप।
साधो ! कहो विचार कर, मेटो तन की ताप ॥ ३३ ॥

नाम तो व्यष्टि-अहकार युक्त व्यक्तियो के ही व्यवहार-सिद्धि के लिए रक्खे जाते है। जब व्यष्टि अहकार से रहित हुआ, तब नाम क्या रक्खा जाय ? हे सन्तो ! विचार करके कहो ? 'मै-तू' से रहित सबका अपना आप आत्मा किस नाम से पुकारा जायेगा ? उसका कोई नाम है ही नही। इस प्रकार अद्वैत विचार द्वारा भेद-जन्य अन्त.करण की ताप को नष्ट करो।

जब समझ्या तब सुरझिया, उलट समाना सोइ।
कछू कहावै जब लगै, तब लग समझ न होइ ॥ ३४ ॥

जिस साधक ने जब अपने स्वरूप को समझा, तब वह "मै-तू" आदि अहकार से निकल कर तथा अपनी वृत्ति को परब्रह्म की ओर बदल कर परब्रह्म मे ही समा गया। अत जब तक अपने को कुछ भी कहलाने की भावना अन्त करण मे है, तब तक वास्तविक ब्रह्म-विचार उत्पन्न नही हुआ है, यही समझना चाहिए।

जव समझ्या तव सुरझिया, गुरुमुख ज्ञान अलेख।
ऊर्ध्व कमल मे आरसी, फिर कर आपा देख ॥ ३५ ॥

जिस साधक ने सद्गुरु के मुख मे ब्रह्म-ज्ञान सुनकर जव अपना स्वरूप समझा, तव वह भेद के फद से निकल कर परब्रह्म को प्राप्त हुआ है। अत हे साधक ! सद्गुरु का ज्ञान-दर्पण हृदय-कमल मे धारण करके तथा अपनी वृत्ति को ससार से वदल कर उस दर्पण द्वारा अपने स्वरूप को देख।

प्रेम भक्ति दिन दिन वधे, सोई ज्ञान विचार।
दादू आतम शोध कर, मथ कर काढ्या सार ॥ ३६ ॥

जिस ज्ञान के द्वारा प्रतिदिन प्रेमाभक्ति की वृद्धि हो, उसी ज्ञान का विचार कर। कारण, पूर्वकाल के साधको ने प्रेमाभक्ति से अन्त करण को मल-विक्षेप की निवृत्ति द्वारा शुद्ध तथा स्थिर करके फिर निदिध्यासन रूप मथन से ब्रह्म का साक्षात्कार रूप सार निकाला था।

दादू जिहिं वरियां यहु सव भया, सो कुछ करो विचार।
काजी पंडित बावरे, क्या लिख वाँधे भार ॥ ३७ ॥

हे अज्ञात-तत्त्व काजी, पडितो ! विद्या के अभिमान से मत्त होकर पुस्तके लिख-लिख कर आपने क्या भार वाँध रक्खे है ? जिस समय यह सव ससार हुआ हे, उस समय उस परमात्मा का स्वरूप केसा था ? कुछ विचार करो।

प्रसग कथा—सीकरी शहर अकवर वादशाह के दरवार मे काजी तथा पडितो की ईश्वर सम्वन्धी खैचातान और उनके विद्या अहकार को देख कर ३७ वी साखी प्रश्न रूप से ही थी किन्तु सभासद, काजी, पडित इसका कुछ भी उत्तर न देकर मौन ही रहे थे। इसका उत्तर इन्ही के शिष्य वखनाजी ने अपनी वाणी मे यह दिया है—"जिहि वरियाँ यहु सव भया, सो हम किया विचार। वखना वरिया खुसी की, कर्त्ता सिरजनहार॥" जिस समय यह ससार वना है, उस समय का हमने विचार किया है। वह सहज प्रसन्नता का था। अत ससार-दशा से पूर्व परब्रह्म आनद स्वरूप है। सर्व वाद-विवाद को छोडकर उस आनद-स्वरूप का ही भजन करो।

जब यहु मन हीं मन मिल्या, तब कुछ पाया भेद।
दादू लेकर लाइये, क्या पढ मरिये वेद ॥ ३८ ॥

जब साधको का यह मन अन्तर्मुख होकर साधन करने लगा, तब मन मे ही यथार्थ ज्ञान प्राप्त हुआ और जब यथार्थ ज्ञान प्राप्त हुआ, तब ही ब्रह्म का जो कुछ रहस्यमय स्वरूप है, वह प्राप्त हुआ है। अत केवल वेद-पाठ करने मे ही क्या पच-पच कर मर रहे हो ? मन को अन्तर्मुख रूप स्थिति मे लाकर परब्रह्म मे वृति लगाओ, यह वेदाज्ञा मानो।

पाणी पावक पावक पाणी, जाणै नहीं अजाण।
आदि रु अत विचार कर, दादू जाण सुजाण ॥ ३९ ॥

जल से विद्युत् रूप अग्नि उत्पन्न होती है और अग्नि से जल होता है, इसी प्रकार कारण-ब्रह्म से ससार-रूप कार्य होता है और विचार द्वारा ससार का मिथ्यात्व निश्चय होने पर कारण-ब्रह्म का ज्ञान होता है। अत. हे सुजान साधक! ससार के आदि और अत को विचार करके ब्रह्म का स्वरूप जान।

सुख मांहीं दुख बहुत हैं, दुख मांहीं सुख होइ।
दादू देख विचार कर, आदि अंत फल दोइ ॥ ४० ॥

मायिक-विषय-सुख मे रत होने से जन्मादिक बहुत दुख भोगने पडते है और भगवद्-भजनादि साधन रूप दु ख के अत मे ब्रह्म-प्राप्ति रूप अपार आनद प्राप्त होता है। अत हे साधक! विचार करके देख, आदि सुख का फल अत मे दु ख है तथा आदि दु ख का फल अन्त मे सुख मिलता है और तू सदा सुख ही चाहता है, इसलिए भगवद्-भजन मे ही रत हो।

मीठा खारा, खारा मीठा, जानै नहीं गँवार।
आदि अंत गुण देखकर, दादू किया विचार ॥ ४१ ॥

विषय-सुख प्रथम प्रिय लगता है किन्तु शक्ति-क्षीणादि के कारण अत मे अप्रिय होता है। सयम प्रथम अप्रिय लगता है किन्तु शातिप्रद होने से अन्त मे प्रिय लगता है। मूर्ख प्राणी इस रहस्य को नही जानते। अत विषय-सुख मे ही प्रवृत्त होते है। सन्त-जनो ने उक्त प्रकार आदि और अन्त के गुणदोषो को देखकर ब्रह्म-विचार ही किया है।

कोमल कठिन कठिन है कोमल, मूरख मर्म न बूझै ।
आदि रु अंत विचार कर, दादू सब कुछ सूझै ॥ ४२ ॥

नारी-स्पर्शादि कोमल प्रतीत होते है किन्तु ससार-बन्धन के हेतु होने से अन्त मे अति कठिन भासते है। सतो के यथार्थ वचन धारण करने मे कठिन दीखते है, किन्तु धारण करने पर मुक्तिप्रद होने से कोमल भासते है। मूर्ख प्राणी इस रहस्य को नही समझते। उक्त प्रकार आदि अन्त का विचार करके देखने से ही भला बुरा सब कुछ दीखता है।

पहली प्राण विचार कर, पीछे पग दीजै।
आदि अंत गुण देखकर, दादू कुछ कीजै ॥ ४३ ॥

प्राणी को प्रथम अपने हृदय मे विचार करके पीछे ही किसी मार्ग मे पैर रखना चाहिए और विचार द्वारा आदि-अत के गुण-दोषो को देखकर के ही जो कुछ करना हो, वह करना चाहिए।

पहली प्राण विचार कर, पीछे चलिये साथ।
आदि अंत गुण देखकर, दादू घाली हाथ ॥ ४४ ॥

प्राणी को प्रथम व्यक्ति के स्वभाव, व्यवहार का विचार करके ही पीछे उसके साथ चलना चाहिए। कोई भी कार्य हो. उसके आदि अन्त के गुण-दोषो को देख करके ही उसमे प्रवृत्त होना चाहिए।

पहली प्राण विचार कर, पीछे कुछ कहिये ।
आदि अत गुण देखकर, दादू निज गहिये ॥ ४५ ॥

प्राणी को कहने योग्य बात का परिणाम प्रथम विचार करके पीछे ही कुछ कहना चाहिए और दूसरे के वचनो को भी उनका आदि-अन्त मे फलाफल रूप गुण-दोषो का विचार करके ही अपने हृदय मे ग्रहण करना चाहिए।

पहली प्राण विचार कर, पीछे आवै जाइ ।
आदि अत गुण देख कर, दादू रहै समाइ ॥ ४६ ॥

प्राणी को प्रथम विचार करके ही मायिक ससार मे वा परमात्मा की ओर आना-जाना चाहिए। विचार करने पर आदि-अन्त तक ससार मे बाँधने वाले गुण ही मिलेंगे। उन्हे बाँधने वाले देखकर साधन द्वारा निर्गुण ब्रह्म की ओर जाकर उसी मे समा कर रहना चाहिए।

दादू सोच करै सो सूरमा, कर सोचै सो कूर ।
कर सोच्याँ मुख श्याम है, सोच कियाँ मुख नूर ॥ ४७ ॥

जो व्यावहारिक वा पारमार्थिक कार्यों को भली प्रकार उनका परिणाम विचार करके करता है, वह कार्य करने मे वीर माना जाता है। जो परिणाम को बिना विचारे करता है, वह मूर्ख माना जाता है। कार्य करके परिणाम विपरीत निकलने पर जो विचार करता है-'मै ऐसा न करता तो यह दु ख मुझ पर नही आता', उसका मुख मलीन होता है और जो विचार करके कार्य करता है, परिणाम सुन्दर होने से उसका मुख प्रसन्न रहता है।

जो मति पीछे ऊपजै, सो मति पहली होइ ।
कबहुं न होवै जीव दुखी, दादू सुखिया सोइ ॥ ४८ ॥

कार्य के बिगडने पर जो विचार उत्पन्न होते है, वे विचार यदि कार्य के आरभ से प्रथम ही उत्पन्न हो जायँ तो जीव कभी भी दुखी नही हो सकता, सुखी ही रहेगा।

आदि अत गाहन किया, माया ब्रह्म विचार ।
जहँ का तहँ ले दे धर्या, दादू देत न बार ॥ ४९ ॥

इति विचार का अग समाप्त ॥ १८ ॥ सा १७९४ ॥

विचार के अग की आदि साखी से अन्त की साखी तक हमने विचार द्वारा मथन करके छाछ और मक्खन के समान माया को उसके लक्षणो द्वारा मिथ्या बताकर त्यागने योग्य स्थिति मे रक्खा है और ब्रह्म को अविनाशी निश्चय करके अभेद रूप से ग्रहण करने की स्थिति मे रक्खा है। अब जिज्ञासु को ब्रह्म-बोध प्रदान करने मे गुरुजनो को कुछ भी देर न लगेगी।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका विचार का अग समाप्त ॥ १८ ॥

अथ विश्वास का अंग १९

विचार-अग के अनन्तर विश्वास की दृढता के लिए 'बेसास का अग' कहने मे प्रवृत्त मगल कर रहे है—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत: ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक विचार मे दृढ विश्वास करके ससार से पार होते है, उन निरजन राम, सद्गुरु और सर्व सतो को हम अनेक प्रमाण करते है।

दादू सहजैं सहजै होइगा, जे कुछ रचिया राम ।
काहे को कलपै मरै, दुखी होत बेकाम ॥ २ ॥

२-१४ मे विश्वास की दृढतार्थ विचार कर रहे है—हमारे कर्मों के अनुसार भगवान् ने जो कुछ विधान बना दिया है, वही शनै शनै हमारे सामने आता है। अत प्रतिकूलता आने पर क्यो नाना कल्पना से व्याकुल होकर निष्प्रयोजन दुखी होते हो ?

सांई किया सो ह्वै रह्या, जे कुछ करै सो होइ ।
कर्ता करे सो होत है, काहे कलपै[1] कोइ ॥ ३ ॥

कर्मानुसार भगवान् ने जो विधान किया है वही हो रहा है, आगे भी जो कुछ करेगे वही होगा। भगवान् जो करते है वही होता है, फिर क्यो कोई दुखी[1] होता है।

दादू कहै–जे तैं किया सो ह्वै रह्या, जे तूं करै सो होइ ।
करण करावण एक तूं, दूजा नांही कोइ ॥ ४ ॥

हे प्राणी ! हम तुझे यथार्थ ही कहते है—जो तूने पहले कर्म किये है, उन्ही का फल तुझे सुख-दु ख हो रहा है। अब जो कर रहा है उनका फल आगे होगा। अत अपने सुख-दु ख के हेतु कर्मों का करने-कराने वाला एक मात्र तू ही है। दूसरा कोई नही।

सोई हमारा सांइयां, जे सबका पूरणहार ।
दादू जीवन मरण का, जाके हाथ विचार ॥ ५ ॥

जो सम्पूर्ण प्राणियो का भरण-पोषण करने वाला है और जिसके हाथ मे ससार की उत्पत्ति-विनाश है, वही परमात्मा हमारा स्वामी है, यही हमारा दृढ विचार है।

दादू स्वर्ग भुवन पाताल मधि, आदि अंत सब सृष्ट ।
सिरज सबन को देत है, सोइ हमारा इष्ट ॥ ६ ॥

स्वर्ग, पातालादि चौदह भुवनो मे सब सृष्टि रच कर सृष्टि के आदि से अन्त तक सबको अन्नादिक देते है, वे परमात्मा ही हमारे इष्टदेव है।

करणहार कर्ता पुरुष, हमको कैसी चिन्त ।
सब काहू की करत है, सो दादू का मिन्त ॥ ७ ॥

सृष्टि की रचना करने वाले परमात्मा सृष्टि रच कर सभी के भरण-पोपण की सँभाल करते हे, वे ही हमारे प्रिय मित्र है फिर हमारे भरण-पोपण की हमको कैसी चिन्ता है ?

दादू मनसा वाचा कर्मणा, साहिव का विश्वास।
सेवक सिरजनहार का, करे कौन की आस ॥ ८ ॥

परमात्मा का भक्त किस की आशा करेगा ? किसी की भी नही। उसे तो मन वचन कर्म से परमात्मा पर ही दृढ़ विश्वास रहता है।

श्रम ना आवै जीव को, अणकीया सब होइ ।
दादू मारग महर का, विरला बूझै कोइ ॥ ९ ॥

जीव के कुछ न करने पर भी दयालु परमात्मा की ओर से उसके भरण-पोषण की सव व्यवस्था हो जाती है ओर उसे कुछ भी परिश्रम नही होता, किन्तु इस भगवान् की दया के मार्ग को कोई विरला सन्त ही समझता है।

दादू उद्यम[1] अवगुण को नहीं, जे कर जानै कोइ ।
उद्यम में आनन्द है, जे साई सेती होइ ॥ १० ॥

९ वी साखी मे शका होती है—'क्या जीव उद्योग न करे ?' उसका उत्तर १० मे दे रहे है। यदि कोई कर जाने तो उद्योग[1] करने मे कोई दोष नही। सत्कर्म का उद्योग करना चाहिए और यदि परब्रह्म की प्राप्ति के लिए उद्योग हो, तव तो नित्यानन्द ही प्राप्त होता है।

दादू पूरणहारा पूरसी, जो चित रहसी ठाम।
अतर तैं हरि उमंग सी, सकल निरंतर राम ॥ ११ ॥

यदि मन विश्वास-पूर्वक परम धाम रूप परब्रह्म के स्वरूप मे स्थिर रहेगा, तो विश्व का भरण-पोषण करने वाला परमात्मा उसका योग-क्षेम अवश्य करेगा तथा हृदय से परब्रह्म का यथार्थ अनुभव ज्ञान प्रकट होगा, जिससे जड-चेतन ससार मे निरतर निरजन राम का ही साक्षात्कार होता रहेगा।

पूरक पूरा पास है, नाहीं दूर गँवार।
सब जानत हैं बावरे, देबे को हुसियार ॥ १२ ॥

हे मूर्ख ! भक्तो की कामना पूर्ण करनेवाला पूर्ण ब्रह्म व्यापक होने से पास ही है, दूर नही है। हे बावरे ! वह हृदय की सभी भावनाओ को जानता है और देने योग्य वस्तुओ को देने मे सर्वदा सावधान रहता है।

दादू चिन्ता राम को, समर्थ सब जानै ।
दादू राम सँभाल ले, चिन्ता जनि[1] आनै ॥ १३ ॥

समर्थ राम सब जानते है, जीवो के भरण-पोषण की चिन्ता उन्हे है। हे साधक ! तू तो निरतर राम का चिन्तन ही कर, खान-पानादि की चिन्ता हृदय मे मत[1] आने दे।

दादू चिन्ता कीयां कुछ नहीं, चिन्ता जीव को खाइ ।
होना था सो ह्वै रह्या, जाना है सो जाइ ॥ १४ ॥

जो होना था सो हो रहा है, जो जाने वाला है वह जायेगा। चिन्ता करने से कुछ नही होता, चिन्ता तो उलटा हृदय जलाती है। अत चिन्ता न करनी चाहिए।

पोष-प्रतिपाल-रक्षक

दादू जिन पहुँचाया प्राण को, उदर ऊर्ध्व मुख क्षीर ।
जठर अग्नि में राखिया, कोमल काय शरीर ॥ १५ ॥

१५-२५ मे पोषण द्वारा प्रतिपालना करने वाले रक्षक परमात्मा का उपकार दिखा रहे है—जिस परमात्मा ने गर्भवास मे ऊचे पैर करके औधे लटकते हुये प्राणी के मुख मे पोषक-रस पहुँचाया और माता के पेट मे बद्ध कोमल काया को जठराग्नि से बचाया, वह रक्षक सदा साथ ही है, उस पर विश्वास रखना चाहिए।

सो समर्थ संगी संग रहै, विकट घाट घट भीर ।
सो सांई सौं गहगही[1], जनि भूलै मन बीर[2] ॥ १६ ॥

वह समर्थ परमात्मा ही तेरा साथी है, जन्म के समय योनि रूप भयकर घाट मे जब गला घुटने से अत्यधिक कष्ट होता है, तब भी सग रहकर वही तेरा सकट हरता है। अत· हे मन भैया[2] ! मायिक मोह मे पड़कर परमात्मा को मत भूल, उससे गहरी[1] प्रीति कर।

गोविन्द के गुण चित कर, नैन बैन पग शीश ।
जिन मुख दीया कान कर, प्राणनाथ जगदीश ॥ १७ ॥

जिन प्राणनाथ जगदीश्वर ने कृपा करके तुझे नेत्र, वचन, पैर, शिर, मुख, श्रवण और हाथ दिये है, उन गोविन्द के उपकार रूप गुणो को मन मे स्मरण करके उनकी भक्ति कर।

तन मन सौंज[1] सँवार सब, राखै विसवा बीस ।
सो साहिब सुमिरै नहीं, दादू भान हदीस[2] ॥ १८ ॥

जो तेरी तन-मनादि स्थूल-सूक्ष्म सामग्री[1] को सजा कर बिल्कुल ठीक रखता है और जिसके आगे गर्भवास मे तूने बात की थी- ''मुझे अब बाहर निकालो, मै आपका भजन करूगा'', उस बात[2] को भग करके मायिक मोह मे पड़ रहा है, उस परमात्मा का स्मरण नही करता, यह उचित नही है।

दादू सो साहिब जनि बीसरै, जिन घट दीया जीव ।
गर्भवास में राखिया, पालै पोषै पीव ॥ १९ ॥

जिस परमात्मा ने शरीर मे प्राण डाल कर गर्भवास में रक्षा की और जो सदा पालन-पोषण करता रहता है, उस परमात्मा को कभी नहीं भूलना चाहिए।

दादू राजिक[1] रिजक[2] लिये खडा, देवै हाथो हाथ ।
पूरक पूरा पास है, सदा हमारे साथ ॥ २० ॥

रोजी[१] देने वाला ईश्वर भोजन, कार्य आदि जीविका[२] लिये खडा है और हाथो हाथ देता है। वह भक्तो की आशा पूर्ण करने वाला पूर्ण ब्रह्म व्यापक होने से हमारे पास है और सदा साथ ही रहता हे।

हिरदै राम सँभाल ले, मन राखै विश्वास।
दादू समर्थ सांइया, सबकी पूरै आस॥ २१॥

मन मे पूर्ण विश्वास रखते हुये हृदय मे स्थित आत्माराम का स्मरण करो, वह समर्थ परमात्मा सबकी आशा पूर्ण करता है।

दादू सांई सबन को, सेवक ह्वै सुख देइ।
अया[१] मूढ मति जीव की, तो भी नाम न लेइ॥ २२॥

परमात्मा सेवक के समान सबकी सेवा करते हुए सबको सुख देता है, तो भी उसका नाम स्मरण नही करते। अत प्रत्यक्ष[१] ही जीवो की बुद्धि मूर्खता-पूर्ण है।

दादू सिरजनहारा सबन का, ऐसा है समरत्थ।
सोई सेवक ह्वै रह्या, जहँ सकल पसारैं हत्थ॥ २३॥

जो सपूर्ण विश्व को रचने वाला है, जिसके आगे सभी हाथ बढ़ा कर याचना करते है, ऐसा जिसका बल है, वही परमात्मा दया-वश सबका सेवक होकर भरण-पोषण कर रहा है।

धन[१] धन साहिब तू बडा, कौन अनूपम रीत।
सकल लोक शिर साइया, ह्वै कर रह्या अतीत[२]॥ २४॥

हे परमेश्वर! आप महान् है, सपूर्ण लोको के शिरोमणियो के भी आप स्वामी है। फिर भी सबके गुण दोषो से अलग[२] होकर रहते है। यह आपकी कैसी अनुपम रीति है। अत आपको बारबार धन्यवाद[१] है।

दादू हू बलिहारी सुरति की, सबकी करै सँभाल।
कीडी कुजर पलक मे, करता है प्रतिपाल॥ २५॥

जो पल भर मे कण खाने वाली चीटी को कण भर और मण खाने वाले हाथी को मण भर भोजन देकर रक्षा करता है और इसी प्रकार सब की सँभाल करता है, मै उस परमात्मा की दयालु-वृत्ति पर वा उसके प्रतिपालक स्वरूप पर बलिहारी जाता हूँ।

छाजन-भोजन

दादू छाजन भोजन सहज मे, सइयां देइ सो लेइ।
तातै अधिका और कुछ, सो तू कांई करेइ॥ २६॥

२६-३९ मे वस्त्र-भोजन विषयक विचार कर रहे है—हे साधक! सहज स्वभाव से जो भगवान् दे, वे ही वस्त्र-भोजन सतोष पूर्वक ग्रहण करके भजन कर, उनसे अधिक अन्य जो कुछ है, उनका तू क्या करेगा? वे तो तेरे भजन मे विघ्न ही करेगे।

दादू टूका सहज का, संतोषी जन खाइ ।
मृतक भोजन, गुरुमुखी ! काहे कलपै जाइ ॥ २७ ॥

गुरु आज्ञा मे चलने वाले सतोषी साधक जन, सहज स्वभाव से प्राप्त रोटी के टुकडे को खाकर भजन करे, अच्छे भोजन की कल्पना करके श्राद्धादि मृतक-भोजन के लिये नही जायॅ।

दादू भाडा देह का, तेता सहज विचार ।
जेता हरि बिच अंतरा, तेता सबै निवार ॥ २८ ॥

सहज स्वभाव से प्राप्त मे भी विचार करके शरीर के निर्वाह मात्र सात्त्विक पदार्थ ही ग्रहण करे और भगवान् के भजन मे विघ्न डालने वाले जो राजस-तामस पदार्थ है, उन को त्याग दे।

दादू जल दल राम का, हम लेवैं परसाद ।
संसार का समझै नही, अविगत भाव अगाध ॥ २९ ॥

हम मन इन्द्रियो के विषय परमात्मा के अगाध प्रेम मे लीन रहते हुये अन्न-जल को निरजन राम का प्रसाद मान कर ही ग्रहण करते है। ससारी प्राणियो का नही समझते।

परमेश्वर के भाव का, एक कणूंका खाइ ।
दादू जेता पाप था, भर्म कर्म सब जाइ ॥ ३० ॥

परमेश्वर के पूर्ण प्रेम और दृढ़ विश्वास युक्त-व्यक्ति द्वारा अर्पण किये हुये प्रसाद का दृढ़ विश्वास और प्रेम से यदि एक कण भी खाया जाय तो पहले जितना हृदय मे पाप था वह और आगे होने वाला निषिद्ध कर्म और अज्ञान सब नष्ट हो जाते है।

दादू कौण पकावै कौण पीसै, जहाँ तहां सीधा ही दीसै ॥ ३१ ॥

अनेक सतो को साथ मे देखकर किसी ने प्रश्न किया था—आपके यहा कौन पीसता है और कौन पकाता है ? उसका उत्तर दे रहे है-जहा तहा बना-बनाया ही भोजन सतो की दृष्टि के सामने आता है, फिर कौन पीसे पकायेगा ?

दादू जे कुछ खुसी खुदाइ की, होवैगा सोई ।
पच पच कोई जनि मरै, सुन लीज्यो लोई[1] ॥ ३२ ॥

हे लोगो[1] ! ध्यान देकर सुनो ! भगवान् की भक्ति व विश्वास को छोडकर क्यो कोई सासारिक कार्यों मे ही पच-प्रच कर मरे ? होगा तो वही जो भगवान् की इच्छा होगी।

दादू छूट[1] खुदाइ[2] कहीं को नाहीं, फिर हो पृथ्वी सारी ।
दूजी[3] दहन[4] दूर कर बोरे[5] ! साधू शब्द विचारी ॥ ३३ ॥

चाहे सारी पृथ्वी मे कही भी फिर आओ, किन्तु भगवान्[2] को छोड[1] कर अन्य कोई भी ससार-दु ख से छुडाने वाला नही है। अत हे भोले[5] प्राणी ! विश्वास पूर्वक सतो के ज्ञान पूर्ण-शब्द विचार द्वारा द्वैत[3] की दाह को हृदय से दूर हटा।

दादू बिना राम कहीं को नाहीं, फिर हो देश विदेशा ।
दूजी दहन दूर कर बोरे ! सुन यहु साधु सदेशा ॥ ३४ ॥

चाहे देश-विदेश कही भी फिर आओ, किन्तु राम के विना तुम्हारा सच्चा हितैषी कोई भी नही है, हे भोले साधक ! यह सतो का सदेश श्रवण करके तथा हृदय से द्वैत की दाह को दूर हटा कर विश्वास-पूर्वक निरजन राम का ही स्मरण कर।

दादू सिदक[1] सबूरी[2] साच गह, साबित राख यकीन[3] ।
साहिब सौ दिल लाइ रहु, मुरदा है मस्कीन[4] ॥ ३५ ॥

पूरा विश्वास[3] रख कर सत्यता[1] तथा सच्चा सतोष[2] ग्रहण कर और मुर्दा के समान निरहकार गरीब[4] होकर परमात्मा के भजन मे मन लगा कर ससार मे रह।

दादू अनबाँछित टूका खात है, मर्महि लागा मन ।
नाम निरजन लेत है, यो निर्मल साधू जन ॥ ३६ ॥

मन, रहस्य-मय ब्रह्म-विचार मे लगा रहता है निरतर निरजन का नाम लेते रहते है। विना इच्छा ही सहज स्वभाव से जो टुकडा मिल जाता हे, उसे ही खाकर सतुष्ट रहते है। ऐसे व्यवहार से ही सतजन सदा निर्मल रहते है।

अनबॉछा आगे पडै, खिरा[1] विचार रु खाइ ।
दादू फिरै न तोडता, तरुवर ताक[2] न जाइ ॥ ३७ ॥

सहज स्वभाव से बिना इच्छा जो अन्न, भोजन के समय सामने आ जाये, उसे ही वृक्ष से गिरे[1] हुये फल के समान जान कर तथा सात्त्विकता का विचार करके सतोष पूर्वक खाय। जैसे साधारण मानव अच्छे फल वाले वृक्ष को देख[2] कर उसके फल तोडने जाते है, वैसे ही अच्छा अन्न देने वालो के यहा ही माँगता न फिरे।

अनबाँछा आगे पडै, पीछे लेइ उठाइ ।
दादू के शिर दोष यहु, जे कुछ राम रजाइ[1] ॥ ३८ ॥

बिना इच्छा ही वस्त्र-भोजनादि जो कुछ आ जाये तो फिर उन्हे ग्रहण कर ले और जो कोई न माँगने का दोष शिर पर लगावे तो उसे कह दे—"भाई। जो राम की आज्ञा[1] होती है, वैसा ही होता है।"

अनबॉछी अजगैब[1] की, रोजी[2] गगन[3] गिरास[4] ।
दादू सत कर लीजिये, सो साई के पास ॥ ३९ ॥

बिना इच्छा अनजान मे अकस्मात्[1] जो भोजन[2]-वस्त्रादि प्राप्त हो, उन्हे परब्रह्म[3] का सच्चा प्रसाद[4] मानकर विश्वास पूर्वक ग्रहण करो। वह प्रसाद परब्रह्म के पास पहुँचाने वाला है।

कर्ता कसौटी

मीठे का सब मीठा लागै, भावै विष भर देइ ।
दादू कड़वा ना कहै, अमृत कर कर लेइ ॥ ४० ॥

४०-४१ मे परीक्षार्थ प्रेम-पात्र का कटु व्यवहार भी प्रिय लगता है, यह कहते है—प्रियतम परमात्मा का दिया हुआ प्रसाद सब प्रिय ही लगता है। चाहे वह उसमे विष भरके ही दे, तो भी सत उसे कटु नही कहते, अमृत मान कर हाथ मे लेते है और खा जाते है।

विपत्ति भली हरि नाम सौं, काया कसौटी दु.ख ।
राम बिना किस काम का, दादू संपत्ति सुख ॥ ४१ ॥

हरिनाम का चिन्तन करते समय, यदि राम शरीर को कष्ट देकर परीक्षा भी करे तो भी वह विपत्ति हमारे लिये अच्छी ही है। कारण, राम-भजन बिना सपत्ति-सुख किस काम का है ?

बेसास-संतोष

दादू एक बेसास बिन, जियरा डावॉ डोल ।
निकट निधि दुख पाइये, चिन्तामणि अमोल ॥ ४२ ॥

४२-४८ मे विश्वास तथा सतोष की विशेषता दिखाकर धारण करने की प्रेरणा कर रहे है—चिन्तामणि रूप अमूल्य निधि परमात्मा अति निकट हृदय मे ही है, किन्तु फिर भी एक विश्वास बिना चित्त चचल रहने से प्राणी दु ख ही पाता है।

दादू बिन बेसासी जीयरा, चंचल नांही ठौर ।
निश्चय निश्चल ना रहै, कछू और की और ॥ ४३ ॥

बिना विश्वास के जीव का चचल चित्त दृढ निश्चयपूर्वक भगवन्नाम-चिन्तन रूप स्थान पर निश्चल नही रहता, कुछ अन्यान्य वस्तुओ का ही चिन्तन करता रहता है।

दादू होना था सो ह्वै रह्या, स्वर्ग न बॉछी धाइ ।
नरक कनै थी ना डरी, हुआ सो होसी आइ ॥ ४४ ॥

जो होने वाला था, वही हो रहा है। होनहार से दौडकर स्वर्ग-सुख की इच्छा न करो और न नरक-दु ख पास आने से डरो। जो अपने से भला-बुरा कर्म हुआ है, उसी का फल हमे सुख-दु ख होगा।

दादू होना था सो ह्वै रह्या, जनि बॉछे सुख दु.ख ।
सुख माँगे दुख आइसी, पै पिव न विसारी मुख ॥ ४५ ॥

होनहार था, वह हो रहा है, कोई भी साधक सुख दु ख की इच्छा न करे, कारण, सुख मागने से दु ख अवश्य आयेगा। सासारिक सुख-दु ख रात्रि-दिन के समान एक के पश्चात् एक आता ही है परन्तु प्रत्येक परिस्थिति मे निष्काम भाव से मुख द्वारा परमात्मा का नाम उच्चारण करना न भूलना चाहिए।

दादू होना था सो ह्वै रह्या, जे कुछ कीया पीव ।
पल बधे न छिन घटै, ऐसी जानी जीव ॥ ४६ ॥

जो भी परमात्मा ने विधान किया है, उस विधान के अनुसार जो होनहार था, वही हो रहा है और जो जीव की आयु निश्चित हो गई है, उससे न तो एक पल बढ सकती और न घट सकती। हमने हृदय मे ऐसी ही बात निश्चयपूर्वक जानी है।

दादू होना था सो है रह्या, और न होवै आइ।
लेना था सो ले रह्या, और न लीया जाइ ॥ ४७ ॥

जो होनहार था, वही हो रहा है, और अनहोना आकर कुछ होगा नही। हमे जो निरजन का नाम लेना था, वह ले रहे है। अन्य देवी-देवताओ के नाम व धन-सपत्ति आदि हमसे नही लिया जायेगा।

ज्यों रचिया त्यों होइगा, काहे को शिर लेह।
साहिब ऊपरि राखिये, देख तमासा येह ॥ ४८ ॥

हे साधक! जैसे भगवान् ने रच दिया है, वैसे ही होगा। "मै करता हूँ वा करूगा" ऐसा अभिमान रूप भार तू अपने शिर पर क्यो लेता है ? करने-कराने आदि का भार ईश्वर पर ही रखकर भगवद्-भजन करते हुये तटस्थ रूप से यह ससार रूप खेल देख।

पतिंव्रत निष्काम

ज्यो जानो त्यों राखियो, तुम शिर ढाली[1] राइ[2]।
दूजा को देखूं नहीं, दादू अनत[3] न जाइ ॥ ४९ ॥

४९-५१ मे निष्काम पतिव्रत रूप अनन्यता दिखा रहे है—हे विश्व के राजा[2] परमेश्वर! आप जैसे हमे जानते है, वैसे ही हमारी रक्षा करना। हमने तो हमारी जीवन डोरी आप के भरोसे पर ही छोड़[1] रखी है। हम न अन्य[3] स्थान पर जायेंगे और न आपको छोड कर रक्षार्थ दूसरे की ओर देखेगे।

ज्यों तुम भावै त्यो खुसी, हम राजी उस बात।
दादू के दिल सिदक[1] सौ, भावै दिन को रात ॥ ५० ॥

हे परमेश्वर! जैसे आप को अच्छा लगे, वैसे ही ढग से रहने मे हम प्रसन्न है और आप जो बात कहेंगे, उसी बात को मानने मे हमे प्रसन्नता होगी। चाहे आप दिन को रात कहेगे तो हम भी सच्चे[1] दिल से उसे रात कहेगे।

दादू करणहार जे कुछ किया, तो बुरा न कहना जाइ।
सोई सेवक संत जन, रहबा राम रजाइ ॥ ५१ ॥

सृष्टि-कर्ता परमेश्वर ने जो कुछ भी अपने कर्मानुसार सुख-दु ख का विधान कर दिया है, उसे किसी के आगे जाकर यह मत कहो—"परमात्मा ने यह अच्छा नही किया।" जो राम की आज्ञा मे रहते है, वे ही जन भक्त तथा सत कहलाते है।

विश्वास-संतोष

दादू कर्ता हम नहीं, कर्ता औरै कोइ।
कर्ता है सो करेगा, तू जनि कर्ता होइ ॥ ५२ ॥

सत का विश्वास प्रदर्शन पूर्वक साधक को सतोष की प्रेरणा कर रहे है—हम कर्त्ता नही हैं, कर्त्ता तो अन्य ही कोई है अर्थात् कर्म-फल विधान का कर्त्ता ईश्वर है और कर्म का कर्त्ता स्थूल-

सूक्ष्म सघात है। हे साधक ! तेरा स्वरूप स्थूल-सूक्ष्म सघात तो नही है, फिर तू कर्त्ता क्यो बन रहा है ?

हरि-भरोस

काशी तज मगहर गया, कबीर भरोसे राम ।
सैंदेही सांई मिल्या, दादू पूरे काम ॥ ५३ ॥

५३-५६ मे हरि का विश्वास दिखा रहे है—काशी मे कुछ लोगो ने यह बात प्रचलित की थी—"काशी का माहात्म्य ऐसा है, जो कबीर भी मुक्त हो जायेगा।" कबीर जी को राम का भरोसा था, काशी का नही। अत. वे काशी को त्याग कर बस्ती जिले के 'मगहर' ग्राम मे चले गये थे और अन्तिम समय मे अपने स्थूल शरीर के सहित परमेश्वर मे जा मिले थे। राम के भरोसे ही उनके सब काम पूर्ण हुये थे। कहते है - मगहर मे मरने वाले की मुक्ति नही होती।

दादू रोजी[1] राम है, राजिक[2] रिजक[3] हमार।
दादू उस परसाद सौं, पोष्या सब परिवार ॥ ५४ ॥

हमारा भाग्य[1] राम ही है और आजीविका[3] भी सबका भरण-पोषण करने वाला परमात्मा[2] ही है। उस परमात्मा के कृपा-प्रसाद से ही हमने अपने इन्द्रिय अन्त.करण रूप परिवार का पोषण किया है।

पंच संतोषे एक सौं, मन मतिवाला मांहिं।
दादू भागी भूख सब, दूजा भावै नांहिं ॥ ५५ ॥

जब सत्सग द्वारा मन सद्‌बुद्धि वाला हुआ, तब अन्तर्मुख होकर भगवद्-भजन मे लगा। फिर तो पच ज्ञानेन्द्रिय आदि भी एक मात्र भगवत्-परायण होकर सतुष्ट हो गये। ससारी भोगो की इच्छा सब नष्ट हो गई। अत अब भगवान् को छोडकर अन्य कुछ भी अच्छा नही लगता।

दादू साहिब मेरे कापडे, साहिब मेरा खाण।
साहिब शिर का ताज है, साहिब पिंड पराण ॥ ५६ ॥

सपूर्ण विश्व के स्वामी परमात्मा ही हमारे वस्त्र, भोजन, शिर के मुकुट, शरीर, प्राणादि सर्वस्व है।

विनती

सांई सत[1], संतोष दे, भाव[2] भक्ति, विश्वास।
सिदक[3], सबूरी[4], साँच[5] दे, मॉगे दादू दास ॥ ५७ ॥

इति बेसास का अग समाप्त ॥ १९ ॥ सा १८५१ ॥

दैवीगुण, भक्ति तथा स्वरूप प्राप्ति के लिए प्रार्थना कर रहे है—हे परमेश्वर ! मै आप से येही अष्टसिद्धियाँ माँगता हूँ—मुझे आप अडिगता[1], सतोष, श्रद्धा[2], अनन्य-भक्ति, दृढ़ विश्वास, सत्यता[3], मिताहार-बुद्धि[4] और अपने सत्य-स्वरूप[5] स्वरूप के दर्शन दे।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका विश्वास का अग समाप्त ॥ १९ ॥

अथ पीव पहिचान का अंग २०

विश्वास-अग के अनन्तर, परमात्मा के स्वरूप परिचयार्थ 'पीव पिछाण का अग' कहने मे प्रवृत्त हुये मगल कर रहे है—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत.।
वंदनं सर्व साधवा, प्रणाम पारगत: ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक परमात्मा के स्वरूप को पहचान कर ससार से पार हो, परब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरजन राम, सद्गुरु और सब सतो को हम अनेक प्रणाम करते है।

सारों के शिर देखिये, उस पर कोई नांहि।
दादू ज्ञान विचार कर, सो राख्या मन मांहि ॥ २ ॥

२-१७ मे प्रभु पहचान के विचार दिखा रहे है—जो सर्व शिरोमणि है, जिससे महान् अन्य कोई भी नही है, सतो ने ब्रह्म-ज्ञान विचार द्वारा उस परब्रह्म को ही अभेद रूप से अपने मन मे धारण किया है।

सब लालो शिर लाल[1] है, सब खूबो शिर खूब[2]।
सब पाको शिर पाक[3] है, दादू का महबूब[4] ॥ ३ ॥

जो सपूर्ण प्रियतमो से भी अधिक प्रियतम[1] है, सपूर्ण श्रेष्ठो से अति श्रेष्ठ[2] है, सपूर्ण पवित्रो से अति पवित्र[3] है, वह परब्रह्म ही हमारा प्रेम-पात्र[4] है।

एक तत्त्व ता ऊपरि इतनी, तीन लोक ब्रह्मडा।
धरती गगन पवन अरु पानी, सप्त द्वीप नौ खडा ॥ ४ ॥

४-६ मे तुम किस के बन्दे हो ? इसका उत्तर दे रहे है—जो एक अद्वैत तत्त्व स्वरूप ब्रह्म है और आकाश, वायु, अग्नि, जल, सप्तद्वीप (१ जम्बू २ प्लक्ष ३ कुश ४ शाल्मलि ५ क्रौच ६ शाक ७ पुष्कर), नव खड (१ उत्कल २ हिरण्य ३ भद्रश्व ४ केतुमाल ५ इलावृत्त ६ नाभि ७ किमपुरुष ८ भरत ९ नरहरि), तीन लोक (१ स्वर्ग २ मर्त्य ३ पाताल) रूप ब्रह्माड, इतनी सृष्टि जिसके आश्रित है, मै उसी परब्रह्म का बन्दा हूँ।

चद सूर चौरासी लख, दिन अरु रैणी, रच ले सप्त समदा।
सवा लाख मेरु गिरि पर्वत, अठारह भार तीर्थ व्रत, ता ऊपर मडा ॥
चौदह लोक रहै सब रचना, दादू दास तास घर बदा ॥ ५ ॥

जो चन्द्रमा, सूर्य, चौरासी लक्ष योनि, दिन-रात्रि, १ क्षीर २ दधि ३ घृत ४ इक्षु ५ मधु ६ मदिरा ७ लवण ये सप्त समुद्र, मेरु, गिरि, पर्वतादि जातियो के सवा लक्ष पहाड़, अठारह भार वनस्पतिया (बीस पसेरी का एक भार होता है, सपूर्ण वनस्पतियो का एक-एक पत्ता लेकर तोलने से १८ भार= ४५ मण होता है इसीलिए वनस्पतियो को अठारह भार कहते है) तीर्थ-व्रतादि को रचने वाला है और १ भू , २ भुव ३ स्व ४ मह ५ जन ६ तप ७ सत्य, ये सप्त ऊपर के,

१ अतल २ वितल ३ सुतल ४ तलातल ५ महातल ६ रसातल ७ पाताल, ये सप्त नीचे के, इन चौदह लोक रूप ब्रह्माड की रचना जिसके आश्रित रहती है, हम उस ब्रह्म के घर के सेवक है।

दादू जिन यहु एती कर धरी, थंभ बिन राखी।
सो हमको क्यों बीसरै, संत जन साखी ॥ ६ ॥

जिन परमात्मा ने इतनी विशाल सृष्टि रचकर बिना किसी स्थभादि आश्रय के धरी है और निरतर इसकी रक्षा की है, वे हमे कैसे भूल सकते है। पूर्वकाल के सतो की यह साक्षी है—"वे भक्तो का योग-क्षेम सदा करते रहते है।"

दादू जिन मुझको पैदा किया, मेरा साहिब सोइ।
मैं बन्दा उस राम का, जिन सिरज्या सब कोइ ॥ ७ ॥

जिनने मुझे और सब ससार को उत्पन्न किया है, वे परमात्मा ही हमारे स्वामी है और हम उन्ही राम के सेवक है।

दादू एक सगा संसार में, जिन हम सिरजे सोइ ।
मनसा वाचा कर्मना, और न दूजा कोइ ॥ ८ ॥

जिन परमात्मा ने हमको उत्पन्न किया है वे ही हमारे सच्चे सम्बन्धी है। हम मन, वचन और कर्म से कहते है, अन्य दूसरा कोई भी हमारा नही है।

जे था कंत कबीर का, सोइ वर वरहूं ।
मनसा वाचा कर्मना, मैं और न करहूं ॥ ९ ॥

पूर्वकाल के कबीरादि सतो ने जो वर वरा था, उसी परमात्मा को हम वर बनायेगे। हम मन, वचन और कर्म से कहते है, अन्य किसी को स्वामी नही बनायेगे।

सबका साहिब एक है, जाका परगट नांव।
दादू सांई शोध ले, ताकी मैं बलि जांव ॥ १० ॥

जिसका 'ईश्वर' यह नाम प्रकट है, वह परमात्मा सभी मतवादियो का एक ही है। मत-मतान्तरो की पक्ष को त्याग कर, जो उस परमात्मा को विचार द्वारा खोज के प्राप्त कर लेता है, उसकी हम बलहारी जाते है।

साचा सांई सोध कर, साचा राखी भाव।
दादू साचा नाम ले, साचे मारग आव ॥ ११ ॥

सतो के सग द्वारा सत्य परब्रह्म की खोज करके, उसमे सच्चा प्रेम रखते हुये गुण, कर्म, स्वभाव से रहित उसका सच्चा नाम उच्चारण कर, उस की प्राप्ति के सच्चे मार्ग मे आओ।

जामै मरै सो जीव है, रमता राम न होइ।
जामण मरण तैं रहित है, मेरा साहिब सोइ ॥ १२ ॥

जो जन्मता मरता है, वह व्यापक राम नही हो सकता, जीव ही है और जो जन्म-मरण से रहित है, वही राम हमारा स्वामी है।

उठै न बैसै एक रस, जागै सोवै नांहि।
मरै न जीवै जगद् गुरु, सब उपज खपै उस मांहिं॥ १३॥

जो जन्मना, मरना, जागना, सोना, उठना, बैठना आदि क्रियाओ से रहित एक रस है,सपूर्ण जगत् मे महान् है, जिसमे सपूर्ण विश्व जल-बुदबुदे की तरह उत्पन्न होकर लय हो जाता है, वही राम हमारा स्वामी है।

ना वह जामै, ना मरै, ना आवै गर्भवास।
दादू ऊँधे मुख नही, नर्क कुड दस मास॥ १४॥

वह परमात्मा न जन्मता है, न मरता है और न गर्भवास मे आकर दश मास तक अधोमुख होकर मलाशय रूप नर्क कुड के पास रहता है।

कृत्रिम नहीं सो ब्रह्म है, घटै बधे नहि जाइ।
पूरण निश्चल एक रस, जगत न नाचै आइ॥ १५॥

वह ब्रह्म किसी से रचित नही है, घटता बढ़ता नही है। जगत मे आकर जीवो के समान नाना क्रिया रूप नृत्य नही करता और न लोकातर मे जाता है। वह तो पूर्ण, निश्चल, एकरस तथा व्यापक है।

उपजे विनशै गुण धरै, यहु माया का रूप।
दादू देखत थिर नहीं, क्षण छांहीं क्षण धूप॥ १६॥

उत्पन्न होना, विनाश होना, सत्व, रज, तम और इनके कार्य रूप गुणो को धारण करना, यह सब माया कृत जीव का स्वरूप है। इसे सब देखते ही है—इसका स्वरूप स्थिर नही है। छाया और धूप के परिवर्तन के समान क्षण-क्षण मे सुखी-दुखी होता रहता है।

जे नाही सो ऊपजे, है सो उपजै नाहि।
अलख आदि अनादि है, उपजै माया मांहि॥ १७॥

जो माया के कार्य परमार्थ रूप से सत्य नही है, वे ही उत्पन्न होते है। परमार्थ रूप से सत्य है, वह ब्रह्म उत्पन्न नहीं होता। इन्द्रियो का अविषय ब्रह्म तो सपूर्ण मायिक प्रपच से आदि है और उसका आदि कारण कोई नही। अत उत्पत्ति आदि सब विचार, मायिक कार्यों मे ही होते है।

प्रश्न

जे यहु करता जीव था, संकट क्यो आया ?
कर्मों के वश क्यो भया, क्यो आप बँधाया ?॥ १८॥
क्यों सब जोनी जगत मे, घर बार नचाया ?
क्यों यह कर्ता जीव ह्वै, पर हाथ बिकाया ?॥ १९॥

१८-१९ मे प्रश्न है—यदि जीव ही करने कराने वाला है तो कर्मों के वश होकर गर्भवास के दु ख मे आकर अपने आप ही क्यो बँध गया ?

यदि यह जीव ही करने कराने वाला होवे तो सब जगत् की योनि रूप घर-द्वारो मे कर्मो के द्वारा क्यो नचाया जाता है ? और क्यो विषयो के हाथ बिकता है ?

उत्तर-जीव लक्षण

दादू कृत्रिम काल वश, बंध्या गुण मांहीं ।
उपजै विनशै देखतां, यहु कर्ता नांहीं ॥ २० ॥

२०-२७ मे जीव के लक्षण पूर्वक उक्त प्रश्न का उत्तर दे रहे है—जो माया द्वारा कर्मों से बना हुआ, काल के वश मे रहने वाला, गुणो से बँधा हुआ है तथा प्रत्यक्ष ही उत्पन्न होता है और नष्ट हो जाता है, वह जीव जगत् का कर्त्ता नही हो सकता।

जाती[1] नूर[2] अल्लाह का, सिफाती[3] अरवाह[4] ।
सिफाती सिजदा[5] करे, जाती बे परवाह ॥ २१ ॥

ब्रह्म का स्वरूप[2] सत्य[1] शुद्ध है और जीव[4] गुण[3] विकारो से युक्त है। गुण-विकारो वाले परतत्र जीव, ब्रह्म की प्रणामादि[5] द्वारा पूजा करते है और ब्रह्म निराश्रय है।

परम तेज परापरं, परम ज्योति परमेश्वरं ।
स्वयं ब्रह्म सदई[1] सदा, दादू अविचल स्थिरं ॥ २२ ॥

परमेश्वर, परब्रह्म, स्वय परम, प्रभाव रूप, परम ज्योति रूप, माया से परे, क्रिया रहित, सुस्थिर, सदा[1] एक रस है।

अविनाशी साहिब सत्य है, जे उपजै विनशै नांहि ।
जेता कहिये काल मुख, सो साहिब किस मांहिं ॥ २३ ॥

जो उत्पत्ति नाश रहित सत्य अविनाशी है, वही परमात्मा है। जो काल के मुख मे जाता है, वह परमात्मा किस गणना मे है वा किस शास्त्र तथा किस मत मे कहा गया है ? सो कहिये।

सांई मेरा सत्य है, निरंजन निराकार ।
दादू विनशै देखतां, झूठा सब आकार ॥ २४ ॥

हमारा निरजन निराकार परमात्मा ही सत्य है। शेष नाम रूपात्मक सब ससार प्रत्यक्ष ही नष्ट होता रहता है, अत. मिथ्या है।

राम रटण छाडै नहीं, हरि लै लागा जाइ ।
बीचैं ही अटकै नहीं, कला कोटि दिखलाइ ॥ २५ ॥

साधक को चाहिए राम-नाम की रटन नही छोडे, माया चाहे कोटि चमत्कार दिखावे, किन्तु मायिक सुखो मे लगकर बीच मे न रुके, परब्रह्म मे वृत्ति लगाता हुआ ससार से पार हो जाये।

उरैं ही अटकै नहीं, जहां राम तहँ जाइ ।
दादू पावै परम सुख, विलसै वस्तु अघाइ ॥ २६ ॥

जो साधक मायिक विषयो मे नही रुकता, वह ब्रह्माकार वृत्ति द्वारा जिस अवस्था मे निरजन राम का साक्षात्कार होता है, उस निर्द्वन्द्व सहजावस्था को प्राप्त होकर परम सुख प्राप्त करता है तथा परमानन्द वस्तु का उपभोग करके तृप्त हो जाता है।

दादू उरै ही उरझे घणे, मूये गल दे पास।
ऐन अंग जहँ आप था, तहाँ गये निज दास॥ २७॥

बहुत लोग मायिक ऋद्धि-सिद्धि आदि मे ही फँस गये है और अपने हाथो ही प्रतिष्ठादि की आशा-पाश गले मे डालकर पुन जन्म-मृत्यु रूप ससार को ही प्राप्त हुये है। जिस निर्द्वन्द्वावस्था मे प्रियतम परमात्मा का अपने-आप साक्षात्कार होता है, उस अवस्था को तो भगवान् के निष्काम निजी भक्त ही प्राप्त हुये है।

जगत भुलावन

सेवा का सुख प्रेम रस, सेज सुहाग न देइ।
दादू बाहै दास को, कह दूजा सब लेइ॥ २८॥

२८ मे कहते है—परमात्मा साधक को सासारिक पदार्थ प्रदान करके बहका देते है, भक्तो को सेवा भक्ति का फल उनकी हृदय-शय्या पर पधार कर प्रेम-रस प्रदान रूप सुख देने की बजाय दूसरे सपूर्ण मायिक सुख देने को कह कर बहका देते है। जो नही बहकते, वे ही उन्हे प्राप्त करते है।

पति-पहचान

लोहा माटी मिल रह्या, दिन दिन काई खाइ।
दादू पारस राम बिन, कतहूँ गया विलाइ॥ २९॥

२९-३१ मे प्रभु पहचान से लाभ और न पहचान से हानि दिखा रहे है—जीव रूप लोहा, विषय रूप मिट्टी मे मिलकर प्रतिदिन त्रिताप-मैल से क्षीण होता जा रहा है। वह सद्गुरु रूप पारस बिना, ज्ञानी भक्त रूप सुवर्ण बन के राम को प्राप्त नही होता और चौरासी लक्ष योनियो मे कही भी नष्ट-भ्रष्ट होता रहता है।

लोहा पारस परस कर, पलटै अपना अग।
दादू कंचन ह्वै रहै, अपने साई सग॥ ३०॥

जीव-लोहा सद्गुरु-पारस से मिलकर, अपने जीव भाव-आकार को बदल कर तथा निर्द्वन्द्वावस्था रूप सुवर्णाकार को प्राप्त होकर अपने स्वामी परब्रह्म के साथ अभेद होकर रहता है।

दादू जिहि परसें पलटै प्राणियाँ, सोई निज कर लेह।
लोहा कंचन ह्वै गया, पारस का गुण येह॥ ३१॥

लोहा पारस के स्पर्श से सुवर्ण हो जाता है, यह पारस का गुण है। वैसे ही जिसके उपदेश रूप स्पर्श से प्राणी का जीव-भाव बदलकर ब्रह्म की प्राप्ति हो जाय, उसी को अपना गुरु कर लेना चाहिए। यही गुरु करने का अभिप्राय है।

परिचय जिज्ञासा उपदेश

दह दिशि फिरै सो मन है, आवै जाय सो पवन ।
राखणहारा प्राण है, देखणहारा ब्रह्म ॥ ३२ ॥

इति पीव पिछाण का अग समाप्त ॥ २० ॥ १८८३ ॥

साक्षात्कार की इच्छा वाले को उपदेश कर रहे हैं—दशो दिशा मे भ्रमण करता है, वही मन है। शरीर के बाहर से भीतर आता है और बाहर जाता है, वही पवन है। स्थूल सूक्ष्म सघात की रक्षा करता है, वही प्राण है। उक्त सबको साक्षी भाव से देखता है, वही कूटस्थ चेतन ब्रह्म है।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका पीव पहिचान का अग समाप्त ॥ २० ॥

अथ समर्थता का अंग २१

पीव पहचान के अनन्तर परमेश्वर ही सामर्थ्य का निरूपण करने के लिए 'समर्थाई का अग' कहने मे प्रवृत्त हुये मगल कर रहे है—

दादू नमो नमो निरंजन, नमस्कार गुरुदेवत: ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणाम पारंगत: ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से प्राणी नास्तिकता से पार हो, ईश्वर-सामर्थ्य को जान, ब्रह्म-ज्ञान द्वारा ब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरजन देव, सद्गुरु और सर्व सतो को हम अनेक प्रणाम करते है।

दादू कर्ता करै तो निमष[1] में, कीडी कुंजर होइ ।
कुंजर तैं कीडी करै, मेट सकै नहिं कोइ ॥ २ ॥

२-८ मे परमेश्वर की सामर्थ्य का परिचय दे रहे है—यदि ईश्वर करना चाहे तो एक पल[1] मे चीटी हाथी हो सकती है और वे हाथी को चीटी बना सकते है। उनके इस कार्य मे कोई भी विपरीतता नही कर सकता।

दादू कर्ता करै तो निमष मे, राई मेरु समान ।
मेरु को राई करै, तो को मेटे फरमान[1] ॥ ३ ॥

ईश्वर करना चाहे तो एक निमेष मे राई को पर्वत समान और पर्वत को राई समान बना सकते है, उनकी आज्ञा[1] कौन मेट सकता है ?

दादू कर्ता करै तो निमष मे, जल मांहीं थल थाप।
थल मांहीं जलहर करै, ऐसा समर्थ आप ॥ ४ ॥

ईश्वर करना चाहे तो एक निमेष मे जल के स्थान मे सूखी भूमि और सूखी भूमि के स्थान मे जलाशय की स्थापना कर सकते है। यह कार्य वे किसी की सहायता से नही करते, वे स्वय ही ऐसे समर्थ है।

दादू कर्ता करै तो निमष में, ठाली[1] भरै भँडार ।
भरिया गह[2] ठाली करै, ऐसा सिरजनहार ॥ ५ ॥

वे सृष्टि-कर्त्ता परमेश्वर ऐसे है—एक क्षण मे खाली[1] भडार भर देते है और भरे हुये को अधिक भरने से रोक[2] कर खाली कर देते है।

दादू धरती को अम्बर करै, अम्बर धरती होइ।
निशि अँधियारी दिन करै, दिन को रजनी सोइ॥ ६॥

वे परमेश्वर, पृथ्वी को आकाश और आकाश को पृथ्वी तथा अँधेरी रात को दिन और दिन को रात्रि कर सकते है।

मृतक काढ मसाण तैं, कहु कौन चलावै।
अविगत गति नहिं जाणिये, जग आण दिखावै॥ ७॥

मरे हुये को श्मशान से निकाल कर कौन चला सकता है ? कोई नही, किन्तु उस मन इन्द्रियो के अविषय परमेश्वर की सामर्थ्य रूप गति जानी नही जाती। वे मृतक को भी श्मशान से निकालकर तथा चलाकर जगत् के प्राणियो को पुन दिखा सकते है।

दादू गुप्त गुण परगट करै, परगट गुप्त समाइ।
पलक मांहि भानै घडै, ताकी लखी न जाइ॥ ८॥

वे परमेश्वर गुप्त गुणो को प्रकट कर देते है और प्रकट को गुप्त करके लय कर देते है। ससार को क्षण मे नष्ट कर देते है और क्षण मे बना देते है। उनकी सामर्थ्य अपार है, उसकी सीमा नही देखी जा सकती।

पोष-पाल-रक्षक

दादू सोई सही साबित हुआ, जा मस्तक कर देइ।
गरीब निवाजे[1] देखतां, हरि अपणा कर लेइ॥ ९॥

पालन-पोषण-रक्षक सामर्थ्य का परिचय दे रहे है—परमात्मा ने जिसके मस्तक पर अपना कृपा रूप हाथ रक्खा है, वही यथार्थ मे मुक्त सिद्ध हुआ है। अत जो परमेश्वर की सामर्थ्य को समझ कर दीनता-पूर्वक भक्ति करता है, उसे देखते ही वर्तमान शरीर मे ही परमात्मा कृपा[1] करके उसे अपना स्वरूप बना लेते है।

सूक्ष्म मार्ग

दादू सब ही मारग सांइयाँ, आगे एक मुकाम।
सोई सन्मुख कर लिया, जाही सेती काम॥ १०॥

सभी साधनरूप सूक्ष्म मार्गों की सार्थकता बता रहे है—योग, भक्ति, ज्ञानादि सभी सूक्ष्म मार्ग आगे एक परमात्मा रूप स्थान को ही जाते है, यह ईश्वर सामर्थ्य ही है। जिस साधक को जिस मार्ग द्वारा अपना कार्य होता दीखा, उसने उसे ही अपना कर परब्रह्म का साक्षात्कार किया है।

पोष-प्रतिपाल-रक्षक

मीराँ[1] मुझ सौ महर कर, शिर पर दीया हाथ।
दादू कलियुग क्या करै, सांई मेरा साथ॥ ११॥

पोषक, प्रतिपालक व रक्षक का परिचय दे रहे है—हमारे स्वामी[१] परमात्मा ने हमारी भक्ति से प्रसन्न हो, कृपा करके हमारे शिर पर अपना हाथ रखा है और वे हमारे साथ है। अत कलियुग हमारा क्या बिगाड सकता है ?

ईश्वर समर्थता

दादू समर्थ सब विधि सांइयॉ, ताकी मैं बलि जाऊँ ।
अंतर एक जु सो बसै, औरॉ चित्त न लाऊँ ॥ १२ ॥

१२-१९ मे ईश्वर की सामर्थ्य दिखा रहे है—जो सब प्रकार से समर्थ है, उन परमेश्वर की हम बलिहारी जाते है। हमारे हृदय मे निरतर वे ही बसते है। हम उनसे अन्य मायिक प्रपच मे कभी भी चित्त नही लगाते।

दादू मारग महर का, सुखी सहज सौं जाइ।
भवसागर तैं काढ कर, अपणे लिये बुलाइ ॥ १३ ॥

भगवान् की दया प्राप्त करने का विश्वास रूप मार्ग पकड कर जो साधक सुख-पूर्वक सहज योग द्वारा भगवान् की ओर जाते रहे है, उन्हे भगवान् भवसागर से निकाल कर अपने पास बुला कर अपने मे अभेद करते रहे है।

दादू जे हम चिन्तवैं, सो कछू न होवै आइ।
सोई कर्ता सत्य है, कुछ औरै कर जाइ ॥ १४ ॥

जिसके करने का जीव विचार करता है, वह कुछ भी नही हो पाता। अत जो जीव की इच्छा से विपरीत अन्य ही कुछ कर जाता है, वह ईश्वर ही सच्चा कर्त्ता है।

एको लेइ बुलाइ कर, एकों देइ पठाइ।
दादू अद्‌भुत साहिबी, क्यों ही लखी न जाइ ॥ १५ ॥

एक को तो पापी होने पर भी पवित्र बनाकर अपने पास बुला लेते है जैसे अजामिल को, और एक को पास से भी ससार मे भेज देते है, जैसे-जय विजय को, व अपनी एक शक्ति को अवतार रूप से लोक-कल्याणार्थ ससार मे भेजते है और एक को कार्य होने पर बुला लेते है। प्रभु की ऐसी अद्‌भुत प्रभुता है, किसी भी प्रकार उसका अन्त नही देखा जाता।

ज्यों राखै त्यों रहैंगे, अपने बल नॉहीं ।
सबै तुम्हारे हाथ है, भाज कत जॉहीं ॥ १६ ॥

हे परमेश्वर ! जीवो को जैसे आप रखेगे वैसे ही रहेगे, उनके निज बल से कुछ भी नही होता। क्योकि सबका व्यवहार आपके ही हाथ मे है, वे भागकर जाये भी कहाँ ?

दादू डोरी हरि के हाथ है, गल मांहीं मेरे।
बाजीगर का वानरा, भावै तहँ फेरे ॥ १७ ॥

मेरे गले मे पडी हुई कर्म रूप डोरी हरि के हाथ मे है, जैसे बाजीगर वानर को अपनी इच्छानुसार फिराता है वैसे ही मेरे कर्मों की हरि जैसी व्यवस्था करते है, उसी के अनुसार जहा-तहा फिर कर भोगना पडता है।

ज्यों राखै त्यो रहैगे, मेरा क्या सारा।
हुक्मी सेवक राम का, बदा बेचारा ॥ १८ ॥

हे प्रभो ! जैसे आप रखेंगे वैसे ही हम रहेगे, आपके आगे हमारा क्या वश चलता है ? यह दीन दास तो राम की आज्ञा मानने वाला सेवक है।

साहिब राखै तो रहै, काया माही जीव।
हुक्मी बदा उठ चले, जब ही बुलावै पीव ॥ १९ ॥

परमात्मा जीवात्मा को शरीर मे रखे तो ही रह सकता है, यह तो आज्ञा मानने वाला सेवक है। जब भी परमात्मा इसे बुलाते है, तब ही शरीर से उठकर चल देता है।

पति पहचान

खड खड प्रकाश है, जहां तहा भरपूर।
दादू कर्ता कर रह्या, अनहद बाजै तूर ॥ २० ॥

प्रभु की प्रकाशक तथा व्यापक शक्ति का परिचय देकर पहचान करा रहे है—विश्व के प्रत्येक भाग मे व प्रत्येक शरीर मे परब्रह्म का सत्ता-प्रकाश परिपूर्ण है। साधन द्वारा अनाहत बाजे बजाकर जब चित्त परब्रह्म मे लय होता है, तब परब्रह्म साधक-आत्मा को अपना स्वरूप ही कर लेते है।

ईश्वर समर्थता

दादू दादू कहत है, आपै सब घट माहि।
अपनी रुचि आपै कहै, दादू तै कुछ नाहि ॥ २१ ॥

२१-२२ मे ईश्वर सामर्थ्य दिखा रहे है—सब शरीरो मे स्थित होकर स्वय भगवान् ही प्रेरणा कर रहे है, तब ही सब 'दादू-दादू' कहते है। ये लोग अपनी रुचि से अपने आपही कहते है। मुझे तो 'दादू-दादू' उच्चारण कराने से कोई प्रयोजन नही है।

प्रसग कथा—दादूजी महाराज विचरते हुये करोली राज्य मे पहुँचे, तब जहा-जहा 'राम' उच्चारण का उपदेश करते थे, वहा-वहा ही भगवत्-प्रेरणा द्वारा सबसे 'दादू-दादू' उच्चारण होता था। अत भक्त और भगवान् की प्रेरणा से सब दोनो को मिलाकर 'दादूराम' कहने लगे थे, तभी से 'दादूराम' मत्र का जप प्रचलित हुआ है। वही ईश्वर का सामर्थ्य २१-२२ मे दिखाया है।

हम तै हुआ न होइगा, ना हम करणे जोग।
ज्यो हरि भावै त्यो करै, दादू कहै सब लोग ॥ २२ ॥

हमसे न तो कुछ हुआ है और न होने वाला है। कारण, हम तो कुछ भी करने योग्य नही है। देखो ! हम तो 'राम-राम' उच्चारण कराते है और लोग 'दादू-दादू' उच्चारण करते है। अत जैसा हरि को अच्छा लगता है, वैसा ही वे करते है।

पतिव्रता निष्काम

दादू दूजा क्यो कहै, शिर पर साहिब एक।
सो हम को क्यो बीसरै, जे जुग जाहि अनेक ॥ २३ ॥

अपनी अनन्यता दिखा रहे है—हमारे तो एक अद्वैत निरजन राम ही स्वामी है, यदि अनेक युग व्यतीत हो जाये तो भी वे हमको कैसे भूल सकते है ? फिर हम निष्काम भक्त लोग दूसरे को अपना स्वामी कैसे कह सकते है।

समर्थ साक्षी भूत

आप अकेला सब करै, औरों के शिर देइ ।
दादू शोभा दास को, अपना नाम न लेइ ॥ २४ ॥

२४-२५ मे समर्थ परमेश्वर की साक्षीरूपता दिखा रहे है—समर्थ ईश्वर किसी अन्य की सहायता बिना ही कर्मानुसार सृष्टि और सब कार्य करते है किन्तु कर्त्ता के रूप मे अपना नाम कोई न ले इसलिए दूसरो को निमित्त बना देते है। अच्छा कार्य करने की शोभा भक्तो के और अयोग्य कार्य करने का अपयश दुर्जनो के शिर डाल देते है और स्वय साक्षी रूप से अलग ही रहते है।

आप अकेला सब करै, घट में लहर उठाइ ।
दादू शिर दे जीव के, यों न्यारा ह्वै जाइ ॥ २५ ॥

ईश्वर आप अकेले ही सब कुछ करते है। कारण, प्राणी के हृदय मे प्रेरणा करके करने की इच्छा वे ही प्रकट करते है किन्तु फिर भी कार्य-भार जीव के शिर पर डालकर आप साक्षी रूप से अलग ही रहते है।

ईश्वर समर्थता

ज्यों यहु समझै त्यों कहो, यहु जीव अज्ञानी ।
जेती बाबा तैं कही, इन एक न मानी ॥ २६ ॥

२६-२८ मे ईश्वर की सामर्थ्य दिखा रहे है—हे विश्व के पितामह परमात्मन् ! जितनी ज्ञान की बाते मेरे द्वारा आपने कही, उनमे से इन शाह तिलोक आदि ने एक भी धारण नही की है, ये अज्ञानी जीव है। अत जैसे ये लोग समझ सके, वैसे ही कृपा करके आप मेरे द्वारा इन्हे समझावे। कारण, आप तो सर्व-समर्थ है।

दादू परचा[१] माँगैं लोग सब, कहैं हमको कुछ दिखलाइ ।
समरथ मेरा सांइयॉ, ज्यों समझैं त्यों समझाइ ॥ २७ ॥

ये सब लोग चमत्कार[१] देखना चाहते है और कहते भी है कि 'हमे कुछ तो दिखलाओ' अत हे मेरे समर्थ प्रभु ! आप तो समर्थ है, जैसे ये लोग समझ सके, वैसे ही इन्हे समझाइये।

२६-२७ से भगवान् को प्रार्थना करके साहपुरा मे तिलोकशाह को अपनी योगशक्ति दिखाकर २८ से उपदेश किया था। प्रसग कथा दृ सु सि त ११-८८ मे देखो।

दादू तन मन लाइ कर, सेवा दृढ कर लेइ ।
ऐसा समरथ राम है, जे मॉगे सो देइ ॥ २८ ॥

हे लोगो ! जो तन-मन को परमात्मा की ओर लगाकर दृढता से भक्ति करता है, उस भक्त को जो वह माँगे वही देते है, निरजन राम ऐसे समर्थ है। ये चमत्कार तो उनके लिए कुछ भी नहीं। अत निष्काम भाव से भक्ति करो।

समर्थ साक्षी भूत

समरथ सो सेरी[1] समझाइनै, कर अणकरता होइ ।
घट घट व्यापक पूर सब, रहै निरंतर सोइ ॥ २९ ॥

२९-३० मे समर्थ ईश्वर की साक्षीरूपता समझने के लिए प्रार्थना कर रहे है—हे समर्थ ! वह रहस्य मार्ग[1] हमे वा इन जीवो को समझाइये, जिसके द्वारा आप घट-घट मे तथा सपूर्ण चराचर विश्व मे व्यापक रूप से निरतर परिपूर्ण होकर, सब कुछ करते हुये भी अकर्त्ता होकर रहते है।

रहै नियारा सब करै, काहू लिप्त न होइ ।
आदि अत भानै[1] घडै, ऐसा समर्थ सोइ ॥ ३० ॥

सृष्टि के आदि काल मे सब को उत्पन्न करते है और प्रलय काल मे सब को नष्ट कर देते है, फिर भी किसी के हर्ष-शोक से लिप्त नही होते, सब से अलग साक्षीरूप होकर रहते है। वे परमात्मा ऐसे समर्थ है।

कर्त्ता साक्षी भूत

श्रम नाहीं सब कुछ करै, यों कल[1] धरी बनाइ।
कौतिकहारा ह्वै रह्या, सब कुछ होता जाइ ॥ ३१ ॥

३१-३३ मे विश्व कर्ता की साक्षीरूपता दिखा रहे है—वह सब कुछ करता है किन्तु उसे परिश्रम कुछ नही होता। उस वीर्यवान् ईश्वर ने बिना ही श्रम यह सृष्टि[1] बना कर रख दी है। इस मे उसकी सत्ता[1] मात्र से ही अपने आप सब कुछ होता जा रहा है और आप खेल देखने वाले के समान साक्षी रूप से अलग हो रहा है।

लिपै छिपै नहि सब करै, गुण नहि व्यापे कोइ।
दादू निश्चल एक रस, सहजै सब कुछ होइ ॥ ३२ ॥

वह ईश्वर सब कुछ करता है, तो भी किसी मे अनुरक्त तथा लय नही होता। सत्त्वादिक गुण उस पर प्रभाव नही डाल सकते। वह एकरस निश्चल रहता है और उस की सत्ता से अनायास ही ससार मे सब कुछ होता रहता है।

बिन गुण व्यापे सब किया, समर्थ आपै आप।
निराकार न्यारा रहै, दादू पुन्य न पाप ॥ ३३ ॥

वह परमेश्वर, बिना किसी की सहायता के आप स्वय ही ऐसा समर्थ कि जिसने निर्गुण होने पर भी सब ससार को गुण-दोषमय बना दिया है। उसमे न पाप है, न पुण्य है, वह निराकार परमात्मा तो सबसे अलग ही रहता है।

ईश्वर समर्थता

समता के घर सहज में, दादू दुविध्या नांहिं ।
सांई समर्थ सब किया, समझ देख मन मांहिं ॥ ३४ ॥

३४-४३ मे ईश्वर की सामर्थ्य दिखा रहे है—समता के धाम सहज-स्वरूप परमेश्वर मे भली-बुरी मति रूप दुविधा नही होती, तभी तो उस समर्थ परमेश्वर ने गुण-दोष मय सपूर्ण ससार की रचना की है। तुम विचार द्वारा अपने मन मे उसकी सामर्थ्य देखो।

पैदा कीया घाट घड, आपै आप उपाइ ।
हिकमत[1] हुनर[2] कारीगरी[3], दादू लखी न जाइ ॥ ३५ ॥

अकेले ईश्वर ने भूतो की रचना करके, उनसे शरीर को बनाकर जीव को उत्पन्न किया है। उसकी निर्माण-बुद्धि[1], गुण[2] और निर्माण-कला[3] का अन्त नही देखा जाता।

यंत्र बजाया साज कर, कारीगर करतार ।
पंचों का रस[1] नाद[2] है, दादू बोलणहार ॥ ३६ ॥

ईश्वर-कारीगर ने मन, बुद्धि आदि सामग्री को यथा स्थान सजा, शरीर यत्र बनाकर बजाया है अर्थात् बोलने वाला किया है, सो दिखा रहे है—पच सूक्ष्म भूतो का कारण[1] तन्मात्रा रूप शब्द[2] है और पच स्थूल भूतो का मेल ही स्थूल शब्द की अभिव्यक्ति का हेतु है तथा वह 'शब्द' रूप ब्रह्म ही जीवरूप से शरीर मे बोलने वाला है।

पंच ऊपना[1] शब्द तैं, शब्द पंच सौं होइ ।
सांई मेरे सब किया, बूझै बिरला कोइ ॥ ३७ ॥

सूक्ष्म तन्मात्रा शब्द से क्रम से पाचो सूक्ष्म भूतो की उत्पत्ति होती है और पाचो भूतो के पचीकरण होने पर ध्वन्यात्मक तथा वर्णात्मक शब्द उत्पन्न[1] होते है। इस प्रकार हमारे 'प्रभु' शब्द ब्रह्म से ही सब ससार की रचना होती है किन्तु इस परमेश्वर की सामर्थ्य को कोई विरले विचारशील सत ही जानते है।

है तो रती, नहीं तो नांहीं, सब कुछ उत्पति होइ ।
हुक्मैं हाजिर सब किया, बूझै बिरला कोइ ॥ ३८ ॥

ईश्वर को संसार के अस्तित्व का सकल्प होता है तो किचित् काल मे ही सव कुछ उत्पन्न हो जाता है और अभाव का सकल्प होता है तो क्षण मात्र मे ससार का अभाव हो जाता है। उस परमेश्वर ने ससार के उत्पत्ति-नाशादि सब अपनी आज्ञा के अधीन रक्खे है। इस रहस्य को कोई विरला सत ही जानता है।

नहीं तहाँ तैं सब किया, आपै आप उपाइ ।
निज तत न्यारा ना किया, दूजा आवै जाइ ॥ ३९ ॥

जो मिथ्या माया वास्तव मे कुछ भी नही है, उससे अपनी सत्ता द्वारा स्वय परमेश्वर ने ही पचभूतो को उत्पन्न करके सब ससार बना दिया है, ऐसी उसकी सामर्थ्य है। जिसने इस संसार में

अपने स्वरूप तत्त्व को पहचान लिया, उनको तो अपने से भिन्न नही रहने दिया है। अन्य अज्ञानी लोग जन्म लेकर इस लोक मे आते है और मर कर परलोक मे जाते है। इसी प्रकार ससार मे भटकते रहते है।

नहीं तहा तै सब किया, फिर नाहीं है जाइ।
दादू नाही होइ रहु, साहिब सौ ल्यौ लाइ॥ ४०॥

जिस स्वरूप मे गुण-विकारादि कुछ भी नही है, उसी अपने स्वरूप से परमेश्वर ने गुण-विकारादि युक्त यह सब ससार रच दिया है, ऐसी उसकी अद्भुत सामर्थ्य है और पुन परब्रह्म के ज्ञान से जीव गुण-विकारादि से रहित हो जाता है। अत हे साधको ! उस परब्रह्म के चिन्तन मे वृत्ति लगाकर गुणातीत परब्रह्म मे ही लय होकर रहो।

दादू खालिक खेलै खेल कर, बूझै बिरला कोइ।
लेकर सुखिया ना भया, देकर सुखिया होइ॥ ४१॥

परमेश्वर ससार रूप खेल को रचकर उसमे खेल रहा है, वह अपने खेल के साधन रूप जीवो से कुछ लेकर सुखी नही होता। कारण, सब कुछ उसी का है किन्तु देकर सुखी होता है। न देने से उसका खेल बिगडता है, अथवा उसके खेल रूप सासारिक वस्तुओ को जिसने अपहरण करके अपनी बनायी है, वह कोई भी सुखी नही हुआ और जो लौकिक दृष्टि से अपनी वस्तुओ को भी प्रभु की समझ कर उन्हे प्रभु के समर्पण करता है, वही सुखी होता है। किन्तु इस रहस्य को कोई विरला सत ही जानता है।

देबे की सब भूख है, लेबे की कुछ नाहि।
साई मेरे सब किया, समझ देख मन माहि॥ ४२॥

उस हमारे परमेश्वर ने ही यह सब ससार रचा है। यह तुम अपने मन मे विचार करके देखो तो तुम्हे ज्ञान होगा। उस परमेश्वर को देने की ही इच्छा रहती है, लेने की नही। वह तो पूर्ण काम है वा उसके निष्काम भक्तो को अपना सर्वस्व भगवत् के ही समर्पण करने की इच्छा रहती है, भगवान् से सासारिक पदार्थ लेने की नही।

दादू जे साहिब सिरजै नहीं, तो आपै क्यो कर होइ।
जे आपै ही ऊपजै, तो मर कर जीवै कोइ॥ ४३॥

यदि ससार की रचना परमेश्वर न करे तो अपने आप कैसे होगा ? और यदि ऐसा ही मान लो कि—जीव अपने आप ही उत्पन्न होता है तो कोई अपनी इच्छा से मर कर पुन जीवित भी होना चाहिए, किन्तु होता है नही। अत ईश्वर के बिना सृष्टि नहीं होती।

करतूत-कर्म

कर्म फिरावै जीव को, कर्मों को करतार।
करतार को कोई नहीं, दादू फेरनहार॥ ४४॥

इति समर्थाई का अग समाप्त॥ २१॥ सा १९२७॥

४४ मे कहते है—कर्म-व्यवस्था द्वारा समर्थ ईश्वर ही ससार का कर्त्ता सिद्ध होता है। अपने किये हुये कर्म ही जीव को ऊँच-नीच लोको मे फिराते है और कर्मों की व्यवस्था ईश्वर करता है। ईश्वर को प्रेरणा करके फिराने वाला कोई भी नही है। अत· ससार का कर्त्ता ईश्वर ही है। यह उसी का सामर्थ्य है।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका समर्थता का अग समाप्त॥ २१ ॥

अथ शब्द का अंग २२

समर्थता-अग के अनन्तर शब्द सामर्थ्य का निरूपण करने के लिए "सबद का अग" कहने मे प्रवृत्त मगल कर रहे है—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत: ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक सासारिक शब्द जाल से पार होकर ज्ञानपूर्ण-शब्दो के विचार द्वारा परब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरजन राम, सद्गुरु और सर्व सतो को हम अनेक प्रणाम करते है।

दादू शब्दैं बंध्या सब रहै, शब्दैं ही सब जाइ।
शब्दैं ही सब ऊपजे, शब्दै सबै समाइ ॥ २ ॥

२-५ मे शब्द सामर्थ्य दिखा रहे है—ईश्वर, नृप और सद्गुरु के शब्दो से ससार, प्रजा और साधक बद्ध रहते है, आने के बोधक शब्दो से आते है और जाने के बोधक शब्दो से जाते है। "मै एक से अनेक हो जाऊँ" इस ईश्वर-शब्द से ससार बन जाता है। नृप-शब्द से प्रजा के कार्य हो जाते है। सद्गुरु-शब्द से दैवी गुण उत्पन्न हो जाते है। "मै अनेक से एक हो जाऊँ" इस ईश्वर-शब्द से ससार उसी मे लय हो जाता है। नृप-शब्द से अनीतिपूर्ण सर्व कार्य नष्ट हो जाते है। सद्गुरु-शब्द से आसुरगुण नष्ट हो जाते है।

दादू शब्दैं ही सचु पाइये, शब्दैं ही संतोष।
शब्दैं ही सुस्थिर भया, शब्दैं भागा शोक ॥ ३ ॥

सत-शास्त्र और सद्गुरु-शब्दो से ही सुख-सतोष होता है। शब्दो से ही साधक का मन सम्यक् स्थिर होकर शोक दूर हुआ है। ('सतोष' के 'ष' को 'ख' पढे।)

दादू शब्दै ही सूक्ष्म भया, शब्दैं सहज समान।
शब्दैं ही निर्गुण मिलै, शब्दैं निर्मल ज्ञान ॥ ४ ॥

पूर्व काल मे वैराग्य-पूर्ण शब्दो से ही साधको का मन विषय-सकल्प रूप स्थूलता को त्याग कर एक परमात्माकार रूप सूक्ष्मता को प्राप्त हुआ है। वर्तमान मे भी समता पूर्ण शब्दो से मन अनायास ही समान अवस्था को प्राप्त होकर सशय-विपर्य्यय रहित निर्मल ज्ञान द्वारा निर्गुण ब्रह्म को प्राप्त होता है।

दादू शब्दैं ही मुक्ता भया, शब्दैं समझै प्राण।
शब्दै ही सूझै सबै, शब्दै सुरझै जाण॥ ५॥

एकता पूर्ण शब्दो से ही पूर्वकाल मे साधक मुक्त हुये है। वर्तमान मे भी प्राणी शब्दो द्वारा ही सब कुछ समझने मे समर्थ होता है। विवेक पूर्ण शब्दो से ही साधक को सत्यासत्य सभी भिन्न-भिन्न दीखने लगते है और ज्ञान पूर्ण शब्दो के विचार से ही अपना स्वरूप जानकर साधक ससार-बन्धन से निकलता है।

सृष्टि क्रम

दादू ओंकार तै ऊपजै, अरस परस संजोग।
अंकुर बीज द्वै पाप पुण्य, इहि विधि जोग रु भोग॥ ६॥

६-१२ मे शब्द से सृष्टि का निरूपण करते हुये ओकार शब्द से सृष्टि बतला रहे है—ओकार से प्रकृति पुरुष सयोग अथवा अविद्या और चेतन का परस्पर (आध्यासिक) सम्बन्ध रूप अकुर उत्पन्न होता है। इस सयोग रूप अँकुर मे प्राणियो के पाप व पुण्य भी सहकारी कारण है, क्योकि—इस प्रकार इस पाप-पुण्य रूप कारण के सहयोग से प्रकृति-पुरुष रूप सयोग और भोग रूप सृष्टि उत्पन्न होती है।

ओकार तैं ऊपजे, विनशै बहुत विकार।
भाव भक्ति लै थिर रहै, दादू आतम सार॥ ७॥

ओकार के चिन्तन से अनन्त विकार नाश होकर, शुद्ध विचार, भक्ति आदि की उत्पत्ति होती है और ब्रह्माकार वृत्ति की स्थिरता द्वारा आत्मा को विश्व का साररूप ब्रह्म प्राप्त होता है।

पहली कीया आप तै, उत्पत्ति ओकार।
ओंकार तै ऊपजैं, पंच तत्त्व आकार॥ ८॥

प्रथम त्रिगुण मय त्रिवर्ण वाले प्रकृति रूप ओकार मे अपनी सत्ता द्वारा सृजन-शक्ति उत्पन्न की, फिर उस प्रकृति रूप ओकार से पचभूत उत्पन्न हुये।

पंच तत्त्व तैं घट भया, बहु विधि सब विस्तार।
दादू घट तैं ऊपजै, मैं तैं वर्ण विकार॥ ९॥

पच सूक्ष्म भूतो से सूक्ष्म शरीर और स्थूल भूतो से नाना प्रकार वाले इस सारे ससार का विस्तार हुआ। सूक्ष्म शरीर रूप अत करण से "मै-तू" आदि वर्ण और कामादिक विकार उत्पन्न हुये।

एक शब्द सब कुछ किया, ऐसा समर्थ सोइ।
आगे पीछे तो करै, जे बलहीना होइ॥ १०॥

वह ईश्वर ऐसा समर्थ है—"मै एक से अनेक हो जाऊँ" ऐसी इच्छा होते ही प्रकृति प्रणव रूप एक शब्द के द्वारा उसने एक साथ ही सब कुछ रच दिया है। प्रथम कारण, फिर कार्य, इस क्रम से आगे पीछे रचना तो वही करता है, जो सर्व-शक्ति-सम्पन्न नहीं होता।

अकबर बादशाह ने प्रश्न किया था—प्रथम नारी उत्पन्न हुई या पुरुष या पदार्थ? इसका उत्तर १० से दिया था। प्रसग कथा दृ सु सि त ८।६० मे देखो।

निरंजन निराकार है, ओंकार आकार।
दादू सब रँग रूप सब, सब विधि सब विस्तार॥ ११॥

प्रणव का अमात्रिक चतुर्थ पाद माया-रहित और निराकार है। त्रिपादात्मक शब्द-रूप 'ओकार' माया-मय होने से साकार है। अतः सपूर्ण-रग, रूप, नामादि सब प्रकार का सृष्टि-विस्तार माया-मय त्रिपादात्मक ओकार से ही होता है।

आदि शब्द ओंकार है, बोलै सब घट मांहिं।
दादू माया विस्तरी, परम तत्त यहु नांहिं॥ १२॥

शब्द-सृष्टि का भी आदि शब्द ओकार ही है और सब के हृदय मे स्थित अनाहत-चक्र मे "हस" ध्वनि रूप से निरन्तर उच्चारण होता रहता है अथवा सर्व सृष्टि का आदि कारण प्रकृति रूप प्रणव शब्द ही है, वही जीव रूप से शरीरो मे बोल रहा है। अत इस ससार मे माया ही फैली हुई है। यह इन्द्रियों का विषय-प्रपच तत्त्व रूप परब्रह्म नही।

शब्द समर्थता

दादू एक शब्द सौं ऊनवै[1], वर्षन लागै आइ।
एक शब्द सौं बीखरै, आप आपको जाइ॥ १३॥

१३-२५ मे शब्द सामर्थ्य बता रहे है—एक ईश्वर की आज्ञा रूप शब्द से मेघ चढ[1] आते है और बरसने लगते है। निषेध रूप एक शब्द से छिन्न-भिन्न होकर अपने आप अपने कारण मे जा मिलते है अथवा एक ओकार शब्द के चिन्तन से अत कारण के कामादि विकार छिन्न-भिन्न हो, आप अपने कारण मे जा मिलते है और भक्ति-ज्ञानादि वृद्धि[1] को प्राप्त होकर आनन्द की वृष्टि करने लगते है।

दादू साधु शब्द सौं मिल रहै, मन राखै बिलमाइ।
साधु शब्द बिन क्यों रहै, तब ही बीखर जाइ॥ १४॥

सत-शब्दो के विचार मे लगकर मन को परमात्मा के स्वरूप मे लगाये रहना चाहिये। सत शब्दो के बिना यह मन रुक नही सकता, तत्काल इन्द्रियो के विषयो मे फैल जाता है।

दादू शब्द जरै[1] सो मिल रहै, एक रस पूरा।
कायर भाजे जीव ले, पग मांडे शूरा॥ १५॥

जो ब्रह्म-ज्ञान पूर्ण सद्गुरु-शब्दो को धारण[1] करता है, वह एकरस पूर्ण ब्रह्म मे मिलकर ही रहता है। किन्तु सद्गुरु-शब्दो को धारण करने मे वैराग्य रूप शौर्य-सपन्न साधक ही वृत्ति रूप पैर को रोपता है। विषयासक्ति रूप कायरता युक्त जीव अपनी वृत्ति को सद्गुरु-शब्दो से हटाकर विषयो की ओर दौड़ता है।

शब्द विचारै, करणी करै, राम नाम निज हिरदै धरै।
काया मांहीं शोधै सार, दादू कहै, लहै सो पार॥ १६॥

जो सद्गुरु-शब्दो को सम्यक् विचार करके, उनके अनुसार साधन करता हुआ राम-नाम को अपने हृदय मे धारण करता है तथा आन्तर-वृत्ति द्वारा शरीर के भीतर ही विश्व के सार रूप ब्रह्म की खोज करता है, वह ससार से पार होकर ब्रह्म को प्राप्त करता है।

दादू काहे कौड़ी खर्चिये, जे पेके[1] सीझै काम ।
शब्दों कारज सिध भया, तो सुरम[2] न दीजै राम ॥ १७ ॥

(प्राचीन समय मे एक पैसा=तीन पाई (सबसे छोटा सिक्का) तथा कौड़ी विनिमय का साधन की। अत कौडी को वराटक, मनी या जुवेल्स कहते है। इसका अर्थ कही कम और कहीं अधिक है। 'आरमेनियका' नामक एक कौड़ी की कीमत २००० अमरीकी डालर है। -स)

"यदि एक पाई' से ही कार्य सिद्ध होता हो तो शुभलक्षी कीमती कौडी क्यो खर्च करते हो ?" सद्गुरु-शब्दो के विचार से ही वैराग्य द्वारा सम्पूर्ण आशाओ की निवृत्ति होकर मुक्ति रूप कार्य सिद्ध होता है, तब सकाम कठोर तपादिक करके अपनी आशा पूर्ति के लिये काया को परिश्रम[2] क्यो देते हो ? नाम-स्मरण से ही राम मिले तो कठिन-साधन[2] त्यागने मे झिझक[2] मत करो।

दादू राम हृदय रस भेलि कर, को साधू शब्द सुनाइ ।
जानों कर दीपक दिया, भरम तिमिर सब जाइ ॥ १८ ॥

कोई विरले सत ही अपने हृदय का भक्ति-रस शब्दो मे मिलाकर साधको को सुनाते है। श्रवण द्वारा वे शब्द साधको के हृदय मे जाते ही, जैसे हाथ मे दीपक देने से बाहर का अन्धकार दूर चला जाता है, वेसे ही हृदय का भ्रम रूप अधकार सब दूर हो जाता है, यह सत्य जानो।

दादू वाणी प्रेम की, कमल विकासै होहि ।
साधु शब्द माता कहै, तिन शब्दों मोह्या मोहि ॥ १९ ॥

विचार द्वारा हृदय-कमल सशय विपर्य्य से रहित होकर जब विकसित होता है तब, भगवत्-प्रेमपूर्ण और प्रभाव डालने वाली वाणी निकलती है। आत्मानुभव से मस्त सत जो शब्द बोलते है, उन शब्दो ने ही हमको मोहित किया है।

दादू हरि भुरकी वाणी साधु की, सो परियो मेरे शीश ।
छूटे माया मोह तै, प्रेम भजन जगदीश ॥ २० ॥

हरि-भक्ति रूप भुरकी (मत्र प्रयोग युक्त चूर्ण) से परिपूर्ण सत की वाणी मेरे अन्त करण रूप मस्तक पर पड़नी चाहिये, जिससे मेरा मन मायिक-मोह से मुक्त होकर प्रेम-पूर्वक जगदीश्वर का भजन कर सके।

दादू भुरकी[1] राम है, शब्द कहै गुरु ज्ञान ।
तिन शब्दो मन मोहिया, उन मन लागा ध्यान ॥ २१ ॥

राम-भक्ति ही सिद्धिप्रदा-भस्म[1] है, उसको अपने शब्दो मे मिलाकर गुरुजन ज्ञानोपदेश करते है। उन शब्दो मे ही हमारा मन मोहित होकर ध्यान द्वारा निर्विकल्प समाधि मे लगा रहता है।

शब्दों मांहीं राम धन, जे कोई लेइ विचार।
दादू इस संसार में, कबहुँ न आवे हार ॥ २२ ॥

सतो के शब्दो मे राम रूप धन है, जो भी कोई विचार द्वारा उसे अभेद रूप से धारण करता है, वह विषयासक्ति से हार मानकर, इस ससार के जन्म मरण रूप प्रवाह मे कभी नहीं आता।

दादू राम रसायन भर धस्या, साधन शब्द मंझार।
कोई पारिख पीवै प्रीति सौं, समझै शब्द विचार ॥ २३ ॥

सतो ने अपने शब्दो मे जन्म-मृत्यु आदि सम्पूर्ण रोगो को नष्ट करने वाला राम भक्तिर-सायन भर रक्खा है। उनका परीक्षक कार्य विरला साधक ही बारबार विचार द्वारा उन्हे समझ कर प्रीतिपूर्वक रामभक्ति-रसायन पान करता है।

शब्द सरोवर सूभर[1] भस्या, हरि जल निर्मल नीर ।
दादू पीवे प्रीति सौं, तिन के अखिल शरीर ॥ २४ ॥

सतो का शब्द रूप सुन्दर[1] सरोवर ब्रह्म-ज्ञान रूप निर्मल जल से परिपूर्ण रूप से भरा है। उस नीर को जो पान करते है, उनके आगे आने वाले सपूर्ण शरीर उन्हे ब्रह्म-रूप ही भासते है और वे ब्रह्म मे ही लय हो जाते है।

शब्दों मांहीं राम-रस, साधौं भर दीया।
आदि संत सब संत मिल, यौं दादू पीया ॥ २५ ॥

सिद्ध सतो ने अपने शब्दो मे राम-रस भर दिया है। अत साधक सतो ने मिलकर उसे ही सृष्टि के आदि, मध्य और अत तक उक्त विचार पद्धति से पान किया है।

गुरु मुख कसौटी

कारज को सीझै नहीं, मीठा बोलै बीर।
दादू साचे शब्द बिन, कटै न तन की पीर ॥ २६ ॥

गुरु-मुख से निकले मुक्तिद शब्द की परीक्षा बता रहे है—भोगाशा के समर्थक होने से मधुर लगने वाले सकाम कर्मो के उपदेश देने से मुक्ति तथा काम-क्रोधादि की निवृत्ति आदि कोई भी कार्य सिद्ध नही होता। निष्काम सतो के यथार्थ ज्ञान-पूर्ण शब्दो के उपदेश बिना सूक्ष्म-शरीर के आसुरी गुण तथा आवागमन रूप पीडा नही मिटती।

शब्द

दादू गुण तज निर्गुण बोलिये, तेता बोल अबोल ।
गुण गह आपा बोलिये, तेता कहिये बोल ॥ २७ ॥

२७-२८ मे शब्द-व्यवहार की पद्धति बता रहे है—अहकारादिक आसुर-गुण तथा पक्षपात को त्यागकर निर्गुण ब्रह्म सबधी वचन बोलने चाहिये। ऐसे वचनो से किसी को भी कष्ट नही होता। अत ऐसे वचन बोलना मौन के समान ही है। अहकारादि आसुर-गुण तथा एक पक्ष को ग्रहण कर के जो शब्द बोले जाते है, वे वचन दूसरो को क्लेशप्रद होने से बोल कहलाते है।

साचा शब्द कबीर का, मीठा लागै मोहि ।
दादू सुनता परम सुख, केता आनद होइ ॥ २८ ॥

इति सबद का अग समाप्त ॥ २२ ॥ सा १९५५ ॥

अहकारादिक गुणो से रहित निर्गुण ब्रह्म सबधी कबीर के यथार्थ वचन हमे प्रिय लगते है। उनके श्रवण करते ही परम सुख प्राप्त होता है और विचार से तो कितना आनन्द आता है, उसे तो कह भी नही सकते।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका शब्द का अग समाप्त ॥ २२ ॥

अथ जीवित मृतक का अंग २३

शब्द-अग के अनन्तर जीवन्मुक्त सबन्धी विचार करने के लिये 'जीवत मृतक का अग' कहने मे प्रवत्त हुये मगल कर रहे है—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणाम पारंगत ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक ससार-बन्धन से निकलकर जीवन्मुक्त होता है, उन निरजन राम, सद्गुरु और सर्व सतो को हम अनेक प्रणाम करते है।

धरती मत आकाश का, चंद सूर का लेइ ।
दादू पानी पवन का, राम नाम कहि देइ ॥ २ ॥

२-४ मे जीवन्मुक्त सम्बन्धी विचार कह रहे है—पृथ्वी की सहन शक्ति, आकाश की निर्लेपता, चन्द्रमा की सौम्यता, सूर्य की तेजस्विता, जल की निर्मलता, वायु की अनासक्ति, इन सबका मत ग्रहण करके रामनाम चिन्तन करता हुआ जो साधक देहाध्यास त्याग देता है, वही जीवन्मुक्तावस्था को प्राप्त होता है।

दादू धरती ह्वै रहै, तज कूड[1] कपट ऽहंकार[2] ।
साई कारण शिर सहै, ताको प्रत्यक्ष सिरजनहार ॥ ३ ॥

झूठ[1], कपट, अहकार[2] आदि को त्याग कर तथा पृथ्वी के समान सहनशील होकर प्रभु-प्राप्ति के लिये कटु-शब्दादि से जन्य दु खो को सहन करता है, उसे ब्रह्म का साक्षात्कार होता है और वह जीवन्मुक्त हो जाता है।

जीवित माटी मिल रहै, सांई सन्मुख होइ ।
दादू पहली मर रहै, पीछे तो सब कोइ ॥ ४ ॥

भजन द्वारा परमात्मा के सन्मुख हो, पृथ्वी की सहन शक्ति रूप मत से मिलकर आयु-समाप्ति से पूर्व ही मृतक के समान निरभिमान और सम होकर रहे, वही जीवन्मुक्त है। आयु समाप्ति के बाद तो सभी मरते है।

दीनता-गरीबी

आपा गर्व गुमान तज, मद मत्सर अहंकार।
गहै गरीबी बंदगी, सेवा सिरजनहार ॥ ५ ॥

५-७ मे दीन होकर रहने की प्रेरणा कर रहे है—जाति का अभिमान, शरीर बल का गर्व, धन का घमड, विद्या का मद, अन्यो से ईर्ष्या और रूप के अहकार को त्याग कर विनम्र भाव से ईश्वर को प्रणाम करते हुये उनकी भक्ति कर।

मद मत्सर आपा नहीं, कैसा गर्व गुमान।
स्वप्नै ही समझै नहीं, दादू क्या अभिमान ॥ ६ ॥

जिसके हृदय मे विद्या-मद, अन्यो से ईर्ष्या, जाति का अभिमान, बल का गर्व, धन का घमड नही है और जो किसी भी प्रकार के अभिमान के विषय मे स्वप्न मे भी नही समझता कि अभिमान क्या होता है, वही गरीब माना जाता है।

झूठा गर्व गुमान तज, तज आपा अभिमान ।
दादू दीन गरीब ह्वै, पाया पद निर्वाण ॥ ७ ॥

जो सब प्रकार के अभिमान को त्याग कर, लौकिक दीन प्राणियो से भी अति गरीब होकर रहा है, उसी ने काल कर्म के बाणाघात से रहित मुक्ति पद प्राप्त किया है।

जीवित-मृतक

दादू भाव भक्ति दीनता अंग, प्रेम प्रीति सदा तिहिं संग ॥ ८ ॥

८-१२ मे जीवन्मुक्त सम्बन्धी विचार कर रहे है—जिसके हृदय मे श्रद्धा, सेवा-भाव, दीनता, भगवत्-प्रेम, सतो मे प्रीति रहती है, भगवान् उसके सग रहते है।

तब साहिब को सिजदा किया, जब शिर धर्‍या उतार ।
यों दादू जीवित मरै, हिर्स हवा को मार ॥ ९ ॥

जब सब प्रकार के अभिमान रूप शिर को उतार कर जिस साधक ने परमात्मा की वदना भक्ति की है, तब ही वह अन्य विषयों की तृष्णा तथा स्वर्गादि भोगो की वासना को नष्ट करके जीवन्मुक्त हुआ है। ऐसे ही जीवितावस्था मे मरण होता है।

राव रंक सब मरेंगे, जीवै नांहीं कोइ।
सोई कहिये जीवता, जे मरजीवा होइ ॥ १० ॥

राजा, रक आदि सभी मरेगे, जीवित कोई भी न रहेगा किन्तु जो सब प्रकार के अभिमान को त्याग कर तथा ब्रह्म का साक्षात्कार करके जीवित है, वही ब्रह्मरूप होने से मर कर भी जीवित कहा जाता है।

दादू मेरा वैरी मैं मुवा, मुझे न मारै कोइ ।
मैं ही मुझको मारता, मैं मरजीवा होइ ॥ ११ ॥

'मै' रूप अहकार ही मुझ को मारता है, मेरा शत्रु 'मै' रूप अहकार मरा कि फिर कोई नही मार सकता। फिर तो मै सहज ही जीवन्मुक्त हो जाता हू।

वैरी मारे मर गये, चित तै विसरे नांहिं ।
दादू अजहूँ साल है, समझ देख मन माहि ॥ १२ ॥

काम, क्रोधादिक शत्रु साधक द्वारा मारने से मर तो गये है किन्तु यदि उनका स्मरण हृदय से नही हटा है तो अब भी वे कष्ट दे सकते है। यह तुम स्वय भी मन मे विचार करके देख सकते हो।

उभय असमाव

दादू तो तूं पावे पीव को, जे जीवित मृतक होइ।
आप गॅवाये पीव मिले, जानत है सब कोइ॥ १३ ॥

१३-१७ मे कहते है—जीवत्व-अहकार और ब्रह्म-साक्षात्कार एक काल मे एक हृदय मे नहीं रहते। हे साधक! यदि तू जीवितावस्था मे ही शव के समान निर्द्वन्द्व हो जाय तभी ब्रह्म को प्राप्त कर सकता है। "मै-तू" आदि जीवत्व भाव-रूप अहकार नष्ट करने से ही ब्रह्म प्राप्त होता है। यह बात शास्त्र व सतो द्वारा सभी कोई जानते है।

दादू तो तू पावे पीव को, आपा कछू न जान।
आपा जिस तै ऊपजे, सोई सहज पिछान ॥ १४ ॥

अहकार को कुछ भी न जानकर अर्थात् मिथ्या समझ कर, जिस चेतन आत्मा की सत्ता से अहकार उत्पन्न होता है, उस सहज स्वरूप साक्षी आत्मा को पहचान लेगा, तो तू परब्रह्म को प्राप्त कर सकेगा।

दादू तो तू पावै पीव को, मै मेरा सब खोइ।
मै मेरा सहजै गया, तब निर्मल दर्शन होइ ॥ १५ ॥

यदि तू "मै और मेरा" रूप अहकार नष्ट कर देगा तो परब्रह्म को प्राप्त कर सकेगा। आत्मज्ञान द्वारा "मै-मेरा" रूप अहकार नष्ट हो जाता है, तब अनायास ही अविद्या-मल रहित परब्रह्म का साक्षात्कार होता है।

मै ही मेरे पोट शिर, मरिये ताके भार।
दादू गुरु प्रसाद सौ, शिर तैं धरी उतार ॥ १६ ॥

"मै" रूप अहकार की विशाल गठरी जीव के अन्त करण रूप शिर पर रक्खी है, उसके भार से जीव बारबार व्यथित होता है। जिन साधको ने सद्गुरु के ज्ञानोपदेश-प्रसाद से उसे उतार कर दूर धर दी है, वे सुखी है।

मेरे आगे मै खड़ा, ता तै रह्या लुकाइ[1]।
दादू प्रकट पीव है, जे यहु आपा[2] जाइ ॥ १७ ॥

मुझ आत्मा के आगे "मै सुखी-दुखी" आदि अहकार खड़ा है। इसीलिये इसकी आड़ मे परब्रह्म छिप[1] रहा है। यदि अहकार[2] नष्ट हो जाय तो परब्रह्म प्रत्यक्ष ही भासेगा।

सूक्ष्म-मार्ग

दादू जीवित मृतक होइ कर, मारग मांहीं आव।
पहली शीश उतार कर, पीछे धरिये पांव ॥ १८ ॥

१८-२१ मे शिष्य बडे सुन्दरदासजी को निर्गुण भक्ति रूप सूक्ष्म मार्ग मे गति का उपदेश कर रहे है—प्रथम सब प्रकार के सासारिक अहकार का अन्त करण रूप शिर से उतार के जीवितावस्था मे ही मृतक के समान राग-द्वेषादि से रहित सम होकर पीछे ही निर्गुण भक्ति रूप सूक्ष्म मार्ग मे पैर रख कर आगे बढो।

दादू मारग साधु का, खरा दुहेला जान।
जीवित मृतक ह्वै चलै, राम नाम नीशान ॥ १९ ॥

सतो का निर्गुण उपासना रूप मार्ग सच्चा है किन्तु कठिन भी है, यह सत्य समझो। परन्तु परब्रह्म को लक्ष्य बनाकर, राम-नाम का चिन्तन करते हुए जीवितावस्था मे ही शव के समान सम हो जाता है, वह अनायास ही इस सूक्ष्म मार्ग मे चल सकता है।

दादू मारग कठिन है, जीवित चलै न कोइ।
सोई चलि है बापुरा[1], जो जीवित मृतक होइ ॥ २० ॥

सतो का निर्गुण मार्ग कठिन है, राग-द्वेषादि रूप जीवन युक्त प्राणी उसमे कोई भी नही चल सकता। वही शरीरधारी[1] उसमे चल सकता है, जो जीवितावस्था मे ही शव के समान राग-द्वेषादि से रहित सम होता है।

मृतक होवै तो चलै, निरंजन की बाट।
दादू पावै पीव को, लंघै औघट घाट ॥ २१ ॥

जो जीवितावस्था मे ही शव के समान राग-द्वेषादि से रहित सम हो जाता है वही निरजन राम की प्राप्ति के मार्ग मे चलकर, अविद्या रूप विकट घाटी को लाघ के ब्रह्म को प्राप्त करता है।

जीवित-मृतक

दादू मृतक तब ही जानिये, जब गुण इन्द्रिय नांहिं।
जब मन आपा मिट गया, तब ब्रह्म समाना मांहिं ॥ २२ ॥

२२-२३ मे जीवित-मृतक विषयक विचार कर रहे है—जब आसुर गुण और इन्द्रियो के विषयो की आसक्ति न रहे, तब जानना चाहिए-यह जीवित मृतक है। जब सब प्रकार का अहकार नष्ट होकर मन ब्रह्म-चिन्तन मे ही लीन रहता है, तब वह साधक शरीर मे रहते हुए भी ब्रह्म के समान ही है।

दादू जीवित ही मर जाइये, मर मांहीं मिल जाइ।
सांई का सँग छाड कर, कौन सहै दुख आइ ॥ २३ ॥

हे साधको ! जीवितावस्था मे ही शव के समान हो जाना चाहिए और इस प्रकार मर कर परब्रह्म मे लय हो जाना चाहिए। ऐसा कौन बुद्धिमान् साधक होगा जो परब्रह्म के अभेद रूप सग को छोडकर, राग-द्वेषादि के चक्कर मे आकर क्लेश सहेगा ?

उभय असमाव

दादू आपा कहा दिखाइये, जे कुछ आपा होइ।
यहु तो जाता देखिये, रहता चीन्हो सोइ ॥ २४ ॥

२४-२५ मे सासारिक अहकार और ब्रह्म साक्षात्कार दोनो साथ नही रहते, यह कह रहे है—अहकार क्या दिखाते हो ? यदि अहकार कुछ हो तो भी मिथ्या है। जिन धनादि का अहकार करते हो, वे सब मिथ्या है, वे नष्ट होने वाले है, तब उनके साथ ही उनका अहकार भी नष्ट होता देखा जाता है। अत अहकार को छोडकर जो सदा अचल रहने वाले अविनाशी परब्रह्म है, विचार द्वारा उन्ही का साक्षात्कार करो।

दादू आप छिपाइये, जहां न देखै कोइ।
पिव को देख दिखाइये, त्यो त्यों आनद होइ ॥ २५ ॥

अपने सासारिक अहकार को जहा रहने पर उसे कोई भी न देख सके, ऐसी उसकी सर्वथा रूप अवस्था मे छिपा दो अर्थात् नष्ट कर दो। फिर परब्रह्म का साक्षात्कार करके ज्यो-ज्यो दूसरे साधको को साक्षात्कार सबधी उपदेश करोगे, त्यो-त्यो ही अधिक आनद प्राप्त होगा।

आपा निर्दोष

दादू अतर गति आपा[१] नहीं, मुख सौ मै तैं होइ ।
दादू दोष न दीजिये, यों मिल खेलैं दोइ ॥ २६ ॥

२६-२७ मे निर्दोष अहकार का परिचय दे रहे है—जिन सतो के हृदय मे "मै, तू" आदि का अहकार[१] नहीं है, वे भी मुख से 'मै आपका दास हूँ, तू मेरा स्वामी है', इत्यादिक भगवान् से विनय करते है, उनको 'मै, तू' आदि अहकार का दोष न देना चाहिए। वे तो परब्रह्म मे मिलकर ही इस प्रकार के प्रतीति मात्र द्वैत रूप अहकार द्वारा भक्ति का आनद लेते है।

जे जन आपा मेट कर, रहै राम ल्यौ लाइ।
दादू सब ही देखता, साहिब सौं मिल जाइ ॥ २७ ॥

जो साधक अपने सासारिक अहकार को नष्ट करके प्रतीति मात्र सेवक-स्वामी रूप अहकार से निरतर अपनी वृत्ति निरजन राम मे लगाते है, वे अनासक्ति भाव से सबको देखते हुये वा सबके देखते-देखते ही परब्रह्म को प्राप्त हो जाते है।

दीनता-गरीबी

गरीब गरीबी गह रह्या, मसकीनी मसकीन।
दादू आपा मेट कर, होइ रह्या लै लीन ॥ २८ ॥

प्रसग आमेर नरेश मानसिह ने प्रश्न किया था—गरीबदास तथा मस्कीनदास नाम आपके शिष्यो के क्यो रक्खे गये है ? २८ मे उसी का उत्तर दे रहे है—गरीबदास गरीबी और मस्कीनदास मिस्कीनी (दीनता) ग्रहण करके सब प्रकार का अहकार हटा कर परब्रह्म मे वृत्ति लगाकर लीन हो रहे है, इसीलिए रक्खे गये है।

उभय असमाव

मैं हूँ मेरी जब लगै, तब लग विलसै खाइ।
मैं नाहीं मेरी मिटै, तब दादू निकट न जाइ ॥ २९ ॥

२९-३१ मे कहते है—"मै और मेरी" रूप अहकार के रहते ब्रह्म प्राप्ति नही होती। जब तक 'मै हूँ और ये नारी आदि सब मेरी वस्तुएँ है' यह भावना है, तब तक ही प्राणी का मन आसक्ति पूर्वक उनके उपभोग मे अनुरक्त रहता है और जब "मै" रूप अहंकार नही रहता, तब 'ये सब वस्तुएँ मेरी है', यह भावना भी मिटकर 'सब भगवान् की है', ऐसी भावना आ जाती है फिर आसक्ति-पूर्वक मन उनके पास नही जाता, वैराग्य-पूर्वक ही जाता है।

दादू मना मनी[1] सब ले रहे, मनी न मेटी जाइ।
मना मनी जब मिट गई, तब ही मिलै खुदाइ ॥ ३० ॥

यह मन सब प्रकार का अहकार[1] लिये रहता है। इससे अहकार नहीं मेटा जाता। जब साधन द्वारा साधको का अहकार मिट जाता है, तब ही उन्हे परब्रह्म प्राप्त होता है।

दादू मैं मैं जालदे, मेरे लागो आग।
मैं मैं मेरा दूर कर, साहिब के संग लाग ॥ ३१ ॥

मै बलवान्, मै रूपवान्, इत्यादि मै-पना और ये धनादिक मेरे है, इस अहकार को ज्ञानाग्नि द्वारा जला दे और वैराग्य द्वारा मै तथा मेरा-पन की आसक्ति को दूर कर के अद्वैत भाव से परब्रह्म के सग लग जा।

मनमुखी (यथेष्ट) मान

दादू खोई आपणी, लज्जा कुल की कार[1]।
मान बडाई पति[2] गई, तब सन्मुख सिरजनहार ॥ ३२ ॥

३२ मे कहते हैं—मन चाहे सम्मान के त्याग से ही प्रभु प्राप्ति होती है—जब अपनी प्रतिष्ठा खोकर भजन करता है और कुल की लज्जा, मर्यादा[1], मान, बडाई, लोक-लाज[2] आदि हृदय से चले जाते है, तब परमात्मा सन्मुख ही भासने लगते है।

परिचय करुणा विनती

नूर सरीखा कर लिया, बंदों का बंदा।
दादू दूजा को नहीं, मुझ सरीखा गंदा ॥ ३३ ॥

साक्षात्कार होने पर विनय कर रहे है—हे प्रभो ! "मै और मम" भाव रूप अहकार के

समान अन्य कोई भी मलीन नही है। जब तक मेरे मे वह था, तब तक मै आपके भक्तो के भक्त के समान था किन्तु उसके हटते ही आपने दया करके मुझे अपने स्वरूप के समान निर्मल और अद्वैत बना लिया है, यह आपकी महान् कृपा है।

जीवित-मृतक

दादू सीख्यों प्रेम न पाइये, सीख्यों प्रीति न होइ।
सीख्यों दर्द न ऊपजै, जब लग आप न खोइ॥ ३४॥

३४-४२ मे जीवित-मृतक विषयक विचार कर रहे है—जब तक सब प्रकार का अहकार नष्ट करके जीवित ही मृतक समान न हो, तब तक प्रेम के लक्षण कठस्थ करने वा कहने से प्रेम नहीं प्राप्त होता है। न प्रीति की बाते सीखने वा कहने से मन मे प्रीति उत्पन्न होती है और न विरही भक्तो की कथाएँ याद करने से हृदय मे वियोग-जन्य दर्द उत्पन्न होता है।

कहबा सुनबा गत भया, आपा पर का नाश।
दादू मै तै मिट गया, पूरण ब्रह्म प्रकाश॥ ३५॥

जब अपना-पराया भेद-वृत्ति रूप अहकार नष्ट हो जाता है, तब ही ब्रह्म-ज्ञान का कहना-सुनना सफल होता है। जिनका "मै, तू" रूप अहकार मिट गया है, उन्ही को प्रकाश-स्वरूप पूर्ण ब्रह्म प्राप्त हुआ है।

सांई कारण मांस का, लोही पानी होइ।
सूखे आटा अस्थि का, दादू पावै सोइ॥ ३६॥

परमात्मा की प्राप्ति के लिए तीव्रतम साधना करते-करते किसी साधक के शरीर का मास रक्त के समान शिथिल हो जाता है और रक्त पानी के समान पतला हो जाता है, कदाचिद् हड्डी की मज्जा सूखकर आटे के समान हो जाती है। जब साधक ऐसा जीवित-मृतक होता है तब वह परमात्मा को प्राप्त करता है। इसमे मकण ऋषि और शकरजी का उदाहरण प्रसिद्ध है।

तन मन मैदा पीसकर, छाण छाण ल्यौ लाइ।
यौ बिन दादू जीव का, कबहूँ साल न जाइ॥ ३७॥

स्थूल शरीर की क्रियाओ को और मन के मनोरथो को विवेक रूप चक्की से मैदा के समान पीसकर अर्थात् अच्छे-बुरे कर्म तथा मनोरथो का सम्बन्ध-विच्छेद करके फिर विचार रूप चलनी से बारबार छाँण कर बुरे कर्म और बुरे मनोरथो को निकाल कर फेक दे, पश्चात् अपनी वृत्ति परमात्मा के स्वरूप मे लगाये। ऐसा किये बिना जीव का जन्मादिक ससार-क्लेश कभी भी नष्ट नही होता।

पीसे ऊपर पीसिये, छाणे ऊपरि छाण।
तो आत्म कण ऊबरै, दादू ऐसी जांण॥ ३८॥

३७ मे कथित पद्धति से पीसना और छानना बारबार करने पर आत्म रूप कण जन्म रूप उगने से बच जाता है। जैसे पीसने-छानने से दाणे की उगने की शक्ति नष्ट हो जाती है, वैसे ही

विवेक-विचार द्वारा कर्म और आसुर गुणो के नष्ट हो जाने से जीवात्मा के जन्म का अभाव हो जाता है, तुम यह निश्चय पूर्वक जानो। जन्माभाव की साधन पद्धति ऐसी ही है।

पहली तन मन मारिये, इनका मर्दै मान।
दादू काढै जंत्र में, पीछे सहज समान॥ ३९॥

प्रथम सयम के द्वारा अनावश्यक क्रिया और मनोरथो को हटाकर स्थूल शरीर तथा मन को जय कर लेना चाहिए, इस प्रकार इनका सासारिक अभिमान नष्ट करके ज्ञान रूप जंतरी (तार को खैच कर सीधा करने का औजार) मे से निकाल कर सरल कर लेना चाहिए, फिर ये अनायास ही परमात्मा के स्वरूप मे लग जायेगे।

काटे ऊपर काटिये, दाधे को दौं[1] लाइ।
दादू नीर न सींचिये, तो तरुवर बधता जाइ॥ ४०॥

अहकारादिक आसुर गुणो को नष्ट कर देने पर भी उनका खडन ही करते रहना चाहिए। यह अभिमान न करना चाहिए कि मैंने सबको जीत लिया है, अब वे मेरा क्या कर सकते है ? भोग-वासना को जला देने पर भी विचार अग्नि[1] द्वारा जलाते ही रहना चाहिए। विषय-प्रवृत्ति रूप जल अन्त करण रूप आल-बाल (वृक्ष-थावला) मे कभी भी नही सीचना चाहिए। यदि ऐसा करोगे तब तो तुम्हारा ज्ञानरूप वृक्ष प्रतिदिन बढता ही जायेगा।

दादू सबको संकट एक दिन, काल गहैगा आइ।
जीवित मृतक ह्वै रहै, ताके निकट न जाइ॥ ४१॥

एक दिन काल आकर पकडेगा तब सबको सकट होगा, किन्तु जो जीवन्मुक्त हो जाता है, उसके निकट काल नही आता। उसका तो स्थूल सूक्ष्म सघात अपने आप ही अपने-अपने कारण मे लय हो जाता है और चेतन व्यापक-चेतन मे लय हो जाता है। अत· अन्य के समान उसे लेने काल दूत नही आता।

दादू जीवित मृतक ह्वै रहै, सबको विरक्त होइ।
काढो काढो सब कहैं, नाम न लेवै कोइ॥ ४२॥

जो महानुभाव जीवितावस्था मे ही मृतक के समान सबसे उदासीन रहता है तो घर के स्वार्थी लोग जैसे मृतक को शीघ्र निकालो-२ कहते है, वैसे ही उसे भी कहते है, रखने का नाम कोई भी नही लेता।

जरण

सारा[1] गहिला[2] ह्वै रहै, अन्तरयामी जाणि।
तो छूटै संसार तैं, रस पीवै सारंगपाणि[3]॥ ४३॥

४३-४४ मे अपनी पारमार्थिक योग्यता अन्यो के आगे प्रकट न करने की विशेषता बता रहे है—जो प्राणी अन्तर्यामी परमात्मा के स्वरूप को जानकर, सासारिक प्राणियो से सब[1] प्रकार पागल[2]-सा होकर रहते हुये परमेश्वर[3] के भजन -रस का पान करे, तो ही ससार-बधन से मुक्त हो सकता है।

गूंगा गहिला बावरा, साईं कारण होइ।
दादू दिवाना ह्वै रहै, ताको लखै न कोइ ॥ ४४ ॥

परमात्मा की प्राप्ति के लिए भजन मे इतना मस्त होकर रहे कि ससारी प्राणी उसे गूगा, अनसमझ तथा पागल समझे और कोई पहचान भी न सके कि यह सत है।

जीवित-मृतक

जीवित मृतक साध की, वाणी का परकास।
दादू मोहे रामजी, लीन भये सब दास ॥ ४५ ॥

जीवन्मुक्त सत की वाणी की विशेषता बता रहे है—जीवन्मुक्त सत की वाणी का ज्ञान-प्रकाश इतना अद्भुत होता है कि उसे सुनकर स्वय रामजी भी मोहित होते है और सब भक्तजन उसमे लीन रहते है।

उभय असमाव

दादू जे तूं मोटा मीर[1] है, सब जीवो मे जीव।
आपा देख न भूलिये, खरा दुहेला पीव ॥ ४६ ॥

४६-४८ मे कहते है—अहकार रहते भगवत् प्राप्ति असभव है-४६ मे साँभर के काजी और विलदखान को उपदेश कर रहे है-हे काजी ! यदि तुम धर्माचार्य[1] हो तथा हे विलदखान ! तुम सब जीवो मे बड़े सरदार[1] हो तो, इस बडेपन के अहकार को देखकर भगवत्-प्राप्ति का मार्ग मत भूलो। कारण, अहकार के रहते हुए परमेश्वर प्राप्ति कठिन है। यह वचन सत्य समझो।

आपा मेट समाइ रहु, दूजा धंधा बाद।
दादू काहे पच मरै, सहजैं सुमिरण साध ॥ ४७ ॥

कठोर तप-व्रतादिक करने मे पच-पच कर क्यो कष्ट उठाता है ? नाम-स्मरण रूप साधना द्वारा अनायास ही सब अहकार को मिटाकर परब्रह्म के स्वरूप मे समाकर रह। अन्य सब सासारिक कार्य परब्रह्म प्राप्ति के साधन न होने से तथा बन्धन के कारण होने से व्यर्थ है।

दादू आपा मेटे एक रस, मन अस्थिर लै लीन।
अरस परस आनन्द करै, सदा सुखी सो दीन ॥ ४८ ॥

प्रथम सब प्रकार के अहकार को मिटाता है और चचल मन को सम्यक् स्थिर करके एकरस परमात्मा के स्वरूप मे वृत्ति लीन करता है, वह दीन साधक परमात्मा से साक्षात् मिलने का आनद प्राप्त करता हुआ सदा के लिए सुखी हो जाता है।

स्मरण नाम निस्संशय

हमौ हमारा कर लिया, जीवत करणी सार।
पीछे संशय को नही, दादू अगम अपार ॥ ४९ ॥

अपनी स्मरण-साधना का सशय रहित फल बता रहे है—हमने अपनी जीवितावस्था मे ही स्मरण रूप कर्त्तव्य करके विश्व के सार अगम अपार परब्रह्म को प्राप्त कर लिया है। देहान्त के पीछे क्या होगा ? ऐसा कोई सशय हमारे मन मे नही है।

मध्य निर्पक्ष

माटी[1] मांहीं ठौर कर, माटी[2] माटी[3] मांहिं ।
दादू सम[4] कर राखिये, द्वै पख दुविधा[5] नांहिं ॥ ५० ॥

इति जीवत मृतक का अग समाप्त ॥ २३ ॥ सा २००५ ॥

मध्य निष्पक्ष मार्ग द्वारा जीवित-मृतक होकर ब्रह्म मे अभेद होने की प्रेरणा कर रहे है— मुमुक्षु इस मिट्टी रूप स्थूल-शरीर[2] के अहकार को मिट्टी[3] मे मिला दे अर्थात् नष्ट कर दे और जीवित रहते हुए भी स्वय को मृतक-मृत्तिकावत्[4] समझे ताकि द्वैत-बुद्धि व पक्षपात रूप दुविधा न रहे। इस प्रकार साधक अन्त करण को सहज सम करके, मिट्टी[1] के समान[4] जरणाधारी क्षमाशील[5] बनकर, परमात्मा के स्वरूप मे अपने रहने की ठौर तैयार कर नि सशय[5] उसी मे लय हो जाता है।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका जीवित मृतक का अग समाप्त ॥ २३ ॥

अथ शूरातन का अंग २४

जीवित-मृतक अग के अनन्तर सत-शौर्य का विचार करने के लिये "सूरातन का अग" कहने मे प्रवृत हुये मगल कर रहे है—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत: ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक साधन करने की कायरता से पार होकर, आसुर गुण तथा अज्ञान को नष्ट करने मे शूरता दिखाता हुआ परब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरजन राम, सद्गुरु और सर्व सतो को हम अनेक प्रणाम करते है।

शूर, सती, साधु निर्णय

साचा सिर सौं खेलहै, यह साधू जन का काम ।
दादू मरणा आसँधै, सोई कहैगा राम ॥ २ ॥

२-४ में सत का परिचय दे रहे है—जैसे युद्ध मे शूरवीर के लिए अपना शिर देकर रणक्षेत्र की (खे=) मिट्टी मे (लहै=मिलना) मरना खेल है जिससे स्वर्ग को प्राप्त करता है, सती सहर्ष पति के साथ चिता मे जलकर पति-लोक को प्राप्त होती है, सच्चा सत अपना अहकार रूप शिर काट कर ब्रह्म को प्राप्त होता है, यह सतजन का ही विशेष कार्य है, शूर व सती का नही। जो जीवितावस्था मे ही मृतक सम निर्द्वन्द्व होना स्वीकार करेगा, वही सत राम का भजन करके उसे पायेगा।

राम कहैं ते मर कहैं, जीवित कह्या न जाइ ।
दादू ऐसैं राम कह, सती शूर सम भाइ ॥ ३ ॥

जो निरजन राम का भजन करते है, वे जीवितावस्था मे मृतक सम होकर ही करते है। अहकार के जीवित रहने पर वास्तविक भजन नही किया जाता। अत. जैसे सती और शूर मरण को प्रिय समझ कर पति-लोक तथा स्वर्ग-लोक मे जाते है, वैसे ही तुम भी अहकार को नष्ट करने के कार्य को प्रिय समझ कर भजन करो, तभी राम को प्राप्त कर सकोगे।

जब दादू मरबा गहै, तब लोगो की क्या लाज ?
सती राम साचा कहै, सब तज पति सौं काज ॥ ४ ॥

जब मरणा स्वीकार कर लिया जाय, तब ससारी लोगो से लज्जा करने की क्या आवश्यकता है ? फिर तो जैसे सती को सब कुछ त्याग कर अपने पति से ही काम रहता है, वैसे ही सच्चे साधक को भी लोक-लज्जा सहित सब कुछ त्यागकर राम २ कहने से ही काम रहता है।

दादू हम कायर कडबा[1] कर रहे, शूर निराला होइ।
निकस खडा मैदान में, ता सम और न कोइ ॥ ५ ॥

कायर-शूर का परिचय दे रहे है—युद्ध के समय कायर लोग तो उत्तेजना के गीत गाते हुये युद्ध-प्रयाण[1] की तैयारी ही करते रहते है किन्तु वीर उन कायरो से भिन्न ही होता है। वह तो कायरो के यूथ से निकलकर युद्ध के मैदान मे झट खडा हो जाता है, उसके समान वे कायर नही हो सकते। वैसे ही जीवित-मृतक होने की बाते करने वाले ही बहुत है, होने वाला उनसे भिन्न ही होता है। उसके समान बाते करने वाले नही हो सकते।

शूर सती साधु निर्णय

मडा[1] न जीवै तो सग जलै, जीवै तो घर आण।
जीवन मरणा राम सौं, सोइ सती कर जाण ॥ ६ ॥

६-१२ मे सच्चे शूर, सती और सत का परिचय दे रहे है—यदि मरणासन्न[1] पति जीवित नही रहे तो उसके साथ जल जाती है और जीवित हो जाय तो घर ले आती है, उसे ही सती समझना चाहिये। वैसे ही जिसका जीवन-मरण राम के लिये ही है, वही सत शूर है।

जन्म लगैं व्यभिचारणी, नख शिख भरी कलंक ।
पलक एक सन्मुख जली, दादू धोये अक ॥ ७ ॥

जो जीव रूप सुन्दरी जन्म-भर भगवान् से विमुख हो, विषयो मे लगना रूप व्यभिचार करती रही और नख से शिखा तक दोषो से भरी रही, किन्तु अन्त मे भगवद्-भक्ति करके एक पलक भी भगवान् का साक्षात्कार कर लिया, उसकी अविद्या जल गई और जन्म-जन्मान्तरो के सपूर्ण कर्मों कलक के अक धुल गये, यह निश्चय समझो।

स्वांग सती का पहर कर, करै कुटुम्ब का सोच ।
बाहर शूरा देखिये, दादू भीतर पोच ॥ ८ ॥

जो सती और शूर का भेष पहन कर कुटुम्ब के पोषण की चिन्ता करे तथा सत का भेष धारण करके इन्द्रिय-पोषण का विचार करे, वे बाहर से ही सती, शूर और सत दिखाई देते है, भीतर हृदय उनका तुच्छ है।

दादू सती तो सिरजनहार सौ, जलै विरह की झाल ।
ना वह मरै, न जल बुझै, ऐसे संग दयाल ॥ ९ ॥

वास्तविक सती तो वही है जो परमात्मा की प्राप्ति के लिये विरहाग्नि मे जलती है। दयालु परमात्मा के सग के लिये जो विरहाग्नि से सदा जलती रहती है, वह ब्रह्मलीन हो अमर हो जाती है।

जे मुझ होते लाख शिर, तो लाखों देती वारि ।
सह[1] मुझ दिया एक शिर, सोई सौंपै नारि ॥ १० ॥

यदि मेरे लाख शिर होते तो मै लाखो के लाखो शिर ही परमात्मा पर निछावर कर देती, किन्तु उस समर्थ प्रभु ने मुझे एक ही शिर साथ[1] मे दिया है अत मै सत रूप पतिव्रता सुन्दरी उसे भी उसी को समर्पण करती हू।

सती जल कोयला भई, मुये मडे की लार ।
यों जे जलती राम सौं, साचे संग भरतार ॥ ११ ॥

अनेक सती नारियाँ मरे हुये पतियो के साथ जलकर कोयला हो गई है। ऐसे यदि जीवात्मा सच्चे स्वामी राम की विरहाग्नि मे जलती तो राम को प्राप्त होकर रामरूप ही हो जाती।

मुये मडे से हेत क्या, जे जिव की जाणै नांहिं।
हेत हरी सौं कीजिये, जे अन्तरजामी मांहिं ॥ १२ ॥

जो हृदय की प्रीति को नही जानता, उस मरे हुये मुर्दे से प्रेम करने से क्या लाभ है ? पूर्ववत् जन्म-मरण रूप ससार ही प्राप्त होगा। जो हृदय के प्रेम को जानने वाला अन्तर्यामी परमात्मा तुम्हारे भीतर ही स्थित है, उससे प्रेम करो, तुम्हे मुक्ति पद प्राप्त होगा।

शूरवीर-कायर

शूरा चढ संग्राम को, पाछा पग क्यों देइ ?
साहिब लाजै भाजतां, ध्रिग् जीवन दादू तेइ ॥ १३ ॥

१३-१८ मे साधक शूर और कायर का परिचय दे रहे है—साधक-शूर साधन-सग्राम से कैसे हट सकता है ? हटने से उसके स्वामी को लाज लगती है और उसके शेष जीवन मे लोग उसे धिक्कार ही देते है।

सेवक शूरा राम का, सोई कहेगा राम।
दादू शूर सन्मुख रहै, नहिं कायर का काम ॥ १४ ॥

जो अहकारादिक को नष्ट करने मे वीर होगा, वही राम का सेवक राम-भजन कर सकेगा। कारण, वीर ही साधन-सग्राम मे आसुर-गुण रूप शत्रुओं को नष्ट करके परमात्मा के सन्मुख रहता है। विषयी-कायर का यह काम नही है, वह तो कामादिक से हार-मानकर विषयो मे ही लगा रहता है।

कायर काम न आवही, यहु शूरे का खेत।
तन मन सौंपै राम को, दादू शीश सहेत ॥ १५ ॥

कामी-कायर इस साधना-रणक्षेत्र मे काम नही आते। यह तो जो तन, मन और अहकार रूप शीश सप्रेम राम को समर्पण करते है, उन साधक शूरो के योग्य है।

जब लग लालच जीव का, तब लग निर्भय हुआ न जाइ ।
काया माया मन तजै, तब चौडे[1] रहै बजाइ ॥ १६ ॥

जब तक साधक को अहकार और शूर को शरीर जीवित रखने का लालच है, तब तक निर्भय नही हुआ जाता और जब मन शरीराध्यास तथा माया की आसक्ति त्याग देता है तब साधक अपना अनाहत नाद बजाकर अहकारादि को नष्ट करने के लिये साधन-क्षेत्र मे, और शूर अपना शख बजाकर शत्रुओ को नष्ट करने के लिये युद्ध-क्षेत्र के मैदान[1] मे, आ डटता है।

दादू चौड़े मे आनन्द है, नाम धर्‍या रणजीत ।
साहिब अपना कर लिया, अंतरगत की प्रीति ॥ १७ ॥

युद्ध के मैदान मे युद्ध करने से निर्भयता का आनन्द रहता है। लोग रणजीत नाम धरते है तथा उसका स्वामी भी उसके हृदय की प्रीति को पहचान कर उसे अपनाता है। वैसे ही साधक को पक्षपात तथा लोक-लाज रहित प्रत्यक्ष मे साधन करने से आनन्द रहता है और लोग उसका भक्त तथा सत नाम धरते है और परमात्मा उसके हृदय की प्रीति को पहचान कर उसे अपनाते है।

दादू जे तुझ काम करीम सौ, तो चौहट[1] चढ कर नाच ।
झूठा है सो जाइगा, निहचै रहसी साच ॥ १८ ॥

यदि तुझे ईश्वर-मिलन से ही काम है तो अन्त करण-चतुष्टय रूप कटरा[1] (कटला) बाजार के विषयाकार-वृत्ति रूप स्थान के ऊपर चढ़कर अर्थात् विषयाकार वृत्तियो को दबा कर भगवद्-भक्ति रूप नृत्य कर, फिर भक्ति का अभ्यास बढने का अन्त करण मे जो मिथ्या विषयो का राग है, वह अपने आप चला जायगा और सत्य परमात्मा का चिन्तन अन्त करण मे निश्चयपूर्वक निरन्तर रहेगा तथा ईश्वर प्राप्त होगा।

जीवित-मृतक

राम कहेगा एक को[1], जे जीवित-मृतक होइ ।
दादू ढूंढे पाइये, कोटी मध्ये कोइ ॥ १९ ॥

१९ मे कहते है-जीवन्मुक्त दुर्लभ है—जीवितावस्था मे शव समान निर्द्वन्द्व होकर राम-भजन करने वाला कोई[1] विरला ही मिलेगा। खोजने पर सभव है, करोड़ो व्यक्तियो मे कोई एक मिल जाय।

शूर सती साधु निर्णय

शूरा पूरा सत जन, सांई को सेवै ।
दादू साहिब कारणै, शिर अपना देवै ॥ २० ॥

२०-२२ मे साधक शूर का परिचय दे रहे है—पूरे शूर सतजन ही परमात्मा की प्राप्ति के लिये अपना अहकार रूप शिर उतारकर परमात्मा की भक्ति करते है।

शूरा झूझै खेत में, सांई सन्मुख आइ।
शूरे को सांई मिलै, तब दादू काल न खाइ ॥ २१ ॥

साधक-शूर साधन-सग्राम द्वारा अहकारादि को नष्ट करके परमात्मा के सन्मुख आता है। जब साधक-शूर को परमात्मा मिल जाते है तव उसे काल नही खाता, वह परमात्मा से ही मिल जाता है।

मरबे ऊपरि एक पग, करता करै सो होहि ।
दादू साहिब कारणै, तालाबेली[1] मोहि ॥ २२ ॥

हमने तो अहकारादिक को नष्ट करने के लिये एक निश्चय से साधन-सग्राम मे पैर रोप रक्खा है, नष्ट करके ही हटेगे। आगे जो ईश्वर करेगे वही होगा, किन्तु हमे परमात्मा के दर्शनार्थ बडी व्याकुलता[1] है।

हरि भरोस

दादू अंग न खैंचिये, कह समझाऊँ तोहि।
मोहि भरोसा राम का, बंका बाल न होहि ॥ २३ ॥

२३-२४ मे राम का भरोसा दिला रहे है—हे साधक! साधन-सग्राम से शरीर को बाहर मत खैच अर्थात् साधन मत छोड। मुझे राम का दृढ भरोसा है, वही तुझे कह कर समझा रहा हू। अहकारादिक आसुर गुण तेरा बाल भी बाका न कर सकेगे, तू राम के बल पर विजयी होकर राम को प्राप्त होगा।

बहुत गया थोडा रह्या, अब जीव सोच निवार ।
दादू मरणा मांड रहु, साहिब के दरबार ॥ २४ ॥

हे जीव! जीवन का बहुत-सा समय चला गया है, थोड़ा ही शेष रहा है। अब तो सासारिक चिन्ताओ को त्याग कर तथा अहकारादि को नष्ट करने की तैयारी करके परमात्मा के भक्ति रूप दरबार मे जाकर रह अर्थात् भक्ति कर।

शूरवीर-कायर

जीवों का संशय पड्या, को काको तारै ।
दादू सोई शूरवाँ, जे आप उबारै ॥ २५ ॥

२५-३१ मे शूर और कायर का परिचय दे रहे है—सव जीवो का उद्धार का साधन भी सशय मे पडा है अर्थात् जो उद्धार का साधन करते है, उनमे सशय रहता है कि इससे हमारा उद्धार होगा या नही ? फिर कौन किसका उद्धार कर सकता है ? अत वही शूरवीर है, जो प्रथम अहकारादि से अपना उद्धार करता है।

जे निकसे संसार तैं, सांई की दिशि धाइ।
जे कबहूं दादू बाहुड़ै, तो पीछै मार्‌या जाइ ॥ २६ ॥

जो परमात्मा की भक्ति करने सासारिक भोग-वासनाओ को त्याग कर निकल भी जाता है, उसकी वृत्ति भी यदि सग-दोष से पुन विषयो मे आयेगी तो कामादिक शत्रुओ के द्वारा वह फिर भी मारा जायेगा। ससार मे लोक-निन्दा के बोलो से भी मारा जायगा।

दादू कोई पीछे हेला[२] जनि[३] करै[४], आगे हेला[१] आव[५]।
आगे एक अनूप है, नहिं पीछे का भाव[६] ॥ २७ ॥

जैसे वीर आगे युद्ध-भूमि मे वीरो के बुलावे[१] पर ही आता[५] है, पीछे से कोई कायर आवाज[२] दे कि शत्रु बलवान् है, लौट आओ, उसको नही[३] स्वीकार करता[४]। वैसे ही साधक अन्तर्मुख वृत्ति होने पर आने वाली अनाहत ध्वनि की ओर ही बढता जाता है, कोई विषय-स्मृति रूप आवाज आती है तो उसकी ओर वृत्ति को नही जाने देता, कारण, आगे उसे अद्वैत अनुपम सुख प्राप्त होता है। अत पीछे के क्षणिक विषय-सुख की भावना[६] उसमे नहीं रहती।

पीछे को पग ना भरै, आगे को पग देइ।
दादू यहु मत शूर का, अगम ठौर को लेइ ॥ २८ ॥

वीर घर की ओर पैर नही रखता, रणक्षेत्र की ओर ही पैर बढाता है और युद्ध मे मर के सर्व साधारण से अगम स्वर्ग-धाम को प्राप्त करता है, यही वीर का मत है। वैसे ही साधक विषयो की ओर वृत्ति नही जाने देता। ब्रह्माकार वृत्ति की ही वृद्धि करता है और ब्रह्म रूप अगम-धाम को प्राप्त होता है। यही शूरवीर साधक का मत है।

आगा चल पीछा फिरै, ताका मुँह मा[१] दीठ[२]।
दादू देखे दोइ दल, भागे देकर पीठ ॥ २९ ॥

जो शूरवीर आगे रणभूमि मे जाकर भय से रणभूमि से वापस लौट आता है, अथवा जो दोनो ओर के सैन्य दलो को भयानक लडते देखकर बिना विजय किये ही भयभीतावस्था मे पीठ दिखाकर भाग जाता है, ऐसे कायर का मुख देखने[२] योग्य नही[१]। वैसे ही साधक साधन मे आगे बढकर, प्रतिष्ठा वा विषयो के फद मे आ जाता है, वह अपने कर्म-बीज को ज्ञानाग्नि द्वारा नही भून सकता, उसके अदृष्ट तथा वासना रूप दोनो दलो को पुन देखता है=जन्म-मरण मे आता है। अत वह पतन की ओर आने से मुख दिखलाने लायक नही।

दादू मरणा माँड[१] कर, रहै नहीं ल्यौ लाइ।
कायर भाजै जीव ले, आ[२] रण[३] छाडै जाइ ॥ ३० ॥

कायर रणभूमि मे मरने की तैयारी[१] करके भी रुकता नही। रण मे आया[२] हुआ भी, भय से रण को छोड़, अपना जीव लेकर भागता है और घर को आ जाता है। वैसे ही विषयी अहकारादि के नष्ट करने की तैयारी[१] करके भी परब्रह्म मे वृत्ति लगाकर सयम से नही रह सकता। साधन[३] छोडकर विषयो मे ही आसक्त होता है। अरण्याश्रम को त्याग गृहस्थाश्रम मे फँसता है।

शूरा होइ सु[१] मेर[२] उलंघै, सब गुण बध्या छूटै।
दादू निर्भय ह्वै रहै, कायर तिणा[३] न टूटै ॥ ३१ ॥

वीर होता है वह घर-नारी आदि की आसक्ति आदि रूप गुणो से बँधा हुआ होने पर भी उन्हे छोडकर सुमेरु रूप युद्ध के समय अपनी सेना की सीमा[२] को सम्यक्[१] उल्लघन करके शत्रु-दल मे निर्भय होकर युद्ध करता रहता है किन्तु कायर से एक तृण[३] भी नही टूटता। वैसे ही साधक अहकारादि गुणो से बँधा हुआ होने पर भी भक्ति आदि के बल से छूट जाता है और घटे-दो घटे भजन करने की सीमा[२] को सम्यक्[१] लाघकर निर्भयता से निरन्तर भजन करता रहता है किन्तु विषयी से विषय-राग रूप तृण भी नही टूटता।

शूर सती साधु निर्णय

सर्प केसरि[१] काल कुंजर[२], बहु जोध मारग मांहिं।
कोटि[३] में कोई एक ऐसा, मरण आसंघ जांहिं॥ ३२॥

३२-३७ मे शूर सती साधु का परिचय दे रहे है—प्रभु प्राप्ति मार्ग के मध्य ससार-वन मे सशय रूप सर्प, क्रोध रूप सिह[१], काम रूप हाथी[२] आदि काल के समान महा बलवान् बहुत योद्धा विघ्नरूप है। अत· ऐसे साधक-शूर की श्रेणी[३] वाला करोडो[३] मे कोई एक ही होगा, जो मृत्यु को स्वीकार करके इनसे सघर्ष करता हुआ ससार-वन से पार परमात्मा के पास चला जाय।

दादू जब जागै तब मारिये, वैरी जिय के साल।
मनसा डायनि काम रिपु, क्रोध महाबली काल॥ ३३॥

सासारिक वासना रूप डाकिनी और काल के समान महा बलवान् काम-क्रोध रूप शत्रुओ को जब भी हृदय मे उत्पन्न हो, तब ही वैराग्य, वस्तु-विचार और क्षमा से मार देने चाहिये। क्योकि ये जीव के लिए महाक्लेश रूप है।

पंच चोर चितवत रहैं, माया मोह विष झाल[१]।
चेतन पहरै आपने, कर गह खडग सँभाल॥ ३४॥

पच ज्ञानेन्द्रिय रूप चोर देखते ही रहते है, किचित् प्रमाद होते ही भगवदाकार वृत्ति को चुरा कर मायिक मोह और विषय रूप विष की ज्वाला[१] मे डालकर व्यथित करते है। अत वैराग्य रूप तलवार मन रूपी हाथ मे लेकर अपने पहरे पर सावधान रहते हुये वृत्ति की निरन्तर सँभाल पूर्वक रक्षा करनी चाहिये।

काया कबज[१] कमान[२] कर, सार शब्द कर तीर।
दादू यहु शर सांध कर, मारै मोटे मीर[३]॥ ३५॥

सूक्ष्म शरीर को सयम मे रखना रूप धनुष[२] धारण[१] करे तथा सार रूप परब्रह्म की प्राप्ति के साधनो के सहायक सद्गुरु के शब्द रूप बाणो से अन्त करण-तूणीर भरकर तैयार रहे, फिर जो भी आसुर-गुणो का सरदार[३] वृत्ति के सामने आवे, उसे मारने योग्य बाण को सधान करके मार दे अर्थात् क्रोध उत्पन्न हो तो क्षमा-प्रधान शब्द विचार से नष्ट कर दे। इसी प्रकार सद्गुरु के शब्द-बाणो द्वारा सब को मारे।

काया कठिन कमान है, खाँचै विरला कोइ।
मारै पंचों मृगला, दादू शूरा सोइ॥ ३६॥

सूक्ष्म-शरीर को सयम मे रखना रूप धनुष धारण करना सर्व साधारण के लिये कठिन है। कोई विरला साधक ही सद्गुरु शब्द-बाण उस पर रखकर खैचता है और जो उसके द्वारा पच-ज्ञानेन्द्रिय रूप मृगो को मारता है=विषयासक्ति से रहित करता है, वही सच्चा शूर माना जाता है।

जे हरि कोप करै इन ऊपर, तो काम कटक दल जांहिं कहाँ।
लालच लोभ क्रोध कत भाजै, प्रकट रहे हरि जहाँ तहाँ ॥ ३७ ॥

साधक-शका—हमारे प्रयत्न बिना ही हरि कामादि को क्यो नही भगा देते ? उत्तर-यदि हरि इन काम-सेना, लालच, लोभ, क्रोधादि के दल पर कोप करे तो ये भाग कर कहा जायेंगे ? कारण, हरि तो जहाँ-तहाँ सर्वत्र व्यापक है। यह बात विश्व मे अति प्रकट है। अत साधक को ही साधन द्वारा कामादि को हृदय से हटाना चाहिये।

शूरातन

दादू तन मन काम करीम के, आवै तो नीका।
जिसका तिसको सौपिये, सोच क्या जी[1] का ॥ ३८ ॥

३८-४४ मे शौर्य का परिचय दे रहे है—स्थूल-सूक्ष्म शरीर ईश्वर-भक्ति रूप काम मे लगे, तब ही अच्छे माने जाते है। अत जिस ईश्वर के तन, मन, धनादि है, उसी को समर्पण कर दो। फिर इस जीव[1] के लिये चिता की क्या बात रह जाती है ? कुछ नही। उसका योगक्षेम ईश्वर ही करता है।

जे शिर सौप्या राम को, सो शिर भया सनाथ।
दादू दे ऊरण[1] भया, जिसका तिसके हाथ ॥ ३९ ॥

जो सिर राम के समर्पण कर दिया गया, वह सनाथ हो गया। वह जिस राम का था, उसी के हाथ मे देकर, ऋण-उतार[1] कर कृतज्ञ हो गया अर्थात् भक्ति द्वारा भगवान् को प्राप्त करके अपना कर्त्तव्य पूरा कर दिया।

जिसका है तिसकौ चढै, दादू ऊरण[1] होइ।
पहली देवै सो भला, पीछे तो सब कोइ ॥ ४० ॥

तन-धनादि जिस ईश्वर के है, उसी को यदि समर्पण हो जाये तो जीव ईश्वर के ऋण-से-रहित[1] हो जाता है। जो जीवितावस्था मे ही भगवान् को समर्पण कर देता है, वही श्रेष्ठ भक्त माना जाता है, मृत्यु के समय तो सभी त्यागते है।

साई तेरे नांव पर, शिर जीव करू कुर्बान।
तन मन तुम पर वारणै, दादू पिड पराण ॥ ४१ ॥

हे ईश्वर ! मै आपके नाम पर अपना अहकार रूप शिर और जीवन बलिदान करता हू तथा अपना तन, मन और शरीर मे सचार करने वाला प्राण भी आप पर निछावर करता हू।

अपने साई कारणै, क्या क्या नहि कीजे ?
दादू सब आरभ तज, अपणा शिर दीजे ॥ ४२ ॥

अपने स्वामी परमात्मा की प्राप्ति के लिये क्या क्या नही किया जाता ? सब कुछ किया जा सकता है। अत सम्पूर्ण काम्य कर्मों का करना छोडकर अपना अहकार रूप शिर उतार दो और हरि की अनन्य शरण हो जाओ।

शिर के साटै लीजिये, साहिबजी का नांव ।
खेलै शीश उतार कर, दादू मैं बलि जांव ॥ ४३ ॥

अहकार रूप शिर देकर परमात्मा का नाम चिन्तन करना चाहिये। जो सब प्रकार का अहकार रूप शिर उतार कर परब्रह्म का साक्षात्कार रूप खेल खेलता है, उसकी हम बलिहारी जाते है।

खेलै शीश उतार कर, अधर एक सौं आइ ।
दादू पावै प्रेम रस, सुख में रहै समाइ ॥ ४४ ॥

जो मायिक ससार से ऊपर आकर तथा अपना अहकार रूप शिर उतार कर साधन-सग्राम मे निरजन अद्वैत ब्रह्म से खेलता है, वह परब्रह्म के परम प्रेम-रस को प्राप्त करके परम सुख मे समा कर रहता है।

मरण भय निवारण

दादू मरणे थीं तूं मत डरै, सब जग मरता जोइ ।
मिल कर मरणा राम सौं, तो कलि अजरावर[1] होइ ॥ ४५ ॥

४५-५१ मे मृत्यु-भय दूर कर रहे है—तू मरणे से मत डरे, देख तो सही, सभी जगत् के प्राणी मरते है, फिर तू कैसे न मरेगा ? किन्तु जो राम का साक्षात्कार करके मरता है, वह ससार मे अजरा = देवताओं[1] से भी वर = श्रेष्ठ अजर-अमर[1] रूप परमात्मा ही हो जाता है।

दादू मरणे थीं तूं मत डरै, मरणा अंत निदान ।
रे मन मरणा सिरजिया, कहले केवल राम ॥ ४६ ॥

अरे मन ! मरणे से तू मत डर, मरणा तो अत मे निश्चित ही है। वह तो जन्म के समय ही नियत हो चुका था। जो जन्मता है, वह अवश्य मरता है। अत: माया रहित परब्रह्म का चिन्तन कर, यही तेरा कर्त्तव्य है।

दादू मरणे थीं तूं मत डरै, मरणा पहुँच्या आइ ।
रे मन मेरा राम कह, बेगा बार न लाइ ॥ ४७ ॥

अरे मेरे मन ! तू मरणे से मत डर, मरणा तो पास ही आ पहुँचा है, अब शीघ्र ही राम का भजन करने मे लग जा, देर मत कर।

दादू मरणे थीं तूं मत डरै, मरणा आज कि काल्ह ।
मरणा मरणा क्या करै, बेगा राम सँभाल ॥ ४८ ॥

मरणे से मत डर, आज या कल मरणा तो है ही, मरणा-मरणा क्या पुकारता है। शीघ्र राम भजन करने मे लग।

दादू मरणा खूब है, निपट[1] बुरा व्यभिचार ।
दादू पति को छाड कर, आन[2] भजै भरतार ।। ४९ ।।

अहकार रहित होना रूप मरणा तो अति श्रेष्ठ है, किन्तु परमात्मा रूप पति को छोड अन्य[2] देवतादि को भरतार समझ कर भजना सर्वथा[1] बुरा और व्यभिचार है ।

दादू तन तै कहा डराइये, जे विनश जाइ पल बार ।
कायर हुआ न छूटिये, रे मन हो हुसियार ।। ५० ।।

जो एक क्षण जितने समय मे नष्ट हो जाता है, ऐसे भजन मे विघ्न करने वाले विरोधी के शरीर से क्यो डरता है ? कायर होकर डरने से तेरे कर्म का भोग तो नही छूटेगा ? अत हे मन ! भजन के लिये सावधान हो ।

दादू मरणा खूब है, मर माहीं मिल जाइ ।
साहिब का सँग छाड़ कर, कौन सहै दुख आइ ।। ५१ ।।

अहकार का नष्ट करना रूप मरणा अति श्रेष्ठ है । कारण, साधक मर कर परमात्मा मे ही मिल जाता है । अत फिर परमात्मा का एकता रूप सग छोडकर कौन बुद्धिमान् ससार मे आकर जन्मादि दु ख सहन करेगा ?

शूरातन

दादू मांहीं मन सौ झूझ कर, ऐसा शूरा वीर ।
इन्द्रिय अरि दल भान सब, यो कलि हुआ कबीर ।। ५२ ।।

५२-५५ मे शौर्य का परिचय दे रहे है—शरीर के भीतर मन से युद्ध करके उसमे रहने वाले कामादि रूप सब शत्रु-दल को नष्ट करके तथा इन्द्रियो को जीत कर निर्भय हुआ है, ऐसा साधक ही शूर कहलाता है । ऐसे ही वीर कलियुग मे कबीर हुये है ।

सांई कारण शीश दे, तन मन सकल शरीर ।
दादू प्राणी पंच दे, यों हरि मिल्या कबीर ।। ५३ ।।

परमात्मा की प्राप्ति के लिये अपना अहकार रूप सिर उतार कर, मन और पाचो ज्ञानेन्द्रियो को जो प्राणी परमात्मा के भजन मे लगाता है, वही परमात्मा को प्राप्त होता है । इसी प्रकार कबीर जी हरि को प्राप्त हुये है ।

सबै कसौटी शिर सहै, सेवक सांई काज ।
दादू जीवन क्यों तजै, भाजै हरि को लाज ।। ५४ ।।

साधक परमात्मा की प्राप्ति के लिये सभी कठोर परीक्षा रूप कष्टो को सहन करे किन्तु अपनी जीवन रूप भक्ति को किसी प्रकार भी न त्यागे । कारण, भक्ति को त्याग कर विषयो की ओर भागने से हरि को लाज लगती है । लोग कहते है—देखो, हरि-भक्त होकर भी विषयो मे गिर गया ।

सांई कारण सब तजै, जन का ऐसा भाव ।
दादू राम न छाडिये, भावै तन मन जाव[1] ॥ ५५ ॥

भक्त का ऐसा ही प्रेम होता है—वह परमात्मा की प्राप्ति के लिये सम्पूर्ण सासारिक भावनाओ को त्याग देता है। अत चाहे विषय और वासनादि के त्याग व साधना से तन-मन क्षीण हो जाय[1], किन्तु साधक को राम-भजन न छोडना चाहिये।

पतिव्रत निष्काम

दादू सेवक सो भला, सेवै तन मन लाइ ।
दादू साहिब छाड कर, काहू संग न जाइ ॥ ५६ ॥

५६-५७ मे निष्काम पतिव्रत का परिचय दे रहे है—जो परमात्मा का भजन छोड कर किसी भी प्रकार सासारिक वासना के पीछे नही लगता और अपना तन-मन भगवद्-भक्ति मे ही लगाकर भक्ति करता है, वही भक्त अच्छा है।

पतिव्रता निज पीव को, सेवै दिन अरु रात ।
दादू पति को छाड कर, काहू संग न जात ॥ ५७ ॥

जैसे पतिव्रता रात-दिन अपने पति की सेवा करती है, पति को छोडकर किसी अन्य के साथ नही जाती। वैसे ही भक्त जीवन-भर परमात्मा की भक्ति करता है, अन्य किसी विषय-वासना के सग नही लगता।

शूरातन

दादू मरबो एक जु बार, अमर झुकेडे[1] मारिये ।
तो तिरिये संसार, आतम कारज सारिये ॥ ५८ ॥

५८-५९ मे शूरता का परिचय दे रहे है—अहकार का नाश रूप मरण तो एक ही बार होता है फिर तो अमरता प्राप्त हो जाती है। अत अमर ब्रह्म की ओर ही मन के धक्के[1] लगाओ=मन को अहकार रहित करो, तब ही ससार से पार होकर परब्रह्म-प्राप्ति रूप अपना कार्य सिद्ध कर सकोगे।

दादू जे तूं प्यासा प्रेम का, तो जीवन की क्या आस ।
शिर कै साटे पाइये, तो भर भर पीवै दास ॥ ५९ ॥

हे साधक! यदि तू भगवत् प्रेम का प्यासा है, तो अहकार को जीवित रखने की क्यो आशा करता है ? सच्चे भक्त-जन तो अहकार रूप शिर देने पर भी प्रभु-प्रेम मिले, तब भी सहर्ष अपने कर्ण-पुटो को भर-भर कर पान करते है। जीवन से अधिक महत्त्व भगवत्कथा-श्रवण को देते है।

कायर

मन मनसा जीते नहीं, पंच न जीते प्राण ।
दादू रिपु जीते नहीं, कहैं हम शूर सुजान ॥ ६० ॥

६०-६१ मे कायर का परिचय दे रहे है—जिनने मन को, अन्त करण की नाना सासारिक

वासनाएँ, पच ज्ञानेन्द्रिय, और काम क्रोधादिक रिपुओ को विजय किया नही, फिर भी कहते है—"हम रण चतुर शूर है"। वे शूर न होकर कायर ही है।

मन मनसा मारै नहीं, काया मारण जाहि।
दादू बाबी मारिये, सर्प मरै क्यो माहि ॥ ६१ ॥

लोग मन तथा सासारिक वासनाओ को तो नही मारते किन्तु शरीर को नष्ट करने के लिये काशी-करवत लेने, हिमालय मे गलाने आदि के लिये जाते है। यह उनका उद्योग सर्प को न मार कर बाँबी को दडे मारने के समान है। बॉबी के मारने से सर्प नही करता, वैसे ही कठोर तपादि से शरीर को क्षीण करने से मन क्षीण नही होता और शरीर को मारने से मन नही मरता।

शूरातन

दादू पाखर[1] पहर कर, सब को झूझण जाइ।
अग उघाड़ै शूरवाँ, चोट मुँहै मुँह खाइ ॥ ६२ ॥

६२-६८ मे शौर्य का परिचय दे रहे है—जैसे हाथी लोहे की झूल[1] पहन कर सग्राम मे जाता है, वैसे ही सकाम भक्ति रूप कवच[1] वा भेषरूप कवच पहन कर प्रतिमा-पूजा, जप, तपादि बाह्य साधन-सग्राम तो सभी करते है किन्तु उक्त कवच को उतार कर निष्काम भाव युक्त और बिना भेष के ही जो कामादि से युद्ध करता हुआ उनके वेग रूप आघात को अपने विचार रूप मुख पर झेल कर उन्हे कमजोर करके नष्ट करता है, वही वीर है।

जब झूझै तब जाणिये, काछ[1] खड़े क्या होइ।
चोट मुँहैं मुँह खाइगा, दादू शूरा सोइ ॥ ६३ ॥

साधक-शूर का भेष[1] बना कर खडे रहने से ही क्या शूर मान लिया जाता है, नही। जब कामादि से युद्ध करते हुये उनके वेग रूप आघात को अपने विचार रूप मुख ही मुख पर खायगा=विचार द्वारा नष्ट कर देगा, वही शूर है।

शूरातन सहजै सदा, साच सेल[1] हथियार।
साहिब के बल झूझताँ, केते लिये सु[1] मार ॥ ६४ ॥

साधक-शूर सत्य रूप भाला[1] तथा सद्गुरु के यथार्थ शब्द रूप अन्यान्य हथियार ग्रहण करके परमात्मा के बल पर सदा युद्ध करता हुआ कितने ही कामादि शत्रुओ को अनायास सम्यक्[1] प्रकार मार कर शौर्य दिखाता है।

दादू जब लग जिय लागै नहीं, प्रेम प्रीति के सेल[1]।
तब लग पिव क्यो पाइये, नहि बाजीगर का खेल ॥ ६५ ॥

जब तक भगवत्-प्रेम पूर्ण सतो के वचन रूप भाले[1] अन्त करण मे प्रीतिपूर्वक नही लगते, तब तक परमात्मा कैसे प्राप्त हो सकते है ? यह साधन-सग्राम है, बाजीगर का खेल तो नही है।

दादू जे तू प्यासा प्रेम का, तो किसको सैतै[1] जीव।
शिर के साटै लीजिये, जे तुझ प्यारा पीव ॥ ६६ ॥

हे जीव ! यदि तू प्रभु-प्रेम का प्यासा है तो बलिदानार्थ किसी जीव को क्यो सताता[१] है ? वा वीरता पूर्वक नाना वस्तुओ का सचय[२] किसके लिये करता है ? यह तेरा शौर्य उचित नही। जो तुझे परमात्मा प्यारे लगते है तो अपने अहकार रूप शिर को उतार करके उन्हे प्राप्त कर।

दादू महा जोध मोटा बली, सो सदा हमारी भीर[१]।
सब जग रूठा क्या करै, जहॉ तहाँ रणधीर ॥ ६७ ॥

जो सबसे महान् अति बली महायोद्धा परमात्मा है, वे विपत्ति[१] मे सदा हमारी सहायता करते है। अत. यदि सब जगत् भी हम से रुष्ट हो जाय तो क्या करेगा ? हमारे सहायक रणधीर प्रभु तो जहा हमारी सहायतार्थ तैयार ही रहते है।

दादू रहते पहते राम जन, तिन भी मॉड्या झूझ ।
साचा मुँह मोडै नहीं, अर्थ इता ही बूझ ॥ ६८ ॥

ससारी जन तो हम से झगडा करते ही रहते थे किन्तु शेष बचे राम के भक्त-जन भी युद्ध करने लगे है। तथापि हे सज्जनो ! सच्चा भक्त किसी सप्रदायादि की ओर मुख नही करता, बस, इतने मे ही हमारा भावार्थ समझ जाओ।

प्रसग-गलता से चार साधु इस ध्येय से महाराज के पास सॉभर आये थे कि इन्हे अपने वैष्णव-सप्रदाय मे मिला लिया जाय। दादूजी महाराज ने उनका प्रस्ताव नही स्वीकार किया, तब वे रुष्ट होकर लडने लगे थे। उन्हे ही ६८ वी साखी कही थी।

हरि भरोस

दादू कॉधे सबल के, निर्वाहैगा और।
आसन अपने ले चल्या, दादू निश्चल ठौर ॥ ६९ ॥

हरि का भरोसा दिखा रहे है—हम तो सबल ईश्वर के ही आश्रय है, वे ही हमको अन्त तक निभायेगे। उन्ही का स्वरूप ज्ञान अब हमको निश्चल-धाम रूप अपने आसन पर ले चला है।

शूरातन

दादू क्या बल कहा पतंग का, जलत न लागै बार ।
बल तो हरि बलवन्त का, जीवै जिहिं आधार ॥ ७० ॥

७०-७१ मे शौर्य दिखा रहे है—जीव रूप पतग जिसका भरोसा करके शरण जाता है, उस देवता रूप दीपक का क्या बल कहा जाय ? जीव रूप पतग को काल-ज्योति मे जलकर मरते कुछ भी देर नही लगती, वह शरणागत की रक्षा काल-ज्योति से नही कर सकता। बल तो अति बलवान् हरि का ही है जिसका आश्रय पाकर जीव अमर हो जाता है।

राखणहारा राम है, शिर ऊपर मेरे।
दादू केते पच गये, बैरी बहुतेरे ॥ ७१ ॥

काम-क्रोधादिक कितने ही शत्रु हमारा पतन करने के लिये पच २ कर नष्ट हो गये, कारण, हमारे रक्षक समर्थ राम हमारे शिर पर है। अत कामादि हमारा पतन नही कर सके।

शूरातन विनती

दादू बल तुम्हारे बापजी, गिनत न राणा राव ।
मीर[1] मलिक[2] प्रधान[3] पति[4], तुम बिन सब ही बाव[5] ॥ ७२ ॥

७२-७५ मे शौर्यार्थ विनय कर कहे है-हे बापजी ! आपके बल पर ही भक्त जन है, उनकी नजर मै राणा, राजा आदि वायु[5] की तरह कुछ नही, वे उन्हे महान् नही समझते, क्योकि आपके बिना सरदार[1], सम्राट्[2], प्रधान मत्री[3], सेनापति[4] आदि सभी अपान-विषय[5] विष-प्रद है, मुक्ति प्रद सुधा नही।

दादू राखी राम पर, अपणी आप सवाह[1] ।
दूजा को देखू नहीं, ज्यो जानैं त्यों निर्वाह ॥ ७३ ॥

हमने सम्पूर्ण व्यवस्था निरजन राम पर ही रक्खी है, वे अपनी सस्था जान कर अपने आप ही चलायेगे[1]। दूसरा कोई उपाय हम नही देखते। जैसे निरजन राम तुमको जानेंगे, वैसे ही तुम्हारा निर्वाह करते रहेगे।

प्रसग-महाराज के ब्रह्मलीन होने के समय गरीबदासजी ने प्रश्न किया था-आपके पश्चात् आपका यह समाज किस उपाय से और कैसे चलेगा ? उसी का उत्तर ७३ से दिया था।

तुम बिन मेरे को नहीं, हमको राखनहार ।
जे तू राखै साइयाँ, तो कोई न सकै मार ॥ ७४ ॥

हे निरजन राम ! आपके बिना हमारा सहायक कोई नही है, हमारे रक्षक तो आप ही है। यदि आप रक्षा करे तो हमे कोई भी नही मार सकता।

सब जग छाडै हाथ तै, तो तुम जनि छाडहु राम ।
नहि कुछ कारज जगत सौ, तुमही सेती काम ॥ ७५ ॥

यदि सब जगत् हमको छोड़ दे तो भी हे राम ! आप अपने कृपा रूप हाथ से नही छोडना, कारण, जगत् से तो हमारा कोई कार्य नही है, हमारा काम तो आपसे ही है।

शूरातन

दादू जाते जिव[1] तै तो डरू, जे जिव मेरा होइ।
जिन यहु जीव उपाइया, सार करेगा सोइ ॥ ७६ ॥

७६-७८ मे शौर्य दिखा रहे है—यदि प्राण[1] हमारा हो तो इसे जाते हुये देख कर हमे भय हो सकता है किन्तु यह तो जिनने उत्पन्न किया है, उन्हीं प्रभु का है, वे ही इसकी रक्षा करेंगे, हमे क्या चिन्ता है ?

दादू जिनको साई पाधरा[1], तिन बंका नाहि कोइ ।
सब जग रूठा क्या करै, राखणहारा सोइ ॥ ७७ ॥

जिनसे परमात्मा सीधे[१] रहते है, उनसे कोई भी बॉका नही होता और यदि सब जगत् रुष्ट हो जाय तो भी उन भक्तो का क्या कर सकता है ? क्योकि उनके रक्षक वे सर्व-समर्थ परमात्मा है ।

दादू साचा साहिब सिर ऊपरै, तती[1] न लागै बाव[2] ।
चरण कमल की छाया रहै, कीया बहुत पसाव[3] ॥ ७८ ॥

जिनके शिर पर रक्षक सत्यस्वरूप परमात्मा है, उनके तो उष्ण[१] विषयप्रद वायु[२] भी नही लग सकती। उन पर भगवान् ने बड़ा अनुग्रह[३] किया है, जिससे वे भगवान् के चरण-कमलो की छाया मे रहते है, जो अति शीतल-सुखद है।

विनती

दादू कहै–जे तूं राखै सांइयॉ, तो मार सकै ना कोइ ।
बाल न बांका कर सकै, जे जग बैरी होइ ॥ ७९ ॥

७९-८२ मे विनय कर रहे है—हे प्रभो ! यदि आप रक्षा करे तो कोई भी नही मार सकता । सब जगत् भी शत्रु बन जाय तो भी एक बाल भी टेढा नही कर सकता।

राखणहारा राखै, तिसे कौन मारै। उसे कौन डुबोवै, जिसे सांई तारै।
कहै दादू सो कबहूं न हारै, जे जन सांई सँभारै ॥ ८० ॥

जिसकी रक्षा राम करे, उसे कौन मार सकता है ? जिसको ईश्वर ससार से तारे, उसे ससार मे कौन डुबो सकता है ? जिसकी परमात्मा सँभाल रखते है, वह कामादि शत्रुओ से कभी भी नही हारता।

निर्भय बैठा राम जप, कबहूँ काल न खाइ ।
जब दादू कुंजर चढै, तब सुनहाँ[1] झख जाइ ॥ ८१ ॥

जैसे हाथी पर बैठे हुये व्यक्ति को श्वान[१] भौक-भौक कर चला जाता है, काट नही सकता । वैसे ही हे साधक ! भगवान् के बल पर निर्भयता से बैठ कर राम का चिन्तन कर, फिर तुझे कभी भी काल न खा सकेगा।

कायर कूकर कोटि मिल, भौकैं अरु भागैं ।
दादू गरवा[1] गुरुमुखी, हस्ती नहिं लागैं ॥ ८२ ॥

इति श्री सूरातन का अग समाप्त ॥ २४ ॥ सा २०८७ ॥

जैसे अनेक श्वान मिलकर हाथी की ओर भौक २ कर भागते है किन्तु हाथी के नही लग सकते। वैसे ही अनेक विषयी, निन्दक, कायर मिलकर साधक को निन्दादि द्वारा व्यथित करना चाहते है, किन्तु गुरु आज्ञा मे चलने वाला गभीर[१] साधक उनकी नही सुनता।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका शूरातन का अग समाप्त ॥ २४ ॥

अथ काल का अंग २५

शूरातन-अग के अनन्तर काल का विचार करने के लिये "काल का अग" कहने मे प्रवृत्त हुये मगल कर रहे है—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत. ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत. ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक काल-भय से मुक्त होकर परब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरजनराम, सद्गुरु और सर्व सतो को हम अनेक प्रणाम करते है।

काल न सूझै कंध पर, मन चितवै बहु आश ।
दादू जीव जानै नहीं, कठिन काल की पाश ॥ २ ॥

२-२५ मे काल की चेतावनी दे रहे है—प्राणी बहुत-सी आशाये करके निरन्तर विषयो का चिन्तन करता रहता है, उसे कधे पर आया हुआ काल भी नही दीखता। काल की फाँसी कितनी कठिन है, इस वात को जीव जानता ही नही।

काल हमारे कध चढ, सदा बजावै तूर[1]।
कालहरण कर्त्ता पुरुष, क्यौ न सँभाले शूर ॥ ३ ॥

काल हमारे कधे पर चढकर सदा प्रस्थान का नगाडा[1] वजा रहा है। हे मन ! फिर भी तू काल के भय को नष्ट करने वाले महाशूर कर्त्ता पुरुष परमात्मा का स्मरण क्यो नही करता ?

जहँ जहँ दादू पग धरै, तहां काल का फध ।
शिर ऊपर सांधे खडा, अजहुं न चेतै अध ॥ ४ ॥

प्राणी जिस-जिस विषय पर अपना मन रूप पैर रखता है, वहा-वहा ही उसे विषयासक्ति रूप काल का फँदा बाँध लेता है और काल रूप शिकारी अन्त-समय रूप बाण साधे खडा रहता है, ऐसा होने पर भी यह अध प्राणी अब तक भी सावधान नही हो रहा है।

दादू काल गिरासन का कहै, काल रहित कह सोइ।
काल रहित सुमिरण सदा, बिना गिरासन होइ ॥ ५ ॥

जो काल के ग्रास है, उनकी कथा क्या कहता है ? जो काल रहित है, उस परमात्मा की कथा कह। जो काल रहित परमात्मा का सदा स्मरण करता है, वह काल का ग्रास होने से बच कर ब्रह्म स्वरूप ही हो जाता है।

दादू मरिये राम बिन, जीजे राम सँभाल ।
अमृत पीवै आतमा, यों साधू बचे काल ॥ ६ ॥

राम-भजन के बिना प्राणी बारम्बार मृत्यु को प्राप्त होता है। अत राम-भजन करके परब्रह्म प्राप्ति रूप जीवन प्राप्त करना चाहिये। इसी प्रकार सतो का मन राम-भजन द्वारा ज्ञानामृत का पान करता रहता है, तब ही सत काल से बचते है।

दादू यहु घट काचा जल भरा, विनशत नाहीं बार ।
यहु घट फूटा जल गया, समझत नहीं गँवार ॥ ७ ॥

इस कच्चे घट रूप शरीर मे प्राण-जल भरा है, इसे नाश होते देर न लगेगी। यह कच्चा घट रूप शरीर प्रारब्ध-समाप्ति रूप चोट से फूटते ही प्राण-जल चला जायेगा, फिर नही रुक सकता। मूर्ख मानव इस बात को नही समझते, तभी तो काल से बचने के लिये राम-भजन नही करते।

फूटी काया जाजरी[1], नव ठाहर कॉणी ।
ता में दादू क्यों रहै, जीव सरीखा पाणी ॥ ८ ॥

यह काया-गगरी फूटी हुई है, रोम कूप-सूक्ष्म छिद्रो के कारण जर्जर[1] है और एक मुख, दो कान, दो ऑख, दो नाक, मल तथा मूत्र मार्ग, इन नौ स्थूल छिद्रो वाली है। फिर इसमे जीव जैसा सूक्ष्म-जल कैसे रह सकता है ? अत· चिरस्थायित्व का विश्वास छोडकर राम-भजन करो।

बाव[1] भरी इस खाल का, झूठा गर्व गुमान ।
दादू विनशै देखतां, तिसका क्या अभिमान ॥ ९ ॥

इस प्राण वायु[1] से भरी हुई, चर्म से आच्छादित काया के बल का गर्व और सौन्दर्य का घमण्ड मिथ्या है। जो देखते-देखते क्षणभर मे नष्ट हो जाय, उसका अभिमान ही क्या है ? कुछ नही।

दादू हम तो मूये मांहिं हैं, जीवन का रु[1] भरंम ।
झूठे का क्या गर्वबा, पाया मुझे मरंम ॥ १० ॥

हम तो अहकार नष्ट हो जाने से मुर्दों की गणना मे ही है हमारे जीने का तो[1] तुम्हे भ्रम हो रहा है और[1] जो हमारे अहंकार को जीवित समझते है, उन्हे भी भ्रम ही है। हमने तो आत्मानात्मा का रहस्य जान लिया है। अत हम मिथ्या शरीर का क्या अभिमान करेगे ?

यहु वन हरिया देखकर, फूल्यो फिरे गँवार ।
दादू यहु मन मृगला, काल अहेडी लार ॥ ११ ॥

यह मूर्ख मन रूप मृग इस ससार वन के विषय-वृक्षो की अनुकूलता-हरियाली को देखकर हर्ष से फूला फिरता है, किन्तु अपने पीछे लगे हुये काल-शिकारी को नही देखता, यह इसका प्रमाद है।

सब ही दीसैं काल मुख, आपा गह कर दीन्ह ।
विनशै घट आकार का, दादू जे कुछ कीन्ह ॥ १२ ॥

अहकार को ग्रहण करके प्राणियो ने अपने को काल के मुख मे दे रक्खा है। अत अविवेकी अहकार-युक्त सभी प्राणी काल के मुख मे दिखाई दे रहे है। अहकार युक्त जो कुछ किया गया है, वह और स्थूल-शरीर काल के द्वारा नष्ट होता रहता है।

काल कीट तन काठ को, जरा जन्म को खाइ।
दादू दिन दिन जीव की, आयु घटती जाइ॥ १३॥

शरीर रूप काष्ठ को काल-कीट जन्म से ही खा रहा है। प्रतिदिन आयु क्षीण होती जा रही है। इस प्रकार जरावस्था से जीर्ण करके शरीर को मृत्यु द्वारा नष्ट कर देगा।

काल गिरासे जीव को, पल पल श्वासैं श्वास।
पग पग मांहीं दिन घड़ी, दादू लखे न तास॥ १४॥

प्रतिदिन, प्रति घडी, पद-पद पर तथा प्रति पल और प्रति श्वास मे काल प्राणो को खा रहा है किन्तु प्राणी उसे देखता भी नही, यह उसका प्रमाद है।

पग[1] पलक की सुधि नहीं, श्वास शब्द क्या होइ।
कर मुख मांहीं मेल्हतां, दादू लखै न कोइ॥ १५॥

पैर उठाते-रखते, चौथाई पल या पलक खोलते-मीचते, श्वास आते-जाते, शब्द बोलते और हाथ से ग्रास मुख मे रखते समय भी क्या हो जाय, यह जीव को ज्ञात नही है। काल की गति को तो कोई भी नही जानता। ('पाव'[1] पाठान्तर है। पाव=पग, चौथाई।)

दादू काया कारवी[1], देखत ही चल जाइ।
जब लग श्वास शरीर में, राम नाम ल्यौ लाइ॥ १६॥

यह काया सराय[1] के समान है। देखते-देखते ही इसे छोडकर श्वास पथिक चला जायगा। अत जब तक शरीर मे श्वास है, तब तक तो राम-नाम मे वृत्ति लगाकर अपना कल्याण कर ले।

दादू काया कारवीं[1], मोहि भरोसा नांहिं।
आसन कुंजर शिर छत्र, विनश जाहि क्षण मांहि॥ १७॥

यह काया मुसाफिरखाने[1] के समान है, इसमे स्थायी रूप से रहने का हमे भरोसा नहीं है। जो हाथी पर बैठते है और जिनके शिर पर छत्र रहता है, उनकी भी काया क्षण भर मे छूटकर नष्ट हो जाती है। कोई सैन्य-बल रक्षा नही कर सकता।

दादू काया कारवी[1], पड़त न लागे बार[2]।
बोलणहारा महल मे, सो भी चालणहार॥ १८॥

यह काया यात्री-घर[1] के समान है, इसे पडते देर[2] न लगेगी और इसके हृदय-महल मे बोलने वाला जीव रूप यात्री है, वह भी जाने वाला ही है।

दादू काया कारवीं[1], कदे न चाले संग।
कोटि वर्ष जे जीवना, तऊ होइला भंग॥ १९॥

यह काया पथिक-विश्राम स्थान[1] के समान है, कभी भी जीव-पथिक के साथ नही चल सकेगी। यदि इसमे कोटि वर्ष जीवन धारण करके रहे, तो भी इसका संग तो छूटेगा ही।

कहतां, सुनतां, देखतां, लेतां, देतां प्राण।
दादू सो कतहूँ गया, माटी धरी मसाण॥ २०॥

जो कहता था, सुनता था, देखता था, लेता था, देता था, वह प्राणधारी जीवात्मा कहा गया ? पता नही, अब तो केवल मिट्टी श्मशान मे रक्खी है।

सींगी नाद न बाज ही, कत गये सो जोगी।
दादू रहते मढी में, करते रस भोगी॥ २१॥

शरीर रूप कुटिया मे रह कर सब रसो का उपभोग करते थे, वे जीवरूप योगी कहॉ गये ? आज उनका श्वास-प्रश्वास रूप सीगी नाद नही बज रहा है।

प्रसग कथा-आमेर मे महाराज के समीप की पहाडी पर एक नाथ योगी प्रात· सीगी बजाया करता था। एक दिन नही बजी तब महाराज ने २१ वी साखी से उसकी मृत्यु सूचित की थी।

दादू जियरा जायगा, यहु तन माटी होइ।
जे उपज्या सो विनश है, अमर नहीं कलि कोइ॥ २२॥

सूक्ष्म-शरीर रूप जीव चला जायगा और स्थूल-शरीर मिट्टी हो जायगा। जो उत्पन्न हुआ है, वह नष्ट होगा, कलियुग मे अमर कोई नही रहेगा।

दादू देही[1] देखतां, सब किसही की जाइ।
जब लग श्वास शरीर में, गोविन्द के गुण गाइ॥ २३॥

देखते-देखते स्थूल-शरीर को छोडकर सभी का जीवात्मा[1] जायगा। अत. जब तक शरीर मे श्वास है, तब तक गोविन्द का गुण-गान करके अपना कल्याण करो।

दादू देही[1] पाहुणी, हंस बटाऊ मांहिं।
का जाणूं कब चालसी, मोहि भरोसा नांहिं॥ २४॥

स्थूल-देह को धारण करने वाला सूक्ष्म-शरीर रूप देही अतिथि है और इसमे रहने वाला जीव रूप हंस भी पथिक है। हम नही जानते कि यह कब चला जाये। हमे इसके रहने का भरोसा नही है।

दादू सब को[1] पाहुणा, दिवस चार संसार।
अवसर-अवसर सब चले, हम भी इहै विचार॥ २५॥

इस ससार मे सभी कोई[1] चार दिन के अतिथि है, समय-समय पर सब चले जा रहे है। हम भी इसी विचार मे है कि हमे भी चलना होगा। अत इस अमूल्य जीवन-समय को भक्ति मे लगाओ।

भय मय-पंथ विषमता

सबको बैठे पंथ शिर, रहे बटाऊ होइ।
जे आये ते जाहिंगे, इस मारग सब कोइ॥ २६॥

२६-३१ मे भय रूप मार्ग की कठिनता दिखा रहे है—सभी कोई श्वास क्षीण होना रूप मार्ग के ऊपर बैठे है और पथिक होकर ही रह रहे है। आयु समाप्त होते ही जो जन्म कर आये है, वे सभी मृत्यु के मार्ग से अवश्य जायेगे।

बेग बटाऊ पथ शिर, अब विलब न कीजे ।
दादू बैठा क्या करे, राम जप लीजे ॥ २७ ॥

हे पथिक ! तू जीवन-मार्ग पर चल रहा है अर्थात् पल-पल मृत्यु के समीप जा रहा है, शीघ्रता कर, अब देर मत कर, व्यर्थ बैठा-बैठा क्या कर रहा है ? राम-नाम का चिन्तन करके अपने स्वरूप ब्रह्म को प्राप्त कर ले, जिससे इस मार्ग के कष्ट से बच जाय और तेरा जीवन सफल हो जाय।

संझ्या चले उतावला, बटाऊ वन खँड मांहि ।
बरियाँ[1] नांही ढील की, दादू बेगि घर जाहि ॥ २८ ॥

जैसे सायकाल के समय पथिक वन खड के मार्ग से शीघ्र ही निकल कर घर जाता है, देर नही करता, वैसे ही अब मेरी आयु का अन्तिम समय है, यह देर करने का समय[1] नही है, शीघ्र राम-भजन द्वारा अपने ब्रह्म रूप घर को जाना चाहिए।

दादू करह[1] पलाण[2] कर, को चेतन चढ जाइ ।
मिल साहिब दिन देखतां, सांझ पड़ै जनि आइ ॥ २९ ॥

हे साधक रूप पथिक ! अपने साधन मार्ग से युवावस्था रूप दिन को देखते-देखते ही अर्थात् शरीर मे बल रहते-रहते ही परमात्मा को प्राप्त कर ले। कही अति वृद्धावस्था रूप सायकाल न आ पडे। यदि अति वृद्ध हो गया तो फिर कुछ भी न होगा। कोई सावधान साधक ही मन रूप ऊट[1] पर भक्ति-ज्ञानादि रूप जीन[2] कसके तथा उस पर अभेद निष्ठा द्वारा चढ कर देहान्त से पूर्व ही परब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।

पंथ दुहेला दूर घर, सग न साथी कोइ ।
उस मारग हम जाहिगे, दादू क्यों सुख सोइ ॥ ३० ॥

निष्काम भाव से निर्गुण-भक्ति करना रूप मार्ग कठिन है और निर्गुण-ब्रह्म रूप हमारा घर भी माया से परे होने के कारण अति दूर है। उस निर्गुण-साधन रूप मार्ग मे कुटुम्बी आदि सग नहीं रह सकते और धन भी साथ नही देता। उसी मार्ग से हम परमात्मा के पास जायेगे। अत सुख से न सो कर, हमे निरतर भक्ति-साधन करना चाहिए।

लंघण[1] के लकु[2] घणा[3], कपर[4] चाट[5] डीन्ह[6] ।
अल्लह[7] पाँधी[8] पंध[9] में, बिहंदा[10] आहीन[11] ॥ ३१ ॥

ससार-सागर पार कर ईश्वर[7] के पास जाने-वाले पथिक[8] ऐसे पथ[9] मे खडे[10] है[11], जिसमे काम-क्रोधादिक बहुत[3]-सी चौड़ी घाटियाँ[2] आती है और विषयाशा रूप नदी का तट[4], तृष्णा[5] रूप उत्ताल तरगो से भय दे-रहा[6] है।

काल चेतावनी

दादू हँसता रोता पाहुणा[1], काहू छाड न जाइ ।
काल खडा शिर ऊपरै, आवणहार आइ ॥ ३२ ॥

३२-४३ मे काल की चेतावनी दे रहे है—जब पति अपनी पत्नी को लेने सुसराल आता है तब उसके साथ वह हँसती हुई जाय वा रोती हुई, वह पत्नी को किसी प्रकार भी छोडकर नही जाता, ले ही जाता है। वैसे ही आने वाला काल आकर शिर पर खडा है, ले ही जायेगा।

दादू जोरा[1] वैरी काल है, सो जीव न जानै ।
सब जग सूता नींदडी, इस तानै बानै ॥ ३३ ॥

जो अपना प्रबल[1] शत्रु है उस काल को जीव नही जानते। इस सासारिक लेन-देन व्यवहार रूप ताने-बाने मे लगकर सब जगत् के जीव मोह-निद्रा मे सोये पडे है।

दादू करणी काल की, सब जग परलै होइ ।
राम विमुख सब मर गयै, चेत न देखै कोइ ॥ ३४ ॥

पूर्व काल मे राम से विमुख सभी मर कर ससार चक्कर मे ही गये है और वर्तमान मे भी काल के मुख मे जाने योग्य कर्त्तव्य करके सब जगत् के प्राणी नष्ट हो रहे है। कोई भी सावधान होकर कल्याण-मार्ग की ओर नही देखता।

साहिब को सुमिरै नहीं, बहुत उठावै भार ।
दादू करणी काल की, सब परलै संसार ॥ ३५ ॥

नाना कुकर्म करके उनके फल रूप पाप का बोझा तो शिर पर उठाते हैं किन्तु भगवान् का स्मरण नही करते। इस प्रकार काल के मुख मे जाने योग्य कर्त्तव्य करके ससार के सब प्राणी नष्ट हो रहे है।

सूता काल जगाइ कर, सब पैसैं मुख मांहिं ।
दादू अचरज देखिया, कोई चेतै नांहिं ॥ ३६ ॥

जैसे सुप्त सिह को जगाने वाला उसी के मुख मे जाता है, वैसे ही सब प्राणी अपने कामक्रोधादि से पूर्ण कार्यों द्वारा प्रसुप्त काल को जगाकर उसके मुख मे जाते है। यह बडा आश्चर्य है—सब को काल के मुख मे जाते देख कर भी कोई सावधान नही होता।

सब जीव विसाहैं[1] काल को, कर कर कोटि उपाइ ।
साहिब को समझैं नहीं, यों परलै ह्वै जाइ ॥ ३७ ॥

सब जीव नाना प्रकार के सकाम कर्म रूप कोटि उपाय करके काल को ही मोल[1] लेते है, निष्काम भक्ति-ज्ञानादि द्वारा परब्रह्म को अद्वैत रूप से नहीं समझते, इसीलिए इस प्रकार नष्ट होते है।

दादू कारण काल के, सकल सँवारै आप ।
मीच बिसाहै[1] मरण को, दादू शोक संताप ॥ ३८ ॥

काल के मुख मे पहुँचाने के हेतु कामक्रोधादि सपूर्ण आसुरी गुणो को प्राणी स्वय ही अपने हृदय मे सजाता है। इस प्रकार मरने के लिए मृत्यु को मोल[1] लेकर शोक-सताप करता है।

दादू अमृत छाड कर, विषय हलाहल खाइ ।
जीव विसाहै काल को, मूढा मर मर जाइ ॥ ३९ ॥

मूर्ख प्राणी भगवद्-भजनामृत को छोडकर विषय रूप तीव्र विष खाते है। इस प्रकार अपने हाथो ही मृत्यु को मोल ले के मर-मर कर अन्य शरीरो मे जाते है।

निर्मल नाम विसार कर, दादू जीव जजाल ।
नही तहा तैं कर लिया, मनसा माहीं काल ॥ ४० ॥

जीव ने निर्गुण परमात्मा का निर्मल नाम भूल कर जिस आत्मा मे प्रपच नहीं था, उसी की सत्ता से बुद्धि मे आरोप करके काल को खड़ा कर लिया है।

सब जग छेली काल कसाई, कर्द लिये कँठ काटै ।
पच तत्त्व की पंच पँसुरी, खड-खंड कर बाँटै ॥ ४१ ॥

सब जगत् के प्राणी बकरी है, काल कसाई कर्मफल छुरी रात्रि दिन हाथो मे लेकर आयु-रूपी कठ काट रहा है और पच तत्त्वो से बनी हुई पच ज्ञानेन्द्रिय रूप पसुलियो को खड-खड करके अर्थात् उनकी वृत्ति छिन्न-भिन्न करके विषय रूप ग्राहको को वितरण करता है।

काल झाल में जग जलै, भाज न निकसै कोइ ।
दादू शरणै साच के, अभय अमर पद होइ ॥ ४२ ॥

कालाग्नि की ज्वाला मे ससार के प्राणी जल रहे है, फिर भी भगवद्-भजन रूप दौड़ लगाकर कोई भी नही निकलता। यदि कोई सत्य परब्रह्म की शरण चला जाय, तब तो निर्भय होकर अमर पद को प्राप्त हो जाता है। फिर उस पर काल का बल नही चलता।

सब जग सूता नींद भर, जागै नाहीं कोइ ।
आगे पीछे देखिये, प्रत्यक्ष परलै होइ ॥ ४३ ॥

जगत् के सब अज्ञानी प्राणी पूर्ण रूप से मोह-निद्रा मे सो रहे है, कोई भी तो ज्ञान-जाग्रत मे नही आता। इसी कारण देखिये, प्रत्यक्ष ही आगे पीछे सब नष्ट हो रहे है।

ये सज्जन दुर्जन भये, अत काल की बार ।
दादू इन मे को नहीं, विपति बटावनहार ॥ ४४ ॥

४४-४५ मे कुटुम्बियो मे होने वाले आसक्ति रूप मोह से सचेत कर रहे है—जिन मे तुम्हारी आसक्ति है वे कुटुम्बी रूप सज्जन मृत्यु के समय कल्याणार्थ धन खर्च मे बाधक होने से तथा निर्दयता पूर्वक दाह करने से सभी के दुर्जन होते रहे है। इनमे विपत्ति बटाने वाला कोई भी नही है। स्वय की इन्द्रियाँ भी साथ नही देती। अत इनके मोह को छोड़कर भगवद्-भजन करो।

सगी सज्जन आपणा, साथी सिरजनहार ।
दादू दूजा को नहीं, इहिँ कलि इहिँ ससार ॥ ४५ ॥

सदा सग रह कर साथ देने वाला अपना मित्र एक परमात्मा ही है, उसको छोड कर ससार मे तथा विशेष करके इस कलियुग मे तो कोई भी नहीं है।

काल चेतावनी

ये दिन बीते चल गये, वे दिन आये धाइ ।
राम नाम बिन जीव को, काल गरासै जाइ ॥ ४६ ॥

४६-४९ मे काल से सावधान कर रहे है—ये बाल्य-युवावस्था के दिन चले गये है और दौडकर वे मृत्यु दिन आ गये है । अब राम-नाम के चिन्तन बिना ही जीव के शरीर को काल खाकर चला जायगा ।

जे उपज्या सो विनश है, जे दीसै सो जाइ ।
दादू निर्गुण राम जप, निश्चल चित्त लगाइ ॥ ४७ ॥

जो उत्पन्न हुआ है वह नष्ट होगा, जो दीखता है, वह चला जायेगा। अत चित्त को स्थिर करके निर्गुण राम के नाम-जप मे लगा।

जे उपज्या सो विनश है, कोई थिर न रहाइ ।
दादू बारी आपणी, जे दीसै सो जाइ ॥ ४८ ॥

जो उत्पन्न हुआ है वह नष्ट होगा, विनाशी पदार्थ कोई भी स्थिर नही रहता। जो दीखते है, वे सब अपनी-अपनी बारी से चले जायेगे।

दादू सब जग मर मर जात है, अमर उपावणहार ।
रहता रमता राम है, बहता सब संसार ॥ ४९ ॥

सब जगत् के प्राणी मर-मर कर अन्य शरीरो मे जा रहे है । अमर तो केवल ससार को उत्पन्न करने वाला परमात्मा ही है। अत यह सब ससार चलने वाला है और इस मे व्यापक रूप से रमने वाला राम ही स्थिर रहता है।

सजीवन

दादू कोई थिर नहीं, यहु सब आवै जाइ ।
अमर पुरुष आपै रहै, कै साधू ल्यौ लाइ ॥ ५० ॥

न मरने वाले सजीवनो का परिचय दे रहे है—यह सभी मायिक प्रपच उत्पत्ति नाश वाला है, इसमे कोई भी स्थिर नही है। अमर स्वय पुरुषोत्तम भगवान् ही रहते है वा उनमे वृत्ति लगाकर उन्हे प्राप्त करके सत अमर हो जाते है।

काल चेतावनी

यहु जग जाता देखकर, दादू करी पुकार ।
घडी महूरत चालना, राखै सिरजनहार ॥ ५१ ॥

५१-५२ मे काल से सावधान कर रहे है—सब जगत् के प्राणी काल के मुख मे जा रहे है, यह देखकर सतो ने उच्च स्वर से कहा है-भाइयो ! घडी वा दो घडी आगे-पीछे सबको चलना होगा, यदि रक्षा चाहते हो तो रक्षक परमात्मा ही है। उनका भजन करने से वे रक्षा कर लेगे।

दादू विषय सुख मांहीं खेलता, काल पहुँच्या आइ ।
उपजै विनशै देखतां, यहु जग यों ही जाइ ॥ ५२ ॥

उत्पन्न होकर विषय सुखार्थ क्रीडा करते ही काल आ पहुँचता है और देखते-देखते ही प्राणी नष्ट हो जाता है। यह जगत् इसी प्रकार काल के मुख मे जा रहा है।

राम नाम बिन जीव जे, केते मुये अकाल।
मीच बिना जे मरत है, तातै दादू साल ॥ ५३ ॥

रामनाम चिन्तन बिना अहकार के कारण मृत्यु का समय न आने से पहले कितने ही जीव बिना ही मौत मर गये है। अर्थात् राम की भक्ति और ज्ञान प्राप्ति बिना जीव मरे हुए के समान ही है, फिर भी वे जीने का उपाय नही करते, इसी कारण दु ख होता है।

कठोरता

सर्प सिंह हस्ती घणां, राक्षस भूत प्रेत।
तिस वन मे दादू पड्या, चेतै नहीं अचेत ॥ ५४ ॥

५४-५५ मे जीव की कठोरता दिखा रहे है—जिस शरीर रूपी वन मे सशय-सर्प, क्रोध-सिह, काम-हस्ती, मन-राक्षस, पचज्ञानेन्द्रिय-भूत, त्रिगुण-प्रेत आदि बहुत है, हे जीव! उसमे तू आ पडा है। अत हे असावधान प्राणी! इससे पार होने के लिए राम-भजन द्वारा सावधान क्यो नहीं होता ? तू बड़ा कठोर है, जो ऐसे कष्ट सहन कर रहा है।

पूत पिता तैं बीछुट्या, भूल पड्या किस ठौर ।
मरै नहीं उर फाट कर, दादू बडा कठोर ॥ ५५ ॥

जीव रूप पुत्र परमात्मा-पिता से अविद्या के द्वारा बिछुड़ गया है और विषय-जन्य सुखो मे पिता को भूलकर कैसे दुख-मय ससार मे भटक रहा है। परमात्मा के वियोगजन्य दु ख से इसका अहकार रूप हृदय फटकर यह मरता भी नहीं है, यह बड़ा निर्मम व कठोर है।

काल चेतावनी

जे दिन जाइ सो बहुरि न आवै, आयु घटे तन छीजै ।
अंत काल दिन आइ पहुँता, दादू ढील न कीजै ॥ ५६ ॥

५६-६७ मे काल से सावधान कर रहे है—हे प्राणी! तेरी आयु तथा शरीर प्रति क्षण क्षीण हो रहे है, जो दिन जाता है, वह पुन नहीं आता और मृत्यु का दिन भी समीप आ पहुँचा है। अब-राम भजन कर जीवन को सफल बना ले, इसमे ढील मत कर।

दादू अवसर चल गया, बरियाँ[1] गई बिहाइ।
कर छिटके कहँ पाइये, जन्म अमोलक जाइ ॥ ५७ ॥

आयु का बहुत-सा समय[1] व्यतीत हो गया है और यौवनकाल व स्वस्थ जीवन के अच्छे-अच्छे अवसर भी चले गये है। अब तो सावधान हो। यह तेरा शेष अमूल्य जन्म भी व्यर्थ जा रहा है। यदि राम भजन बिना हाथ से चला गया तो ऐसा जन्म चौरासी मे कहा मिलेगा ?

दादू गाफिल है रह्या, गहिला हुआ गँवार ।
सो दिन चित्त न आवही, सोवै पॉव पसार ॥ ५८ ॥

हे मूर्ख ! तू विषयो से उन्मत होकर अचेत हो रहा है, तुझे मृत्यु का वह दिन याद नही आता, जिस दिन पैर पसार कर सदा के लिये सोयेगा।

दादू काल हमारा कर गहै, दिन दिन खैंचत जाइ ।
अजहुँ जीव जागै नही, सोवत गई बिहाइ ॥ ५९ ॥

काल सब जीवो के आयु-हाथ को पकड कर प्रतिदिन अपनी ओर खैचता जा रहा है। हे जीव ! मोह निद्रा मे सोते-सोते सब आयु नष्ट हो गई, अब भी तू ज्ञान करके सचेत नही होता।

सूता आवै सूता जाइ, सूता खेलै सूता खाइ ।
सूता लेवै सूता देवै, दादू सूता जाइ ॥ ६० ॥

ससारी प्राणी अज्ञान निद्रा मे प्रसुप्त ही जन्मता है, अज्ञानावस्था मे आता जाता है, खेलता-कूदता है, खाता है, लेता है, देता है, और अन्त मे मर कर अन्य शरीर मे जाता है।

दादू देखत ही भया, श्याम वर्ण तैं सेत[1] ।
तन मन यौवन सब गया, अजहुँ न हरि सों हेत ॥ ६१ ॥

मन के अनेक मनोरथ, शरीर की सुन्दरता और यौवन सब नष्ट हो गये तथा देखते-देखते ही काले केश भी श्वेत[1] हो गये। किन्तु हे प्राणी ! अब भी तू भगवान् से प्रेम नही करता, यह तेरा दुर्भाग्य है।

दादू झूठे के घर देख कर, झूठे पूछै जाइ ।
झूठे झूठा बोलते, रहै मसाणों जाइ ॥ ६२ ॥

मिथ्या-व्यवहार मे सलग्न मानव के घर पर मिथ्या प्रपच की अधिकता देखकर अन्य मानव जाते है और मिथ्या-व्यवहार की ही बाते पूछते है तथा मिथ्या-व्यवहार मे रत मानव, मिथ्या व्यवहार की बाते बोलते है। इस प्रकार मिथ्या-व्यवहार करते-करते मर कर श्मशान मे चले जाते है।

दादू प्राण पयाणा कर गया, माटी धरी मसाण ।
जालणहारे देखकर, चेतै नहीं अजाण ॥ ६३ ॥

प्राण तो प्रस्थान कर गये है और यह शव श्मशान मे पडा है। ये जलाने वाले भी कितने अनजान है, जो अपनी भावी गति देख करके भी हरि भजन के लिए सावधान नही होते।

केई जाले केई जालिये, केई जालन जांहिं ।
केई जालन की करैं, दादू जीवन नांहिं ॥ ६४ ॥

कितने ही तो जला दिये है, कितने ही को जला रहे है, कितने ही को जलाने जा रहे है और कितने ही को जलाने की तैयारी कर रहे है। अत ससार मे सदा जीवित रहना असभव है।

प्राणी बाहर के शत्रुओ से निर्भय रह कर जीवित रहने के लिए सुदृढ़ दुर्ग बनाता है, किन्तु शरीर के भीतर जो काम-क्रोधादि रूप काल है, उन्हे वह शत्रु रूप मे समझता ही नहीं।

चित्त कपटी

दादू साचे मत[1] साहिब मिलै, कपट मिलेगा काल[2] ।
साच परम पद पाइये, कपट काया में साल[3] ॥ ७८ ॥

चित्त कपटी को चेतावनी दे रहे है—निष्कपट भाव से सच्चे सिद्धान्त[1] का आश्रय लेकर साधन करने से सत्य परम पद स्वरूप परब्रह्म प्राप्त होते है और प्रतिष्ठादि के लिए कपट पूर्ण साधन करने से जीवन काल मे पोल न खुल जाय, ऐसी चिन्ता रूप दु ख[3] मन मे बना रहता है और अन्त मे यमदूत[2] पकड़ कर ले जाते है।

काल चेतावनी

मन ही मांहीं मीच है, सारों के शिर साल।
जे कुछ व्यापै राम बिन, दादू सोई काल ॥ ७९ ॥

७९-८९ मे काल से सावधान कर रहे है—जिसका सबके शिर पर दु ख बना रहता है, वह मृत्यु मन मे ही है। क्या है ? उत्तर-राम भजन बिना जो कुछ भी गुण-विकार मन मे रहते है, वे ही काल रूप है।

दादू जेती लहर विकार की, काल कँवल[1] में सोइ।
प्रेम लहर सो पीव की, भिन्न-भिन्न यों होइ ॥ ८० ॥

मन मे जितनी विकारो की उमग उठती है, वे सब काल का ग्रास[1] बनाने मे सहायक होती है ओर जितनी भगवत् प्रेम की लहरे उठती है वे भगवत् प्राप्ति मे सहायक होती है। इस प्रकार मन की भिन्न-भिन्न उमगो से ही भिन्न-भिन्न फल होता है।

दादू काल रूप माहीं बसै, कोई न जानै ताहि।
यह कूडी करणी काल है, सब काहू को खाइ ॥ ८१ ॥

काल का स्वरूप मन मे ही रहता है किन्तु अज्ञानी कोई भी उसे नही जानता। भगवदर्थ-कर्मों को छोडकर अन्य कर्म तथा यह जो कुकर्मों के करने की भावना है, वही काल है और सभी भगवद्-विमुखो को खाता रहता है।

दादू विष अमृत घट में बसै, दोन्यो एकै ठाँव।
माया विषय विकार सब, अमृत हरि का नाँव ॥ ८२ ॥

विष और अमृत दोनो अन्त करण रूप एक स्थान मे ही रहते है। सपूर्ण मायिक विषय-विकार विष है और हरि का नाम अमृत है।

दादू कहा मुहम्मद मीर[1] था, सब नबियो[2] शिरताज।
सो भी मर माटी हुआ, अमर अलह का राज ॥ ८३ ॥

जो सपूर्ण ईश्वर-दूतो[2] मे शिरोमणि सरदार[1] मुहम्मद थे, वे अब कहाँ है ? वे भी मर गये, उनका भी शरीर मिट्टी मे मिल गया। अमर तो एक ईश्वर का राज्य ही है।

केते मर माटी भये, बहुत बडे बलवंत ।
दादू केते ह्वै गये, दाना देव अनंत ॥ ८४ ॥

कितने ही बहुत बडे बलवान् मानव, कितने ही दानव और अनन्त देवता हो गये, किन्तु सभी मर कर मिट्टी हो गये।

दादू धरती करते एक डग[1], दरिया करते फाल[2]।
हाकों पर्वत फाडते, सो भी खाये काल ॥ ८५ ॥

जिस (वामन) ने पृथ्वी को एक कदम[1] मे नाप लिया, जिस (हनुमान) ने समुद्र को एक फलाग[2] मे लाघ लिया और जिस (रावण) ने एक गर्जना से पर्वत को भी फाड डाला, उन सबको भी काल खा गया।

दादू सब जग कँपै काल तैं, ब्रह्मा विष्णु महेश ।
सुर नर मुनिजन लोक सब, स्वर्ग रसातल शेष ॥ ८६ ॥

स्वर्ग, मृत्यु, रसातल (पृथ्वी के नीचे के ७ लोको मे से ६ठा लोक) आदि सब लोको के देवता, नर, मुनिजन, ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, शेषजी आदि सभी काल से काँपते है।

चंद, सूर, धर, पवन, जल, ब्रह्मांड खंड प्रवेश ।
सो काल डरै करतार तैं, जै जै तुम आदेश ॥ ८७ ॥

ब्रह्माड के सभी खडो मे काल प्रविष्ट होकर चन्द्रमा, सूर्य, पृथ्वी, वायु, जल आदि सब को नष्ट करता है। वह काल परमेश्वर से डरता है। हे परमेश्वर! आप की जय हो, जय हो, हम आपको प्रणाम करते है। (यह साखी वाणी के मध्य मे है। अत मध्य मगलाचरण रूप है।)

पवना पानी धरती अंबर, विनशै रवि, शशि, तारा ।
पंच तत्त्व सब माया विनशै, मानुष कहा विचारा ॥ ८८ ॥

मिथ्या माया से रचित-पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, ये पाचो तत्त्व तथा इन से रचित सूर्य, चन्द्रमा, तारा आदि सभी मायिक प्रपच नष्ट होगा, तब बेचारे मनुष्य शरीर की तो बात ही क्या है ? यह तो क्षण भगुर है ही।

दादू विनशैं तेज के, माटी के किस मांहिं ।
अमर उपावणहार है, दूजा कोई नांहिं ॥ ८९ ॥

जब तेजोमय सूर्य, चन्द्रादि देव शरीर भी नष्ट होगे, तब माँस-हड्डी रूप मिट्टी के बने हुये मनुष्यादि शरीर किस गणना मे है ? वे तो अवश्य नष्ट होगे ही। अमर तो एक सृष्टि-कर्ता ईश्वर ही है, अन्य कोई भी नही।

स्वकीय शत्रु-मित्रता

मन ही मांही ह्वै मरै, जीवै मन ही मांहिं ।
साहिब साक्षीभूत है, दादू दूषण नांहिं ॥ ९० ॥

९० मे कहते है, प्राणी अपना आप ही शत्रु तथा मित्र है—मन मे सकाम कर्मों के विचार होते है तब ही कर्म करके जन्मता-मरता है और मन मे निष्कामता होती है तब ज्ञान द्वारा परब्रह्म प्राप्ति रूप प्राप्त होता है। अत परब्रह्म तो साक्षी रूप है, जीव के जन्म-मरणादि का उन्हे कोई दोष नही।

मत्सर=ईर्ष्या

दीसै माणस प्रत्यक्ष काल, ज्यो कर त्यों कर दादू टाल ॥ ९१ ॥

इति काल का अग समाप्त ॥ २५ ॥ सा २१७८ ॥

ईर्ष्यालु, कृतघ्नी मानव से दूर रहने की प्रेरणा कर रहे है—ईर्ष्यालु कृतघ्नी मानव प्रत्यक्ष ही काल रूप दिखाई देता है। अत उसे जैसे-तेसे दूर से ही टाल दो और काल से वचने का उपाय निरजन राम का भजन करो।

इति श्रीदादू गिरार्थ प्रकाशिका काल का अग समाप्त ॥ २५ ॥

अथ सजीवन का अंग २६

काल-अगके अनन्तर सजीवन का विचार करने के लिए "सजीवन का अग" कथन करने मे प्रवृत्त हुये मगल कर रहे है—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत: ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणाम पारंगत. ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक सपूर्ण गुण विकार रूप काल से मुक्त होकर सजीवन ब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरजन राम, सद्गुरु और सर्व सतो को हम अनेक प्रणाम करते है।

दादू जे तू जोगी गुरुमुखी, तो लेना तत्त्व विचार।
गह आयुध गुरु ज्ञान का, काल पुरुष को मार ॥ २ ॥

२-७ से सजीवनता की प्राप्ति आदि का विचार कह रहे है—हे योगी! यदि तू गुरु आज्ञा मे चलने वाला है तो आत्म-तत्त्व के विचार द्वारा गुरु के अभेद-ज्ञान रूप शस्त्र को अन्त करण-रूपी हाथ मे ग्रहण करके काल-पुरुष को मार दे।

नाद बिन्दु सौ घट भरै, सो जोगी जीवै।
दादू काहे को मरै, राम रस पीवै ॥ ३ ॥

योगी जिसका ध्यान करते है ऐसे प्रणव पर रहने वाले अर्ध चन्द्ररूप नाद और उसके ऊपर की बिन्दु के ध्यान से अन्त करण परिपूर्ण रखता है वा "सोऽह रामादि मत्र" रूप नाद के चिन्तन से अन्त करण और ब्रह्मचर्य द्वारा वीर्य से शरीर परिपूर्ण रखता है, वह योगी ब्रह्म को प्राप्त होकर सदा जीवित रहता है। उक्त प्रकार जो रामरस का पान करते है, वे क्यो मरेगे ?

साधू जन की वासना[1], शब्द रहै संसार।
दादू आतम ले मिलै, अमर उपावनहार ॥ ४ ॥

सत अपने आत्मा को ज्ञान द्वारा सासारिक भावनाओ से ऊचे उठा, परमात्मा मे मिलकर

अमर हो जाते है और उनके लोक कल्याणार्थ विचार' उन्ही के शब्दो द्वारा ससार मे रह जाते है।

राम सरीखे ह्वै रहैं, यहु नाहीं उनहार।
दादू साधू अमर हैं, विनशै सब संसार ॥ ५ ॥

यह दृष्टिगोचर शरीर सतो का स्वरूप नही होता, वे तो राम के समान ही होकर रहते है। अत सत अमर है और सारा ससार नष्ट होता है।

जे कोई सेवे राम को, तो राम सरीखा होइ।
दादू नाम कबीर ज्यों, साखी बोलै सोइ ॥ ६ ॥

जो कोई राम की भक्ति करता है, वह राम के समान ही हो जाता है और नामदेव कबीरादि के समान राम सबधी पद बोलने लगता है।

अर्थ न आया, सो गया, आया सो क्यों जाइ।
दादू तन मन जीवतां, आपा ठौर लगाइ ॥ ७ ॥

जिसका जीवन राम-भजन रूप कार्य मे नही लगा, वही काल के मुख मे गया है और जिसका जीवन भजन मे खर्च हो गया, वह काल के मुख मे क्यो जायेगा ? अत जीवितावस्था मे ही तन को ब्रह्म रूप सतो की सेवा मे, मन को ब्रह्म चिन्तन मे और अहकार को 'अहंब्रह्म' रूप स्थान मे लगाकर अमर हो जाओ।

दया विनती

दादू कहै सब रंग तेरे तैं रंगे, तूं ही सब रँग मांहिं।
सब रंग तेरे तैं किये, दूजा कोई नांहिं ॥ ८ ॥

दया तथा सजीवनावस्था प्राप्ति के लिए विनय कर रहे है—हे राम ! यह जो ससार मे विचित्र रचना रूप रग है, वे आपके रचे हुये होने से आपके ही है। आप इन सब मे व्यापक भी है। शास्त्र सत भी यही कहते आये है कि सम्पूर्ण लोक रचना रूप रग आपकी सत्ता से ही रचे जाते है और आप ही इनके अधिष्ठान है, अन्य कोई भी नही है। आप सर्व समर्थ है, अत दया करके हमे मुक्ति रूप सजीवन अवस्था प्रदान करे।

सजीवन

छूटै द्वंद तो लागै बंद, लागै बंद तो अमर कंद।
अमर कंद दादू आनन्द ॥ ९ ॥

९-१४ मे सजीवनता का उपाय कह रहे है—जब काम-क्रोधादिक द्वन्द्व अन्त करण से हटते है, तब सहज समाधि लगती है और सहज समाधि लगती है तब अमरता के मूल आत्म-स्वरूप ब्रह्म की प्राप्ति होती है और ब्रह्म प्राप्त होते ही साधक स्वय आनद स्वरूप ब्रह्म हो जाता है।

प्रश्न— कहँ जम जोरा[1] भंजिये, कहाँ काल को दंड ?
कहाँ मीच को मारिये, कहाँ जरा[2] सत खंड ? ॥१०॥

हे गुरो ! जिस स्थान मे रहने से बलवान् यम की शक्ति[1] नष्ट की जा सकती है, काल को दंड

देने की योग्यता आ जाती है, मृत्यु को मारा जा सकता है और वृद्धावस्था[२] को भी सैकडो खड करके नष्ट किया जा सकता है, वह कहा है ?

उत्तर— **अमर ठौर अविनाशी आसन, तहाँ निरजन लाग रहे।**
दादू जोगी जुग जुग जीवै, काल व्याल सब सहज गये॥ ११॥
षट् चक्र पवना फिरै, छ सहस्र इक बीस।
जोग अमर जम को गिलै, दादू बिसवा बीस॥११क॥

१० के प्रश्न का १४ तक उत्तर दे रहे है—जहा अविनाशी ब्रह्म का आसन है अर्थात् साक्षात्कार होता है, उस निर्विकल्प समाधि अवस्था रूप अमर स्थान मे पहुँचकर निरजन ब्रह्म के साक्षात्कार मे ही लगा रहता है, वह योगी ब्रह्म रूप होकर सदा जीवित रहता है, ऐसे योगी के उक्त कालादि तथा सर्पादि के सभी भय अनायास ही नष्ट हो जाते है।

रोम रोम लै लाइ धुनि, ऐसे सदा अखड।
दादू अविनाशी मिलै, तो जम को दीजे दंड॥ १२॥

नाम चिन्तन मे वृत्ति लगाते-लगाते नाम की ध्वनि रोम-रोम से होने लगती है और वह अखड रूप से सदा ही होती रहती है, तब अविनाशी ब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है। उसी समय यम की शक्ति व्यर्थ करना रूप यम को दड देने का बल, साधक मे आ जाता है।

दादू जरा काल जामण मरण, जहा जहा जिव जाइ।
भक्ति परायण लीन मन, ताको काल न खाइ॥ १३॥

विषय-वासना द्वारा जीव जहा-जहा जाता है, वहा वहा ही जन्म, जरा और मृत्यु रूप काल इसे प्राप्त होता है, किन्तु जिसका मन भगवत्-परायण होकर भक्ति मे लीन रहता है, उसको काल नही खाता।

मरणा भागा मरण तै, दु खै नाठा दु.ख।
दादू भय सौ भय गया, सुखै छूटा सुख॥ १४॥

अहकार नष्ट होने रूप मरने से पुन -पुन मरना मिट जाता है। साधन के दु ख से कामादि रूप सासारिक दु ख नष्ट हो जाते है। ईश्वर का भय हृदय मे रखने से ससार के भय चले जाते है और ब्रह्म-प्राप्ति रूप सुख के प्राप्त होते ही विषय-सुख छूट जाता है।

मुक्ति-अमोक्ष

जीवित मिले सो जीविते, मूये मिल मर जाइ।
दादू दोन्यो देखकर, जहँ जानै तहँ लाइ॥ १५॥

मुक्ति और बन्ध का हेतु बता रहे है—जो सदा जीवित रहने वाले परमात्मा से वृत्ति लगाकर उसी मे मिले है, वे सत ही है और जो विनाशी ससार मे वृत्ति लगाकर उसी मे मिले हुये रहते है, वे मर कर अन्य शरीरो मे जाते है। अत दोनो मे वृत्ति लगाने का परिणाम विचार द्वारा देख कर जिसमे लगाना अच्छा समझो, उसी मे वृत्ति लगाओ।

सजीवन

दादू साधन सब किया, जब उनमन लागा मन।
दादू सुस्थिर आतमा, यों जुग जुग जीवैं जन ॥ १६ ॥

१६-२३ सजीवनता प्राप्ति का विचार कह रहे है—जब मन निर्विकल्प समाधि मे लग जाता है तब जप-तपादि सभी साधन हो चुकते है और आत्मा सदा के लिए ब्रह्म मे अभेद होकर सम्यक् स्थिर हो जाता है। इस प्रकार सतजन ब्रह्म मे मिल कर सदा जीवित रहते है।

रहते[1] सेती लाग रहु, तो अजरावर होइ।
दादू देख विचार कर, जुदा न जीवै कोइ ॥ १७ ॥

हे साधक ! सदा एक रस रहने वाले परब्रह्म मे वृत्ति लगाकर रहे[1], तो तू देवताओ से भी अति श्रेष्ठ परब्रह्म को प्राप्त हो जायेगा। तू स्वय ही विचार करके देख, ब्रह्म से भिन्न रह कर कोई भी सदा जीवित नही रह सकता।

जेती करणी[1] काल की, तेती परिहर प्राण।
दादू आतमराम सौं, जे तूं खरा सुजाण ॥ १८ ॥

जितने सकाम कर्म है वे जन्मादि के हेतु होने से काल की फॉसी मे फॅसाने वाले कार्य[1] है। अत हे प्राणी ! यदि तू सच्चा बुद्धिमान् है तो सबको त्याग कर आत्म-स्वरूप राम मे ही वृत्ति लगा।

विष अमृत घट में बसै, विरला जानै कोइ।
जिन विष खाया ते मुये, अमर अमी सौं होइ ॥ १९ ॥

कामादिक विकार रूप विष और साक्षी राम रूप अमृत दोनो अन्त करण मे रहते है किन्तु इनको मारक और तारक रूप से कोई विरला सत ही जानता है। जिनने विषय-विकारो का चिन्तन किया है, वे मृत्यु को ही प्राप्त हुये है। अमर तो राम-चिन्तन रूप अमृत-पान करने से ही होता है।

दादू सब ही मर रहे, जीवै नांहीं कोइ।
सोई कहिये जीविता, जे कलि अजरावर होइ ॥ २० ॥

सभी काल के मुख मे जाने योग्य सकाम कर्म करके मृत्यु को प्राप्त हो रहे है, सकाम कर्म करने वाला कोई भी परब्रह्म को प्राप्त नही होता। जीवित तो वही कहा जाता है, जो इस कलियुग मे भी देवताओ से अति श्रेष्ठ परब्रह्म को प्राप्त हो कर अजर-अमर हो गया।

दादू तज संसार सब, रहै निराला होइ।
अविनाशी के आसरे, काल न लागै कोइ ॥ २१ ॥

जो सपूर्ण सासारिक प्रपच को त्यागकर तथा सभी गुण विकारो से अलग होकर अविनाशी परब्रह्म के आश्रय रहता है, उसके पीछे काल नही लगता।

जागहु लागहु राम सौ, रैन बिहानी[1] जाइ।
सुमिर सनेही आपणा, दादू काल न खाइ ॥ २२ ॥

हे लोगो ! तुम्हारी आयु-रात्रि व्यतीत[1] होकर मृत्यु का दिन रूप प्रात काल होने वाला है। अत मोह निद्रा से जागकर राम की भक्ति मे लगो। उस अपने सच्चे स्नेही राम का स्मरण करोगे तो तुम्हे काल नही खा सकेगा।

दादू जागहु लागहु राम सौ, छाडहु विषय विकार।
जीवहु पीवहु राम रस, आतम साधन सार ॥ २३ ॥

विषय-विकारो को छोड़ो तथा मोह-निद्रा से जाग कर राम की भक्ति मे लगो और जब तक जीवित रहो, तब तक निरतर राम-भक्ति-रस का पान करते रहो ! आत्म-कल्याण का यही सार साधन है।

स्मरण नाम निस्सशय

मरै तो पावै पीव को, जीवत बचै काल ।
दादू निर्भय नाम ले, दोनो हाथ दयाल ॥ २४ ॥

२४-२५ मे स्मरण की विशेषता बता रहे है—स्मरण करते हुये यदि मृत्यु हो जाती है तो परमात्मा को प्राप्त करता है और जीवित रहता है तो कामादि रूप काल से बचा रहकर सब मे प्रभु को देखता रहता है। अत निर्भय होकर नाम-स्मरण करने से जीवन-मरण रूप दोनो हाथो मे ही दयालु परमात्मा की प्राप्ति है।

दादू मरणे को चल्या, सजीवन के साथ।
दादू लाहा[1] मूल सौ, दोन्यों आये हाथ ॥ २५ ॥

जब साधक स्मरण द्वारा सजीवन ब्रह्म से मिलकर मृत्यु के लिए प्रस्थान करता है तब मनुष्य जीवन रूप मूल और उससे होने वाला भक्ति रूप लाभ[1], दोनो ही उसके हाथ आ जाते है अर्थात् उसका जीवन सार्थक हो जाता है।

करुणा

दादू जाता देखिये, लाहा मूल गमाइ।
साहिब की गति अगम है, सो कुछ लखी न जाइ ॥ २६ ॥

भगवद्-विमुख प्राणियो पर दया दिखा रहे है—सासारिक मानवो का समूह, मनुष्य जीवन रूप मूल तथा उससे होने वाला भक्ति रूप लाभ, दोनो को ही खोकर विषय-विकार रूप पाश मे बँधा हुआ काल के मुख मे जाता दिखाई दे रहा है। अहो ! सबको भ्रम मे डालने वाली भगवान् की माया रूप गति अचिन्त्य है, वह कुछ भी समझ मे नही आती।

सजीवन

साहिब मिलै तो जीविये, नहीं तो जीवै नांहि ।
भावै अनत उपाय कर, दादू मूवो मांहि ॥ २७ ॥

२७-२९ मे सजीवनता का विचार कह रहे है—परब्रह्म प्राप्त हो तब ही नित्य जीवन प्राप्त हो सकता है, नही तो सदा जीवित नही रह सकता। चाहे सकाम कर्म रूप अनन्त उपाय करे तो भी मरनेवालो की गणना मे ही रहेगा।

सजीवनि साधै नहीं, तातैं मर मर जाइ।
दादू पीवै रामरस, सुख में रहै समाइ ॥ २८ ॥

भक्ति रूप सजीवनी विद्या का साधन नही करता, इसीलिए बारबार मर कर अन्य शरीरो मे जाता है और जो राम भक्ति-रस का पान करता है, वह सुख-स्वरूप ब्रह्म मे समाकर ब्रह्म रूप से अचल रहता है।

दिन दिन लहुडे[1] होहिं सब, कहैं मोटा होता जाइ ।
दादू दिन दिन ते बढैं, जे रहैं राम ल्यौ लाइ ॥ २९ ॥

जन्म के दिन से ही सब प्रति दिन छोटे[1] होते जाते है किन्तु ससारी लोग कहते है—बडा होता जा रहा है। हॉ, प्रतिदिन उनकी उन्नति परमार्थ मे अवश्य होती है, जो वृत्ति को राम-भजन मे लगाये रहते है।

मुक्ति, अमोक्ष, जीवन्मुक्ति

दादू जीवित छूटै देह गुण, जीवित मुक्ता होइ ।
जीवित काटे कर्म सब, मुक्ति कहावै सोइ ॥ ३० ॥

३०-४३ मे मुक्ति, बन्धन और जीवन्मुक्ति विषयक विचार कह रहे है—जो जीवितावस्था मे ही स्थूल-सूक्ष्म शरीर के हिसा-कामादि गुणो से छूट कर तथा ज्ञान द्वारा सपूर्ण कर्मों को काट कर निष्काम होता है, उसकी वह अवस्था ही जीवन्मुक्ति कहलाती है।

जीवित ही दुस्तर तिरे, जीवित लंघे पार।
जीवित पाया जगद्गुरु, दादू ज्ञान विचार ॥ ३१ ॥

सत जीवितावस्था मे ही ससार-सरिता की कामादि-गुण रूप दुस्तर तीव्र-धारा को तैरते हुये सरिता को लाघ कर पार गये हैं और जीवितावस्था मे ही ज्ञान-विचार द्वारा जगद्-गुरु परब्रह्म को प्राप्त किया है।

जीवित जगपति को मिलै, जीवित आतमराम ।
जीवित दर्शन देखिये, दादू मन विश्राम ॥ ३२ ॥

जीवितावस्था मे ही जगत्पति राम से जीवात्मा मिलता है और जीवितावस्था मे ही ब्रह्म का साक्षात्कार करने से मन को विश्राम मिलता है।

जीवित पाया प्रेम रस, जीवित पिया अघाइ।
जीवित पाया स्वाद सुख, दादू रहे समाइ ॥ ३३ ॥

सतो ने जीते जी ही राम-प्रेम-रस को प्राप्त किया और तृप्त होकर पान किया तथा जीते जी ही ब्रह्मानद का आस्वादन प्राप्त करके सुख स्वरूप ब्रह्म मे समा कर स्थिर रहे है।

जीवित भागे भरम सब, छूटे कर्म अनेक ।
जीवित मुक्त सद्गति भये, दादू दर्शन एक[1] ॥ ३४ ॥

जीवितावस्था मे ही ज्ञान द्वारा ब्रह्म[1] का साक्षात्कार करने से जिनके सब भ्रम और अनेक सचित कर्म नष्ट हुये है, वे ही जीते जी मुक्त होकर ब्रह्म-प्राप्ति रूप सद्गति को प्राप्त हुये है।

जीवित मेला ना भया, जीवित परस न होइ ।
जीवित जगपति ना मिले, दादू बूडे[1] सोइ ॥ ३५ ॥

जीवितावस्था मे सद्गुरु से मिलाप नही हुआ, अत ज्ञान द्वारा जगत्पति परब्रह्म से नहीं मिल सके, वे ससार-समुद्र के जन्म-मरण रूप प्रवाह मे ही डूब[1] रहे है।

जीवित दुस्तर ना तिरे, जीवित न लघे पार ।
जीवित निर्भय ना भये, दादू ते ससार ॥ ३६ ॥

जीते-जी ही दुस्तर आशा-नदी की तीव्र धार को तैर कर तथा अज्ञानाधकार से पार होकर निर्भय नही हुये, वे ससार मे ही जन्मते-मरते रहते है।

जीवित परकट ना भया, जीवित परिचय नाहि ।
जीवित न पाया पीव को, बूडे भवजल माहि ॥ ३७ ॥

जिनने जीते-जी ही आत्म-ज्ञान प्रकटता द्वारा परब्रह्म को पहचान कर अभेद रूप से प्राप्त नही किया, वे ससार-समुद्र के विषय-जल मे निमग्न होकर जन्म-मरण रूप गोते लगा रहे है।

जीवित पद पाया नहीं, जीवित मिले न जाइ ।
जीवित जे छूटे नहीं, दादू गये विलाइ ॥ ३८ ॥

जो जीते-जी ज्ञानी का पद प्राप्त कर धर्म-बन्धन से मुक्त हो, निर्विकल्प रूप सहजावस्था मे जाकर अभेद रूप से परब्रह्म मे नही मिले, वे चौरासी लक्ष योनियो मे ही विलीन हुये है।

दादू छूटे जीविता, मूवाँ छूटे नांहिं ।
मूवाँ पीछे छूटिये, तो सब आये उस मांहि ॥ ३९ ॥

भव-बन्धन से जीवितावस्था मे ही छूटता है, मरने के पश्चात् नही। यदि मरने के पश्चात् मुक्ति हो जाती हो तब तो मरने पर सभी उस ब्रह्म मे मिल जाने चाहिए, किन्तु ऐसा नही होता।

मूवाँ पीछे मुक्ति बतावै, मूवाँ पीछे मेला ।
मूवाँ पीछे अमर अभय पद, दादू भूले गहिला ॥ ४० ॥

मरने के पश्चात् गयादि तीर्थों मे श्राद्धादि करने से पापो से मुक्त होकर अमर पद के मिलने की बात कहते है, वे विषयो मे उन्मत्त होने के कारण वास्तविक तत्त्व को भूले हुये है।

मूवाँ पीछे वैकुंठ वासा, मूवाँ स्वर्ग पठावै ।
मूवाँ पीछे मुक्ति बतावै, दादू जग बोरावै ॥ ४१ ॥

मरने के पीछे किये गये श्राद्ध, यज्ञ, दानादि धर्म द्वारा वैकुठ, स्वर्ग और मुक्ति प्राप्त कराने

की बात कहते है, वे जगत् के अज्ञानी प्राणियो को बहकाते ही है।

मूवॉ पीछे पद पहुंचावैं, मूवॉ पीछे तारैं।
मूवॉ पीछे सद्‌गति होवै, दादू जीवित मारैं ॥ ४२ ॥

अज्ञानी प्राणी जीते-जी तो अपने पिता को डडो से मारते है और मरने के पीछे श्राद्धादि द्वारा पापो से उद्धार करके श्रेष्ठ पद को पहुचाने का यत्न करते है और पुरोहित से कहते है—हमारे पिता की सद्‌गति हो, वैसा ही कर्म कराइये।

मूवॉ पीछे भक्ति बतावैं, मूवॉ पीछे सेवा।
मूवॉ पीछे संयम राखैं, दादू दोजख देवा ॥ ४३ ॥

मरने के पीछे लोगो को श्राद्धादि पूजन-पाठ द्वारा पिता की भक्ति बताते हुये पिता के कल्याणार्थ द्रव्य खर्च रूप सेवा कराते है और नियत समय तक स्वय भी सयम से रहते है किन्तु जीते-जी पिता की आज्ञानुसार कार्य न करके उनकी सेवा नही की तो मरणोपरान्त उक्त सभी कार्य तुम्हारे पिता के लिए कोई फलदायक नही है। तुम्हे तो तुम्हारे पाप कर्मानुसार नरक-यातना देने वाले ही हैं।

सजीवन

दादू धरती क्या साधन किया, अंबर[1] कौन अभ्यास ?
रवि शशि किस आरंभ तैं ? अमर भये निज दास ॥ ४४ ॥

४४-४६ मे कहते है—भगवत् कृपा से ही अमरता प्राप्त होती है—पृथ्वी ने कौन तपादि साधन किये हैं ? आकाश[1] ने कौन-सा योगाभ्यास किया है ? और सूर्य चन्द्रमा ने किस यज्ञ का अनुष्ठान किया है ? जिससे अमर हुये है। उत्तर-भगवान् के निजी भक्त होने से भगवत्-कृपा द्वारा ही अमर हुये है।

साहिब मारे ते मुये, कोई जीवै नांहि।
साहिब राखै ते रहे, दादू निज घर मांहिं ॥ ४५ ॥

सकाम कर्मों में प्रवृत्त प्राणियो को उनके प्रारब्ध कर्म की समाप्ति पर ईश्वर इच्छानुसार काल ने मारे है, वे ही मृत्यु को प्राप्त हुये है तथा आगे भी उनमे कोई भी जीवित न रहेगा और निष्काम भक्ति करने वालो की गुण-विकारादि से भगवान् ने रक्षा की है, वे मृत्यु से बच कर परब्रह्म रूप निज घर मे रहते है।

जे जन राखे रामजी, अपने अंग लगाइ।
दादू कुछ व्यापै नहीं, जे कोटि काल झख जाइ ॥ ४६ ॥

इति सजीवन का अग समाप्त ॥ २६ ॥ सा २२२४ ॥

भक्ति से प्रसन्न होकर जिन भक्तो की रामजी ने अपने वास्तविक स्वरूप मे लगा कर रक्षा की है, उनको व्यथित करने के लिए यदि कोटि काल भी परिश्रम करे तो भी उन्हे कुछ भी व्यथा न होगी, उनका परिश्रम व्यर्थ ही जायेगा।

इति श्रीदादू गिरार्थ प्रकाशिका सजीवन का अग समाप्त. ॥ २६ ॥

अथ पारिख का अंग २७

सजीवन-अग के अनन्तर परीक्षा सम्बन्धी विचार करने के लिए "पारिख का अग" कहने मे प्रवृत्त हुये मगल कर रहे है—

दादू नमो नमो निरजन, नमस्कार गुरुदेवत. ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणाम पारगत ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक प्रमाद से पार होकर यथार्थ परीक्षा द्वारा परब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरजन राम, सद्गुरु और सर्व सतो को हम अनेक प्रणाम करते है।

साधुत्व परीक्षा

दादू मन चित आतम[1] देखिये, लागा है किस ठौर ?
जहँ लागा तैसा जानिये, का देखै दादू और ॥ २ ॥

२-१० मे साधुत्व की परीक्षा विषयक विचार कर रहे है—बुद्धि[1] किसके विचार मे, चित्त किसके चिन्तन मे, मन किसके अनुराग मे लगा है, यही देखना चाहिए। यदि ईश्वर के विचारादि मे लगे है तब तो साधु, और विषयो के विचारादि मे लगे है तब असाधु, जानना चाहिए। अन्य भेषादि बाह्य चिन्हो को क्या देखते हो ? उनके द्वारा वास्तविक परीक्षा नही होगी।

दादू साधू परखिये, अतर आतम[1] देख।
मन मांही माया रहै, कै आपै आप अलेख ॥ ३ ॥

सत की परीक्षा आन्तर अन्त करण[1] को देख करके ही करनी चाहिए। मन मे मायिक विचार है या अपने आत्म-स्वरूप असीम ब्रह्म का विचार है ? यदि मन मे ब्रह्म-विचार हो तो सत समझना चाहिए।

दादू मन की देख कर, पीछे धरिये नाव।
अंतरगति की जे लखै, तिनकी मै बलि जाव ॥ ४ ॥

मन की शुभाशुभ भावनाओ को देखने के पश्चात् ही भावनानुसार साधु, असाधु नाम रखना चाहिए। जो मन की आन्तर वृत्ति रूप गति को देखते है, उनकी हम बलिहारी जाते है।

दादू जे नाहीं सो सब कहै, है सो कहै न कोइ।
खोटा खरा परखिये, तब ज्यो था त्यो ही होइ ॥ ५ ॥

भेषादि बाह्य चिन्ह साधुता के नही है, उनसे युक्त को सब साधु कहते है और जो भेषादि बाह्य चिन्हो से रहित हृदय से साधु है, कोई भी अज्ञानी उसे साधु नही कहता। किन्तु जब परीक्षको के द्वारा परीक्षा की जाती है, तब असाधु और साधु जो जैसा था, वैसा ही सिद्ध होता है।

घट की भान[1] अनीति सब, मन की मेट उपाध ।
दादू परिहर पच की, राम कहै ते साध ॥ ६ ॥

हिसादि शरीर की अनीति, क्रोधादिक मन की उपाधि और पच-ज्ञानेन्द्रियो की विषयार्थ चपलता को मिटा' कर राम का चिन्तन करते है, वे ही सत है।

अर्थ आया तब जानिये, जब अनर्थ छूटे।
दादू भॉडा भरम का, गिर चौडे फूटे ॥ ७ ॥

जब सत्सग द्वारा सपूर्ण कुकर्म रूप अनर्थ छूट जायॅ तथा देहाध्यास रूप भ्रम का बर्तन अन्त करण से गिर कर फूट जाय अर्थात् "मै देह हूँ" ऐसी अन्त करण की वृत्ति नष्ट हो जाय और ब्रह्माकार वृत्ति बनी रहे, तभी जानना चाहिए कि इसे वास्तविक अर्थ समझ मे आ गया है।

दादू दूजा कहबे को रह्या, अंतर डारा धोइ।
ऊपर की ये सब कहैं, माहिं न देखै कोइ ॥ ८ ॥

वास्तव मे, सत कहने मात्र के ही परब्रह्म से भिन्न है, कारण, अन्त करण के भेद रूप धब्बे को तो वे ज्ञान-जल द्वारा धो डालते है फिर उनका परब्रह्म से भेद कैसे रहेगा ? किन्तु शरीर के निर्वाहार्थ "मै, तू" रूप उनकी ऊपर की प्रवृत्ति को देखकर ससारीजन उन्हे भेद-भाव वाले बतलाते है, उनके भीतर की अद्वैत निष्ठा को कोई भी अज्ञानी नही देख पाता।

दादू जैसे मांही जीव रहै, तैसी आवै बास।
मुख बोलै तब जानिये, अंतर का परकास ॥ ९ ॥

जैसी भावना अन्त करण मे होती है, वैसी ही उसकी वाणी रूप गध निकलती है। अत मुख से बोलते ही भीतर की भावना प्रकट हो जाती हैं, तब सब जान जाते है कि यह सत है वा असत।

दादू ऊपर देख कर, सब को राखै नांव।
अंतरगति की जे लखैं, तिनकी मैं बलि जांव ॥ १० ॥

सभी अज्ञानी प्राणी शरीर के ऊपर की भेषादि प्रवृत्ति को देखकर 'सत' आदि नाम रखते है, किन्तु जो मन की भावना रूप गति को देखकर नाम रखते है, उनकी हम बलिहारी जाते है।

जग जन विपरीत

तन मन आतम एक है, दूजा सब उनहार।
दादू मूल पाया नहीं, दुविध्या भरम विकार ॥ ११ ॥

११-१४ मे ससारी जनो की और सतो की विपरीतता दिखा रहे है—सभी प्राणियो के स्थूल-शरीर स्थूल-भूतो से और अन्त करण सूक्ष्म-भूतो से बने हुये होने से एक है, और आत्मा सब का चेतन होने से एक है। बाह्य भेष से भी एक-से दिखाई देते है। भिन्न-भिन्न तो केवल स्थूल शरीर की आकृतियॉ तथा अन्त करण की भावनाऍ ही है। जिन असन्तो ने मूल ब्रह्म तत्त्व को नही समझा, वे भ्रम जन्य विकारो से दुविधा मे पडे हुये है और मूल तत्त्व को जानने वाले सत उक्त दुविधा से अलग है। यही सत और असतो मे विपरीतता है।

काया के सब गुण बँधे, चौरासी लख जीव।
दादू सेवक सो नही, जे रग राते पीव ॥ १२ ॥

चौरासी लक्ष योनियो के सभी जीव कामादि गुणो से बँधकर देहाध्यासी बने हुये है किन्तु जो परमात्मा की भक्ति रग मे रत है वे सत शरीर के सेवक नही होते, यही विपरीतता है।

काया के वश जीव सब, ह्वै गये अनत अपार।
दादू काया वश करै, निरंजन निराकार ॥ १३ ॥

शारीरिक कामादि गुणो के वश होकर सभी जीव अनन्त बार जन्म लेकर अनन्त बार ही काल के मुख मे गये है किन्तु जो सत शारीरिक कामादि गुणो को अपने वश करते है, वे निरजन निराकार परब्रह्म को प्राप्त होते है।

पूरण ब्रह्म विचारिये, तब सकल आतमा एक।
काया के गुण देखिये, तो नाना वरण[1] अनेक ॥ १४ ॥

यदि व्यापक ब्रह्म का विचार करे, तब तो आत्मा ब्रह्म रूप होने से सभी एक है और शरीर के गुण, दोष, रग[1] आकृतियो को देखे तो नाना गुण, दोष, रग और अनेक जातियाँ[1] व आकृतियाँ दृष्टि मे आती है। सत ब्रह्म विचार द्वारा सब आत्माओ को एक रूप से देखते है और ससारी जन शरीर के गुण, दोष, रग[1] आकृतियो को देखते है। यही सतो व असतो मे विपरीतता है।

नर विड[1] रूप

(मति) बुद्धि विवेक विचार बिन, माणस पशू समान।
समझाया समझै नही, दादू परम गियान ॥ १५ ॥

१५-१६ मे नर की तुच्छ[1] रूपता दिखा रहे है—धर्म बुद्धि, आत्मानात्मा विवेक और ब्रह्म-विचार के बिना मनुष्य पशु तुल्य ही है, इसीलिए श्रेष्ठ ज्ञान समझाने पर भी नही समझता।

सब जीव प्राणी भूत है, साधु मिलै तब देव।
ब्रह्म मिलै तब ब्रह्म है, दादू अलख अभेव ॥ १६ ॥

सभी प्राणधारी अज्ञानी जीव भूतो के समान नीच प्रवृत्ति वाले होने से भूत समान ही है। सत मिलने पर दैवी गुण प्राप्ति द्वारा देव समान हो जाते है और ब्रह्म-ज्ञान द्वारा ब्रह्म प्राप्त होने पर तो मन-इन्द्रियो के अविषय भेदरहित ब्रह्म रूप ही हो जाते है।

करतूति=कर्म

दादू बँध्या जीव है, छूटा ब्रह्म समान।
दादू दोनों देखिये, दूजा नाही आन ॥ १७ ॥

१७-१८ मे जीव ब्रह्म का लक्षण कर रहे है—जो कर्म पाश मे बँधा है, वही जीव है और जो कर्मों से मुक्त है, वही ब्रह्म है। जीव और ब्रह्म के भेद मे कर्म का होना, न होना, ही हेतु देखा जाता है, अन्य दूसरा हेतु कोई भी नही है।

कर्मों के बस जीव है, कर्म रहित सो ब्रह्म ।
जहँ आत्म तहँ परमात्मा, दादू भागा भ्रम ॥ १८ ॥

जीव कर्मों के वश मे है और ब्रह्म कर्म रहित है। जब ब्रह्मनिष्ठ गुरु के ज्ञानोपदेश से अज्ञान नष्ट हो जाता है तब, जहा आत्मा का साक्षात्कार होता है, वहा ही ब्रह्म का साक्षात्कार होता है अर्थात् दोनो एकरूप ही भासते है।

पारिख अपारिख

काचा उछलै ऊफणै, काया हॉडी मांहिं ।
दादू पाका मिल रहै, जीव ब्रह्म द्वै नांहिं ॥ १९ ॥

१९-२२ मे परीक्षक अपरीक्षक का परिचय दे रहे है—जैसे अग्नि पर चढी हँडिया मे अन्न का दाना जब तक कच्चा रहता है तब तक उछलता-उफनता है, पक जाने पर जल के साथ मिल कर रहता है। वैसे ही जीव को जब तक ब्रह्मज्ञान नही होता तब तक ही शरीर मे आता जाता है, ब्रह्म ज्ञान होते ही जीव ब्रह्म मे अभेद होकर रहता है। उस अवस्था मे जीव और ब्रह्म दो प्रमाणित नही होते।

दादू बॉधे सुर नवाये[1] बाजै, एह्वा[2] शोध रु लीज्यो ।
राम-सनेही साधू हाथैं, बेगा मोकल[3] दीज्यो ॥ २० ॥

प्रसग-महाराज ने गुजरात से मजीरे मँगवाने के लिए यह २० वी साखी लिख भेजी थी।

जैसे बँधे स्वर, विलक्षण तेज[1] ध्वनि से बजने वाले हो, ऐसे[2] खोज कर लेना और राम के प्यारे किसी सत के हाथ शीघ्र ही भेज[3] देना। अध्यात्म अर्थ-जिसने इन्द्रिय रूप सुरो को सयम मे बाँध रक्खे हो और अपने अहकार-शिर को नीचे[1] करके भजन रूप ध्वनि करने वाला हो, ऐसे[2] जिज्ञासु की खोज करके उसी राम के प्यारे जिज्ञासु के अन्त करण हाथ मे शीघ्र अपना ज्ञान धन दे दो[3] वा ऐसे सिद्ध सत के हाथ मे अपने उद्धार के लिए अपने को समर्पण[3] कर दो।

प्राण जौहरी पारिखू[1], मन खोटा ले आवै ।
खोटा मन के माथे मारै, दादू दूर उडावै[2] ॥ २१ ॥

प्राण रूप रत्न की परीक्षा[1] करने वाले सत-जौहरी के पास यदि कोई प्राणी दोषो से परिपूर्ण बुरे मन को लेकर आता है तो बुरे मन वाले के अहकार रूप शिर पर भक्ति-विचारादि दडे मार कर, उसके दोषो को दूर हटा[2] देता है और अपरीक्षक हो तो नही हटा सकता।

श्रवणां हैं नैनां नहीं, ता तैं खोटा खाहिं ।
ज्ञान विचार न ऊपजै, साच झूठ समझाहिं ॥ २२ ॥

जिसके श्रवण तो हो और नेत्र न हो, वह भोजन के गुणो को तो सुनकर जान लेगा किन्तु उसमे पडी मक्खी खाकर वमन का क्लेश उठायेगा। वैसे ही जिनके श्रवण करने पर भी मन मे

ज्ञान-विचार नही उत्पन्न होते, वे सत्य को मिथ्या और मिथ्या को सत्य समझ कर दु ख ही पाते है। अत अपरीक्षक है।

साच

दादू साचा लीजिये, झूठा दीजै डार।
साचा सन्मुख राखिये, झूठा नेह निवार ॥ २३ ॥

२३-२४ मे सत्य ग्रहण की प्रेरणा तथा विशेषता का वर्णन कर रहे है—सत्य विचारो को ही धारण करो, मिथ्या मनोरथो को छोड दो और सत्य परब्रह्म को ही व्यापक जानकर सर्वदा सामने देखते रहो, मिथ्या विषयो का प्रेम हृदय से हटा दो।

साचे को साचा कहै, झूठे को झूठा।
दादू दुविधा को नहीं, ज्यो था त्यो दीठा ॥ २४ ॥

जो सत सत्य परब्रह्म को सत्य और मिथ्या मायिक प्रपच को मिथ्या कहते है, उन्होंने जैसा ब्रह्म था, वैसा ही देख लिया है,अत उनके हृदय मे भ्राति रूप कोई भी दुविधा नही रही।

पारिख अपारिख

हीरे को ककर कहैं, मूरख लोग अजान।
दादू हीरा हाथ ले, परखै साधु सुजान ॥ २५ ॥

२५ मे परीक्षक अपरीक्षक का परिचय दे रहे है—अनजान हीरे को ककर कहकर पटक देता है किन्तु जौहरी उसकी परीक्षा करके अपनाता है। वैसे ही मूर्ख लोग सतो के शब्दो को न समझने के कारण 'कुछ नही' कह कर छोड़ देते है किन्तु बुद्धिमान् साधक सत उनको अन्त करण रूपी हाथ मे लेकर उनकी यथार्थ जानना रूप परीक्षा करके अपनाते है।

सगुरा-निगुरा

सगुरा निगुरा परखिये, साधु कहै सब कोइ।
सगुरा साचा, निगुरा झूठा, साहिब के दर होइ ॥ २६ ॥

२६-२७ मे गुरु उपदेश युक्त हृदय सगुरा होता है इसका परिचय दे रहे है—सभी सत कहते है—गुरु उपदेश सहित हृदय सगुरा और उपदेश से रहित हृदय निगुरा की परीक्षा करके सगुरा से ही व्यवहार रखना चाहिये। परमात्मा के दरबार मे सगुरा सच्चा और निगुरा झूठा सिद्ध होता है।

सगुरा सत सयम रहै, सन्मुख सिरजनहार।
निगुरा लोभी लालची, भूचै[1] विषय विकार ॥ २७ ॥

सगुरा व्यक्ति सत्य-व्यवहार और सयम के द्वारा ईश्वर के सन्मुख रहता है। निगुरा द्रव्य का लोभी और विषयो का लालची होता है और कामादि विकारो मे पडा रह कर विषयो को ही भोगता[1] रहता है।

कर्त्ता कसौटी

खोटा खरा परखिये, दादू कस कस लेय ।
साचा है सो राखिये, झूठा रहण न देय ॥ २८ ॥

२८ मे कहते है—ईश्वर भी भक्त की परीक्षा करते है—बुरे-भले की परीक्षा अवश्य करनी चाहिए। ईश्वर भी बारबार परीक्षा करके सच्चे भक्त को ही अपनाते है और झूठे को भक्तो की गणना मे नही रहने देते। अत जो सच्चा साधक हो, उसे ही पास रखना चाहिए।

पारिख अपारिख

खोटा खरा कर देवै पारिख, तो कैसे बन आवै ।
खरे खोटे का न्याय नबेरै[1], साहिब के मन भावै ॥ २९ ॥

२९-३० मे परीक्षक अपरीक्षक के विषय मे कहते है—मिथ्या मायिक प्रपच वाले तथा दभी भक्त की परीक्षा करके उसे कोई परीक्षक सच्चा बता दे तो वह परीक्षा यथार्थ कैसे मानी जायेगी ? सच्चे को सच्चा और मिथ्या को मिथ्या कह कर परीक्षा रूप न्याय पूरा[1] किया जाय, तभी वह न्याय भगवान् के मन को प्रिय लगता है।

दादू जिन्है ज्यों कही तिन्हैं त्यों मानी, ज्ञान विचार न कीन्हा ।
खोटा खरा जीव परख न जानै, झूठ साच कर लीन्हा ॥ ३० ॥

स्वार्थपरायण वक्ताओ ने जिन अज्ञानियो को जैसा कहा, उनने वैसा ही मान लिया। बुद्धिहीन होने से वे सुने हुये ज्ञान की यथार्थता वा अयथार्थता का विचार नही कर सके और स्वय बुरे भले की परीक्षा अपने मन से करना जानते नही। अत ऐसे लोगो ने मिथ्या मायिक प्रपच की वस्तुओ को ही सत्य मान कर उपास्य रूप से धारण कर लिया।

कर्त्ता कसौटी

जे निधि कहीं न पाइये, सो निधि घर-घर आहि।
दादू महँगे मोल बिन, कोई न लेवै ताहि ॥ ३१ ॥

३१-३८ मे ईश्वर सम्बन्धी परीक्षा का परिचय दे रहे है—जो परब्रह्म रूप निधि बाहर खोजने पर कही भी नही मिलती, वह प्रत्येक प्राणी के अत करण मे साक्षी रूप से स्थित है किन्तु साधन रूप महामूल्य चुकाये बिना उसे कोई भी प्राप्त नही कर सकता।

प्रसगार्थ—जो ज्ञान-निधि सतो के बिना कही भी नही मिलती, वह सतो द्वारा घर-घर आ रही है, किन्तु श्रद्धारूप महामूल्य बिना उसे कोई भी नही ले सकता।

प्रसग—अकबर बादशाह से मिल कर सीकरी से आते समय दादूजी महाराज अपने शिष्यो के साथ दौसा ग्राम पहुँचे, तब वहा किसी ने भी उनकी आवभगत नही की। तब महाराज ने शिष्यो को यह ३१ वी साखी कही थी। प्रसग कथा दृ सु सि त ७-१३४ मे देखो।

खरी कसौटी कीजिये, बानी[1] बधती जाइ।
दादू साचा परखिये, महँगे मोल बिकाइ ॥ ३२ ॥

जैसे सच्चे रत्न की परीक्षा कसौटी पर की जाती है तब वह महामूल्य मे विकता है, वैसे ही सतो के वचनो की सच्ची परीक्षा जीवन मे अनुभूति द्वारा करनी चाहिए। सच्चे सिद्ध होने पर ये वचन अनमोल ज्ञात होंगे और इनकी महिमा रूप कीर्ति[1] वढती ही जायेगी।

राम कसै[1] सेवक खरा, कदे न मोडै अग।
दादू जब लग राम है, तब लग सेवक सग ॥ ३३ ॥

राम के द्वारा परीक्षा[1] करने पर जो सेवक सच्चा सिद्ध होता है वह कभी भी राम से अपने तन मनादि नही मोडता, जब तक राम है तव तक वह सेवक अभेद रूप से राम के साथ रहता है।

दादू कस[1] कस लीजिये, यहु ताते परिमान[2]।
खोटा गांठ न बॉधिये, साहिब के दीवान[3] ॥ ३४ ॥

जैसे सुवर्ण को तपा-तपा कर शुद्ध करते है, वैसे ही सयम के द्वारा तपा-तपा कर मन-शुद्धता की परीक्षा[1] वारबार कर लेनी चाहिए। मन-शुद्धि का यही माप[2] है-उसमे दोष न रहने चाहिए। अत दोषो की गठरी मत बाँधो, क्योकि-दोष सहित परमात्मा के दरबार[3] मे न जा सकोगे।

दादू खरी कसौटी पीव की, कोइ विरला पहुँचनहार।
जे पहुँचे ते ऊबरे, ताइ किये तत सार ॥ ३५ ॥

जिनने अपने तन-मनादि को सयम द्वारा तपा कर ब्रह्म रूप सार तत्त्व के परायण किये है, उनमे कोई विरले ही परमात्मा की सच्ची परीक्षा मे उत्तीर्ण होकर परब्रह्म तक पहुँचने वाले होते है और जो पहुँचे है, वे ससार से पार होकर ब्रह्म रूप ही हो गये है।

दुर्बल देही, निर्मल वाणी। दादूपथी ऐसा जाणी ॥ ३६ ॥

योग रूपी पथ के द्वारा प्रभु के पास जाने वाले पथिको की जीवात्मा विकार रूप स्थूलता युक्त नही होती और उनकी वाणी भी निर्मल ब्रह्म का वर्णन करने से निर्मल होती है। प्रभु-पथ के पथिको को उक्त प्रकार लक्षणो द्वारा ही पहचानो।

दादू साहिब कसै सेवक खरा, सेवक को सुख होइ।
साहिब करै सो सब भला, बुरा न कहिये कोइ ॥ ३७ ॥

परमात्मा द्वारा ली गई परीक्षा मे जो सेवक सच्चा सिद्ध होता है, उसी सेवक को ब्रह्मानन्द प्राप्त होता है। अत जो भी परमात्मा करता है, वह सब अच्छा ही है। उसके किसी भी कार्य को बुरा न कहना चाहिए।

दादू ठग आमेर में, साधौ सौ कहियो।
हम शरणाई राम की, तुम नीकै रहियो ॥ ३८ ॥

इति पारिख का अग समाप्त ॥ २७ ॥ सा २२६२ ॥

उन सतो से कहना—आमेर का दादू तो ठग है तो भी राम की शरण है किन्तु आप सावधान रहना, कही आपको माया न ठग ले। प्रसग-आमेर से उत्तरी ओर गुढा ग्राम मे एक साधु अपने को दादू बतला कर कहता था- आमेर का दादू ठग है। यही बात किसी ने आकर महाराज को कही थी। उसी पर ३८ वी साखी कह कर कहने वाले के द्वारा उस साधु के पास भेजी थी। विशेष कथा - दृ सु सि त ११।४१९ मे देखो।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका पारिख का अग समाप्त ॥ २७॥

अथ उपजन का अंग २८

पारिख-अग के अनन्तर उत्पत्ति का विचार करने के लिए ''उपजन का अग'' कहने मे प्रवृत्त हुये मगल कर रहे है—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत. ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक उत्पत्ति सम्बन्धी भ्रम से पार होकर, यथार्थ ज्ञान द्वारा परब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरजन राम, सद्गुरु और सब सतो को हम अनेक प्रणाम करते है।

विचार

दादू माया का गुण बल करै, आपा[1] उपजै आइ।
राजस तामस सात्विकी, मन चंचल ह्वै जाइ ॥ २ ॥

२-३ मे मायिक विचार उत्पत्ति, उनका परिणाम और उनकी अभाव अवस्था का विचार कर रहे है—जब अन्त करण मे अहकार[1] उत्पन्न होता है तब मायिक गुण सत्त्व, रज, तम अपना बल प्रकट करते है, जिससे सात्विकी, राजसी और तामसी प्रवृत्ति द्वारा मन चचल हो जाता है।

आपा नाहीं बल मिटै, त्रिविध तिमिर नहिं होइ ।
दादू यहु गुण ब्रह्म का, शून्य समाना सोइ ॥ ३ ॥

जब अहकार नही रहता तब त्रिगुण का बल नष्टप्राय होता है और अज्ञान न रहने के कारण, सात्विकी, राजसी, तामसी तीन प्रकार की प्रवृत्ति भी नही होती वा मूला, तूला और लेशा अविद्या नही रहती, सहजावस्था रहती है। सहजावस्था रूप गुण ही ब्रह्म-साक्षात्कार का हेतु है जो प्राप्त होने पर साधक ब्रह्म का साक्षात्कार करके सहज-शून्य स्वरूप ब्रह्म मे ही समा जाता है।

उपजन

दादू अनुभव उपजी गुणमयी, गुण ही पै ले जाइ ।
गुण हीं सौं गह बधिया, छूटै कौन उपाइ ॥ ४ ॥

४-११ मे अनुभव उत्पत्ति सम्बन्धी विचार कह रहे है—जब बुद्धि मे त्रिगुणमय अनुभव उत्पन्न होता है तब वह मन को विषय रूप गुण पर ही ले जाता है और मन विषयो को ग्रहण करके उनकी आसक्ति से बँध जाता है। उस त्रिर्गुणमय अनुभव मे कौन ऐसा है जिसके द्वारा मन विषयासक्ति से मुक्त हो सके ? अर्थात् कोई नही है।

द्वै पख उपजी परिहरै, निर्पख अनुभव सार ।
एक राम दूजा नही, दादू लेहु विचार ॥ ५ ॥

मत-मतान्तर रूप द्वैत-पक्ष से युक्त उत्पन्न अनुभव को त्याग देना चाहिए और निष्पक्ष अद्वैत अनुभव का आदर करना चाहिए, उसके द्वारा विश्व का सार राम ही प्राप्त होता है, अन्य नही । अत निष्पक्ष अनुभव पूर्ण सत वचनो को विचार कर अद्वैत निरजन राम को प्राप्त करो।

दादू काया ब्यावर[१] गुणमयी, मनमुख उपजै ज्ञान ।
चौरासी लख जीव को, इस माया का ध्यान ॥ ६ ॥

काया की जननी[१] गुणमयी माया है,अत उसकी बुद्धि मे स्वभावत तो मन की इच्छानुसार बाह्य-विषय-ज्ञान ही उत्पन्न होता है। इसी कारण चौरासी लक्ष योनियो के सभी जीवो की बुद्धि को, इस अपनी जननी माया का ही ध्यान रहता है।

आत्म उपज[१] अकाश[२] की, सुनि[१] धरती[३] की बाट ।
दादू मारग गैब[४] का, कोई लखै न घाट ॥ ७ ॥

ब्रह्म ज्ञान[१] प्राप्ति के तीन मार्ग बतला रहे है— (१) आतम उपज अकाश की = विहगम मार्ग (निर्लेपावस्था)[२]—जैसे पक्षी उडकर बीच के स्थान से कोई सम्बन्ध न रखकर उसे लाघता हुआ गन्तव्य स्थान पर पहुच जाता है अर्थात् अकारादि अक्षर ज्ञान से ही पूर्ण अक्षर ब्रह्म का ज्ञान हो जाना, (२) सुनि धरती की बाट = पिपीलिका मार्ग (सकल्पावस्था)[३]—मायिक पदार्थों से अपना अवधान हटाकर अनवरत अपने लक्ष्य की ओर शून्यवत्[१] चीटी की तरह अग्रसर होते हुए ब्रह्म दादू ज्ञान प्राप्ति (३) दादू मारग गैब का = गैबीमार्ग (निर्विकल्पावस्था) अनायास[४] ही भावानुकूल या नियतियोग से अकस्मात्[४] ब्रह्म-दर्शन व ज्ञान प्राप्ति। जैसे बालक दादू को वृद्ध भगवान् का अनायास दर्शन और उपदेश प्राप्ति। इस आत्मानुभव रूप गुप्त[४] मार्ग का ब्रह्म प्राप्ति रूप घाट-प्रदेश कोई भी नही देख सकता।

आतम बोधी अनुभवी, साधू निर्पख होइ ।
दादू राता राम सौ, रस पीवैगा सोइ ॥ ८ ॥

जो आत्म-बोध सपन्न अनुभवी सत होगा, वही निष्पक्ष होकर राम चिन्तन मे रत रहते हुये पराभक्ति रूप रस का पान कर सकेगा।

प्रेम भक्ति जब ऊपजै, निश्चल सहज समाधि ।
दादू पीवे राम रस, सतगुरु के प्रसाद ॥ ९ ॥

जब सद्गुरु की कृपा से हृदय मे प्रेमाभक्ति उत्पन्न हो जाती है, तब मन निश्चल होकर स्वाभाविक ही समाधिस्थ हुआ राम-चिन्तन रूप ब्रह्म-रस का पान करता है।

प्रेम भक्ति जब ऊपजै, पगुल ज्ञान विचार ।
दादू हरि रस पाइये, छूटै सकल विकार ॥ १० ॥

जब प्रेमाभक्ति होती है, तब बुद्धि मे गुण रूप पैरो से रहित निर्गुण-ज्ञान के विचार उत्पन्न होते है। उन विचारो से सपूर्ण विकार हट कर रस रूप ब्रह्म की प्राप्ति होती है।

दादू बंझ बियाई आतमा, उपज्या आनंद भाव[1] ।
सहज शील सतोष सत, प्रेम मगन मन राव ॥ ११ ॥

भक्ति युक्त स्थिर बुद्धि रूप बॅध्या प्रसूता हुई है उससे अक्षयानन्द प्रद आतम विचार[1] रूप पुत्र उत्पन्न हुआ है। अब तो मन स्वाभाविक ही शील-सतोष से युक्त हुआ, सत्य-स्वरूप ब्रह्म के अभेद प्रेम-रस मे निमग्न होकर राजा के समान निरपेक्ष हो गया है।

निन्दा

जब हम ऊजड चालते, तब कहते मारग मांहि।
दादू पहुँचे पंथ चल, कहैं यहु मारग नांहिं ॥ १२ ॥

लोक निन्दा की उपेक्षा दिखा रहे है—जब हम मार्ग रहित ससार-विपिन के विषय-वृक्षो मे भटकते थे, तब ससारी लोग कहते थे-ये ठीक मार्ग पर चल रहे है और जब हम ससार-विपिन को त्याग कर ठीक प्रभु प्राप्ति के मार्ग मे आये है, तो ससारी लोग कहते है यह मार्ग नही है। अत हमे उनके इस निन्दा रूप कथन की ओर ध्यान नही कर भगवद्-भक्ति मार्ग अपनाना चाहिये।

उपजन

पहले हम सब कुछ किया, भरम करम संसार ।
दादू अनुभव उपजी, राते सिरजनहार ॥ १३ ॥

१३-१४ मे यथार्थ अनुभव और उसका फल बता रहे है—पहले हमने भी अज्ञान द्वारा होने वाले ससारिक सभी कुछ कर्म किये है किन्तु जब से अनुभव ज्ञान उत्पन्न हुआ है, तब से सब को त्यागकर भगवत्-चिन्तन मे ही रत है।

सोइ अनुभव सोइ ऊपजी, सोइ शब्द तत सार ।
सुनतां ही साहिब मिलै, मन के जाहिं विकार ॥ १४ ॥

वही अनुभव, उपज और विश्व के सार ब्रह्म-तत्त्व के बोधक शब्द श्रेष्ठ माने जाते है, जिनके श्रवण करने से मन के सपूर्ण विकार नष्ट होकर अभेद रूप से ब्रह्म प्राप्त होता है।

परिचय जिज्ञासा उपदेश

पारब्रह्म कह्या प्राण[1] सौ, प्राण कह्या घट[2] सोइ ।
दादू घट सब सौं कह्या, विष अमृत गुण दोइ ॥ १५ ॥

१५-१६ मे जिज्ञासा वालो को उपदेश द्वारा प्रवृत्ति-निवृत्ति रूप ज्ञान प्राप्ति की परपरा बता रहे है—परब्रह्म ने हिरण्यगर्भ[1] को कहा, हिरण्यगर्भ ने ऋषियो[2] को कहा, ऋषियो ने सब सासारिक प्राणियो को कहा, इस प्रकार विष-अमृत रूप प्रवृत्ति-निवृत्ति मार्गो का प्रसार हुआ है।

दादू मालिक[1] कह्या, अरवाह[2] सौ, अरवाह कह्या औजूद[3]।
औजूद आलम[4] सौं कह्या, हुकम खबर मौजूद ॥ १६ ॥

ईश्वर[1] ने फरिश्ताओ[2] को कहा, फरिश्ताओ ने स्थूल शरीरधारी पीरो[3] को कहा, पीरो ने सब ससार[4] को कहा, वही प्रवृत्ति-निवृत्ति की आज्ञा रूप समाचार ससार मे विद्यमान है, अर्थात् वृत्ति और निवृत्ति की दोनो धाराएँ चल रही है।

उपजन

दादू जैसा ब्रह्म है, तैसी अनुभै उपजी होइ ।
जैसा है तैसा कहै, दादू विरला कोइ ॥ १७ ॥

इति उपजन का अग समाप्त ॥ २८ ॥ सा २२७९ ॥

१७ मे कहते है—यथार्थ अनुभवी ही यथार्थ उपदेश कर सकते है—जैसा ब्रह्म का स्वरूप है वैसा ही अनुभव-ज्ञान उत्पन्न हो, तब ही कोई विरला सत, जैसा वास्तविक तत्त्व है वेसा उपदेश कर सकता है, अन्यथा नही।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका उपजन का अग समाप्त ॥ २८ ॥

अथ दया निर्वैरता का अंग २९

उपजन-अग के अनन्तर दया-पूर्वक निर्वैरता का विचार करने के लिए "दया निर्वैरता का अग" कहने मे प्रवृत्त हुये मगल कर रहे है—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत. ।
वन्दन सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक क्रूरता तथा वैर भाव से पार होकर दया-निर्वैरता द्वारा परब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरजन राम, सद्गुरु ओर सर्वसतो को हम अनेक प्रणाम करते है।

आपा मेटै हरि भजे, मन मन तजे विकार ।
निर्वैरी सब जीव सौं, दादू यहु मत सार ॥ २ ॥

२-१८ मे दया निर्वैरता की विशेषता के विचार दिखा रहे है—अहकार निवृत्ति द्वारा तन-मन के सभी विकारो को त्याग कर तथा सभी जीवो से निर्वैर होकर हरि भजन करना, यही सब सतो का सार मत है।

निर्वैरी निज आतमा, साधन का मत सार ।
दादू दूजा राम बिन, वैरी मझ विकार ॥ ३ ॥

जैसे प्राणी निजात्मा से निर्वैर रहता है, वैसे ही सबसे निर्वैर रहना चाहिए। यही सतो का सार सिद्धान्त है। आत्माराम को छोडकर दूसरे जो अन्त करण मे कामादि विकार है, वे ही वैरी है।

निर्वैरी सब जीव सौं, संत जन सोई ।
दादू एकै आतमा, बैरी नहिं कोई ॥ ४ ॥

'सपूर्ण आत्मा एक ही है, वैरी कोई भी नही है' इस यथार्थ विचार द्वारा जो सब जीवो से निर्वैर रहता है, वही सत पुरुष है।

सब हम देख्या शोध कर, दूजा नांहीं आन ।
सब घट एकै आतमा, क्या हिन्दू मुसलमान ॥ ५ ॥

क्या हिन्दू और क्या मुसलमान, सभी के शरीरो मे एक ही आत्मा है। हमने सब प्रकार विचार करके देखा है, आत्मा से भिन्न दूसरा कोई भी सत्य नहीं है।

दादू नारि पुरुष का नाम धर, इहिं संशय भरम भुलान।
सब घट एकै आतमा, क्या हिन्दू मुसलमान ॥ ६ ॥

इस स्थूल शरीर के चिन्ह भेद से सशय मे पडकर, अज्ञान द्वारा आत्मा का नारी व पुरुष नाम रख कर परस्पर की आसक्ति द्वारा तथा हिन्दू मुसलमान के भेद भ्रम द्वारा वैर भावादि से युक्त हो ससार मे भटक रहे है।

दादू दोनों भाई हाथ पग, दोनों भाई कान।
दोनों भाई नैन हैं, हिन्दू मुसलमान ॥ ७ ॥

जैसे दोनो हाथ, दोनो कान, दोनो नेत्र बराबर है, वैसे ही हिन्दू और मुसलमान दोनो बराबर के भाई है।

दादू संशय आरसी, देखत दूजा होइ।
भ्रम गया दुविधा मिटी, तब दूसर नांहीं कोइ ॥ ८ ॥

जैसे दर्पण मे देखने से प्रतिबिम्ब रूप दूसरा शरीर भासता है, वैसे ही सशय-भ्रम द्वारा आत्मा मे द्वैत भास कर वैर-भाव होता है। जब सशय-भ्रम नष्ट होकर द्वैत रूप दुविधा नष्ट हो जाती है, तब आत्म-भिन्न अन्य कोई भी सत्य नही भासता अत वैर भी नही होता।

किस सौं बैरी है रह्या, दूजा कोई नांहिं।
जिसके अंग तैं ऊपजै, सोई है सब मांहिं ॥ ९ ॥

जिस ईश्वर के स्वरूप से सबकी उत्पत्ति होती है, वही तो आत्म रूप से सब मे स्थित है, फिर तू किसका वैरी बन रहा है ? दूसरा तो कोई है ही नही।

सब घट एकै आतमा, जानै सो नीका।
आपा पर मे चीन्ह ले, दर्शन है पीव का ॥ १० ॥

जो सब शरीरो मे एक आत्मा जानता है, वही श्रेष्ठ है। तुम विचार द्वारा आत्म-स्वरूप परब्रह्म को प्रथम पहचान लो फिर अपने या अन्यो के शरीरो मे देखो, तुम्हे परब्रह्म का ही साक्षात्कार होगा।

काहे को दुख दीजिये, घट घट आतम राम ।
दादू सब संतोषिये, यह साधू का काम ॥ ११ ॥

क्यो किसी को दु ख देते हो ? सब शरीरो मे अपना आत्म स्वरूप राम ही है। साधु का तो यही काम है—सबको सतुष्ट ही करे।

काहे को दुख दीजिये, सांई है सब मांहिं ।
दादू एकै आतमा, दूजा कोई नांहिं ॥ १२ ॥

क्यो किसी को दु ख देते हो ? सब शरीरो मे एक आत्म-स्वरूप परमात्मा ही है, अन्य कोई भी नही है।

साहिब जी की आत्मा, दीजै सुख सतोख।
दादू दूजा को नही, चौदह तीनो लोक ॥ १३ ॥

तीन लोक चौदह भुवनो मे सभी आत्माएँ परमात्मा के अश रूप है। अन्य कोई भी नही है। अत सबको ही सुख देकर सतुष्ट करना चाहिए। (सतोख= सतोष)

दादू जब प्राण पिछाणे आपको, आतम सब भाई।
सिरजनहारा सबन का, तासौ ल्यौ लाई ॥ १४ ॥

जब प्राणी अपने आत्म-स्वरूप को पहचानता है, तब सभी भाई प्रतीत होते है। फिर तो वैर-भाव छोडकर सबके स्रष्टा परमात्मा के स्वरूप मे ही वृत्ति लगाता है।

आत्म राम विचार कर, घट घट देव दयाल।
दादू सब संतोषिये, सब जीवो प्रतिपाल ॥ १५ ॥

आतम-स्वरूप राम के स्वरूप का विचार करके देखो, सभी शरीरो मे वह दयालु परमात्मा देव आत्मा रूप से स्थित है। अत सभी जीवो का प्रतिपालन करते हुये सभी को सतुष्ट करना चाहिए।

दादू पूरण ब्रह्म विचारले, द्वैत भाव कर दूर।
सब घट साहिब देखिये, राम रह्या भरपूर ॥ १६ ॥

बुद्धि से द्वैत भाव को दूर करके, ब्रह्म-ज्ञान-विचार द्वारा पूर्ण ब्रह्म को प्राप्त कर लो। वह निरजन राम व्यापक होने से सभी शरीरो मे परिपूर्ण रूप से स्थित है, तुम ज्ञान-नेत्रो से देखो।

दादू मदिर काच का, मर्कट[1] सुनहां[2] जाइ।
दादू एक अनेक है, आप आपको खाइ ॥ १७ ॥

जैसे काँच खडो से बने हुये महल मे वानर[1] वा श्वान[2] चला जाय तो अपने एक के अनेक प्रतिबिम्ब देख कर आप ही अपने प्रतिबिम्बो को खाने के लिये उछलता-कूदता है और कष्ट पाता है। वैसे ही मानव अपने ही आत्मा को सब शरीरो मे अन्य रूप से देख कर, अपने से ही वैर करके कष्ट उठाते है तथा नष्ट होते है।

आतम भाई जीव सब, एक पेट परिवार।
दादू मूल विचारिये, तो दूजा कौन गँवार ॥ १८ ॥

हे अज्ञ जन ! यदि मूल कारण का विचार किया जाय तो दूसरा कौन प्रतीत होगा ? सभी जीवात्माएँ एक ईश्वर से उत्पन्न होने के कारण, एक ही परिवार के भाई है।

अदया हिसा-वनस्पतियो मे जीव भाव

दादू सूखा सहजे कीजिये, नीला भानै नाहि।
काहे को दुख दीजिये, साहिब है सब माहि ॥ १९ ॥

१९ मे कहते है—वनस्पतियो मे जीव है अत उनका तोडना हिसा है। सूखे दाँतुन को ही शनै -शनै मुख मे चबाकर दाँत साफ कर लेने चाहिये, हरा नहीं तोडना चाहिये। सभी वनस्पतियो

मे जीव रूप से परमात्मा स्थित है। अत किसी को भी दु ख नही देना चाहिये।

ईडवा ग्राम मे हरा दाँतुन लाने पर दूजनदासजी को यह १९वी साखी कही थी। प्रसग कथा-दृ सु सि त ७।११९ मे देखो।

दया निर्वैरता

घट घट के उनहार सब, प्राण परस ह्वै जाइ ।
दादू एक अनेक ह्वै, बरतें नाना भाइ[1] ॥ २० ॥

२०-२५ मे दया निर्वैरता के विचार दिखा रहे है—प्राणधारी जीव-चेतन जब शरीरो मे प्रविष्ट होता है तब वह प्रत्येक शरीर की आकृति जैसा ही भासने लगता है=हाथी मे हाथी जैसा महान्, चीटी मे चीटी जैसा लघु दीखता है। इस प्रकार एक ही जीवात्मा अनेक होकर नाना भावो[1] द्वारा ससार मे व्यवहार करता है।

आये एकंकार[1] सब, सांई दिये पठाइ ।
दादू न्यारे नाम धर, भिन्न भिन्न ह्वै जाइ ॥ २१ ॥

परमात्मा ने अपने अशो को ही ससार मे भेजा है। अत सब एकरूप[1] मे ही आये हुये है किन्तु यहाँ वर्ण, आश्रम, धर्म, जाति, पथ आदि की कल्पना द्वारा अलग-अलग नाम रख कर भिन्न २ हो गये है।

आये एकंकार सब, सांई दिये पठाइ ।
आदि अंत सब एक है, दादू सहज समाइ ॥ २२ ॥

परमात्मा ने अपने अशो को ही भेजा है, अत सब एक रूप मे ही आये है। केवल मध्य मे अपनी कल्पना द्वारा भिन्न हो जाते है। सृष्टि के आदि मे एक रूप थे और ज्ञान होने पर अन्त मे भी एक रूप हो जाते है। अत सब से निर्वैर रह कर ज्ञान द्वारा सहज स्वरूप ब्रह्म मे ही समाना चाहिये ।

आतम देव अराधिये, विरोधिये नही कोइ ।
आराधे सुख पाइये, विरोधे दु:ख होइ ॥ २३ ॥

आत्मा-रूप देव की सेवा ही करनी चाहिये, किसी भी आत्मा से विरोध नही करना चाहिये। सेवा द्वारा अन्यात्मा को सतुष्ट करने से तुम भी सुख पाओगे और विरोध करने से तुम्हे भी दु ख ही प्राप्त होगा।

ज्यो आपै देखै आपको, यो जे दूसर होइ।
तो दादू दूसर नही, दु ख न पावै कोइ ॥ २४ ॥

जैसे प्राणी अपनी अनुकूलता व प्रतिकूलता को देखता है, वैसे ही यदि दूसरे की भी देखे तो दूसरा कोई नही भासता और द्वैत के अभाव से द्वैत जन्य दु ख किसी को नहीं होता।

दादू सम कर देखिये, कुंजर[1] कीट समान ।
दादू दुविधा दूर कर, तज आपा अभिमान ॥ २५ ॥

यदि आत्मा भाव रूप समता से देखोगे तो तुम्हे हाथी और अति लघु कीडा भी समान भासेगे। अत अपनी योग्यता का अहकार और जाति आदि के अभिमान को त्याग कर द्वैत रूप दुविधा को मन से दूर करो।

अदया-हिसा

दादू अर्श[1] खुदाय का, अजरावर का थान।
दादू सो क्यो ढाहिये, साहिव का नीशान[2] ॥ २६ ॥

२५-३३ मे अदया और हिसा को त्यागने की प्रेरणा कर रहे है—देवताओ से अति श्रेष्ठ परमात्मा का जो सबसे ऊचा हृदयाकाश[1] रूप स्थान है, उस स्थान के चिन्ह[2] शरीर को क्यो नष्ट करते हो ?

दादू आप चिणावै देहुरा, तिसका करहि जतन।
प्रत्यक्ष परमेश्वर किया, सो भानै[1] जीव रतन ॥ २७ ॥

जो मन्दिर आप बनाते है, उसकी रक्षा के तो अनेक उपाय करते है और जो परमेश्वर ने अपना मन्दिर बना कर प्रकट किया है तथा परमेश्वर के साक्षात्कार का कारण है, उस रत्न रूप जीव के शरीर-मन्दिर को नष्ट[1] करते है।

मसीत[1] सँवारी माणसाँ[2], तिसको करैं सलाम।
ऐन[3] आप[4] पैदा किया, सो ढाहै मुसलमान ॥ २८ ॥

जो मस्जिद[1] मनुष्यो[2] ने बनाकर तैयार की है, उसको तो मुसलमान प्रणाम करते है और जिस शरीर को साक्षात्[3] खुदा[4] ने उत्पन्न किया है उसे इन्द्रिय-लोलुपता के कारण नष्ट करते है, जिवह करके मास खाते है। कैसा आश्चर्य है !

दादू जंगल मांहीं जीव जे, जग तै रहै उदास।
भयभीत भयानक रात दिन, निश्चल नांहीं वास ॥ २९ ॥

जो जीव मानव जगत् से दु खी होकर वन मे रहते है, वे मानवो के भय से डरे हुये दिन तथा भयानक रात्रि मे भी निश्चल होकर एक स्थान मे नही रह सकते।

वाचा बंधी जीव सब, भोजन पानी घास।
आत्म ज्ञान न ऊपजै, दादू करहि विनास ॥ ३० ॥

जो अपनी वाणी से अपने सुख-दु खादि को नहीं समझा सकते और जिनका भोजन केवल घास तथा जल ही है, ऐसे निर्दोष जीवो को भी, आत्म-ज्ञान रहित इन्द्रिय-लोलुप मानव निर्दयता-पूर्वक मार डालते है।

काला मुँह कर करद[1] का, दिल तैं दूर निवार।
सब सूरत[2] सुबहान[3] की, मुल्ला मुग्ध[4] न मार ॥ ३१ ॥

हे मूर्ख[4] मुल्ला ! कुर्बानी[1] का छुरा त्याग दे और जीवो को मारने की बात दिल से सर्वथा हटा दे। ये सभी जीव पवित्र[3] परमात्मा की आकृतियाँ[2] है, इनको मत मार।

गला गुस्से का काटिये, मियाँ मनी[1] को मार।
पंचों बिस्मिल[2] कीजिये, ये सब जीव उबार ॥ ३२ ॥

हे मियाँ ! क्रोध का गला काट, अहकार[1] को मार, पच ज्ञानेन्द्रियो को अन्तर्मुख रूप कुर्बानी[2] कर और इन दीन जीवो की रक्षा कर।

वैर विरोधे आतमा, दया नहीं दिल मांहिं।
दादू मूरति राम की, ताको मारन जाहि ॥ ३३ ॥

मन मे दया न होने के कारण वैर-भाव द्वारा जीवात्माओ से विरोध करता है और जो राम की ही मूर्ति है, उस जीव को मारने के लिये जाता है।

दया निर्वैरता

कुल आलम यके[7] दीदम,[5] अरवाहे इखलास[6]।
बद[1] अमल[2] बदकार[3] दुई[4], पाक यारां पास ॥ ३४ ॥

३४-३६ मे दया निर्वैरता दिखा रहे है—सपूर्ण ससार को हम एक[7] दृष्टि[5] से देखते है, सभी आत्माओ से हमारा प्रेम[6] है। दुराचारियो[3] से बुरे[1] कार्य[2] द्वैत[4]-भाव द्वारा होते है। हम मित्रो की पक्ष लेने वाला पवित्र परमेश्वर हमारे पास है। हमारी क्या परीक्षा लेते हो ?

आमेर मे, महाराज श्रेष्ठ सत है, या नही, यह परीक्षा करने को एक तुर्क ने मुख बँधा मास-पात्र प्रसाद रूप से सत्सग सभा मे रखा था, उसका विचार था, यदि बिना खोले पहचान जायेगे तो मै श्रेष्ठ सत मान लूगा। उसी को ३४ वी साखी कही थी। प्रसग कथा-दृ सु सि १०।८ मे देखो।

काल झाल तैं काढ कर, आतम अंग लगाइ।
जीव दया यहु पालिये, दादू अमृत खाइ ॥ ३५ ॥

जीवो के मन को काल की विषयाशा रूप ज्वाला से उपदेश द्वारा निकाल कर आत्मा के स्वरूप मे लगाओ, जिससे आत्मा ज्ञानामृत पान करके अमर हो जाये। जीवो के मन से मृत्यु-भय दूर कर उनसे आत्मवत् स्नेह करो, यही उत्तम जीव दया है, इसका पालन करो।

दादू बुरा न बांछै जीव का, सदा सजीवन सोइ।
परलै विषय विकार सब, भाव भक्ति रत होइ ॥ ३६ ॥

जो किसी भी जीव का बुरा नही चाहता, वह सभी विषय-विकारो को नष्ट करके भगवान् की प्रेमाभक्ति मे रत होकर ब्रह्म प्राप्ति रूप सदा सजीवनावस्था को प्राप्त होता है।

मत्सर=ईर्ष्या

ना को बैरी, ना को मिन्त, दादू राम मिलन की चिन्त ॥ ३७ ॥

इति दया निर्वैरता का अग समाप्त ॥ २९ ॥ सा २३१६ ॥

सतो की निर्द्वन्द्वता दिखा रहे है—सतो का न तो कोई वैरी है, न कोई मित्र है। राग-द्वेष रहित उनके चित्त मे तो राम के मिलन की ही इच्छा बनी रहती है।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका दया निर्वैरता का अग समाप्त ॥ २९ ॥

अथ सुन्दरी का अंग ३०

दया-निर्वैरता अग के अनन्तर भगवद्-वियोगी जीवात्मा रूप सुन्दरी के भगवत्प्रेम आदि का परिचय देने के लिये 'सुन्दरी का अग' कहने मे प्रवृत्त हुये मगल कर रहे है—

दादू नमो नमो निरजन, नमस्कार गुरुदेवत ।
वन्दन सर्व साधवा, प्रणाम पारंगत ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से जीवात्मा-सुन्दरी वियोग जन्य क्लेश से पार होकर परब्रह्म-पति को प्राप्त करती है, उन निरजन राम, सद्गुरु और सर्व सतो को हम अनेक प्रणाम करते है।

सुन्दरी विलाप

आरत[1]-वन्ती[2] सुन्दरी, पल पल चाहे पीव ।
दादू कारण कंत के, तालाबेली[3] जीव ॥ २ ॥

२-८ मे वियोगिनी जीवात्मा का विलाप दिखा रहे है—भगवद् वियोग जन्य दु ख[1] से युक्त[2] जीवात्मारूप सुन्दरी पल-पल मे परमात्मा रूप स्वामी के मिलने की इच्छा करती हुई विलाप करती है और स्वामी की प्राप्ति के लिये अपने मन मे व्याकुल[3] होती रहती है।

काहे न आवहु कत घर, क्यों तुम रहे रिसाइ ?
दादू सुन्दरि सेज पर, जन्म अमोलक जाइ ॥ ३ ॥

हे स्वामिन्! आप क्यो रुष्ट हो रहे है ? अन्त करण घर मे आकर मेरी वृत्ति-शय्या पर क्यो नही विराजते ? आपकी स्वरूपाकार वृत्ति बिना मेरा यह अमूल्य नर जन्म व्यर्थ ही जा रहा है।

आतम अंतर आव तू, या है तेरी ठौर।
दादू सुन्दरि पीव तू, दूजा नाहीं और ॥ ४ ॥

आप अन्त करण मे पधारिये, यह आप ही का स्थान है, मुझ सुन्दरी के तो आप ही स्वामी है और कोई दूसरा हमारा स्वामी नही है।

दादू पीव न देख्या नैन भर, कंठ न लागी धाइ।
सूती नहिं गल बाँह दे, बिच ही गई विलाइ ॥ ५ ॥

परब्रह्म को ज्ञान-नेत्र से इच्छा भरके न देख सकी, न सासारिक भावनाओ से दूर दौड कर ब्रह्माकार रूप कठ से लग सकी और न अभेद अवस्था रूप गल बाँह देकर लय रूप निद्रा मे सो सकी, बीच मे ही वृत्ति-प्रमाद द्वारा विषयो मे विलीन हो गई।

सुरति पुकारै सुन्दरी, अगम अगोचर जाइ ।
दादू विरहनि आतमा, उठ उठ आतुर धाइ ॥ ६ ॥

वियोगिनी जीवात्मा-सुन्दरी, सासारिक भावनाओ से ऊपर उठ-उठ कर शीघ्रता के साथ भगवत् प्रेम-पथ मे दौड़ती है अर्थात् भगवत् मे अति प्रेम करती है और वृत्ति द्वारा अगम अगोचर परब्रह्म के समीप जाकर उससे अभेद होने के लिए प्रार्थना करती है।

साँई कारण सेज सॅवारी, सब तैं सुन्दर ठौर।
दादू नारी नाह[1] बिन, आण[1] बिठाये और ॥ ७ ॥

हे स्वामिन्! आप के लिए सबसे अति सुन्दर स्थान अन्त करण मे शुद्ध वृत्ति रूप शय्या तैयार की है। अब यदि आप नही पधार रहे है, तब हम जीवात्मा रूप वियोगिनी नारी आप परमेश्वर पति[1] के बिना इस पर अन्य[1] देवादि व विषयादि को लाकर[1] बिठावे, यह तो उचित नही। अत शीघ्र पधारने की कृपा करे।

कोई अवगुण मन बस्या, चित तैं धरी उतार।
दादू पति बिन सुन्दरी, हांढै[1] घर-घर बार ॥ ८ ॥

अवश्य ही कोई न कोई अवगुण मेरे प्रभु के मन मे बस रहा है, तभी तो उन्होंने मुझे अपने मन से हटा दिया है, किन्तु हे स्वामिन्! आपके बिना व्यथित यह सुन्दरी आप की प्राप्ति के लिये शास्त्र और सत रूप घर-घर के विचार रूप द्वार पर भटक[1] रही है। इसे आपकी प्राप्ति पर ही शान्ति मिल सकेगी। परमेश्वर की अनुरक्ति के बिना यह जीवात्मा सासारिक विषयो मे बार-बार भटकेगी।

अन्य लग्न व्यभिचार

प्रेम प्रीति सनेह बिन, सब झूठे श्रृंगार।
दादू आतम रत नहीं, क्यों मानै भरतार[1] ॥ ९ ॥

९ मे कहते है—भगवद् भिन्न अन्य विषयादि से प्रीति करना व्यभिचार है-भगवद् वचनो मे प्रेम, सतो मे प्रीति और परमात्मा मे स्नेह बिना आडम्बर मात्र साधन रूप सभी श्रृङ्गार व्यर्थ है। जब तक जीवात्मा-सुन्दरी परमात्मा रूप स्वामी से अनुरक्त न हो तब तक परमात्मा पति[1] उसे अपनी प्रियतमा कैसे मानेगा ?

सुन्दरी विलाप

दादू हूं सुख सूती नींद भर, जागै मेरा पीव।
क्यों कर मेला होइगा, जागै नांही जीव ॥ १० ॥

१०-१६ मे वियोगिनी सुन्दरी का विलाप दिखा रहे है—मेरा स्वामी परमात्मा तो निरतर जागता ही रहता है किन्तु मै ही वियोग जन्य दु ख से व्यथित नही हुई तथा विषयो मे ही सुख मान कर घोर अज्ञान-निद्रा मे सूती हू। जब तक मेरा अन्त करण अज्ञान-निद्रा को त्याग कर ज्ञान-जागृत मे नही आयेगा, तब तक उससे मिलन कैसे होगा ?

सखी न खेलै सुन्दरी, अपने पीव सौं जाग।
स्वाद न पाया प्रेम का, रही नहीं उर लाग ॥ ११ ॥

हे सत-सखी! जब तक इस जीवात्मा-सुन्दरी ने अज्ञान निद्रा से जागकर परब्रह्म स्वामी के साथ उसी का चिन्तन रूप खेल खेलते हुये उसके स्वरूप रूप छाती से लगकर अभेद स्थिति मे परमानन्द नही प्राप्त किया, तो जीवन व्यर्थ ही है।

पंच दिहाडे पीव सौ, मिल काहे न खेले।
दादू गहली सुन्दरी, क्यों रहै अकेले॥ १२॥

अरी मेरी जीवात्मा रूप पगली सुन्दरी! सप्ताह मे एक दिन जन्म का और एक मरण का छोड़ कर पाच ही दिन तो जीवन के है। तू शीघ्र ही साधन द्वारा परब्रह्म से मिलकर उनका साक्षात्कार रूप खेल क्यो नहीं खेलती ? तू अकेली रह कर क्यो खेद उठा रही है ?

सखी सुहागिनि सब कहे, हूं री[1] दुहागिनि आहि।
पिव का महल न पाइये, कहा पुकारूं जाइ॥ १३॥

हे सत-सखी! मुझे सभी लोग कहते है, इसे परमात्मा-पति प्राप्त है। अरी[1], मुझे वह प्राप्त नही है,आह! मै तो उसके बिना दुहागिनी हूँ। मुझे उस परमात्मा का समाधि रूप महल भी नही मिल रहा है। यदि दर्शनार्थ प्रार्थना भी करू, तो कहा जाकर करू ?

सखी सुहागिनि सब कहैं, कंत न बूझै बात।
मनसा वाचा कर्मणा, मूर्च्छ मूर्च्छ जिव जात॥ १४॥

संत-सखी! मुझे सभी कहते है—इसे परमात्मा प्राप्त है, किन्तु परमात्मा तो हमारे सुख दु ख की बात भी नहीं पूछते। हम मन-वचन-कर्म से सत्य ही कहते है, उनके दर्शन के लिये हमारा मन बारबार मूर्छित हो जाता है।

सखी सुहागिनि सब कहैं, पिव सौ परस न होइ।
निशवासर दुख पाइये,यहु व्यथा न जानै कोइ॥ १५॥

सत-सखी! मुझे सब कहते है—इसे परमात्मा प्राप्त है, किन्तु परमात्मा से मिलन तो होता ही नही। उससे मिलने के लिए रात्रि-दिन वियोग जन्य क्लेश पा रही हूँ। यह हमारी व्यथा कोई भी नही जानता।

सखी सुहागिनि सब कहै, प्रकट न खेलै पीव।
सेज सुहाग न पाइये, दुखिया मेरा जीव॥ १६॥

सत-सखी! मुझे सभी कहते है—इसे प्रभु प्राप्त है, किन्तु प्रकट रूप से तो परमात्मा मेरे साथ अरस-परस रूप खेल नही खेलते। मेरी हृदय-शय्या पर निरन्तर विराजे रहे, ऐसा सुहाग-सुख मुझे नही प्राप्त हो रहा है। अत मेरा मन बडा दु खी है।

प्रसग—साँभर-सरोवर के मध्य की छतरी पर महाराज ध्यानस्थ थे। उसी समय वहा एक सत जा पहुँचे और ध्यान खुलने पर 'आप भगवत् प्राप्त सत है', ऐसी बातो द्वारा महाराज की स्तुति करने लगे, तब उन्ही सतजी को १३ से १६ तक की साखियाँ कही थी।

अन्य लग्न व्यभिचार

पुरुष पुरातन छाडकर, चली आन के साथ।
सो भी संग तै बीछुट्या, खड़ी मरोड़ै हाथ॥ १७॥

१७ मे कहते है-व्यभिचार से दु ख होता है—जो जीवात्मा-सुन्दरी परब्रह्म रूप पुराने पुरुष

को छोड, अन्य नूतन पति देव के साथ लगती है, तो वह पतिदेव विनाशी होने से उसके सग से जब बिछुडता है, तब "हाय ! अब क्या करू" कह कर खडी-खडी अपने हाथ मरोडती हुई पछताती है। अत अविनाशी परमात्मा को ही सच्चा स्वामी माने।

सुन्दरी-विलाप

सुन्दरि कबहूँ कंत का, मुख सौं नाम न लेइ।
अपने पिव के कारणैं, दादू तन मन देइ ॥ १८ ॥

१८-२२ मे साधक सुन्दरी का विलाप दिखा रहे है—जैसे सुन्दरी अपने मुख से तो पति का नाम उच्चारण भी नही करती किन्तु पति के लिए अपने तन-मन को निछावर कर देती है। वैसे ही उच्चकोटि के सत उच्च-स्वर से तो हरि का नाम उच्चारण नही करते, किन्तु भीतर उसकी प्राप्ति के लिये निरतर विलाप करते हुये अपने तन-मन को प्रभु पर निछावर कर देते है।

नैन बैन कर वारणै, तन मन पिंड पराण।
दादू सुन्दरि बलि गई, तुम पर कंत सुजान ॥ १९ ॥

मेरे हृदय को अच्छी प्रकार जानने वाले स्वामिन् ! मै जीवात्मा-सुन्दरी अपने नेत्र, वचन, मन, प्राणादि सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर आप पर निछावर करके आपकी बलिहारी जाती हूँ।

तन भी तेंरा मन भी तेरा, तेरा पिंड पराण।
सब कुछ तेरा तूं है मेरा, यहु दादू का ज्ञान ॥ २० ॥

मेरे मन, प्राणादि सूक्ष्म शरीर तथा स्थूल शरीरादि सब आपके ही है और आप मेरे है, यही मेरा ज्ञान है।

सुन्दरि मोहै पीव को, बहुत भांति भरतार।
त्यों दादू रिझवै राम को, अनन्त कला करतार ॥ २१ ॥

जैसे सुन्दरी अपने पति को नाना श्रृगार और सेवादि से अपने मे अनुरक्त करती है, वैसे ही विश्व-रचयिता अपने स्वामी राम को हम अनन्त साधन रूप कलाओ से रिझाते है।

नदिया नीर उलंघ कर, दरिया पैली पार।
दादू सुन्दरि सो भली, जाय मिलै भरतार ॥ २२ ॥

आशा-नदी के विषय-मनोरथ-जल को उल्लघन करके तथा ससार-समुद्र के पार जाकर, परमात्मा रूप अपने स्वामी को मिलती है, वही सत-सुन्दरी श्रेष्ठ है।

सुन्दरी सुहाग

प्रेम लहर गह ले गई, अपने प्रीतम पास।
आत्मा सुन्दरि पीव को, विलसै दादू दास ॥ २३ ॥

२३-२७ मे सत-सुन्दरी का सौभाग्य दिखा रहे है—प्रेम-समुद्र की अनन्यावस्था रूप लहरे हमारी आत्म-सुन्दरी की वृत्ति को विषय रूप तट से पकड़ कर अपने प्रियतम परमात्मा के पास ले गई है। अत अब वह परमात्मा के निरन्तर साक्षात्कार करके परम आनन्द का उपभोग कर रही है।

सुन्दरि को सांई मिल्या, पाया सेज सुहाग।
पिव सौ खेलै प्रेम रस, दादू मोटे भाग॥ २४॥

आत्मा-सुन्दरी को परमात्मा की प्राप्ति हुई। अब वह हृदय-शय्या पर प्रभु की उपस्थिति रूप सौभाग्य युक्त होकर अपने स्वामी परमात्मा से अरस-परस रूप खेल खेलती हुई प्रेम-रस का पान करती है। यह उसके महान् सौभाग्य का ही फल है।

दादू सुन्दरि देह मे, साई को सेवै।
राती अपने पीव सौ, प्रेम रस लेवै॥ २५॥

सतात्मा-सुन्दरी अपने शरीर के हृदय-देश मे ही परमात्मा की भक्ति करती है और अपने प्रभु से अनुरक्त होकर प्रेम-रस का पान करती है।

दादू निर्मल सुन्दरी, निर्मल मेरा नाह[1]।
दोन्यो निर्मल मिल रहे, निर्मल प्रेम प्रवाह॥ २६॥

मेरी जीवात्मा-सुन्दरी विषय-वासनादि-मल से रहित होकर, माया-मल रहित अपने स्वामी[1] परब्रह्म से जा मिली है। अब दोनो निर्मल होने से कामना-मल-रहित प्रेम के अखड प्रवाह मे मिले हुये रहते है।

साई सुन्दरि सेज पर, सदा एक रस होइ।
दादू खेलै पीव सौ, ता सम और न कोइ॥ २७॥

इति सुन्दरी का अग समाप्त॥ ३०॥ सा २३४३॥

जिस सत-सुन्दरी की हृदय-शय्या पर परमात्मा सदा एकरस रहते है और जो उनसे अभेद रूप खेल खेलती है, उसके समान सौभाग्यवती और कोई भी नही हो सकती।

इति श्रीदादू गिरार्थ प्रकाशिका सुन्दरी का अग समाप्त ॥ ३०॥

अथ कस्तूरिया मृग का अंग ३१

सुन्दरी अग के अनन्तर कस्तूरिया मृग के दृष्टात से हृदयस्थ परमात्मा को बताने के लिये "कस्तूरिया मृग का अग" कथन मे प्रवृत्त हुये मगल कर रहे है—

दादू नमो नमो निरजन, नमस्कार गुरुदेवत।
वंदनं सर्व साधवा, प्रणाम पारगत॥ १॥

जिनकी कृपा से प्राणी भ्रम से पार होकर हृदयस्थ आत्मा स्वरूप परब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरजन राम, सद्गुरु और सर्व सतो को हम अनेक प्रणाम करते है।

दादू घट कस्तूरी मृग के, भ्रमत फिरै उदास।
अतरगत जाने नहीं, तातै सूघै घास॥ २॥

२-१३ मे हृदयस्थ परमात्मा के स्वरूप को समझा रहे है—जैसे कस्तूरिया मृग "अपने शरीर की नाभि मे कस्तूरी है", यह न जानकर कस्तूरी के लिए दु खी हुआ उसे घास मे सूघ

कर ढूढता हुआ वन मे भटकता फिरता है, वैसे ही अपने हृदय मे स्थित परमात्मा को न जानकर लोग भ्रम-वश तीर्थादि मे खोजते फिरते है।

दादू सब घट में गोविन्द है, संग रहै हरि पास ।
कस्तूरी मृग में बसै, सूंघत डोले घास ॥ ३ ॥

हरि व्यापक होने से सब के पास है और वेद वाणी के द्वारा प्राप्त होने योग्य गोविन्द सबके अन्त करण मे आत्मा रूप से विद्यमान है, तो भी जैसे कस्तूरिया मृग, कस्तूरी अपने मे होने पर भी घास सूघता फिरता है, वैसे ही प्राणी भ्रम-वश परमात्मा को दूर तीर्थादि मे खोजते फिरते है।

दादू जीव न जानै राम को, राम जीव के पास ।
गुरु के शब्दों बाहिरा, तातै फिरै उदास ॥ ४ ॥

राम तो व्यापक होने से जीव के पास ही है किन्तु गुरु के शब्दो को धारण न करने के कारण बहिर्मुख है, इसलिये जीव राम को नही जान पाता और भ्रम वश दु खी हो कर फिरता है।

दादू जा कारण जग ढूंढिया, सो तो घट ही मांहिं ।
मैं तैं पडदा भरम का, तातैं जानत नांहिं ॥ ५ ॥

जिसकी प्राप्ति के लिये सपूर्ण जगत् खोज लिया है, वह परमात्मा तो अपने अन्त करण मे ही है किन्तु "मै तू" आदि अहकार रूप भ्रम का पडदा उसे छिपा रहा है। इसीलिये जीव उसे नही जान पाता।

दादू दूर कहै ते दूर है, राम रह्या भरपूर ।
नैनहुँ बिन सूझै नही, तातैं रवि कत[1] दूर ॥ ६ ॥

जैसे नेत्रहीन को सूर्य नही दीखता तो क्या वह कहीं[1] दूर चला जाता है ? नही, वैसे ही ज्ञानहीन को न भासने से राम दूर नही कहा जाता, वह तो सर्वत्र परिपूर्ण है, किन्तु जो राम को दूर कहते है, वे ही दूर न होने पर भी अज्ञान-वश राम से दूर हो रहे है।

दादू ओडो[1] हूंवो[2] पाण[3] सैं, न लधाऊं[4] मंझ[5] ।
न जातांऊ[6] पाण[7] मैं, तांई[8] क्याऊ[9] पंध[10] ॥ ७ ॥

राम तो अपने[3] से समीप[1] हृदय[5] मे ही था[2] किन्तु अज्ञान के कारण नही मिला[4]। जिसने अपने[7] मे स्थित ब्रह्म को भी न जाना[6] और बाहर भटक रहा है, उसे[8] अन्तरग साधन पथ[10] का उपदेश क्या करना[9] है ? कारण वह बहिर्मुख होने से उसमे लगेगा ही नही।

दादू केई दौडे द्वारिका, केई काशी जांहिं ।
केई मथुरा को चले, साहिब घट ही मांहिं ॥ ८ ॥

ईश्वर दर्शनार्थ कितने ही दौडे-दौडे द्वारिका, कितने ही काशी और कितने ही मथुरा को जा रहे है किन्तु परमात्मा तो अपने अन्त करण मे ही है।

दादू सब घट मांहीं रम रह्या, विरला बूझै कोइ।
सोई बूझै राम को, जे राम सनेही होइ॥ ९॥

राम सभी शरीरो मे दूध मे घृत के समान रमा हुआ है किन्तु उसे इस प्रकार कोई विरला ही समझता है। जो राम का प्यारा है, वही राम को यथार्थ रूप से समझता है।

दादू जडमति जीव जाणै नहीं, परम स्वाद सुख जाइ।
चेतन समझै स्वाद सुख, पीवै प्रेम अघाइ॥ १०॥

जिनकी बुद्धि मायिक जड़ पदार्थों मे ही लगी रहती हे, वे जीव परमानन्द स्वरूप ब्रह्म को नही जान पाते। इसीलिये ब्रह्म-सुख के आस्वादन से वचित रह कर जन्म-मरणादि प्रवाह मे ही वह जाते है, और जो सावधान साधक उस आनन्द स्वरूप ब्रह्म को अद्वेत रूप से समझते है, वे उसके प्रेम रस का पान करते हुये आनन्द रूप आस्वादन से तृप्त होकर सुख-स्वरूप ही हो जाते है।

जागत जे आनन्द करै, सो पावै सुख स्वाद।
सूते सुख ना पाइये, प्रेम गमाया बाद॥ ११॥

जो ज्ञान रूप जाग्रतावास्था मे है, वे समता द्वारा सबके लिये आनन्द का विधान करते हुये ब्रह्म-सुख का रस लेते है और जो अज्ञान निद्रा मे सूते हुये है, उन्हे ब्रह्म सुख नही मिलता। अत उन्होंने अपने हृदय के प्रेम रूप गुण को विषयो मे लगा कर व्यर्थ ही खो दिया।

दादू जिसका साहिब जागणा, सेवक सदा सचेत।
सावधान सन्मुख रहै, गिर गिर पड़ै अचेत॥ १२॥

जिस सत का स्वामी सदा जाग्रत रहने वाला परमात्मा है, तो वह सत सेवक भी ज्ञान द्वारा सावधान रहते हुये, उसकी आज्ञापालन तथा भजन द्वारा उसके सन्मुख रहता है और जिन ससारी लोगो के स्वामी देवादिक सर्वज्ञ न होने के कारण सदा सचेत नही रह सकते, तो उनके सेवक ससारी जन भी ज्ञानरूप चेतना से रहित होने के कारण अपनी वर्तमान अवस्था से भी बारबार नीचे गिर कर चौरासी मे पडते है।

दादू साई सावधान, हम ही भये अचेत।
प्राणी राख न जानहीं, तातै निष्फल खेत॥ १३॥

हम सबका वास्तविक स्वामी परमात्मा तो हमारे कर्मों के अनुसार फल देने के लिये सदा सावधान ही है, किन्तु हम प्राणधारी जीव ही असावधान हो रहे है, जो अपने काया-खेत के दैवी-गुण भक्ति-ज्ञानादि रूप सत्य की रक्षा नही कर पाते। इसीलिये कामादि पशुओ द्वारा वह नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है और हमे ब्रह्म-स्वरूप फल की प्राप्ति नही होती।

सगुना निगुना कृतघ्नी

दादू गोविन्द के गुण बहुत है, कोइ न जानै जीव।
अपनी बूझै आप गति, जे कुछ कीया पीव॥ १४॥

इति कस्तूरिया मृग का अग समाप्त॥ ३१॥ सा २३५७॥

अनन्त गुण युक्त ईश्वर और दैवीगुण रहित कृतघ्नी जीवो का परिचय दे रहे है—वेद-वाणी के प्राप्त होने योग्य भगवान् के जीवो पर किये गये उपकार रूप गुण बहुत है किन्तु भक्ति विचारादि गुणो से रहित कोई भी जीव उनको नही जानता। अत उस परमात्मा ने जो कुछ भी किया है, उस रचना रूप अपनी गति को वह आप ही समझता है, अन्य नही।

इति श्रीदादू गिरार्थ प्रकाशिका कस्तूरिया मृग का अग समाप्त ॥ ३१ ॥

अथ निन्दा का अंग ३२

"कस्तूरिया मृग का अग" के अनन्तर निन्दा सम्बन्धी विचार करने के लिए "निन्दा का अग" कहने मे प्रवृत्त हुये मगल कर रहे है—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत: ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक एकात्म-भाव द्वारा निन्दा से पार होकर परब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरजन राम, सद्गुरु और सर्व सतो को हम अनेक प्रणाम करते है।

मत्सर=ईर्ष्या

साधू निर्मल मल नहीं, राम रमै सम भाइ ।
दादू अवगुण काढ कर, जीव रसातल जाइ ॥ २ ॥

२-३ मे ईर्ष्या का परिणाम बता रहे है—कामादि-मल से रहित सत समत्व-भाव से निरजन राम का चिन्तन करते हुए आनद लेते है, उनमे भी ईर्ष्यालु प्राणी दोष निकालकर उनकी निन्दा करने से स्वय ही अध पतन को प्राप्त होते है।

दादू जब ही साधु सताइये, तब ही ऊंध पलट ।
आकाश धसै, धरती खिसै, तीनो लोक गरक ॥ ३ ॥

ईर्ष्या द्वारा जब भी सत सताया जाता है, तब ही उसका परिणाम विपरीत निकलता है। सताने वाला आकाश मे हो या पृथ्वी पर, उसका पतन ही होता है। सतो को सताने वाला तीनो लोको मे से किसी मे भी क्यो न हो, वह तो नष्ट ही होगा।

निदा

दादू जिहिं घर निन्दा साधु की, सो घर गये समूल ।
तिन की नींव न पाइये, नांव न ठाँव न धूल ॥ ४ ॥

४-८ मे निन्दा के दोष और निन्दा न करने की प्रेरणा कर रहे है-जिन घरो मे सतो की निन्दा होती रही है, वे घर सर्वथा नष्ट हो गये है। उनके नाम के साथ उनके स्थान की नीव और धूलि भी अब नही मिल रही है और उनका कोई भी चिन्ह शेष नही रहा है।

दादू निन्दा नाम न लीजिये, स्वप्नै ही जनि[1] होइ ।
ना हम कहैं, न तुम सुनो, हम जनि भाषै[2] कोइ ॥ ५ ॥

हे साधको ! निन्दा का तो नाम भी मत लो, निन्दा तो स्वप्न मे भी किसी की नहीं[१] होनी चाहिए। हम तो कभी भी किसी की निन्दा नही करते, तुम भी मत सुना करो और हमे भी कोई आकर दूसरे की निदा बोलकर[२] न सुनावे।

दादू निन्दा किये नरक है, कीट पडै मुख माहि।
राम विमुख जामै मरैं, भग-मुख आवैं जाहि ॥ ६ ॥

निन्दा करने से नरक मिलता है और नरक कुण्ड मे पडने पर मुख मे कीट प्रविष्ट होते है वा घोर निन्दा करने से मुख मे भी कीडे पड़ जाते हे। राम से विमुख होने से निन्दक वारम्बार योनि-मुख मे आकर जन्मता है और मर कर चौरासी लक्ष योनियो मे जाता है।

दादू निन्दक बपुरा जनि मरै, पर उपकारी सोइ ।
हम को करता ऊजला, आपण मैला होइ ॥ ७ ॥

बेचारे निदक की मृत्यु नही होनी चाहिए, क्योंकि वह निदा द्वारा हमको तो पवित्र करता है और आप निन्दा-जन्य पाप से मलीन हो रहा है, अत वह तो परोपकारी है।

दादू जिहि विधि आतम उद्धरै, परसे[१] प्रीतम प्राण।
साधु शब्द को निन्दै ना, समझै चतुर सुजाण ॥ ८ ॥

सत-शव्दो के जिस विधि विधान से जीवात्मा ससार से पार होकर प्रियतम परमात्मा को प्राप्त[१] होता है, उन सत-शव्दो की निदा करने से कितनी हानि होती है, उसको श्रेष्ठ बुद्धि वाले चतुर मानव ही समझते है। अत सतो की वाणी की निदा नही करनी चाहिये।

मत्सर=ईर्ष्या

अनदेख्या अनरथ कहै, कलि पृथमी का पाप ।
धरती अम्बर जब लगै, तब लग करै कलाप[१] ॥ ९ ॥

९-११ मे ईर्ष्या द्वारा मिथ्या दोष लगाने वालो का परिचय दे रहे है—जो स्वय बिना देखे ही दूसरो को दोषी ठहराने के लिए अनिष्ट बाते कहते है, वे इस कलियुग मे पृथ्वी के पापो को ही सग्रह कर रहे है और जब तक पृथ्वी आकाश रहेगे, तब तक उन पापो के फल दु ख-समूह को भोगते हुये विलाप[१] करते रहेगे।

अनदेख्या अनरथ कहै, अपराधी ससार ।
जद[१] तद[२] लेखा लेइगा, समर्थ सिरजनहार ॥ १० ॥

ससार के अपराधी प्राणी स्वय बिना देखे ही मिथ्या बुरी बाते कह कर सरल स्वभाव वाले सज्जनो को दोषी ठहराते है किन्तु जब[१] तब[२] कभी तो सृष्टिकर्त्ता समर्थ परमात्मा उनके इन निन्दाकृत पापो का हिसाब उनसे लेगे ही और दड भी देगे ही।

दादू डरिये लोक तै, कैसी धरहि उठाइ ।
अनदेखी अजगैब[१] की, ऐसी कहै बनाइ ॥ ११ ॥

स्वय द्वारा बिना देखी, सर्वथा असभव[१], कैसी मिथ्या बात उठाकर अपने हृदय मे धर लेते है और ऐसी रीति से बना कर कहते है, जिससे दूसरो को क्लेश हो। अत ऐसे लोगो से डरकर बचते ही रहना चाहिए।

अमिट पाप प्रचंड

दादू अमृत को विष, विष को अमृत, फेरि धरैं सब नाम ।
निर्मल मैला, मैला निर्मल, जाहिगे किस ठाम ॥ १२ ॥

ईर्ष्यालु जनो के प्रचड अमिट पाप का परिचय दे रहे है—ज्ञानामृत को तो यह कहकर कि यह तो जन्माभाव के द्वारा अपने अस्तित्व को ही नष्ट करता है इसलिए विष है, और जो मारक विष है, उनके अधरामृत आदि नाम रख लिये है। जो भगवान् के निर्मल भक्त है, उन्हे ईर्ष्या द्वारा मलीन, और जो विषय-वासनाओ से मलीन हृदय है, उन्हे निर्मल कहते है। इसी प्रकार ईर्ष्यालु मानवो ने मदिरादि सभी मलीन वस्तुओ के 'सुरा' जैसे नाम बदल कर इच्छानुसार रख लिये है। किन्तु इस प्रचड अमिट पाप के द्वारा पतित होकर ये नरक के किस स्थान मे जायेगे ? अर्थात् अवश्य कुभी-पाकादि घोर नरक मे ही जायेगे।

मत्सर-ईर्ष्या

दादू साचे को झूठा कहैं, झूठे को साचा ।
राम दुहाई काढिये, कंठ तैं वाचा[१] ॥ १३ ॥

१३-१६ मे ईर्ष्यालुओ का परिचय दे रहे है—ईर्ष्यालु लोग ईर्ष्यावश कठ से राम की शपथ रूप वचन[१] निकाल कर के भी सच्चे को झूठा और झूठे को सच्चा कह देते है।

झूठ न कहिये साच को, साच न कहिये झूठ ।
दादू साहिब मानै नही, लागै पाप अखूट[१] ॥ १४ ॥

झूठ को सत्य और सत्य को झूठा नही कहना चाहिए। इस विपरीत कथन को भगवान् अच्छा नही मानते और कहने वाले को अक्षय[१] पाप लगता है।

दादू झूठ दिखावै साच को, भयानक भयभीत ।
साचा राता साच सौं, झूठ न आनै चीत ॥ १५ ॥

ईर्ष्यालु लोग सत्य को मिथ्या करके दिखाते है-यदि उनकी बात कोई नही माने तो वे भयानक परिणाम दिखा कर उसे भयभीत करते है, किन्तु फिर भी सच्चा व्यक्ति तो सत्य मे ही अनुरक्त रहता है। वह उनके भय से अपने चित्त मे मिथ्या को नही लाता।

साचे को झूठा कहै, झूठा साच समान ।
दादू अचरज देखिया, यहु लोगों का ज्ञान ॥ १६ ॥

सच्चे को तो झूठा कहते है और झूठे को सच्चे के समान समझते है। ससार मे यह बडा ही आश्चर्य देखा गया है। ईर्ष्यालु लोगो का यही ज्ञान है।

निन्दा

दादू ज्यो ज्यों निन्दै लोग विचारा, त्यो त्यो छीजै रोग हमारा ॥ १७ ॥

इति निन्दा का अग समाप्त ॥ ३२ ॥ सा २३७४ ॥

सारग्राहक दृष्टि से निन्दा को उपकार बता रहे है—जैसे-जैसे साधक-सतो की लोग निन्दा करते है, वैसे-वैसे ही उनका साधन-प्रमाद-रोग घट कर ईश्वर मे दृढ-विश्वास रूप निरोगता बढती जाती है।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका निन्दा का अग समाप्त ॥ ३२ ॥

अथ निगुणा का अंग ३३

निन्दा-अग के अनन्तर कृतघ्नी सबधी विचार करने के लिए "निगुणा का अग" निरूपण करने मे प्रवृत्त हुये मगल कर रहे है।

दादू नमो नमो निरजन, नमस्कार गुरुदेवत· ।
वन्दन सर्व साधवा, प्रणाम पारंगत ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से प्राणी कृतघ्नता से पार होकर, कृतज्ञता पूर्वक भक्तिज्ञानादि द्वारा परब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरजन राम, सद्गुरु और सर्व सतो को हम अनेक प्रणाम करते है।

सगुणा निगुणा कृतघ्नी

दादू चदन बावना, बसै बटाऊ आइ ।
सुखदाई शीतल किये, तीन्यो ताप नशाइ ॥ २ ॥

२-३ मे सुगुणी और सुगुण रहित कृतघ्नी का परिचय दे रहे है—जैसे सबसे श्रेष्ठ बावना चदन अपने नीचे आकर बैठने वाले पथिक के, सुखप्रद सुगधित शीतल छाया से (१) आतप जन्य, (२) स्वेद-दुर्गन्ध जन्य और (३) मार्ग जन्य तीनो दु खो को नष्ट करता है, वैसे ही भक्ति-ज्ञानादि गुण-युक्त सत के पास, प्रभु-पथ का पथिक जिज्ञासु जाता है तो सत परम सुखप्रद ज्ञानयुक्त भक्ति प्रदान करके उसके १ दैहिक २ भौतिक और ३ दैविक, तीनो तापो को नष्ट करते है।

काल कुहाड़ा हाथ ले, काटन लागा ढाइ ।
ऐसा यहु ससार है, डाल मूल ले जाइ ॥ ३ ॥

२ मे कथित उपकारक चन्दन के नीचे यदि कोई कृतघ्नी आकर बैठ जाय तो उसके उपकार को न मान कर द्रव्य के लोभ से कुल्हाड़ा लेकर उसे काटने लगता है और उसे गिराकर, डाल- मूलादि सभी को बेच देता है। वैसे ही ससार मे ये कृतघ्नी प्राणी सतो के पास जाकर समय रूप कुल्हाडे के द्वारा उनके मूल-ज्ञान और युक्ति आदि डालो के सहित सब शिक्षा छीन लाता है, फिर उनकी निन्दा करते हुये उक्त ज्ञान जनता को सुना कर अपने इन्द्रिय-पोषण के लिये धनराशि सग्रह करके विलासी बन जाता है।

अज्ञ स्वभाव अपलट

सद्गुरु चन्दन बावना, लागे रहैं भुवंग।
दादू विष छाडै नहीं, कहा करै सत्संग ॥ ४ ॥

४-१० मे कहते है—अज्ञानी कृतघ्न का स्वभाव नही बदलता, जैसे सर्प विष-शाति के लिए बावने चन्दन पर लिपटे तो रहते है किन्तु अपने दोष विष को नही छोडते, वैसे ही अज्ञानी कृतघ्नी प्राणी सतो के पास तो रहते है किन्तु अपने दोषो को नही छोडते। तब सत्सग उनका क्या भला करेगा ?

दादू कीडा नरक[1] का, राख्या चन्दन मांहिं।
उलट अपूठा नरक में, चन्दन भावै नांहिं ॥ ५ ॥

जैसे मल[1] कीट को चन्दन मे रख दे तो उसे चदन अच्छा नहीं लगता, वह पुन लौटकर मल मे ही जायेगा। वैसे ही अज्ञानी कृतघ्नी को भक्ति ज्ञानादि अच्छे नही लगते, उनका उपदेश करने पर भी उन्हे छोड कर विषयो मे ही जायगा।

सद्गुरु साधु सुजान है, शिष का गुण नहिं जाइ।
दादू अमृत छाड कर, विषय हलाहल खाइ ॥ ६ ॥

सद्गुरु तो अच्छे ज्ञानी और श्रेष्ठ स्वभाव के है किन्तु शिष्य का कृतघ्नता-दोष रूप गुण हृदय से नही दूर होता। वह ज्ञानामृत को छोडकर विषय रूप महा-विष ही खाता है। अत अज्ञानी कृतघ्नी का स्वभाव नही बदलता।

कोटि वर्ष लौं राखिये, बंसा चंदन पास।
दादू गुण लीये रहै, कदे न लागै बास ॥ ७ ॥

कोटि वर्ष तक बास को चदन के पास रखने पर भी वह अपने बासपने के गुण को ही लिये रहता है, चन्दन की सुगन्ध उसमे नही प्रविष्ट होती। वैसे ही अज्ञानी कृतघ्न को चाहे दीर्घकाल तक सत के पास रक्खो तो भी वह अपने कृतघ्नता रूप दोष को नही त्यागता और न भक्ति-ज्ञानादि को धारण करता है।

कोटि वर्ष लौं राखिये, पत्थर पानी मांहिं।
दादू आडा अंग है, भीतर भेदै नांहिं ॥ ८ ॥

कोटि वर्ष तक पत्थर को जल मे रक्खो तो भी उसके कठोरता रूप लक्षण की आड होने से जल उसमे प्रविष्ट होकर उसे नर्म नही कर सकता। वैसे ही अज्ञानी कृतघ्न को दीर्घकाल तक सत के पास रक्खो तो भी उसके कृतघ्नता रूप लक्षण की आड होने से सत वचन उसके भीतर के अज्ञान को नही मिटा सकते।

कोटि वर्ष लौं राखिये, लोहा पारस संग।
दादू रोम का अंतरा[1], पलटै नांहीं अंग ॥ ९ ॥

एक बाल जितनी दूरी[1] बीच मे रखकर कोटि वर्ष तक लोहे को पारस के पास रक्खो तो भी

लोहा सुवर्ण नही हो सकेगा। वैसे ही किंचित् भी कृतघ्नता रूप दोष रहने पर सत के सग से कृतघ्न व्यक्ति भक्त नही हो सकता।

कोटि वर्ष लौं राखिये, जीव ब्रह्म सग दोइ।
दादू माहीं वासना, कदे न मेला[1] होइ॥ १० ॥

ब्रह्म रूप सत और कृतघ्नी जीव को चाहे कोटि वर्ष तक साथ रखो, तो भी कृतघ्नी के भीतर भोग-वासना रहने से उसे कभी भी ब्रह्म प्राप्ति[1] नही हो सकती।

सगुणा निगुणा कृतघ्नी

मूसा जलता देखकर, दादू हंस दयाल।
मानसरोवर ले चल्या, पखा काटे काल॥ ११ ॥

११-१३ मे सुगुणी और दैवी गुण रहित कृतघ्नी का परिचय दे रहे है—एक चूहा अग्नि के घेरे मे आकर जलने वाला ही था कि एक दयालु हस ने उसे वहा से उठाकर अपनी पीठ पर रखा और मानसरोवर को चल दिया, किन्तु कृतघ्नी चूहे ने उसी के पख काटना आरभ कर दिया। ऐसे ही दयालु सत त्रिताप से जलते हुये जीव को उपदेश द्वारा उठा कर भगवान् की ओर ले जाते है, तब वह कृतघ्नी जीव उन्ही के उपदेश का खडन करने लगता है।

सब जीव भुवगम कूप मे, साधू काढै आइ।
दादू विषहर[1] विष भरै, फिर ताही को खाइ॥ १२ ॥

जैसे कूप मे पडे हुये सर्प को कोई भला मानव निकालता है तो वह उसे ही खाने को तैयार होता है। वैसे ही सभी कृतघ्नी ससारी जीव विषय-वासना रूप विष से भरे हुये ससार-कूप मे पडे है, उन्हे सत उपदेश द्वारा निकालने का उद्योग करते है तो वे उलटे उन्हे ही व्यथित करने मे प्रवृत्त होते है।

दादू दूध पिलाइये, विषहर[1] विष कर लेइ।
गुण का औगुण कर लिया, ताही को दुख देइ॥ १३ ॥

जैसे सर्प[1] को दूध पिलाने पर वह दूध उसमे विष बनकर उसी को जलाता है, वैसे ही कृतघ्न को उपदेश देने पर वह गुण रूप उपदेश भी उसमे दूसरो को जाल मे फँसाने का साधन बनकर पाप द्वारा उसे दु ख ही देता है।

अज्ञ स्वभाव अपलट

बिन ही पावक जल मुवा, जवासा जल मांहि।
दादू सूखै सींचताँ, तो जल को दूषण नाहि॥ १४ ॥

अज्ञानी कृतघ्न का स्वभाव नही बदलता, यह कह रहे है—जैसे जवासा बादल द्वारा जल सीचते रहने पर भी बिना अग्नि ही सूख कर जल मरता है, तब जल को क्या दोष है ? वैसे ही सतो के द्वारा सुन्दर उपदेश देते रहने पर भी कृतघ्न पर उसका कोई प्रभाव नही पडता और वह दुष्कर्म करने के अपने स्वभाव से ही दुखी हो, तब उपदेश को क्या दोष है ?

सगुणा, निगुणा कृतघ्नी

सुफल वृक्ष परमार्थी, सुख देवै फल फूल ।
दादू ऊपर बैस कर, निगुणा काटै मूल ॥ १५ ॥

१५-२८ मे सुगुणी कृतज्ञ और दुर्गुणी कृतघ्न सम्बन्धी विचार कह रहे है—ज्ञान, भक्ति आदि सुन्दर फल-फूलो वाला परमार्थी सत-वृक्ष ज्ञान-भक्ति आदि फल-फूल प्रदान करके सभी को सुख ही देता है, किन्तु कृतघ्न उसी पर बैठकर अर्थात् सत-वृक्ष के आश्रय निर्वाह करता हुआ भी निन्दादि-कुल्हाडे से उन्ही की जड काटता है और उससे होने वाली अपनी हानि को नही समझता ।

दादू सगुणा गुण करै, निगुणा मानै नाहिं ।
निगुणा मर निष्फल गया, सगुणा साहिब मांहिं ॥ १६ ॥

सुन्दर गुण वाले सत तो सभी का उपकार ही करते है किन्तु गुण रहित कृतघ्न उनके उपकार रूप गुण को नही मानता। अत वह ज्ञान-फल के प्राप्त हुये बिना ही मर कर अन्य शरीर को धारण करने जाता है और ज्ञान-भक्ति आदि सुन्दर गुणो से युक्त सत ब्रह्म मे लय होता है ।

निगुणा गुण मानै नहीं, कोटि करै जे कोइ ।
दादू सब कुछ सौंपिये, सो फिर बैरी होइ ॥ १७ ॥

गुण न मानने वाले कृतघ्न के प्रति कोटि उपकार भी करे, तो भी वह गुण नही मानता। यदि उसे अपना सब कुछ भी समर्पण कर दे, तो भी वह आगे शत्रु ही बन जायेगा।

दादू सगुणा लीजिये, निगुणा दीजे डार ।
सगुणा सन्मुख राखिये, निगुणा नेह निवार ॥ १८ ॥

सुन्दर गुण युक्त कृतज्ञ को ही मित्र रूप से ग्रहण करना चाहिए और गुण न मानने वाले कृतघ्न को त्याग देना चाहिए। सुगुण युक्त कृतज्ञ को अपने पास सन्मुख ही रखना चाहिए और गुण न मानने वाले कृतघ्न से प्रेम हो, तो उससे प्रेम हटा लेना चाहिए।

सगुणा गुण केते करै, निगुणा न मानै एक ।
दादू साधू सब कहैं, निगुणा नरक अनेक ॥ १९ ॥

सुगुण युक्त कृतज्ञ अपने पर किये उपकार को बहुत बढ़ाकर मानता है किन्तु सुगुण रहित कृतघ्न के कितने ही उपकार करो तो भी वह एक नही मानता। इसीलिए सब सत कहते है—कृतघ्न को अनेक नरक प्राप्त होते है अर्थात् वह अनेक वर्षों तक नरक मे रहता है।

सगुणा गुण केते करै, निगुणा नाखै[1] ढाहि[2] ।
दादू साधू सब कहैं, निगुणा निष्फल जाइ ॥ २० ॥

सुगुण सपन्न मानव चाहे कितने ही उपकार करे, किन्तु कृतघ्न तो उन सब के अहसान को मिटाकर[2] रख[1] देता है, लेश भी नही मानता। इसीलिए सब सत कहते है कि कृतघ्न ज्ञान-फल प्राप्त किये बिना ही मर जाता है।

सगुणा गुण केते करै, निगुणा न मानै कोइ।
दादू साधू सब कहै, भला कहा ते होइ ॥ २१ ॥

सुगुण सपन्न पुरुष अनेक उपकार करता है किन्तु कृतघ्न किसी एक को भी नहीं मानता। इसीलिए सब सत कहते है—"कृतघ्न का भला किस प्रकार से हो सकता है ?"

सगुणा गुण केते करे, निगुणा न मानै नीच।
दादू साधू सब कहै, निगुणा के शिर मीच[1] ॥ २२ ॥

सुन्दर गुण वाला कृतज्ञ पुरुष अनेक भलाई करे तो भी कृतघ्न अपने कृतघ्नता रूप नीच स्वभाव के कारण उनको नही मानता। इसीलिए सब सत कहते है—कृतघ्न के सिर पर तो सदा मौत[1] मँडराती रहती है अर्थात् वह बारबार मरता ही रहेगा।

साहिबजी सब गुण करै, सद्गुरु के घट होइ ।
दादू काढै काल मुख, निगुणा न मानै कोइ ॥ २३ ॥

परमात्मा सद्गुरु के शरीर द्वारा जीवो को काल-मुख से बचाने का प्रयत्न करते है, किन्तु कृतघ्न जीव गुरु के उपदेश को मानते ही नही।

साहिबजी सब गुण करै, सद्गुरु मांहीं आइ ।
दादू राखै जीव दे, निगुणा मेटैं जाइ ॥ २४ ॥

परमात्मा जीवो के कल्याण की भावना से सद्गुरु रूप मे आकर सब प्रकार से उपकार करते हुए जीव के वास्तव-स्वरूप का बोध प्रदान करके रक्षा करते है, किन्तु कृतघ्न विषयासक्ति के कारण उस ज्ञान का खडन करता जाता हे, मानता ही नही।

साहिबजी सब गुण करै, सद्गुरु का दे सग।
दादू परलै[1] राखिले, निगुणा न पलटै अग[1] ॥ २५ ॥

परमात्मा सद्गुरु का सग देकर ज्ञानोपदेश द्वारा जीवो को बारबार विनाश[1] से बचाकर अपने स्वरूप मे लय करते है, किन्तु सद्गुरु का ज्ञानोपदेश न मानकर कृतघ्न अपने कृतघ्नता आदि लक्षण[1] बदलता ही नही, तब उसका उद्धार कैसे हो ?

साहिबजी सब गुण करै, सद्गुरु आडा[1] देइ।
दादू तारै देखता, निगुणा गुण नहि लेइ ॥ २६ ॥

परमात्मा सद्गुरु को बीच[1] मे रखकर जीवो के लिए सब प्रकार से उपकार ही करते है और जीवन काल मे ही देखते-देखते ज्ञान द्वारा उद्धार कर देते है, किन्तु कृतघ्न तो उनके ज्ञान-गुण को धारण करता ही नही, तब उसका उद्धार कैसे हो ?

सद्गुरु दीया रामधन, रहै सुबुद्धि बताइ।
मनसा वाचा कर्मणा, बिलसै वितडै खाइ ॥ २७ ॥

सद्गुरु ने सभी को रामस्वरूप सम्बन्धी ज्ञान-धन दिया है, किन्तु जो कृतज्ञ साधक अपनी श्रेष्ठ बुद्धि का परिचय देता है अर्थात् मनन द्वारा उसे स्मरण रखता है, उसी मे वह ज्ञान-

धन रहता है और वही बुद्धि द्वारा विचार से उसका आनन्द लेता है। वाणी से उसे वितरण करता है और समता पूर्वक क्रिया द्वारा परम सुख का उपभोग करता है, अन्य कृतघ्न आदि को यह लाभ नही होता है।

कीया कृत मेटै नही, गुण हीं मांहिं समाइ।
दादू बधै अनन्त धन, कबहूँ कदे न जाइ ॥ २८ ॥

इति निगुणा का अग समाप्त ॥ ३३ ॥ सा २४०२ ॥

जो कृतज्ञ साधक अपने पर किये हुये सद्गुरु के ज्ञानोपदेश रूप उपकार को भूलता नही, उसमे अपने मन को लगा कर, परोपकारी बनकर स्वय उपदेश करता है, तब उसके ज्ञान-धन की अपार वृद्धि होती है और कभी भी किसी भी अवस्था मे वह ज्ञान-धन नष्ट नही होता।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका निगुणा का अग समाप्त ॥ ३३ ॥

अथ विनती का अंग ३४

निगुणा-अग के अनन्तर भगवदनुग्रहार्थ भगवान् से विनय करने के लिए 'विनती का अग' कहने मे प्रवृत्त हुये मगल कर रहे है—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत. ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से प्राणी भगवद् भक्ति युक्त हो भगवद् विनय द्वारा निर्दोष होकर परब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरजन राम, सद्गुरु और सर्व सतो को हम अनेक प्रणाम करते है।

करुणा

दादू बहुत बुरा किया, तुम्हें न करना रोष।
साहिब समाई का धनी, बन्दे को सब दोष ॥ २ ॥

२-१० मे पूर्व-प्रमाद का खेद प्रकट करते हुये विनय कर रहे है—प्रभो! प्राणी को स्वभावत ही सब दोष आ घेरते है, उन दोषो के कारण हमने प्राय अधिकतर बुरे ही कार्य किये है, किन्तु फिर भी आप तो क्षमा-धन के धनी है। अत क्रोध न करके कृपा ही करेगे।

यह साखी तथा विनती अग की विशेष कर रचना आमेर-जयपुर के मध्य की घाटी मे हुई थी। प्रसग कथा=दृ सु सि त ९-१५२ मे देखो।

दादू बुरा बुरा सब हम किया, सो मुख कह्या न जाइ ।
निर्मल मेरा सांइयाँ, ताको दोष न लाइ ॥ ३ ॥

अहो! हमने तो सब बुरे ही बुरे कर्म किये है और वे इतने बुरे है कि—सकोचवश हम अपने मुख से उनका कथन भी नही कर सकते। अत परमात्मा को यह दोष कभी नही लगाना चाहिए कि "वे दु ख दे रहे है।" कारण, वे हमारे परमेश्वर तो परम निर्मल है, उनमे दोष कैसा ?

सांई सेवा चोर मैं, अपराधी बन्दा।
दादू दूजा को नहीं, मुझ सरीषा[1] गन्दा ॥ ४ ॥

अहो ! मै भगवत् की आज्ञानुसार भक्ति नही कर रहा हूँ। अत मेरे समान[1] मलीन और अपराधी दास अन्य कौन होगा ?

तिल तिल का अपराधी तेरा, रती रती का चोर।
पल पल का मैं गुनही[1] तेरा, बख्शो[2] अवगुण मोर॥ ५॥

हे प्रभो ! मै तो एक-एक क्षण के सकल्प रूप कार्यों मे भी निर्दोष नहीं रहने से आपका अपराधी हूँ और छोटे-छोटे कार्य भी आपकी आज्ञानुसार नहीं कर सकने से चोर हू। यदि मै अपने जीवन के समय की ओर देखता हूँ तो प्रत्येक पल मे आपका अपराधी[1] ठहरता हूँ। मै अपने पुरुषार्थ से आपके सन्मुख निर्दोष वन सकू, ऐसी मुझे आशा नहीं है। अत आप मेरे अवगुण क्षमा[2] करने की कृपा करे।

महा अपराधी एक मैं, सारे इहि संसार।
अवगुण मेरे अति घणे, अंत न आवै पार॥ ६॥

प्रभो ! इस मपूर्ण ससार मे एक मैं ही महान् अपराधी हूँ। मेरे अवगुण तो इतने अत्यधिक है कि मे अपने पुरुषार्थ से उनका अन्त करके उनके पार चला जाऊ, ऐसा सभव ज्ञात नहीं होता।

वे मरयादा[1] मित नहीं, ऐसे किये अपार।
मैं अपराधी बापजी[2], मेरे तुमहीं एक आधार॥ ७॥

जिन मे लोक मर्यादा और वेद मर्यादा की सीमा[1] का निर्वाह नही होता, ऐसे अनन्त कार्य मैने किये है। अत मै अपराधी तो हूँ ही, किन्तु हे पिताश्री[2] ! अब मैंने केवल आपका ही आश्रय लिया है। इससे मुझे आशा है-आप मेरा उद्धार करेगे।

दोष अनेक कलंक सब, बहुत बुरा मुझ माहि।
मैं कीये अपराध सब, तुम तै छाना नांहिं॥ ८॥

प्रभो ! मेने अनेक अवगुण किये है, मुझ मे सभी दोष है तथा और भी बहुत बुरापन है। अत मैंने अपनी आयु मे सब अपराध ही किये है। आप सर्वज्ञ होने से उन सबको जानते ही है।

गुनहगार[1] अपराधी तेरा, भाज कहां हम जांहिं।
दादू देख्या शोध सब, तुम बिन कहीं न समाहि॥ ९॥

प्रभो ! हम पापी[1] होने से आपके अपराधी है, किन्तु अब आप से डर कर भागे तो जावे कहा ? कारण, आप सर्वव्यापक है, जहा हम जायेगे वहा ही आप आगे मिलेंगे। अत हमने तो सब प्रकार का विचार करके देख लिया है-आपके बिना हमारा आश्रय अन्य कोई नही हो सकता।

आदि अत लौ आय कर, सुकृत कछू ना कीन्ह।
माया मोह मद मत्सरा, स्वाद सबै चित दीन्ह॥ १०॥

मैने इस ससार मे जन्म धारण करके जन्म से आज तक कुछ भी पुण्य कार्य नहीं किया,

प्रत्युत धनादि के मोह मे, शरीरादि के गर्व मे, प्रतिकूल व्यक्तियो से ईर्ष्या मे और इन्द्रिय-विषय-जन्य आनन्द मे ही अपना मन लगाया है।

विनती

काम क्रोध संशय सदा, कबहूँ नाम न लीन ।
पाखंड प्रपंच पाप में, दादू ऐसे खीन[1] ॥ ११ ॥

११-२० मे विनय कर रहे है—मेरे अन्त करण मे सदा काम, क्रोध और नाना प्रकार के सशय भरे रहे, कभी भी मन से भगवान् का नाम नही लिया। बाहर के आडम्बर और वचन-चातुर्य रूप छल से पाप कार्यों मे ही प्रवृत्त होता रहा। इसी प्रकार मेरी आयु क्षीण[1] हो गई।

दादू बहु बन्धन सौं बधिया, एक विचारा जीव।
अपने बल छूटै नहीं, छोडनहारा पीव ॥ १२ ॥

यह पराधीन अकेला जीव कर्म, विषयाशा, देहाध्यास, अज्ञानादि नाना बन्धनो से बँधा हुआ है। अपने उद्योग-बल से छूटना सभव नही। अत. उक्त बधनो से मुक्त कराने वाले तो एक आप परमात्मा ही है।

दादू बन्दीवान है, तूं बंदि छोड दीवान[1]।
अब जनि[4] राखो बंदि में, मीरॉ[2] मेहरबान[3] ॥ १३ ॥

हे मेरे न्यायकारी[1] स्वामिन्[2]! जीव कर्म-कैदखाने मे कैदी बन रहे है और आप बद्ध को मुक्त करने वाले है। ऐसा शास्त्र और सतो से सुनते आ रहे है। अत हे दयालो[3]! अब हमे भव-बन्धन मे मत[4] रखिये, हमारी अज्ञानबेडी काट कर हमे कर्म-कारागृह से मुक्त कर दीजिये।

दादू अंतर कालिमा, हिरदै बहुत विकार ।
प्रकट पूरा दूर कर, दादू करै पुकार ॥ १४ ॥

प्रभो! मेरे हृदय मे पाप और काम क्रोधादिक बहुत विकार स्थित है। अत मेरी यही प्रार्थना है-आप मेरे हृदय मे पूर्ण रूप से प्रकट होकर सब विकारो को दूर करे।

सब कुछ व्यापै रामजी, कुछ छूटा नांहीं।
तुम तैं कहा छिपाइये, सब देखो माही ॥ १५ ॥

रामजी! हमारे अन्त करणो मे तो सर्व कामादिक विकार व्याप्त हो रहे है, कोई भी विकार छूटा हुआ नही है। यह हम सत्य ही कह रहे है, क्योकि-आप तो हृदय मे बैठे हुये सकल्प की सूक्ष्म अवस्था को भी जानते है। फिर आप से क्या छिपाया जा सकता है ?

सबल साल मन मे रहै, राम बिसर क्यों जाइ ।
यहु दुख दादू क्यों सहै, साई करो सहाइ ॥ १६ ॥

हे भगवन्! मेरे मन मे यह महान् दु ख बना रहता है कि—इन कामादि विकारो के कारण, मै किसी प्रकार राम को न भूल जाऊ। क्योकि आपके विस्मरण से होने वाले खेद को मै कैसे सह सकूगा ? अत मेरे कामादि विकारो को नष्ट करके मेरी सहायता करे।

राखणहारा राख तू, यहु मन मेरा राखि।
तुम विन दूजा को नहीं, साधू वोलै साखि॥ १७॥

विश्व के रक्षक राम! कामादि विकारो से मेरे मन की रक्षा कीजिये। इस कार्य को करने मे आपके सिवा अन्य कोई भी समर्थ नही है। ऐसा ही सत-जन कहते आ रहे है।

माया विषय विकार तै, मेरा मन भागै।
सोई कीजे साइयाँ, तूं मीठा लागै॥ १८॥

स्वामिन्! ऐसी कृपा करिये-जिससे मेरा मन माया तथा विषय-विकारो से दूर भागे और उसे एक मात्र आपका चिन्तन ही मधुर लगे।

सांई दीजे सो रती[1], तूं मीठा लागै।
दूजा खारा होइ सव, सूता जीव जागै॥ १९॥

स्वामिन्! आप मुझे अपनी वह प्रेमाभक्ति[1] दीजिये, जिसके द्वारा एक मात्र आप ही प्रिय लगे और आपसे भिन्न स्वर्गादि के सभी भोग अप्रिय लगने लगे तथा अज्ञान-निद्रा मे प्रसुप्त जीवात्मा जग जाय।

ज्यो आपै देखे आपको, सो नैना दे मुझ।
मीरा[1] मेरा मेहर[2] कर, दादू देखे तुझ॥ २०॥

मेरे स्वामिन्[1]! जैसा सच्चिदानन्द आपका स्वरूप है, उसको हम वैसा का वैसा देख सके, कृपा[2] करके ऐसे ही ज्ञान-नेत्र हमे प्रदान कीजिये। क्योकि मै निरतर आपको ही देखना चाहता हूँ।

करुणा

दादू पछतावा रह्या, सके न ठाहर लाइ।
अर्थ न आया राम के, यहु तन योंही जाइ॥ २१॥

साधन प्रमाद का खेद दिखा रहे है—अहो! हमे यह पश्चात्ताप ही रह गया कि—बुद्धि आदि के सघात रूप शरीर को राम की भक्ति रूप कार्य मे लगाकर, अपने आत्मा को परमात्मा रूप निज धाम मे नही पहुचा सके। अत यह मानव तन व्यर्थ ही जा रहा है।

विनती

दादू कहै–दिन दिन नवतम भक्ति दे, दिन दिन नवतम नाव।
दिन दिन नवतम नेह दे, मै बलिहारी जाव॥ २२॥

२२-२३ मे भक्ति आदि के लिए विनय कर रहे है—भगवन्! मेरी प्रार्थना है-आप मुझे प्रतिदिन तरुण रहने वाली नवधा भक्ति, नये-नये नाम और नामी के अभेद को प्रतिदिन दृढ़ कराने वाले विचार, तथा प्रतिदिन बढ़ने वाली प्रेमाभक्ति, देकर मुझे अपनाइये। मै आप की बलिहारी जाता हूँ।

सांई संशय दूर कर, कर शंका का नाश।
भान[२] भ्रम[२] दुविध्या दुख दारुण, समता सहज प्रकाश॥ २३॥

स्वामिन्! हमारे मन के प्रमाणगत और प्रमेयगत सब सशय दूर करे, अज्ञान[२] और दुविधा रूप भयकर दु खो को नाश[२] करके जन्मादिक भय अपहरण करे। तथा साम्य दृष्टि प्रदान कर हमारे अन्त करण मे अपने सहज निर्विकार स्वरूप का प्रकाश कर दे।

दया विनती

नांहीं परगट है रह्या, है सो रह्या लुकाइ[१]।
संइयॉ पडदा दूर कर, तू है परगट आइ॥ २४॥

२४-२९ मे भगवद्-दया प्रदर्शन-पूर्वक दर्शनार्थ विनय कर रहे है—असत्य मायिक प्रपच तो प्रत्यक्ष भास रहा है और जो सत्य स्वरूप ब्रह्म है, वह अज्ञान रूप पडदे के नीचे छिप[१] रहा है। अत हे स्वामिन्! अज्ञान-पडदे को दूर करके हमारे अन्त.करण मे प्रकट होकर आप हमे दर्शन देने की दया कीजिये।

दादू माया प्रकट है रही, यों जे होता राम।
अरस परस मिल खेलते, सब जिव सब ही ठाम॥ २५॥

जैसे मायिक प्रपच प्रकट रूप से भास रहा है, वैसे ही यदि राम भासते, तो जिस प्रकार मायिक विषयो से सभी जीव आनन्दित होते है, उसी प्रकार सभी स्थानो मे सभी प्राणी भगवान् से प्रत्यक्ष रूप मे मिलकर अखडानन्द प्राप्त कर सकते थे।

दया करै तब अंग लगावै, भक्ति अखंडित देवै।
दादू दर्शन आप अकेला, दूजा हरि[१] सब लेवै॥ २६॥

हरि[१] जब दया करते है तब अपने से भिन्न सपूर्ण मायिक विषय-वासनादि रूप द्वैत भक्त के हृदय से हटा[१] देते है और अपनी अखड भक्ति प्रदान करके उसकी चित्त-वृत्ति को अपने स्वरूप मे ही लगा लेते है, फिर अपने अद्वैत स्वरूप का साक्षात्कार करा देते है।

दादू साध सिखावैं आत्मा, सेवा दिढ कर लेहु।
पारब्रह्म सौं बीनती, दया कर दर्शन देहु॥ २७॥

सत-जन निरतर शिक्षा दे रहे है—हे जीवात्मा! दृढ विश्वास पूर्वक भगवान् की अखड भक्ति करके, उन परब्रह्म से दर्शन प्राप्त करने की प्रार्थना करेगा, तब वे अवश्य दया करके दर्शन दे देगे।

साहिब साध दयालु हैं, हम ही अपराधी।
दादू जीव अभागिया, अविद्या[२] साधी[१]॥ २८॥

भगवान् और सत-जन तो परम दयालु है। सत-जन सदा हित की शिक्षा देते रहते है और भगवान् निष्कपट भाव से किंचित् प्रार्थना करने पर भी अनन्त जन्मो के पापो को भस्म कर डालते है। अत. हम मदभागी जीव ही अपराधी है, कारण, हमने निरंतर असत्य माया[२] को प्राप्त करने की ही साधना[१] की है।

सब जीव तोरै राम सौ, पै राम न तोरै ।
दादू काचे ताग ज्यो, टूटै त्यो जोरै ॥ २९ ॥

सपूर्ण प्राणी अविद्यावश हो भगवान् से अपना प्रेम सबध तोड रहे है अर्थात् भगवद्-भिन्न मायिक पदार्थों मे आसक्त हो रहे है किन्तु भगवान् प्रेम सबध को कभी भी नहीं तोडते। वे तो सूत कातने वाली माता के समान प्राणियो का शिथिल प्रेम-तन्तु ज्यो-ज्यो टूटता है त्यो-त्यो अपने उपदेश रूपी हाथो से उसे जोड़ते रहते है।

सजीवन

फूटा फेरि सँवार कर, ले पहुँचावै ओर[1] ।
ऐसा कोई ना मिलै, दादू गई बहोर[2] ॥ ३० ॥

३०-३१ मे सजीवन ब्रह्म के साक्षात्कार कराने वाले महापुरुष के मिलन की इच्छा प्रकट कर रहे है—ऐसा कोई सत नही मिल रहा है-जो भगवान् से टूटे हुये हमारे प्रेम-सबध को अपने उपदेश द्वारा पुन जोड करके हमारे आदि स्वरूप परब्रह्म के पास[1] पहुँचा दे। इसी आशा मे हमारी बहुत अवधि[2] रूप आयु चली गई और फिर[2] भी जा ही रही है।

ऐसा कोई ना मिलै, तन फेरि सँवारै ।
बूढे तै बाला करै, खै[1] काल निवारै ॥ ३१ ॥

कोई ऐसा महापुरुष नही मिल रहा है, जो व्यर्थ चेष्टा से दूषित स्थूल शरीर को अविहित विषय-प्रवृत्ति से, कुलषित इन्द्रियो को विषयासक्ति से, छिन्न भिन्न हुये मन को और नाना विचारो से विचलित हुई बुद्धि को पुन भगवत्-परायणता रूप उत्तम गुण से सजा दे, अज्ञान रूप वृद्धावस्था को हटा दे वा[1] ब्रह्म-साक्षात्कार रूप नित नूतन बाल्यावस्था की प्राप्ति करा कर काल के द्वारा होने वाली (खै=क्षय) क्षीणता[1] को दूर कर दे।

परिचय करुणा विनती

गलै[1] विलै[2] कर बीनती, एकमेक अरदास ।
अरस परस करुणा करै, तब द्रवै[3] दादू दास ॥ ३२ ॥

३२-३३ मे करुणा पूर्वक परिचयार्थ विनय की विशेषता बता रहे है—जब प्राणी परमात्मा का प्रत्यक्ष दर्शन करने के लिए व्यथित होता है और भगवत् प्रेम मे चित्त को लय[1] और लीन[2] करके जन्मादि दु ख निवृत्ति के लिए विनय करता है तथा परब्रह्म मे अभेद होने के लिए करुणापूर्ण प्रार्थना करता है, तब परमात्मा भक्त पर कृपा[3] करते है।

सांई तेरे डर डरू, सदा रहूँ भैभीत ।
अजा[1] सिह ज्यो भय घणा, दादू लीया जीत ॥ ३३ ॥

स्वामिन् ! जैसे बकरियो[1] को सिह से भारी भय रहता है, वैसे ही मै आपके डर से डरता हुआ अत्यत भयभीत रहता हूँ। अत इस भय के द्वारा ही मैने अपने मन, बुद्धि और इन्द्रियो की चपलता पर विजय प्राप्त की है।

पोष प्रतिपाल रक्षक

दादू पलक मांहि प्रकटै सही, जे जन करैं पुकार।
दीन दुखी तब देखकर, अति आतुर तिहिं बार॥ ३४॥

३४-३६ मे प्रभु के भक्त-पोषक, प्रतिपालक और रक्षक विरुद का परिचय दे रहे है—जब भक्त अत्यन्त व्याकुल होकर भगवद् दर्शनार्थ प्रार्थना करता है तब उसे दीन दुखित देखकर भगवान् उसी समय एक क्षण मे ही दर्शन द्वारा उसकी रक्षा करने के लिए अवश्य प्रकट हो जाते है।

आगे पीछे संग रहै, आप उठाये भार।
साधु दुखी तब हरि दुखी, ऐसा सिरजनहार॥ ३५॥

सृष्टि कर्त्ता परमेश्वर ऐसे परम दयालु है—अपने परम भक्त सतो के चारो ओर बसते हुये सदा सग ही रहते है। सत के दुखी होने पर हरि दुखी हो जाते है और सतो के योग-क्षेम का सपूर्ण कार्य-भार स्वय ही उठाते रहते है।

सेवक की रक्षा करै, सेवक की प्रतिपाल।
सेवक की वाहरै[1] चढै, दादू दीन दयाल॥ ३६॥

भगवान् अपने भक्त की कामादि विकारो से रक्षा करते है, भोजनादि द्वारा पालन-पोषण करते है और दुष्टो से बचाने के लिए सदा (गुजराती शब्द वाहरै=) सहायक[1] होते रहते है।

(कोई पीटता है तो पिटने वाला व्यक्ति चिल्लाता है—"वारै, वारै" अर्थात् सहायता करो। - स)

विनती सागर तरण

दादू काया नाव समंद मे, औघट[1] बूडे[2] आइ।
इहिं अवसर एक अगाध[3] बिन, दादू कौन सहाइ॥ ३७॥

३७-४५ मे ससार-सागर सतरणार्थ विनय कर रहे है—सूक्ष्म शरीर रूप हमारी नौका इस ससार समुद्र के विषय-वासनासक्ति रूप दुस्तर[1] स्थल मे आकर डूब[2] रही है। इस महान् विपत्ति के समय, त्रिविधि भेद-शून्य अपार-शक्ति-परमात्मा[3] के बिना कौन सहायक हो सकता है ?

यहु तन भेरा[1] भौजला[2], क्यों कर लंघे तीर।
खेवट बिन कैसे तिरै, दादू गहर गंभीर॥ ३८॥

हमारा सूक्ष्म शरीर बॉसो के बॅधे हुये बेडे[1] के समान है। यह ससार-समुद्र[2] के विषय-वासना रूप अत्यत घने और गभीर जल से परमात्मा-केवट के बिना सुख से तैरता हुआ पार कैसे जा सकता है ?

पिंड परोहन[1] सिन्धु जल, भव-सागर संसार।
राम बिना सूझै नहीं, दादू खेवनहार॥ ३९॥

जैसे सिन्धु के जल से छोटी नौका[1] को चतुर केवट ही पार कर सकता है, वैसे ही ससार-समुद्र के जन्म-मरण रूप जल से हमारे सूक्ष्म-शरीर रूप लघु नौका को पार करने वाला भगवान् के बिना कोई भी दृष्टि नही आता।

यहु घट बोहित[1] धार मे, दरिया वार न पार।
भै भीत भयानक देखकर, दादू करी पुकार ॥ ४० ॥

जिस ससार रूप महानद का वार-पार ज्ञात नही होता, उसकी विषय-वासना रूप प्रबल धार मे मेरी काया रूप विशाल नाव[1] पड गई है। उसकी भयानकता को देखकर मै भयभीत हुआ पुकार रहा हूँ—हे भगवान् ! मुझे पार करिये।

कलिजुग घोर अँधार है, तिसका वार न पार।
दादू तुम बिन क्यों तिरै, समर्थ सिरजनहार ॥ ४१ ॥

यह कलियुग का समय पाप रूप महान् अधकार से परिपूर्ण है। इसका आदि-अत भी नही ज्ञात होता। अत हे समर्थ सृजनहार परमात्मा ! हम आपकी कृपा बिना इससे कैसे पार हो सकते है ?

काया के वश जीव है, कस-कस बंध्या माहि।
दादू आत्मराम बिन, क्यो ही छूटै नाहिं ॥ ४२ ॥

यह जीवात्मा शरीर के अधीन होने से देहाध्यास रूप बन्धन से अत्यधिक खिचकर बँधा हुआ है। अत आत्माराम के अभेद ज्ञान बिना किसी भी प्रकार मुक्त नही हो सकता।

दादू प्राणी बंध्या पच सौ, क्यो ही छूटै नाहि।
नीधणि[1] आया मारिये, यहु जीव काया माहि ॥ ४३ ॥

प्रभो ! यह प्राणी पच विषयो की आसक्ति-बधन से बँधा हुआ है, आप की कृपा के बिना अन्य किसी भी उपाय से मुक्त नही हो सकता। आप जैसे स्वामी के रहते हुये, यह जीवात्मा बारबार शरीर मे आकर स्वामी-हीन[1] वस्तु के समान काल के द्वारा आहत किया जा रहा है, अत आपको रक्षा करनी चाहिए।

दादू कहै-तुम बिन धणी न धोरी जीव का, यो ही आवै जाइ ।
जे तू सांई सत्य है, तो बेगा प्रकटहु आइ ॥ ४४ ॥

भगवन् ! जीव का स्वामी और जीव के शरीर-रथ के जीवन-धुर को धारण करने वाला आप से भिन्न कोई भी नही है। आपकी कृपा के बिना जीव वर्तमान समय के समान ही सृष्टि के आदि से अत तक बारबार जन्मता-मरता रहता है। अत हे स्वामिन् ! यदि आप सत्य-स्वरूप और सच्चे रक्षक है, तो शीघ्र ही हमारे हृदय मे आकर तथा प्रकट रूप से दर्शन देकर जन्मादि क्लेशो से हमारी रक्षा करिये।

नीधणि आया मारिये, धणी न धोरी कोइ।
दादू सो क्यो मारिये, साहिब शिर पर होइ ॥ ४५ ॥

यह जीवात्मा स्वामी-रहित वस्तु के समान जन्म-जन्म कर काल के द्वारा मारा जाता है। क्योकि इसने अपने रक्षक स्वामी परमात्मा को किसी प्रकार भी न अपनाया। जो सर्व-भाव से

भगवान् की शरण हो जाता है और जिसके शिर पर रक्षक ईश्वर है, वह काल के द्वारा किसी प्रकार भी नही मारा जा सकता।

दया विनती

राम विमुख जुग जुग दुखी, लख चौरासी जीव ।
जामे[1] मरै जग आवटै[2], राखणहारा पीव ॥ ४६ ॥

रक्षार्थ दया करने की प्रार्थना कर रहे है—भगवान् से विमुख जीव प्रत्येक युग मे ससार की चौरासी लक्ष योनियो मे त्रिविध ताप से सन्तप्त रह कर, जन्मता[1]-मरता हुआ इस मर्त्यलोक मे परम दु.खी[2] हो रहा है। अत हे रक्षक प्रभो ! दया करके हमारी रक्षा करे।

पोष प्रतिपाल रक्षक

समर्थ सिरजनहार है, जे कुछ करै सो होइ ।
दादू सेवक राख ले, काल न लागै कोइ ॥ ४७ ॥

पोषक, प्रतिपालक, रक्षक ईश्वर की सामर्थ्य दिखा रहे है—सृजनहार परमात्मा सर्व समर्थ है, वे जो कुछ भी करना चाहते है, वह ही होता है। वे जिस सेवक की रक्षा कर लेते है उसके पीछे काल नही लग सकता।

विनती

सांई साचा नाम दे, काल झाल मिट जाइ ।
दादू निर्भय ह्वै रहै, कबहूँ काल न खाइ ॥ ४८ ॥

४८-५३ मे रक्षार्थ विनय कर रहे है—हे स्वामिन् ! आप हमको अपने नाम का निष्कपट और निष्काम भाव युक्त स्मरण-साधन प्रदान कीजिये, जिससे कालाग्नि की कामादिक-ज्वालाये शात हो जाये और हम आपके स्वरूप को प्राप्त करके निर्भय बन जाये। बस, इतनी कृपा कर दीजिये, फिर हमको कभी भी काल नष्ट नही कर सकेगा।

कोई नहिं करतार बिन, प्राण उधारणहार ।
जियरा दुखिया राम बिन, दादू इहिं संसार ॥ ४९ ॥

भगवत्-साक्षात्कार के विना इस ससार मे प्राणी परम दु खी है, कारण, जन्मादि दु खो से प्राणी को मुक्त कराने वाला भगवान् के विना अन्य कोई भी नही है।

जिनकी रक्षा तूं करै, ते उबरे कर्ता ।
जे तैं छाडे हाथ तैं, ते डूबे संसार ॥ ५० ॥

हे करतार ! जिन भक्तो की कामादिक विकारो से आप रक्षा करते है, वे जन्मादिक ससार से मुक्त हो जाते हे और आपने जिनको त्याग दिया हे, वे इस ससार-समुद्र मे जन्म-मरणादिक रूप गोते लगा रहे है।

राखणहारा एक तू, मारणहार अनेक ।
दादू के दूजा नहीं, तूं आपै ही देख ॥ ५१ ॥

हे भगवन् ! सकाम कर्मों के करने की प्रेरणा द्वारा जन्म-मरणादि प्रवाह मे पटकने वाले तो अनेक है, किन्तु जन्मादि-प्रवाह से बचाने वाले एक मात्र आप ही है। मेरे तो आपके बिना अन्य कोई भी आश्रय नही है। आप सर्वज्ञ है ही, अत मेरे इस कथन की यथार्थता स्वय ही देख ले।

दादू जग ज्वाला जम रूप है, साहिब राखणहार ।
तुम बिच अतर जनि[1] पडै, तातै करू पुकार ॥ ५२ ॥

अहो ! काम-क्रोधादिक से परिपूर्ण ये सासारिक प्राणी तो कालाग्नि की ज्वाला रूप होने से सतप्त करने वाले ही है, रक्षक तो एक मात्र भगवान् ही है। इसी कारण मै बारबार प्रार्थना करता हू—हे भगवन् ! अब आप और मेरे मध्य मे कोई सासारिक अन्तराय नहीं[1] पडनी चाहिये।

जहँ तहँ विषय विकार तै, तुम ही राखणहार ।
तन मन तुमको सौपिया, साचा सिरजनहार ॥ ५३ ॥

हे भगवन् ! हमने अपना तन और मन आपके ही समर्पण कर दिया है। अत अब जहा कही भी हमारी चित्त-वृत्ति विषय-विकारो मे जाय तो आपको ही रक्षा करनी चाहिये, क्योकि—यह वृत्ति आपकी ही है। हे सृजनहार ! सर्व प्रकार से हमारी रक्षा करके अपने भक्त-रक्षक विरुद को सत्य कीजिये।

दया विनती

दादू कहै—नरक रसातल जात है, तुम बिन सब संसार ।
करगहि कर्ता काढि ले, दे अवलम्बन आधार ॥ ५४ ॥

५४-५९ मे सबके उद्धारार्थ दया करने की प्रार्थना कर रहे है—हे भगवन् ! आपके आश्रय बिना सपूर्ण ससार के प्राणी पापो मे निमग्न होकर नष्ट हो रहे है। अत हे सृष्टिकर्ता परमेश्वर ! आपको अपने कृपा रूप हाथो से ग्रहण करके हमे निकाल लीजिये और अपनी अनन्य भक्ति का अवलम्बन देते हुये अपना आधार दीजिये।

दादू दौ[1] लागी जग प्रजलै, घट घट सब संसार ।
हम तै कछू न होत है, तुम बरसि बुझावणहार ॥ ५५ ॥

इस ससार-वन के प्रत्येक शरीर-वृक्ष मे विषय-चिन्तन रूप दावाग्नि[1] प्रज्वलित हो रही है। जैसे वनाग्नि बादलो के बरसे बिना अन्य उपाय से नही बुझती, वैसे ही विषय-चिन्तन रूप अग्नि के बुझाने का कार्य हम से कुछ भी नही हो सकेगा। केवल आप ही अपनी कृपा-वृष्टि द्वारा इसे बुझाने मे समर्थ है, अत इसे बुझाकर हमारी रक्षा कीजिये।

दादू आत्म जीव अनाथ सब, करतार उबारै ।
राम निहोरा[1] कीजिये, जनि[2] काहू मारै ॥ ५६ ॥

यह जीवात्मा सभी प्रकार से असहाय है, केवल भगवान् ही इसे ससार दु खो से मुक्त कर सकते है। अत हे राम ! हम आपसे प्रार्थना करते है—आप ऐसी कृपा-दृष्टि[1] करे जिससे अब हमे कामादि नहीं[2] मार सके।

अर्श[२] जमीं औजूद में, तहां तपै अफताब[१] ।
सब जग जलता देखकर, दादू पुकारै साध ॥ ५७ ॥

जैसे सूर्य[१] से पृथ्वी और आकाश[२] के प्राणी तपते है, वैसे ही सपूर्ण ससार के शरीरो को त्रिविध ताप से सतप्त देखकर सत-जन प्रार्थना करते है।

सकल भुवन सब आत्मा, निर्विष कर हरि लेइ ।
पडदा है सो दूर कर, कश्मल[१] रहण न देइ ॥ ५८ ॥

हे हरे ! सपूर्ण भुवनो के सभी जीवात्माओ को विषय-विष से रहित करके पाप[१] रहित कर लीजिये और जो अविद्या रूप पड़दा है, उसे दूर करके अपने दर्शन देने की कृपा कीजिये।

तन मन निर्मल आत्मा, सब काहू की होइ ।
दादू विषय विकार की, बात न बूझै कोइ ॥ ५९ ॥

सभी प्राणियो के तन, मन और बुद्धि इतने निर्मल हो जायँ कि कोई भी विषय-विकार सम्बन्धी बात न तो पूछे और न समझने का प्रयत्न ही करे। (सर्वे भवन्तु सुखिन ।)

विनती

समर्थ धोरी ! कंध धर, रथ ले ओर निवाहि ।
मारग मांहिं न मेलिये, पीछे बिड़द लजाहि ॥ ६० ॥

६०-६५ मे सदा अपनाये रखने के लिये प्रभु को विनय कर रहे है—मेरे जीवन-रथ को धारण करने वाले समर्थ धोरी प्रभो ! आप इस रथ को कृपा-कधे पर लेकर अत तक निभा दीजिये=मुझे अपने स्वरूप से मिला दीजिये, मार्ग मे कभी न त्यागिये। यदि त्याग देगे तो पीछे आपका मुक्ति-प्रदाता विरुद लज्जित होगा।

दादू गगन गिरै तब को धरै, धरती-धर[१] छंडै ।
जे तुम छाडहु राम रथ, कंधा को मडै ॥ ६१ ॥
ज्यों वह बरत गगन तैं टूटै, कहां धरणी ठाम ।
लागी सुरति अंग तैं छूटै, सो कत जीवे रामा ॥ ६१ ॥ क

यदि स्तम्भहीन आसमान टूटकर गिर पडे तो क्या कोई बली स्तम्भ उसे अधर धारण कर सकता है और यदि इस अतुल वर्तुल धरा को निष्पद सहस्रफणी शेषनाग[१] धारण करना छोड दे तो इसे अधर रखने के लिये कौन पराक्रमी है जो शून्य मे पद रोपेगा ? अथवा आकाश से जो पदार्थ गिरता है उसे पृथ्वी धारण करती है। यदि वह धैर्य-पूर्वक उसे धारण न करे तो कौन करेगा ? अर्थात् कोई नही। वैसे ही हे राम[२] ! यदि आप मेरे जीवन-रथ को अपने स्वरूप तक न पहुँचा कर मार्ग मे ही त्याग देगे तो फिर उसके नीचे कधा लगा कर कौन सहारा देगा ? अत आप मुझ पतित को अपनी शरण लेकर मेरा उद्धार करने की कृपा अवश्य करिये।

अंतरयामी एक तूं, आतम के आधार ।
जे तुम छाडहु हाथ तैं, तो कौन संवाहनहार[१] ॥ ६२ ॥

हे अन्तर्यामी प्रभो ! हम जीवात्माओ के आश्रय तो एक मात्र आपही है। यदि आप हमे अपने अनुग्रह-हाथ से त्याग देगे तो फिर इस ससार मे हमे आपके स्वरूप तक पहुँचाने वाला[१], कौन है ? अत आप सदैव कृपा ही करते रहे।

तेरा सेवक तुम लगै, तुमही माथै भार।
दादू डूबत रामजी, बेगि उतारो पार॥ ६३॥

हे रामजी ! आपका भक्त प्रार्थनादि सभी साधन आपकी प्राप्ति के लिए ही करता है और उसके उद्धार का भार भी आप पर ही रहता है। अत ससार-समुद्र के विषय-जल मे गोते लगाते हुये हमको शीघ्र ही इससे पार करके अपने स्वरूप मे स्थित कीजिये।

सत छूटा शूरातन गया, बल पौरुष भागा जाइ।
कोई धीरज ना धरै, काल पहूँता आइ॥ ६४॥

अहो ! सत्य स्वरूप परमात्मा का शाश्वत चिन्तन नही हो रहा है। साधन करने का उत्साह रूप शौर्य भी हृदय से चला गया है। शारीरिक-शक्ति और मनोबल भी न्यून होता जा रहा है। बुद्धि-इन्द्रियादिक सभी अधीर हो गये है और इधर देहपात का समय भी आ पहुँचा है। अत हे प्रभो ! ऐसी अवस्था मे आप ही रक्षा कर सकते है।

सगी थाके सग के, मेरा कुछ न बशाइ।
भाव भक्ति धन लूटिये, दादू दुखी खुदाइ॥ ६५॥

साधन मे साथ देने वाले-बुद्धि, मन और इन्द्रियादिक मेरे सगी भी शिथिल हो चले है। बुद्धि आदि के सावधान नही रहने से कामादिक-विकार रूप डाकू भाव-भक्ति रूप धन को लूट रहे है। उन्हे हटाने मे मै असमर्थ होकर दु खी हो रहा हू। अत हे राम ! रक्षा करो, रक्षा करो !

परिचय करुणा विनती

दादू जियरे जक नहीं, विश्राम न पावै।
आतम पाणी लौण ज्यो, ऐसे होइ न आवै॥ ६६॥

परिचयार्थ करुणा-पूर्वक विनय कर रहे है-जैसे जल मे नमक मिल जाता है, वैसा आत्मा और परमात्मा का ऐक्य नही हो पाता और प्राणी के अन्त करण मे शाति नही होती। शाति के अभाव से परमात्मा के स्वरूप मे जल मे नमक मिलने के समान अखड विश्राति नही प्राप्त होती। अत प्रभो ! कृपा करके आप हमे अपने मे अभेद कर लीजिये।

दया विनती

दादू तेरी खूबी[१] खूब[२] है, सब नीका लागै।
सुन्दर शोभा काढ ले, सब कोई भागै॥ ६७॥

भगवद्-दया प्रदर्शन-पूर्वक विनय कर रहे है—प्रभो ! आपकी सूक्ष्म शरीर-रचना रूप विशेषता[१] अति ही उत्तम[२] है। उसके रहने तक शरीर के सभी अग सुन्दर लगते है और जब आप अपनी रचित सूक्ष्म-शरीर रूप शोभा को स्थूल-शरीर से निकाल लेते है तब उस स्थूल शरीर को देखकर अति प्रिय पुत्रादि भी भयभीत होकर दूर जाने लगते है। अत अब आप हम पर अखड दया करके अपने स्वरूप मे लय कर लीजिये, जिससे हम अखड सुन्दर शोभा रूप ही हो जायँ।

विनती

तुम हो तैसी कीजियो, तो छूटैंगे जीव।
हम हैं ऐसी जनि करो, मैं सदके[1] जाऊं पीव॥ ६८॥

६८-७५ मे साक्षात्कारार्थ विनय कर रहे है—भगवन् ! जैसी आपकी पतित-पावनादि रूप अखड कीर्ति है, वैसी ही अखड कृपा करेगे, तब ही हम जीवो का उद्धार हो सकेगा। जैसे हमारे कुकर्म है, वैसी कुदृष्टि हम पर नही करना। यदि ऐसा ही करोगे तो हमारा कल्याण नही हो सकेगा। प्रभो ! मै आपके क्षमाभाव पर बलिहारी[1] जाता हूँ, अत आप मेरा उद्धार करे।

अनाथों का आसरा, निरधारों आधार।
निर्धन का धन राम है, दादू सिरजनहार॥ ६९॥

हे सृजनहार राम ! हमारे जैसे अनाथो के आश्रय, निराधारो के आधार और निर्धनो के धन, आप ही है। अत आप हम पर अवश्य कृपा करे।

साहिब दर[1] दादू खडा, निशदिन करै पुकार।
मीराँ[1] मेरा मिहर कर, साहिब दे दीदार॥ ७०॥

हे मेरे स्वामी[1] ! मै आप परब्रह्म के स्वरूप-सदन मे प्रवेश करने के साधन चित्त की एकाग्रता रूप द्वार[1] पर स्थित होकर रात्रि-दिन दर्शनार्थ प्रार्थना कर रहा हू। अत हे भगवन् ! आप मुझे दर्शन देने की कृपा अवश्य करे।

दादू प्यासा प्रेम का, साहिब राम पिलाइ।
प्रकट प्याला देहु भर, मृतक लेहु जिलाइ॥ ७१॥

हे स्वामिन् राम ! मै आपके प्रेम-रस का प्यासा हू, कृपा करके प्रत्यक्ष रूप से अपने प्रेम-रस को मेरी श्रद्धा रूप प्याले मे भर-भर के मुझे पिलाते हुये अज्ञान रूप मृतक-अवस्था से ब्रह्म-स्थिति रूप जीवन प्रदान करने की कृपा करे।

अल्लह आली[1] नूर[2] का, भर-भर प्याला देहु।
हमको प्रेम पिलाइ कर, मतवाला कर लेहु॥ ७२॥

हे भगवन् ! अपने अति उत्तम[1] ज्योति-स्वरूप[2] के प्रेम-रस के प्याले भर-भर कर पिलाते हुये हमको मतवाले बना दीजिये अर्थात् हम बाह्य प्रपच को भूल कर आपके स्वरूप मे ही लीन हो जायँ, ऐसी कृपा कीजिये।

तुम को हम से बहुत हैं, हमको तुमसे नाहिं।
दादू को जनि[1] परिहरै[2], तूं रहु नैनहुं मांहिं॥ ७३॥

प्रभो ! आपको तो मेरे जैसे अनेक भक्त है किन्तु मेरे लिये आपके समान स्वामी अन्य कोई भी नही है। अत आप मुझे न[1] त्याग[2] कर नित्य मेरे नेत्रो मे निवास करे अर्थात् प्रति क्षण मुझे दर्शन देते रहे।

तुम तैं तब ही होइ सब, दरश परश दर[1] हाल[2]।
हम तैं कबहुँ न होइगा, जे बीतहिं जुग काल॥ ७४॥

भगवन् ! आप कृपा करे तब तो उसी[२] समय-मे[२] तत्काल आपका मिलन दर्शनादि सभी कार्य हो जाते है, किन्तु हमारे पुरुषार्थ से तो यदि अनन्त युगो का समय व्यतीत हो जाय तो भी आपका दर्शन होना कभी सभव न हो सकेगा।

तुमहीं तै तुम को मिलै, एक पलक मे आइ।
हम तै कबहुँ न होइगा, कोटि कल्प जे जाइ ॥ ७५ ॥

प्रभो ! आपकी कृपा से तो यह जीव एक क्षण मे ही ससार दशा से ऊँचा उठकर आपको मिल सकता है किन्तु हमारे पुरुषार्थ से तो यदि करोड़ो कल्प व्यतीत हो जायँ तो भी आपका दर्शन होना कभी सभव नही हो सकता।

क्षण विछोह

साहिब सौ मिल खेलते, होता प्रेम सनेह।
दादू प्रेम सनेह बिन, खरी[१] दुहेली[२] देह[३] ॥ ७६ ॥

७६-७७ मे कहते है—प्रभु का एक क्षण का वियोग भी हमे दु खप्रद है—यदि हमारा सच्चा प्रेम होता तो हमारे भगवान् भी हम से स्नेह करते और भगवान् से मिलकर हम दर्शनानन्द रूप खेल खेलते, किन्तु हमारे प्रेम और उनके स्नेह के अभाव से उनके दर्शन न होने के कारण मेरी जीवात्मा[३] वास्तव[१] मे दुखी[२] है।

साहिब सौ मिल खेलते, होता प्रेम सनेह।
परगट[१] दर्शन देखते, दादू सुखिया देह ॥ ७७ ॥

यदि हमारा भगवत् मे अनन्य प्रेम होता और भगवान् का भी हम मे स्नेह होता तो हम प्रत्यक्ष[१] मे उनके दर्शन करते हुये ब्रह्मानन्द प्राप्ति रूप खेल खेलते और हमारा जीवात्मा परम सुख को प्राप्त हो जाता।

करुणा

तुमको भावै और कुछ, हम कुछ कीया और।
मिहर करो तो छूटिये, नहीं तो नाहीं ठौर ॥ ७८ ॥

७८-८१ मे करुणा दिखा रहे है—भगवन् ! आपको तो भक्ति, वैराग्यादि कुछ और प्रिय लगते है और हमने पर-पीडन, विषयासक्ति आदि कुछ अन्य ही कार्य किये है। अत अब आप ही कृपा करे तो हम जन्मादि ससार से छूट सकते है, नहीं तो हमे परम धाम कभी भी नही मिलेगा।

मुझ भावै सो मै किया, तुझ भावै सो नाहि।
दादू गुनहगार है, मै देख्या मन माहि ॥ ७९ ॥

प्रभो ! मेरे इन्द्रियादिक को जो अच्छे लगे, वे ही कार्य मैंने किये है। आपको प्रिय लगने वाले भक्ति, वैराग्यादि साधन नही कर सका। अत मैंने अपने मन मे भली भाँति विचार करके देख लिया है कि मै आपका अपराधी हूँ।

खुसी तुम्हारी त्यों करो, हम तो मानी हार ।
भावै बन्दा[1] बख्शिये[2], भावै गह कर मार ॥ ८० ॥

हे भगवन् ! अपने पुरुषार्थ से अपना उद्धार करने मे हमने तो हार मान ली है, अब आपकी इच्छा हो वैसा ही करे। चाहे आप इस सेवक[1] के दोषो को क्षमा[2] करके मुक्त कर दे और चाहे दोषो का दड देने के लिये पकड कर बारम्बार मारते रहे, किन्तु आपकी शोभा तो तारने मे ही है।

दादू जे साहिब लेखा लिया, तो शीश काट शूली दिया ।
मिहर[1] मया[2] कर फिल[3] किया, तो जीये जीये कर जिया ॥ ८१ ॥

इति विनती का अग समाप्त ॥ ३४ ॥ सा २४८३ ॥

यदि भगवान् हमारे जीवन के शुभाशुभ कर्मों का हिसाब लेगे तब तो शिर काटने वा शूली पर चढाने से भी हमारे पापो का दड पूर्ण नही हो सकेगा। यदि उन्होंने हम पर दया[2] कृपा[1] करके क्षमा[3] कर दिया तो हम आत्म-स्वरूप की प्राप्ति रूप सार्थक जीवन फल प्राप्त कर ही लेंगे। अत हे भगवन् ! हमारे सपूर्ण दोषो को क्षमा करके हमे अपनाइये, यही हमारी अतिम प्रार्थना है।

इति श्रीदादू गिरार्थ प्रकाशिका विनती का अग समाप्त ॥ ३४ ॥

अथ साक्षीभूत का अंग ३५

विनती-अग के अनन्तर साक्षी स्वरूप का विचार करने के लिये "साक्षी भूत का अग" निरूपण मे प्रवृत्त हुये मगल कर रहे है—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत: ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक भ्रम से पार हो, साक्षी के स्वरूप को पहचान कर परब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरजन राम, सद्गुरु और सर्व सतो को हम अनेक प्रणाम करते हैं।

भ्रम विध्वंसन

सब देखणहारा जगत का, अंतर पूरै साखि ।
दादू साबित[1] सो सही[2], दूजा और न राखि ॥ २ ॥

साक्षी सम्बन्धी भ्रम दूर कर रहे है—जो सपूर्ण सासारिक प्राणियो के शुभाशुभ कर्मों को देखने वाला है तथा आन्तर हृदय मे जो साक्षी भरता है अर्थात् चेतन ही सत्य है, ऐसी भावना होती है, वही यथार्थ[2] सिद्ध[1] होती है। अत अपने अन्त करण मे अन्य किसी को भी उपास्य रूप से मत रख।

मांहीं तैं मुझ को कहै, अंतरजामी आप ।
दादू दूजा धंध है, साचा मेरा जाप ॥ ३ ॥

स्वय अन्तर्यामी परमात्मा साक्षी रूप से अन्त करण मे स्थित होकर हमको प्रेरणा करते है—"सत्य तो मेरा चिन्तन ही है, अन्य सब आडम्बर है।"

कर्त्ता साक्षीभूत

करता है सो करेगा, दादू साक्षीभूत ।
कौतिकहारा[1] ह्वै रह्या, अणकर्ता अवधूत[2] ॥ ४ ॥

४-६ मे परमात्मा की साक्षी रूपता दिखा रहे है—साक्षी रूप परमात्मा ही सत्ता द्वारा सब कुछ करता है और करेगा, किन्तु फिर भी वह खेल[1] करने वाले वा खेल देखने वाले के समान अकर्त्ता रह कर कर्म-फलादि सबसे मुक्त[2] रहता है ।

दादू राजस कर उत्पत्ति करै, सात्विक कर प्रतिपाल ।
तामस कर परलै करै, निर्गुण कौतिकहार ॥ ५ ॥

साक्षी रूप परमात्मा सत्ता द्वारा राजस शक्ति से उत्पत्ति, सात्विक शक्ति से पालन, तामस शक्ति से प्रलय करते है और निर्गुणरूप से खिलाडी के वा खेल देखने वाले के समान इस खेल से अलग ही रहते है ।

दादू ब्रह्म जीव हरि आत्मा, खेलै गोपी कान्ह ।
सकल निरन्तर भर रह्या, साक्षीभूत सुजान ॥ ६ ॥

हे सुजान साधक ! वह साक्षी रूप परमात्मा ही ब्रह्म, ईश्वर, जीव और आत्मा रूप से पुकारा जाता है तथा सब चराचर जगत् मे निरन्तर परिपूर्ण रूप से रहता है और वही कृष्ण बन कर अपनी भक्त गोपियो की इच्छा पूर्ति के लिए रास खेलता है ।

स्वकीय मित्र-शत्रुता

दादू जामण मरणा सान[1] कर, यहु पिड उपाया ।
साई दीया जीव को, ले जग मे आया ॥ ७ ॥

७-१० मे अपनी ही बनाई हुई मित्रता तथा शत्रुता का परिचय दे रहे है—जन्म-मरण से युक्त[1] करके यह शरीर बना कर भगवान् ने जीव को प्रदान किया है । जीव इसे लेकर ससार मे आया है और अपने भेद व्यवहार द्वारा इस ने मित्रता-शत्रुता खडी कर ली है ।

विष अमृत सब पावक पाणी, सतगुरु समझाया ।
मनसा वाचा कर्मणा, सोई फल पाया ॥ ८ ॥

सद्गुरु ने जीवो को समझा दिया था—विषयासक्ति विष है, ब्रह्म-ज्ञान अमृत है, आसुर गुण अग्नि है, दैवी गुण जल है, फिर तो जीव मन, वचन, कर्म से जिसमे सलग्न हुआ, उसे वैसा ही फल मिला अर्थात् विषयासक्ति विष से बारम्बार मृत्यु, ज्ञानामृत से ब्रह्म प्राप्ति रूप अमरता, आसुर गुण-अग्नि से हृदय दाह और दैवी गुण-जल से हृदय मे स्वच्छता, शीतलता रूप फल प्राप्त किया ।

दादू जानै बूझै जीव सब, गुण औगुण कीजै ।
जान बूझ पावक पडै, दई दोष न दीजै ॥ ९ ॥

जीव गुण-अवगुणादि सब को जानता है और उनमे सलग्न होने के परिणाम को भी

समझता है, किन्तु जान-बूझकर भी अवगुण रूप अग्नि मे ही गिरता है, तब दैव को क्या दोष दिया जाय ! यह तो आप ही अपना शत्रु-मित्र बनता है।

बुरा भला शिर जीव के, होवै इस ही मांहिं।
दादू कर्ता कर रह्या, सो शिर दीजै नाहिं ॥ १० ॥

जीव के किये हुए बुरे-भले कर्म का फल जीव को ही भोगना पडता है, कारण, बुरे-भले कर्म के करने की भावना इस जीव के अन्त करण मे ही होती है, अत स्वत ससार व्यवस्थार्थ ईश्वर ने जो रचना की है, उस का कर्म-फल उसके शिर नही पटकना चाहिये।

साधु साक्षीभूत

कर्ता ह्वै कर कुछ करै, उस मांहि बँधावै।
दादू उसको पूछिये, उत्तर नहीं आवै ॥ ११ ॥

११-१६ मे सन्त की साक्षीरूपता दिखा रहे है—जो अपने को कर्त्ता मानकर जो कुछ कर्म करता है, वह उसकी फलाशा से बध कर, अपने कर्मों के फल, सुख-दु ख को भोगता है, अत इस सुख-दु ख का कारण पूछने पर वह निरुत्तर हो जाता है। किन्तु जो ज्ञानी सन्त फलाशा से रहित, कर्म का साक्षी रूप होकर कर्म करते है, उससे वे कर्म का फल चाहते ही नही। अत उन्हे सुख-दु ख अनुभूति भी नही होती।

दादू केई उतारैं आरती, केई सेवा कर जाहिं।
केई आइ पूजा करैं, केई खुलावें खाहिं॥ १२ ॥

फलाशा से कितने ही लोग भक्ति करने का भाव हृदय मे रखकर आरती उतारते है, सेवा करते है, समय पर आकर पूजा करते है, और खिलाने के पश्चात् प्रसाद खाते है।

केई सेवक ह्वै रहे, केई साधु सगति मांहिं।
केई आइ दर्शन करैं, हम तै होता नाहिं ॥ १३ ॥

कितने ही लोग सेवक बन कर रहते है, साधु सगति मे आते है, नियम से प्रतिदिन आकर दर्शन करते है। किन्तु ये सब कर्म, स्वय को अकर्त्ता समझने वाले साक्षी रूप सत से नही होते। कारण, इन सबका फल-ज्ञान उन्हे प्राप्त है, अत वे निरन्तर ब्रह्म-चिन्तन मे ही रत रहते है।

ना हम करैं करावै आरती, ना हम पिवैं पिलावैं नीर ।
करै करावै सांइयाँ, दादू सकल शरीर ॥ १४ ॥

न तो हम आरती करते है और न कराते है। न हम चरणोदक पीते है और न पिलाते है, किन्तु ये सब तो सपूर्ण शरीरो मे आत्म रूप से स्थित परमात्मा ही प्रेरणा द्वारा करते कराते है।

करै करावै सांइयाँ, जिन दीया औजूद।
दादू बन्दा बीच मैं, शोभा को मौजूद ॥ १५ ॥

जिन परमात्मा ने शरीर दिया है, वे ही लोक-कल्याणादि सब कुछ कार्य करते कराते है। सत रूपी दास तो कार्य करवाने के मध्य मे साक्षी रूप से शोभा के लिए ही उपस्थित रहता है।

देवै लेवै सब करै, जिन सिरजे सब लोइ[1] ।
दादू बन्दा महल में, शोभा करैं सब कोइ ॥ १६ ॥

जिन परमात्मा ने सब लोगो[1] को रचा है, वही परमात्मा सबको अनुकूलता देते है और प्रतिकूलता अपहरण करते है। सन्त तो समाधि महल मे परब्रह्म-परायण रह कर साक्षी रूप से ही रहता है, तो भी लोग अपने सुख का निमित्त उसे ही मानकर उसकी शोभा करते है।

कर्ता साक्षी-भूत

दादू जुवा खेलै जाणराइ, ताको लखै न कोइ ।
सब जग बैठा जीत कर, काहू लिप्त न होइ ॥ १७ ॥

इति साक्षीभूत का अग समाप्त ॥ ३५ ॥ सा २५०० ॥

कर्त्ता की साक्षीरूपता दिखा रहे है—सपूर्ण ज्ञानियो से श्रेष्ठ सर्वज्ञ परमात्मा ससार की उत्पत्ति, पालन, प्रलय रूप जुआँ का खेल खेल रहा है, किन्तु खेल के साधन रूप ससारी जीवो मे से उसे कोई भी नही देख पाता। वह लाभ-हानि के हर्ष-शोकादिक किसी भी गुण से लिप्त नहीं होता और सब जगत् को अपने अधीन करके अपनी महिमा मे स्थित है।

इति श्रीदादू गिरार्थ प्रकाशिका साक्षीभूत का अग समाप्त ॥ ३५ ॥

अथ बेली का अंग ३६

साक्षी-भूत अग के अनन्तर बेली के रूपक से आत्मा का परिचय कराने के लिये, "बेली का अग" निरूपण करने मे प्रवृत्त हुये मगल कर रहे है—

दादू नमो नमो निरजनं, नमस्कार गुरुदेवत ।
वन्दन सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत. ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक आत्म-ज्ञान द्वारा अज्ञान से पार होकर परब्रह्म को प्राप्त होता है, उन निरजन राम, सद्गुरु, और सर्व सतो को हम अनेक प्रणाम करते है।

दादू अमृत रूपी नाम ले, आतम तत्त्वहि पोषै ।
सहजैं सहज समाधि मे, धरणी[1] जल शोषै ॥ २ ॥

२-१६ आत्मा का बेलि के रूपक से परिचय करा रहे है—परमात्मा का अमृत रूप नाम-चिन्तन करते हुए तत्त्व-ज्ञान द्वारा अन्त करण की अज्ञान से रक्षा करे और साधन द्वारा शनै २ सहज समाधि धारण रूप धरती[1], मायिक विषय-जल का शोषण करे अर्थात् वृत्ति निर्विषय करके ब्रह्म मे लय करे।

पसरै तीनो लोक में, लिप्त नहीं धोखे ।
सो फल लागै सहज मे, सुन्दर सब लोके ॥ ३ ॥

वृत्ति ब्रह्म मे लीन होने पर, जैसे बेलि वृक्ष से मिलकर फैल जाती है वैसे ही, जीवात्मा ब्रह्म से अभेद होकर तीनो लोको मे फैल जाता है अर्थात् अपने को व्यापक समझने लगता है, फिर जो

सब लोगो मे श्रेष्ठ माना जाता है, वही ब्रह्मानन्द रूप फल उसे प्राप्त होता है और वह विषयानन्द के धोखे मे आकर विषयो मे लिपायमान नही होता।

दादू बेली आत्मा, सहज फूल फल होइ।
सहज सहज सतगुरु कहै, बूझै बिरला कोइ ॥ ४ ॥

उक्त प्रकार साधन द्वारा जीवात्मा रूप बेलि को अनायास ही भक्ति-फूल और ज्ञान-फल प्राप्त होता है। सद्गुरु इस पद्धति को कहते रहते है किन्तु कोई विरला साधक ही शनै शनै समझ पाता है।

जे साहिब सींचै नही, तो बेली कुम्हलाइ।
दादू सींचै सांइयॉ, तो बेली बधती जाइ ॥ ५ ॥

यदि परमात्मा जीवात्मा-बेलि को अपने अनुग्रह-जल से न सीचे तो वह कुम्हला जाती है अर्थात् पतन की ओर जाती है और यदि वे सीचते रहे तो भक्ति-ज्ञानादि द्वारा बढ़ती जाती है।

हरि तरुवर तत आत्मा, बेली कर विस्तार।
दादू लागै अमर फल, कोई साधू सींचनहार ॥ ६ ॥

यदि कोई सत तत्त्व ज्ञान द्वारा सीचने वाला हो तो परमात्मा रूप श्रेष्ठ वृक्ष के आश्रय से जीवात्मा-बेलि अपना विस्तार कर लेती है और उसके अमरता देने वाला ब्रह्म ज्ञान रूप फल लग जाता है।

दादू सूखा रूंखडा, काहे न हरिया होइ।
आपै सींचै अमीरस, सुफल फलिया सोइ ॥ ७ ॥

भक्ति रूप हरियाली से रहित सूखे अन्त·करण रूप वृक्ष को, यदि स्वय भगवान् अपने कृपामृत-रस से सीचे तो वह क्यो न हरा होगा ? और जो भक्ति रूप हरियाली को प्राप्त हुआ है, उसने ज्ञानरूप फल भी अवश्य ही दिया है।

कदे न सूखै रूंखड़ा, जे अमृत सींच्या आप।
दादू हरिया सो फलै, कछू न व्यापै ताप ॥ ८ ॥

यदि जीवात्मा स्वय ही सचेत होकर राम-नाम चिन्तन रूप अमृत सींचता रहे तो, अन्त करण रूप वृक्ष, काम-क्रोधादि रूप आतप से कभी भी नही सूख सकेगा। और जो भक्ति रूप हरियाली से युक्त रहेगा, वह अवश्य ज्ञान रूप फल को प्राप्त होगा तथा उसे कोई भी दु ख न हो सकेगा।

जे घट रोपै रामजी, सींचै अमी अघाइ।
दादू लागै अमर फल, कबहूँ सूख न जाइ ॥ ९ ॥

यदि अन्त करण मे रामजी भक्ति-बेलि लगा दे और इतना कृपामृत सीचे कि कोई भी आशा न रहे, पूर्ण तृप्ति आ जाय, तब तो अवश्य ही अमरता देने वाला परब्रह्म-प्राप्ति रूप अमर-फल लगेगा ही। फिर तो यह कभी भी पुनर्जन्म रूप शुष्कता को प्राप्त न हो सकेगा।

दादू अमर बेलि है आत्मा, खार समदा माहि।
सूखै खारे नीर सौ, अमर फल लागै नाहि॥ १०॥

यद्यपि जीवात्मा रूप बेलि अमर है, तो भी ससार रूप क्षार समुद्र मे अनित्यता रूप क्षार से युक्त विषय-जल से भ्रम रूप शुष्कता आ जाती है। 'मै अमर हूँ' यह ज्ञान नही रहता और सशय के कारण अमरता का ज्ञान कराने वाला ब्रह्म-ज्ञान रूप फल भी नही लगता।

दादू बहु गुणवन्ती बेलि है, ऊगी कालर माहि।
सीचै खारे नीर सौ, तातै निपजै नाहि॥ ११॥

जीवात्मा रूप बेलि बहुत-से दैवी गुणो से युक्त है किन्तु कुसग रूप ऊसर भूमि मे उत्पन्न होने और विषय रूप खारे जल से सीचने से इसके भक्ति-ज्ञान रूप फूल-फल नही लगते।

बहु गुणवन्ती बेलि है, मीठी धरती बाहि।
मीठा पानी सींचिये, दादू अमर फल खाहि॥ १२॥

जीवात्मा-बेलि बहुत-से दैवीगुणो से युक्त है, इसे सत्सग रूप मधुर उर्वर भूमि मे लगाकर भगवत्प्राप्ति के साधन रूप मधुर जल से सीचो और इसके ज्ञान रूप अमर फल को खाकर अमर हो जाओ।

अमृत बेली बाहिये, अमृत का फल होइ।
अमृत का फल खाय कर, मुवा न सुणिया कोइ॥ १३॥

अमृत बेलि लगाने से अमृत का ही फल लगेगा और अमृत फल खाकर कोई मर गया हो, ऐसा नही सुना जाता। वैसे ही भक्ति द्वारा मोक्ष प्राप्त करके पुन कोई जन्म-मरणादि मे आया हो, ऐसा नही सुना जाता।

दादू विष की बेलि बाहिये, विष ही का फल होइ।
विष ही का फल खाय कर, अमर नही कलि कोइ॥ १४॥

विष की बेलि बोने से विष का ही फल देगी और विष का फल खाकर इस कलियुग मे कोई भी अमर नही होता। वैसे ही हृदय मे विषय-वासना रखने से चित्त विषयो मे ही जायेगा और विषयासक्त कोई भी अमर ब्रह्म को प्राप्त नही होता।

सतगुरु सगति नीपजे, साहिब सींचनहार।
प्राण वृक्ष पीवै सदा, दादू फलै अपार॥ १५॥

सद्गुरु की सगति से जीवात्मा मे भक्ति उत्पन्न होती है, फिर यदि परमात्मा अपने अनुग्रह जल से सीचने वाले हो और प्राणी-वृक्ष उस जल को सदा पान करता रहे अर्थात् भगवत्-कृपा का अनुभव करता रहे तो असीम अभेद-ज्ञान रूप फल प्राप्त होता है।

दया धर्म का रूंखडा[1], सत सौ बधता जाइ।
सतोष सौं फूलै फलै, दादू अमर फल खाइ॥ १६॥

इति बेली का अग समाप्त॥ ३६॥ सा २५१६॥

दया रूप धर्म का वृक्ष[१] सत्यपालन द्वारा वढता है, पूर्ण सतोष से उसके भक्ति रूप फूल और ब्रह्मज्ञान रूप फल आता है। उस फल को जो खाता है अर्थात् अभेद रूप से धारण करता है, वह अमर हो जाता है।

इति श्रीदादू गिरार्थ प्रकाशिका बेली का अग समाप्त ॥ ३६ ॥

अथ अबिहड़ का अंग ३७

बेली-अग के अनन्तर जिसका सदा सयोग रहता है, उस एकरस अद्वैत अविनाशी ब्रह्म-तत्त्व के विचार "अबिहड का अग" निरूपण करने मे प्रवृत्त हुये मगल कर रहे है—

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवत: ।
वन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥ १ ॥

जिनकी कृपा से साधक अज्ञान से पार हो, ब्रह्म के नित्य सयोग को समझ कर ब्रह्मरूप ही हो जाता है, उन निरजन राम, सद्गुरु और सर्व सतो को हम अनेक प्रणाम करते है।

दादू संगी सोई कीजिये, जे कलि अजरावर होइ।
ना वह मरै न बीछुटै, ना दुख व्यापै कोइ ॥ २ ॥

२-५ मे सदा एकरस रहने वाले परमात्मा को ही अपना साथी बनाने की प्रेरणा कर रहे है—जो ससार मे देवताओ से भी अति श्रेष्ठ है, न मरता है, न किसी से बिछुड़ता है और न ही जिसको कोई दु ख होता है, उसी परमात्मा को अपना साथी वनाओ।

दादू संगी सोई कीजिये, जे थिर इहिं संसार।
ना वह खिरै[१] न हम खपैं[२], ऐसा लेहु विचार ॥ ३ ॥

जो इस ससार मे सदा सम्यक् स्थिर रहता है, कभी भी अपनी स्थिति से क्षय[१] होकर नही गिरता और जिसको साथी वनाकर हम भी नष्ट[२] नही हो, विचार करने पर जो ऐसा सिद्ध हो, उसी को अपना साथी वनाओ।

संगी सोई कीजिये, सुख दुख का साथी।
दादू जीवन-मरण का, सो सदा संगाती ॥ ४ ॥

जो सुख दु.ख मे साथ देने वाला हो, जीवन काल और मरने के पश्चात् भी सदा सग रह सकता हो, उसी को अपना साथी वनाओ।

दादू संगी सोई कीजिये, जे कबहूँ पलट न जाइ।
आदि अंत बिहडै नहीं, तासन यहु मन लाइ ॥ ५ ॥

जिसमे वाल-युवादि काल-जन्य परिवर्तन कभी भी नहीं होते और जो सृष्टि के आदि काल से प्रलय पर्यन्त किसी से भी अलग नहीं होता, उसी परमेश्वर को अपना साथी वनाकर, यह मन उसी मे लगाओ।

दादू अबिहड आप है, अमर उपावनहार ।
अविनाशी आपै रहै, बिनसै सब संसार ॥ ६ ॥

६-१० मे नित्य साथ रहने वाले ब्रह्म-तत्त्व का परिचय दे रहे है—सब ससार नष्ट होता है, ससार को उत्पन्न करने वाले अविनाशी परमात्मा, साधनादि उपाय बिना, अपने आप ही अमर रहते है। अत सबके साथ नित्य सयोग स्वय ब्रह्म का ही रहता है, अन्य का नही।

दादू अबिहड आप है, साचा सिरजनहार ।
आदि अंत बिहडै नही, बिनसै सब आकार ॥ ७ ॥

विनाशी होने से सभी आकारो का वियोग होता है, किन्तु सत्य निराकार सृष्टिकर्ता परमेश्वर का सृष्टि के आदि से अन्त तक कभी भी किसी से वियोग नहीं होता, अत व्यापक होने से स्वय ब्रह्म ही सदा सबके साथ सयोग वाला है।

दादू अबिहड आप है, अविचल रह्या समाइ ।
निहचल रमता राम है, जो दीसै सो जाइ ॥ ८ ॥

जो नाम रूपात्मक कार्य है, वे सब नष्ट हो जायेंगे, निश्चल तो एक सब मे रमने वाला राम ही है और वह अचल होकर सब मे परिपूर्ण है। अत स्वय ब्रह्म ही सदा साथ रहने वाला है।

दादू अबिहड आप है, कबहूँ बिहड़ै नाहि ।
घटै बधै नहि एक रस, सब उपज खपै उस माहि ॥ ९ ॥

स्वय ब्रह्म ही सदा सबके साथ रहते है, कभी भी किसी से अलग नही होते। सदा एक रस रहते है, घटते बढते नही। अन्य सब मायिक ससार उन्हीं मे जल के बुद्‌बुदे की तरह उत्पन्न होकर लय होता रहता है।

अबिहड़ अंग बिहडै नहीं, अपलट पलट न जाइ ।
दादू अघट एक रस, सब मे रह्या समाइ ॥ १० ॥

व्यापक-स्वरूप ब्रह्म कभी भी किसी से अलग नही होता, वह अपरिवर्तन रूप है, बदल कर कही भी नहीं जाता। अत न घटने-बढने वाला एकरस ब्रह्म सब मे परिपूर्ण है।

अत समय की साखी

जेते गुण व्यापै जीव को, तेते तै तजे रे मन ।
साहिब अपणे कारणैं, (भलो निबाह्यो पण[1]) ॥ ११ ॥

इति अबिहड़ का अग समाप्त ॥ ३७ ॥ सा २५२७ ॥

हे मन ! जितने भी मायिक गुण अन्त करण मे व्याप्त होते है, उन सबको त्याग करके और उन्हे अन्त करण मे पुन न आने देने का प्रण[1] करके अपने प्रभु-प्राप्ति के लिए उस प्रण का तूने अच्छा निर्वाह किया है। (इस साखी के तीन चरण ही ब्रह्मलीन होने के समय उच्चारण किये थे।)

इति श्री पूज्यचरण स्वामी धनराम के शिष्य स्वामी नारायणदास कृत
श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका अबिहड़ का अग तथा साखी भाग समाप्त ॥

॥ श्री परमात्मने नमः ॥



दादूराम

सत्यराम

श्री दादूदयालवे नम

अथ श्री स्वामी दादूदयालजी की अनुभव वाणी

द्वितीय भाग · शब्द

अथ राग गौड़ी १

(गायन समय दिन ३ से ६)

शब्द-१ स्मरण शूरातन नाम निश्चय । त्रिताल

राम नाम नहीं छाड़ूं भाई, प्राण तजूं निकट जिव जाई ॥ टेक ॥
रती रती कर डारै मोहि, सांई संग न छाड़ूं तोहि ॥ १ ॥
भावै ले शिर करवत दे, जीवन मूरी न छाड़ूं तें ॥ २ ॥
पावक मे ले डारै मोहि, जरै शरीर न छाड़ूं तोहि ॥ ३ ॥
अब दादू ऐसी बन आई, मिलूं गोपाल निसान[1] बजाई ॥ ४ ॥

नाम स्मरण मे दृढ निश्चय पूर्वक शौर्य्य दिखा रहे है—हे भाई ! हम प्राण त्याग सकते है, चाहे निकट भविष्य मे ही हमारा जीव शरीर को त्यागकर चला जाय, तो भी हम राम-नाम को नही त्यागेगे। चाहे शरीर के गुँजा समान टुकडे-टुकडे कर डाले, शिर पर आरा चलावे, शरीर को अग्नि मे डाल कर जलावे तो भी हम परमात्मा का स्मरण रूप सग नही छोडेगे । अब तो हमारी ऐसी अवस्था हो गई है कि—हम नगाडा[1] बजाकर डके की चोट भगवान् से मिलेगे ।

२-अन्य उपदेश । त्रिताल

राम नाम जनि[1] छाडै कोई, राम कहत जन निर्मल होई ॥ टेक ॥
राम कहत सुख संपति सार, राम नाम तिर लंघै पार ॥ १ ॥
राम कहत सुधि बुधि मति पाई, राम नाम जनि छाडहु भाई ॥ २ ॥
राम कहत जन निर्मल होई, राम नाम कह कश्मल[2] धोई ॥ ३ ॥
राम कहत को को नहिं तारे, यहु तत दादू प्राण हमारे ॥ ४ ॥

नाम स्मरण का उपदेश कर रहे है—हे भाइयो ! राम नाम का स्मरण किसी को भी नही[1] त्यागना चाहिए। राम-नाम चिन्तन से प्राणी निष्पाप होता है, श्रेष्ठ सुख सम्पत्ति मिलती है, बुद्धि को शुद्ध ज्ञान प्राप्त होता है, हृदय के कामादिक दोष[2] हटते है, मन का मोह नष्ट होता है और प्राणी ससार-समुद्र को तैर कर पार चला जाता है । कहो ? राम-नाम से किस-किस का उद्धार नही हुआ ? सभी का हुआ है। यह राम-नाम स्मरण रूप तत्त्व हमारे प्राणो का तो आधार ही है ।

३-स्मरण उपदेश । राज मृगाक ताल

मेरे मन भैया राम कहो रे ।
राम नाम मोहि सहज सुनावै, उनही चरण मन कीन रहो रे ॥ टेक॥
राम नाम ले संत सुहावै, कोई कहै सब शीश सहो रे ।
वाही सौ मन जोरे राखो, नीके राशि लिये निबहो रे ॥ १ ॥
कहत सुनत तेरो कछू न जावै, पापनि छेदन सोइ लहो रे ।
दादू रे जन हरि गुण गावो, कालहि जालहि फेरि दहो रे ॥ २ ॥

नाम स्मरण का उपदेश कर रहे है—ऐ भैया ! तुम मन के द्वारा राम-नाम का चितन करो, समाधि रूप सहजावस्था मे मुझे भगवान् राम-नाम ही सुनाते है। अत उन्ही के स्वरूप रूप चरणो मे मन को लगाये रहो। राम-नाम चिन्तन से ही सन्त अच्छा लगता है। इसलिए उसी से मन लगाये रक्खो, यह नाम ही सपूर्ण श्रेष्ठताओ की राशि है, इसे हृदय मे रखते हुये, अपना निर्वाह करो। यदि कोई तुम्हारे विपरीत वचन कहे, उसे सहन कर लो, क्योकि—कहने सुनने से तुम्हारा कुछ भी न बिगडेगा और तुम पापो को नष्ट करने वाले (पाप निछेदक) परमात्मा को प्राप्त कर लोगे। अत हे जनो ! तुम तो हरि के गुणो का गान करो, नही तो फिर कालाग्नि की ज्वाला मे जलोगे।

४-विरह । एकताल

कौण विधि पाइये रे, मीत हमारा सोइ ॥ टेक॥
पास पीव, परदेश है रे, जब लग प्रकटै नाहि।
बिन देखे दुख पाइये, यहु सालै मन माहि ॥ १ ॥
जब लग नैन न देखिये, परगट मिलै न आइ ।
एक सेज सगहि रहै, यहु दुख सह्या न जाइ ॥ २ ॥
तब लग नेडै दूर है रे, जब लग मिलै न मोहि ।
नैन निकट नहि देखिये, संग रहे क्या होइ ॥ ३ ॥
कहा करू कैसे मिलै रे, तलफै मेरा जीव ।
दादू आतुर विरहनी, कारण अपने पीव ॥ ४ ॥

भगवद् विरह दिखा रहे है—वे हमारे मित्र किस प्रकार मिलेगे ? यद्यपि परमात्मा व्यापक होने से अति समीप ही है, किन्तु जब तक प्रत्यक्ष दर्शन नही होते, तब तक विदेश मे होने के समान ही है। उनके दर्शन बिना ही हम जन्मादि क्लेश भोग रहे है। जब तक ज्ञान-नेत्रो द्वारा उनको न देख लेगे तथा हृदय मे प्रकट होकर वे न मिलेगे, तब तक यह वियोग का दु ख मन मे बना ही रहेगा। वे और हम एक ही अन्त करण शय्या पर रहते है फिर भी उनका दर्शन नही होता, यह महा क्लेश हमसे नही सहा जाता। जब तक वे हम से नही मिलते तब तक समीप रहने पर भी दूर ही है। साथ रहने से क्या हो ? जब तक समीप मे नेत्रो से न देख ले। हाय ! हम क्या करे ? हमारा मन व्याकुल

हो रहा है, वे कैसे मिलेंगे ? इस प्रकार अपने स्वामी परमात्मा से मिलने के लिए वियोगिनी सतात्मा व्याकुल रहती है।

५-विरह विलाप। पडताल

जियरा क्यो रहै रे, तुम्हारे दर्शन बिन बेहाल॥ टेक॥
परदा अंतर कर रहे, हम जीवै किहिं आधार।
सदा संगाती प्रीतमा, अब के लेहु उबार॥ १ ॥
गोप्य[1] गुसॉई ह्वै रहै, अब काहे न प्रकट होइ।
राम सनेही संगिया, दूजा नांहीं कोइ॥ २ ॥
अंतरयामी छिप रहे, हम क्यों जीवैं दूर।
तुम बिन व्याकुल केशवा, नैन रहे जल पूर॥ ३ ॥
आप अपरछन[2] ह्वै रहे, हम क्यों रैनि बिहाइ।
दादू दर्शन कारणैं, तलफ-तलफ जिव जाइ॥ ४ ॥

विरह-जन्य विलाप दिखा रहे है—हे प्रभो! हमारा मन शाति से कैसे रहे ? यह तो आपके दर्शन बिना व्याकुल हो रहा है। आप हमारे भीतर रहकर भी अज्ञान का पडदा लगाये रहते है। कहिये, फिर हम किस आधार पर जीवित रहेगे ? हे प्रियतम! यद्यपि आप हमारे सदा साथ रहने वाले है, तो भी इस मनुष्य शरीर मे ही हमारा उद्धार कर ले। अन्य शरीरो मे हमे आपको प्राप्त करने की ऐसी सुविधा नही मिलेगी। हे स्वामिन्! आप गुप्त[1] क्यो हो रहे हो ? अब क्या कारण है जो आप प्रकट नही होते ? हे प्यारे राम! हमारे साथी तो आप ही है, अन्य कोई भी नही है। हे अन्तर्यामी! आप हमसे छिप रहे है, फिर हम आप से दूर रहकर कैसे जीवित रहेगे ? हे केशव! आपके साक्षात्कार के विना हम व्याकुल है, नेत्रो मे जल भरा ही रहता है, फिर भी आप छिप[2] ही रहे है। अहो! हम इस आयु रूप रात्रि को कैसे व्यतीत कर सकेगे ? प्रभु दर्शन के लिये हमारे प्राण तो वारवार छटपटाते हुये जाने को तैयार हो रहे है।

६-विरह हैरान। त्रिताल

अजहुँ न निकसैं प्राण कठोर।
दर्शन विना बहुत दिन बीते, सुन्दर प्रीतम मोर॥ टेक॥
चार पहर चारो युग वीते, रैनि गमाई भोर।
अवधि गई अजहूँ नहिं आये, कतहूँ रहे चित चोर॥ १ ॥
कबहूँ नैन निरख नहिं देखे, मारग चितवत तोर।
दादू ऐसे आतुर विरहणि, जैसे चंद चकोर॥ २ ॥

आश्चर्य पूर्वक व्याकुलता दिखा रहे है—मेरे मनोहर प्रियतम परमात्मा के दर्शन विना जीवन के बहुत-से दिन व्यतीत हो गये किन्तु ये कठोर प्राण अब भी शरीर मे वाहर नहीं निकलते।

आयु-रात्रि के शिशु, किशोर, युवा, वृद्धावस्था रूप चारो पहर चार युगो के समान व्यतीत हुये है और अब अति वृद्धावस्था रूप अरुणोदय हो रहा है। उनकी अवधि थी-"अहकार गलित होने पर दर्शन देगे।" सो भी चली गई है अर्थात् अहकार गलित हो चुका है, किन्तु अभी भी नहीं आये। वे भक्तो के चित्त को चुराने वाले कहा रुक रहे है, पता नही। हे प्रभो ! हम सतत् आपका मार्ग देख रहे है किन्तु इस प्रकार देखते रहने पर भी, हम कभी भी आपको नेत्रो से नही देख सके है। अत आपके दर्शनार्थ हम वियोगी सो-जन ऐसे व्याकुल है, जैसे चन्द्र दर्शन के लिये चकोर।

७- सुन्दरी श्रृगार। त्रिताल

सो—धन[1] पीवजी साज सँवारी, अब वेगि मिलो तन जाइ बनवारी ॥ टेक ॥
साज श्रृगार किया मन माहीं, अजहूँ पीव पतीजै[2] नाहीं ॥ १ ॥
पीव मिलन को अहनिश जागी, अजहूँ मेरी पलक न लागी ॥ २ ॥
जतन—जतन कर पथ निहारू, पिव भावै त्यो आप सँवारूं ॥ ३ ॥
अब सुख दीजै जाऊ बलिहारी, कहै दादू सुन विपति हमारी ॥ ४ ॥

वियोगिनी का श्रृगार दिखा रहे है—हे प्रियतम प्रभो ! आपकी जीवात्मा नारी[1] विचार पूर्वक तन-मन सुधार[1] कर आपके स्वागत की सामग्री तैयार की है। हे बनवारी ! अब शीघ्र ही दर्शन दो, देर करने से यह शरीर चला जायगा। मैंने तन-मनादि सभी को साधन सामग्री द्वारा सजाया है, किन्तु प्रभु अभी भी मन मे विश्वास[2] नही कर रहे है। प्रभु से मिलने के लिए जीवन के दिन-रात्रियो मे, मै भजन करना रूप जाग्रतावस्था मे ही रही हूँ। अब तक भी मेरी वृत्ति रूप पलक विषयो मे नही लगी है। मै नाना साधन रूप यत्न करके प्रभु का मार्ग देख रही हूँ और जैसे प्रभु को अच्छा लगे, वैसे ही अपने को सजा रही हूँ। प्रभो ! मेरी इस वियोग-जन्य विपत्ति निवारण की प्रार्थना सुन कर अब मुझे दर्शन द्वारा आनन्द दीजिये, मै आपकी बलिहारी जाती हूँ।

८-विरह चिन्ता। गजताल

सो दिन कबहूँ आवैगा, दादूड़ा पीव पावैगा ॥ टेक ॥
क्यों ही अपने अंग लगावैगा, तब सब दुख मेरा जावैगा ॥ १ ॥
पीव अपने बैन सुनावैगा, तब आनद अग न मावैगा ॥ २ ॥
पीव मेरी प्यास मिटावैगा, तब आपहि प्रेम पिलावैगा ॥ ३ ॥
दे अपना दर्श दिखावैगा, तब दादू मगल गावैगा ॥ ४ ॥

वियोगी के विचार दिखा रहे है—वह दिन कब आयेगा, जिस दिन मुझे प्रभु मिलेंगे। जब किसी भी प्रकार वे मुझे अपने स्वरूप मे लगायेंगे, तब ही वियोगजन्य मेरा सम्पूर्ण दु ख नष्ट होगा। वे प्रभु जब अपने स्वरूप मे लीन करने सम्बन्धी वचन सुनायेंगे तब उनसे जन्य आनद मेरे अन्त करण मे न समायेगा। वे प्रभु आप ही मुझे प्रेम-प्याला पिलाते हुये मेरी प्यास मिटायेंगे अर्थात् पूर्ण प्रेम प्रदान करके प्रेम की इच्छा पूर्ण करेंगे और दिव्य ज्ञान चक्षु देकर अपना साक्षात्कार करायेंगे, तब मै आनद-पूर्वक मगल गीत गाऊगा।

९- विरह प्रीति । पंचमताल

तैं मन मोह्यो मोर रे, रह न सकूं हौं[1] राम जी ॥टेक॥
तोरे नाम चित लाइया रे, औरन[2] भया उदास ।
सांई ये समझाइया, हौं संग न छाडूं पास रे ॥ १ ॥
जाणूं तिलहि न बीछुटूं रे, जनि पछतावा होइ ।
गुण तेरे रसना जपूं, सुणसी सांई सोइ रे ॥ २ ॥
भोरैं[3] जन्म गमाइया रे, चीन्हा नहिं सो सार ।
अजहूँ यह अचेत है, औरन[2] हीं आधार रे ॥ ३ ॥
पीव की प्रीति तो पाइये रे, जो शिर होवे भाग ।
यो तो अनत[4] न जाइसी, रहसी चरणहुँ लागरे ॥ ४ ॥
अनतैं मन निवारिया रे, मोहि एकै सेती काज ।
अनत गये दुख ऊपजे, मोहि एकहि सेती राज[6] रे ॥ ५ ॥
सांई सौं सहजैं रमूं रे, और नहीं आन[8] देव ।
तहां मन विलम्बिया, जहां अखल अभेव[7] रे ॥ ६ ॥
चरण कमल चित लाइया रे, भोरैं[8] ही ले भाव ।
दादू जन अचेत है, सहजैं ही तूं आव रे ॥ ७ ॥

विरह पूर्वक प्रीति दिखा रहे है—हे रामजी ! आपने मेरे मन को मोहित किया है, मे[1] आपके बिना नही रह सकता । अन्य[2] सबसे उपराम होकर, मैंने अपना चित्त आपके नाम चिन्तन मे ही लगाया है । स्वामिन् ! सतो ने भी ऐसे ही विचार समझाये है, जिनसे मै आपका साथ न छोडकर आपके पास ही रहूगा । अब तो मै समझता हूँ—एक तिल भर भी आप से दूर न रहूगा, फिर मुझे पश्चाताप भी क्यो होगा ? जिह्वा से आपके गुण गान करूगा और नाम जपूगा, कान उन्ही नाम और गुणो को सुनेगे । अहो ! मैंने भोलेपन[3] से अनेक जन्म खो दिये, जो वास्तव मे सार तत्त्व था, उसे नही पहचाना । यह मन अभी तक असावधान है और अन्य[2] देवी-देवताओ को पूजता फिरता है, अन्य कोई आधार नही है । अच्छा भाग्य हो तो ही प्रभु का प्रेम प्राप्त होता है, अत यह समझाकर कि—"मेरा अन्य से कुछ भी काम नही है" मन को बारबार अन्य से हटाया है । आशा है, अब यह मन अन्यत्र[4] नही जायगा, प्रभु के चरणो मे ही लगा रहेगा । अन्य की ओर जाने से तो दु ख ही होता है और मेरी शोभा[6] भी एक प्रभु मे लगे रहने से ही है । अब मै सहजावस्था द्वारा प्रभु के साथ आनद लूगा और कोई दूसरा[8] देवता मेरा उपास्य न होगा । अब तो मन उसी समाधि अवस्था मे लग गया है, जिसमे मन इन्द्रियो के विषय अद्वैत[7] ब्रह्म की अनुभूति होती है । मैंने तो सरल[8] भाव से प्रभु का ही आश्रय लेकर, उनके चरण-कमलो मे चित्त लगाया है । हे प्रभो ! मै

आपका जन, आपकी प्राप्ति के साधन मे अधिक सावधान नही हूँ। अत आप मेरे सहज-सरल स्वभाव से ही प्रसन्न होकर पधारिये।

१०-विरह विलाप। पंचमताल

विरहनि को श्रृगार न भावै, है कोई ऐसा राम मिलावै ॥टेक॥
विसरे अजन मजन चीरा, विरह व्यथा यहु व्यापै पीरा ॥ १ ॥
नव-सत[1] थाके सकल श्रृगारा, है कोई पीड़ मिटावणहारा ॥ २ ॥
देह गेह[2] नहि सुधि शरीरा, निशदिन चितवत चातक नीरा ॥ ३ ॥
दादू ताहि न भावै आन, राम बिना भई मृतक समान ॥ ४ ॥

विरह पूर्वक विलाप दिखा रहे है—वियोगिनी सन्त-सुन्दरी को शरीर सजाना प्रिय नही लगता। वह तो यही पुकारती रहती है—"कोई ऐसा सज्जन है, जो राम को मिला सके।" यह विरह की व्यथा हृदय मे व्याप्त होकर, उसे इतना पीडित करती है कि उसका आँख का अजन, दाँत का मजन व स्नान करना और अच्छे वस्त्र पहनना भी छूट जाता है। (नव = नौ) नवधा भक्ति और (सत =) सात समाधि के साधन रूप सोलह[1] श्रृगार ये सभी शिथिल हो जाते है। वह तो यही पुकारती रहती है—"कोई मेरी पीडा मिटाने वाला सिद्ध सत है क्या ?" उसे देह और घर[2] के सम्बन्ध का तथा शरीर का भी स्मरण नही रहता। वह तो जैसे चातक पक्षी स्वाति जल की प्रतीक्षा करता रहता है, वैसे ही रात्रि-दिन प्रभु की प्रतीक्षा करती रहती है, उसे अन्य कुछ भी अच्छा नही लगता। वह अपने प्यारे राम के बिना मृतकवत् हो जाती है।

११- करुणा विनती। पंजाबी त्रिताल

अब तो मोहि लागी बाइ[1], उन निहचल चित लियो चुराइ ॥टेक॥
आन[2] न रुचै और नहिं भावै, अगम अगोचर तहँ मन जाइ।
रूप न रेख वरण कहूँ कैसा, तिन चरणो चित रह्या समाइ ॥ १ ॥
तिन चरणों चित सहज समाना, सो रस भीना[3] तहँ मन धाइ।
अब तो ऐसी बन आई, विष तजै अरु अमृत खाइ ॥ २ ॥
कहा करू मेरा वश नाहीं, और न मेरे अग सुहाइ।
पल इक दादू देखन पावै, तो जन्म-जन्म की तृषा बुझाइ ॥ ३ ॥

दु ख पूर्वक विनय कर रहे है—अहो! अब तो मेरे विरह रूप प्रचड वायु[1] आ लगी है। उसके द्वारा ही उन निश्चल परमात्मा ने मेरे चित्त को अपहरण किया है। मेरा अन्य[2] देवता मे प्रेम नहीं होता, न मुझे सासारिक विषय प्रिय लगते, मेरा मन तो अगम अगोचर परब्रह्म के चिन्तन मे ही जाता है। यदि प्रश्न करो—"वह कैसा है ?" तो उनका आकार, चिन्ह और रग कोई है ही नही, फिर कैसा कहू ? वे तो अनुभव-वेद्य है। उन्ही के स्वरूप-भूत चरणो मे मेरा चित्त लय हो रहा है। सहजावस्था मे उनके चरणो मे चित्त प्रविष्ट हुआ है, अत वहा के आनन्द-रस-पान मे निमग्न[3] हुआ मन वहा ही दौडता है। अब चित्त की ऐसी अवस्था बन गई है कि विषय-विष को त्याग कर

प्रभु-चिन्तनामृत का ही पान करता है। मेरे अन्त·करण को प्रभु से भिन्न कुछ भी प्रिय नही लगता। क्या करू, मेरा वश नही चलता। यदि मै एक पलक भी अपने प्रभु को देख पाऊ तो मेरी जन्म-जमान्तरो की दर्शनाभिलाषा मिट जाय। अत मुझे कृपा करके दर्शन दे।

१२-करुणा विनती। पंजाबी त्रिताल

तूं जनि[1] छाडे केशवा, मेरे ओर[2] निवाहनहार हो ॥ टेक॥
अवगुण मेरे देखकर, तू ना कर मैला मन।
दीनानाथ दयाल है, अपराधी सेवक जन हो ॥ १ ॥
हम अपराधी जनम के, नखशिख भरे विकार।
मेट हमारे अवगुणां, तूं गरवा[3] सिरजनहार हो ॥ २ ॥
मैं जन बहुत बिगारिया, अब तुम ही लेहु सॅवार।
समर्थ मेरा सांइयॉ, तूं आपै आप उधार हो ॥ ३ ॥
तूं न विसारी केशवा, मैं जन भूला तोहि।
दादू को ओर[2] निवाह ले, अब जनि छाडे मोहि हो ॥ ४ ॥

वियोग जन्य दु खपूर्वक विनय कर रहे है—हे केशव ! आप मुझे मत[1] छोड देना। आप तो मेरे को अन्त[2] तक निवाहने वाले हो, (और न वाहनहार) अन्य कोई मेरा भार वहन करने वाला नही है, ("जो हरि, और कोउ हितू पाऊँ।" - सूरदास)। मेरे दोष देखकर आप अपने मन को मेरे से उपराम न करना। यद्यपि सेवक जन अपराधी होते है, तो भी हे दीनानाथ ! आप तो दयालु ही रहते है। हम तो जन्म-जन्म के अपराधी है, नख से शिखा पर्यन्त विकारो से भरे रहने के कारण तुच्छ है, किन्तु आप तो सब प्रकार महान्[3] है। अत हे विश्वकर्त्ता ! मेरे दोषो को नष्ट करिये। मैंने दोषो के द्वारा बहुत कुछ बिगाड लिया है। अब आप ही सुधार करके मुझे अपनाइये। हे मेरे समर्थ प्रभो ! आप अपने जनवत्सल स्वभाव के द्वारा ही मेरा उद्धार करो। हे केशव ! यद्यपि मै सेवक आपको भूल गया हूँ, तो भी आप मुझे मत भूलना। अब मुझे अवश्य अन्त[2] तक निभाना, छोडना नही।

१३-केवल विनती। गजताल

राम सॅभालिये रे, विषम[1] दुहेली[2] बार ॥ टेक॥
मंझ समंदां नावरी रे, बूडे खेवट-बाज[3]।
काढनहारा को नहीं, एक राम बिन आज ॥ १ ॥
पार न पहुँचै राम बिन, भेरा भवजल मांहिं।
तारणहारा एक तूं, दूजा कोई नांहिं ॥ २ ॥
पार परोहन[4] तो चले, तुम खेवहु सिरजनहार।
भवसागर में डूब है, तुम बिन प्राण अधार ॥ ३ ॥

औघट[१] दरिया क्यौ तिरै, बोहिथ[१] बैसणहार ।
दादू खेवट राम बिन, कौण उतारै पार ॥ ४ ॥

१३-१५ मे केवल उद्धारार्थ विनय कर रहे है—हे राम ! यह समय कठिन[१] सकट[२] का है, हमारी सँभाल करो । हमारी जीवन-नौका ऐसे संसार-समुद्र के मध्य है, जहा अच्छे-अच्छे होशियार केवटिया[३] भी डूब जाते है । आज हमे निकालने वाला एक राम के बिना अन्य कोई भी नही दीखता । हमारा जीवन-बेडा ससार-समुद्र के विषय-जल मे रुक रहा है, राम के बिना पार नही पहुच सकता । राम ! आप ही एक तारने वाले है, अन्य कोई नही दीखता । हे सृष्टि कर्ता ! यदि आप खेओ तो ही हमारी नौका[४] पार जा सकती है, प्राणाधार ! आप बिना तो भव-सागर मे डूबेहीगी । यह ससार-सागर दुस्तर[५] है, इससे कैसे तैरा जाय ? जीवन-जहाज[६] विषय-जल मे बैठने वाला ही है । राम के बिना कौन पार उतारेगा ? राम ! कृपा करके पार करो ।

१४-रगताल

पार नहि पाइये रे, राम बिना को निर्वाहणहार[१] ॥ टेक ॥
तुम बिन तारण को नहीं, दूभर[१] यहु संसार ।
पैरत थाके केशवा, सूझै वार न पार ॥ १ ॥
विषम[२] भयानक भव-जला, तुम बिन भारी होइ ।
तूं हरि तारण केशवा, दूजा नांहीं कोइ ॥ २ ॥
तुम बिन खेवट को नहीं, अतिर तिरा नहि जाइ ।
औघट[३] भेरा डूब है, नांहीं आन उपाइ ॥ ३ ॥
यो घट[४] औघट विषम[५] है, डूबत मांहि शरीर ।
दादू कायर राम बिन, मन नहि बाँधै धीर ॥ ४ ॥

हम ससार-सिन्धु का पार नहीं पा रहे है । राम ! आप बिना हमको निभानेवाला[१] कौन है ? यह ससार-समुद्र तैरने मे कठिन[१] है, आप बिना हमे कोई तारने वाला नही है । हे ! केशव ! योगादि साधनो से तैरते हुये हम थक गये है और अभी तक मध्य मे ही है । अब तो हमको इसका वार-पार भी नही दीख रहा है । दुस्तर[२] भयानक भव-जल आप के बिना तैरने मे भारी हो रहा है । हरे ! आप ही सतारक है । केशव ! आपके बिना इससे पार करने वाला केवट अन्य कोई भी नहीं है और हमारे लिये यह अतिर है, तैरा नही जाता । अन्य कोई उपाय दीखता नही । अत दुस्तर[३] ससार-समुद्र मे हमारा जीवन-बेड़ा डूबेगाही । यह हमारा अन्त करण[४] भयकर[५] दुस्तर विषय जल मे है और इन्द्रियादि शरीर डूब रहा है । राम ! आपके बिना मन कायर हो रहा है, धैर्य नहीं रख सकता । अत आप हमारा उद्धार शीघ्र ही करने की कृपा करे ।

१५-रंगताल

क्यों हम जीवैं दास गुसांईं, जे तुम छाडहु समर्थ सांईं ॥टेक॥
जे तुम जन को मनहिं विसारा, तो दूसर कौण सँभालनहारा ॥ १ ॥
जे तुम परिहर रहो निन्यारे[1], तो सेवक जाइ कवन[2] के द्वारे ॥ २ ॥
जे जन सेवक बहुत बिगारे, तो साहिब गरवा[3] दोष निवारे ॥ ३ ॥
समर्थ सांई साहिब मेरा, दादू दास दीन है तेरा ॥ ४ ॥

हे समर्थ स्वामिन्! यदि आप हमको त्याग देगे तो हम आपके भक्त कैसे जीवित रह सकेगे ? यदि आप अपने भक्त को मन से भूल जायँ तो उसे अन्य कौन सँभालने वाला है ? यदि आप सेवक को त्याग कर अलग[1] रहेगे तो वह किसके[2] द्वार पर जायगा ? यदि सेवकजन बहुत बिगाड कर देते है, तो भी गभीर[3] हृदय स्वामी उनके दोषो को अपने मन से हटा कर उनकी रक्षा ही करते है। भगवन्! मेरे स्वामी तो आप सर्व प्रकार से समर्थ है और मै आपका दीन दास हूँ। अत· आप मुझे न त्यागिये, मेरा उद्धार करिये।

१६-करुणा। वीर विक्रम ताल

क्यों कर मिलै मोकौं राम गुसांईं, यहु विषिया[1] मेरे वश नाहीं ॥ टेक ॥
यहु मन मेरा दह[2] दिशि धावै, नियरे राम न देखन पावै॥ १ ॥
जिह्वा स्वाद सबै रस लागे, इन्द्री भोग विषय को जागे॥ २ ॥
श्रवणहुँ साच कदे नहिं भावै, नैन रूप तहँ देख लुभावै॥ ३ ॥
काम क्रोध कदे नहिं छीजै, लालच लाग विषय रस पीजै॥ ४ ॥
दादू देख मिलै क्यों सांई, विषय विकार बसैं मन मांहीं॥ ५ ॥

वियोग जन्य दु ख प्रकट कर रहे है—ये विषय[1] लोलुप मन इन्द्रियादि, मेरे वश मे नही हो रहे है, तब मुझे स्वामी राम कैसे मिलेगे ? यह मेरा मन विषयो के लिए तो दशो[2] दिशाओ मे दौड़ता है, किन्तु अति समीप हृदयस्थ राम को नही देख पाता। इन्द्रिया विषय-भोगो के लिए जाग्रत रहती है। जिह्वा सपूर्ण रसो के आस्वादन मे लगती है, श्रवणो को सत्य ब्रह्म-विचार कभी भी प्रिय नही लगता, नेत्र सुन्दर रूप को देखकर वहा ही आसक्त हो जाते है। काम क्रोधादि कभी भी कम नही होते, इस प्रकार लोभ मे पडकर विषय रस का ही पान कर रहा हूँ। अत मै देखता हूँ, जब मन मे विषय-विकार बसते है, तब स्वामी कैसे मिलेगे ?

१७ परिचय विनती। वीर विक्रम ताल

जो रे भाई राम दया नहिं करते।
नवका नाम, खेवट हरि आपै, यों बिन क्यों निस्तरते॥ टेक॥
करणी कठिन होत नहिं मोपैं, क्यों कर ये दिन भरते।
लालच लाग परत पावक मे, आपहि आपैं जरते ॥ १ ॥

स्वाद हि संग विषय नहि छूटै, मन निश्चल नहि धरते ।
खाइ हलाहल सुख के ताईं, आपै हीं पच मरते ॥ २ ॥
मै[1] कामी कपटी क्रोध काया में, कूप परत नहि डरते ।
करवत काम शीश धर अपने, आपहि आप विहरते[2] ॥ ३ ॥
हरि अपना अग[3] आप नहि छाडै, अपनी आप विचरते ।
पिता क्यो पूत को मारै, दादू यों जन तिरते ॥ ४ ॥

साक्षात्कार होने पर उपकार दर्शन रूप विनय कर रहे है—हे भाई ! यदि राम दया नहीं करते तो नाम-नौका देकर वे हरि स्वय ही केवट कैसे बनते ? और ऐसा नही करते तो हम ससार से कैसे पार होते ? हठयोगादिक कठिन कर्त्तव्य तो हम से होता नही। फिर ये वियोग जन्य दु ख पूर्ण जीवन के दिन कैसे पूरे करते ? लोभ मे लग कर अपने आप ही चिन्ताग्नि मे पडकर जलते रहते। विषयो के स्वाद के ससर्ग से विषयो का त्याग नही होता और मन को स्थिर करके भगवद् भजन मे नही रख पाते, सुखाशा से विषय रूप महा विष खाकर, सासारिक कार्यों मे ही पच-पच कर मर जाते। अहकार[1] के कारण शरीर मे आसक्त हो, कामी, कपटी और क्रोधी बनकर ससार कूप मे पड़ने से कभी भी नही डरते थे तथा काम रूप आरा अपने अहकार रूप शिर पर रखकर आप ही अपने को विदीर्ण[2] करते रहते। किन्तु स्वय हरि अपना भक्त-वत्सलतादि लक्षण[3] नही छोडते, वे अपनी नीति मे आप ही चलते रहते है अर्थात् भक्तो का उद्धार करते रहते है। ठीक तो है, परम पिता परमेश्वर भक्त-पुत्रो को कैसे मार सकते है ? वे तो उद्धार ही करते है। इस प्रकार भगवान् की कृपा से भक्तजन ससार से पार होते है।

१८-विरह विलाप विनती। द्वितीय ताल

तौ लग[1] जनि[2] मारै तू मोहि, जौ लग मै देखूं नहि तोहि ॥टेक॥
अब के विछुरे मिलन कैसे होइ, इहि विधि बहुरि न चीन्है कोइ ॥ १ ॥
दीन दयाल दया कर जोइ, सब सुख आनद तुम तै होइ ॥ २ ॥
जन्म-जन्म के बन्धन खोइ, देखन[3] दादू अहनिश रोइ ॥ ३ ॥

भक्त वत्सलता का निश्चय करके विरह दुख निवारणार्थ विलाप युक्त विनय कर रहे है—प्रभो ! तब तक[1] आप मेरे प्राण पिड का वियोग मत[2] करना, जब तक मै आपके दर्शन न कर लू। इस मानव देह मे आकर भी आप से न मिल सका तब अन्य शरीरो मे तो इस शरीर के समान मेरे मन, बुद्धि आदि कोई भी आपको न पहचान सकेगे, फिर उनमे मिलना कैसे होगा ? हे आनद-स्वरूप ! आपके मिलने से ही जन्म जन्मान्तरो के कर्म-बन्धन नष्ट होकर, मुझे सब प्रकार से सुख होगा ।
मै वियोगी आप के दर्शनार्थ[3] दिन-रात रो रहा हूँ, अत हे दीनदयालो ! दया करके मेरी ओर देखिये।

१९-स्पर्श विनती। द्वितीय ताल

संग न छाड़ूं मेरा पावन पीव, मैं बलि तेरे जीवन जीव॥ टेक॥
संग तुम्हारे सब सुख होहि, चरण कमल मुख देखूं तोहि॥ १ ॥
अनेक जतन कर पाया सोइ, देखूं नैनहुँ तो सुख होइ॥ २ ॥
शरण तुम्हारी अंतर वास, चरण कमल तहँ देहु निवास॥ ३ ॥
अब दादू मन अनत न जाइ, अंतर वेधि[1] रह्यो ल्यौ लाइ॥ ४ ॥

नित्य मिलनार्थ विनय कर रहे है—मेरे प्राणाधार स्वामिन्! मै आप की बलिहारी जाता हूॅ। आप मुझ पर ऐसी दया करो, जिससे मै आपका सग न छोड सकू। आपके सग से मुझे सपूर्ण सुख होते है, मै आपके चरण-कमल और मुखारविन्द का दर्शन करता रहता हूँ। भक्ति आदि नाना साधन करके आपके स्वरूप को प्राप्त किया है, उसे निरन्तर नेत्रो से देखता रहू, तभी आनन्द रहता है। मै आपकी शरण हूॅ। आन्तर समाधि अवस्था मे जहा आपके चरण-कमलो का वास है, वहा ही मुझे निवास दीजिये। अब मेरा मन अन्य ओर नही जाता। मै सभी अन्तरायो को छेदन[1] करके आपके स्वरूप मे ही वृत्ति लगाये रहता हूॅ।

२०-परिचय विनती (गुजराती भाषा) त्रिताल

नहिं मेलूं, राम! नहिं मेलूं।
मै सोधि[1] लीधो[2] नहि मेलूं[3], चित तूं सूं बॉधूं नहि मेलूं ॥ टेक॥
हूं तारे[4] काजे तालाबेली, हवे[5] केम[6] मने जाशे मेली॥ १॥
साहसि[7] तूं ने मनसों गाढौ[8], चरण समानो केवी[9] पेरे[10] काढौ॥ २॥
राखिश[14] हृदे, तूं मारो स्वामी, मैं दुहिले[11] पाम्यों[12] अंतरजामी ॥ ३॥
हवे न मेलूं, तूं स्वामी मारो[13], दादू सन्मुख सेवक तारो॥ ४॥

साक्षात्कार होने पर विनय कर रहे है—हे राम! मैंने आपको खोज[1] लिया[2] है। अब मन, वचन, कर्म से कभी भी नही त्यागूगा[3]। अपने चित्त को आपके चिन्तन मे ही बाधूगा, चिन्तन कभी न छोडूगा। मै आपके[4] लिये व्याकुल हू, अब[5] मुझे त्याग कर कैसे[6] जाओगे? मैंने उत्साह[7] पूर्वक दृढ[8] मन से आपको पकडा है और आपके चरणो मे ही लगा हुआ हूॅ, आप मुझे दूर[10] कैसे[9] निकालते हो? हे अन्तर्यामी! मैंने विरह-व्यथा सहते हुये बडी कठिनता[11] से आपको प्राप्त[12] किया है, आप मेरे[13] स्वामी है, मै तो आपको हृदय मे रखूगा[14] अब नही त्यागूगा। आप मेरे स्वामी है और मै आपका सेवक हूॅ, अत आपके सन्मुख ही रहूगा।

२१-परिचय करुणा विनती। दादरा

राम! सुनहुन विपति हमारी हो, तेरी मूरति की बलिहारी हो॥ टेक॥
मैं जु चरण चित चाहना, तुम सेवक साधारना॥ १॥
तेरे दिन प्रति चरण दिखावना, कर दया अंतर आवना॥ २॥
जन दादू विपति सुनावना, तुम गोविन्द तपत बुझावना॥ ३॥

प्रत्यक्ष दर्शनार्थ दु ख पूर्ण विनय कर रहे है—हे राम ! मै आपके स्वरूप की बलिहारी जाता हूँ, मेरा दु ख सुनो। मै आपके चरण-दर्शन की इच्छा कर रहा हूँ, आप भी साधारणत सेवक के लिए हितकर ही है। अत दया करके मेरे हृदय मे आओ, प्रतिदिन अपने चरणो का दर्शन कराओ। मै आपका जन यह वियोग-व्यथा सुना रहा हूँ। हे गोविन्द ! आप दर्शन देकर मेरी विरहाग्नि बुझाना।

२२-परिचय-विनती प्रश्न। द्रुतताल

कौण भांति भल मानैं गुसाईं, तुम भावै सो मैं जानत नाहीं॥ टेक॥
कै भल मानै नाचें गायें, कै भल मानैं लोक रिझाये॥ १॥
कै भल मानै तीरथ न्हायें, कै भल मानैं मूंड मुडाये॥ २॥
कै भल मानैं सब घर त्यागी, कै भल मानैं भये वैरागी॥ ३॥
कै भल मानै जटा बधाये, कै भल मानैं भस्म लगाये॥ ४॥
कै भल मानैं वन वन डोले, कै भल मानै मुख नहि बोलें॥ ५॥
कै भल मानैं जप तप कीयें, कै भल मानैं करवत लीये॥ ६॥
कै भल मानैं ब्रह्म गियानी, कै भल मानैं अधिक धियानी॥ ७॥
जे तुम भावै सो तुम पै आहि, दादू न जाणैं कह समझाहि॥ ८॥

परिचय होने पर प्रश्न रूप विनय कर रहे है—स्वामिन् ! किस प्रकार आपकी उपासना करने से आप अच्छा मानते है ? आपको जो प्रिय है वह प्रकार मै नही जानता। क्या आप नाच-गान करने से, वा लोगो के रिझाने से, वा तीर्थ स्नान से, वा शिर मुडाने से, वा घर आदि सर्वस्व त्याग कर विरक्त होने से, वा जटा बढ़ाने से, वा भस्म लगाने से, वा वन-वन विचरने से, वा मौन रखने से, वा जप-तप करने से, वा काशी-करवत लेने से, वा विशेष ध्यानी होने से, वा ब्रह्म-ज्ञानी होने से अच्छा मानते हैं ? जो भी आपको प्रिय है, वह आप ही जानते है, मै नही जानता। अत. आप कहकर समझा दीजिये, फिर मै वही करूगा। उक्त प्रश्नो के उत्तर वाणी की साखियो द्वारा इस प्रकार है—

साखी से उत्तर—

दादू जे तूं समझै तो कहू, साचा एक अलेख। (१४-१०)
डाल पान तज मूल गहि, क्या दिखलावै भेख॥ १॥
दादू सचु बिन साई ना मिलै, भावै भेष बनाइ। (१४-४१)
भावै करवत उरध मुख, भावै तीरथ जाइ॥ २॥

२३ - परिचय विनती। द्रुतताल

अहो ! गुण तोर, अवगुण मोर, गुसाईं !
तुम कृत कीन्हा, सो मै जानत नाहीं॥ टेक॥

तुम उपकार किये हरि केते, सो हम विसर गये।
आप उपाइ अग्निमुख[1] राखे, तहां प्रतिपाल भये हो गुसांईं ॥ १ ॥
नख-शिख साज किये हो सजीवन, उदर आधार दिये।
अन्न-पान जहँ जाइ भस्म हो, तहँ तैं राखि लिये हो गुसाईं॥ २ ॥
दिन दिन जान जतन कर पोखे, सदा समीप रहे।
अगम अपार किये गुन केते, कबहुँ नांहि कहे हो गुसांई॥ ३ ॥
कबहूँ नांहिं न तुम तन चितवत, माया मोह परे।
दादू तुम तज जाइ, गुसांईं, विषया मांहिं जरे हो गुसांईं ॥ ४ ॥

साक्षात्कार होने पर उपकार प्रदर्शन रूप विनय कर रहे है—अहो! आपके अनन्त उपकार है, किन्तु हे स्वामिन्! आपके किये हुये उपकारो को मै नही जानता, सो मेरा महान् दोष है। हरे! आपने कितने ही उपकार किये है, उनको हम भूल गये है। आपने उत्पन्न किया और जठराग्नि[1] के मुख मे रख करके भी आप हमारे रक्षक हुये। नख से शिखा पर्यन्त शरीर को यथायोग्य अगो से सजाकर जीविनी शक्ति से युक्त किया और उदर-गुहा मे आश्रय दिया, जहा जाकर अन्न-जल पच पाते है, वहा पर आपने ही रक्षा की। प्रतिदिन हमारे पोषण का विचार रखते हुये प्रयत्नपूर्वक हमारा पोषण किया और सदा समीप ही रहे। इस प्रकार आपने कितने ही उपकार किये है, जो अगम अपार है, फिर भी आपने कभी यह नही कहा—"हमने तेरे प्रति उपकार किया है।" और हमारा इतना महान् दोष है—आपके स्वरूप की ओर हमने देखा भी नही। आपको छोड कर मायिक मोह मे पड़े हुये विषयो मे रत रहे और विषयाग्नि मे ही जलते रहे।

२४-उपदेश चेतावनी। एकताल

कैसे जीविये रे, सांई संग न पास।
चंचल मन निश्चल नहीं, निशि दिन फिरै उदास ॥ टेक ॥
नेह नहीं रे राम का, प्रीति नहीं परकाश।
साहिब का सुमिरण नहीं, करै मिलन की आश ॥ १ ॥
जिस देखे तूं फूलियारे, पाणी पिंड बंधाणां मांस।
सो भी जल-बल जाइगा, झूठा भोग विलास ॥ २ ॥
तो जीवीजै जीवणां, सुमरै श्वासैं श्वास।
दादू परगट पिव मिलै, तो अंतर होइ उजास ॥ ३ ॥

प्राणी को उपदेश द्वारा सावधान कर रहे है—प्रभु पास नही है, चचल मन प्रभु से उपराम होकर रात-दिन विषयो मे विचर रहा है, ऐसी स्थिति मे तू कैसे जी रहा है? राम मे स्नेह नही है और राम मे प्रीति न होने से हृदय मे ज्ञान का प्रकाश भी नही हो सका है। प्रभु का स्मरण भी नही करता, फिर भी प्रभु से मिलने की आशा करता है, यह कैसे सफल होगी? जिसे देखकर तू फूल रहा है, यह शरीर तो जल-बिन्दु से बना हुआ है और मास वृद्धि से ही सुन्दर लग रहा है। सो भी

जल कर भस्म हो जायेगा। भोग-सुख भी मिथ्या है। अत प्रति श्वास प्रभु का स्मरण करते हुए जीवित रहना चाहिए। ऐसा ही जीवन अच्छा होता है। ऐसा जीवन होगा तो ही अन्त.करण मे ज्ञान का प्रकाश होकर प्रभु का प्रत्यक्ष मिलन होगा।

२५- हितोपदेश। चटताल

जियरा मेरे सुमिर सार, काम क्रोध मद तज विकार॥ टेक॥
तूं जनि भूलै मन गँवार, शिर भार न लीजै मान हार॥ १॥
सुन समझायो बार बार, अजहूँ न चेतै, हो हुसियार॥ २॥
कर तैसे भव तिरिये पार, दादू अबतै यही विचार॥ ३॥

मन को कल्याणप्रद उपदेश कर रहे है—हे मेरे मन ! काम, क्रोध, मदादि विकारो को त्याग कर विश्व के सार परब्रह्म का स्मरण कर। मूर्ख मन ! तू प्रभु को मत भूल, स्मरण करने मे हार मान कर अपने शिर पर पापो का भार मत ले। अरे कुछ सुन तो सही, मैंने तुझे बारबार समझाया है, फिर भी तू अभी तक सचेत नही हो रहा है। शीघ्र सावधान होकर, अभी से ऐसे विचार और ऐसे कार्य कर, जिनसे ससार-समुद्र से पार हो सके।

२६ (क) भय चेतावनी। त्रिताल

जियरा चेत रे जनि जारे।
हेजैं हरि सौं प्रीति न कीन्ही, जनम अमोलक हारे॥ टेक॥
बेर बेर समझायो रे जियरा, अचेत न होइ गँवारे।
यहु तन है कागद की गुडिया, कछु इक चेत विचारे॥ १॥
तिल तिल तुझ को हानि होत है, जे पल राम विसारे।
भय भारी दादू के जिय मे, कहु कैसै कर डारे॥ २॥

मन को भय से सावधान कर रहे है—हे मन ! सावधान हो, चिन्तादि से क्यो जल रहा है ? तूने स्नेह से हरि की भक्ति नही की, इस अमूल्य जन्म को खो रहा है ? अरे मूर्ख मन ! तू असावधान मत हो। तुझे बारबार समझाया है, यह शरीर कागज की गुड़िया के समान है, इसे नष्ट होते क्या देर लगेगी ? सचेत होकर कुछ तो विचार कर, क्षण-क्षण मे तेरी हानि हो रही है। यदि तू एक पल भर भी राम को भूलेगा तो तेरे हृदय मे महान् भय की सभावना है कि यह मन पता नही, किस प्रकार के कुटिल कर्म कर डाले और कैसी योनि मे डाल दे, अत कर्म-बधन काटने के लिए शीघ्र राम का भजन कर।

२६ (ख) पंजाबी-त्रिताल

जियरा, काहे रे मूढ डोले ?
वनवासी लाला पुकारे, तुंहीं तुंहीं कर बोले॥ टेक॥
साथ सवारी ले न गयो रे, चालण लागो बोले।
तब जाइ जियरा जाणैगो रे, बाँधे ही कोइ खोले॥ १॥

तिल तिल मांहीं चेत चली रे, पंथ हमारा तोले ।
गहिला दादू कछू न जाणै, राख ले मेरे मोले[1] ।। २ ।।

अरे मूढ मन ! वन की चिडिया भी 'तुंही तुही'' बोलकर भगवान् को पुकारती है, फिर तू भगवान् का चिन्तन छोडकर विषयो मे क्यो भटक रहा है ? कोई भी साथ मे अश्वादि सवारी नही ले गया है, स्वय जाने वाला ही बोलता है- 'मेरे साथ कुछ भी नही जा रहा है, मै खाली हाथ जा रहा हूॅ।' जब तू भी यमदूतो के हाथ जायेगा, तब जानेगा, वह क्लेश कैसा होता है ! वे तुझे अपनी पाश मे बॉधकर ले जायेगे, कोई भी न खोल सकेगा। अत सावधान होकर क्षण-क्षण मे अपने हित का विचार करते हुये, हमारे भगवद्-भजन रूप मार्ग मे चल। हे मेरे मालिक[1] परमेश्वर ! यह मन अनजान है और मै इसे आप मे निरतर स्थापन कर सकू, ऐसा साधन कुछ भी नही जानता। अत. आप ही इसको अपने स्वरूप मे स्थिर रखने की कृपा करिये।

(यह भजन हस्तलिखित सब पुस्तको मे नही है, किसी-किसी मे है।-स)

२७-अबल वैराग्य । त्रिताल

ता सुख को कहो का कीजे, जातैं पल पल यहु तन छीजे ।। टेक ।।
आसन कुंजर शिर छत्र धरीजे, तातैं फिर फिर दुःख सहीजे ।। १ ।।
सेज सँवार सुन्दरि संग रमीजे, खाइ हलाहल भरम मरीजे ।। २ ।।
बहु विधि भोजन मान रुचि लीजे, स्वाद संकट भ्रम पाश परीजे ।। ३ ।।
ये तज दादू प्राण पतीजे, सब सुख रसना राम रमीजे ।। ४ ।।

प्रचड वैराग्य दिखा रहे है—जिससे क्षण-क्षण मे यह शरीर क्षीण होता है, उस विषय-सुख को प्राप्त करके क्या करना है, बताओ ? यदि हस्ति पर बैठ, शिर पर छत्र धारण करके राजा बनेगे तो राज-मद से किये हुये अनर्थो के कारण पुन दु ख सहने होंगे। सजी हुई शय्या पर सुन्दरी के साथ रमण करना भ्रमवश विषय रूप महाविष खाकर मरना है। स्वादिष्ट मानकर नाना प्रकार के भोजन करते रहेगे तो स्वाद के द्वारा स्वादु भोजन-प्राप्ति के सकट मे पडकर भ्रम-पाश मे ही बँधे होगे। अत ये सब विषय त्यागकर जब प्राणी विश्वास पूर्वक भगवद्-भजन करता है, तब ही उसे सब प्रकार से परमानन्द प्राप्त होता है।

२८-उपदेश। एकताल

मन निर्मल तन निर्मल भाई, आन उपाइ विकार न जाई ।। टेक ।।
जो मन कोयला तो तन कारा, कोटि करै नहिं जाइ विकारा ।। १ ।।
जो मन विषहर तो तन भुवंगा, करै उपाइ विषय पुनि संगा ।। २ ।।
मन मैला तन उज्ज्वल नांहीं, बहु पचहारे विकार न जांहीं ।। ३ ।।
मन निर्मल तन निर्मल होई, दादू साच विचारै कोई ।। ४ ।।

सत्योपदेश कर रहे है—हे भाई ! यदि मन निर्मल होगा तो इन्द्रियादि शरीर भी निर्मल होगा। मन निर्मल हुये बिना अन्य उपाय से विकार नष्ट नही होते। यदि मन मलीन है तो इन्द्रियादि

शरीर भी मलीन ही रहेगा, चाहे कोटि उपाय करो, विकार दूर न हो सकेगे। यदि मन विषय-विष युक्त सर्प बन रहा है तो शरीर भी सर्प ही है और फिर भी विषयो के साथ रहने का उपाय करता है। जब तक मन मलीन है तब तक इन्द्रियादि शरीर उज्ज्वल नहीं हो सकता। बहुत लोग परिश्रम करके हार गये है किन्तु मन शुद्धि बिना इन्द्रियो के विकार नष्ट नही होते। मन निर्मल होते ही इन्द्रियादि शरीर निर्मल हो जाता है। यह बात सत्य है, कोई भी विचार करके देख ले।

२९-उपदेश चेतावनी। त्रिताल

मैं मैं करत सबै जग जावै, अजहूँ अध न चेते रे ।
यह दुनिया सब देख दिवानी, भूल गये हैं केतेरे ॥टेक॥
मैं मेरे में भूल रहे रे, साजन सोइ विसारा ।
आया हीरा हाथ अमोलक, जन्म जुवा ज्यो हारा ॥ १ ॥
लालच लोभै लाग रहे रे, जानत मेरी मेरा ।
आपहि आप विचारत नांहीं, तू काको को तेरा ॥ २ ॥
आवत है सब जाता दीसै, इनमे तेरा नाहीं ।
इन सौ लाग जन्म जनि खोवै, शोधि देख सचु[1] माहीं ॥ ३ ॥
निहचल सौं मन मानै मेरा, सांई सौ बन आई ।
दादू एक तुम्हारा साजन, जिन यहु भुरकी[2] लाई ॥ ४ ॥

उपदेश द्वारा सावधान कर रहे है—मै धनी, मै बली, आदि अहकार करते हुये जगत् के सभी प्राणी काल के मुख मे जा रहे है, यह देख करके भी अभी तक मदाध प्राणी सचेत नहीं होते। यह सब ससार पागल है। इसे देखकर कितने ही विचारशील लोग भी अपना हित साधन करना भूल गये है। "मै और मेरे" अभिमान मे आकर अपना जो सच्चा स्वामी परमात्मा था, उसके उपकार को भूलकर उसे भी भूल रहे है। यह मनुष्य जन्म रूप अमूल्य हीरा हाथ मे आया था किन्तु इसे भी जैसे जुआरी अपने धन को जुआ मे हारता है, वैसे ही विषयो मे खो रहा है। लोभ-लालच मे लग रहे है और जानते है—'यह नारी मेरी है, यह धन-धाम मेरा है', किन्तु अपने हृदय मे स्वय विचार नही करते कि तू किसका है और तेरा कौन है। ये सब धनादि तो आते है और जाते हुये भी दीख रहे है। इनमे तो तेरा कुछ भी नही है। यदि तेरे हो तो तेरे हाथ से क्यो चले जाते है ? इनमे आसक्त होकर अपना जन्म व्यर्थ ही क्यो खोता है ? विचार द्वारा खोज करके देख, परम सुख[1] तो तेरे भीतर ही है। हमारा मन तो उस निश्चल परमात्मा के भजन मे ही सुख मानता है, उसी से हमारी सब बात ठीक बनी है। तुम सब भी याद रक्खो, जिस परमात्मा ने यह बहकावनी[2] माया-मोहनी डाली है, वही प्रभु तुम्हारा सच्चा मित्र भी है, अन्य सब तो स्वार्थ के ही साथी है।

३०-उपदेश चेतावनी। त्रिताल

का जिवना का मरणा रे भाई, जो तै राम न रमसि अघाई ॥ टेक ॥
का सुख संपति छत्रपति राजा, वनखंड जाइ बसे किहिं काजा ॥ १ ॥

का विद्या गुन पाठ पुरानां, का मूरख जो तैं राम न जानां ॥ २ ॥
का आसन कर अहनिशि जागे, का फिर सोवत राम न लागे ॥ ३ ॥
का मुक्ता, का बंधे होई, दादू राम न जाना सोई ॥ ४ ॥

यथार्थ ब्रह्मज्ञान से ही जीवन की सफलता है यह बता रहे हैं—हे भाई ! यदि तू राम के स्वरूप मे अरस-परस होकर अद्वैतानन्द से तृप्त नही हुआ तो अधिक जीने मे और मरणे मे क्या विशेषता है ? छत्रपति राजा होकर सपत्ति का सुख लिया तो भी क्या तृप्ति होती है ? यदि राज्यादि से तृप्ति हो जाती तो राजा लोग किस लिये वन मे जाकर बसे थे ? हे अज्ञ ! यदि तूने राम को नही जाना तो तेरे अधिक विद्या, गुनने, कला सीखने और पुराण-पाठ करने से क्या लाभ है ? यदि राम के चिन्तन मे नही लगे तो सिद्धि प्राप्ति के लिये आसन लगा कर दिन-रात जागने से या सोने से क्या लाभ है ? जिनने राम को अद्वैत रूप से नही जाना, उनकी मुक्तता और बद्धता मे क्या विशेषता है ? वे तो दोनो ही समान है, अर्थात् वाणी मात्र से अपने को मुक्त कहने वाला भी बद्ध ही है।

३१-मन प्रबोध । पंजाबी त्रिताल

मन रे, राम बिना तन छीजै।
जब यहु जाय मिलै माटी में, तब कहु कैसे कीजै ॥ टेक ॥
पारस परस कंचन कर लीजै, सहज सुरति सुखदाई।
माया बेलि विषय फल लागे, तापर भूल न भाई ॥ १ ॥
जब लग प्राण पिंड है नीका, तब लग ताहि जनि[1] भूलै।
यहु संसार सेमल के सुख ज्यों, तापर तूं जनि फूलै ॥ २ ॥
अवसर यही जान जगजीवन, समझ देख सचु पावै।
अंग अनेक आन मत भूलै, दादू जनि[1] डहकावै ॥ ३ ॥

मन को उपदेश कर रहे है—हे मन ! राम भजन के बिना शरीर क्षीण हो रहा है, फिर जब यह नर शरीर मिट्टी मे मिल जायेगा, तब बता तू अन्य शरीरो मे कैसे राम-भजन कर सकेगा ? अत शीघ्र ही ब्रह्माकार वृत्ति द्वारा सुखप्रद सहज समाधि मे ब्रह्मरूप पारस से मिलकर मन-लौह को कचन-सा निर्मल कर ले। हे भाई ! माया बेलि के तो विषय रूप विष-फल ही लगे है, उन पर तू भूल कर भी मत जाना। जब तक स्थूल-सूक्ष्म-शरीर अच्छे है तब तक प्रभु का भजन करना मत[1] भूल। शरीर रोगी या अति वृद्ध होने पर भजन होना कठिन है। यह ससार सेमल वृक्ष के समान प्रतीति मात्र ही सुखप्रद है। सेमल के लाल फूलो को देखकर मास के लोभ से गिद्ध आते है और निराश होते है। शुक पक्षी उसके फल को खाने के लिए उसके पास जाता है किन्तु उसमे रुई निकलने से वह भी निराश ही होता है। वैसे ही सासारिक सुख से किसी की भी आशा पूर्ण नहीं होती, उस सुख पर तू मत प्रसन्न हो। यह अच्छा अवसर है, जग-जीवन परमात्मा को ही अपना जान कर विचार द्वारा उनका साक्षात्कार कर, तो तुझे परमानन्द प्राप्त होगा। परमात्मा से अन्य

स्त्री-पुत्रादि अनेक शरीरो को देखकर उनकी आसक्ति द्वारा प्रभु को मत भूल व उनमे मोह बहकावे मे मत आ।

३२-मृगोक्ति उपदेश। झपताल

मोह्यो मृग देख वन अंधा, सूझत नहीं काल के फधा॥ टेक॥
फूल्यो फिरत सकल वन माहीं, शिर सांधे शर[४] सूझत नाहीं॥ १॥
उदमद[१] मातो वन के ठाट, छाड़ चल्यौ सब बारह[२] बाट॥ २॥
फंध्यो न जानै वन के चाइ[३], दादू स्वाद बँधानों आइ॥ ३॥

मृग के दृष्टात से उपदेश कर रहे है—विचार नेत्रो से हीन जीव रूप मृग, ससार-वन को देखकर मोहित हो रहा है। इसे काल का कर्म-फल रूप जाल का फदा नही दीख रहा है। यह प्रसन्न हुआ वन के सपूर्ण विषय-वृक्षो मे विचर रहा है, किन्तु इसके पीछे कालरूप व्याध, इसके शिर पर आयु समाप्ति रूप बाण[४] सधान किये हुये आ रहा है, वह इसे नही दीखता। यह स्त्री-पुत्रादि रूप वृक्षो द्वारा ससार-वन की सजावट देखकर मतवाले के समान उन्मत्त[१] हो रहा है और अपने कल्याण के सभी साधनो को छोडकर, बहिर्मुख[२] हुआ पतन की ओर जा रहा है। यह ससार-वन के विषय-वृक्षो को खाने की आशा[३] मे जाल नही दिखने से अपने को फदे मे आया हुआ नहीं समझता किन्तु विषय स्वाद के कारण ही कर्म-बधन मे आ बँधा है।

३३-मन प्रति उपदेश। निसारुक ताल

काहे रे मन राम विसारै, मानुष जन्म जाय जिय हारै॥ टेक॥
मात पिता को बन्ध न भाई, सब ही स्वप्ना कहा सगाई॥ १॥
तन धन जौबन झूठा जाणी, राम हृदय धर सारंग[१] प्राणी[२]॥ २॥
चंचल चित वित झूठी माया, काहे न चेतै सो दिन आया॥ ३॥
दादू तन मन झूठा कहिये, राम-चरण गह काहे न रहिये॥ ४॥

मन को उपदेश कर रहे है-हे मन! राम को क्यो भूल रहा है? देख, यह मनुष्य-जन्म भोगो मे व्यर्थ ही नष्ट हो रहा है, तू स्वय ही इसे हार रहा है। माता-पिता-भाई-बान्धव कोई भी तेरे नहीं है। यह सब ससार स्वप्न ही है। इससे क्या सम्बन्ध बाँध रहा है? शरीर, यौवन और धनादि को मिथ्या समझ कर हृदय मे प्राणाधार[२] परमेश्वर[१] राम का ध्यान धर। अरे चचल चित्त! यह द्रव्यादि सभी माया मिथ्या है। जिस दिन इन सबको छोडने की इच्छा के बिना भी छोड़ना है, वह मृत्यु का दिन भी समीप आ रहा है फिर तू क्यो नही सावधान होता? हे मन! यह तन शास्त्र द्वारा मिथ्या ही कहा गया है, तू राम के चरणो को ग्रहण करके क्यो नही स्थिर रहता है?

३४- मनुष्य देह महात्म्य। झपताल

ऐसा जन्म अमोलक भाई, जामे आइ मिलै राम राई॥ टेक॥
जामें प्राण प्रेम रस पीवै, सदा सुहाग सेज सुख जीवै॥ १॥
आत्मा आइ राम सौ राती, अखिल अमर धन पावै थाती॥ २॥

प्रकट दर्शन परसन पावै, परम पुरुष मिल मांहिं समावै ॥ ३ ॥
ऐसा जन्म नही नर आवै, सो क्यों दादू रत्न गँवावै ॥ ४ ॥

मानव-तन की महिमा कह रहे है—हे भाई ! मनुष्य जन्म ऐसा अमूल्य है कि—इसमे आने पर विश्व के राजा राम भी मिल जाते है। प्राणी भगवत्-प्रेम रस का पान करता है और सदा हृदय शय्या पर प्रभु को देखते हुये सौभाग्य सुख से जीवन व्यतीत करता है। जीवात्मा सासारिक भावनाओ से ऊपर आकर राम मे अनुरक्त होता है और सम्पूर्ण विश्व के अमर धन परब्रह्म रूप धरोहर प्राप्त करता है। इस प्रकार प्रत्यक्ष दर्शन, स्पर्श प्राप्त करके आत्मा परमपुरुष परमात्मा मे मिल कर उसी मे समा जाता है। हे नर ! ऐसा जन्म चौरासी मे अन्य नही प्राप्त होता, सो ऐसे रत्न रूप जन्म को विषयो मे क्यो खो रहा है ?

३५-परिचय सत्संग। दीपचन्दी ताल

सत्संगति मगन पाइये, गुरु प्रसादै राम गाइये ॥ टेक ॥
आकाश धरणि धरीजै, धरणी आकाश कीजै,
शून्य मांहिं निरख लीजै ॥ १ ॥
निरख मुक्ताहल मांहीं साइर[1] आयो, अपने पीया हौ ध्यावत खोजत पायो ॥ २ ॥
सोच साइर अगोचर लहिये, देव देहुरे मांहीं कवन कहिये ॥ ३ ॥
हरि को हितार्थ ऐसो लखै न कोई, दादू जे पीव पावै अमर होई ॥ ४ ॥

सत्सग से साक्षात्कार की पद्धति बता रहे है—निरतर सत्सग मे लगे रहकर, कृपा पूर्वक सद्गुरु की बताई हुई विधि से राम-गुण गान करते हुये राम को प्राप्त करो। ब्रह्म-स्वरूप आकाश को वृत्ति रूप पृथ्वी मे धरो अर्थात् निरतर ब्रह्माकार वृत्ति रक्खो। वृत्ति रूप पृथ्वी को ब्रह्म रूप आकाश बनाओ अर्थात् वृत्ति को निर्विकार करो, फिर शून्य रूप सहज समाधि मे परब्रह्म का साक्षात्कार कर लो। इस प्रकार देखने पर ही हृदय-सागर[1] मे परब्रह्म रूप मोती हमारी ज्ञान-दृष्टि मे आया है। हमने ध्यान तथा विचार द्वारा खोजते हुये ही अपने प्रभु को प्राप्त किया है। तुम भी विचार द्वारा हृदय-सरोवर मे ही इन्द्रियातीत परब्रह्म को प्राप्त करो। परब्रह्म देव चूना पत्थर के मदिर मे ही है, यह कौन कहता है ? वह एकदेशी नही हो सकता, वह तो सर्वत्र ही व्यापक है। अपने कल्याणार्थ हरि को उक्त प्रकार कोई भी अज्ञानी नही जानता। यदि यह जानकर ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है तो वह ब्रह्म रूप होकर अमर हो जाता है।

३६-उपदेश चेतावनी। एकताल

कौण जनम कहँ जाता है, अरे भाई, राम छाड़ि कहँ राता है ॥ टेक ॥
मैं मैं मेरी इन सौं लाग, स्वाद पतंग न सूझै आग ॥ १ ॥
विषयां सौं रत गर्व गुमान, कुंजर काम बँधे अभिमान ॥ २ ॥
लोभ मोह मद माया फंध, ज्यों जल मीन न चेतै अंध ॥ ३ ॥
दादू यहु तन यों ही जाइ, राम विमुख मर गये विलाइ ॥ ४ ॥

३६-३८ मे उपदेश द्वारा सावधान कर रहे है—अरे भाई ! तेरा यह नर-जन्म किस लिये हुआ है और तू किधर जा रहा है ? यह तो राम की प्राप्ति के लिए हुआ था, किन्तु तू राम भक्ति को छोडकर कहा अनुरक्त हो रहा है ? जिन विषयो मे, "मै महान् हूँ, ये नारी, सम्पत्ति मेरी है।" इस प्रकार अहकार द्वारा अनुरक्त हो रहा है, वे तेरे कल्याण मे बाधक है। रूपास्वादन के वश पतग को जैसे दीपक-ज्योति अग्नि रूप नही भासती और वह उसमे जल मरता है, वैसे ही तुझे भी सौन्दर्य अग्नि रूप नही दीखता, तू भी उसमे पडकर परमार्थ दृष्टि से मर जाता है। जैसे हस्ति काम-वश होकर अपने मिथ्याभिमान से बन्धन मे पड़ जाता है (हस्ति को पकडने वाले गहरे गड्ढे को छाप कर उस पर कागज की हथिनी रख देते है, हाथी उस पर कूद कर गड्ढे मे पड जाता है। फिर भूख-प्यास से निर्बल करके उसे बाँध लाते है) वैसे ही तू बल के घमड और धन के अभिमान से विषयो मे अनुरक्त हो रहा है। जैसे जल मे मच्छी स्वतत्र होकर भी जिह्वा-रस के वश होकर फदे मे पड़ जाती है, वैसे ही ज्ञान-नेत्रो से हीन तू भी लोभ, मोह, मदादि रूप माया के फदे मे पडता है, सावधान नहीं होता। राम से विमुख अनेक मानव जन्म-जन्म कर चौरासी मे चले गये है, उनका कोई पता नहीं। वैसे ही यह तेरा नर शरीर भी व्यर्थ ही नष्ट हो जायेगा। अत राम-भजन कर।

३७-एकताल

मन मूरखा तै क्या कीया, कुछ पीव कारण वैराग ना लीया।
रे तै जप तप साधी क्या दीया ॥ टेक ॥
रे तै करवत काशी कद सह्या, रे तू गंगा मांहीं ना बह्या।
रे तै विरहनि ज्यों दुख ना सह्या ॥ १ ॥
रे तैं पाले पर्वत ना गल्या, रे तै आप ही आपा ना दह्या।
रे तैं पीव पुकारी कद कह्या ॥ २ ॥
होइ प्यासे हरि जल ना पिया, रे तूं वज्र न फाटो रे हिया।
धिक् जीवन दादू ये जिया ॥ ३ ॥

हे मूर्ख मन ! तूने प्रभु प्राप्ति के लिए कुछ भी वैराग्य धारण नही किया, यह क्या प्रमाद किया है ? अरे ! तूने प्रभु के लिए जप, तप, योग-साधन और दान किया है क्या ? तूने काशी-करवत लेने का कष्ट कब सहा है और न गगा मे ही बहा है। न तूने वियोगिनी के समान प्रभु-प्राप्ति के लिए दु ख सहा है ? न तू हिमालय पर्वत के हिम मे गला है। न तूने अपना अहकार जलाया है। तूने व्यथित होकर प्रभु को कब पुकारा है कि 'प्रभो ! दर्शन दो !'। तीव्र प्यास-युक्त होकर हरि-भक्ति रूप जल भी नही पान किया। अरे हृदय ! इतना होने पर भी तू फटा नही, तो अवश्य ही वज्र का है। हे मन ! प्रभु प्राप्ति के साधन से रहित ये जीवन के दिन धिक्कार के योग्य ही है।

३८-यतिताल

क्या कीजे मानुष जन्म को, राम न जपहि गँवारा ।
माया के मद मातो बहै, भूल रह्या संसारा ॥ टेक ॥

हिरदै राम न आवई, आवै विषय विकारा रे ।
हरि मारग सूझै नहीं, कूप परत नहिं बारा रे ॥ १ ॥
आपा अग्नि जु आप में, तातैं अहनिशि जरै शरीरा रे ।
भाव भक्ति भावै नहीं, पीवै न हरि जल नीरा रे ॥ २ ॥
मैं मेरी सब सूझई, सूझै माया जालो रे ।
राम नाम सूझै नहीं, अंध न सूझै कालो रे ॥ ३ ॥
ऐसे ही जन्म गमाइया, जित आया तित जाइ रे ।
राम रसायन ना पिया, जन दादू हेत लगाइ रे ॥ ४ ॥

हे मूर्ख ! यदि राम नाम न जपा, तब इस मनुष्य जन्म का क्या उपयोग करेगा ? विषय-सुख तो सभी योनियो मे प्राप्त थे, यह तो प्रभु भक्ति के लिए ही मिला है। तू प्रभु को भूलकर माया-मद से मतवाला हुआ ससार मे विचर रहा है। तेरे हृदय मे राम का स्मरण तो कभी नही आता, सदा विषय-विकारो का ही चिन्तन होता रहता है। प्रभु के पास पहुचाने वाला भक्ति-मार्ग तुझे नही दीखता, किन्तु विषय कूप को देखकर भी उसमे अति शीघ्र पडता है। अपने मे जो अहकार रूप अग्नि है, उससे दिन रात शरीर जलता रहता है, फिर भी तुझे श्रद्धा-भक्ति प्रिय नही लगती, तू हरि-भक्ति-जल नही पान करता। मुझे "मै और मेरी" सम्बन्धी बाते तथा माया-जाल ही दीखता है। हे अध ! तू काल और राम-नाम को नही देखता। तूने अपना मानव जन्म व्यर्थ ही खो दिया है। प्रेम सहित राम भक्ति-रसायन का पान नही किया। अत अब जिधर से आया था, उधर चौरासी लाख योनियो मे ही फिर जा रहा है।

३९-परिचय वैराग्य। दादरा

इनमें क्या लीजै क्या दीजै, जन्म अमोलक छीजै ॥ टेक ॥
सोवत सुपिनां होई, जागे तैं नहिं कोई ।
मृगतृष्णा जल जैसा, चेत देख जग ऐसा ॥ १ ॥
बाजी भरम दिखावा, बाजीगर डहकावा[1] ।
दादू संगी तेरा, कोई नहीं किस केरा ॥ २ ॥

प्रत्यक्ष रूप से वैराग्य का उपदेश कर रहे है—अरे ! इन विषयो मे क्या लेना देना है ? व्यर्थ ही अमूल्य मानव जन्म क्षीण होता है। ये तो अज्ञान निद्रा मे सोया हुआ है, तब तक ही स्वप्नवत् भास रहे है, ज्ञान जाग्रत होते ही कोई भी न रहेगा। सचेत होकर देख, यह ससार मृग-तृष्णा के जलवत् प्रतीति मात्र ही है। जैसे 'बाजीगर बाजी दिखा कर बहकाता' है, वैसे ही भ्रम से सत्य भास रहा है। वास्तव मे इस ससार मे न तेरा कोई साथी है और न तू ही किसी का है।

४०-चेतावनी उपदेश । सिह लील ताल

खालिक जागै जियरा सोवै, क्यो कर मेला होवै ॥ टेक॥
सेज एक नहि मेला, तातै प्रेम न खेला ॥ १ ॥
सांई संग न पावा, सोवत जन्म गमावा ॥ २ ॥
गाफिल नींद न कीजै, आयु घटे तन छीजै ॥ ३ ॥
दादू जीव अयाना, झूठे भरम भुलाना ॥ ४ ॥

सावधान करने के लिए उपदेश कर रहे है—ईश्वर तो जीवो की रक्षा करने के लिए सदा जागते रहते है और जीव अज्ञान निद्रा मे सोया रहता है, फिर ईश्वर से कैसे मिल सकता है ? दोनो एक हृदय शय्या पर ही रहते है, फिर भी मिलन नही हुआ, इससे ज्ञात होता है—जीव ने ईश्वर से प्रेम ही नही किया। प्रभु के साथ रह कर भी प्रभु को नही प्राप्त कर सका, अज्ञान निद्रा मे सोते हुये ही सारा जन्म खो दिया। आयु घटती जा रही है, शरीर क्षीण हो रहा है, तो भी यह अज्ञानी जीव मिथ्या भ्रम मे पडकर प्रभु को भूल रहा है। अरे ! अब तो अज्ञान निद्रा मे मत पड़ा रह।

राग जंगली गौड़ी

४१-पहरा (पंजाबी भाषा) । कहरवा ताल

पहलै पहरे रैणि[1] दे, बणिजारिया, तू आया इहि संसार वे ।
मायादा[2] रस पीवण लग्गा, विसरया सिरजनहार वे ॥
सिरजनहार विसारा, किया पसारा, मात पिता कुल नार[3] वे ।
झूठी माया, आप बँधाया, चेतै नहीं गँवार वे ॥
गँवार न चेते, अवगुण केते, बंध्या सब परिवार वे ।
दादू दास कहै बणिजारा, तू आया इहिं ससार वे ॥ १ ॥
दूजे पहरै रैणि दे, बणिजारिया, तू रत्ता तरुणी नाल[4] वे ।
माया मोह फिरै मतवाला, राम न सक्या सँभाल वे ॥
राम न सभाले, रत्ता नाले, अध न सूझै काल वे ।
हरि नहि ध्याया, जन्म गमाया, दह दिशि फूटा ताल वे ॥
दह दिशि फूटा, नीर निखूटा, लेखा डेवण[5] साल वे ।
दादू दास कहै बणिजारा, तू रत्ता तरुणी नाल वे ॥ २ ॥
तीजे पहरे रैणि दे, बणिजारिया, तै बहुत उठाया भार वे ।
जो मन भाया, सो कर आया, ना कुछ किया विचार वे ॥
विचार न कीया, नाम न लीया, क्यो कर लघै पार वे ।
पार न पावै, फिर पछतावै, डूबण लग्गा धार वे ॥

डूबण लग्गा, भेरा[६] भग्गा,[७] हाथ न आया सार वे ।
दादू दास कहै बणिजारा, तैं बहुत उठाया भार वे ॥ ३ ॥
चौथे पहरे रैणि दे, बणिजारिया, तू पक्का[८] हूवा पीर[९] वे ।
जोबन गया, जरा[११] वियापी[१०], नांहीं सुधि शरीर वे ॥
सुधि ना पाई, रैणि गंवाई, नैनों आया नीर वे ।
भव-जल भेरा डूबण लग्गा, कोई न बंधै धीर वे ॥
कोई धीर न बंधै, जम के फंधैं, क्यों कर लंघै तीर वे ।
दादू दास कहै बणिजारा, तू पक्का हूवा पीर वे ॥ ४ ॥

जीव को उपदेश कर रहे है—हे जीव रूप बनजारे ! तू इस ससार मे आया है और आयु रूप रात्रि[१] के प्रथम पहर मे है, किन्तु अभी से सृष्टिकर्ता ईश्वर को भूल कर माया[२] के विषय-रस को पान करने लगा है । प्रभु को भूल कर माता-पिता और कुटुम्बियो के साथ[३] बहुत फैलाव फैला लिया है । तू मिथ्या माया मे स्वय ही बँध गया है । हे मूर्ख ! सावधान नही होता । मूर्ख ! तू सचेत नही होता । देख, तूने कितने अवगुण किये है । अपने दोषो के कारण ही तू सब परिवार मे बँधा हुआ है । हम तुझे कह रहे है, तू इस मायिक ससार मे आया है, सचेत रहना ॥ १ ॥ हे जीव-बनजारे ! तू आयु-रात्रि के दूसरे पहर मे आया है और आते ही तरुण नारी के साथ[४] अनुरक्त हो गया है । मायिक मोह से मतवाला होकर विचर रहा है । राम का स्मरण नही कर सका । तू राम का स्मरण नही करता, तरुणी के साथ ही प्रेम करता है । अरे अध ! तुझे काल भी नही दीखता । तूने हरि की उपासना नही की, व्यर्थ ही जन्म खो दिया । तेरा सयम-सरोवर फूट कर बल रूप जल दश इन्द्रिय रूप दश दिशाओ मे फैल गया है । इस प्रकार लोलुपता से बल रूप जल समाप्त हो चुका है । अब तुझे अपने जीवन का हिसाब देने[५] मे बडा कष्ट होगा । हम तुझे कह रहे है-तू युवती मे अनुरक्त होकर अपना सर्वस्व खो बैठा है ॥ २ ॥ हे जीव-बनजारे ! आयु रात्रि के तीसरे पहर मे तूने ममता रूप बहुत भार उठा लिया है । जो मन को प्रिय लगा, वही तूने किया है । भले-बुरे का कुछ भी विचार नही किया । न परमात्मा का नाम चिन्तन किया और न आत्म-विचार ही किया । तू ससार-सिन्धु को उल्लघन करके पार कैसे जा सकेगा ? जब पार न जा सकेगा और डूबने लगेगा तब पश्चात्ताप ही करेगा । अब तू डूबने ही लगा है, तेरा धैर्य रूप बेड़ा[६] टूट गया[७] है और तत्त्व विचार भी तेरे हाथ न लगा । हम तुझे कह रहे है-कि तूने ममता रूप भार तो बहुत उठाया है, किन्तु जीवन को सफल नही कर सका ॥ ३ ॥ जीव-बनजारे ! अब तू आयु रात्रि के चतुर्थ पहर मे आया है और सासारिक परिस्थितियो का अनुभवी[८] तथा वृद्ध[९] हो गया है । तेरे शरीर का यौवन चला गया है और देह में वृद्धावस्था[११] आगई[१०] है, अब तुझे शरीर की सुधि भी नही रहती । प्रभु-प्राप्ति की हेतु शुद्ध बुद्धि भी तुझे प्राप्त न हो सकी । तूने आयु-रात्रि व्यर्थ ही खो दी । अब तेरे नेत्रो

मे दु ख के अश्रु आ रहे है। तेरा जीवन-बेड़ा ससार-सिन्धु के क्लेश-जल मे डूब रहा है। जिनके लिए तूने अनर्थ किये, उन कुटुम्बियो मे से कोई भी धैर्य नही बँधाता। यम के फदे मे पडने पर कौन धैर्य बँधा सकता है ? अब तू ससार-सिन्धु को लाघकर अगले तट पर कैसे जायगा ? हम तुझे कहते है- अब तू सासारिक परिस्थितियो का अनुभवी और वृद्ध तो हो गया, किन्तु खेद है-भगवत् का साक्षात्कार न कर सका।

४२-काल चेतावनी ? राग गौड़ी। पंजाबी त्रिताल

काहे रे नर करहु डफाण[1], अन्त काल घर गोर[2] मसाण ॥टेक॥
पहले बलवँत गये विलाइ, ब्रह्मा आदि महेश्वर जाइ ॥ १ ॥
आगैं होते मोटे मीर, गये छाड पैगम्बर पीर ॥ २ ॥
काची देह कहा गर्बाना, जे उपज्या सो सबै विलाना ॥ ३ ॥
दादू अमर उपावनहार, आपहि आप रहै करतार ॥ ४ ॥

काल से सावधान कर रहे है—हे मानव ! अपने को महान् समझ कर क्यो व्यर्थ ही डींग[1] मारता है ? अन्त मे तो तेरा घर कब्र[2] वा श्मशान ही होगा। तेरे पहले अनेक बलवान् हो गये है, वे सभी मिट्टी मे मिल गये। ब्रह्मा, महेश्वर आदि भी चले जायेगे। पहले बड़े-बडे सरदार, पैगम्बर और पीर हुये है, वे भी अपना सब कुछ छोड कर चले गये। यह कच्चा शरीर है, इसका क्या गर्व करना है ? जो उत्पन्न हुये है, वे सभी नष्ट होने वाले है। अमर तो एक सृष्टि-रचयिता स्वय ईश्वर ही रहता है।

४३-उपदेश। पजाबी त्रिताल

इत[1] घर चोर न मूसै[2] कोई, अंतर है जे जानै सोई ॥टेक॥
जागहु रे जन तत्त न जाइ, जागत है सो रह्या समाइ ॥ १ ॥
जतन-जतन कर राखहु सार, तस्कर उपजै कौन विचार ॥ २ ॥
इब[3] कर दादू जाणै जे, तो साहिब शरणागति ले ॥ ३ ॥

कल्याणप्रद उपदेश कर रहे है—जो अपने भीतर आत्म-स्वरूप ब्रह्म है, उसे जो जानते है, उनके यहा[1] अन्त करण रूप घर से काम-क्रोधादिक चोर ज्ञान-धन को नही चुरा[2] सकते। हे लोगो ! मोह निद्रा से जागो, जिससे ज्ञान जन्य सार आनन्द न जा सकेगा। जो ज्ञान जाग्रत मे है, वह उसी आनद मे समाया रहता है। यदि तुम बारबार विचार रूप उपाय द्वारा सार-ज्ञान की रक्षा करोगे, तो किस विचार से हृदय मे कामादि चोर उत्पन्न हो सकेगे ? अर्थात् आत्म-ज्ञान के रहते कामादि को उत्पन्न करने वाला कोई भी विचार हृदय मे नही आता। इस[3] प्रकार, जो मन से जन्य कामादि को चोर जानकर सचेत रहता है तो उसे प्रभु अपनी शरण मे लेते है अर्थात् अपने मे ही लय कर लेते है।

४४-उपदेश चेतावनी । पंचमताल

मेरी मेरी करत जग खीना[1], देखत ही चल जावै ।
काम क्रोध तृष्णा तन जालै, तातैं पार न पावै ॥ टेक ॥
मूरख ममता जन्म गमावै, भूल रहे इहिं बाजी ।
बाजीगर को जानत नांही, जनम गंवावै वादी ॥ १ ॥
प्रपंच पंच करै बहुतेरा, काल कुटुम्ब के तांई ।
विष के स्वाद सबै ये लागे, तातैं चीन्हत नांहीं ॥ २ ॥
येता जिय में जानत नांहीं, आइ कहां चल जावै ।
आगे पीछे समझै नांहीं, मूरख यों डहकावै ॥ ३ ॥
ये सब भ्रम भान भल पावै, शोध लेहु सो सांईं ।
सोई एक तुम्हारा साजन, दादू दूसर नांहीं ॥ ४ ॥

उपदेश द्वारा सचेत कर रहे है—जगत के प्राणी "यह नारी मेरी है, यह सपत्ति मेरी है" ऐसे करते-करते ही क्षीण[1] हो जाते है और नारी तथा सपत्ति भी देखते-देखते ही उनके हाथ से चली जाती है। काम, क्रोध, तृष्णादि हृदय को जलाते रहते है, इसीलिए ससार से पार जा नही सकते। मूर्ख ममता द्वारा इस ससार रूप बाजी मे ही मोहित रहते है और परमेश्वर रूप बाजीगर को न जान कर अपना जन्म व्यर्थ ही खो देते है। पच ज्ञानेन्द्रियो के तथा काल रूप कुटुम्ब के पोषणार्थ बहुत प्रपच करते है और ये सब प्राणी विषय-विष के स्वाद मे ही लगे रहते है। इसीलिए अपने वास्तविक हित को नही पहचानते। इतना भी नही जानते—"कहा से आये है और कहा जा रहे है।" पहले भोगकर आये उनको तथा अपने दुष्कर्म से होने वाले भविष्य क्लेशो को नही समझते, इसीलिए इस प्रकार विषयो मे बहक जाते है। इन सासारिक सपूर्ण भ्रमो को अच्छी प्रकार नष्ट करके प्रभु की खोज करता है, वही प्रभु को प्राप्त करता है। वह एक परमात्मा ही तुम्हारा सच्चा मित्र है, अन्य कोई भी नही है।

४५-गर्व हानिकर। पंचम ताल।

गर्व न कीजिये रे, गर्वै होइ विनास ।
गर्वै गोविन्द ना मिलै, गर्वै नरक निवास ॥ टेक ॥
गर्वै रसातल जाइये, गर्वै घोर अंधार ।
गर्वै भौ-जल डूबिये, गर्वै वार न पार ॥ १ ॥
गर्वै पार न पाइये, गर्वै जमपुर जाइ ।
गर्वै को छूटै नहीं, गर्वै बँधे आइ ॥ २ ॥
गर्वै भाव न ऊपजै, गर्वै भक्ति न होइ ।
गर्वै पिव क्यों पाइये, गर्व करै जनि कोइ ॥ ३ ॥

गर्वैं बहुत विनाश है, गर्वैं बहुत विकार।
दादू गर्व न कीजिये, सन्मुख सिरजनहार ॥ ४ ॥

गर्व को हानिकर बताते हुये उसे न करने की प्रेरणा कर रहे है—अरे ! गर्व मत करो, गर्व से विनाश होता है। गर्व करने से साधन द्वारा भी गोविन्द नहीं मिलते, गर्व से नरक मे निवास होता है, रसातल मे जाता है, घोर अधकार मे पड़ता है। वार-पार न पाकर ससार-सिन्धु के मध्य क्लेश-जल मे ही डूबता हे, किसी प्रकार पार नही जा सकता, यमपुरी मे जाता है, मुक्त नही होता, प्रत्युत बन्धन मे पडता है, सात्त्विक श्रद्धा और भक्ति नही होती, किसी प्रकार भी प्रभु की प्राप्ति नहीं होती, इसलिए गर्व कोई भी न करे। गर्व से अति विनाश होता है, बहुत विकार उत्पन्न होते है। अत गर्व न करके भजन द्वारा परमात्मा के सन्मुख रहो।

४६-हितोपदेश । नट ताल

हुसियार रहो, मन मारैगा, सांई सतगुरु तारैगा ॥ टेक ॥
माया का सुख भावै, मूरख मन बौरावै रे ॥ १ ॥
झूठ साच कर जाना, इन्द्री स्वाद भुलाना रे ॥ २ ॥
दुख को सुख कर मानै, काल झाल नहि जानै रे ॥ ३ ॥
दादू कह समझावै, यहु अवसर बहुरि न पावै रे ॥ ४ ॥

कल्याणप्रद उपदेश कर रहे है—हे साधक ! सावधान रहना, कारण अचेत रहने पर यह चचल मन तुझे परमार्थ-दृष्टि से मार देगा अर्थात् विषयो मे डाल देगा। यदि कही मन के धोखे मे आकर गिर भी जाये तो परमात्मा और सद्गुरु की शरण जाना, वे तेरा उद्धार कर देंगे। इस मन को मायिक सुख ही अच्छे लगते है। यह मूर्ख उन्ही मे पागल हो जाता है। इन्द्रियो के विषय-रस मे मोहित होकर इसने मिथ्या को सत्य समझ लिया है, दु ख को सुख मान लिया है। यह कालाग्नि की ज्वाला को नही जानता। हम तुम्हे समझा कर कहते है, यह समय जाने पर फिर नही मिलेगा।

अपने शिष्य आधी ग्राम निवासी गरीबदासजी को यह पद उपदेश रूप मे लिख भेजा था। गरीबदास जी ने फिर उत्तर मे इसी को "साई सद्गुरु तारेगा" तुक लिख भेजी थी।

४७-विश्वास । नटताल

साहिबजी सत मेरा रे, लोग झखै बहुतेरा रे ॥ टेक ॥
जीव जन्म जब पाया, मस्तक लेख लिखाया रे ॥ १ ॥
घटै बधै कुछ नाहीं, कर्म लिख्या उस माहीं रे ॥ २ ॥
विधाता विधि कीन्हा, सिरज सबन को दीन्हा रे ॥ ३ ॥
समर्थ सिरजनहारा, सो तेरे निकट गँवारा रे ॥ ४ ॥
सकल लोक फिर आवै, तो दादू दीया पावै रे ॥ ५ ॥

४७-४८ मे अपना भगवद् विश्वास दिखा रहे है—लोग तो अपने धन, जन, बल का आश्रय लेकर बहुत प्रकार बकवाद करते है किन्तु हमारा आश्रय तो एक सत्य स्वरूप परमात्मा ही

है। हमे तो उसी का विश्वास है। जीव ने जन्म लिया है, तब ही इसका प्रारब्ध निश्चित कर दिया गया है। उस निर्धारित कर्म मे कुछ भी घटता बढता नही। जिस विधाता ने शरीर उत्पन्न करके सबको कर्मानुसार आजीविका दी है, हे मूर्ख ! वह समर्थ सृष्टि कर्ता प्रभु तेरे पास ही है। चाहे तू सपूर्ण लोको मे फिर आवे, जो भी तेरे कर्मानुसार भगवान् देगे, वही तुझे मिलेगा।

४८-राज विद्याधर ताल

पूर रह्या परमेश्वर मेरा, अणमांग्या देवै बहुतेरा ॥टेक॥
सिरजनहार सहज में देइ, तो काहे धाइ मॉग जन लेइ ॥ १ ॥
विश्वंभर सब जग को पूरै, उदर काज नर काहे झूरै[1] ॥ २ ॥
पूरक[2] पूरा[3] है गोपाल, सबकी चिन्त[4] करै दरहाल[5] ॥ ३ ॥
समर्थ सोई है जगनाथ, दादू देख रहे संग साथ ॥ ४ ॥

मेरा मनोरथ परमेश्वर पूर्ण कर रहे है, बिना याचना ही बहुत देते है। जब परमात्मा अनायास ही देते है,तब लोग क्यो दौड के माँग कर लेने का प्रयत्न करते है ? विश्वम्भर परमात्मा तो सपूर्ण जगत् का भरण-पोषण करते है, फिर नर शरीर पाकर भी पेट भरने के लिए क्यो विकल[1] हो रहा है ? वह परिपूर्ण[3] परमात्मा सब मनोरथ पूर्ण करनेवाला[2] है। प्रतिक्षण[5] सबकी चिन्ता[4] करके सँभाल करता है। तू विचार करके देख, वह समर्थ जगन्नाथ तेरे सग है और तू भी उनके साथ ही है।

४९-नाम विश्वास। राज मृगांक ताल

राम धन खात न खूटै रे !
अपरंपार पार नहिं आवै, आथि[1] न टूटै रे ॥टेक॥
तस्कर[2] लेइ न पावक[3] जालै, प्रेम न छूटै रे।
चहुँ दिशि पसर्‌यो बिन रखवाले, चोर न लूटै रे ॥ १ ॥
हरि हीरा है राम रसायन, सरस[4] न सूखै रे ॥ २ ॥
दादू और आथि[5] बहुतेरी, तुस[6] नर कूटै रे ॥ ३ ॥

राम-नाम मे विश्वास करा रहे है—राम-रूपी-धन खाने से अर्थात् चिन्तन करने से समाप्त नही होता, अपार होता जाता है। उसके फल का पार नही आता। राम धन राशि[1] कम नही होती, इसे चोर[2] नही चुरा सकता, अग्नि[3] नही जला सकता, इसीलिए इससे प्रेम नही हटता। बिना ही रक्षक यह धन चारो दिशाओ मे फैला रहता है अर्थात् भजन की कीर्ति सब ओर रहती है, तो भी उसे निदक रूप लुटेरे लूट नही सकते। हरि नाम अमूल्य हीरा है। राम-भक्ति-रसायन सदा हरा[4] रहता है, कभी भी नही सूखता। राम धन बिना, अन्य अर्थ-राशि[5] की प्राप्ति का साधन करना, भूसा[6] कूटने के समान है, भूसेसे अन्न नही निकलता, वैसे ही अन्य धन तृप्ति-प्रद नही है।

(किसी-किसी प्रति मे ''तुस'' के स्थान मे ''उस'' भी है। उसका अर्थ रामधन से अन्य जो बहुत-सी धनराशिया[5] है, उन धन-राशियो वाले नर को तो डाकू आदि मारते है, किन्तु राम-धन के लिये कोई नही मारता, प्रत्युत सेवा करते है।)

५०-तत्त्व-उपदेश। राजमृगाक ताल

तूं है तूं है तूं है तेरा, मैं नहि मैं नहिं मैं नहि मेरा ॥ टेक॥
तूं है तेरा जगत उपाया, मै मै मेरा धंधे लाया ॥ १ ॥
तूं है तेरा खेल पसारा, मैं मै मेरा कहै गँवारा ॥ २ ॥
तूं है तेरा सब संसारा, मै मै मेरा तिन शिर भारा ॥ ३ ॥
तूं है तेरा काल न खाइ, मैं मैं मेरा मर मर जाइ ॥ ४ ॥
तूं है तेरा रह्या समाइ, मै मैं मेरा गया विलाइ ॥ ५ ॥
तूं है तेरा तुमहीं मांहिं, मैं मैं मेरा मैं कुछ नांहिं ॥ ६ ॥
तूं है तेरा तूं ही होइ, मैं मैं मेरा मिल्या न कोइ ॥ ७ ॥
तूं है तेरा लंघे पार, दादू पाया ज्ञान विचार ॥ ८ ॥

तत्त्व का उपदेश कर रहे है—सत मन, वचन, कर्म मे कहते है-हे परमेश्वर! आप ही सत्य है और सब कुछ आपका ही है। प्राणियो का कायिक, वाचिक, मानसिक "मै" तथा मेरा रूप अहकार सत्य नहीं है। आप ही समर्थ है, आपका ही उत्पन्न किया हुआ यह जगत् है। 'मै युवा हू, मै बली हू, शरीर मेरा है' इस प्रकार अहकार करने वालो को आपने ससार के धधो मे लगा रक्खा है। आप ही अद्भुत रचना मे निपुण है। आपका ही यह ससार-खेल फैलाया हुआ है। मै रचना मे निपुण हूँ, मै और मेरा कार्य अद्भुत है। यह धन मेरा है, ऐसा अज्ञानी लोग ही कहते है। आप सदा स्थायी है, सब ससार आपका ही है। 'मै स्थायी रहूगा, मै महान् हूँ, यह ऐश्वर्य मेरा है।' ऐसा कहने वालो के शिर पर पाप-भार ही पड़ता है। आप नित्य है और जो आपका भक्त है, उसे भी काल नहीं खाता। 'मै चिरजीवी हू, अजय हूँ, यह दुर्ग मेरा है।' ऐसा अहकार करने वाले मर-मर कर चौरासी मे जाते है। आप ही अखड है, आपका ज्ञानी भक्त भी आप मे ही समाकर रहता है। 'मै गुणी हूँ, मै धनी हूँ, यह मेरा परिवार है।' ऐसा कहने वाले मिट्टी मे मिल गये। आप ही शुद्ध है, आपका ज्ञानी भक्त भी आप मे ही सलग्न रहता है। 'मै राजा हूँ, मै वीर हूँ, मेरा देश है।' ऐसा कहने वालो का कुछ भी नही होता। आप ही व्यापक है, आपका ज्ञानी भक्त भी आपका ही रूप हो जाता है। 'मै कुलवान् हूँ, मै विद्वान हूँ, यह सब पसारा मेरा है।' ऐसा अहकार करने वाला, आप मे कोई भी न मिल सका। आप माया से परे है और आपका ज्ञानी भक्त भी मायिक मोह को लाघ कर, ससार के पार जाकर आप ही मे लय होता है। विचारादि साधन द्वारा हमने यह यथार्थ ज्ञान प्राप्त किया है।

५१-सजीवनी। पंचम ताल

राम विमुख जग मर मर जाइ, जीवै सत रहैं ल्यौ लाइ॥ टेक॥
लीन भये जे आतम रामा, सदा सजीवन कीये नामा॥ १ ॥
अमृत राम रसायन पीया, तातै अमर कबीरा कीया॥ २ ॥

राम राम कह राम समाना, जन रैदास मिले भगवाना ॥ ३ ॥
आदि अन्त केते कलि जागे, अमर भये अविनासी लागे ॥ ४ ॥
राम रसायन दादू माते, अविचल भये राम रंग राते ॥ ५ ॥

५१-५२ मे सजीवनी राम रसायन का परिचय दे रहे है—राम से विमुख मानव मर-मर कर चौरासी लक्ष योनियो मे जा रहे है। जो सत अपनी वृत्ति राम मे लगाये रहते है, वे राम रूप होकर सदा जीवित रहते है। जो भी आत्म स्वरूप राम के भजन मे लीन हुये है, वे सभी सजीवन भाव को प्राप्त हुये है। राम-भजन ने नामदेव को सदा के लिए सजीवन कर दिया। राम-भक्ति रूप अमृत रसायन पान किया, इसी से कबीर अमर हो गये। राम-राम करके राम के समान निर्विकार होकर भक्त रैदास भगवान् मे मिल गये। सृष्टि के आदि से कलियुग तक कितने ही सत अविनाशी परब्रह्म के चिन्तन मे अज्ञान निद्रा से जगे है, और परब्रह्म को प्राप्त होकर अमर हो गये है।

५२-पंचम ताल

निकट निरंजन लाग रहे, तब हम जीवित मुक्त भये ॥ टेक ॥
मर कर मुक्ति जहा जग जाइ, तहां न मेरा मन पतियाइ ॥ १ ॥
आगैं जन्म लहैं अवतारा, तहां न मानैं मना हमारा ॥ २ ॥
तन छूटे गति जो पद होइ, मृतक जीव मिलैं सब कोइ ॥ ३ ॥
जीवित जन्म सफल कर जाना, दादू राम मिले मन माना ॥ ४ ॥

जब हम अति समीप हृदयस्थ व्यापक निरजन राम के चिन्तन मे लगकर रामस्वरूप मे स्थिर हुये है, तब ही जीवितावस्था मे ससार-बन्धन से मुक्त हो सके है। जगत के प्राणी मर कर जिस मुक्तिधाम को जाते है, उसमे हमारा मन विश्वास नही करता। मुक्तिधाम मे चिरकाल रह कर फिर अवतार रूप से जन्मते है, ऐसे सिद्धान्त मे भी हमारा मन सन्तोष नही मानता। यदि शरीर छूटने पर ही मुक्ति पद प्राप्त होता हो तो सभी जीव ब्रह्म मे मिल जाते। जो जीवितावस्था मे ही राम का यथार्थ रूप जानकर अपने जन्म को सफल कर लेता है, तभी हमारा मन मानता है— यह राम मे मिलकर सदा सजीवन रहेगा।

५३-हैरान प्रश्न। वर्ण भिन्न ताल

कादिर[1] कुदरत[2] लखी न जाइ, कहां तैं उपजै कहां समाइ ॥ टेक ॥
कहां तै कीन्ह पवन अरु पानी, धरणि गगन गति जाइ न जानी ॥ १ ॥
कहां तैं काया प्राण प्रकासा, कहा पंच मिल एक निवासा ॥ २ ॥
कहां तैं एक अनेक दिखावा, कहां तै सकल एक ह्वै आवा ॥ ३ ॥
दादू कुदरत बहु हैराना, कहां तैं राख रहे रहमाना[3] ॥ ४ ॥

आश्चर्ययुक्त प्रश्न कर रहे है—समर्थ[1] परमात्मा की माया[2] जानी नही जाती, बडी आश्चर्य रूप है। १ यह ससार कहा से उत्पन्न होता है और कहा समा जाता है ? २ आकाश, वायु,

अग्नि, जल, पृथ्वी कहा से प्रकट किये है ? उनकी चेष्टा जानी नही जाती। ३ कहा से शरीर को रचा ? ४ कैसे उसमे प्राण प्रकट कर दिये ? ५ कैसे पाचो ज्ञानेन्द्रिया मिलकर एक शरीर मे निवास करती है ? ६ कैसे अपने एक स्वरूप से अनेक जीव दिखा देते है ? ७ कैसे प्रलय काल मे सब एक हो जाते है ? ८ वे दयालु[3] ईश्वर सबकी रक्षा करते हुये भी कैसे निर्विकार रहते है ? उनकी माया अति आश्चर्य रूप है। क्रमश प्रश्नो के उत्तर है-१ ईश्वर से उत्पन्न होकर उसी मे समाता है। २ अहकार से। ३ वीर्य से। ४-७ अपनी सत्ता से। ८ निर्द्वन्द्व होने से।

साखी उत्तर की-

रहै नियारा सब करै, काहू लिप्त न होइ ।
आदि अन्त भानै घड़े, ऐसा समर्थ सोइ ॥ (२१-३०)
श्रम नाहीं सब कुछ करै, यो कल धरी बनाइ ।
कौतिकहारा ह्वै रह्या, सब कुछ होता जाइ ॥ (२१-३१)
दादू शब्दैं बध्या सब रहै, शब्दै ही सब जाइ ।
शब्दैं ही सब ऊपजै, शब्दैं सबै समाइ ॥ (२२-२)

५४-स्वरूप गति हैरान । वर्ण भिन्न ताल

ऐसा राम हमारे आवै, वार पार कोइ अत न पावै ॥ टेक ॥
हलका भारी कह्या न जाइ, मोल माप नहिं रह्या समाइ ॥ १ ॥
कीमत लेखा नहिं परिमाण, सब पच हारे साधु सुजाण ॥ २ ॥
आगो पीछो परिमित नाहीं, केते पारिख आवहिं जांहीं ॥ ३ ॥
आदि अन्त मधि कहै न कोइ, दादू देखै अचरज होइ ॥ ४ ॥

राम-स्वरूप साक्षात्कार अवस्था का आश्चर्य दिखा रहे है—हमारे अनुभव मे ऐसा राम आता है जिसका वार-पार जानकर कोई भी अन्त नही पाता। वह हलका वा भारी नहीं कहा जाता। वह अमूल्य है तथा माप रहित है। सब विश्व मे समा रहा है। उसकी कीमत नहीं हो सकती, तोल का हिसाब नही हो सकता। सब बुद्धिमान् सत परिश्रम करके हार गये है किन्तु उसके आगे पीछे का माप नही कर सके। कितने ही लक्षणो द्वारा परीक्षा करने वाले विद्वान् ससार मे आते है और उसके स्वरूप परीक्षण के लिए पूर्ण प्रयत्न करते है किन्तु उसका आदि, मध्य, अन्त कहे बिना ही चले जाते है। अत हमे उसके स्वरूप को देखकर अति आश्चर्य होता है।

५५-प्रश्न । गज ताल

कौण शब्द कौण परखणहार, कौण सुरति कहु कौण विचार ॥ टेक ॥
कौण सुज्ञाता कौण गियान, कौण उन्मनी कौण धियान ॥ १ ॥

कौण सहज कहु कौण समाध, कौण भक्ति कहु कौण अराध ॥ २ ॥
कौण जाप कहु कौण अभ्यास, कौण प्रेम कहु कौण पियास ॥ ३ ॥
सेवा कौण कहो गुरुदेव, दादू पूछै अलख अभेव ॥ ४ ॥

जिज्ञासुओ के बोधार्थ प्रभु से प्रश्न कर रहे है—आदि शब्द कौन है ? ओकार। परीक्षक कौन है ? सत। वृत्ति कौन श्रेष्ठ है ? सहजा। उत्तम विचार कौन है ? ब्रह्म विचार। श्रेष्ठ ज्ञाता कौन है ? ब्रह्म-ज्ञानी। उत्तम ज्ञान कौन है ? अभेद ज्ञान। उनमनी कौन है ? नाशिकाग्र पर बाह्य दृष्टि रख, भुकुटी को किचित् ऊपर मोडकर अन्तर्लक्ष्य रखते हुये प्राण लय करना। श्रेष्ठ ध्यान कौन है ? बाह्य ज्ञान रहित परब्रह्म का अखड ध्यान। सहजावस्था कौन है ? द्वन्द्व रहित। उत्तम समाधि कौन है ? निर्विकल्प। श्रेष्ठ भक्ति कौन है ? परा। आराध्य कौन है ? आत्मा। श्रेष्ठ जाप कौन है ? अजपा जाप। श्रेष्ठ अभ्यास कौन है ? अहकार रहित होने का अभ्यास। उत्तम प्रेम कौन है ? निष्काम अनन्य प्रेम। श्रेष्ठ अभिलाषा कौन है ? राम-मिलन की। उत्तम सेवा कौन है ? राम को प्राप्त करके भी भक्ति करना। मन इन्द्रियो के अविषय अद्वैत परब्रह्म गुरुदेव ! कहिये आपका इन सब प्रश्नो के विषय मे क्या मत है ? उत्तर - सब जीवो से निर्वैर हो, तन मन के विकार त्याग, अहकार को मेटकर मेरा भजन करना ही उत्तम मत है। इसी से सब प्रश्न हल हो जाते है।

उक्त प्रश्नो के उत्तर की साखी—

कौण शब्द ?—**दादू शब्द अनाहद हम सुन्या, नख शिख सकल शरीर ।**
सब घट हरि हरि होत है, सहजैं ही मन थीर ॥ (४-१७२)

कौण परखणहार ?—**प्राण जौहरी पारिखू, मन खोटा ले आवै।**
खोटा मन के माथे मारै, दादू दूर उड़ावै॥ (२७-२०)

कौण सुरति ?—**दादू सहजैं सुरति समाइ ले, पारब्रह्म के अंग ।**
अरस परस मिल एक है, सन्मुख रहिबा संग ॥ (७-२६)

कौण विचार ?—**सहज विचार सुख में रहै, दादू बड़ा विवेक ।**
मन इन्द्री पसरै नहीं, अंतर राखै एक ॥ (१८-३१)

कौण सुज्ञाता ?—**दादू सोई पंडित ज्ञाता, राम मिलन की बूझै ॥** (शब्द १९३)

कौण गियान ?—**हंस गियानी सो भला, अंतर राखै एक ।**
विष में अमृत काढ ले, दादू बड़ा विवेक ॥ (१७-३)

कौण उनमनी ?—**मन लवरू के पख हैं, उनमनि चढै आकाश ।**
पग रह पूरे साच के, रोप रह्या हरि पास ॥ (४-३४६)

कौण धियान ?—**जहँ विरहा तहँ और क्या ? सुधि बुधि नाठै ज्ञान ।**
लोक वेद मारग तजे, दादू एकै ध्यान ॥ (३-७५)

कौण सहज ?—सहज रूप मन का भया, जब द्वै द्वै मिटी तरंग ।
ताता शीला सम भया, तब दादू एकै अग ॥ (१०-४४)
कौण समाधि ?—सहज शून्य मन राखिये, इन दोनो के माहि ।
लै समाधि रस पीजिये, तहा काल भय नांहि ॥ (७-१०)
कौण भक्ति ?—जोग समाधि सुख सुरति सौ, सहजै सहजै आव ।
मुक्ता द्वारा महल का, इहै भक्ति का भाव ॥ (७-९)
कौण अराध ?—आतम देव अराधिये, विरोधिये नहि कोइ ।
आराधे सुख ऊपजे, विरोधे दुख होइ ॥ (२९-२३)
कौण जाप ?—सद्गुरु माला मन दिया, पवन सुरति सौ पोइ ।
बिन हाथों निशिदिन जपै, परम जाप यो होइ ॥ (१-६९)
कौण अभ्यास ?—दादू धरती ह्वै रहै, तज कूड कपट अहकार ।
सांई कारण शिर सहै, ताको प्रत्यक्ष सिरजनहार ॥ (२३-३)
कौण प्रेम ?—प्रेम लहर की पालकी, आतम बैसै आइ ।
दादू खेलै पीव सौ, सो सुख कह्या न जाइ ॥ (४-२७६)
कौण पियास ?—कोई बाछै मुक्ति फल, कोई अमरापुरि बास ।
कोई बाछै परम गति, दादू राम मिलन की प्यास ॥ (८-८१)
सेवा कौण ?—तेज पुंज को विलसना, मिल खेलै इक ठाम ।
भर-भर पीवै राम रस, सेवा इसका नाम ॥ (४-२७२)
आपा गर्व गुमान तज, मद मत्सर अहंकार ।
गहै गरीबी बन्दगी, सेवा सिरजनहार ॥ (२९-२)
सार मत कौण है ?—आपा मेटै हरि भजै, तन मन तजै विकार ।
निर्वैरी सब जीव सौ, दादू यहु मत सार ॥ (२३-५)

यद्यपि अन्तिम प्रश्न भजन मे नही है, किन्तु उत्तर की साखियो मे यह साखी मिलती है। अत इसका भाव यह ज्ञात होता है कि—ऐसा करने से सब प्रश्न हल हो जायेगे।

५६-प्रश्न। पंचम ताल

मै नहिं जानू सिरजनहार, ज्यो है त्योहि कहो करतार ॥टेक॥
मस्तक कहां कहां कर पाइ, अविगत नाथ कहो समझाइ ॥ १ ॥
कहँ मुख नैना श्रवणां सांई, जानराइ सब कहो गुसाईं ॥ २ ॥
पेट पीठ कहां है काया, पड़दा खोल कहो गुरुराया ॥ ३ ॥
ज्यो है त्यो कह अतरजामी, दादू पूछै सतगुरु स्वामी ॥ ४ ॥

स्वरूप विषयक प्रश्न कर रहे है—हे सृष्टिकर्ता प्रभो ! मै नही जानता, आपका स्वरूप कैसा है ? इसलिए आप जैसे हो, वैसे ही कृपा करके अपना स्वरूप हमे कहो। आपका मस्तक कहा है ? कहा हाथ पैर है ? मन इन्द्रियो से अज्ञात स्वामिन् ! समझाकर कहो, आपके मुख, नेत्र और श्रवण कहा है ? हे ज्ञानियो मे अति श्रेष्ठ स्वामिन् ! आपका पेट, पीठ आदि अगो से युक्त शरीर कहा है ? हे गुरुजनो के शिरोमणि, अन्तर्यामी सद्गुरु स्वामिन् ! पडदा हटा कर, जैसे आप है, वैसे ही स्पष्ट रूप से कहो। इन सब प्रश्नो का उत्तर आगे की दो साखियो द्वारा दे रहे है—

उत्तर की साखी

दादू सबै दिशा सो सारिखा, सबै दिशा मुख बैन ।
सबै दिशा श्रवणहुँ सुनै, सबै दिशा कर नैन ॥ (४-२१२)
सबै दिशा पग शीश है, सबै दिशा मन चैन ।
सबै दिशा सन्मुख रहै, सबै दिशा अंग ऐन ॥ (४-२१३)

५७-प्रश्न । पंजाबी त्रिताल

अलख देव गुरु देहु बताइ, कहा रहो त्रिभुवनपति राइ ॥टेक॥
धरती गगन बसहु कैलास, तिहूं लोक में कहां निवास ॥ १ ॥
जल थल पावक पवना पूर, चंद सूर निकट कै दूर ॥ २ ॥
मंदिर कौण कौण घरबार, आसन कौण कहो करतार ॥ ३ ॥
अलख देव गति लखी न जाइ, दादू पूछै कह समझाइ ॥ ४ ॥

परमेश्वर से निवास विषयक प्रश्न कर रहे है—तीनो लोको के स्वामियो के राजा, मन इन्द्रियो के अविषय, परब्रह्म गुरुदेव ! आप कहाँ रहते है, यह बताइये। पृथ्वी पर या आकाश मे या कैलाश मे बसते है ? तीनो लोको मे से आपका निवास स्थान किस स्थान पर है ? जल मे वा स्थल मे वा अग्नि मे वा वायु मे आप परिपूर्ण रूप से रहते है ? चन्द्र सूर्य के निकट वा दूर रहते है ? आपकी उपासना करने योग्य मन्दिर कौन-सा है ? आपका घर बार कहा है ? हे करतार ! आपके विराजने का आसन कहा है ? हे अलख देव ! आपकी माया हमसे नही जानी जाती, इसलिये आपसे पूछते है, आप समझाकर कहो। इन सब प्रश्नो का उत्तर अगली साखियाँ दे रही है—

उत्तर की साखी—

दादू मुझ ही मांहीं मैं रहूं, मैं मेरा घरबार ।
मुझ ही मांहीं मैं बसूं, आप कहै करतार ॥(४-२०८)
दादू मैं ही मेरा अर्श में, मैं ही मेरा स्थान ।
मैं ही मेरी ठौर मे, आप कहै रहमान ॥ (४-२०९)

दादू मैं ही मेरे आसरे, मैं मेरे आधार ।
मेरे तकिये मे रहूं, कहे सिरजनहार ॥(४-२१०)
दादू मैं ही मेरी जाति मे, मे ही मेरा अंग ।
मै ही मेरा जीव मे, आप कहे प्रसंग ॥(४-२११)

५८-रस। त्रिताल

राम रस मीठा रे, कोई पीवे साधु सुजाण।
सदा रस पीवै प्रेम सौ, सो अविनाशी प्राण ॥ टेक॥
इहि रस मुनि लागे सवे, व्रह्मा विष्णु महेश।
सुर नर साधू संत जन, सो रस पीवे शेष ॥ १ ॥
सिध साधक जोगी जती, सती सवे शुकदेव।
पीवत अंत न आवही, ऐसा अलख अभेव ॥ २ ॥
इहिं रस राते नामदेव, पीपा अरु रैदास ।
पीवत कवीरा ना थक्या, अजहूँ प्रेम पियास ॥ ३ ॥
यहु रस मीठा जिन पिया, सो रस ही माहि समाइ।
मीठे मीठा मिल रह्या, दादू अनत न जाइ ॥ ४ ॥

५८-६० मे राम-भक्ति-रस का परिचय दे रहे है—हे भाई ! राम-भक्ति-रस अति मधुर है, उसे वुद्धिमान् सत पान करते है। जो प्राणी प्रेम से सदा राम-भक्ति-रस का पान करता है, वह अविनाशी हो जाता है। सव मुनि, व्रह्मा, विष्णु, महादेव, इन्द्रादि देव, नर श्रेष्ठ सत-जन भी इसके पान मे लगे है। शेष जी भी इसी रस का पान करते है। सिद्ध, साधक, योगी, यति, सती आदि सभी तथा परम विरक्त शुकदेव भी पान करते रहे है, किन्तु फिर भी इसका अन्त नही आता, यह ऐसा है। मन इन्द्रियो का अविषय और अद्वैत है। नामदेव, पीपा और रैदास भी इसी रस मे अनुरक्त रहे है। कवीर भी इस रस के पान करने मे थके नही। इस समय के सन्तो को भी राम-भक्ति-रस पान की प्रेम-पूर्वक प्यास है। यह मधुर-रस जिसने पान किया है, वह रस मे ही समा गया है। राम-भक्ति-रस पान से मधुर हुआ सन्त मधुर परमात्मा मे मिलकर ही रहता है, अन्य शरीरो मे नही जाता।

५९-त्रिताल

मन मतवाला मधु पीवै, पीवै बारबारो रे।
हरि रस रातो राम के, सदा रहै इकतारो रे ॥ टेक॥
भाव भक्ति भाठी भई, काया कसणी[1] सारो[2] रे।
पोता[3] मेरे प्रेम का, सदा अखंडित धारो रे ॥ १ ॥

ब्रह्म अग्नि जौबन जरै, चेतन चितहि उजासो रे।
सुमति कलाली सारवै, कोइ पीवै विरला दासो रे ॥ २ ॥
प्रीति पियाले पीवही, छिन-छिन बारंबारो रे।
आपा धन सब सौंपिया, तब रस पाया सारो रे ॥ ३ ॥
आपा पर नहिं जाणिया, भूलो माया जालो रे।
दादू हरि रस जे पिवै, ताको कदे न लागै कालो रे ॥ ४ ॥

मद्य के रूपक से राम-भक्ति-रस का परिचय दे रहे है—हमारा मन परब्रह्म का साक्षात्कार रूप मद्य-रस का पान करता है और मतवाला रहता है, फिर भी बारबार पान करता हुआ पाप-ताप हरने वाले राम-रस मे सदा एकरस अनुरक्त रहता है। अब राम-रस के बनाने की पद्धति बता रहे है—श्रद्धा-भूमि पर भक्ति-भट्ठी बनाई गई है। निर्दोष परखने हेतु शरीर को साधन कसौटी[१] द्वारा सयम[२] मे रखना, यही उस भट्ठी पर रस निकालने[३] के लिए पात्र रक्खा गया है। ब्रह्म-ज्ञान अग्नि है, युवावस्था के विकार रूप काष्ठ जलाया जाता है। चित्त मे निरतर चेतनात्मा का चिन्तन रहना ही उक्त अग्नि का प्रकाश है। सुबुद्धि कलाली है। आत्म-प्रेम गीला-कपडा[३] है, उसे पात्र पर फेरते हुये यह राम-रस रूप मद्य निकालती है। इस पद्धति से यह रस सदा एकरस अखड धार से निकलता रहता है। अब रस के अधिकारियो का परिचय दे रहे है—इस प्रकार निकाले हुये राम-रस का कोई विरले भक्त-जन ही अनन्य प्रेम-प्याले द्वारा क्षण-क्षण मे बारबार पान करते है। जब अपने पराये के भेद को कुछ न समझ के, सम्पूर्ण मायिक ससार-जाल को हृदय से भूल कर, अपना सब प्रकार का अहकार रूप धन प्रभु को समर्पण किया है, तब सतो को यह पूर्ण सार रूप रस प्राप्त हुआ है। उक्त प्रकार निकाले हुए हरि-रस का जो पान करते है, वे परब्रह्म मे ही समा कर रहते है। अत उन पर कभी भी काल का बल नही चलता।

६०-पंचम ताल

रस के रसिया लीन भये, सकल शिरोमणि तहां गये॥टेक॥
राम रसायन अमृत माते, अविचल भये नरक नहि जाते॥ १ ॥
राम रसायन भर भर पीवै, सदा सजीवन जुग जुग जीवै॥ २ ॥
राम रसायन त्रिभुवन सार, राम रसिक सब उतरे पार॥ ३ ॥
दादू अमली बहुरि न आये, सुख सागर ता मांहिं समाये॥ ४ ॥

राम रसायन का माहात्म्य कह रहे है—राम-रसिक राम-रस मे लीन होकर, सर्व-शिरोमणि परब्रह्म जिस निर्विकार स्थिति मे है, उसी निर्विकार अवस्था को प्राप्त हुये है। जो राम-रसायन रूप अमृत मे मस्त है, वे कभी भी नरक मे नहीं जाते, वे तो निश्चल ब्रह्म रूप हो जाते है। जो राम-रसायन को प्रेम-प्याले मे भर-भर कर पान करते है, वे सदा सजीवन ब्रह्मभाव को प्राप्त होकर युग-

युग प्रति जीवित रहते है। यह राम-रसायन स्वर्ग, मृत्यु, पाताल तीनो भुवनो का सार तत्त्व है। जो भी राम-रसिक हुये है, वे सभी ससार-सिन्धु से पार हो गये है। राम-रसायन का व्यसनी पुन जन्म-मरण के प्रवाह मे नही आता। सुख-सागर रूप जो ब्रह्म है, उसी मे समा जाता है।

६१-भेष। पंचम ताल

भेष न रीझे मेरा निज भर्तार, तातैं कीजे प्रीति विचार॥टेक॥
दुराचारिणी रच भेष वनावे, शील साच नहिं पिव को भावै॥ १ ॥
कत न भावे करे श्रृंगार, डिंभपणै[1] रीझै ससार॥ २ ॥
जो पै पतिव्रता ह्वै हे नारी, सो धन[2] भावै पियहि पियारी॥ ३ ॥
पिव पहचानै, आन नहि कोई, दादू सोई सुहागिनि होई॥ ४ ॥

प्रभु प्राप्ति मे भेष कारण नही, यह कह रहे है—मेरे निजी स्वामी राम वाहर के भेष से प्रसन्न नही होते। अत प्रेम भक्ति द्वारा ही उनको प्रसन्न करने का विचार कर, यदि दुराचारिणी नारी श्रृगार करके अपना भेष अच्छा वना ले तो उसमे शील, सत्य-व्रत नहीं होने से वह स्वामी को प्रिय नहीं लगती। इस प्रकार भेष रूप श्रृगार हमारे स्वामी राम को प्रिय नही होता। भेष-दभ[1] से तो सासारिक लोग ही प्रसन्न होते है किन्तु जो भेष रूप श्रृगार से रहित राम रूप स्वामी का व्रत रखने वाली सतात्मा-नारी[2] है, वही स्त्री[2] हम को अच्छी लगती है और राम रूप पति को प्यारी होती है। जो सतात्मा-नारी राम को पति रूप से पहचानती है, अन्य किसी को भी नहीं, वही सदा सुहागिनी होगी।

६२-विरह। घटताल

हम सब नारी एक भर्तार, सव कोई तन करैं श्रृगार॥टेक॥
घर घर अपने सेज सँवारैं, कंत पियारे पथ निहारै॥ १ ॥
आरत अपने पीव को धावै, मिलै नाह[1] कब अंग लगावै॥ २ ॥
अति आतुर ये खोजत डोलै, बान परी वियोगिनी बोलैं॥ ३ ॥
सब हम नारी दादू दीन, दे सुहाग काहू संग लीन॥ ४ ॥

विरह दिखा रहे है—हम सभी सतात्मा रूप नारियो के स्वामी एक परमात्मा ही है और हम सब ही अपने इन्द्रियादि शरीर को निर्दोष करना रूप श्रृगार कर रही है तथा अपने-अपने अन्त करण घर की वृत्ति-शय्या को ब्रह्माकार रूप से सजा रही हैं और प्यारे परब्रह्म स्वामी का मार्ग देख रही है। वियोग से दु खी होकर अपने प्रभु को प्राप्त करने के लिये ध्यान-साधन रूप दौड लगा रही है तथा मन मे विचार कर रही है, वे स्वामी[1] कब मिलेंगे और कब हमे अपने स्वरूप मे एक करेगे। हे प्रभो! ये हम सब वियोगिनी सतात्मा रूप दीन नारिया, अति व्यथित होकर आप को खोजती फिर रही है और पुकार रही है। आपको पुकारने का तो हमारा स्वभाव ही हो गया है, किन्तु आप सुनते

ही नही। क्या पता किस के सग लीन हो रहे हो ? अब तो कृपा करके हमको भी नित्य मिलन रूप सुहाग दो।

६३-आत्मार्थी भेष। घट ताल

सोई सुहागिनि साच श्रृंगार, तन मन लाइ भजै भर्तार ॥ टेक ॥
भाव भक्ति प्रेम ल्यौ लावै, नारी सोइ सार सुख पावै ॥ १ ॥
सहज संतोष शील सब आया, तब नारी नाह अमोलक पाया ॥ २ ॥
तन मन जौबन सौप सब दीन्हा, तब कंत रिझाइ आप बस कीन्हा ॥ ३ ॥
दादू बहुरि वियोग न होई, पिव सौ प्रीति सुहागिनि सोई ॥ ४ ॥

आत्म स्वरूप ब्रह्म प्राप्ति मे उपयोगी भेष बता रहे है—जो तन मन को लगाकर अपने स्वामी की सेवा करती है, वही सुहागिनी है और उसी का साधन-श्रृगार सत्य है। जो श्रद्धापूर्वक प्रेमाभक्ति से अपनी वृत्ति प्रभु मे लगाती है, वह सतात्मारूप नारी ही सार रूप ब्रह्मानन्द प्राप्त करती है। जब स्वाभाविक सतोष, शील आदि सब दिव्य गुण हृदय मे आये है, तब ही साधक आत्मा रूप नारियो ने अपार महिमा युक्त परब्रह्म पति को प्राप्त किया है। जब अपना तन, मन और सम्पूर्ण कर्त्तव्य रूप यौवन प्रभु के समर्पण किया है, तब ही सतात्माओ ने प्रभु को प्रसन्न करके अपने अनुकूल किया है। पुन वियोग न हो, ऐसी प्रीति प्रभु से जिसने की है, वही सतात्मा सदा सुहागिनी है।

६४-समता। वर्ण भिन्न ताल

तब हम एक भये रे भाई, मोहन मिलि साची मति आई ॥ टेक ॥
पारस परस भये सुखदाई, तब दुतिया दुर्मति दूर गमाई ॥ १ ॥
मलयागिरि मरम मिल पाया, तब बंस वरण कुल भ्रम गमाया ॥ २ ॥
हरि जल नीर निकट जब आया, तब बूद-बूंद मिल सहज समाया ॥ ३ ॥
नाना भेद भरम सब भागा, तब दादू एक रंगै रग लागा ॥ ४ ॥

६४-६६ मे समता दिखा रहे है—हे भाई! विश्व-विमोहन प्रभु के मिलने पर जब हमारे मे यथार्थ बुद्धि आयी तब हम प्रभु से एक हुये है। जब परमात्मा-पारस से जीव-लोह मिला, तब जो पहले व्यवहार रूप शस्त्रादि से सबको दु खप्रद होता था, उसी दुर्बुद्धि जन्य द्वैत-भाव रूप काट को खोकर सबको सुखप्रद भक्त रूप सुवर्ण बन गया। जब अन्त करण रूप मलयागिरि मे रहने वाले ब्रह्म-चंदन का रहस्य प्राप्त हुआ, तब जीव रूप वृक्ष अपना वश, वर्ण, कुल आदि का भ्रम हृदय से दूर करके ब्रह्म रूप चदन ही बन गया। जब हरि समुद्र-जल के पास उपासना द्वारा जीव-जल आया तब शरीरो मे बिन्दु-बिन्दु रूप हुआ रहने पर भी अनायास अभेद ज्ञान होकर ब्रह्म-समुद्र-जल मे समा गया। इस प्रकार जब ज्ञान द्वारा नाना प्रकार के सब भेद भ्रम हृदय से भाग जाते है, तब ब्रह्म रूप रग-राशि मे अश रूप जीव रग अद्वैत रूप से मिल कर एक रग हो जाता है।

६५-वर्ण भिन्न ताल

अलह राम छूटा भ्रम मोरा।
हिन्दू तुरक भेद कुछ नाहीं, देखू दर्शन तोरा ॥टेक॥
सोई प्राण पिंड पुनि सोई, सोई लोही मासा।
सोई नैन नासिका सोई, सहजै कीन्ह तमासा ॥ १ ॥
श्रवणो शब्द बाजता सुनिये, जिह्वा मीठा लागै।
सोई भूख सबन को व्यापै, एक युक्ति सोइ जागै ॥ २ ॥
सोई संधि बध पुनि सोई, सोई सुख सोइ पीरा।
सोई हस्त पाँव पुनि सोई, सोई एक शरीरा ॥ ३ ॥
यहु सब खेल खालिक[1] हरि तेरा, तै हि एक कर लीना।
दादू जुगति जान कर ऐसी, तब यहु प्राण पतीना ॥ ४ ॥

अल्लह और राम भिन्न है, यह हमारा भ्रम दूर हो गया है। यह तो नाम भेद ही है, नामी एक ही है। हिन्दू और मुसलमानो के शरीर मे भी कुछ भेद नही है। हे प्रभो! मै तो दोनो ही मे आपके दर्शन करता हूँ। दोनो मे वही प्राण, वही शरीर, वही रक्त, मास और वे ही नेत्र-नासिकादि इन्द्रियाँ है। आपने यह सब अद्भुत दृश्य रूप तमाशा इच्छा मात्र से अनायास ही रच दिया है। इसमे भेद को कहा अवकाश है ? दोनो को ही बजता हुआ ध्वनि रूप शब्द और वचन रूप शब्द समान सुनने मे आता है। दोनो की ही जिह्वा को मधुर-रस मधुर लगता है। क्षुधा भी सब को ही लगती है। एक ही प्रकार से सब सोते जागते है। दोनो के ही शरीरो मे सन्धिया तथा बन्ध भी समान ही है। सुख-दु ख भी समान ही होते है। एक जैसी ही दोनो के हाथ-पैर और शरीर की बनावट है। हे सृष्टि[1] रचना करने वाले हरे! यह सब ससार आपका ही खेल है। आपने ही इसे एक-सा बनाया है और आप ही इसमे जीव रूप से लीन हो रहे है। हम ऐसी ही युक्ति पूर्वक विचार धारा से जगत् मे एकता जानकर एकनिष्ठ हुये है, तब ही हमारे मन को यथार्थता का विश्वास हुआ है।

६६-नटताल

भाई रे, ऐसा पथ हमारा।
द्वै पख रहित पथ गह पूरा, अवरण एक अधारा ॥टेक॥
वाद विवाद काहू सौ नाहीं, माहि जगत तै न्यारा।
सम दृष्टि स्वभाव सहज मे, आपहि आप विचारा ॥ १ ॥
मैं तै मेरी यहु मति नाहीं, निर्वैरी निरकारा।
पूरण सबै देख आपा पर, निरालम्ब निरधारा ॥ २ ॥

काहू के सँग मोह न ममता, संगी सिरजनहारा ।
मनहीं मन सौं समझ सयाना, आनंद एक अपारा ॥ ३ ॥
काम कल्पना कदे न कीजे, पूरण ब्रह्म पियारा ।
इहिं पथ पहुँच पार गह दादू, सो तत सहज संभारा ॥ ४ ॥

हे भाई ! हमारा पथ तो ऐसा है—उसमे एक ब्रह्म का ही आधार रहता है, हिन्दू मुसलमान पना आदि द्वैत पक्ष नही होता। न वर्ण विभाग ही है। उसको जो ग्रहण करता है, वह पूर्ण ब्रह्म को प्राप्त होकर, स्वय भी पूर्ण ही हो जाता है। उसमे किसी से वाद-विवाद करने की आवश्यकता नही रहती। उसका पथिक, जगत् मे रह कर भी, जगत् से अलग ही रहता है। सहज स्वभाव ही उसमे समदृष्टि रहती है तथा अपने आप ही आत्म-स्वरूप का विचार रहता है। "मै, तू, मेरी, तेरी।" यह भेद बुद्धि उसमे नही रहती। वह सब से निर्वैर होकर, अपने पराये सबमे निराकार, निरालम्ब, पूर्ण ब्रह्म को निश्चयपूर्वक देखकर सम हो जाता है। किसी के साथ मोह ममता नही करता। परमात्मा को ही अपना साथी समझता है तथा वह बुद्धिमान् विचार द्वारा अपने मन ही मन मे समझकर अपार अद्वैतानन्द को प्राप्त होता है। अत. सासारिक-कामना युक्त कल्पना कभी भी मत कर और इस उक्त मार्ग के द्वारा ससार के पार पहुँच कर परम प्रिय पूर्ण ब्रह्म को अद्वैतात्म रूप से ग्रहण कर। वही परब्रह्म-तत्त्व हमने सहज समाधि मे देखा है।

६७-परिचय हैरान । नटताल

ऐसो खेल बन्यो मेरी माई, कैसे कहूं कछु जान्यो न जाई ॥ टेक ॥
सुर नर मुनिजन अचरज आई, राम-चरण को भेद न पाई ॥ १ ॥
मन्दिर मांहीं सुरति समाई, कोऊ है सो देहु दिखाई ॥ २ ॥
मनहिं विचार करहु ल्यौ लाई, दिवा समान कहँ ज्योति छिपाई ॥ ३ ॥
देह निरंतर शून्य[1] ल्यौ लाई, तहँ कौण रमे[2] कौण सूता रे भाई ॥ ४ ॥
दादू न जाणै ये चतुराई, सोइ गुरु मेरा जिन सुधि पाई ॥ ५ ॥

ब्रह्म-साक्षात्कार का आश्चर्य प्रकट कर रहे है—हे भाई ! मेरी अनुभूति मे राम के साक्षात्कार का ऐसा खेल बना हुआ है जिसे कहू भी कैसे ? कारण, वाणी से कहने का तो कुछ उपाय भी नही जानने मे आता। देवता, साधक, नर, मुनिजनादि को राम के चरणो का दर्शन करके आश्चर्य ही होता है। राम के वास्तविक स्वरूप के आदि, मध्य, अन्त का रहस्य प्राप्त नही होता। हृदय मदिर मे स्थित साक्षी चेतन मे जब वृत्ति लय होती है तब जो कोई सत्य तत्त्व है, वही दिखाई देता है। मन के द्वारा साक्षी चेतन के स्वरूप का सम्यक् विचार करो, फिर वृत्ति साक्षी चेतन मे लगाओ। वृत्ति सम्यक् अन्तर्मुख होकर लगने पर आत्मा का साक्षात्कार अवश्य होगा। क्योकि, वह दीपक ज्योति के समान भासने वाली आत्म ज्योति कहाँ छिप जायेगी ? देह मे अन्त करण के भीतर निरन्तर शुद्ध[1] चेतन मे वृत्ति लगाई जाती है, तब हे भाई ! कौन विचरता[2] हुआ और कौन सोता

हुआ दिखाई देता है ? अर्थात् विचरना आदि तो शरीर के धर्म है, वहा शरीर नही भासता। हम तो जो परब्रह्म के स्वरूप सम्बन्धी विलक्षणताये हे, उनका आदि अन्त भी नही जान पाते। परब्रह्म के स्वरूप की विलक्षणताओ को परब्रह्म ही जानते है और वे ही दादूजी के गुरु है। अहमदाबाद मे काकरिये तालाब पर भगवान् ने वृद्ध-स्वरूप बनाकर बचपन मे दादूजी को उपदेश दिया था।

यह भजन ठट्टा नगर से आई हुई माता को सबोधन करके सत्सग मे कहा गया था। चतुर्थ पाद मे भाई ! भी आया है। जो पास बैठे हुये अन्य सत को कहा है, ऐसा ज्ञात होता है।

६८-निज घर परिचय। पचम ताल

भाई रे, घर ही मे घर पाया।
सहज समाइ रह्यो ता माहीं, सतगुरु खोज बताया ॥टेक॥
ता घर काज सबै फिर आया, आपै आप लखाया।
खोल कपाट महल के दीन्हे, स्थिर सुस्थान दिखाया॥ १ ॥
भय औ[1] भेद, भरम सब भागा, साच सोइ मन लाया।
पिंड परै जहां जिव जावै, ता में सहज समाया॥ २ ॥
निश्चल सदा चलै नहि कबहूँ, देख्या सब मे सोई।
ताही सौ मेरा मन लागा, और न दूजा कोई॥ ३ ॥
आदि अनन्त सोइ घर पाया, अब मन अनत[2] न जाई।
दादू एक रगै रंग लागा, ता मे रह्या समाई॥ ४ ॥

ब्रह्म रूप परमधाम का परिचय दे रहे है—हे भाई ! सद्गुरु जनो ने विचार द्वारा खोज करके बताया है, वह विश्व का निवास स्थान परब्रह्म रूप घर हमने शरीर रूप घर मे ही प्राप्त किया है और सहजावस्था द्वारा उसी मे समाये रहते है। उस परब्रह्म घर के लिये प्रथम हम अनेक स्थानो मे तथा साधनो मे फिर आये थे किन्तु अन्त मे वह अपने आत्म-स्वरूप का विचार करने पर दिखाई दिया है। जब विचार ने हृदय-महल के अज्ञान रूप कपाट खोल दिये तब अचल ब्रह्म रूप स्थान दिखाई दिया है। अब तो भय और[1] भेद जन्य सारा भ्रम बुद्धि से भाग गया है और जो सत्य ब्रह्म है, उसी मे मन लगा है। शरीर का राग गिरने पर मुक्तात्मा जहा जाता है वा शरीराध्यास दूर होने पर जीवात्मा जहा जाता है, उसी सहज स्वरूप ब्रह्म चिन्तन मे मन समाया रहता है। जो सदा निश्चल रहता है, कभी भी चलायमान नहीं होता, उसी ब्रह्म को हमने सबमे देखा है और सभी अवस्थाओ मे हमारा मन उसी मे लगा रहता है। मन मे अन्य वस्तु-चिन्तन वा दूसरा कोई भी विचार नही आता। ससार का आदि और अनन्त जो ब्रह्म रूप घर है, वही हमने पा लिया है। अब मन अन्यत्र[2] नही जाता। एक अद्वैत ब्रह्म रग के समीप आत्मा रूप रग लगकर अद्वैत भाव से उसी मे समा गया है।

६९-मानस तीर्थ। पंचमताल

इत है नीर नहावन जोग, अनत हि भ्रम भूला रे लोग ॥ टेक॥
तिहिं तट न्हाये निर्मल होइ, वस्तु अगोचर लखै रे सोइ ॥ १ ॥
सुघट घाट अरु तिरबो तीर, बैठे तहां जगत-गुरु पीर ॥ २ ॥
दादू न जानै तिन का भेव, आप लखावै अंतर देव ॥ ३ ॥

६९-७० मे मानव तीर्थ का परिचय दे रहे है——यहा मनुष्य शरीर मे ही स्नान करने योग्य आत्मा नदी का सयम रूप जल है। अन्य तीर्थों मे तो लोग भ्रम से ही भटक रहे है। आत्मा नदी के सयम-जल से स्नान करता है, तब ही प्राणी निर्मल होकर मन इन्द्रियो के अविषय ब्रह्म रूप सत्य वस्तु को देखता है। हृदय रूप सुन्दर घाट पर विचार-नौका का आश्रय ले संयम तीर्थ को तैर कर उसके अगले तीर अर्थात् सयम की पूर्णावस्था मे जहा जगत् के सिद्ध-गुरु शुद्ध ब्रह्म विराजते है, वहा ही जाता है। उन शुद्ध ब्रह्म के स्वरूप रहस्य आदि, मध्य, अन्त को हम नही जानते। वे आन्तर स्थित ब्रह्म-देव जिन पर कृपा करते है, उनको ही अपना स्वरूप रहस्य बताते है।

७०-पंजाबी त्रिताल

ऐसा ज्ञान कथो मन ज्ञानी, इहिं घर होइ सहज सुख जानी ॥ टेक॥
गंग जमुन तहँ नीर नहाइ, सुषमन नारी रंग लगाइ ॥ १ ॥
आप तेज तन रह्यौ समाइ, मैं बलि ताकी देखूं अघाइ ॥ २ ॥
बास निरंतर सो समझाइ, बिन नैनहुँ देखूं तहँ जाइ ॥ ३ ॥
दादू रे यहु अगम अपार, सो धन मेरे अधर अधार ॥ ४ ॥

हे ज्ञानी नर! हमारे आगे तो ऐसा ज्ञान कथन करो, जिससे हम ज्ञानी होकर, इस शरीर रूप घर मे ही सहज स्वरूप ब्रह्म को जान कर सुखी हो जावे। पिगला नाडी रूप गगा, इडा रूप यमुना, इनके प्राणायाम-प्रवाह मे स्नान करके पवित्र होऊ और सुषुम्ना नाड़ी द्वारा ध्यान रूप रग लगाऊ, फिर ध्यान द्वारा जो अपना आत्म स्वरूप प्रकाश शरीर मे समा रहा है, उसे तृप्त होकर देखू और उसकी बलिहारी जाऊ। जिसमे हम निरतर बस रहे है वा जिसका हमारे मे निरतर निवास है, उसी को इस प्रकार समझाओ कि विचार द्वारा उसके स्वरूप के समीप जाकर् बाह्य नेत्रो के बिना ही प्राणी उसका साक्षात्कार कर सके। अरे भाई! यह जो अगम अपार ब्रह्म तत्त्व है, सोई हमारा धन और निरालब का आधार है।

७१-परिचय सत्संग। पंजाबी त्रिताल

अब तो ऐसी बन आई, राम-चरण बिन रह्यो न जाई ॥ टेक॥
सांई को मिलबे के कारण, त्रिकुटी संगम नीर नहाई।
चरण-कमल की तहँ ल्यौ लागै, जतन जतन कर प्रीति बनाई ॥ १ ॥
जे रस भीना छावर[1] जावै, सुन्दरि सहजैं संग समाई।
अनहद बाजे बाजन लागे, जिह्वाहीणै कीरति गाई ॥ २ ॥

कहा कहूं कुछ वरणि न जाई, अविगत अतर ज्योति जगाई ।
दादू उनको मरम न जानै, आप सुरंगे बैन[२] बजाई ॥ ३ ॥

७१-७२ मे आन्तर साक्षात् सत्सग का परिचय दे रहे है—अब तो हमारी ऐसी अवस्था बन गई है-राम-चरण से दूर नही रहा जाता। हम प्रभु से मिलने के लिए ही त्रिकुटी मे होने वाले इडा-गगा, पिगला-यमुना और सुषुम्ना-सरस्वती के सगम मे ध्यान रूप स्नान करते है अर्थात् आज्ञा-चक्र मे ध्यान करते है। वहा भगवत् चरणो मे वृत्ति अच्छी प्रकार लगती है। इस प्रकार ध्यान रूप उपाय बारबार करके हमने भगवान् मे अनन्य प्रीति की है। अब जो अद्भुत प्रभु-प्रेम-रस है, उसमे भीगा हुआ मन प्रभु पर निछावर[४] हो रहा है और वृत्ति रूप सुन्दरी अनायास ही उनके सग रह कर उन्ही मे समा रही है अर्थात् ब्रह्माकार हो रही है। अब तो अनाहत बाजे बजने लग गये है और बिना ही जिह्वा से सविकल्प समाधि मे हम भगवान् का यशोगान करते है। हे साधको! अब तो हमारी अवस्था ऐसी हो गई है, क्या कहे, कुछ कहा नहीं जाता। हृदय के भीतर अखड ब्रह्म-ज्योति जग रही है। उन परब्रह्म का ठीक-ठीक रहस्य तो हम नहीं जान पाते, किन्तु वे मनोहर प्रभु हमारे हृदय मे आनद की बेणु[२] बजा रहे है।

७२-राजमृगांक ताल

नीके राम कहत है बपुरा[१] ।
घर मांहीं घर निर्मल राखै, पंचो धोवै काया कपरा ॥टेक॥
सहज समर्पण सुमिरण सेवा, तिरवेणी तट सजम सपरा[२] ।
सुन्दरि सन्मुख जागण लागी, तहँ मोहन मेरा मन पकरा[३] ॥ १ ॥
बिन रसना मोहन गुण गावै, नाना वाणी अनुभव अपरा[४] ।
दादू अनहद[६] ऐसे कहिये, भक्ति तत्त यहु मारग सकरा[५] ॥ २ ॥

भगवद् विरह से दुखी[१] साधक अच्छी प्रकार राम का चिन्तन करता है। स्थूल शरीर रूप घर मे रहने वाले अन्त करण घर को काम क्रोधादिक-मल से रहित रखता है और शरीर के रक्षक पच ज्ञानेन्द्रियो रूप वस्त्रो को शुद्ध विचार-जल से धोकर निर्मल रखता है। मन, प्राण, बुद्धि द्वारा इड़ा, पिगला, सुषुम्ना की एकाग्रता रूप त्रिवेणी-सगम के आज्ञा-चक्र तट पर ध्यान रूप स्नान करके सयम-वस्त्र[२] (साफी[२]) से स्वच्छ रखता है। स्मरण रूप सेवा-पूजा करता है, सहजावस्था रूप नैवेद्य समर्पण करता है अर्थात् अपने को निर्विकार करके सहजावस्था मे रहता है। इतना होने पर ही हमारी वृत्ति-सुन्दरी प्रभु के सन्मुख अर्थात् ब्रह्माकार हो, अज्ञान निद्रा से जाग कर प्रभु मे लगी है। जहा बुद्धि वृत्ति लगी है वहा ही विश्व-विमोहन प्रभु ने मेरे मन को भी पकड़[३] लिया है अर्थात् बुद्धि-वृत्ति और मन दोनो प्रभु-परायण रहते है। अब हमारा मन सविकल्प समाधि मे जिह्वा का आश्रय लिये बिना ही परा-वाणी-से-परे[४] परात्पर-परब्रह्म[४] का अनुभव वाणी द्वारा नाना प्रकार से गुण गाता है। ऐसे गुण गान करने को ही असीम[६] गुणगान करना कहते है। यह आन्तर भक्ति-तत्त्व का मार्ग सूक्ष्म[५] है। अत इसमे सहज ही सब का मन नही लगता।

७३-मनसा गायत्री। राजमृगांक ताल

अवधू कामधेनु गहि राखी।
वश कीन्ही तब अमृत सरवै[1], आगै चार न नाखी॥ टेक॥
पोषतां पहली उठ गरजै, पीछे हाथ न आवै।
भूखी भलै दूध नित दूणाँ[2], यों या धेनु दुहावै॥ १॥
ज्यो ज्यों खीण पडै त्यों दूझै, मुकता[3] मेल्यॉ मारै।
घाटा रोक घेर घर आणै, बॉधी कारज सारै॥ २॥
सहजैं बाँधी कदे न छूटै, कर्म बंधन छुट जाई।
काटै कर्म सहज सौं बॉधै, सहजैं रहै समाई॥ ३॥
छिन छिन मांहि मनोरथ पूरै, दिन दिन होइ अनंदा।
दादू सोई देखतां पावै, कलि अजरावर कंदा॥ ४॥

बुद्धि को पवित्र करके परमार्थ परायण करने के लिए सयम रूप गायत्री मत्र बता रहे है—हे अवधूत! शरीर के वस्त्र त्याग कर शीतोष्ण सहन करने से ही विशेष लाभ न होगा। जो नाना कामनाओ को उत्पन्न करने वाली बुद्धि रूप कामधेनु है, उसको सयम द्वारा पकड़ कर रक्खो अर्थात् विषय-वासनाओ मे मत जाने दो। हमने इसे सयम द्वारा अपने अधीन की है, तब ही यह ब्रह्मानन्द रूप अमृत टपकाती[1] है। इसके आगे भोग-वासना रूप चारा मत डालो, भोग-वासना रूप भोजन देना आरभ करते ही यह अधिक भोग-प्राप्ति की इच्छा रूप गर्जना करके उठती है और सासारिक भोगो की ओर भाग जाती है, पीछे सहज ही सयम रूप हाथ मे नही आती। इसे अच्छी प्रकार भूखी अर्थात् विषय-वासनाओ से रहित रखकर ही भगवद्-विचार रूप दूध दुहना[2] चाहिए। यह बुद्धि-धेनु इसी प्रकार दुहाती है। भोग-वासना-रूप भोजन नही मिलने से जैसे-जैसे यह विकार रहित होकर क्षीणता को प्राप्त होती जायेगी, वैसे-वैसे ही भगवद् विचार रूप दूध दुगुना[2] देती जायेगी। यदि इसे अधिक[3] मात्रा मे विषय-वासना रूप चारा डालकर चरने को खुला[3] छोडे तो तुम्हे विषयो मे पटक कर मारेगी, अर्थात् परमार्थ से गिरा देगी। इसकी विषयो मे जाने की पच ज्ञानेन्द्रिय रूप घाटियो को रोक कर अर्थात् इन्द्रियो को अपने अधीन करके वैराग्य द्वारा इसे वापस घेर कर अपने अधिष्ठान चेतन रूप घर मे लाना चाहिए। यह ब्रह्म-विचार खूटे के बॅधी रहती है, तब ही मुक्ति रूप कार्य सिद्ध करती है। सहज निर्विकार अवस्था द्वारा जब यह स्वस्वरूप मे बँध जाती है तब कभी भी नही खुल सकती। कर्म-बन्धन कट जाता है। जो इसे सहज स्वरूप ब्रह्म के विचार मे बॉधता है, वह कर्मों को काट कर सहजावस्था द्वारा सहज स्वरूप ब्रह्म मे ही समा जाता है। सहज स्वरूप ब्रह्म मे बँधी हुई यह क्षण-क्षण मे प्राणी के मनोरथो को पूर्ण करती है और प्रतिदिन आनद ही होता जाता है। इस कलयुग मे भी वह साधक देखते-देखते जीवितावस्था मे ही देवताओ से अतिश्रेष्ठ आनद-कद परब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।

७४-परिचय । कहरवा

जब घट परगट राम मिले ।
आत्म मंगल चार चहूं दिशि, जनम सुफल कर जीत चले ॥ टेक ॥
भक्ति मुक्ति अभय कर राखै, सकल शिरोमणि आप किये ।
निर्गुण राम निरजन आपै, अजरावर उर लाइ लिये ॥ १ ॥
अपने अग संग कर राखै, निर्भय नाम निशान बजावा ।
अविगत नाथ अमर अविनाशी, परम पुरुष निज सो पावा ॥ २ ॥
सोई बडभागी सदा सुहागी, परगट प्रीतम संग भये ।
दादू भाग बडे वर[1] वर[2] कर, सो अजरावर[3] जीत गये ॥ ३ ॥

ब्रह्म साक्षात्कार सबधी परिचय दे रहे है—जब अन्त करण मे राम का आत्म रूप से प्रत्यक्ष मिलन हुआ, तब जीवात्मा के लिए चतुष्टय अन्त करण रूप चारो दिशाओ मे तथा बाह्य चारो दिशाओ मे आनद मगल का ही व्यवहार होने लगा है। अब सासारिक आशाओ को जीत कर तथा अपने जन्म को सफल करके हम परब्रह्म स्वरूप मे लय होने को चले है। सर्व-शिरोमणि प्रभु ने ही हमको भक्ति द्वारा सासारिक वासनाओ से मुक्त किया है और अभय कर रखा है। देवताओ से अति श्रेष्ठ निर्गुण निरजन राम ने स्वय ही हमको अपने हृदय मे लगाया है। अपने निर्विकार स्वरूप के साथ हमे भी निर्विकार कर रखा है। हमने भी निर्भयता के साथ राम-नाम रूप नगाडा बजाकर मन इन्द्रियो के अविषय देवताओ के नाथ अविनाशी अपना जो परम पुरुष है, उन्हीं को प्राप्त किया है। जो सतजन प्रत्यक्ष मे अपने प्रियतम प्रभु के सग हो गये है, वे ही सदा सौभाग्य-सपन्न और बडभागी है। हमारे भी बड़े भाग्य है, जो हम उन देवताओ से अति श्रेष्ठ[1] परब्रह्म-वर[1] को वरण[2] करके उसके तद्रूप अजन्मा[3] स्थिति प्राप्त करने से यह मानव-देह-दुर्ग जीत गये है।

७५-परा भक्ति प्रार्थना । कहरवा

रमैया, यहु दुख सालै मोहि ।
सेज सुहाग न प्रीति प्रेम रस, दरशन नांहीं तोहि ॥ टेक ॥
अंग प्रसंग एक रस नांहीं, सदा समीप न पावै ।
ज्यो रस मे रस बहुरि न निकसै, ऐसे होइ न आवै ॥ १ ॥
आत्मलीन नहीं निशिवासर, भक्ति अखडित सेवा ।
सन्मुख सदा परस्पर नाहीं, तातै दुख मोहि देवा ॥ २ ॥
मगन गलित महारस माता, तू है तब लग पीजे ।
दादू जब लग अंत न आवै, तब लग देखन दीजै ॥ ३ ॥

पराभक्ति को प्राप्त करने के लिए प्रार्थना कर रहे है—हे सबमे रमने वाले राम ! आप मेरी हृदय-शय्या पर पधार करके मुझे सुहाग सुख नही देते, न मेरी प्रीति के अनुसार अपना प्रेम-रस

प्रदान करते और न आपका दर्शन ही होता है। यही दु ख मुझे दु खी कर रहा है। आपके स्वरूप से निरतर सयोग का अवसर नही मिलता, न आपकी सदा समीपता ही प्राप्त होती है। जैसे इक्षु-रस मे इक्षु-रस मिलकर फिर अलग नही निकलता, वैसे ही आप के स्वरूप मे हमारा आत्मा लय होकर फिर अलग नही निकल सके, ऐसी अद्वैत अवस्था प्राप्त नही हो रही है। बुद्धि अखडित सेवा-भक्ति द्वारा सदा आपके सन्मुख रह कर दिन-रात आप मे लीन नही रहती और आप परमात्मा तथा मेरी आत्मा परस्पर एक नही होते। हे देव ! इसीलिए मुझे दु:ख है। प्रभो ! जब तक आप का स्वरूप प्रतीति मात्र भिन्न भास रहा है, तब तक अहकार को नष्ट करके आपके प्रेम मे निमग्न होकर आप के साक्षात्कार रूप महा-रस का पान करते हुये मस्त रहूँ, ऐसी कृपा करिये। प्रभो ! जब तक मेरे देह का अन्त समय न आवे तब तक तो मुझे उक्त प्रकार पराभक्ति द्वारा आपका दर्शन करने दीजिये, फिर तो मै आपका रूप हो ही जाऊगा।

७६-लांबी (अधीरता, अस्थिरता) दादरा

गुरुमुख पाइये रे, ऐसा ज्ञान विचार।
समझ समझ समझ्या नहीं, लागा रंग अपार ॥टेक॥
जांण जांण जांण्यां नहीं, ऐसी उपजै आइ ।
बूझ बूझ बूझ्या नहीं, ढोरी[1] लागा जाइ ॥१॥
ले ले ले लीया नहीं, हौंस[2] रही मन मांहिं ।
राख राख राख्या नहीं, मैं रस पीया नांहिं ॥२॥
पाय पाय पाया नहीं, तेजै तेज समाइ ।
कर कर कुछ कीया नहीं, आतम अंग लगाइ ॥३॥
खेल खेल खेल्या नहीं, सन्मुख सिरजनहार ।
देख देख देख्या नहीं, दादू सेवक सार ॥४॥

परब्रह्म के अखड साक्षात्कारार्थ सत मे अधैर्य रहता है, उसे प्रकट कर रहे है—अरे भाई ! गुरुजनो के मुख से ही ऐसा ज्ञान विचार सुनने मे आता है कि—उस परब्रह्म का अपार प्रेम-रग लग गया है, किन्तु शास्त्र सतो द्वारा उसे बारबार समझ कर भी उसका आदि, मध्य, अन्त नही समझ सके है। उसे व्यापक तथा अपना स्वरूप जान कर भी बुद्धि मे ऐसी भावना उत्पन्न होती रहती है कि अभी पूर्ण रूप से नही जाना गया। उसके विषय मे बारबार प्रश्न करके भी अभी तक न पूछने के समान भावना होती रहती है और सत ब्रह्माकार वृत्ति द्वारा लगन[1] पूर्वक उसकी ओर आगे बढता रहता है। मन, वचन, कर्म से उसकी प्राप्ति होने का निश्चय कर लेने पर भी नही प्राप्त करने की-सी स्थिति प्रतीत होती रहती है और प्राप्त करने की इच्छा[2] मन मे बनी रहती है। ध्यान द्वारा हृदय मे और विचार द्वारा बुद्धि मे रखने पर भी नही रखने के समान प्रतीत होता है। कारण, मैंने निदिध्यासन रूप अखड रस का पान नही किया। उसे व्यापक रूप से तथा आत्मा रूप से प्राप्त तो कर लिया किन्तु आत्म-प्रकाश, परमात्म-प्रकाश मे लय होकर व्यवहार

मे भी उसकी भिन्न प्रतीति न हो, ऐसे नही प्राप्त कर सके। वारवार योगादि साधन करके भी जव तक आत्मा को परमात्म-स्वरूप मे अभेद न कर सके, तव तक कुछ भी नही करने के समान भावना वनी रहती है। ध्यानावस्था मे और सविकल्प समाधि मे परव्रह्म दर्शनानद रूप खेल खेल कर भी जव तक व्रह्म ज्ञान द्वारा व्रह्म के सन्मुख होकर उससे अभेद न हुआ, तव तक अखडानन्द प्राप्ति रूप खेल न खेलने के समान ही भावना वनी रहती है। निर्विकल्पसमाधि मे वारवार साक्षात्कार करने पर भी नही देखने के समान उसे देखने की इच्छा जिसमे वनी रहती है, वही सेवक श्रेष्ठ है।

७७-गुरु अधीन ज्ञान। दादरा

बाबा गुरु मुख ज्ञाना रे, गुरु मुख ध्याना रे ॥ टेक ॥
गुरु मुख दाता, गुरु मुख राता, गुरु मुख गवना रे।
गुरु मुख भवना, गुरु मुख छवना[1], गुरु मुख रवना[2] रे ॥ १ ॥
गुरु मुख पूरा[3], गुरु मुख शूरा, गुरु मुख वाणी रे।
गुरु मुख देणा, गुरु मुख लेणा, गुरु मुख जाणी रे ॥ २ ॥
गुरु मुख गहबा, गुरु मुख रहबा, गुरु मुख न्यारा रे।
गुरु मुख सारा, गुरु मुख तारा, गुरु मुख पारा रे ॥ ३ ॥
गुरु मुख राया, गुरु मुख पाया, गुरु मुख मेला रे।
गुरु मुख तेजं, गुरु मुख सेज, दादू खेला रे ॥ ४ ॥

यथार्थ ज्ञान गुरु मुख द्वारा ही प्राप्त होता है, यह कह रहे है—हे वावा! सभी प्रकार के ज्ञान गुरुमुख से सुनने पर ही होते है। गुरुमुख से ही ध्यान का, दाता होने का, प्रभु मे अनुरक्त होने का, प्रभु के पास जाने का, अपने अधिष्ठान परव्रह्म रूप घर का, उस घर मे स्थिर रूप से रहने[1] का, प्रभु से रमण[2] (आनद) प्राप्त करने का, पूर्णावस्था प्राप्त करने का, साधन मे वीर रहने का, वाणी बोलने का, उपदेश देने तथा लेने का, ज्ञानी होने का, ज्ञान को धारण करने का, स्वस्वरूप मे स्थित रहने का, सासारिक भावनाओ से अलग रहने का, सार तत्त्व का, ससार-सिन्धु से तैरने का, ससार पार की स्थिति का, राजा समान निर्पेक्ष रहने का, ब्रह्म प्राप्ति का, हृदय शय्या पर प्रभु की अनुभूति का ब्रह्म प्रकाश, परा भक्ति द्वारा प्रभु से आनद रूप खेल खेलने और ब्रह्म मे अभेद रूप से मिलन का इत्यादि सभी यथार्थ ज्ञान गुरु द्वारा ही होता है।

७८-निज स्थान निर्णय। दीपचन्दी

मै मेरे मे हेरा, मध्य माहि पीव नेरा ॥ टेक ॥
जहँ अगम अनूप अवासा, तहँ महापुरुष का वासा।
तहँ जानेगा जन कोई, हरि माहि समाना सोई ॥ १ ॥
अखंड ज्योति जहँ जागै, तहँ राम नाम ल्यौ लागै।
तहँ राम रहै भर पूरा, हरि संग रहै नहि दूरा ॥ २ ॥

तिरवेणी तट तीरा, तहँ अमर अमोलक हीरा।
उस हीरे सौं मन लागा, तब भरम गया भय भागा ॥ ३ ॥
दादू देख हरि पावा, हरि सहजैं सग लखावा।
पूरण परम निधाना, निज निरखत हौं भगवाना ॥ ४ ॥

७८-७९ मे निश्चय किये हुये अपने अधिष्ठान रूप स्थान को बता रहे है—जब मैंने ध्यान द्वारा अपने मे ही खोजा, तब परमात्मा मेरे अति समीप हृदय के मध्य मे ही प्राप्त हुये। जहा बाह्य इन्द्रियो से अगम अनुपम अष्टदल-कमल रूप निवासस्थान है, उसी मे ही महापुरुष परब्रह्म का विशेष रूप से निवास है। ध्यान द्वारा वहा पर स्थित परब्रह्म को जो भी जन जानेगा, वह परब्रह्म मे ही समा जायगा। जहा हृदय देश मे आत्म रूप अखड ज्योति जगती है, वहा ही राम-नाम द्वारा राम मे वृत्ति लगती है। वहा ही विश्व मे परिपूर्ण राम विशेष रूप से रहते है, इसलिए हरि सग ही रहते है, दूर नही। आज्ञा-चक्र मे इडा, पिगला, सुषुम्ना का सगम रूप त्रिवेणी तट है। वहा उसके तीर पर ही ध्यान द्वारा अमर ब्रह्म रूप अमूल्य हीरा प्राप्त होता है। जब उस ज्ञान रूप हीरे के विचार मे हमारा मन लगा, तब हमारा सम्पूर्ण भेद-जन्य भ्रम और भय नष्ट हो गया। उस ज्ञान के द्वारा हम अनायास ही ब्रह्म को देख पाये है और वह हमारे सग ही प्रतीत हुआ है। अब उस परमाश्रय पूर्णब्रह्म अपने भगवान् को हम निरन्तर देखते रहते है।

७९-दीपचन्दी

मेरा मन लागा सकल करा[1], हम निशदिन हिरदै सो धरा ॥ टेक ॥
हम हिरदै मांहीं हेरा, पीव परकट पाया नेरा।
सो नेरे ही निज लीजै, तब सहजैं अमृत पीजै ॥ १ ॥
जब मन ही सौं मन लागा, तब ज्योति स्वरूपी जागा।
जब ज्योति स्वरूपी पाया, तब अंतर मांहिं समाया ॥ २ ॥
जब चित्त हि चित्त समाना, हम हरि बिन और न जानां।
जानां जीवन सोई, अब हरि बिन और न कोई ॥ ३ ॥
जब आतम एकै बासा, परमातम मांहिं प्रकाशा।
परकाशा पीव पियारा, सो दादू मींत हमारा ॥ ४ ॥

इति राग गौड़ी समाप्त ॥ १ ॥ पद ७९ ॥

जो पर ब्रह्म सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का कर्त्ता[1] है वही मेरे मन को प्रिय लग रहा है और हम ने रात-दिन उसी को हृदय मे रखा है। हमने उसे ध्यान द्वारा हृदय मे खोजा था, इसलिये वह परमात्मा अति समीप हृदय मे ही प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त हुआ है। उसे ध्यान द्वारा समीप निज हृदय मे ही प्राप्त करो, तब ही अनायास आनदामृत पान कर सकोगे। जब हमारा मन, मन की अतर वृत्ति के द्वारा परब्रह्म के चिन्तन मे लगा, तब ही ज्योति-स्वरूप से जगमगाते हुये परब्रह्म को हमने देखा और जब ज्योति-स्वरूप से उसे प्राप्त किया तो उसी मे समा गये। इस प्रकार जब चित्त, चित्त की अन्तर्मुखता

के द्वारा, उसमे लीन हुआ तब हमे परब्रह्म से भिन्न कुछ भी ज्ञान न रहा। हमने उसी परब्रह्म को अपना जीवन समझा है। अब प्रभु के विना अन्य कोई भी सत्य नही भासता। जब भीतर परमात्म-प्रकाश प्रकट होकर, आत्मा का परमात्मा मे अद्वैत रूप से वास हो गया तो अब वह प्रकाश-स्वरूप प्रियतम परब्रह्म ही हमारा मित्र है।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग गौड़ी समाप्त ॥ १ ॥

अथ राग माली गौड़ २

(गायन समय सध्या ६ से ९ रात्रि)

८०- नाम महिमा। झपताल

गोविन्द! नाम तेरा, जीवन मेरा, तारण भव पारा।
आगे इहि नाम लागे, संतन आधारा ॥ टेक ॥
कर विचार तत्त्व सार, पूरण धन पाया।
अखिल नाम अगम ठाम, भाग हमारे आया ॥ १ ॥
भक्ति मूल मुक्ति मूल, भव जल निस्तरना।
भरम कर्म भंजना भय, किल्विष सब हरना ॥ २ ॥
सकल सिद्धि नव निधि, पूरण सब कामा।
राम रूप तत्त्व अनूप, दादू निज नामा ॥ ३ ॥

नाम महिमा कह रहे है—हे गोविन्द! आपका नाम मेरा जीवन है और सासारिक वासना-सरिता से तार कर ससार-सागर से पार करने वाला है। पूर्व काल के सन्त इस नाम के चिन्तन मे ही लगे थे। यह आप का नाम ही सतो का आधार है। हमने विचार करके ही तत्त्व-ज्ञान का भी सार नाम रूप धन प्राप्त किया है। नाम ही हमारा सर्वस्व है। नाम ही अगम धाम रूप परब्रह्म को प्राप्त कराता है। यह भाग्यवश ही हमारे हृदय मे आया है। नाम ही भक्ति और मुक्ति का मूल कारण है। ससार-सिन्धु के मनोरथ-जल से पार करने वाला है। भ्रम, कर्म और भय को नष्ट करने वाला है। सम्पूर्ण पाप और विकारो को नष्ट करने वाला है। सम्पूर्ण सिद्धियो और नव निधियो को देने वाला है। सम्पूर्ण कामना पूर्ण करने वाला यह राम नाम निज नाम होने से अनुपम तत्त्व है।

८१-करुणा। झपताल

गोविन्द! कैसे तरिये।
नाव नाहीं खेव[1] नांहीं, राम विमुख मरिये ॥ टेक ॥
ज्ञान नाहीं ध्यान नांहीं, लै समाधि नाहीं।
विरहा वैराग नाहीं, पचौं गुण[2] मांहीं ॥ १ ॥
प्रेम नांही प्रीति नाहीं, नाम नाहीं तेरा।
भाव नाहीं भक्ति नांहीं, कायर जीव मेरा ॥ २ ॥

घाट नांहीं बाट नांहीं, कैसे पग धरिये ।
वार नांहीं पार नांही, दादू बहु डरिये ॥ ३ ॥

भगवत् प्राप्ति के लिए दु ख प्रकट कर रहे है—हे गोविन्द ! हम इस ससार-सागर से कैसे पार होंगे ? न तो हमारे पास साधन रूप नौका है, न साधन-नौका द्वारा पार कराने वाला गुरु-केवट[१] है और न देने को किराया[२] है। हम तो राम से विमुख रह कर ससार-सिन्धु मे डूबकर मरने वाले ही हैं। न हमारे मे आत्म-ज्ञान है, न ध्यान ही करते है, न स्वस्वरूपाकार वृत्ति ही रखते है, न समाधि ही लगाते है, न हमारे मे विरह है, न वैराग्य ही है। मन विषयों[२] मे फँस रहा है वा पचो इन्द्रियॉ विषयो[२] मे फँस रही है। न सन्तो मे प्रेम है, न आप मे प्रीति है, न आपका नाम चिन्तन ही करते है। न आप मे श्रद्धा-भक्ति है। यह हमारा मन उक्त साधनो के करने मे तो बडा ही कायर है। तैरने योग्य ससार-सिन्धु का ऐसा कोई घाट और मार्ग नही दृष्टि पडता, जिससे हम पार हो सके। फिर पार जाने के लिए इस अथाह ससार-सिन्धु मे कैसे पैर रक्खे, इसका वार-पार भी तो ज्ञात नही होता। अत इसको पार करने मे हम बहुत डर रहे है।

८२-विरह। शंखताल

पिव आव हमारे रे, मिल प्राण पियारे रे, बलि जाऊं तुम्हारे रे ॥ टेक॥
सुन सखी सयानी रे, मैं सेव न जानी रे, हौं भई दिवानी रे ॥ १ ॥
सुन सखी सहेली रे, क्यों रहूं अकेली रे, हौं खरी दुहेली रे ॥ २ ॥
हौं करूं पुकारा रे, सुन सिरजनहारा रे, दादू दास तुम्हारा रे ॥ ३ ॥

८२-८५ मे वियोग व्यथा दिखा रहे है—हे प्राण प्रिय स्वामिन् ! मेरे हृदय मे आकर मुझसे मिलो, मै आपकी बलिहारी जाती हूँ। हे ज्ञानी सन्त सखी ! मेरी बात ध्यान देकर सुन, मै तो प्रभु के वियोग से पगली हो रही हूँ, अत मुझे उनकी सेवा-भक्ति करना भी नही आता। बता तो सही, कैसे उनकी उपासना की जाती है ? हे साधक रूप सगिनी सखी ! मेरी बात सुन तो सही, मै प्रभु बिना अकेली कैसे रहू ? प्रभु के बिना मै अति दु खी हू। हे सृष्टिकर्ता परमेश्वर ! मै आपका दास हूँ और बारबार पुकार कर प्रार्थना कर रहा हूँ, मेरी प्रार्थना सुनकर मुझे दर्शन देने की कृपा कीजिये।

८३-शंख ताल

वाल्हा[१] सेज हमारी रे, तूं आव हूं वारी रे, हूं दासी तुम्हारी रे ॥ टेक॥
तेरा पंथ निहारूं रे, सुन्दर सेज सँवारू रे, जियरा तुम पर वारूं रे ॥ १ ॥
तेरा अंगडा पेखूं रे, तेरा मुखडा देखूं रे, तब जीवन लेखूं रे ॥ २ ॥
मिल सुखडा दीजै रे, यहु लाहडा[२] लीजै रे, तुम देखैं जीजै रे ॥ ३ ॥
तेरे प्रेम की माती रे, तेरे रँगडे राती रे, दादू वारणै जाती रे ॥ ४ ॥

हे प्रियतम[१] परमेश्वर ! आप हमारी हृदय शय्या पर पधारिये, मै आपकी बलिहारी जाती हूँ। मै आप की दासी हू, आपका मार्ग देख रही हूँ और आपके लिए हृदय रूप सुन्दर शय्या दैवी-गुणो से सजा रही हूँ, अपने प्राण आप पर निछावर करने को तैयार हू, आप पधारिये। मै विचार द्वारा सशय-विपर्य्य रहित आपका स्वरूप देखूगी, और अभेद दर्शन रूप मुख देखूगी तब ही अपने जीवन को सफल समझूगी। आप मुझसे मिलकर मुझे परमानद दे कर जीवन प्रदान करने का महान् लाभ[२] ले। मै आपको देखने से ही जीवित रह सकूगी। मे आपके प्रेम मे मस्त होकर आपके चिन्तन रूप रग मे अनुरक्त हू ओर आपकी बलिहारी जाती हू।

८४-(फारसी) शूल ताल

दरबार तुम्हारे दरदवंद[१], पीव पीव पुकारे ।
दीदार दरूनै[२] दीजिये, सुन खसम[३] हमारे ॥ टेक॥
तनहा[४] के तन पीर है, सुन तूही निवारे ।
करम[५] करीमा[६] कीजिये, मिल पीव पियारे ॥ १ ॥
शूल[७] सुलाको[८] सो सहू, तेग तन मारे ।
मिल साई सुख दीजिये, तूंही तू सँभारे ॥ २ ॥
मैं शुहुदा[९] तन सोखता[१०], विरहा दुख जारे ।
जिय तरसे दीदार को, दादू न विसारे ॥ ३ ॥

प्रभो ! आपके अष्टदल-कमल रूप दरबार के हृदय-द्वार पर आपके वियोग से विकल[१] हो 'पीव', 'पीव' ! पुकार रहे है। हमारे स्वामिन्[३] ! हमारी प्रार्थना सुनकर हृदय[२] मे प्रकट होकर हमे दर्शन दीजिये। आपके बिना अकेले[४] रहने से मेरे शरीर मे बडी पीडा होती है। आप ही मेरी प्रार्थना सुन कर इसे दूर कर सकते है। हमारे प्रियतम स्वामिन् ! कृपालो[६] ! कृपा[५] करके हमारे हृदय मे प्रकट होकर हमे मिले। वह विरह रूप शत्रु मेरे शरीर पर विकलता रूप तलवार मारता है, उसके घावो[८] की वह पीडा[७] शूल काँटे[८] चुभने जैसी सहन करता हूँ और "तू ही तू" करते हुये आपका स्मरण करता हूँ। विरह-दु खाग्नि जला[१०] रही है, मेरा शरीर इससे व्याकुल[९] हो गया है। मै सब मे आपको व्यापक रूप से देख रहा हूँ, किन्तु मेरा मन आपके प्रत्यक्ष दर्शनार्थ तरस रहा है। मै आपको नहीं भूल रहा हूँ, आप भी मुझे न भूले और दर्शन देकर कृतार्थ करे।

८५-(फ़ारसी) शखताल

सइया[१] तूं है साहिब मेरा, मै हूँ बन्दा[२] तेरा ॥ टेक ॥
बन्दा[३] वरदा[४] चेरा[५] तेरा, हुक्मी मै बेचारा[६] ।
मीरा[७] महरवान[८] गुसाई, तू सिरताज हमारा ॥ १ ॥
गुलाम[१७] तुम्हारा मुल्ला[९] जादा[१०], लौडा[११] घर का जाया ।
राजिक[१२] रिजक[१३]जीव तै दिया, हुक्म तुम्हारे आया ॥ २ ॥

शादील[14] बै[15] हाजिर बन्दा, हुक्म तुम्हारे मांही ।
जब ही बुलाया तब ही आया, मैं मेवासी[16] नांहीं ॥ ३ ॥
खसम हमारा सिरजनहारा, साहिब समर्थ सांई ।
मीरां मेरा महर मया कर, दादू तुम ही तांई ॥ ४ ॥

हे परमेश्वर ! आप मेरे स्वामी है और मै आपका दास[2] हूँ आपका जन[3] हूँ, आपकी आज्ञा मे चलने वाला दास[4] और दीन[5] सेवक[6] हूँ। स्वामिन् ! आप हमारे शिरोमणि दयालु[8] सरदार[9] है और मै विद्वान्[1] के घर जन्मा[10] हुआ, आपका मोल[17] लिया हुआ नौकर हू, वा आपके घर का जन्मा बालक[11] हूँ। हे जीविका[12] देने वाले ईश्वर ! आपने ही मुझे जीविका[13] और जीवन दिया है। आपकी ही आज्ञा से मै ससार मे आया हूँ। आप चाहे बेचे[15] वा पास रक्खे, मै दास तो आपकी आज्ञा मे ही प्रसन्न[14] हूँ। जब भी आपने बुलाया, तब ही मुझे आपकी सेवा मे आया हुआ ही समझो, मै अपने को बडा[16] समझने वाला नही हू। प्रभो ! सृष्टिकर्ता समर्थ परमेश्वर ! आप ही हमारे स्वामी है। मेरे सरदार ! दया करो, दया करो, मै तो आपकी सेवा के लिए ही हू।

८६-करुणा। शंखताल

मुझ थीं कुछ न भया रे, यहु यों ही गया रे, पछतावा रह्या रे॥ टेक॥
मैं शीश न दीया रे, भर प्रेम न पीया रे, मै क्या कीया रे॥ १ ॥
हौं रंग न राता रे, रस प्रेम न माता रे, नहिं गलित गाता रे॥ २ ॥
मैं पीव न पाया रे, कीया मन का भाया रे, कुछ होइ न आया रे॥ ३ ॥
हूं रहूं उदासा रे, मुझै तेरी आशा रे, कहै दादू दासा रे॥ ४ ॥

खेद प्रकट कर रहे है—अहो ! मेरे से प्रभु प्राप्ति का कुछ भी साधन नही हुआ, यह जीवन व्यर्थ ही चला गया, अब केवल पश्चाताप ही रह गया है। मैंने प्रभु के लिए अपना अहकार रूप शिर नही दिया, न इच्छा भरके प्रभु-प्रेम रस का पान ही किया। मैंने प्रभु प्राप्ति के लिए क्या किया ? कुछ नही। मै प्रभु चिन्तन के रग मे अनुरक्त नहीं हुआ, न प्रेम रस मे मस्त हुआ, न शरीर का अध्यास ही नष्ट कर सका। मैंने मन को प्रिय लगने वाले काम ही किये है, प्रभु मे मन लगाने का साधन मुझ से कुछ भी न हो सका। मै प्रभु को प्राप्त न कर सका, इसीलिए उदास रहता हूँ, किन्तु हे प्रभो ! मै यथार्थ कहता हू, मुझे अब भी आशा है कि आप दर्शन अवश्य देगे।

८७-वैराग्य उपदेश। निसारुक ताल।

मेरा मेरा छाड गँवारा, शिर पर तेरे सिरजनहारा।
अपनैं जीव विचारत नांहीं, क्या ले गइला[1] वंश तुम्हारा॥ टेक॥
तव मेरा कृत[2] करता नांहीं, आवत है हक्कारा[3]।
काल चक्र सौं खरी[4] परी रे, विसर गया घरबारा॥ १ ॥
जाइ तहां का संजम कीजे, विकट पंथ गिरिधारा।
दादू रे तन अपना नांही, तो कैसे भया ससारा॥ २ ॥

८७-८८ मे वैराग्य प्रद उपदेश कर रहे है—हे मूर्ख ! यह द्रव्य मेरा है, यह धाम मेरा है, ऐसा करना छोड़ दे। ये सब तो तेरे शिर पर रहने वाले सृष्टि-कर्ता प्रभु के है। तू अपने मन मे विचार नहीं करता, तेरे से पहले के वश वाले, तेरे पितामह, प्रपितामह, क्या साथ ले गये[१] है ? तेरा मेरा जो कर्तव्य[२] हे उसे तो निष्काम भाव से करता नही और कर्तृव्य का मिथ्याहकार[२] मन मे पहले ले आता हे। जब यमदूतो का हल्ला[३] आता है तब तो तू मेरा-मेरा नही करता, उस समय मेरा-मेरा कहना कहा चला जाता है ? पूर्वजन्म मे भी जब वास्तव[४] मे काल-चक्र की महान् विपत्ति[४] पडी थी, तब तू अपने असली घर वाले परमात्मा को भूल गया था। जहाँ तू काल-पाश मे बँधकर जायेगा वहाँ के तप्त पर्वत ओर वेतरणी नदी की भयकर धारा वाले विकट मार्ग का सयम रूप साधन कर। अरे भाई ! जब यह अपना शरीर भी अपना नही है, तब सासारिक द्रव्य, धाम आदि अपने कैसे हो सकेगे ? अत. मेरा-मेरा छोड़ कर भगवद्-भजन कर।

८८-निसारुक ताल

दादू दास पुकारे रे, शिर काल तुम्हारे रे, शर सांधे मारे रे ॥ टेक ॥
जम काल निवारी रे, मन मनसा मारी रे, यहु जन्म न हारी रे ॥ १ ॥
सुख नींद न सोई रे, अपना दुख रोई रे, मन मूल न खोई रे ॥ २ ॥
शिर भार न लीजी रे, जिसका तिसको दीजी रे, अब ढील न कीजी रे ॥ ३ ॥
यहु औसर तेरा रे, पथी जाग सवेरा रे, सब बाट बसेरा रे ॥ ४ ॥
सब तरुवर छाया रे, धन जौबन माया रे, यहु काची काया रे॥ ५ ॥
इस भ्रम न भूली रे, बाजी देख न फूली रे, सुख सागर झूली रे ॥ ६ ॥
रस अमृत पीजी रे, विष का नाम न लीजी रे, कह्या सो कीजी रे ॥ ७ ॥
सब आतम जाणी रे, अपणा पीव पिछाणी रे, यहु दादू वाणी रे ॥ ८ ॥

हे लोगो ! हम पुकार कर कह रहे है—तुम्हारे शिर पर काल खडा है और तुम्हे लक्ष्य बना करके वय रूप धनुष द्वारा रात्रि-दिन रूप बाण मार रहा है। तुम अपने मन और बुद्धि को जीत कर, अपने नाशक यम को हटाओ। यह मानव-जन्म व्यर्थ ही मत खोओ। सुख की निद्रा मे मत सोओ। जन्म-मरण रूप दु ख निवृत्ति के लिए रोते हुये भगवान् से प्रार्थना करो। मन से अपने मूल कारण परमात्मा को दूर मत होने दो। धन-धामादिक ममता का भार अपने शिर पर मत लो। जिस प्रभु के ये सब है, उसी को समर्पण कर दो। अब विलब मत करो। हे जीव रूप पथिको ! प्रभु के पास जाने को यह मानव शरीर का समय बहुत अच्छा है। अत जीवन-रात्रि के समाप्त होने से पहले ही जाग कर चल पड़ो। हम मोक्ष-मार्ग पर ही बस रहे है। यहा सदा रहने वाला कोई भी नही है। यह यौवन और धनादि सभी मायिक पदार्थ वृक्ष की छाया के समान चचल है। यह शरीर भी कच्चे घट के समान है। ये धनादि सदा रहेंगे, ऐसे भ्रम मे पड़ कर भगवान् को मत भूलो। ससार बाजी को देखकर मत प्रसन्न हो। सुख-सिन्धु परब्रह्म के चिन्तन रूप झूले पर झूलो अर्थात् निरतर चिन्तन करो।

ज्ञानामृत रस का पान करो। विषय-विष का नाम भी मत लो। सत, शास्त्रो ने जो आत्म-कल्याण के साधन कहे है, उनको करो। सबको अपनी ही आत्मा समझ कर अपने प्रियतम परमात्मा को पहचानो। यही हमारी वाणी है।

८९-भक्ति उपदेश । त्रिताल

पूजूं पहली गणपति राइ, पडिहौं पावों चरणों धाइ[1]।
आगैं ह्वै कर तीर[2] लगावै, सहजैं अपने बैन सुनाइ ॥ टेक॥
कहूं कथा कुछ कही न जाइ, इक तिल में ले सबै समाइ ॥ १ ॥
गुण हु गहीर धीर तन देही, ऐसा समरथ सबै सुहाइ ॥ २ ॥
जिस दिशि देखूं ओही है रे, आप रह्या गिरि तरुवर छाइ ॥ ३ ॥
दादू रे आगै क्या होवै, प्रीति पिया कर जोड लगाइ ॥ ४ ॥

भक्ति का उपदेश कर रहे है—जो सुर-गण, मुनि-गण, नर-गण आदि सभी समूहो के स्वामी है, विश्व के राजा है, मै दौड[1] के उन प्रभु के चरणो मे पडकर प्रथम उनके पाद-पद्मो को ही ध्यान[1] और पूजा करता हूँ। वे साधन पथ मे हमारे आगे रहकर, मकर-मत्स्य रूप कामादि शत्रुओ को वस्तु-विचारादि बाण[2] मार कर भवसागर से पार किनारे[2] लगाते रहते है और ध्यानावस्था मे अनायास ही अपने मधुर वचन सुना कर हम को साधन-मार्ग दिखाते रहते हे। उनके बल की कथा क्या कहू, कुछ कहने मे नही आती। वे तिल मे तैलवत् सर्वत्र समाये हुए क्षण मात्र मे ससार को अपने मे वा तिल मात्र स्थल मे लयकर लेते हे। वे गभीर, धैयवान् व अथाह गुणधारी तथा शरीर से हृष्ट-पुष्ट है। सपूर्ण जीवो के शरीरो को अपनी सत्ता से धारण करते है, ऐसे समर्थ और सब प्रकार सुन्दर है। जिस दिशा मे भी हम देखते हे, वे ही दीखते है। वे पर्वत-वृक्षादि सभी मे स्थित है। अत हे लोगो ! अभी से हाथ जोड़ कर उन प्रभु मे प्रीति-पूर्वक मन को लगाओ। आगे वृद्धावस्था मे शरीर की क्रिया भी करना कठिन होगा, तब तुम से प्रभु-प्राप्ति का क्या साधन हो सकेगा ?

९०-परिचय । पचमताल

नीको धन हरि कर मै जान्यौं, मेरे अखई[1] ओही[2]।
आगे पीछे सोई है रे, और न दूजा कोई ॥ टेक॥
कबहुँ न छाडूं संग पिया को, हरि के दर्शन मोही ।
भाग हमारे जो हौं[3] पाऊं, शरणैं आयो तोही ॥ १ ॥
आनँद भयो सखी जिय मेरे, चरण कमल को जोई[4] ।
दादू हरि को बावरो[3], बहुरि वियोग न होई ॥ २ ॥

प्रभु साक्षात्कार का परिचय दे रहे है—मैंने विचार द्वारा निश्चय करके राम-धन को ही श्रेष्ठ धन समझा है। मेरे लिये वहीं[2] अक्षय[1] धन है। मेरे आगे पीछे रहने वाला सबधी भी वह राम ही है, और दूसरा कोई नही है। यदि मेरे भाग्यवश मै[3] प्रभु को प्राप्त कर पाऊँगा, उसके दर्शन मुझे हो जायेगे तब तो मै उस प्रियतम का साथ कभी भी न छोडूगा। प्रभो ! मै आपकी शरण आया हूँ

कृपा करके दर्शन दो। हे मन-मन!। अब तो प्रभु के नाम-स्मरण से प्रेम-रस में हृदय में परमानन्द हो रहा है तथा मैं विरह की ज्वाला से मुक्त हो गया हूँ। अब आगे कभी वियोग न होगा।

११- (फारसी) शिक्षोपदेश। पञ्चमताल

बाबा मर्दे मर्दां गोइ[1], ये दिल पाक[2] करदम[3] धोइ॥टेक॥
तर्क[4] दुनियां दूर कर दिल, फर्ज[5] फारिग[6] होइ।
पैवस्त[7] परवरदिगार[8] सों, आकिलां[9] सिर[10] सोइ॥१॥
मनी[11] मुरद:[12] हिर्स[13] फानी[14], नफ्स[15] रा[16] पामाल[17]।
बदी[18] रा बरतरफ[19] करद.[20], नाम[21] नेकी ख्याल[22]॥२॥
जिंदगानी[23] मुरद: याशद[24], कुंजे[25] कादिर[26] कार[27]।
तालिबां[28] रा हक[29] हासिल[30], पासबाने[31] यार॥३॥
मर्दे मर्दां सालिकां[32] सर[33], आशिकां[34] सुलतान[35]।
हजूरी होशियार दादू, इहै गो[36] मैदान॥४॥

कल्याणप्रद उपदेश कर रहे हैं — हे बाबा! मर्दों में मर्द उसी को कहना चाहिए, जिसने पाप-कीचड़ धोकर अपना हृदय पवित्र कर लिया है। सांसारिक बातों को त्याग कर अपने मन को संसार से दूर कर लिया तथा अपने कर्तव्य कर्म को करके निश्चिन्त हो विश्व-पालक परमात्मा से मिला रहता है, वही बुद्धिमानों में शिरोमणि है वा यही बुद्धिमानों का रहस्यमय सिद्धान्त है। अहंकार को मार कर नश्वर पदार्थों की तृष्णा और विषय-वासना को नष्ट कर, बुराई को दूर कर, इज्जत तथा भलाई का विचार रख। जीवितावस्था में ही मृतक समान निर्द्वन्द्व हो कुछ भी परवा न रख कर, समर्थ प्रभु की प्राप्ति रूप काम के लिए संसार के किनारे बैठ। ऐसा करने से ही जिज्ञासुओं को सत्य रूप फल प्राप्त होता है और सच्चा मित्र परमात्मा रक्षक होता है। मर्दों में मर्द सत-वादी हैं। वे ही ईश्वर प्रेमी साधकों के सरदार और बादशाह हैं। प्रभु के निकटवर्ती रहने से ही सावधान रहते हैं। इन्द्रियों को जीतने का युद्ध क्षेत्र यही (मनुष्य) शरीर है। अतः इन्द्रियों को जीत कर प्रभु के पास जाना चाहिए।

१२-ईश्वर चरित। त्रिताल

ये सब चरित तुम्हारे मोहना, मोहे सब ब्रह्मंड खंडा।
मोहे पवन पानी परमेश्वर, सब मुनि मोहे रवि चंदा॥टेक॥
साइर[1] सप्त मोहे धरणी धरा, अष्ट कुली[1] पर्वत मेरु मोहे।
तीन लोक मोहे जग जीवन, सकल भुवन तेरी सेव सोहे॥१॥
शिव विरंचि नारद मुनि मोहे, मोहे सुर सब सकल देवा।
मोहे इन्द्र फणींद्र[2] पुनि मोहे, मुनि मोहे तेरी करत सेवा॥२॥

अगम अगोचर अपार अपरं[3] परा[4], को यहु तेरे चरित न जानैं।
ये शोभा तुमको सोहे सुन्दर, बलि बलि जाऊं दादू न जानैं॥ ३॥

ईश्वर के कार्य की अपारता दिखा रहे है—हे विश्व-विमोहन प्रभु! ये जो भी दिखाई दे रहे है, सब आप ही के काम है। आपने अपने कार्यो से ब्रह्माड के सभी भागो को मोहित किया है। परमेश्वर! आपने वायु, जल, सब मुनि, सूर्य, चन्द्रमा, सप्त समुद्र[1] पृथ्वी को धारण करने वाले शेष, अष्ट जाति[1] के पर्वत, सुमेरु और तीनो लोको को मोहित किया है। हे जगजीवन! सम्पूर्ण भुवन आपकी सेवा मे लगे रहने से ही सुन्दर लगते है। शिव, ब्रह्मा, नारद मुनि, सब सुरगण तथा सम्पूर्ण ग्राम देव, इन्द्र, वासुकी[2] तथा शेष और आपकी सेवा करने वाले भक्त मुनियो को भी आपने मोहित किया है। आपसे परे[3] कोई नही, आप सबसे परे[4] है, वा माया[4] रहित[3] प्रभो! आपके ये चरित्र बुद्धि की गम से परे है, इन्द्रियातीत है और अपार है। इनको कौन जान सकता है ? इन चरित्रो की सुन्दर शोभा आप ही के लिये शोभनीय है। मै तो इनका आदि, अन्त न जानकर आपकी बारबार बलिहारी जाता हू।

९३-गुरु ज्ञान। त्रिताल

ऐसा रे गुरु ज्ञान लखाया, आवै जाइ सो दृष्टि न आया॥टेक॥
मन थिर करूंगा, नाद भरूंगा, राम रमूंगा, रस माता॥ १॥
अधर[1] रहूंगा, करम दहूंगा, एक भजूंगा भगवन्ता॥ २॥
अलख लखूंगा, अकथ कथूंगा, एक मथूंगा, गोविन्दा॥ ३॥
अगह गहूंगा, अकह कहूंगा, अलह लहूंगा, खोजन्ता॥ ४॥
अचर चरूंगा, अजर जरूंगा, अतिर तिरूंगा, आनंदा॥ ५॥
यहु तन तारूं, विषय निवारूं, आप उबारूं, साधंता॥ ६॥
आऊ न जाऊं, उनमनि लाऊं, सहज समाऊ, गुणवंत्ता॥ ७॥
नूर पिछाणूं, तेजहि जाणूं, दादू ज्योतिहि देखन्ता॥ ८॥

गुरु ज्ञान से होने वाले लाभो को बता रहे है—गुरुदेव ने ज्ञान द्वारा ऐसा समझा दिया है कि बारबार जन्मने और मरने वाले प्राणी को दृष्टि मे वह परमात्मा नही आता। मै तो मन को स्थिर करके अनाहत नाद से कर्ण भरूगा अर्थात् सुनूगा। राम-भक्ति-रस मे मस्त होकर राम मे ही रमण करूगा। मायिक[1] गुणो से रहित रहूगा। एकमात्र भगवान् का भजन करते हुए कर्मो को जलाऊगा। मन इन्द्रियो के अविषय परब्रह्म को भजकर आत्मरूप से देखूगा। जो सर्वसाधारण से न कथन किया जाय, ऐसे ब्रह्म-ज्ञान को कथन करूगा। वेद-वाणी से प्राप्त होने योग्य गोविन्द के स्वरूप का मनन करूगा। जो ब्रह्म इन्द्रियादि से नही ग्रहण किया जाता, उसे ही स्वस्वरूप से ग्रहण करूगा व अर्णनीय ब्रह्म का स्वस्वरूप से वर्णन करूगा, जो सर्व साधारण को प्राप्त नही होता, उसी ब्रह्म को साधन द्वारा खोजकर निर्विकल्प समाधि मे प्राप्त करूगा। इस शरीर को पाप-ताप से

तारूगा। इस प्रकार अन्तरग साधनो द्वारा अपना उद्धार करके अचर ब्रह्म मे विचरूगा। नहीं पचाने योग्य अनुभव को पचाऊगा और दुस्तर ससार को तैरकर परमानद प्राप्त करूगा। मै किसी शरीर वा लोक मे नही जाऊ-आऊगा। उन्मनी मुद्रा द्वारा प्राण लय करके, अपने तेज स्वरूप को सम्यक् पहचान कर, आत्म-ज्योति को देखते हुये गुणवान् शरीर के सहित ही सहज-स्वरूप ब्रह्म मे समा जाऊगा।

इस अपने निश्चय के अनुसार ही अन्त समय मे महाराज का स्थूल शरीर भी लय हो गया था। यह कथा दृष्टात सुधा-सिन्धु तरग ९-२३८ मे देखो।

९४-तत्त्व उपदेश। पचम ताल

बंदे हाजिरां हजूर वे, अल्लह आली[1] नूर[2] वे।
आशिकां[3] रा[4] सिदक[5] सावित, तालिवां[6] भरपूर वे ॥ टेक॥
वजूद[7] मे मौजूद है, पाक[8] परवरदिगार[9] वे।
देख ले दीदार को, गैब[10] गोता मार वे॥ १॥
मौजूद मालिक तख्त खालिक[11], आशिकां रा ऐन[12] वे।
गुदर[13] कर दिल मग्ज भीतर, अजब है यहु सैन वे ॥ २॥
अर्श[14] ऊपर आप बैठा, दोस्त दाना[15] यार वे।
खोज कर दिल कब्ज[16] करले, दरूने[17] दीदार वे ॥ ३॥
हुशियार हाजिर चुस्त[18] करदा[19], मीरा मेहरवान वे।
देख ले दर[20] हाल[21] दादू, आप है दीवान[22] वे॥ ४॥

सार-तत्त्व का उपदेश कर रहे है—जो प्रेमी[3] जिज्ञासु[6] भक्त, पूर्ण सत्यता[5] पूर्वक भजन द्वारा भगवान् के सम्मुख रहते है, उनको[4] उस सर्वश्रेष्ठ[1] परमात्मा का रूप[2] सभी मे परिपूर्ण रूप से भासता रहता है। वह विश्व-पालक[9] पवित्र[8] ईश्वर शरीर[7] मे विद्यमान है। उन छिपे हुये प्रभु का स्वरूप तू वृत्ति को अन्तर्मुख[10] करना रूप गोता मार कर निर्विकल्प समाधि मे देख। वे सृष्टि-कर्ता[11] प्रभु हृदय-सिहासन पर विराजमान है और प्रेमी भक्तो को यथार्थ[12] रूप से भासते है। तू मस्तिष्क के भीतर जानकर[13] हृदय मे देख, यह सतो का अद्भुत सकेत है। वे सर्वज्ञ[15], सर्व-सुहृद तेरे मित्र प्रभु हृदयाकाश[14] के ऊपर अष्टदल-कमल मे विराज रहे है। तू अपने मन को अपने अधीन[16] करके हृदय[17] के भीतर, प्रभु का दर्शन कर ले। मन को भजन मे सावधान और दृढ़[18] करके[19] दयालु सरदार प्रभु के सम्मुख रखते हुये प्रभु को देख ले। वे हृदय-दरबार[22] मे[20] प्रति क्षण[21] रहते है।

९५-वस्तु निर्देश। चौताल

निर्मल तत निर्मल तत, निर्मल तत ऐसा।
निर्गुण निज निधि निरजन, जैसा है तैसा॥ टेक॥

उतपति आकार नांहीं, जीव नांहीं काया।
काल नांहीं कर्म नांहीं, रहिता राम राया॥ १ ॥
शीत नांहीं घाम नांहीं, धूप नांहीं छाया।
बाव[1] नांहीं वर्ण नांहीं, मोह नांहीं माया॥ २ ॥
धरणि आकाश अगम, चंद सूर नांही।
रजनी निशि दिवस नाहीं, पवना नही जॉहीं॥ ३ ॥
कृत्रिम[1] घट कला नांहीं, सकल रहित सोई।
दादू निज अगम निगम, दूजा नहीं कोई॥ ४ ॥

इति राम माली गौड़ समाप्त ॥ २ ॥ पद १६ ॥

परब्रह्म रूप सत्य वस्तु बता रहे है—हम मन वचन कर्म से कहते है, वह परब्रह्म तत्त्व ऐसा निर्मल है कि उसकी निर्मलता कही नही जाती। वह निर्गुण है, सतो की मुख्य निजी निधि है, निरजन है और जैसा है वैसा ही है। उसके विषय मे वह इतना है, ऐसा ही है, यह नही कहा जाता। कारण, न उसकी उत्पत्ति है, न आकार है, न प्राण है, न शरीर है। वह विश्व का राजा राम काल-कर्मादि से रहित है। उसमे शीत, उष्ण, धूप, छाया, वायु[1], रग, मोह, माया, पृथ्वी, आकाश नही है। वह मन इन्द्रियातीत होने से अगम है। उस तक चन्द्रमा, सूर्य, अधेरी रात्रि, चादनी रात्रि, दिन और पवनादि नही जा सकते। वह माया कृत बनावटी[1] शरीर रूप नही है, न उसमे कला विभाग है। वह सबसे रहित है। वह वेद से अगम हमारा निज स्वरूप परब्रह्म सत्य है, अन्य कोई भी सत्य नही है।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग माली गौड समाप्त ॥ २ ॥

अथ राग कल्याण ३

(गायन समय सध्या ६ से ९ रात्रि)

९६-उपदेश चेतावनी। त्रिताल

मन मेरे कछु भी चेत गँवार!
पीछे फिर पछतावैगा रे, आवै न दूजी बार ॥टेक॥
काहे रे मन भूलो फिरत है, काया सोच विचार।
जिन पंथो चलना है तुझको, सोई पंथ सँवार ॥ १ ॥
आगै बाट विषम जो मन रे, जैसी खांडे की धार।
दादू दास सांईं सौं सूत[1] कर, कूडे काम निवार ॥ २ ॥

मन के ब्याज से उपदेश द्वारा साधको को सचेत कर रहे है—हे मन! कुछ तो सावधान हो, नही तो पीछे पश्चात्ताप ही करेगा। कारण, अचेत रहने से तू पुन मनुष्य शरीर मे भी न आ सकेगा।

अरे ! तू प्रभु को भूल कर विषयो मे भटक रहा हे। इस शरीर की अनित्यता को ध्यान मे रखते हुये जिन साधन मार्गों से तुझे चलना है, विचार द्वारा उन साधन-पथो को ठीक कर। रे मन ! आगे चलने का जो परमार्थ मार्ग है, वह कामादि द्वारा भयकर हो रहा हे, उसमे चलना खाडे की धार पर चलना है। अत तू बुरे कामो को छोडकर सीधा भजन द्वारा परमात्मा से मेल[४] कर, तो ही तेरा आगे निर्वाह होगा।

९७-परिचय। त्रिताल

जग सौ कहा हमारा, जब देख्या नूर तुम्हारा ॥ टेक॥
परम तेज घर मेरा, सुख सागर माहि बसेरा॥ १ ॥
झिलमिल अति आनन्दा, तहँ पाया परमानन्दा ॥ २ ॥
ज्योति अपार अनन्ता, खेलै फाग वसन्ता॥ ३ ॥
आदि अंत अस्थाना[१], जन दादू सो पहचाना ॥ ४ ॥

इति राग कल्याण समाप्त ॥ ३ ॥ पद २ ॥

ब्रह्म साक्षात्कार होने पर जगत् से निरपेक्षता दिखा रहे है—हे परमेश्वर ! जब हमने आपके स्वरूप का साक्षात्कार कर लिया है, तब हमारा जगत् से क्या काम है ? अब तो हमारा घर परम तेज स्वरूप परब्रह्म ही है। उसी सुख-सागर मे हम बसते है। जहा आत्म-ज्योति के झिलमिलाहट का अति आनद हो रहा है, वहा ही हमे परमानन्द प्राप्त हुआ है। यह आत्म-ज्योति अपार है, इसका अन्त नही दीखता। इसी के पास हमारा वसतोत्सव के समान आनन्द से समय निकल रहा है। अब हमने जो हमारा सृष्टि के आदि और अन्त मे एक देशीय नही है, सर्वत्र व्यापक[१] रहता है, उसी परब्रह्म को पहचान लिया है।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग कल्याण ॥ समाप्त ॥ ३ ॥

अथ राग कान्हड़ा ४

(गायन समय रात्रि १२ से ३)

९८-विरह विनती। वर्ण भिन्नताल

दे दर्शन देखन तेरा, तो जिय जक[१] पावै मेरा ॥ टेक ॥
पीव तू मेरी वेदन जानै, हौं[६] कहा दुराऊ छानै, मेरा तुम देखै मन मानै ॥ १ ॥
पीव करक[२] कलेजे माहीं, सो क्यो ही निकसै नाहीं, पीव पकर हमारी बाँहीं ॥ २ ॥
पीव रोम रोम दुख सालै, इन पीरो पिजर जालै, जीव जाता क्यो ही बालै[३] ॥ ३ ॥
पीव सेज अकेली मेरी, मुझ आरति[४] मिलणै तेरी, धन[५] दादू वारी फेरी ॥ ४ ॥

९८-१०१ मे विरह पूर्वक दर्शनार्थ विनय कर रहे है—प्रभो ! मुझे आपके दर्शन करने दीजिये तब मेरा मन शाति[१] प्राप्त कर सकेगा। स्वामिन् ! आप मेरी व्यथा को तो जानते ही है, मैं[६]

उसे आपसे छिपाऊ तो कहा छिपा सकता हूँ ? आप तो सर्वत्र व्यापक है। आपको देखने पर ही मेरा मन सन्तोष मानेगा। प्रभो ! मेरे कलेजे मे रुक-रुक कर बारम्बार पीडा[२] हो रही है। वह आपके दर्शन किये बिना किसी प्रकार भी दूर न होगी। अत. प्रभो ! मेरी वृत्ति रूप भुजा पकडिये। स्वामिन् ! मेरे रोम २ मे व्यथा होकर मुझे व्यथित कर रही है। इन रोम २ की पीडाओ ने मेरा शरीर-पिजरा जलाना आरम्भ कर रक्खा है। मेरे प्राण जा रहे है, किसी भी प्रकार से रोकिये[३]। स्वामिन् ! मेरी हृदय-शय्या आपके विना खाली पडी है, आपसे मिलने के लिये मुझे महान् वियोग-व्यथा[४] हो रही है। मै सखी[५] आपकी बलिहारी जाती हू, दर्शन देने की कृपा करिये।

९९-वर्ण भिन्न ताल

आव सलौने देखन दे रे, बलि बलि जाऊँ बलिहारी तेरे ॥ टेक ॥
आव पिया तूं सेज हमारी, निशदिन देखूं बाट तुम्हारी ॥ १ ॥
सब गुण तेरे अवगुण मेरे, पीव हमारी आह[१] न ले रे ॥ २ ॥
सब गुणवन्ता साहिब मेरा, लाड[२] गहेला दादू केरा[३] ॥ ३ ॥

हे मनोहर प्रभो ! आइये मुझे, आपके दर्शन करने दीजिये। मै मन-वचन, कर्म से आपकी बलिहारी जाता हू। प्रभो ! आप हमारी हृदय शय्या पर पधारिये, मै रात-दिन आपका मार्ग देख रहा हू। आपने तो सब प्रकार से हमारे ऊपर उपकार रूप गुण ही गुण किये है। मेरे द्वारा तो अवगुण ही हुये है। प्रभो ! क्या इसीलिए आप हमारी दु खभरी पुकार[१] भी नही सुनते हो ? हे मेरे सर्वगुण-सम्पन्न स्वामिन् ! अब प्यार[२] पूर्वक मुझ भक्त का[३] हाथ अवश्य ग्रहण करिये।

१००-पंचम ताल

आव पियारे मींत हमारे, निश दिन देखूं पाँव तुम्हारे ॥ टेक ॥
सेज हमारी पीव सँवारी, दासी तुम्हारी सो धन[१] वारी ॥ १ ॥
जे तुझ पाऊं अंग लगाऊं, क्यों समझाऊं वारणे जाऊं ॥ २ ॥
पंथ निहारूं बाट सँवारूं, दादू तारूं तन मन वारूं ॥ ३ ॥

हे हमारे प्यारे मित्र ! हमारे पधारिये। मै रात-दिन आपके स्वरूप भूत चरणो का दर्शन करूगी। स्वामिन् ! मैंने अपनी हृदय-शय्या दैवी गुणो से सजाली है और मै आपकी पत्नी[१] रूप मे दासी हूँ, सो अपनी वृत्ति रूप सखी[१] को आप कर निछावर करती हूँ। यदि मै आपको प्राप्त कर लूगी तब तो अपने को आपके स्वरूप मे अद्वैत रूप से लगा दूगी, किन्तु आप तो आते ही नही। आपको कैसे समझाऊ ? केवल आपकी बलिहारी जाती हूँ। आपकी प्राप्ति के साधन रूप मार्ग को ठीक करते हुये आपका पंथ देख रही हूँ। आप पर तन-मन निछावर करके अपने को ससार से तारना चाहती हूँ, कृपा करके दर्शन दीजिये।

१०१- (पंजाबी भाषा) पंचम ताल

आ वे सजणां आव, शिर पर धर पांव।
जांनी[१] मैंडा[२] जिन्द[३] असाडे[४], तूं रावैंदा[५] राव वे, सजणां आव ॥ टेक ॥

इत्था[८] उत्थां[९] जित्थां[८] कित्थां[९], हू जीवाँ तो[१०] नाल[११] वे।
मीयाँ[१२] मैंडा आव असाडे, तूं लालो शिर लाल[१३] वे, सजणा आव ॥ १ ॥
तन भी डेवाँ[१४] मन भी डेवाँ, डेवाँ पिंड पराण वे।
सच्चा सांई मिल, इत्थांई, जिन्द करौं कुरवाण वे, सजणां आव ॥ २ ॥
तू पाकों[१५] शिर पाक वे सजणां, तू खूबों[१६] शिर खूब।
दादू भावे सजणा आवे, तूं मिट्ठा महबूब[१७] वे, सजणां आव ॥ ३ ॥

हे सज्जन ! आइये, आइये, मेरे शिर पर अपना कृपा-पैर रखिये। आपही मेरे सच्चे मित्र है। हम वियोगी-जनो के आप ही जीवन और राजाओं के राजा है इस, लोक मे वा परलोक मे जहां कहीं भी हम रहे किन्तु आपके साथ रह कर ही जीवित रह सकेंगे। हे मेरे स्वामिन् पधारिये। आप ही हमारे प्रियतमों के भी शिरोमणि प्रियतम है। हम अपना इन्द्रिय रूप तन, मन, स्थूल शरीर और प्राण भी आपके समर्पण करते है। हे सच्चे स्वामिन् ! इस वर्तमान शरीर मे ही मिलिये। हम आप पर अपना जीवन निछावर करते है। आप ही पवित्रों के शिरोमणि पवित्र, श्रेष्ठो के शिरोमणि श्रेष्ठ है। हमको प्रिय लगते है। आप अति मधुर और हमारे प्रेम-पात्र है। अत हे सज्जन ! अवश्य शीघ्र ही पधारिये।

१०२-विनती, राज विद्याधर ताल

दयाल अपने चरणनि मेरा चित्त लगावहु, नीकैं ही करी ॥ टेक ॥
नख शिख सुरति शरीर, तूं नांव रहों भरी ॥ १ ॥
मै अजाण मतिहींण, जम की पाश तै रहत हूं डरी ॥ २ ॥
सवै दोष दादू के दूर कर, तुम ही रहो हरी ॥ ३ ॥

नित्य प्रभु परायण रहने के लिये प्रभु से विनय कर रहे है—दयालो ! बहुत अच्छी प्रकार दया करके मेरा चित्त निरन्तर अपने चरणो मे ही लगाओ। नख से शिखा पर्यन्त शरीर और मेरी वृत्ति मे आप अपना नाम परिपूर्ण करके मेरे हृदय मे ही रहो। आपको कैसा साधन प्रिय है, यह मै नहीं जानता। कारण, पारमार्थिक बुद्धि से रहित हू और निरन्तर यम की फाँसी से डरता रहता हू। हे प्रभो ! अब तो मेरे सब दोष दूर करके मेरे हृदय मे निरन्तर एक मात्र आपही निवास करो।

१०३-तर्क चेतावनी। राज विद्याधर ताल

मन मति हींण[१] धरै।
मूरख मन कछु समझत नाहीं, ऐसे जाइ जरै ॥ टेक ॥
नांव विसार अवर चित राखै, कूड़े काज करै।
सेवा हरि की मनहुँ न आणै, मूरख बहुरि मरै ॥ १ ॥
नाव संगम कर लीजै प्राणी, जम तै कहा डरै।
दादू रे जे राम सँभारै, सागर तीर तिरै ॥ २ ॥

तर्क-पूर्वक सावधान कर रहे है—मूर्ख-मन के मानव कुछ भी नही समझते, मन में नीच' बुद्धि धारण करके व्यर्थ ही विषयो मे जाकर चिन्ता द्वारा जलते है। भगवान् के नाम को भूलकर अन्य नीच भावना ही चित्त मे रखते है और बुरे काम करते है। मन से भगवान् की भक्ति नही करते, इसीलिये मूर्ख लोग बारम्बार मरते है। प्राणी ! यम से क्यो डरता है ? भगवन्नाम-चिन्तन द्वारा भगवान् का साथ करले, फिर यम तेरा कुछ न बिगाड सकेगा। अरे ! यदि तू राम का स्मरण करेगा तो ससार-सागर को तैर कर, उसके अगले तीर पर प्रभु को जा मिलेगा।

१०४ सन्त सहाय रक्षा। राजमृगाक ताल

पीव तैं अपने काज सँवारे।
कोई दुष्ट दीन को मारन, सोई गह तैं मारे ॥टेक॥
मेरु समान ताप तन व्यापै, सहजैं ही सो टारे।
संतन को सुखदाई माधो, बिन पावक फँद जारे ॥ १ ॥
तुम तैं होइ सबै विधि समर्थ, आगम सबै विचारे।
संत उबार दुष्ट दुख दीन्हा, अंध कूप में डारे ॥ २ ॥
ऐसा है शिर खसम हमारे, तुम जीते खल हारे।
दादू सौं ऐसे निर्बहिये, प्रेम प्रीति पिव प्यारे ॥ ३ ॥

भगवान् सदा सन्तो के सहायक होकर उनकी रक्षा करते है, यह कह रहे है—प्रभो ! आप अपने ससार रक्षा सम्बन्धी कार्य अच्छी प्रकार ही करते रहते है। यदि कोई दुष्ट किसी प्राणी को मारने आता है तो आप उसे पकड कर मार देते है। यदि मेरु पर्वत के समान भारी दु ख भी सन्त पर आ जाये तो उसे भी आप अनायास ही हटा देते है। माधव ! आप सन्तो को सदा ही सुख देने वाले है। आपने बिना अग्नि भी सन्तो को फँसाने वाले फँदे जलाये है। समर्थ ! आपसे सब प्रकार अच्छा ही होता है। आपके तो आगे आने वाले सभी कार्य पहले ही विचारे हुये रहते है। आपने सन्त की रक्षा की है और दुष्टो को अन्ध कूप मे डालकर दु ख दिया है। हमारे शिर पर ऐसे समर्थ स्वामी है। फिर आप तो सदा ही जीतते रहे है और दुष्ट' आप से हारते रहे है। हे मेरे प्यारे प्रभो ! मेरे प्रेम की ओर देखते हुये आप प्रीति पूर्वक मेरे साथ सदा ऐसे ही निभाना।

१०५-माया। मल्लिका मोद ताल

काहू तेरा मरम न जाना रे, सब भये दीवाना[1] रे ॥ टेक ॥
माया के रस राते माते[2], जगत भुलाना रे।
को काहू का कह्या न मानै, भये अयाना रे ॥ १ ॥
माया मोहे मुदित मगन, खान खाना रे।
विषिया रस अरस परस, साच ठाना रे ॥ २ ॥

आदि अत जीव जन्त, किया पयाना[३] रे ।
दादू सब भरम भूले, देखि दाना[४] रे ॥ ३ ॥

सासारिक प्राणी मायिक सुखो मे फँस कर परमात्मा को भूल रहे है, यह कहते है—प्रभो ! आपके रहस्य मय स्वरूप को किसी भी ससारी प्राणी ने नहीं जाना है। सब जगत् के प्राणी मायिक विषय-रस की अनुरक्ति से मस्त[१] पागल[२] हुये आपको भूल रहे है और ऐसे अनजान हो रहे है—कोई भी किसी भी भले मानव का कहना नही मानते। माया से मोहित विषय-रस मे मग्न प्रसन्नता से अपने को सरदारो का सरदार मान रहे है। विषय-रस से अरस-परस मिलकर विषयानन्द को ही सच्चा सुख मान लिया है ओर जन्म से मरण पर्यन्त जीव जन्तुओ ने विषयो की ओर ही गमन[३] किया है। सब बल-बुद्धिशाली[४] जीव विषयाहार[४] को देखकर भ्रम-वश भगवान् को भूल रहे है।

१०६-अनन्य-शरण। मल्लिका मोद ताल

तू हीं तूं गुरुदेव हमारा, सब कुछ मेरे नाम तुम्हारा ॥ टेक ॥
तुम हीं पूजा तुम हीं सेवा, तुम हीं पाती तुम हीं देवा ॥ १ ॥
योग यज्ञ तूं साधन जापं, तुम हीं मेरे आपै आपं ॥ २ ॥
तप तीरथ तू व्रत स्नाना, तुम हीं ज्ञाना तुम हीं ध्याना ॥ ३ ॥
वेद भेद तू पाठ पुराणा, दादू के तुम पिंड पराणा ॥ ४ ॥

१०६-१०७ मे अपनी अनन्यता दिखा रहे है—प्रभो ! हम मन वचन से कह रहे है-आप ही हमारे गुरुदेव है। आपका नाम ही मेरा सर्वस्व है। आपही पूजा, सेवा, तुलसी-पत्र और इष्ट-देव है। योग, यज्ञादिक साधन और जाप भी मेरे आप स्वय ही है। आपही तप, तीर्थ, व्रत, स्नान, ज्ञान, ध्यान, वेद का रहस्य, पुराण-पाठ है और आप ही मेरे शरीर के प्राण है।

१०७ गजताल

तू ही तूं आधार हमारे, सेवक सुत हम राम तुम्हारे ॥ टेक ॥
माइ बाप तू साहिब मेरा, भक्ति-हीण मैं सेवक तेरा ॥ १ ॥
मात पिता तूं बान्धव भाई, तुम हीं मेरे सजन सहाई ॥ २ ॥
तुम हीं तात तुम हीं मात, तुम हीं जातं तुम हीं न्यातं ॥ ३ ॥
कुल कुटुम्ब तू सब परिवारा, दादू का तूं तारणहारा ॥ ४ ॥

हे राम ! हम मन वचन से कहते है—आपही हमारे आश्रय है और हम आपके सेवक तथा सुत है। आप ही हमारे माता-पिता और स्वामी है और मै आपका भक्तिहीन सेवक हू। आप ही हमारे जन्म-जन्मान्तरो के माता, पिता, बान्धव, भ्राता, मित्र और सहायक है। आप ही हमारे पारमार्थिक माता-पिता है। आप ही मेरे जाति, न्याति, कुल, कुटुम्ब, परिवार आदि सब कुछ है, मेरा उद्धार करने वाले भी आप ही है।

१०८-परिचय विनती । भंगताल

नूर नैन भर देखन दीजै, अमी महारस भर भर पीजै ॥ टेक॥
अमृत धारा वार न पारा, निर्मल सारा तेज तुम्हारा॥ १ ॥
अजर जरंता अमी झरंता, तार अनन्ता बहु गुणवन्ता ॥ २ ॥
झिलमिल सांई ज्योति गुसांईं, दादू मॉहीं नूर रहांई ॥ ३ ॥

निरन्तर साक्षात्कारार्थ विनय कर रहे है—प्रभो ! अपना रूप हमे ज्ञान-विचार नेत्रो से इच्छा भरके देखने दीजिये। हम स्वरूपामृत रूप महारस का इच्छा भर २ कर पान करेगे। आपके निर्मल पूर्ण तेज स्वरूप अमृत की धारा का वार-पार नही है। आप न पचने वाले को भी पचाने वाले है। भक्तो के लिये दर्शनामृत टपकाने वाले है। अनन्तो का उद्धार करने वाले है। अपार गुणो वाले है। प्रभो ! आपकी स्वरूप ज्योति झिलमिल रूप से मेरे अन्दर ही प्रकाशित हो रही है।

१०९-परिचय । भंगताल

ऐंन[१] एक सो मीठा लागै, ज्योति स्वरूपी ठाढा आगै ॥ टेक॥
झिलमिल करणां, अजरा जरणा, नीझर झरणां, तहँ मन धरणां ॥ १ ॥
निज निरधारं, निर्मल सारं, तेज अपारं, प्राण अधारं ॥ २ ॥
अगहा गहणां, अकहा कहणां, अलहा लहणां, तहँ मिल रहणां॥ ३ ॥
निरसंध नूरं, सब भरपूरं, सदा हजूरं, दादू सूरं॥ ४ ॥

साक्षात्कार किये स्वरूप का परिचय दे रहे है—जो यथार्थ[१] ज्योति-स्वरूप अद्वैत ब्रह्म हमारे ज्ञान-विचार नेत्रो के सामने खडे है, वे ही हमे अति प्रिय लगते है। जिनका प्रकाश झिलमिलाहट कर रहा है, जो अन्य से न पचने वाले ससार को पचाने वाले है, परमानन्द-रस के गिराने वाले निर्झर है, निज-स्वरूप है, निराधार, निर्मल, विश्व के सार, प्राणाधार, अपार तेज-स्वरूप है, उन्हीं परब्रह्म के स्वरूप मे हमे मन रखना है। जो ग्रहण करने मे नही आते, उन्ही ब्रह्म को व्यापक रूप से ग्रहण करना, जिनका पूर्ण रूप से कथन नही होता, उन्ही ब्रह्म के विषय मे कहना, जो अन्य रूप से प्राप्त नही होते, उन्ही ब्रह्म को स्वस्वरूप रूप से प्राप्त करना है। जिनका स्वरूप सधि-रहित सारे विश्व मे परिपूर्ण है, सूर्यवत् सदा ज्ञान-विचार-नेत्रो से उसमे रहना है।

११०-निस्पृहता । प्रतिताल

तो काहे की परवाह हमारे, राते माते नाम तुम्हारे ॥ टेक॥
झिलमिल झिलमिल तेज तुम्हारा, परगट खेलै प्राण हमारा ॥ १ ॥
नूर तुम्हारा नैनों मांहीं, तन मन लागा छूटै नांहीं ॥ २ ॥
सुख का सागर वार न पारा, अमी महारस पीवनहारा ॥ ३ ॥
प्रेम मगन मतवाला माता, रंग तुम्हारे दादू राता ॥ ४ ॥

इति राग कान्हडा समाप्त ॥ ४ ॥ पद १३ ॥

अपनी निर्लोभता दिखा रहे है—प्रभो ! जब हम आपके नाम-चिन्तन मे अनुरक्त होकर मस्त है, तब हमे किसकी परवाह है ? झिलमिल २ करता हुआ आपका स्वरूप प्रकाशमय है, उसी से हमारी आत्मा प्रत्यक्ष मे दर्शनानन्द रूप खेल खेल रही है। आपका स्वरूप हमारे ज्ञान-विचार-नेत्रो मे प्रतिक्षण रहता है और हमारे तन-मन उसी मे लगे है,वे कभी भी अलग नही होते। आप वार-पार रहित सुख-सिन्धु है। मै आपके स्वरूपामृत-महारस का पान करने वाला हूँ और आपके प्रेम मे निमग्न हुआ मतवाले के समान मस्त रहता हुआ आपके चिन्तन-रग मे अनुरक्त रहता हूँ। मुझे मायिक सुखो का किंचित् भी लोभ नही है।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग कान्हडा समाप्त ॥ ४ ॥

अथ राग अडाणा ५

(गायन समय रात्रि १२ से ३)

१११-समर्थ गुरु महिमा। त्रिताल

भाई रे, ऐसा सतगुरु कहिये, भक्ति मुक्ति फल लहिये ॥टेक॥
अविचल अमर अविनाशी, अठ सिधि नव निधि दासी ॥ १ ॥
ऐसा सतगुरु राया, चार पदारथ पाया ॥ २ ॥
अमी महारस माता, अमर अभय पद दाता ॥ ३ ॥
सतगुरु त्रिभुवन तारै, दादू पार उतारै ॥ ४ ॥

समर्थ सद्गुरु की महिमा कह रहे है—अरे भाई ! ऐसा व्यक्ति ही सद्गुरु कहा जाता है-जिससे साधक भक्ति और मुक्ति को प्राप्त कर सके और जो निश्चल, अमर, अविनाशी ब्रह्म मे अभेद निष्ठा रखता हो, जिसकी सेवा मे अष्ट-सिद्धि और नव-निधि दासीवत् रहती हो, जिसने अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारो पदार्थ प्राप्त कर लिये हो, ऐसा महानुभाव ही श्रेष्ठ सद्गुरु कहा जाता है। जो अद्वैतामृत महारस मे मस्त और अमर, अभय पद को प्रदान करने वाला होता है, वही सद्गुरु वैराग्य-पूर्ण उपदेश द्वारा त्रिभुवन के विषयो की आशा से बचा कर ससार-सिन्धु से पार करता है। अष्ट सिद्धि और नव निधि के नाम अग २-१०४ मे देखो।

११२-गुरु मुख कसौटी। ललित ताल।

भाई रे, भान घड़ै गुरु मेरा, मै सेवग उस केरा॥टेक॥
कचन कर ले काया, घड़ घड़ घाट निपाया॥ १ ॥
मुख दर्पण माहि दिखावै, पीव प्रकट आन मिलावै॥ २ ॥
सतगुरु साचा धोवै, तो बहुरि न मैला होवै॥ ३ ॥
तन मन फेरि सँवारै, दादू कर गहि तारै॥ ४ ॥

गुरु-मुख से निकले शब्द रूप कसौटी और उसका लाभ बता रहे है—अरे भाई ! मेरे सद्गुरु काम-क्रोधादि आसुर गुणो को नष्ट करके, वैराग्यादि दैवी गुणो से युक्त करके मेरा अन्त करण बनाते है, अत मै उनका सेवक हूँ। वे शरीर को सुवर्ण के समान निर्दोष करके अति उत्तम बना देते है। उन्होंने हमारे तन-मनादि को उत्तम बना-२ कर प्रभु के साक्षात्कार करने योग्य अन्त करण तैयार किया है। वे ज्ञान दर्पण द्वारा अपना आत्म-स्वरूप मुख दिखाते है और अभेदावस्था मे लाकर प्रत्यक्ष मे परब्रह्म को मिला देते है। सच्चा सद्गुरु यदि साधक के अन्त.करण को ज्ञान-जल द्वारा धो डाले, तो वह पुन. कभी भी अज्ञान-मैल से मैला नही हो सकता। सच्चे सद्गुरु विषयो से तन-मन को हटा, परमात्मा की ओर फेर कर सुधारते है और साधक का वृत्ति रूप हाथ पकड़ कर अर्थात् वृत्ति को ब्रह्माकार करके ससार से पार कर देते है।

११३-गुरु उपदेश। (गुजराती) ललित ताल।

भाई रे, तेन्है रूडौ[1] थाये[2], जे गुरुमुख मारग जाये ॥ टेक॥
कुसंगति परिहरिये, सत्संगति अणसरिये ॥ १ ॥
काम क्रोध नहिं आणें, वाणी ब्रह्म बखाणें ॥ २ ॥
विषिया तैं मन वारे, ते आपणपो तारे ॥ ३ ॥
विष मूकी[3] अमृत लीधो, दादू रूडौ[1] कीधो ॥ ४ ॥

गुरुमुख उपदेश की विशेषता बता रहे है—हे भाई ! तुम्हारे लिये बहुत सुन्दर[1] हुआ[2] कि तुम गुरु की आज्ञानुसार साधन मार्ग पर चल रहे हो और कुसगति को त्याग कर सत्सग मे रहते हुये काम-क्रोधादि को हृदय मे स्थान न देकर, ब्रह्म सम्बन्धी वाणी बोलते हो। जो विषयो से मन को दूर रखते है, वे अपने को ससार से तार लेते है। तुमने विषय-विष को त्याग[3] कर भगवन्नामामृत का पान कर लिया है, यह बहुत अच्छा[1] किया है।

११४-विनती। पंचम ताल

बाबा ! मन अपराधी मेरा, कह्या न मानै तेरा ॥ टेक॥
माया मोह मद माता, कनक कामिनी राता ॥ १ ॥
काम क्रोध अहंकारा, भावै विषय विकारा ॥ २ ॥
काल मीच[1] नहिं सूझै, आतम राम न बूझै ॥ ३ ॥
सम्रथ सिरजनहारा, दादू करै पुकारा ॥ ४ ॥

मन-सुधारार्थ प्रभु से विनय कर रहे है—हे पितामह परमेश्वर ! यह मेरा मन बडा अपराधी है। मायिक मोह-मद से मतवाला हो, कनक-कामिनी मे अनुरक्त रहता है। इसे काम, क्रोध, अहकार और विषय-विकार ही प्रिय लगते है। जाता हुआ आयु का समय और आने वाली मृत्यु[1] इसे नही दीखती। यह अपने आत्म-स्वरूप राम को समझने का प्रयत्न नही करता। अत हे समर्थ सृष्टि-कर्ता परमेश्वर ! मै आपके आगे प्रार्थना करता हू, आप इसे ठीक करे।

११५-चेतावनी । पचमताल

भाई रे, यों विनशै संसारा, काम क्रोध अहकारा ॥ टेक॥
लोभ मोह मै मेरा, मद मत्सर बहुतेरा ॥ १ ॥
आपा पर अभिमाना, केता गर्व गुमाना ॥ २ ॥
तीन तिमिर नहि जाहीं, पचो के गुण माहीं॥ ३ ॥
आतमराम न जाना, दादू जगत दिवाना ॥ ४ ॥

तर्क पूर्वक सावधान कर रहे है—अरे भाई ! ससारी प्राणी इस प्रकार नष्ट होते है—काम, क्रोध, अहकार, लोभ, मोह, मै और मेरापन, मद, अति मात्रा मे मत्सर, अपने पराये का अभिमान, गुण-कलादि कितने ही प्रकार के गर्व, बल आदि का घमण्ड हृदय मे रखते है और पच ज्ञानेन्द्रियो के विषयो मे अनुरक्त रहते है। इससे मूला, तूला और लेशा अविद्या रूप तीन प्रकार का अधकार नष्ट नही होता और त्रिविध अधकार के न नष्ट होने से अपने आत्म-स्वरूप राम को न जानकर मायिक सुखो मे पागल हुये रहते है, इसलिये बारम्बार मृत्यु को प्राप्त होते है।

११६-ज्ञान । रूपक ताल

भाई रे, तब क्या कथसि गियाना, जब दूसर नाहीं आना ॥ टेक॥
जब तत्त्वहि तत्त्व समाना, जँहँ का तहँ ले साना ॥ १ ॥
जहाँ का तहाँ मिलावा, ज्यो था त्यों होइ आवा ॥ २ ॥
सधे सधि मिलाई, जहाँ तहाँ थिति पाई ॥ ३ ॥
सब अग सब ही ठाईं, दादू दूसर नांहीं ॥ ४ ॥

इति राग अडाणा समाप्त ॥ ५ ॥ पद ६ ॥

अद्वैतावस्था मे ज्ञानोपदेश देने का अवकाश नही रहता, यह कह रहे है—हे भाई ! जब हृदय मे स्वस्वरूप से भिन्न भावना आती ही नही, तब उस अद्वैतावस्था को प्राप्त ज्ञानी क्या ज्ञान का कथन कर सकेगा ? आत्मा जिस ब्रह्म का स्वरूप था, उसे विचार द्वारा सासारिक भावनाओ से ऊपर लेकर ब्रह्म मे मिला दिया। (आत्म-तत्व ब्रह्म-तत्व मे समा गया, ब्रह्म ज्ञान से जिस ब्रह्म का स्वरूपाश आत्मा था, उसी मे मिला दिया), पूर्व मे जैसा था वैसा ही निर्विकार हो गया। जो भेद रूप सधि भास रही थी, वह अद्वैत रूप से मिल गई। जहा की तहा स्थिति प्राप्त कर ली। जब सब ही अपने स्वरूप है और सब ही अपने स्थान है, तब कुछ भी कहना नही बनता।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग अडाणा समाप्त ॥ ५ ॥

अथ राग केदार ६

(गायन समय सध्या ६ से ९ रात्रि)

११७-विनती । (गुजराती भाषा) दीपचन्दी ताल

मारा[१०] नाथ जी, तारो[१] नाम लेवाड़[२] रे।
राम रतन हृदया मां राखे, मारा वाहला जी, विषया थी वारे[३] ॥ टेक॥

वाहला वाणी ने मन मांहे मारे, चितवन तारो चित राखे ।
श्रवण नेत्र आ[४] इन्द्री ना गुण, मारा मांहेला मल ते नाखे ॥ १ ॥
वाहला जीवाडे[५] तो राम रमाडे[६], मनें जीव्यानो[७] फल ये आपे[८] ।
तारा नाम बिना हूं ज्यां ज्यां बंध्यो, जन दादू ना बंधन कापे[९] ॥ २ ॥

भगवत् परायणतार्थ भगवान् से विनय कर रहे है—मेरे[१०] नाथ जी ! आप मुझे तुम्हारा[१] नाम चिन्तन कराइये[२] । मेरा मन राम नाम-रत्न को हृदय मे रख सके, ऐसी कृपा कीजिये । हे मेरे प्रिय प्रभुजी ! विषयो से मुझे बचाइये[३] । हे प्रिय ! मेरी वाणी से आपका ही कथन हो, मन से आपका ही मनन हो, चित्त भी निरन्तर आपका ही चिन्तन करता रहे और इन[४] श्रवण नेत्रादि इन्द्रियो के विषयो की आसक्ति तथा मेरे भीतर के आसुर गुण और पाप भावना रूप मल को त्याग दे, ऐसी कृपा कीजिये । हे प्रिय ! यदि मुझे जीवित[५] रखते हो, तो हे राम ! अपने स्वरूप मे रमण[६] करने दीजिये । मेरे जीने[७] का यही फल मुझे प्राप्त[८] हो । आपके नाम बिना मै जहा-जहा बधा हू अर्थात् जिस-जिस मे मेरा राग है, वह राग-बन्धन मुझ भक्त का काट[९] दीजिये ।

११८-विरह विनती । उत्सव ताल

अरे मेरे सदा संगाती, रे राम, कारण तेरे ॥ टेक ॥
कंथा पहरूं, भस्म लगाऊ, वैरागिनि है ढूंढूं, रे राम ॥ १ ॥
गिरिवर वासा, रहूं उदासा, चढ शिर मेरु पुकारूं, रे राम ॥ २ ॥
यहु तन जालूं, यहु मन गालूं, करवत शीश चढाऊं, रे राम ॥ ३ ॥
शीश उतारूं, तुम पर वारूं, दादू बलि बलि जाऊं, रे राम ॥ ४ ॥

११८-११९ मे विरह पूर्वक विनय कर रहे है—हे मेरे सदा साथ रहने वाले राम ! मै आपके साक्षात्कारार्थ, यदि आपको रुचिकर हो तो, गुदडी पहन सकता हू, भस्म लगा सकता हू, इस प्रकार विरक्त होकर आपको खोज सकता हू । सबसे उपराम होकर विशाल पर्वत पर रह सकता हू, सुमेरु पर्वत पर चढकर पुकार २ कर आपसे प्रार्थना कर सकता हू, यह शरीर अग्नि मे जला सकता हू, हिमालय मे गला सकता हू, शिर पर करवत चढाकर शरीर को चीर सकता हूँ, शिर को काट कर आप पर निछावर कर सकता हू । हे राम ! मै बारम्बार आपकी बलिहारी जाता हूँ । कहिये, आपको क्या प्रिय है ? वही मै करूगा ।

११९-गजताल

अरे मेरा अमर उपावणहार, रे खालिक[१], आशिक[२] तेरा ॥ टेक ॥
तुम सौ राता, तुम सौ माता, तुम सौं लागा रंग, रे खालिक ॥ १ ॥
तुम सौं खेला, तुम सौं मेला, तुम सौं प्रेम स्नेह, रे खालिक ॥ २ ॥
तुम सौं लेणा, तुम सौं देणा, तुम हीं सौं रत होइ, रे खालिक ॥ ३ ॥
खालिक मेरा, आशिक तेरा, दादू अनत[३] न जाइ, रे खालिक ॥ ४ ॥

हे सृष्टि[1] कर्ता ! आप अमर और मुझे उत्पन्न करने वाले है, मै आप मे प्रेम[2] करने वाला हू, आपमे अनुरक्त हू। आपके प्रेम मे मस्त हू, आपके चिन्तन-रग मे लगा हूँ। आपसे ही खेलता हू, आप से ही मेरा प्रेम पूर्वक मेल तथा सच्चा स्नेह है। मुझे आपको ही अपना सर्वस्व देकर, आप का स्वरूप प्राप्त करना है। इसीलिये मै आप मे ही अनुरक्त हो रहा हूँ। हे मेरे सृष्टि कर्ता स्वामिन् ! मै आपका प्रेमी भक्त हूँ, अन्यत्र[3] अन्य के पास नहीं जा मकता।

१२०-स्तुति । गजताल

अरे मेरे समर्थ साहिव रे अल्लह, नूर तुम्हारा ॥ टेक ॥
सव दिशि देवै, सव दिशि लेवै, सव दिशि वार न पार, रे अल्लह ॥ १ ॥
सब दिशि कर्ता, सव दिशि हर्ता, सव दिशि तारणहार, रे अल्लह ॥ २ ॥
सव दिशि वक्ता, सव दिशि श्रोता, सव दिशि देखणहार, रे अल्लह ॥ ३ ॥
तू है तैसा, कहिये ऐसा, दादू आनन्द होइ, रे अल्लह ॥ ४ ॥

परमेश्वर की स्तुति कर रहे है—हे मेरे समर्थ स्वामिन् ! परमेश्वर ! आपका स्वरूप ही मेरा आधार है। आप सब दिशाओ मे सबको अन्नादि देते है और भक्तो की भेट लेते है। आप सब दिशाओ मे परिपूर्ण है आपका वार-पार नही है। सब दिशाओ मे आप करने योग्य कार्य करते है, दुष्टो के प्राण हरते है, सज्जनो की रक्षा करते है। सब दिशाओ मे ही आप, अपने भक्तो को अपने वचन सुनाते है और उनकी प्रार्थना सुनते है। आप सभी दिशाओ मे सब कुछ देखते है। प्रभो ! वास्तव मे आप जैसे है, वैसा ही अपना स्वरूप कह कर हमको समझाइये, ठीक समझने पर हमे परमानन्द प्राप्त होगा।

१२१-(गुजराती) विरह विलाप । मल्लिकामोद ताल

हाल असां[1] जो लालडे[2], तो के सब मालूमडे ॥ टेक ॥
मंझे खामा[3] मझि बराला[4], मझे लगी भाहिड़े[5] ।
मंझे मेडी[6] मुच[7] थईला[8], कै[9] दरि[10] करिया[11] धाहडे[12] ॥ १ ॥
विरह कसाई मुं[13] गरेला[14], मंझे बढै[15] माइहड़े[16] ।
सीखो करे कवाब[17] जीला[18], इये[19] दादू जे[21] ह्याहडे[20] ॥ २ ॥

विरह विलाप दिखा रहे है—हे प्रियतम[2] ! हमारी[1] जो दशा है, वह सब आपको ज्ञात है। मेरे भीतर ही भीतर जलन[3] लग रही हे, मेरे भीतर विरहाग्नि[5] प्रज्वलित[4] हो रही है। उससे मै विशेष करके जल रहा हूँ। हृदय के भीतर मिल[6] कर आप से एक[7] हुये[8] बिना मुझे शाति नही मिलेगी। मै आपको छोड कर किस[9] के द्वार[10] पर पुकार[12] करू[11] हाय ! माँ[16] ! यह विरह-कसाई मेरे[13] सुख रूप गले[14] को मेरे भीतर काट[15] रहा है और जैसे लोह-शलाकाओ से मास[17] खड को भूनते[18] है, ऐसे[19] ही मेरे हृदय[20] की[21] दशा हो रही है।

१२२-विनती । मल्लिकामोद ताल

पिवजी सेती नेह नवेला, अति मीठा मोहि भावै रे ।
निशदिन देखूं बाट तुम्हारी, कब मेरे घर आवै रे ॥टेक॥
आइ बनी है, साहिब सेती, तिस बिन तिल क्यों जावै रे ।
दासी को दर्शन हरि दीजै, अब क्यों आप छिपावै रे ॥ १ ॥
तिल तिल देखूं साहिब मेरा, त्यों त्यो आनँद अग न मावै रे ।
दादू ऊपर दया (मया) करि, कब, नैनहुं नैन मिलावै रे ॥ २ ॥

१२२-१२३ मे दर्शनार्थ प्रभु से विनय कर रहे है—प्रभुजी से मेरा प्रेम नित्य नृतन बढता जा रहा है, वे मुझे अति मधुर और प्रिय लगते है। हे प्रभो ! मै रात्रि दिन आपका मार्ग देख रही हू और विचार कर रही हू-प्रभु मेरे हृदय घर मे कब पधारेगे ? अब तो प्रभु के साथ ऐसी प्रीति हो गई है कि उनके बिना एक क्षण भी कैसे व्यतीत होगा ? हे हरे ! दासी को दर्शन दो, अब अपने को क्यो छिपा रहे हो ? ज्यो २ मै अपने स्वामी को प्रति क्षण देखूगी, त्यो २ ही दर्शनानन्द मेरे अन्त करण मे नही समा सकेगा। वे प्रभु मुझ पर दया करके कब मेरे नेत्रो से अपने नेत्र मिलायेगे ?

१२३ (गुजराती भाषा) राजमृगांक ताल

पीव घर आवे रे, वेदन मारी[1] जाणी रे।
विरह संताप कौण पर कीजे, कहूं छूं दुख नी कहाणी रे॥ टेक॥
अंतरजामी नाथ मारा, तुज बिण हूं सीदाणी[2] रे।
मंदिर मारे केम[3] न आवे, रजनी जाइ बिहाणी रे॥ १ ॥
तारी बाट हूं जोइ थाकी, नैण निखूट्या पाणी रे।
दादू तुज बिण दीन दुखी रे, तूं साथी रह्यो छे ताणी रे॥ २ ॥

हे प्रभो। मेरी[1] विरह व्यथा को जानकर, मेरे हृदय-घर मे पधारिये। मै अपना विरह दु ख किसके आगे प्रकट करू ? अपने दु ख की कथा आप को ही कहती हू। मेरे नाथ ! आप तो अन्तर्यामी है, अत मेरे हृदय की अवस्था जानते ही है। मै आप के बिना दुखी[2] हूँ। आप मेरे हृदय मदिर मे क्यो[3] नही आते ? यह मेरी आयु-रात्रि व्यतीत होती जा रही है, मै आपका मार्ग देखते २ थक गई हू और आप के दर्शनार्थ रोते २ मेरे नेत्रो का अश्रु-जल भी समाप्त हो गया है। आपके विना मै विरहनी अति दीन दुखी हो रही हूँ, इतने पर भी आप मेरे साथ खेचातानी कर रहे है, दर्शन नही देते, यह कहा तक उचित है ?

१२४- (गुजराती) विरह विनती । राजमृगांक ताल

कब मिलसी पीव ग्रह[1] छाती, हूं औराँ संग मिलाती ॥ टेक ॥

तिसज लागी तिसही केरी, जन्म जन्म नो साथी।
मीत हमारा आव पियारा, ताहरा रंग नी राती ॥ १ ॥
पीव बिना मने नींद न आवे, गुण ताहरा लै गाती।
दादू ऊपर दया मया कर, ताहरे वारणे जाती ॥ २ ॥

विरह-पूर्वक विनय कर रहे है—मेरे प्रभु, मेरे हृदय-घर मे आकर मेरी वृत्ति रूप छाती ग्रहण[१] कर अपने स्वरूप-छाती से कब मिलायेगे ? आपके विना मै अपनी वृत्ति-छाती अन्य रागियो के साथ मिलाती हू किन्तु मुझे तो जो मेरे जन्म २ के साथी प्रभु है, उन्हीं के दर्शनो की इच्छा है। हे हमारे प्यारे मित्र ! मेरे हृदय मे पधारिये, मै आपके ही प्रेमरग मे रगी हू। प्रियतम ! आपके विना मुझे निद्रा भी नही आती। मे अपनी वृत्ति लगा कर आपके ही गुण गाती रहती हूँ। मुझ पर प्रेमपूर्वक दर्शन देने की दया करिये, मै आपकी बलिहारी जाती हूँ।

१२५-विरह। (गुजराती) राज विद्याधर ताल

माहरा रे वाहला ने काजे, हृदये जोवा[१] ने (हू) ध्यान धरू ।
आकुल थाये[२] प्राण माहरा, कोने कही पर[३] करूं ॥टेक॥
संभारयो[४] आवे रे वाहला, वेहला[५] एहो[६] जोई ठरू[७] ।
साथीजी साथे थई[८] ने, पेली तीरे पार तरू ॥ १ ॥
पिव पाखे[९] दिन दुहेला जाये, घड़ी बरसा सौ केम[१०] भरू ।
दादू रे जन हरिगुण गातां, पूरण स्वामी ते वरू ॥ २ ॥

विरह दिखा रहे है—मेरे प्रियतम को देखने[१] के लिये मै हृदय मे ध्यान करता हू। उनके बिना मेरे प्राण व्याकुल हो[२] रहे है, मै इस विरह व्यथा को किसे कह कर दूर[३] करू। आप तो स्मरण[४] करते ही भक्तो के आ जाते है। मै इन[६] मेरे प्रियतम के शीघ्र[५] दर्शन करने पर ही शाति[७] पा सकूगा। मेरे मित्रजी ! मै आपके साथ होकर[८], ससार-सिन्धु को तैरते हुये, इसके परेली पार पहुँच जाऊगा। प्रियतम के बिना[९] मेरे दिन बड़े ही कठिन निकलते है। घडी तो वर्षो के समान लगती है, मै अपनी आयु के दिन कैसे[१०] व्यतीत कर सकूँगा ? फिर भी कष्ट चाहे कितने ही हो, किन्तु मै आपका जन तो आपके गुण-गान करते हुये आप पूर्ण प्रभु को ही स्वामी रूप से स्वीकार करूगा।

१२६ - विरहविलाप। झपताल

मरिये मीत विछोहे, जियरा जाइ अंदोहे[१] ॥ टेक ॥
ज्यो जल विछुर मीना, तलफ तलफ जिव दीन्हा, यो हरि हम सौ कीन्हा ॥ १ ॥
चातक मरै पियासा, निशदिन रहै उदासा, जीवै किहि बेसासा ॥ २ ॥
जल बिन कमल कुम्हलावै, प्यासा नीर न पावै, क्यो कर तृषा बुझावै ॥ ३ ॥
मिल जनि[४] विछुरो कोई, विछुरे बहु दुख होई, क्यो कर जीवै जन सोई ॥ ४ ॥
मरणा मीत सुहेला[२], विछुरन खरा दुहेला[३], दादू पीव सौ मेला ॥ ५ ॥

१२६-१२९ मे विरह पूर्वक विलाप दिखा रहे है—हम हमारे मित्र प्रभु के वियोग जन्य दु ख से मर रहे है, हमारा मन शोक[१] से व्याकुल हुआ जा रहा है। जैसे जल बिना मछली तडप तडप कर प्राण खो देती है, वैसी ही स्थिति हरि के वियोग ने हमारी कर दी है। जैसे चातक पक्षी स्वाति-बिन्दु बिना प्यासा मरता है और रात्रि दिन उदास रहता है, वैसी ही प्रभु बिना हमारी दशा है। हम किस के विश्वास पर जीवित रहे। जैसे जल बिना कमल मुरझा जाता है, वैसी ही प्रभु बिना हमारी दशा हो रही है। प्यासे को जल न मिलने पर उसकी प्यास कैसे मिट सकती है ? वैसे ही प्रभु के मिले बिना हमारा क्लेश कैसे मिट सकता है ? प्रभु से मिल कर किसी की भी वृत्ति उनसे अलग नही[४] होनी चाहिये। कारण, वियोग से बहुत दु ख होता है, फिर वह जन उस दु ख से युक्त होकर कैसे जीवित रह सकता है ? हे मित्र ! मरणा तो हमारे लिये सुगम[२] है किन्तु आपका वियोग बडा दुखद[३] है। अत निरन्तर प्रभु से मिले हुये ही रहना चाहिये।

१२७-त्रिताल

पीव ! हौं, कहा करूं रे ?
पाइ परूं कै प्राण हरूं रे, अब हौं मरणैं नाहि डरूं रे ॥टेक॥
गाल मरूं कै जाल मरूं रे, कै हौं करवत शीश धरूं रे ॥ १ ॥
खाइ मरूं कै घाइ[१] मरूं रे, कै हौं कत हूं जाइ मरूं रे ॥ २ ॥
तलफ मरूं कै झूर मरूं रे, कै हौं विरही रोइ मरूं रे ॥ ३ ॥
टेर कह्या मैं मरण गह्या रे, दादू दुखिया दीन भया रे ॥ ४ ॥

प्रभो ! मै आपसे मिलने के लिये क्या करू ? आपके चरणो मे पडूगा, नही तो प्राण छोड दूगा। अब मै मरने से तो नही डरता। मै शरीर को हिम मे गलाकर वा अग्नि मे जलाकर वा शिर पर करवत धारण कर वा विष खाकर वा शरीर पर शस्त्रो के आघात[१] करके मर जाऊ वा कही निर्जन स्थान मे जाकर प्रायोपवेशन द्वारा मर जाऊ ? मै विरही तडप-तडप कर विलाप करते हुये रो रो कर मर जाऊगा। मैने उच्चस्वर से पुकार कर यह कह दिया है कि आपके दर्शन बिना मुझे मरना स्वीकार है, क्योकि मै आपके दर्शन बिना अति दीन और दुखी हो रहा हू।

१२८-(गुजराती भाषा) त्रिताल

वाहला हूं जाणूं जे रँग भर रमिये, मारो नाथ निमिष नहि मेलू रे ।
अन्तरजामी नाह[१] न आवे, ते दिन आव्यो[२] छेलो[३] रे ॥टेक॥
वाहला सेज अमारी एकलडी रे, तहँ तुजने केम न पामूं[४] रे ।
आ[५] दत्त[६] अमारो[७] पूरबलो रे, तेतो आव्यो सामो रे ॥ १ ॥
वाहला मारा हृदया भीतर केम न आवे, मने चरण विलम्बन[८] दीजे रे ।
दादू तो अपराधी तारो, नाथ उधारी लीजे रे ॥ २ ॥

हे पियतम ! मै चाहता हूँ—वृत्ति मे प्रेम-रंग भरकर प्रभु मे रोलू और मेरे स्वामी को एक निमेष मात्र भी न छोड़ू किन्तु आप स्वामी[1] तो अन्तर्यामी होने पर भी नहीं आते और वह अन्त[2] समय का दिन समीप आ गया[3] है। पियतम ! मेरी हृदय-शय्या आपके बिना खाली है, उस पर मै आपको क्यो नहीं प्राप्त[4] करता ? या[5] आपके वियोग से व्यथित होना मेरे[6] पूर्व कर्म[7] का फल ही सामने आया है। प्रियतम ! मेरे हृदय मे क्यो नहीं आते ? अब आप विलम्ब न करके मुझे अपने चरणो का आश्रय[8] दे। यद्यपि मै अपराधी हूँ किन्तु हूँ आपका ही। अत हे नाथ ! शीघ्र ही दर्शन देकर वियोग-व्यथा से मेरा उद्धार करे।

१२९ - (गुजराती) पंचमताल

तूं छे मारो राम गुसाई, पालवे[1] तारे बाँधी रे।
तुज विना हूं आतरे[2] रवल्यो[3], कीधी[4] कमाई लीधी रे ॥टेक॥
जीवूं जेटला[5] हरि विना रे, देहड़ी दु खे दाधी रे।
अेणे[6] अवतारे कांई न जाण्यूं, माथे टक्कर खाधी रे ॥ १ ॥
छूट[7] को मारो क्यारे[8] थाशे[9], शक्यो न राम अराधी रे।
दादू ऊपर दया मया[10] कर, हूं तारो अपराधी रे ॥ २ ॥

राम ! आप ही मेरे स्वामी है, मैने आपका ही आश्रय[1] पकड़ा है। आपके भजन बिना मै अब तक आप से दूर[2] ही भटकता[3] रहा, यह भी मेरे किये[4] कर्मो का ही फल मिला है। अब मै हरि दर्शन बिना (जितना[5] =) जब तक जीवित रहूगा, तब तक मेरा देह दु खो से जलता रहेगा। इस[6] जन्म मे मै अपने कल्याण का साधन कुछ भी न समझ सका और शिर पर टक्करे ही खाता रहा अर्थात् इधर-उधर भटकता रहा। मेरा उद्धार[7] कब[8] होगा[9] ? मै राम की उपासना भी न कर सका। प्रभो ! मै अपराधी हूँ, किन्तु हूँ आपका ही। अत मुझ पर प्रेम पूर्वक[10] दया ही करना।

१३० - (गुजराती) विनती। पंचमताल

तूं हीं तूं तन माहरे गुसांई, तूं विना तूं केने[1] कहूं रे।
तूं त्यां[2] तूं ही थई[3] रह्यो रे, शरण तुम्हारी जाय रहू रे ॥टेक॥
तन मन मांहे जोइये त्यां तूं, तुज दीठां हूं सुख लहू रे।
तूं त्यां जेटली[4] दूर रहूं रे, तेम[5] तेम त्यां हूं दु.ख सहूं रे ॥ १ ॥
तुम बिन माहरो कोई नहीं रे, हूं तो ताहरा वैण[6] बहू रे।
दादू रे जण हरि गुण गातां, मैं मेलू माहरो[7] मै हूं रे ॥ २ ॥

विनय कर रहे है—हे स्वामिन् ! मेरे शरीर मे 'तू ही तू' ध्वनि होती रहती है, आपके बिना मै 'तू' किस[1] को कहूँ अर्थात् अति स्नेही को ही 'तू' कहा जाता है। 'तू' तहा[2] है, तू तहा है,' इस प्रकार वृत्ति द्वारा आप ही व्यापक रूप से भासित हो रहे है। अत मै आपकी ही शरण रूप स्थिति मे जा रहा हूँ। तन मे तथा मन मे जहा देखू तहा तू ही है। तुझको देखकर मै सुखी होता हू। तू तहा

है, इतना कहने मे जितना[३] दूर रहता हूँ, उतना[४] उतना ही तहा मै दु:ख सहन करता हूँ। आपके बिना मेरा कोई भी नही है, मै तो आपको दिये वचनों[५] से भटक रहा हूँ, अत आपका बन[६] कर ही रहूँगा। हे जनो ! मै तो हरि गुण-गाता हुआ अहकार को त्याग[७] कर आत्म-स्वरूप से ही शेष रहूँगा।

१३१-केवल विनती। त्रिताल

हमारे तुम ही हो रखपाल।
तुम बिन और नहीं को मेरे, भव-दुख मेटणहार ॥ टेक ॥
वैरी पंच निमष नहिं न्यारे, रोक र हे जम काल।
हा जगदीश दास दुख पावै, स्वामी करहु संभाल ॥ १ ॥
तुम बिन राम दहैं ये द्वन्द्वर, दशों दिशा सब साल।
देखत दीन दुखी क्यों कीजै, तुम हो दीन-दयाल ॥ २ ॥
निर्भय नाम हेत हरि दीजै, दर्शन परसन लाल।
दादू दीन लीन कर लीजै, मेटहु सब जंजाल ॥ ३ ॥

स्वस्वरूप स्थिति के लिये विनय कर रहे है—दु खो से रक्षा करके हमारे पालन करने वाले आप ही है। आपके बिना हमारे ससार-दु ख को नष्ट करने वाला अन्य कोई भी नही है। काम क्रोधादिक शत्रु और पच विषय, एक निमेष भी मुझ से अलग नही होते, वे आपकी ओर आने से रोक रहे है और यम-दड भुगताते है तथा काल की ओर ले जा रहे है। हा ! जगदीश ! मै आपका दास इनसे दुखी हो रहा हूँ। स्वामिन् ! मेरी सँभाल करो। आपके दर्शन बिना ये शोक-मोहादिक द्वन्द्व दशो दिशाओ मे सब प्रकार दु:ख ही दे रहे है। आप तो दीन दयालु है, फिर मुझ दीन को देखते हुये भी दु खी क्यो कर रहे है ? प्रियतम ! अपना नाम, दर्शन और स्पर्श देकर मुझे निर्भय करिये, मेरे सब जजाल नष्ट करके मुझ दीन को अपने स्वरूप मे लीन कर लीजिये।

१३२-विनती त्रिताल

ये मन माधो बरजि बरजि[१]।
अति गति विषयां सौं रत, उठत जु गरजि गरजि ॥ टेक ॥
विषय विलास अधिक अति आतुर, विलसत शंक न मानैं।
खाइ हलाहल मगन माया में, विष अमृत कर जानैं ॥ १ ॥
पचन के संग बहत चहूँ दिशि, उलट न कबहूँ आवै।
जहँ जहँ काल यह जाइ तहँ तहँ, मृग जल ज्यों मन धावै ॥ २ ॥
साधु कहैं गुरु ज्ञान न मानै, भाव भजन न तुम्हारा।
दादू के तुम सजन सहाई, कछू न बसाइ हमारा ॥ ३ ॥

मन-निग्रहार्थ विनय कर रहे है—हे माधव ! विषयो मे जाते हुये मेरे मन को रोकिये[१]। यह मन विषयो मे विशेष करके जाता है और उन्ही मे अनुरक्त रहता है। विषयो मे जाने के लिए

वारम्बार उत्कंठा रूप गर्जना करके उठता है। विषय-विलास ही उसे अधिक प्रिय है। उनको प्राप्त करने के लिये अति शीघ्रता करता है। उनके उपभोग मे कुछ भी सकोच नही करता। यह विषय-विष को अमृत रूप जानता है और उस महा विष को खाकर मायिक पदार्थों मे मग्न रहता है। पच ज्ञानेन्द्रियो के साथ चारो दिशाओं मे भटकता है। विषयो से लौट कर आपके स्वरूप मे नहीं आता। जैसे मृग, मृग-तृष्णा के जल के लिये दौड़ता है, वैसे ही जहा २ मृत्यु के कारण है, वहा ही जाता है। सतो के वचन तथा गुरु के ज्ञान को नही मानता, न आप मे श्रद्धाभाव रखता है और न भजन ही करता है। इस मन पर मेरा कोई वश नही चलता, अत इसे रोकने मै आप मेरे हितैषी वन कर मेरी सहायता करे।

१३३-मनोपदेश। पंचम ताल

हाँ हमारे जियरा, राम गुण गाइ, एही वचन विचारी मान ॥ टेक ॥
केती कहूँ मन कारणैं, तूं छाडी रे अभिमान ।
कह समझाऊ बेर-बेर, तुझ अजहूं न आवै ज्ञान ॥ १ ॥
ऐसा संग कहाँ पाईये, गुण गावत आवै तान ।
चरणो सौ चित राखिये, निश दिन हरि का ध्यान ॥ २ ॥
वे भी लेखा देहिंगे, आप कहावै खांन ।
जन दादू रे गुण गाइये, पूरण है निर्वाण ॥ ३ ॥

सद्गुरु समझाते हुए इस मन को उपदेश कर रहे है—अरे हमारे मन! राम का ही गुण-गान कर, इसी वचन को विचार पूर्वक मान। हे मन! मै तुझे कितनी शिक्षा की वाते कहता हू, अब तो तू अपने अनात्म अहकार को छोड़। मै तुझे वारम्वार कह कर समझाता हूँ किन्तु तुझमे अव तक भी ज्ञान नही आ रहा है। अरे इस मानव देह मे तो प्रभु गायन करते समय वडा आनन्द आता है, फिर चौरासी मे ऐसा सयोग कहा मिलेगा? इसलिये भगवत् चरणो मे चित्त-वृत्ति रखते हुये रात्रि-दिन भगवान् का ध्यान कर। अरे! तेरी कौन चलाई? जो अपने को वादशाह सलामत खान कहलाते है, उनको भी अपने कर्मों का हिसाब देना पड़ेगा। अत हम तुझे वारवार यही कहते है—जो विश्व मे परिपूर्ण और निर्वाण स्वरूप परमात्मा है, उसी का गुण-गान कर।

१३४-काल चेतावनी। पंचमताल

बटाऊ! चलणां आज कि काल्ह।
समझ न देखै कहा सुख सोवै, रे मन राम सँभाल ॥ टेक ॥
जैसे तरुवर वृक्ष बसेरा, पंखी बैठे आइ।
ऐसे यहु सब हाट पसारा, आप आपको जाइ ॥ १ ॥
कोई नहि तेरा सजन संगाती, जनि खोवै मन मूल।
यहु ससार देख जनि[1] भूलै, सब ही सैबल फूल ॥ २ ॥

तन नहिं तेरा, धन नहिं तेरा, कहा रह्यो इहिं लाग।
दादू हरि बिन क्यों सुख सोवै, काहे न देखै जाग ॥ ३ ॥

काल से सचेत कर रहे है—हे प्राणी-पथिक ! तुझे आज वा कल जाना होगा। तू विचार करके नही देखता, कैसे सुख से सो रहा है ? अरे ! मन से राम का चिन्तन कर। जैसे वृक्षो मे श्रेष्ठ वृक्ष पर पक्षी आकर बैठते है और रात्रि को निवास करके प्रात उड़ जाते है तथा जैसे हाट की वस्तुओ का फैलाव सायकाल ठिकाने लग जाता है, वैसे ही ये सब ससार के प्राणी अपने २ कर्मानुसार अन्य शरीरादि मे चले जाते है। इस ससार मे तेरा सज्जन तथा साथी कोई भी नही है। तू अपने मन से मूल प्रभु का चिन्तन किये बिना ही समय क्यो खो रहा है ? इस मिथ्या ससार को देखकर प्रभु को मत' भूल, यह तो सब सेमल पुष्प के समान बहकाने वाला है। यह शरीर और धन तेरे नही। तू इनमे क्यो अनुरक्त हो रहा है। प्रभु के दर्शन बिना क्यो सुख से सो रहा है ? अज्ञान-निद्रा से जाग कर प्रभु को क्यो नही देखता ?

१३५-तर्क चेतावनी। प्रति ताल

जात कत मद को मातो रे।
तन धन जौबन देख गर्बानो, माया रातो रे ॥ टेक ॥
अपनो हि रूप नैन भर देखै, कामिनि को संग भावै रे।
बारम्बार विषय रत मानै, मरबो चित्त न आवै रे ॥ १ ॥
मैं बड आगैं और न आवै, करत केत अभिमानां रे।
मेरी मेरी करि करि फूल्यो, माया मोह भुलानां रे ॥ २ ॥
मैं मैं करत जन्म सब खोयो, काल सिरहाणै आयो रे।
दादू देख मूढ नर प्राणी, हरि बिन जन्म गँवायो रे ॥ ३ ॥

तर्क पूर्वक सावधान कर रहे है—अरे प्राणी ! माया मद से मतवाला हुआ तू कहा जा रहा है ? तू अपने शरीर, यौवन और धन को देखकर गर्व कर रहा है और मायिक पदार्थों मे ही अनुरक्त रहता है। तू अपने शरीर के रूप को नेत्रो से दर्पण द्वारा इच्छा भर करके देखता है। तुझे कामिनी का सग ही प्रिय लगता है। विषयो मे सुख मानकर बारम्बार उन्ही मे अनुरक्त रहता है। मरने का विचार तो तेरे मन मे कभी आता ही नही। तेरे मन मे 'मै बड़ा हू' इसके आगे अन्य कोई सद्विचार आता ही नही। तू विद्या, बल, धन, जनादि के कितने ही अभिमान करता रहता है। यह मेरी नारी है, यह मेरी वस्तु है, इत्यादिक अहकार द्वारा तू प्रभु को भूलकर मायिक मोह मे भ्रम रहा है। मै धनी हू, मै गुणी हू, इस प्रकार अहकार करते २ ही तूने अपना सब जन्म खो दिया। प्राणधारी मूर्ख नर ! देख तो सही तेरे शिरहाने काल आ गया है, तूने हरि भजन बिना व्यर्थ ही जन्म खो दिया है, यह अच्छा नही किया। (पाठान्तर - 'फूल्यो' के स्थान पर 'भूल्यो'। - स)

१३६-हितोपदेश । त्रिताल

जागत को कदे न मूसै[1] कोई ।
जागत जान जतन कर राखै, चोर न लागू होई ॥ टेक ॥
सोवत साह वस्तु नहि पावै, चोर मुसै[1] घर घेरा ।
आस पास पहरे को नाहीं, वस्तैं कीन्ह नबेरा[2] ॥ १ ॥
पीछे कहु क्या जागै होई, वस्तु हाथ तै जाई ।
बीती रैन बहुरि नहि आवै, तब क्या करि है भाई ॥ २ ॥
पहले ही पहरै जे जागै, वस्तु कछू नहि छीजै ।
दादू जुगति जान कर ऐसी, करना है सो कीजै ॥ ३ ॥

हितकर उपदेश कर रहे है—जागते हुये की वस्तु को कोई नही चुरा[1] सकता। जो जागते हुये अपनी विचारादि वस्तुओ को यत्न से रखता है, उसे सावधान जानकर उसकी वस्तु चुराने मे कामादि चोर सलग्न नही होते। जो जीव-साह अज्ञान-निद्रा मे सोता है, उसकी सद्विचारादि वस्तु उसे नही मिलती, अन्त करण-घर के घेरा डालकर कामादिक चोर चुरा[1] ले जाते है। अन्त करण के आसपास दैवी गुण रूप पहरेदार नहीं होते, तब तो कामादिक चोर सद्विचार वस्तु को समाप्त[2] ही कर डालते है। निरोगावस्था के श्वास रूप वस्तु हाथ से चली जाने पर सावधान होने से क्या होगा ? यह आयु-रात्रि व्यतीत होने पर फिर नही आती। हे भाई ! तब अन्त समय मे क्या कर सकेगा ? जो आयु-रात्रि के पहले पहर मे ही जाग जाता है, उसकी सद्विचारादि वस्तु कुछ भी क्षीण नही होती। अत ऐसी उक्त युक्ति द्वारा अच्छी प्रकार समझ कर जो तुझे कर्तव्य है, उसे शीघ्र ही कर।

१३७-उपदेश । त्रिताल

सजनी ! रजनी घटती जाइ ।
पल पल छीजै अवधि दिन आवै, अपनो लाल मनाइ ॥ टेक ॥
अति गति नींद कहा सुख सोवै, यहु अवसर चलि जाइ ।
यहु तन विछुरै बहुरि कहँ पावै, पीछैं ही पछिताइ ॥ १ ॥
प्राण-पति जागै सुन्दरि क्यो सोवै, उठ आतुर गहि पाइ ।
कोमल वचन करुणा कर आगै, नख शिख रहु लपटाइ ॥ २ ॥
सखी सुहाग सेज सुख पावै, प्रीतम प्रेम बढाइ ।
दादू भाग बडे पिव पावै, सकल शिरोमणि राइ ॥ ३ ॥

वृत्ति को उपदेश कर रहे है—मेरी बुद्धि-वृत्ति रूप सजनी ! आयु रात्रि पल २ क्षीण होती हुई घटती जा रही है और उसकी समाप्ति का दिन समीप आ रहा है। तू शीघ्र ही अपने प्रियतम प्रभु

को प्रसन्न कर, तुझे बहुत चलना है। तू अज्ञान निद्रा मे अति सुख पूर्वक क्यो सो रही है ? इस प्रकार सोने से यह सुअवसर हाथ से चला जायेगा। यह मानव शरीर है, इसमे यदि भगवान् से अलग रही तो फिर किस शरीर मे प्रभु को प्राप्त करेगी ? पीछे तो पश्चात्ताप ही करना होगा। प्राणेश्वर परमात्मा तो भक्तो के लिये सदा जाग्रत ही रहते है, फिर हे मेरी वृत्ति-सुन्दरी ! तू क्यो अज्ञान निद्रा मे सो रही है ? शीघ्रता से उठकर प्रभु के चरण पकड़। नम्र और करुणा पूर्ण वचनो द्वारा प्रभु के आगे विनय कर तथा नख से शिखा पर्यन्त शरीर को प्रभु परायण कर। हे सखि ! प्रियतम से प्रेम बढा, तभी हृदय-शय्या पर सुहाग-सुख प्राप्त कर सकेगी। जिनके भाग्य महान् होते है, वे ही सर्व शिरोमणि विश्व के राजा भगवान् को प्राप्त करते है।

१३८-प्रश्नोत्तर। दादरा

कोई जानै रे, मरम माधइये केरो ?
कैसे रहै ? करै का ? सजनी प्राण मेरो ॥टेक॥
कौन विनोद करत री सजनी, कवननि संग बसेरो ?
संत साधु गम आये उनके, करत जु प्रेम घणेरो ॥ १ ॥
कहां निवास वास कहँ, सजनी गवन तेरो ?
घट घट मांहीं रहै निरन्तर, ये दादू नेरो ॥ २ ॥

प्रश्न करके अन्तिम पाद से उत्तर दे रहे है—हे सन्त सजनी ! कोई माधव का रहस्यमय व्यवहार जानता है क्या ? वे मेरे प्राणाधार कैसे रहते है और क्या करते है ? वे क्या विनोद करते रहते है और किसके सग रहते है ? साधु सन्त उन्ही के ध्यान विचारादि पथ मे आये है और उनसे अति प्रेम करते है। हे सन्त सजनी ! तुम्हारा निवास कहा है और तुम्हारी वृत्ति का गमन कहा और किसमे होता है तथा तू कहा रहती है ? उत्तर—वे मेरे माधव सभी के घट मे निरन्तर रहते है और जो भक्त है, वे भी उनके अति समीप ही रहते है।

१३९-विरह विनती। त्रिताल

मन वैरागी राम को, संगि रहे सुख होइ हो ॥टेक॥
हरि कारण मन जोगिया, क्योंहिं मिलै मुझ सोइ ।
निरखण का मोहि चाव है, क्यों आप दिखावै मोहि हो ॥ १ ॥
हिरदै में हरि आव तूं, मुख देखूं मन धोइ ।
तन मन में तूं ही बसै, दया न आवै तोहि हो ॥ २ ॥
निरखण का मोहि चाव है, ए दुख मेरा खोइ ।
दादू तुम्हारा दास है, नैन देखन कौं रोइ हो ॥ ३ ॥

विरह पूर्वक विनती कर रहे है—मेरा मन राम को प्राप्त करने के लिये विषयो से विरक्त हो

रहा है। प्रभु मेरे सग रहेंगे, तब ही मुझे परमानन्द प्राप्त होगा। हरि के लिये मन योगी बन रहा है, ताकि वे हरि मुझे किसी प्रकार मिले। मुझे उनका दर्शन करने का उत्साह है। कैसे वे मुझे अपना स्वरूप दिखायेगे ? हरे ! आप हृदय मे पधारिये, मे अपने मन को पवित्र करके आपका मुखारविन्द देखूगा। आप मेरे तन-मन मे बसते हे, फिर भी आप दर्शन नहीं देते, आपको दया नही आती ? मुझे तो आपके दर्शन का अति उत्साह है। मै आपका दास हू, मेरे नेत्र आप के दर्शनार्थ रो रहे है, आप अपना दर्शन देकर यह मेरा वियोग-जन्य दु ख दूर करिये।

१४०-(गुजराती) अधीर उराहन। त्रिताल

धरणीधर बाह्या[1] धूतो[2] रे, अंग परस नहिं आपे[3] रे ।
कह्यो अमारो कांई न माने, मन भावे ते थापे[4] रे ॥टेक॥
वाही[5] वाही ने सर्वस लीधो,[6] अबला कोइ न जाणे रे ।
अलगो रहे येणी[7] परि तेडे[8], आपनडे घर आणे रे ॥ १ ॥
रमी रमी ने राम रजावी,[9] केन्हो[10] अंत न दीधो रे ।
गोप्य गुह्य ते कोइ न जाणे, एवो[11] अचरज कीधो[12] रे ॥ २ ॥
माता बालक रुदन करंतां, वाही वाही ने राखे रे ।
जेवो[13] छे तेवो[14] आपणपो, दादू ते नहिं दाखे रे ॥ ३ ॥

धैर्य रहित उपालभ दे रहे है—धरती को धारण करने वाले ईश्वर ने मायिक प्रपच द्वारा मन को बहका[1] कर हमको ठग[2] लिया है। अपने अग का स्पर्श भी हमे प्रदान[3] नहीं करते तथा न हमारा कहा हुआ कुछ मानते है। उनके मन को जो प्रिय लगता है, वही करते[4] है। हमे बहका[5]-बहका कर हमारा सर्वस्व ले लिया[6] है और हम निर्बलो को कुछ भी नही समझते। आप तो अलग रहते है और हम[7] को अपने घर की ओर आने की ऐसी प्रेरणा[8] करते है—अपने घर ले ही जाते है। हमारे साथ खेल २ कर उन रामजी ने ही हमे रिझाया[9] है किन्तु वे गुप्त से भी गुप्त है, उनके रहस्य मय स्वरूप का अन्त कोई भी नहीं जान सकता, ऐसा[11] आश्चर्य उनने कर[12] रक्खा है। जैसे माता रोते हुये बालक को बहका २ कर रखती है, वैसे ही उनने हमको बहका २ कर रक्खा है। जैसा[13] उनका वास्तव स्वरूप है, वैसा[14] वे किसी को भी नही दिखाते अर्थात् भेद दृष्टि रहते हुये उनका अद्वैत स्वरूप दीखता नहीं और अभेद होने पर देखने वाला रहता नही।

१४१-समर्थाई। राजमृगांक ताल

सिरजनहार तैं सब होइ।
उत्पति परलै करै आपै, दूसर नांहीं कोइ ॥ टेक ॥
आप होइ कुलाल[1] करता, बूद तैं सब लोइ[2] ।
आप कर अगोच बैठा, दुनी मन को मोहि ॥ १ ॥

आप तैं उपाइ बाजी, निरख देखै सोइ ।
बाजीगर को यहु भेद आवै, सहज सौंज समोइ ॥ २ ॥
जे कुछ कीया सु करै आपै, येह उपजै मोहि ।
दादू रे हरि नांउं सेती, मैल कश्मल[3] धोइ ॥ ३ ॥

ईश्वर की सामर्थ्य दिखा रहे है—सृष्टिकर्ता ईश्वर से सब कुछ होता है, वे किसी अन्य की सहायता के बिना ही ससार की उत्पत्ति, प्रलय करते है। आप ही कुम्हार[1] के समान सम्पूर्ण शरीर रूप घटो के कर्त्ता बनते है। इच्छा मात्र से बिन्दु द्वारा सम्पूर्ण प्राणियो[2] की रचना कर तथा सासारिक प्राणियो के मन को मोहित करके इन्द्रियो से अगोचर होकर स्थित है। प्राणियो के कर्मो का निरीक्षण करके अपने से ही ससार-बाजी उत्पन्न करते है और वे ही सम्यक् प्रकार देखते हुये पालन करते है। ईश्वर-बाजीगर का यह रहस्य तब ही ज्ञात होता है, जब मन इन्द्रियादि बाह्य ज्ञान की सामग्री सहजावस्था मे लय होती है। जो कुछ भी किया है वह सब किसी अन्य की सहायता बिना स्वय ने ही किया है। हमारी बुद्धि की तो यही उपज है। रे प्राणी ! हरि नाम चिन्तन से अपने पाप[3] मैल को धो डाल, फिर तुझे यथार्थ ज्ञान होगा।

१४२-परिचय। राजमृंगाक ताल

देहुरे[1] मंझे देव पायो, वस्तु अगोच लखायो ॥ टेक ॥
अति अनूप ज्योति पति, सोई अंतर आयो ।
पिंड ब्रह्माण्ड सम, तुल्य दिखायो ॥ १ ॥
सदा प्रकाश निवास निरन्तर, सब घट मांहि समायो ।
नैन निरख नेरो, हिरदै हेत लायो ॥ २ ॥
पूरब भाग सुहाग सेज सुख, सो हरि लैन पठायो ।
देव को दादू पार न पावै, अहो पै उनहीं चितायो ॥ ३ ॥

इति राग केदार समाप्त ॥ ६ ॥ पद २६ ॥

साक्षात्कार का परिचय दे रहे है—अगोचर वस्तु रूप इष्टदेव हृदय-मदिर[1] मे ही ज्ञान द्वारा भास कर प्राप्त हुये है। जो अति अनुपम ज्योति-स्वरूप है, वे भीतर ही स्थित है। पिड और ब्रह्माण्ड मे सम-भाव से रहते हुये ज्ञान दृष्टि द्वारा एक रस दिखाई देते है। वे नित्य प्रकार स्वरूप निरन्तर सबके निवास स्थान और सब घटो मे परिपूर्ण रूप से समाये हुये ज्ञान-नेत्रो द्वारा अति समीप हृदय मे ही देखकर हमने उनसे प्रेम किया है। पूर्व भाग्यवश ही हृदय-शय्या पर प्रभु के दर्शन तथा सुहाग सुख प्राप्त हुआ है। उसी सुख को प्राप्त करने के लिये प्रभु ने इस शरीर मे भेजा है। मै उन्ही के द्वारा (काकरिया तालाब पर) सावधान किया गया हू और उनके दर्शन करता रहता हू, किन्तु आश्चर्य है—उनका पार नही पाता।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग केदार समाप्त ॥ ६ ॥

अथ राग मारू (मारवा) ७

(गायन समय सायकाल ६ से ९ रात्रि)

१४३-उपदेश । झपताल

मना, भज राम नाम लीजै ।
साधु सगति सुमिर सुमिर, रसना रस पीजै ॥ टेक ॥
साधू जन सुमिरन कर, केते जप जागे ।
अगम निगम अमर किये, काल कोइ न लागे ॥ १ ॥
नीच ऊंच चिन्त न कर, शरणागति लीये ।
भक्ति मुक्ति अपनी गति, ऐसे जन कीये ॥ २ ॥
केते तिर तीर लागे, बधन भव छूटे ।
कलि मल विष जुग जुग के, राम नाम खूटे[1] ॥ ३ ॥
भरम करम सब निवार, जीवन जप सोई ।
दादू दुख दूर करण, दूजा नहि कोई ॥ ४ ॥

१४३-१४४ मे मन को नाम-स्मरण का उपदेश कर रहे है—हे मन ! राम-नाम का चिन्तन कर, सन्तो की सगति मे रह कर बारम्बार नाम स्मरण करते हुये रसना से राम भक्ति-रस का पान कर। सन्त जनो द्वारा बताई हुई स्मरण पद्धति से नाम जप करके कितने ही साधक मोह-निन्द्रा से जगे है, उनको नाम-जप ने वेद से भी अगम परब्रह्म मे मिला कर अमर कर दिया है, उनमे से किसी के भी पीछे काल नही लगा है। नीच वा उच्च जाति का ध्यान न कर, नाम-स्मरण करने पर सभी को भगवान् ने अपनी शरण मे लिया है और प्रेमाभक्ति द्वारा मुक्ति प्रदान की है। स्मरण द्वारा अपनी ओर आने वाले जनो को अपने स्वरूप मे लय किया है कि ऐसे स्मरण करने वालो के अन्त करण मे स्थित कलि के पाप और युग २ का बढा हुआ विषय-विष राम-नाम के चिन्तन से नष्ट[1] हो गया है । इस प्रकार भव-बन्धन से मुक्त होकर बहुत से साधक-ससार-सिन्धु को तैर कर पार चले गये है । अत भ्रम-पूर्ण सम्पूर्ण कर्मों को त्याग के अपने शेष जीवन मे जीवनाधार उसी प्रभु के नाम को जप, तेरे जन्मादिक दु खो को दूर करने वाला उसके बिना अन्य कोई भी नही है ।

१४४-झपताल

मना, जप राम नाम कहिये ।
राम नाम मन विश्राम, सगी सो गहिये ॥ टेक ॥
जाग जाग सोवै कहा, काल कंध तेरे ।
बारम्बार कर पुकार, आवत दिन नेरे ॥ १ ॥

सोवत सोवत जन्म बीते, अजहुँ न जीव जागै ।
राम संभार नीद निवार, जन्म जुरा[1] लागै ॥ २ ॥
आश पाश भरम बंध्यो, नारी गृह मेरा ।
अंत काल छाड चल्यो, कोई नहिं तेरा ॥ ३ ॥
तज काम क्रोध मोह माया, रांम रांम करणा ।
जब लग जीव प्राण पिंड, दादू गहि शरणा ॥ ४ ॥

हे मन ! राम-नाम को जप और बुद्धि आदि को भी राम-परायण होने की प्रेरणा कर। हे मन ! राम नाम ही तुझे शाति देने वाला है और वह राम ही तेरा सच्चा साथी है, उसी की शरण पकड। अरे ! अब तो मोह-निद्रा से जाग, शीघ्र जाग, तेरे कधे पर काल आ गया है, तू बारम्बार भवबन्धन से मुक्त होने के लिये प्रभु से प्रार्थना कर, तेरी मृत्यु का दिन समीप आ रहा है। अरे ! तुझे मोह-निद्रा मे सोते २ अनेक जन्म निकल गये है, अब भी तू जीवत्व-भाव से नही जागता ? इस जन्म मे तो मोह-निद्रा को त्याग कर शीघ्र राम का स्मरण कर। देख, शरीर के वृद्धावस्था[1] रूप ज्वर[1] लग रही है, इसकी वृद्धि होने पर कुछ न होगा। तू भ्रमवश ये नारी, घर, धन मेरे है, ऐसे कहता रहता है। किन्तु अन्त समय तू सब को यहा ही छोड कर चला जायेगा। इनमे कोई भी तेरा नही हैं। जब तक शरीर मे प्राणधारी जीव है, तब तक ही प्रभु की शरण पकड और काम, क्रोध, मोह, मायादि को त्याग कर राम-२ कर।

१४५-विरह। अड्डुताल

क्यों विसरै मेरा पीव पियारा, जीव की जीवन प्राण हमारा ॥ टेक ॥
क्यों कर जीवै मीन जल बिछुरै, तुम बिन प्राण सनेही ।
चिन्तामणि जब कर तैं छूटै, तब दुख पावै देही ॥ १ ॥
माता बालक दूध न देवै, सो कैसे कर पीवै ।
निर्धन का धन अनत भुलाना, सो कैसे कर जीवै ॥ २ ॥
वरषहु राम सदा सुख अमृत, नीझर निर्मल धारा ।
प्रेम पियाला भर भर दीजे, दादू दास तुम्हारा ॥ ३ ॥

विरह दिखा रहे है—मेरे प्रियतम स्वामी ! मुझे क्यो भूल रहे है ? आप तो हमारे जीव के जीवन तथा प्राण ही है। जैसे जल से अलग होकर मच्छी जीवित नही रह सकती, वैसे ही हे प्राण-स्नेही ! आपके बिना हम कैसे जीवित रह सकते है ? जैसे किसी के हाथ मे आई हुई चिन्तामणि हाथ से गिरकर खोई जाय, तब उस प्राणी को तो दु ख ही होता है, वैसे ही आपके अलग होने से हमको क्लेश ही होता है। यदि माता बच्चे को दूध न दे तो वह कैसे पान कर सके ? वैसे ही यदि आप दर्शन न दे तो हम दर्शनामृत कैसे पान कर सकेगे ? निर्धन को धन मिला हो और वह किसी अन्य स्थान मे रखकर भूल जाय तो सुखपूर्वक कैसे जीवित रहेगा ? वैसे ही हमारे परम-धन !

आपके बिना हम कैसे सुखपूर्वक जीवित रह सकते है ? राम ! अपने स्वरूप-झरने से सदा सुखप्रद दर्शनामृत की निर्मल धार वर्षाओ और प्रेम-प्याले मे भर २ कर मुझे दो, मै आपका दास हू, अत अधिकारी हू।

१४६ अत्यन्त विरह (गुजराती भाषा) अड्डुताल

कोई कहो रे मारा नाथ ने, नारी नेण निहारे बाट रे ॥ टेक॥
दीन दुखिया सुन्दरी, करुणा वचन कहे रे।
तुम बिन नाह[1] विरहणी व्याकुल, केम[2] कर नाथ रहे रे ॥ १ ॥
भूधर बिना भावे नहि कोई, हरि बिन और न जाणे रे।
देह गृह हू तेने आपूं[3], जे कोइ गोविन्द आणे रे ॥ २ ॥
जगपति ने जोवा[4] ने काजे, आतुर थई[5] रही रे।
दादू ने देखाडो[6] स्वामी, व्याकुल होइ गई रे ॥ ३ ॥

अत्यन्त विरह दिखा रहे है—कोई मेरे नाथ को जाकर कहो तो सही—आपकी नारी के नेत्र आपका मार्ग देख रहे है, आप बिना वह सुन्दरी दीन-दुखिया हो रही है और करुणापूर्ण वचन कहते हुये आपके दर्शनार्थ प्रार्थना कर रही है। हे स्वामिन्[1] ! आपके बिना विरहनी अति व्याकुल है। हे नाथ ! वह अकेली कैसे[2] और किसका आश्रय करके रहे ? भूधर परमात्मा के बिना मुझे कोई भी अच्छा नही लगता। मेरी यह दशा हरि के बिना और कोई नहीं जानता। यदि कोई दयालु सन्त गोविन्द को लाकर मुझ से मिला दे तो मै अपना देह और घर आदि सर्वस्व उस गोविन्द के समर्पण[3] कर दू। मै जगतपति को देखने[4] के लिये अति आतुर हो[5] रही हू। हे स्वामिन् ! मुझे अपना स्वरूप दिखाओ[6], मै दर्शनार्थ व्याकुल हो रही हू।

१४७ विरह विलाप। पजाबी त्रिताल

कबहूँ ऐसा विरह उपावै रै, पिव बिन देखे जिव जावै रे ॥टेक॥
विपति हमारी सुनहु सहेली, पिव बिन चैन न आवै रे।
ज्यो जल भिन्न मीन तन तलफै, पिव बिन वज्र बिहावै रे ॥ १ ॥
ऐसी प्रीति प्रेम की लागै, ज्यो पखी[1] पीव सुनावै रे।
त्यो मन मेरा रहै निशिवासर, कोइ पिव को आण मिलावै रे ॥ २ ॥
तो मन मेरा धीरज धरही, कोइ आगम आण जनावै रे।
तो सुख जीव दादू का पावै, पल पिवजी आप दिखावै रे ॥ ३ ॥

१४७-१४८ मे विरह पूर्वक विलाप कर रहे है—वे प्रभु कभी ऐसा विरह मेरे हृदय मे उत्पन्न करेंगे ? जिससे उन प्रभु के देखे बिना जीव शरीर से निकल कर उनके पास प्रस्थान कर जायेगा। हे सत-सहेली ! तुम मेरी विपत्ति को सुनो तो सही। मुझे प्रभु बिना किंचित् भी सुख नही मिलता। जैसे जल से अलग होने पर मच्छी का शरीर तड़फता है, वैसे ही प्रभु के बिना मेरा समय विरह-

वज्राघात दु ख से तडफते हुये ही जाता है। मेरे हृदय मे प्रभु की ऐसी प्रीति लगी है, जैसे चातक पक्षी[१] को स्वाति बिन्दु के प्रेम की लग्न लगती है, वह पीव २ बोलता रहता है, वैसे ही मेरा मन रात-दिन पीव २ पुकारता रहता है। कोई आकर भविष्य मे प्रभु के आने के निश्चित समय की बात मुझे बतावे तो मेरा मन धैर्य रख सकता है। कोई प्रभु को लाकर मुझ से मिला दे और प्रभुजी मुझे प्रति क्षण अपना स्वरूप दिखाते रहे, तब ही मेरा मन परमानन्द प्राप्त करेगा।

१४८-(गुजराती भाषा)। पंजाबी त्रिताल।

अमे[1] विरहणिया राम तुम्हारडिया।
तुम बिन नाथ अनाथ, कांइ[2] बिसारडिया ॥ टेक॥
अपने अंग अनल परजाले, नाथ निकट नहिं आवे रे।
दर्शन कारण विरहनि व्याकुल, और न कोई भावे रे॥ १॥
आप अपरछन[3] अमने[4] देखे, आपणपो न दिखाडे रे।
प्राणी पिंजर लेइ रह्यो रे, आडा अंतर पाडे रे॥ २॥
देव देव कर दर्शन मॉगे, अन्तरजामी आपे रे।
दादू विरहणि वन वन ढूंढे, यह दुख कांइ न कापे[5] रे॥ ३॥

हे राम! हम[1] आपकी विरहनी है और नाथ! आपके बिना हम अनाथ हो रही है, आप हमे क्यो[2] भूल गये है? स्वामी हमारे पास नही आते, इससे विरहाग्नि मेरे अगो को विशेष रूप से जला रही है। प्रभु दर्शन के लिये मै वियोगिनी व्याकुल हूँ अन्य कोई भी मुझे अच्छा नही लगता, प्रभु स्वयं तो छिपे[3] हुये है, हमको[4] देखते है और अपना स्वरूप हमको नही दिखाते है। मै प्राणी शरीर पिजर को इसलिये धारण किये हूँ कि वे दर्शन देगे किन्तु आप तो उलटा दूर रहना रूप आडा पडदा ही डाल रहे है, पास आते ही नही। भक्त जन जब दीजिये २ कह कर दर्शन मागते है तब आप अन्तरयामी होने से उनकी प्रार्थना सुन कर दर्शन देते ही है, फिर मै विरहनी आपको नाना साधन रूप वन २ मे खोज रही हूँ, मुझे दर्शन देकर मेरा यह वियोगजन्य दु ख क्यो नही काटते[5]?

१४९-विरह प्रश्न। राज विद्याधर ताल

पंथीड़ा बूझै विरहणी, कहिनैं पीव की बात।
कब घर आवै, कब मिलूं, जोऊं दिन अरु रात, पंथीडा॥ टेक॥
कहां मेरा प्रीतम कहां बसै, कहां रहै कर बास?
कहँ ढूंढूं कहँ पाइये, कहां रहै किस पास, पंथीडा॥ १॥
कवन देश कहँ जाइये, कीजै कौन उपाइ?
कौण अंग कैसे रहै, कहा करै, समझाइ, पंथीडा॥ २॥

परम सनेही प्राण का, सो कत देहु दिखाइ।
जीवनि मेरे जीवकी, सो मुझ आण मिलाइ, पथीडा ॥ ३ ॥
नैन न आवै नींदडी, निश दिन तलफत जाइ।
दादू आतुर विरहणी, क्यो कर रैन विहाइ, पंथीडा ॥ ४ ॥

विरह-पूर्वक प्रश्न कर रहे है—हे सत-पथिक! मै विरहनी मेरे प्रियतम प्रभु की बात पूछ रही हूँ, आप बताये—वे कब मेरे घर आयेगे ? मै उनसे कब मिल सकूगी ? मै दिन रात उनकी प्रतीक्षा कर रही हूँ। वे मेरे प्रियतम आज कहा है ? किसके ठहरे हुए है ? और सदा कहा निवास करते है ? मै उनको कहा खोजू, कहा मिलेगे, वे कहा ओर किसके पास है ? वे किस देश मे है ? मै कहा जाऊ और उनसे मिलने के लिये क्या उपाय करू ? उनका स्वरूप कैसा है ? वे कैसे रहते है ? और क्या करते है ? ये सब मुझे समझाइये। जो मेरे प्राणो के परम स्नेही है, वे प्रभु कहा है ? मुझे दिखाओ, वे ही मेरे जीव के जीवन स्वरूप है। उनको लाकर मुझे मिलाओ, उनके बिना मेरे नेत्रो मे निद्रा भी नही आती, रात दिन तड़फते हुए व्यतीत होते है। मै विरहनी उन प्रभु के बिना अति व्याकुल हू, मेरी यह आयु रूप रात्रि कैसे व्यतीत होगी ?

१५०-समुच्चय उत्तर। राज विद्याधर ताल

पथीडा पंथ पिछाणी रे पीव का, गहि विरहे की बाट।
जीवत मृतक ह्वै चलै, लघै औघट घाट, पथीडा ॥ टेक ॥
सद्गुरु शिर पर राखिये, निर्मल ज्ञान विचार।
प्रेम भक्ति कर प्रीति सौ, सन्मुख सिरजनहार, पंथीडा ॥ १ ॥
पर आतम सौ आतमा, ज्यो जल जलहि समाइ।
मन ही सौ मन लाइये, लै के मारग जाइ, पंथीडा ॥ २ ॥
तालाबेली ऊपजै, आतुर पीड़ पुकार।
सुमिर सनेही आपणा, निशदिन बारम्बार, पथीडा ॥ ३ ॥
देख देख पग राखिये, मारग खाडे धार।
मनसा वाचा कर्मना, दादू लघै पार, पथीडा ॥ ४ ॥

१४९ के सभी प्रश्नो का उत्तर इससे दे रहे है—हे साधक-पथिक! प्रभु को प्राप्त करने का साधन-मार्ग सन्तो द्वारा पहचान और विरह का मार्ग पकड़ के आगे बढ। जीवितावस्था मे ही मृतक के समान निर्द्वन्द्व होकर चले, तब ही काम, क्रोधादिक रूप विकट घाटियो को लाघ सकता है। प्रीति-पूर्वक प्रेमाभक्ति द्वारा परमात्मा के सन्मुख रह अर्थात् भजन करता रह और सद्गुरु के उपदेश को शिरोधार्य मान कर, उनके सशय-विपर्य्य-मल से रहित ज्ञान का विचार करते हुये जैसे-जल मे जल मिल जाता है वैसे ही आत्मा को परमात्मा मे लीन कर। यद्यपि यह मार्ग कठिन है, तो भी जब प्रभु-प्राप्ति के लिए हृदय मे व्याकुलता उत्पन्न हो, तब अति शीघ्रता से अपनी

व्यथा प्रभु को पुकार-पुकार कर सुनाते हुये अपने व्यष्टि मन को समष्टि मन मे अर्थात् प्रभु के मन मे लय करना चाहिए। इस प्रकार लय-योग के मार्ग द्वारा प्रभु-स्वरूप के पास पहुँच जाता है। उक्त प्रकार बारबार रात्रि-दिन मे अपने प्रियतम प्रभु का स्मरण कर और विचार नेत्रो द्वारा देख-देख कर इस मार्ग मे पैर रख, उक्त मार्ग खाडे की धार के समान है। जैसे खाडे की धार पर चलना कठिन होता है, वैसे ही इसमे चलना कठिन है, किन्तु जो साधक मन-वचन-कर्म से सावधान रहता है, वह इस मार्ग के द्वारा ससार-सिन्धु को तैरते हुये पार जाकर परब्रह्म को प्राप्त होता है।

१५१-अनुक्रम से उत्तर। राजमृगांक ताल

साध कहैं उपदेश, विरहणी !
तन भूलै तब पाइये, निकट भया परदेश, विरहणी ॥ टेक ॥
तुम हीं मांहीं ते बसैं, तहां रहै कर बास।
तहँ ढूंढे पिव पाइये, जीवन जीव के पास, विरहणी ॥ १ ॥
परम देश तहँ जाइये, आतम लीन उपाइ।
एक अंग ऐसे रहै, ज्यो जल जलहि समाइ, विरहणी ॥ २ ॥
सदा संगाती आपणा, कबहूँ दूर न जाइ।
प्राण सनेही पाइये, तन मन लेहु लगाइ, विरहणी ॥ ३ ॥
जागैं जगपति देखिये, प्रकट मिल है आइ।
दादू सन्मुख ह्वै रहै, आनंद अंग न माइ, विरहणी ॥ ४ ॥

१४९ के प्रश्नो का अनुक्रम से उत्तर दे रहे है—सत कहते है, हे विरहनी ! जब शरीर का अध्यास भूलेगी, तब परदेश मे भासने वाले प्रभु समीप मे ही भासेंगे। वे तेरे मे ही बसते है और शरीर मे जहा अष्टदल-कमल है, वहा ही विशेष रूप से निवास करते है, वहा ध्यान द्वारा खोजने से वे प्रभु प्राप्त हो जाते है। वे जीवन स्वरूप प्रभु जीव के पास ही है। जहा समाधि रूप परम देश है, वहा ही जाओ और आत्मा को परब्रह्म मे लीन करना रूप उपाय करो। उनका स्वरूप अद्वैत है और जैसे जल मे मिलकर जल एक हो जाता है, वैसे ही वे सपूर्ण आत्माओ मे समाये हुये है। वे अपने प्रभु सदा साथ ही रहते है, कभी भी दूर नही जाते। अपना तन-मन उन्ही की सेवा और चिन्तन मे लगाओगे, तब वे प्राणो के प्यारे प्राप्त होगे। वे जगत्पति सदा जगते हुये तुम्हे देखते रहते है और उनके दर्शन योग्य तुम हो जाओगे, तब वे प्रकट रूप से भी तुम्हे आ मिलेगे। फिर जब तुम उनके सन्मुख और वे तुम्हारे सन्मुख होकर स्थिर होंगे, उस समय इतना आनद होगा कि तुम्हारे अन्त करण मे समा भी नही सकेगा।

१५२-(गुजराती) विरह विनती। मकरन्द ताल

गोविन्दा, गाइबा दे रे, आडडी आन निवार, गोविन्दा गाइबा दे रे।
अनुदिन[1] अंतर आनंद कीजे, भक्ति प्रेम रस सार रे ॥ टेक ॥

अनभै आतम अभै एक रस, निरभै काइ न कीजे रे।
अमी महारस अमृत आपै, अम्हे[२] रसिक रस पीजे रे॥ १ ॥
अविचल अमर अखै अविनाशी, ते रस काइ न दीजे रे।
आतम राम अधार अम्हारो, जनम सुफल कर लीजे रे॥ २ ॥
देव दयाल कृपाल दमोदर, प्रेम बिना क्यों रहिये रे।
दादू रँग भरि राम रमाडो[३], भक्त-बछल तू कहिये रे॥ ३ ॥

१५२-१५४ मे विरहपूर्वक विनय कर रहे है—हे गोविन्द ! आपके भजन मे विघ्न डालने वाले जो अन्यान्य प्रसग है, उन्हे हटाइये और हमको आपके नाम तथा गुणगान करने दीजिये। प्रेमाभक्ति रूप सार-रस द्वारा हमारे हृदय मे निरतर[१] आनद रहे, ऐसी कृपा कीजिये। अभय और एकरस आत्मा के अनुभव द्वारा हमे निर्भय क्यो नही करते ? यदि आप अमर भाव रूप महान् सुधा-रस दे तो हम[२] रसिक उस रस का पान करे। जो अचल, अमर, अक्षय और अविनाशी आपका स्वरूप रस है, वह आप क्यो नही देते ? आप आत्म-स्वरूप राम ही हमारे आधार है, हमारे जन्म को सफल करे। हे दयालो ! कृपालो ! दामोदर ! आप हमे अपना प्रेम-रस प्रदान करे। हम आपके प्रेम बिना कैसे सुखपूर्वक रह सकते है ? आप तो भक्त-वत्सल कहलाते है, अत हमारा हृदय अपने प्रेम-रग से भरकर हमे आनन्द प्रदान रूप खेल[३] खिलाइये।

नरेना के रघुनाथजी के मन्दिर मे दादूजी विराजे, तब चित्रो द्वारा भजन मे विघ्न होने से विघ्न-निवृत्ति के लिए १५२-१५३ वे पद कहे थे। प्रसग कथा दृ सु सि त ७-३१७ मे देखो।

१५३- (गुजराती) मकरन्द ताल

गोविन्दा,जोइबा देरे, जे बरजे ते वारी रे। गोविन्दा जोइबा देरे
आदि पुरुष तू अछय अम्हारो, कंत तुम्हारी नारी रे॥ टेक॥
अगै संगै रंगै रमिये, देवा दूर न कीजे रे।
रस मांहीं रस इम थई रहिये, ये सुख अमने दीजे रे॥ १ ॥
सेजडिये सुख रँग भर रमिये, प्रेम भक्ति रस लीजे रे।
एकमेक रस केलि करंता, अम्हे अबला इम जीजे रे॥ २ ॥
सम्रथ स्वामी अतरजामी, बार बार काइ बाहे रे।
आदै अंतै तेज तुम्हारो, दादू देखे गाये रे॥ ३ ॥

हे गोविन्द ! आप अपने दर्शन करने दीजिये और जो आपके दर्शनो मे विघ्न है, उनको दूर कीजिये। आप अक्षय आदि-पुरुष हमारे स्वामी है, मै आपकी नारी हू। हे देव ! आपके स्वरूप के साथ प्रेम-रग द्वारा रमण करू, ऐसी इच्छा है, आप मुझे अपने से दूर न करे। जैसे रस मे रस मिल जाता है वैसे ही आपके स्वरूप मे मिलकर रहू, यह परमानन्द मुझे प्रदान करे। वृत्ति को प्रेम-रग से भर कर हृदय-शय्या पर सुखपूर्वक आपसे रमण करते हुये प्रेमाभक्ति को ग्रहण कर सकू और जल

मे मच्छी के समान आपके स्वरूप मे रहकर परमानन्द का उपभोग करते हुये रहू। मै अबला इस प्रकार ही जीवित रहू, ऐसी कृपा करे। हे समर्थ स्वामिन् ! आप तो अन्तर्यामी है, फिर भी मुझे बारबार क्यो बहका रहे है ? जो ससार के आदि से अन्त तक एक रस तेजोमय आपका शुद्ध स्वरूप है, उसी का साक्षात्कार करते हुए आपके नाम गुणो का गायन करता रहू, ऐसी कृपा करे।

१५४-(गुजराती भाषा) शूल ताल

तुम्ह सरसी[1] रंग रमाड[2]।
आप अपरछन[3] थई[4] करी, मने मा भरमाड[5] ॥ टेक॥
मन भोलवे[6] कांइ थई वेगलो[7], आपणपो देखाड।
केम जीवूं हूं एकली, बिरहणिया नार ॥ १ ॥
मने बाहिश[8] मा अलगो थई, आत्मा उद्धार।
दादू सूं रमिये सदा, येणे[9] परें[10] तार ॥ २ ॥

हे स्वामिन् ! जैसे[1] आप अखड है, वैसे ही अखड प्रेम-रग द्वारा मुझे आनद[2] दीजिये। आप गुप्त[3] होकर[4] मुझे भ्रम[5] मे न डाले। मेरे मन को भुलावे[6] मे डालकर मुझसे अलग[7] रहने से आपको क्या लाभ होगा ? अत आप अपना स्वरूप दिखाइये। मै विरहनी आपके बिना अकेली कैसे जीवित रह सकूगी ? मुझे छोड[8] कर अलग मत रहो, मेरी बुद्धि को वियोग जन्य दु ख से बचाओ और मेरे साथ सदा खेलते हुये मुझको इस[9] ससार से तार कर पार[10] करो।

१५५-काल चेतावनी। तुरंग लील ताल

जाग रे किस नींदडी सूता।
रैण बिहाई सब गई, दिन आइ पहूंता ॥ टेक॥
सो क्यों सोवै नींदडी, जिस मरणा होवै रे।
जौरा[1] वैरी जागणा, जीव तूं क्यों सोवैं रे॥ १ ॥
जाके शिर पर जम खड़ा, शर[2] सांधे मारै रे।
सो क्यों सोवै नींदडी, कहि क्यों न पुकारै रे॥ २ ॥
दिन प्रति निशि[3] काल झंपै, जीव न जागै रे।
दादू सूता नींदडी, उस अंग न लागै रे॥ ३ ॥

१५५-१५७ मे काल से सावधान कर रहे है—अरे प्राणी ! किस लिये मोह-निद्रा मे सो रहा है ? तेरी आयु-रात्रि तो सब व्यतीत हो गई है, अब तो मृत्यु का दिन भी समीप आ पहुँचा है। जिसको मरणा स्मरण होगा, वह कैसे निद्रा मे सोयगा ? हे जीव ! तेरा शत्रु बलवान्[1] काल तो सदा जगते हुये प्राणियो का नाश कर रहा है फिर तू कैसे सो रहा है ? जिसके शिर पर यम खडा हो और क्षण-घटिकादिक काल रूप बाण[2] सधान करके मार रहा हो, वह नीद मे कैसे सोयेगा ? और 'रक्षा करो' ऐसा कह कर क्यो नही पुकार करेगा ? प्रतिदिन प्रतिरात्रि[3] काल श्वासो को क्षीण करना

रूप झपट्टा मार रहा है फिर भी जीव नही जागता, मोह-निद्रा मे ही सोता है, जागकर उस प्रभु के स्वरूप मे नही लगता।

१५६-तुरंग लील ताल

जाग रे सब रैण बिहाणी, जाइ जन्म अजली को पाणी ॥ टेक॥
घडी घडी घडियाल बजावै, जे दिन जाइ सो बहुरि न आवै ॥ १ ॥
सूरज चंद कहैं समझाइ, दिन दिन आव घटती जाइ ॥ २ ॥
सरवर पाणी तरवर छाया, निश दिन काल ग्रासै काया ॥ ३ ॥
हंस बटाऊ प्राण पयाना, दादू आतम राम न जाना ॥ ४ ॥

अरे प्राणी! मोह निद्रा से शीघ्र जाग, तेरी आयु-रात्रि क्षीण हो रही है, उसके साथ-साथ तेरा यह नर जन्म अजलि के जल के समान क्षीण हो रहा है। घडी-घडी मे पहरेदार घडियाल बजाकर सूचित कर रहा है—जैसे गई हुई घड़ी फिर नही आती, वैसे ही जो दिन चला जाता है, वह फिर नहीं आता। सूर्य-चन्द्र भी अपने आवागमन से यही समझा रहे है-प्रतिक्षण प्राणी की आयु घटती जा रही है। जैसे सरोवर का जल और वृक्ष की छाया प्रतिक्षण घटती जाती है, वैसे ही रात्रि-दिन के प्रतिक्षण मे शरीर की आयु को काल क्षीण कर रहा है। इस प्रकार आत्म-स्वरूप राम के बिना जाने ही इस पथिक जीव रूप हस के प्राण प्रस्थान कर जाते है।

१५७-चौताल

आदि काल अत काल, मध्य काल भाई।
जन्म काल जुरा[1] काल, काल सग सदाई ॥ टेक॥
जागत काल सोवत काल, काल झपै आई।
काल चलत काल फिरत, कबहूँ ले जाई ॥ १ ॥
आवत काल जात काल, काल कठिन खाई।
लेत काल देत काल, काल ग्रसै धाई ॥ २ ॥
कहत काल सुनत काल, करत काल सगाई।
काम काल क्रोध काल, काल जाल छाई ॥ ३ ॥
काल आगै काल पीछै, काल संग समाई।
काल रहित राम गहित, दादू ल्यौ लाई ॥ ४ ॥

हे भाई! आदि की शिशु अवस्था से अन्त की वृद्धावस्था तक तथा मध्य की युवावस्था मे भी अपना प्रमाद रूप काल साथ ही रहता है। इस प्रकार जन्म से वृद्धावस्था[1] तक काल सदा ही सग रहता है। जागते, सोते, चलते, फिरते, कभी भी झपट्टा मार कर ले जाता है। आते-जाते, लेते-देते यह कठोर काल खा जाता है। कहते-सुनते, सबध करते भी काल दौड कर ग्रस लेता है। काल ही काम-क्रोधादि रूप से जाल के समान सर्वत्र व्याप्त हो रहा है और आगे पीछे सग मे

रहता है तथा अन्त करण मे समाया हुआ रहता है। अत. काल से बचने के लिए काल रहित राम की शरण ग्रहण करके उसी मे अपनी वृत्ति लगाओ।

१५८-हितोपदेश। त्रिताल

तो को केता कह्या मन मेरे।
क्षण इक मांहीं जाइ अनेरे[1], प्राण उधारी ले रे॥ टेक॥
आगै है मन खरी बिमासणि[2], लेखा माँगै दे रे।
काहे सोवै नींद भरी रे, कृत विचारै तेरे॥ १॥
ते परि[3] कीजै मन विचारै, राखै चरणहु नेरे।
रती एक जीवन मोहि न सूझै, दादू चेत सवेरे॥ २॥

१५८-१६० मे मन को हितकर उपदेश कर रहे है— हे मन! तुझको बहुत ही हित का उपदेश किया है किन्तु तू उस पर ध्यान नही देता। एक क्षण मे ये प्राण निकल कर दूर[1] अन्य योनि मे चले जायेगे, अत तू भगवद्-भजन करके अपने प्राणो का उद्धार कर ले। अरे यमराज के आगे तेरी सच्ची कसौटी-परीक्षा[2] होने वाली है, तेरे कर्मों का हिसाब माँगा जायगा, अत. अभी से तू ऐसा व्यवहार कर, जिससे सुखपूर्वक हिसाब दे सके। तू मोह-निद्रा मे इच्छा भर के क्यो सो रहा है ? अब भी तेरे किये हुये कर्मों का विचार कर और जो बुरे कर्म है, उनको विचार पूर्वक दूर[3] कर, तब ही भगवान् तुझे अपने चरणो के पास रख सकेगे। इस मायिक प्रपच रात्रि मे तो एक रत्ती भर भी अच्छा जीवन व्यतीत होगा, ऐसा मुझे नही दीखता। अत शीघ्र ही सावधान हो कर सत्कर्म कर।

१५९-(गुजराती) त्रिताल

मन वाहला रे, कछू विचारी खेल, पडशे रे गढ भेल॥ टेक॥
बहु भांतै दुख देइगा वाहला, ज्यों तिल माँ लीजे तेल।
करणी ताहरी सोधसी, होसी रे सिर हेल[1]॥ १॥
अब हीं तैं कर लीजिये रे वाहला, सांईं सेती मेल।
दादू संग न छाडी पीव का, पाई है गुण की बेल॥ २॥

अरे प्रिय मन! कुछ विचार करके कर्त्तव्य कर्म करना रूप खेल खेल। विना विचार सकाम निषिद्ध कर्म तथा बुरे सकल्प करने से तेरे काया किले मे कठिन दु ख आ पडेगा और विचारहीन तेरा अन्त करण कामादि द्वारा नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा। आगे तेरे किये हुये कर्मों की खोज की जायगी और बुरे कर्म मिलने से तेरे शिर पर दड का बोझ[1] पडेगा तथा जिस प्रकार तिलो को घाणी मे पेल कर तेल निकालते है, वैसे ही तुझे बहुत प्रकार के दु ख देंगे। अत हे प्रिय! तुझे यह मानव-काया गुणो की वेलि रूप प्राप्त हुई है, इसमे अभी से दु ख-भजन प्रभु से प्रेम कर ले और उनका संग मत छोड़।

१६०-उदीक्षण ताल

मन बावरे हो, अनत जनि जाइ।
तो तूं जीवै अमी रस पीवै, अमर फल काहे न खाइ ॥ टेक ॥
रहु चरण शरण सुख पावै, देखहु नैन अघाइ[1]।
भाग तेरे पीव नेरे, थीर थान बताइ ॥ १ ॥
सग तेरे रहै घेरे, सहजै अंग समाइ।
शरीर माहीं शोध साईं, अनहद ध्यान लगाइ ॥ २ ॥
पीव पास आवै सुख पावै, तन की तपत बुझाइ।
दादू रे जहँ नाद उपजै, पीव पास दिखाइ ॥ ३ ॥

हे पागल मन! प्रभु चिन्तन को छोडकर अन्यत्र क्यो जाता है? भक्ति रूप अमृत रस का पान करेगा, तब ही तू परमार्थ दृष्टि से जीवित रह सकेगा। तू भजन रूप अमृत फल क्यो नहीं खाता? तू प्रभु के चरणो की शरण रह और तृप्त[1] होकर ज्ञान नेत्रो से प्रभु को देख, तो तुझे परमानन्द प्राप्त होगा। तेरे अच्छे भाग्य से प्रभु भी तेरे पास ही है। सत-जन शरीर के भीतर ही अष्टदल कमल पर प्रभु का विशेष रूप से स्थिर स्थान बताते है। वे प्रभु तेरे शरीर को घेर कर तेरे साथ ही है और निर्द्वन्द्व तथा व्यापक रूप से तेरे शरीर मे ही समाये हुये है। तू अनाहत ध्वनि के द्वारा उन्हे खोज, वे तेरे शरीर मे ही है। यदि अनाहत ध्यान द्वारा तू प्रभु के पास जायगा, तो अपने तन की त्रिताप को शात करके परम सुख प्राप्त करेगा। जहा नाद की उत्पत्ति होती है, उसके पास ही प्रभु का साक्षात्कार होता है।

१६१-भ्रम विध्वंसन। उदीक्षण ताल

निरंजन अजन कीन्हा रे, सब आत्म लीन्हा रे ॥ टेक ॥
अंजन माया अंजन काया, अंजन छाया रे।
अंजन राते अंजन माते, अंजन पाया रे ॥ १ ॥
अंजन मेरा अंजन तेरा, अजन मेला रे।
अजन लीया अंजन दीया, अजन खेला रे ॥ २ ॥
अजन देवा अंजन सेवा, अंजन पूजा रे।
अंजन ज्ञाना अंजन ध्याना, अजन दूजा रे ॥ ३ ॥
अजन वक्ता अंजन श्रोता, अजन भावै रे।
अंजन राम निरंजन कीन्हा, दादू गावै रे ॥ ४ ॥

भ्रम को दूर कर रहे है—माया रूप अजन को ही निरजन मान लिया है और सव प्राणी उसी मे लीन हो रहे है। यह धन आदि माया, शरीर और इनकी आसक्ति रूप छाया, माया रूप अजन के ही कार्य है। सासारिक प्राणी माया मे ही अनुरक्त होकर मतवाले हो रहे है और ऐसे प्राणियो को

माया ही मिलती है। मायिक पदार्थों को ही 'यह मेरा है यह तेरा है' ऐसा कहते है तथा उन्ही के लिए आपस मे मिलते है। मायिक पदार्थ ही लिये-दिये जाते है तथा सभी लोक माया के ही खेल खेलते है। मायिक वस्तुओ के ही देवता बना देते है और मायिक पदार्थों से ही उनकी सेवा-पूजा करते है। माया से सम्बन्ध रखने वाला ज्ञान ही कथन करते है, उसका ही ध्यान करते है। निरजन से भिन्न जो भी है, वह माया ही है। वक्ता भी माया सम्बन्धी प्रवचन करता है और सुनने वाले भी मायिक प्रवृत्ति की ही बाते सुनते है क्योकि उनको माया ही प्रिय लगती है। इस प्रकार अजन माया को ही निरजन राम मानकर उसका यश गाते है।

१६२-निज वचन महिमा। चौताल ध्रुपद में

ऐन बैन चैन होवै, सुनतां सुख लागै रे।
तीनों गुण त्रिविधि तिमर, भरम करम भागै रे ॥ टेक॥
होइ प्रकाश अति उजास, परम तत्त्व सूझै।
परम सार निर्विकार, विरला कोई बूझै ॥ १ ॥
परम थान सुख निधान, परम शून्य खेलै।
सहज भाइ सुख समाइ, जीव ब्रह्म मेलै ॥ २ ॥
अगम निगम होइ सुगम, दुस्तर तिर आवै।
आदि पुरुष दरस परस, दादू सो पावै ॥ ३ ॥

भगवद्-वचन वा सत-वचन की महिमा बता रहे है—भगवद्-वचन वा सत-वचन यथार्थ आनद के प्रदाता होते है। सुनते ही उनसे सुख का अनुभव होने लगता है। सत्त्व, रज, तम, ये तीनो गुण और मूला, तूला, लेशा ये अविद्या रूप तीनो अन्धकार, भ्रम और सकाम कर्म करने की इच्छा हृदय से भाग जाती है। हृदय मे ज्ञान का प्रकाश प्रकट होकर अत्यत उजाला हो जाता है, तब अपना स्वरूप परम तत्त्व दीखने लगता है। वह सबसे उत्कृष्ट, ससार का सार, निर्विकार है, कोई विरला ज्ञानी ही उसे समझ पाता है और ऐसा कहते हुये कि उसका स्थान अति उत्कृष्ट है, वह परम-सुख का निधान है, उसी परम निर्विकार ब्रह्म मे अभेद रूप से आनद लेना रूप खेल खेलता है। जीव ब्रह्म का अभेद ज्ञान होने पर अनायास ही परम-सुख मे समाया रहता है। जो वेद से भी अगम स्थिति है, वह सुगम हो जाती है। दुस्तर ससार को तैर कर अद्वैत भाव मे आ जाता है। जो भी भगवद्-वचन वा सत वचनो को विचारता है, वह आदि पुरुष ब्रह्म का साक्षात्कार करके उसी मे लय हो जाता है।

१६३-साधु सांईं हेरे। त्रिताल।

कोई राम का राता रे, कोई प्रेम का माता रे ॥ टेक ॥
कोई मन को मारै रे, कोई तन को तारै रे, कोई आप उबारै रे ॥ १ ॥
कोई जोग जुगंता रे, कोई मोक्ष मुकंता रे, कोई है भगवंता रे ॥ २ ॥

कोई सद्‌गति सारा रे, कोई तारणहारा रे, कोई पीव का प्यारा रे ॥ ३ ॥
कोई पार को पाया रे, कोई मिल कर आया रे, कोई मन का भाया रे ॥ ४ ॥
कोई है बडभागी रे, कोई सेज सुहागी रे, कोई है अनुरागी रे ॥ ५ ॥
कोई सब सुख दाता रे, कोई रूप विधाता रे, कोई अमृत खाता रे ॥ ६ ॥
कोई नूर पिछाणैं रे, कोई तेज को जाणै रे, कोई ज्योति बखाणै रे ॥ ७ ॥
कोई साहिब जैसा रे, कोई सांईं तैसा रे, कोई दादू ऐसा रे ॥ ८ ॥

सत-जन कैसे-कैसे प्रभु की खोज करते है, यह बतला रहे है—कोई राम मे अनुरक्त है, कोई राम-प्रेम मे मस्त है, कोई साधन द्वारा मन को वश करने मे लगा है। कोई सयम द्वारा शरीर को बुरी प्रवृत्तियो से बचा रहा है। कोई अपने को प्रपच से बचाने मे लगा है। कोई योग-युक्तियो मे लगा है। कोई अपने को मुक्त समझ कर अन्यो की मुक्ति करने मे लगा है। कोई कहता है, एक भगवान् ही सत्य है। कोई सद्‌गति को ही सार समझता है। कोई पारमार्थिक उपदेश द्वारा अन्यो का उद्धार कर रहा है। कोई प्रभु का प्रेमी बन रहा है। कोई ज्ञान द्वारा ससार के पार को देख रहा है। कोई समाधि मे प्रभु से मिलकर आया हुआ है। कोई मन को प्रिय लगे, वैसा ही साधन करता है। कोई भाग्यशाली है, कोई हृदय-शय्या पर प्रभु का सुहाग-सुख ले रहा है। कोई अनुरागी बन रहा है। कोई समता द्वारा सबको सुख दे रहा है। कोई विधाता के स्वरूप मे रत है। कोई ज्ञानामृत खाता है अर्थात् ज्ञान का विचार करता है। कोई ईश्वर स्वरूप को पहचानने मे लगा है, कोई प्रभु के स्वरूप को तेजोमय जानकर भजता है। कोई प्रभु को ज्योति स्वरूप कहता है। कोई अपने को साहिब जैसा तथा ईश्वर जैसा मानता है, कोई मै ऐसा हूँ इत्यादि साधन व्यवहार के द्वारा सतजन प्रभु को खोज रहे है।

१६४-साधु लक्षण। दीपचन्दी

सद्‌गति साधवा रे, सन्मुख सिरजनहार।
भवजल आप तिरै ते तारै, प्राण उधारनहार ॥ टेक ॥
पूरण ब्रह्म राम रंग राते, निर्मल नाम अधार।
सुख संतोष सदा सत सजम, मति गति वार न पार ॥ १ ॥
जुग जुग राते जुग जुग माते, जुग जुग संगति सार।
जुग जुग मेला जुग जुग जीवन, जुग जुग ज्ञान विचार ॥ २ ॥
सकल शिरोमणि सब सुख दाता, दुर्लभ इहि ससार।
दादू हंस रहैं सुख सागर, आये पर उपकार ॥ ३ ॥

सत लक्षण बता रहे है—सतो के मन की गति सत्य ब्रह्म मे ही होती है, वे भजन द्वारा परमात्मा के सन्मुख रहते है। ससार-सिन्धु के विषय-जल से स्वय तैरते है और अन्यो को तारते है। वे सब प्रकार सासारिक प्राणियो के उद्धार करने वाले होते है। पूर्ण ब्रह्म के भक्ति-रग मे अनुरक्त

रहते हुये उनके निर्मल नाम का ही आधार रखते है। उन्हे सतोष और सयम द्वारा सदा सुख रहता है, उनकी बुद्धि अपार होती है। वे सदा प्रभु-प्रेम मे अनुरक्त रहते हुये मस्त रहते है। उनकी सदा सगति करने से विश्व के सार ब्रह्म का ज्ञान होता है। वे सदा प्रभु से मिले रह कर सबसे प्रेम करते हुये सदा सबके जीवन रूप बने रहते है। सबको सुख देने वाले, सब प्राणियो के शिरोमणि सन्त, इस ससार मे सहज नही मिलते, वे सन्त-हस तो ब्रह्म रूप सुख-सागर मे ही रहते है, ससार मे तो परोपकारार्थ ही आये है।

१६५-(गुजराती) परिचय उत्साह मंगल। दीपचन्दी

अम्ह[1] घर पाहुणां ये, आव्या[2] आतम राम ॥टेक॥
चहुं दिशि मॅगलाचार, आनन्द अति घणां ये।
वरत्या जै जैकार, विरुद[3] वधावणां ये॥ १ ॥
कनक कलश रस मांहिं, सखी भर ल्यावज्यो ये।
आनन्द अंग न माइ, अम्हारै आवज्यो ये॥ २ ॥
भावै भक्ति अपार, सेवा कीजिये ये।
सन्मुख सिरजनहार, सदा सुख लीजिये ये॥ ३ ॥
धन्य अम्हारा भाग, आव्या अम्ह भणी[4] ये।
दादू सेज सुहाग, तूं त्रिभुवन धणी ये॥ ४ ॥

१६५-६६मे साक्षात्कार होने पर मगल उत्साह दिखा रहे है—हे सन्त-सखि! हमारे[1] अन्त करण रूप घर मे आत्म-स्वरूप अतिथि आये[2] है, अत अन्त करण की चारो वृत्ति रूप दिशाओ मे मगलाचार, अत्यधिक आनन्द और जय-जय शब्द हो रहा है, यश[3] वृद्धि के गीत गाये जा रहे है। हे सत-सखि! अपने शुद्ध मन-कलश मे प्रभु-प्रेम रूप रस भर कर लाना और हमारे आकर प्रेम-रस पिलाना। उस समय का आनन्द अन्त करण मे न समायेगा। भाव-भक्ति द्वारा उस अपार परमात्मा के सन्मुख होकर, उनकी सेवा करते हुये नित्य सुख प्राप्त करना। हे त्रिभुवन के स्वामिन्! आप हमारे आकर हृदय-शय्या पर हमे सुहाग सुख दे रहे है, यह हमारा धन्य भाग्य है, यह मै सत्य ही कहता[4] हूँ।

१६६-फरोदस्त ताल

गावहु मॅगलाचार, आज बधावणां ये।
सुपनो देख्यौ सॉच, पीव घर आवणां ये॥टेक॥
भाव कलश जल प्रेम का, सब सखियन के शीश।
गावत चली बधावणां, जै जै जै जगदीश॥ १ ॥
पदम कोटि रवि झिलमिलै, अंग अंग तेज अनंत।
विगसि वदन विरहनि मिली, घर आये हरि कंत॥ २ ॥

सुन्दरि सुरति श्रृगार कर, सन्मुख परसै पीव।
मो मंदिर मोहन आविया, वारूं तन मन जीव॥ ३ ॥
कवल निरन्तर नरहरी, प्रकट भये भगवंत।
जहँ विरहनि गुण वीनवै[1], खेलै फाग बसत॥ ४ ॥
वर आयौ विरहनि मिली, अरस परस सब अंग।
दादू सुन्दरि सुख भया, जुग जुग यहु रस रंग॥ ५ ॥

इति राग मारू (मारवा) समाप्त॥ ७ ॥ पद २४ ॥

हे सखियो ! आज वधाई के मगल गीत गाओ। कारण, जो पहले हमे स्वप्न हुआ था कि प्रभु घर आयेंगे, वह आज प्रत्यक्ष रूप से सत्य देख लिया है, प्रभु हृदय-मदिर मे पधार गये है। इन्द्रियाँ तथा वृत्ति रूप सभी सखियो के गति रूप शिर पर प्रेम-जल से परिपूर्ण भाव-कलश रखे हुये है। सब प्रभु-प्रेम से युक्त होकर ही अपने कार्य करती है और वे सभी, हे जगदीश ! आपकी मन, वचन, कर्म से जय हो, इस प्रकार वृद्धि के गीत गाती हुई प्रभु के सन्मुख चली है अर्थात् सभी इन्द्रिया और बुद्धि आदि वृत्ति भगवदाकार हो गई है। उन प्रभु का तेजोमय स्वरूप कोटि पद्म सूर्यों के समान झिलमिलाता हुआ भास रहा है, उनके प्रत्येक अग पर अनन्त तेज शोभित है। ऐसे हरि जब हृदय रूप घर मे आये, तब विरहनी प्रसन्न-मुख होकर अपने स्वामी से मिली और वृत्ति-सुन्दरी साधन-श्रृगार करके प्रभु के सन्मुख ही स्वरूपाकार होना रूप स्पर्श करती है तथा कहती है- मेरे हृदय-मदिर मे विश्व-विमोहन पधारे है। मै उन पर अपना तन, मन और जीवन निछावर करती हू। हमारे भगवान् नरहरि अष्ट दल-कमल पर जहा निरन्तर दर्शन दे रहे है, वहा ही विरहनी वृत्ति उनके गुण-कथन रूप वसतोत्सव फाग का खेल खेलते हुये निरन्तर सयोगार्थ विनय[1] करती है। इस प्रकार ईश-वर हृदय मे आया, तब वृत्ति-विरहनी उससे मिलकर उसके स्वरूप मे अरस-परस रूप से एक हो गई है। अब वृत्ति-सुन्दरी के यह अभेद-रस का रग लग जाने से सदा के लिये परमानन्द हो गया है।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग मारू (मारवा) समाप्त॥ ७ ॥

अथ राग रामकली ८

(गायन समय प्रभात ३ से ६)

१६७-सद्गुरु शब्द महिमा। दादरा

शब्द समाना जो रहै, गुरु वाइक[1] बीधा।
उनहीं लागा एक सौं, सोई जन सीधा॥ टेक॥
ऐसी लागी मर्म की, तन मन सब भूला।
जीवत मृतक ह्वै रहै, गह आतम मूला॥ १ ॥

चेतन चितहि न बीसरे, महा रस मीठा ।
शब्द निरंजन गह रह्या, उन साहिब दीठा ॥ २ ॥
एक शब्द जन उद्धरे, सुनि सहजैं जागे ।
अंतर राते एक सौं, सर सन्मुख लागे ॥ ३ ॥
शब्द समाना सन्मुख रहै, पर आतम आगे ।
दादू सीझै देखतां, अविनाशी लागे ॥ ४ ॥

सद्गुरु शब्दो को श्रद्धा सहित सुनने से ही मुक्ति होती है, यह कहते है—जो सद्गुरु शब्दो मे मन लगा कर रहा है, उसका हृदय सद्गुरु शब्दों' से वेधा गया है और जो उन शब्दो के द्वारा एक परमात्मा के भजन मे लगता है, वही जन अहकारादि वक्रता को त्याग कर सरल स्वभाव बनता है। उसके हृदय पर शब्द की ऐसी मर्म की चोट लगती है-वह अपने तन मनादि सभी को भूल जाता है और अपने आत्मा के मूल परब्रह्म को अभेद रूप से ग्रहण कर, जीवन्मुक्त होकर रहता है। अति मधुर चेतन रूप महा-रस को चित्त से कभी भी नही भूलता। इस प्रकार जिसने निरजन स्वरूप के बोधक सद्गुरु शब्दो को ग्रहण किया है, उसने परब्रह्म का साक्षात्कार किया है। सद्गुरु के एक शब्द से जिज्ञासु जन का उद्धार हो जाता है। जिनने एकाग्र मन से सद्गुरु शब्द सुने है, वे अनायास ही अज्ञान निद्रा से जगे है। जब भी जो श्रद्धा सहित गुरु के सन्मुख बैठ कर सुनते है, तब कान के द्वारा गुरु शब्द-बाण जाकर हृदय मे लगता है और वे निरन्तर अपनी वृत्ति को भीतर एक परब्रह्म मे ही अनुरक्त करके रहते है। जो सद्गुरु शब्दो मे लग कर परमात्मा के सन्मुख रहते है, वे ससार दशा से आगे बढकर वर्तमान शरीर मे देखते-देखते ही अविनाशी ब्रह्म मे अभेद रूप से सलग्न हो कर मुक्त हो गये है।

१६८-नाम महिला । त्रिताल

अहो नर, नीका है हरि नाम ।
दूजा नहीं नाम बिन नीका, कहले केवल राम ॥ टेक ॥
निर्मल सदा एक अविनाशी, अजर अकल रस ऐसा ।
दिढ गह राख मूल मन मांहीं, निरख देख निज कैसा ॥ १ ॥
यहु रस मीठा महा अमीरस, अमर अनुपम पीवै ।
राता रहै प्रेम सौं माता, ऐसे जुग जुग जीवै ॥ २ ॥
दूजा नही और को ऐसा, गुरु अंजन कर सूझै ।
दादू मोटे भाग हमारे, दास विवेकी बूझै ॥ ३ ॥

नाम महिमा कह रहे है—हे नर ! कल्याण के साधनो मे हरि-नाम ही श्रेष्ठ है, जिसमे सब का सम अधिकार हो, ऐसे नाम को छोड़कर अन्य कोई भी साधन श्रेष्ठ नही है। अत तू एक मात्र राम-नाम का ही चिन्तन कर। जो सदा निर्मल, अद्वैत, अविनाशी, अजर, कला विभाग से रहित,

ऐसा ब्रह्म रस है, वही तेरा मूल है, उसी का नाम मन मे दृढ़ता से रख और विचार द्वारा उसका निरीक्षण करते हुये अपने स्वरूप को भी देख कैसा है ? यह नाम चिन्तन रूप अमृत-रस महान् मधुर है, जो इसका पान करता है और प्रेम से अनुरक्त रहते हुये मस्त रहता है, वह अमर अनुपम ब्रह्मरूप होकर प्रति युग मे ऐसे जीवित रहता है कि उसके समान कोई भी नही रहता। नाम के समान श्रेष्ठ और सुगम अन्य साधन कोई भी नही है, किन्तु नाम की यथार्थ महिमा गुरु ज्ञानाजन को वृत्ति-नेत्र मे आजने से ही दीखती है, विवेकी भक्त ही उसे समझ पाता है। हरि-गुरु कृपा से ही यह ज्ञान हमारी समझ मे आया है, अत हमारा भाग्य महान् है।

१६९-अत्यन्त विरह। त्रिताल

कब आवैगा, कब आवैगा ?
पीव प्रकट आप दिखावैगा, मिठडा मुझको भावैगा ॥ टेक ॥
कठडे लाग रहू रे, नैनो मे बाहि धरू रे, पिव तुझ बिन झूर मरू रे ॥ १ ॥
पावो मस्तक मेरा रे, तन मन पिवजी तेरा रे, हौ राखू नैनहू नेरा रे ॥ २ ॥
हियडे हेत लगाऊ रे, अब कै जे पिव पाऊ रे, तो बेर बेर बलि जाऊ रे ॥ ३ ॥
सेजड़िये पिव आवै रे, तब आनन्द अग न मावै रे, दादू दर्श दिखावै रे ॥ ४ ॥

१६९-१७१ मे अत्यन्त विरह दिखा रहे है—मेरे प्रियतम प्रभु कब आयेंगे, कब आयेंगे ? जब प्रभु प्रकट रूप से अपना स्वरूप दिखायेगे, तब वे मधुर प्रभु मुझ को बहुत प्रिय लगेंगे। मै उनके स्वरूप-कठ मे लग कर रहूगा। उनको अपने ज्ञान-नेत्रो मे अजन के समान डाल कर रक्खूगा। प्रभु के बिना मै दु खी होकर मर रहा हूँ। हे प्रभुजी ! मेरा मस्तक आपके चरणो मे है। तन तथा मन भी आपके ही है, मै आपको अपने नेत्रो के समीप ही रखना चाहता हू, हृदय से प्रेम करता हूँ। यदि इस शरीर मे प्रभु को प्राप्त कर लूगा, तब तो मै उनकी बारम्बार बलिहारी जाऊगा। मेरी हृदय-शय्या पर प्रभु आयेगे और मुझे अपने स्वरूप का दर्शन करायेगे, तब मुझे इतना आनन्द होगा कि—मेरे अन्त करण मे भी न समायेगा।

१७०-(सिधी भाषा) मल्लिका मोद ताल

पिरी[१] तूं पाण[२] पसाइडे[३], मू[४] तनि लागी भाहिडे[५] ॥ टेक ॥
पाधी[६] वींदो[७] निकरीला,[८] असा[९] साण[१०] गल्हाइड़े[११]।
सांई सिका[१३] सडकेला[१४], गुझी[१५] गालि[१६] सुनाइडे ॥ १ ॥
परसां[१७] पाक[१८] दीदार[२०] केला[१९], सिक[१३] असा जी लाहिड़े[२१]।
दादू मंझि कलूब[२२] मेला[२३], तोड़े[२४] बीया[२५] न काइड़े[२६] ॥ २ ॥

हे प्रियतम[१] ! मेरे[४] शरीर मे विरहाग्नि[५] प्रज्वलित हो रहा है, आप[२] अपने दर्शन[३] दो, और शीघ्र हमारे[९] साथ[१०] बात[११] करो, नही तो यह प्राण-पथिक[६] वन्दा[७] शरीर से निकल[८] जायगा[७]। हे प्रभो ! हमारी[१४] तीव्र इच्छा[१३] है कि आप अपने स्वरूप सम्बन्धी रहस्यमय गुप्त[१५] बात[१६] हमे

सुनाओ। हम आपके पवित्र[१८] अद्वैत-स्वरूप[१९] का दर्शन देखे[१७], यह हमारी तीव्र इच्छा[२०] है, इसे आप पूरी[२१] करे। आप मेरे हृदय[२२] मे प्रकट होकर मुझ से मिलो[२३]। आपके[२४] बिना[२५] अन्य कोई[२६] भी इच्छा मुझे नही है।

१७१-(सिंधी भाषा) मल्लिकामोद ताल

को[1] मेडीदो[2] सजणा, सुहारी[3] सुरति केला[4], लगे डीहु[5] घणां ॥ टेक ॥
पीरीयां[6] संदी[7] गाल्हडीला[8], पांधीडा[9] पूछां ।
कडी[10] ईदो[11] मूं[13] गरेला[14], डीदों [15] बांह[12] असां[16] ॥ १ ॥
आहे[17] सिक[18] दीदार जीला[19], पिरी[6] पूर[20] पसां[21] ।
इयं[22] दादू जे[23] ज्यंद[24] येला[25],सजण सांण[26] रहां ॥ २ ॥

कोई[1] सत दया करके अति सुन्दर[3] अद्वैत स्वरूप के[4] मेरे सज्जन प्रभु को मिला दो[2]। उसकी प्राप्ति के लिये प्रयत्न करते बहुत दिन[5] लग गये है। अपने प्रियतम[6] की[7] बाते[8] सत रूप पथिको[9] से पूछते है—वे प्रियतम! मेरे[13] घर मे आकर[11] कब[10] हमारे[16] गले[14] मे भुजा[12] देगे[15]? उनके दर्शन करने के लिये मन मे[19] तीव्र इच्छा[18] लग रही है[17]। हे प्रियतम[6]! हम आपको पूर्णरूप[20] से देखें[21], यह हमारी भीतर की[19] उत्कठा है। हे सज्जन! मै सदा आपके साथ[26] रहू, मेरे जीवन[24] के[23] लिये[25] ऐसी[22] व्यवस्था कीजिये।

१७२-विनती। पंजाबी त्रिताल

हरि हां दिखाओ नैना।
सुन्दर मूरति मोहनां, बोलि सुनाओ बैनां॥ टेक॥
प्रकट पुरातन खंडनां, महीमान[1] सुख मंडनां॥ १ ॥
अविनाशी अपरम्परा, दीनदयाल गगन धरा॥ २ ॥
पारब्रह्म परिपूरणां, दर्श देहु दुख दूरणां॥ ३ ॥
कर कृपा करुणामई, तब दादू देखै तुम दई॥ ४ ॥

दर्शनार्थ विनय कर रहे है—दादूजी ने कहा—हे हरे! हरि ने कहा-'हा'। दादू। हे प्रभो। 'आप अपनी अति सुन्दर मोहनी मूर्ति मेरे नेत्रो को दिखाओ, मुख से बोलकर अपने रहस्यमय वचन सुनाओ, हृदय मे प्रकट होकर मेरे पुरातन कर्म-बन्धन को काटो और अपनी महा-महिमा-से[1] मेरे आनन्द की वृद्धि करो। हे अविनाशी! आप अपरम्पार, दीन-दयालु और अपनी सत्ता से आकाशादि को धारण करने वाले है। हे परिपूर्ण परब्रह्म! मेरे दु ख को दूर करने वाला अपना दर्शन दो। करुणामय देव! जब आप कृपा करेगे, तब ही मै आप को देख पाऊगा।'

१७३-निस्पृहता। पंजाबी त्रिताल

राम सुख सेवक जानै रे, दूजा दुख कर मानै रे ॥ टेक॥
और अग्नि की झाला[1], फंद रोपे है जम जाला।
सम काल कठिन शर पेखै, ये सिंह रूप सब देखै॥ १ ॥

विष सागर लहर तरंगा, यहु ऐसा कूप भुवगा[२]।
भयभीत भयानक भारी, रिपु करवत मीच विचारी ॥ २ ॥
यहु ऐसा रूप छलावा[३], ठग पासीहारा आवा ।
सब ऐसा देख विचारे, ये प्राण घात बटपारे[४] ॥ ३ ॥
ऐसा जन सेवक सोई, मन और न भावै कोई ।
हरि प्रेम मगन रग राता, दादू राम रमै रस माता ॥ ४ ॥

भक्तो की निस्पृहता दिखा रहे है—भक्त एक राम को ही सुख स्वरूप समझते है, और राम से भिन्न को दु ख रूप मानते है। राम से भिन्न जो कुछ भी है, अग्नि की ज्वाला[१] के समान चिन्ता द्वारा जलाने वाले है वा माया ने यम-जाल बिछाकर जीवो को फँसाने के लिये फँदा रोपा है। राम से भिन्न सब को काल के कठिन बाण के समान वा सिह स्वरूप देखे। जो मन मे विषयो की तरग उठती है, वह विष-समुद्र की लहर के समान है। जैसे सर्पों[२] से परिपूर्ण कूप भयकर होता है, ऐसा ही अति भयानक और भयभीत करने वाला यह ससार है। इसे करवत से चीरकर मारने वाले शत्रु के समान समझना चाहिये। यह ठग तथा गले मे पाश डालने वाला है किन्तु ऐसे छलिया[३] के रूप मे सामने आता है कि अज्ञानी प्राणी इसे हितकर मान लेते है, फिर भी साधक जन भगवान् से भिन्न सब को विचार पूर्वक ऐसा देखते है कि ये स्वार्थी प्राणी मार्ग मे लूट[४] कर मारने वाले प्राण घातक है। जो कोई जन ऐसा निस्पृह भक्त होता है, उसके मन को भगवान् से बिना कोई भी प्रिय नहीं लगता। वह तो हरि मे अनुरक्त रह कर हरि-प्रेम मे निमग्न रहता है और प्रेम-रस से मस्त हुआ राम के साथ ही रमण करता है।

१७४ साधु महिमा। जय मगल ताल

आप निरजन यो कहै, कीरति करतार ।
मै जन सेवक द्वै नहीं, एकै अग सार ॥ टेक ॥
मम कारण सब परहरै, आपा अभिमान।
सदा अखडित उर धरै, बोलै भगवान ॥ १ ॥
अतर पट जीवै नहीं, तब ही मर जाइ।
विछुरे तलफै मीन ज्यो, जीवै जल आइ ॥ २ ॥
खीर[१] नीर ज्यो मिल रहै, जल जलहि समान।
आत्म पाणी लौंण ज्यो, दूजा नाहीं आन ॥ ३ ॥
मै जन सेवक द्वै नही, मेरा विश्राम।
मेरा जन मुझ सारिखा, दादू कहै राम ॥ ४ ॥

सत महिमा कह रहे है—स्वय निरजन राम सतो का यश इस प्रकार कहते है- "मै और मेरे भक्तजन दो नहीं है। हम दोनो एक ही स्वरूप है, यह मेरी निर्णय की हुई सार बात है। वे सन्तजन मेरे

लिये जीवत्व रूप अहकार, गुण-कलादि के अभिमान और अपना सर्वस्व त्याग देते है। सदा अखडित भाव से हृदय मे मेरा ध्यान करते है और मुख से भगवान् आदि मेरे नामो का उच्चारण करते हैं। यदि मेरे और उनके बीच कुछ पडदा आ जाता है, तो वे जीवित नही रह सकते, जैसे जल होने पर मच्छी जीवित रहती है और जल से बिछुडने पर तडफ कर मर जाती है, वैसे ही मेरे बिना तत्काल मर जाते है। उनकी आत्मा जल मे नमक के समान तो मेरे मे मिली ही रहती है। उनके हृदय मे द्वैत-भाव नही होने से उनको मुझ से भिन्न कुछ भी नही भासता। वे साधन की मध्यावस्था मे जल मे दूध[१] के समान मुझ मे मिले रहते है और साधन की परिपाकावस्था मे जल मे जल के समान मुझ मे मिल जाते है। अत मै और मेरे भक्त दो नही है, उनका विश्राम स्थान तो मेरा स्वरूप ही है। मेरा भक्त मेरे समान ही है'' यह स्वय राम ही कहते है।

१७५-परिचय विनती। जय मंगल ताल

शरण तुम्हारी केशवा, मैं अनंत सुख पाया।
भाग बडे तूं भेटिया, हौ चरणों आया॥ टेक॥
मेरी तप्त मिटी तुम देखता, शीतल भयो भारी।
भव बंधन मुक्ता भया, जब मिल्या मुरारी॥ १॥
भरम भेद सब भूलिया, चेतन चित लाया।
पारस सौं परचा भया, उन सहज लखाया॥ २॥
मेरा चंचल चित निश्चल भया, अब अनत न जाई।
मगन भया शर बेधिया, रस पीया अघाई॥ ३॥
सन्मुख ह्वै तैं सुख दिया, यहु दया तुम्हारी।
दादू दरसन पावई, पीव प्राण अधारी॥ ४॥

१७५-१७६ मे परिचय पूर्वक विनय कर रहे है—हे केशव! आपकी शरण मे आकर मैंने अनन्त सुख पाया है, बडे भाग्य से ही आप मुझे मिले है और मै आप के चरणो मे आया हूँ। आपके दर्शन करते ही मेरी जलन मिट कर मेरा हृदय अति शीतल हो गया है। हे मुरारे! जब आप मिले, तब ही मै भव-बन्धन से मुक्त हुआ हूँ। अब सम्पूर्ण भ्रम जन्य भेदो को भूल कर मैंने अपने चित्त को चेतन-स्वरूप मे ही लगाया है। अब तो प्रभु पारस से मै परिचित हो गया हूँ, उन्होंने मुझे सहजावस्था मे अपना स्वरूप दिखाया है। उनका साक्षात्कार होने पर मेरा चचल चित्त निश्चल हो गया है, अब उनके स्वरूप चिन्तन को छोड़ कर अन्य ओर नही जाता, ब्रह्म-चिन्तन-रस से मिल कर मन मग्न हो रहा है, इसने तृप्त होकर रस का पान किया है। हे प्रियतम प्राणाधार! आपने मेरे सन्मुख प्रकट होकर मुझे परमानन्द प्रदान किया है, मै आपका दर्शन कर रहा हू, यह आपकी महान् दया है।

१७६-तिलवाड़ा ताल

गोविन्द ! राखो अपनी ओट।
काम क्रोध भये बटपारे, तकि मारैं उर चोट ॥टेक॥
वैरी पच सबल सँग मेरे, मारग रोक रहे।
काल अहेडी[1] बधिक ह्वै लागे, ज्यो जिव बाज गहे ॥ १ ॥
ज्ञान ध्यान हिरदै हरि लीना, संग ही घेर रहे।
समझ न परई बाप रमैया, तुम बिन शूल[2] सहे ॥ २ ॥
शरण तुम्हारी राखो गोविन्द, इन सौ सग न दीजे।
इनके सग बहुत दुख पाया, दादू को गहि लीजे ॥ ३ ॥

हे गोविन्द ! अपनी शरण मे रखो, हमारे परमार्थ मार्ग मे काम-क्रोधादि लुटेरें हमे लूटने मे तत्पर हो रहे है। ये ताक २ कर हृदय मे चोट मारते है और पच विषय रूप बलवान् शत्रु भी हमारे सग लगकर हमारा मार्ग रोक रहे है। जैसे व्याध मृगो के पीछे लगता है, वैसे ही काल रूप शिकारी[1] शत्रु होकर पीछे लग रहा है तथा जैसे बाज चिड़िया को पकडता है, वैसे ही काल जीव को पकडने के लिये कटिबद्ध हो रहा है। हे हरे ! मेरा हृदय आपके ज्ञान-ध्यानादिक साधन मे लीन हो रहा है और ये मन मे छिपे कामादिक शत्रु मुझे अपने साथ घेर रहे है अर्थात् कामी क्रोधी बना रहे है। हे रमैया राम पिताजी ! इन कामादिक को नष्ट करने का उपाय मेरी समझ मे नही आ रहा है, मैंने आपके बिना बहुत दु ख[2] सहे है। हे गोविन्द ! अब तो मुझे इनका सग न देकर अपनी शरण मे ही रक्खो। मै इनके सग मे बहुत दु ख पा चुका हूँ। अत कृपा करके मुझे अपने कृपा-हस्त से पकड कर अपने साथ ही रखिये।

१७७-भयमान विनती। रगताल

राम ! कृपा कर होहु दयाला, दर्शन देहु करहु प्रतिपाला ॥ टेक ॥
बालक दूध न देई माता, तो वह क्यो कर जिवै विधाता ॥ १ ॥
गुण औगुण हरि कुछ न विचारै, अंतर हेत प्रीति कर पालै ॥ २ ॥
अपनो जान करै प्रतिपाला, नैन निकट उर धरै गोपाला ॥ ३ ॥
दादू कहै नहीं वश मेरा, तू माता मै बालक तेरा ॥ ४ ॥

भययुक्त विनय कर रहे है—हे राम ! कृपा करके मुझ पर दया करो और अपना दर्शन देकर मेरी रक्षा करो। जैसे माता शिशु को दूध न पिलावे तो वह कैसे जीवित रह सकता है ? वैसे ही हे विधाता ! मै आपके दर्शन बिना कैसे जीवित रह सकूँगा ? हे हरे ! माता शिशु के गुण अवगुण का कुछ भी विचार न करके हृदय मे प्रेम रखते हुये प्रीति से उसका पालन करती है और हे गोपाल ! उसे अपना समझ छाती से लगाकर, अपने नेत्रो के समीप रखती है। वैसे ही आप मेरी माता है, मै आपका बच्चा हू, आपके आगे मेरा क्या जोर चल सकता है ? अत आप कृपा करे।

१७८-(गुजराती) विल्ती त्रिताल

भक्ति मॉगूं बाप ! भक्ति मॉगूं, मूने ताहरा नांउं नौं प्रेम लागो।
शिवपुर ब्रह्मपुर सर्व सौं[1] कीजिये, अमर थावा[2] नही लोक मॉगूं ॥ टेक॥
आप[3] अवलम्बन ताहरा अंगनौं, भक्ति सजीवनी रंग राचूं।
देहनें गेहनौं बास वैकुण्ठ तणौं, इन्द्र आसण नहीं मुक्ति जाचूं ॥ १ ॥
भक्ति वाहली[4] खरी, आप अविचल हरी, निर्मलो नांउं रस पान भावे।
सिद्धि नें ऋद्धि नें राज रूडो नहीं, देव पद माहरे काज न आवे ॥ २ ॥
आतमा अंतर सदा निरन्तर, ताहरी बापजी भक्ति दीजे।
कहै दादू हिवै[5] कोडी[6] दत्त[7] आपै[8], तुम्ह बिना ते अम्हे नहीं लीजे ॥ ३ ॥

१७८-१७९ मे अनन्य भक्ति की याचना कर रहे है—हे परम पिता ! मै आप से बारबार आपकी भक्ति की याचना करता हू, मेरे हृदय मे आपके नाम का प्रेम लगा है। मै अमर होना[2] तथा कैलाश लोक, ब्रह्म लोकादिक नही मॉगता, इन सब का मै क्या[1] करूगा ? मुझे तो आप अपने स्वरूप का आश्रय दे[3]। स्वरूप का साक्षात्कार करा कर सदा सजीवन बनाने वाली सजीवनी भक्ति-रग मे अनुरक्त रहू, ऐसी कृपा करे। देह, घर, वैकुण्ठ का निवास, इन्द्रासन और मुक्ति भी मै नही माँगता। हे निश्चल हरे ! आपकी सच्ची भक्ति ही मुझे प्रिय[4] लगती है, आपके निर्मल नाम का चिन्तन-रस मुझे अच्छा लगता है। ऋद्धि, सिद्धि, अच्छा राज्य और देव-पद भी मेरे काम नही आता। हे बाप जी ! मेरे अन्त करण मे निरन्तर होती रहे, ऐसी अनन्य भक्ति दीजिये। अब[5] चाहे आप करोडो[6] का धन[7] दे[8] तो भी तुम्हारे बिना वह धन हम न लेगे, अत· भक्ति दीजिये।

१७९-(गुजराती) राज विद्याधर ताल

एह्वो[1] येक तूं रामजी नांउं रूडो[2]।
ताहरा नांउं बिना बीजो[3] सबै ही कूडो[4] ॥ टेक ॥
तुम्ह बिना अवर कोई कलि मां नहीं, सुमरतां संत नें साद[5] आपे[6]।
कर्म कीधा[7] कोटि छोडवै बाधो, नांउं लेतां खिणत ही ये कापे[8]॥ १ ॥
संत नें सांकडो दुष्ट पीडा करे, वाहरें[9] वाहलौ[10] वेगि आवे।
पापनां पुज पह्वां करी लीधो[11], भाजिया भै भ्रम जोनि न आवे ॥ २ ॥
साधनें दुहेलो तहां तूं आकुलो, माहरो माहरो करीनें धाए।
दुष्ट नें मारिबा संत नें तारिबा, प्रकट थावा[12] तहां आप जाए ॥ ३ ॥
नाम लेतां खिण नाथ तें एकले, कोटिनां कर्मनां छेद कीधा[13]।
कहै दादू हिवें[14] तुम्ह बिना को नहीं, साखि बोलें जे शरण लीधा ॥ ४ ॥

हे रामजी ! ऐसे[1] आप अद्वितीय है, और आपका नाम ऐसा श्रेष्ठ[2] है कि आपके नाम बिना अन्य[3] जो भी है, वे सब मिथ्या[4] है। स्मरण करने से सत को आनन्द[5] दे[6] ऐसा आपके बिना इस

कलियुग मे अन्य कोई नही है। पूर्व मे किये[९] हुये कोटि कर्म-वन्धन से वँधे प्राणी को आपका नाम, स्मरण करने पर क्षण भर मे वन्धन काट[८] कर मुक्त करता है। दुष्ट सत को सताते है, तव सतो के प्यारे[१०]! आप शीघ्र ही सत की सहायतार्थ[९] सत के पास आते है, जिस सत ने स्मरण द्वारा पाप पुज को दूर करके प्रभु स्वरूप का ज्ञान प्राप्त[११] किया है और जिसका भेद जन्य भय भ्रम हृदय से चला गया है तथा ज्ञान द्वारा भावी जन्म का अभाव हो गया है, ऐसे सत को जव दु ख होता है तव आप व्याकुल होकर 'मेरा-मेरा' करते हुये उसकी सहायतार्थ, वह जहा होता है, वहा ही जाने के लिए दौड़ पडते हे, दुष्ट को मारने और सत की रक्षा करने के लिए वहा जाकर प्रकट हो जाते[१२] है। हे नाथ! आपने आपका नाम लेते ही अन्य किसी के सहयोग विना अकेले ही भक्तो के करोड़ो कर्म काट दिये[१३] है। आपके विना अव[१४] हमारा कोई भी आश्रय नही है, कारण, जिन सतो ने आपकी शरण ली है, वे आपकी महिमा की ऐसी ही साक्षी देते है।

साँभर मे भूधरदास नामक एक साधु अपने शिष्यो के सहित महाराज को सताने गया था, उस समय यह पद कहा था। प्रसग कथा दृ सु सि त ७-२६८ मे देखो।

१८०-परिचय विनती। राज विद्याधर ताल

हरि नाम देहु निरंजन तेरा, हरि हर्ष जपै जिय मेरा॥ टेक॥
भाव भक्ति हेत हरि दीजे, प्रेम उमँग मन आवै।
कोमल बचन दीनता दीजे, राम रसायन भावै॥ १॥
विरह वैराग्य प्रीति मोहि दीजे, हृदय साच सत भाखू।
चित चरणों चिंतामणि दीजे, अंतर दृढ कर राखू॥ २॥
सहज सतोष शील सब दीजे, मन निश्चल तुम लागै।
चेतन चिन्तन सदा निवासी, संग तुम्हारे जागै॥ ३॥
ज्ञान ध्यान मोहन मोहि दीजे, सुरति सदा सँग तेरे।
दीन दयाल दादू को दीजे, परम ज्योति घट मेरे॥ ४॥

परिचय पूर्वक विनय कर रहे है—हे निरजन! आपका हरि नाम मुझे दे, मेरा मन हरि नाम को हर्षित होकर जपेगा। हे हरे! भाव और प्रेमाभक्ति दीजिये, मेरे मन मे प्रेम की लहर उठने लगे ऐसी कृपा कीजिये। कोमल वचन, दीनता, राम-रसायन प्रिय लगने की योग्यता, विरह, वैराग्य, प्रीति, हृदय मे सत्य धारण और सत्य बोलने की क्षमता, चित्त मे आपके चरण तथा हृदय मे नाम चिन्तामणि को दृढ़ता से रख सकू, ऐसा बल और स्वाभाविक शील, सतोषादि दिव्य गुण प्रदान करने की कृपा करिये। मेरा मन निश्चल होकर आप मे ही लगे, सदा आपके चेतन स्वरूप का चिन्तन करते हुये तथा आपके सग जागते हुये निवास करे। हे विश्व-विमोहन! अपना ध्यान और ज्ञान प्रदान करे। मेरी वृत्ति सदा आपके सग रहे और दीन दयालो! मेरे अन्त करण मे आपके स्वरूप रूपा परम-ज्योति जगती रहे, ऐसी योग्यता प्रदान करे।

१८१-आशीर्वाद मंगल। झपताल

जय जय जय जगदीश तूं, तूं समर्थ सांई।
सकल भुवन[1] भानैं[2] घडै, दूजा को नांहीं ॥ टेक॥
काल मीच[3] करुणा करै, जम किंकर[4] माया।
महा जोध बलवंत बली, भय कँपै राया॥ १ ॥
जरा[5] मरण तुम तैं डरै, मन को भय भारी।
काम-दलन करुणामई, तूं देव मुरारी॥ २ ॥
सब कंपैं करतार तैं, भव बंधन पाशा।
अरि रिपु भंजन भय गता, सर्व विघ्न विनाशा॥ ३ ॥
सिर ऊपर सांई खडा, सोही हम मांहीं।
दादू सेवक राम का निर्भय, न डरांहीं॥ ४ ॥

आशीर्वादात्मक मगल कर रहे है—हे जगदीश्वर ! आप सर्व प्रकार समर्थ स्वामी है। आपकी मन, वचन, कर्म से जय हो। सपूर्ण लोको[1] को आप ही उत्पन्न और नष्ट[2] करते है। इस कार्य को करने वाला आपके बिना अन्य कोई भी नही है। काल, मृत्यु[3], यमदूत[4] और माया ये सभी आपके आगे करुणा-पूर्ण विनय करते है। महान् योद्धा, बल-सपन्न बलि जैसे राजा भी आपके भय से कापते है। बुढापा[5], मृत्यु भी आपसे डरते है, मन को भी आपसे बडा भय लगता है। मुरारि देव ! आप काम के नाशक और करुणामय है। आप सृष्टि-कर्त्ता से सभी सासारिक बधन व माया-जाल कापते है। आप बाह्य शत्रु और आतरिक कामादि वैरियो के सहारक तथा सभी विघ्नो के नाशक है। आपकी कृपा से भक्तो के भय दूर हो गये है। जो परमात्मा सबके शिर पर है, वे ही हमारे हृदय मे है। इसीलिए हम राम-भक्त निर्भय है, डरते नही।

१८२-हितोपदेश। त्रिताल

हरि के चरण पकर मन मेरा, यहु अविनाशी घर तेरा॥ टेक॥
जब चरण कमल रज पावै, तब काल व्याल बौरावै।
तब त्रिविधि ताप तन नाशै, तब सुख की राशि विलासै॥ १ ॥
जब चरण कमल चित लागै, तब माथै मीच न जागै।
तब जन्म जरा सब क्षीना, तब पद पावन उर लीना॥ २ ॥
जब चरण कमल रस पीवै, तब माया न व्यापै, जीवै।
तब भरम करम भय भाजै, तब तीनों लोक विराजै॥ ३ ॥
जब चरण कमल रुचि तेरी, तब चार पदारथ चेरी।
तब दादू और न बांछै, जब मन लागै साँचै॥ ४ ॥

मन को हितकर उपदेश कर रहे है—मेरे मन ! हरी के चरण ग्रहण कर, यह अविनाशी प्रभु ही तेरा सच्चा घर है। जब तू प्रभु के चरण-कमलो की रज प्राप्त करेगा, तब काल रूप सर्प पागल हो जायगा अर्थात् तेरी ओर धावा न कर सकेगा। शरीर की त्रिताप नष्ट हो जायगी, सुख राशि का उपभोग होगा। यह निश्चित बात है कि जब प्राणी का मन प्रभु के चरण-कमलो मे लग जाता है, तब उसे मारने के लिए शिर पर मृत्यु सजग नही होती। पवित्र हृदय प्रभु-चरणो मे लीन होने से जन्म, जरा आदि सभी नष्ट हो जाते है। जब हरी के चरण-कमलो की भक्ति का रस पान करता हे, तब जीव को माया भी नही व्यापती, भ्रम, कर्म और भय दूर हो जाते है। ऐसा साधक तीनो लोको मे सबसे अधिक शोभा पाता है। हे मन ! जब तेरी प्रभु चरण-कमलो मे प्रीति होकर तू सत्य प्रभु मे लग जायगा, तब प्रभु को छोड़कर अन्य कुछ भी न चाहेगा और अर्थ, धर्म, क़ाम, मोक्ष, ये चारो पदार्थ दासी के समान तेरी सेवा करेंगे।

१८३-सत उपदेश। राजमृगाक ताल

सतो ! और कहो क्या कहिये,
हम तुम सीख इहै सतगुरु की, निकट राम के रहिये ॥ टेक ॥
हम तुम माहिं बसै सो स्वामी, साचे सौ सचु लहिये।
दर्शन परसन जुग जुग कीजै, काहे को दुख सहिये ॥ १ ॥
हम तुम सग निकट रहैं नेरे, हरि केवल कर गहिये।
चरण-कमल छाडि कर ऐसे, अनत काहे को बहिये ॥ २ ॥
हम तुम तारन तेज घन सुन्दर, नीके सौ निरबहिये।
दादू देख और दुख सब ही, तामे तन क्यो दहिये ॥ ३ ॥

साधक सन्तो को उपदेश कर रहे है—सन्तो ! कहो ! हम आप से और क्या कहे ? हमको तथा तुमको सद्गुरु का तो यही उपदेश है कि—सदा भजन द्वारा राम के पास रहे। वे स्वामी राम, हम तथा आप मे निवास करते है। भजन द्वारा उन सत्य प्रभु के दर्शन और स्पर्श का आनद लो, अन्य ओर वृत्ति लगाकर क्यो दु ख सहन करते हो ? हम और आप साथ ही एक मात्र हरि के स्वरूप चरणो को अपने प्रीति-हाथो से ग्रहण करके उनके निकट ही रहे। ऐसे प्रभु के चरण कमलो को छोड़ कर अन्य स्थान मे किस लिये जाना है ? ससार से तारने वाले चेतन-घन अति सुन्दर है और सब प्रकार से अच्छे परमात्मा के भजन मे ही हमे तथा तुम्हे निर्वाह करना चाहिए। देखो ! अन्य सब तो दु ख रूप ही है, उनमे अपने शरीर को दु खाग्नि से क्यो जला रहे हो ?

माला तिलकादि देने को गलता से वैरागी साधु आये थे, उन्हे यह पद कहा था। इसे सुनकर तीन तो उदास होकर चले गये थे, परन्तु छीतरदास जी दयालजी के शिष्य हो गये थे।

१८४ मन प्रति उपदेश। राजमृगांक ताल

मन रे, बहुरि न ऐसे होई।
पीछे फिर पछतायेगा रे, नींद भरे जनि[1] सोई ॥टेक॥
आगम सारे संचु करीले, तो सुख होवै तोही।
प्रीति करि पीव पाइये, चरणों राखो मोही ॥ १ ॥
ससार सागर विषम अति भारी, जनि[1] राखै मन मोही।
दादू रे जन राम नाम सौं, कश्मल[2] देही धोई ॥ २ ॥

मन को उपदेश कर रहे है—अरे मन! फिर ऐसा अवसर नही[1] प्राप्त होगा। तू मोहनिद्रा मे इच्छा भर कर क्यो सो रहा है ? समय व्यतीत होने पर पीछे तुझे पश्चात्ताप करना होगा। सब वेदादिक शास्त्रो का सार जो परमात्मा का भजन ध्यान है, उसका सग्रह करेगा तब ही तुझे सुख होगा। तू प्रभु मे प्रीति कर तब ही तुझे प्रभु प्राप्त होगे और अपने चरण-कमलो मे रखेगे। अरे मेरे मन! अति महान् भयकर ससार-सागर मे मोह मत[1] रख। हे प्राणी! राम-नाम चिन्तन द्वारा सूक्ष्म-शरीर के पापो[2] को धो डाल।

१८५-काल चेतावनी

साथी, सावधान ह्वै रहिये।
पलक मांहिं परमेश्वर जानै, कहा होइ कहा कहिये॥ टेक॥
बाबा, बाट घाट कुछ समझ न आवै, दूर गवन हम जाना।
परदेशी पंथी चलै अकेला, औघट घाट पयाना॥ १ ॥
बाबा, संग न साथी कोइ नहि तेरा, यहु सब हाट पसारा।
तरवर पंखी सबै सिधाये, तेरा कौण गँवारा॥ २ ॥
बाबा, सबै बटाऊ पंथ सिरानैं, सुस्थिर नांहीं कोई।
अंतकाल को आगे पीछे, विछुरत बार न होई॥ ३ ॥
बाबा, काची काया कौण भरोसा, रैन गई क्या सोवै।
दादू संबल[1] सुकृत लीजे, सावधान किन होवै॥ ४ ॥

काल से सावधान कर रहे है—हे साथी! सचेत होकर रह, आगामी पलक मे क्या हो जाय, इसके विषय मे क्या कहा जा सकता है, परमेश्वर ही जानते है। हे बाबा! हमे चल कर दूर जाना है और इस मार्ग मे काम-क्रोधादिक विकट घाटियो के उल्लघन करने का कुछ उपाय भी नही समझ मे आता। एक तो यह जीव परदेशी है और जिस पथ मे कामादि-विकट घाटिया है, उसमे इसे एकाकी चलना है। हे बाबा! इस ससार मे तेरे सग चलने वाला तेरा साथी कोई भी नही है। यह धन-जनादिक सब तो हाट की वस्तुओ के फैलाव के समान है, जैसे उन वस्तुओ का फैलाव सायकाल नही रहता, ऐसे ही ये सब नही रहने वाले है। जैसे सायकाल को आकर वृक्ष पर बैठने वाले पक्षी प्रात चले जाते है, वैसे ही तेरे कुटुम्बी चले गये है, हे मूर्ख! बता, इनमे तेरा कौन

है ? सभी प्राणी पथिक है और मार्ग चल रहे है, स्थिर रहने वाला कोई भी नहीं है। अन्त समय आने पर किसी का पहले और किसी का पीछे वियोग होगा। अरे बाबा ! यह शरीर कच्चे घट के समान शीघ्र नष्ट होने वाला है, इसके स्थायी रहने का क्या भरोसा है ? तेरी आयु रात्रि व्यतीत हो गई है, अब क्यो सो रहा है ? इस कठिन मार्ग को पार करने के लिये पुण्य कार्यों का सहारा[१] लेना पड़ेगा। अत अभी से सत्कर्म करने को सावधान क्यो नही होता ?

१८६-तर्क चेतावनी। शूल ताल

मेरा मेरा काहे को कीजे रे, जे कुछ संग न आवे।
अनत करी नै धन धरीला रे, तेऊ तो रीता जावे॥ टेक ॥
माया बंधन अंध न चेते रे, मेर[१] माहिं लपटाया।
ते जाणूं हूं यह विलासौं, अनत विरोधें खाया॥ १ ॥
आप स्वारथ यह विलूधा[२] रे, आगम[३] मरम[४] न जांणें।
जम कर माथे बाण धरीला, ते तो मन ना आंणे॥ २ ॥
मन विचारि सारी ते लीजे, तिल मांही तन पडिबा।
दादू रे तहँ तन ताडीजे, जेणें मारग चढिबा॥ ३ ॥

तर्क पूर्वक चेतावनी दे रहे है—जो भी ससार मे पदार्थ है, वे प्राणी के साथ तो कुछ आते नही, फिर मेरा-मेरा क्यो किया जाय ? जो अहकार-वश अनीति करके धन सग्रह करते है, वे भी तो खाली हाथ ही जाते है ? मदाध प्राणी माया बन्धन मे बधे हुये ममता[१] मे लिप्त हो रहे है, विरोध द्वारा दूसरो से धन छीन कर खाते है और वे जानते है कि हम आनद ले रहे है। ये लोग अपनी स्वार्थ सिद्धि मे लगे[२] है, ये धर्म[३] का सार[४] व शास्त्र[३] नीति[४] नहीं जानते और आगे[३] इसका क्या परिणाम होगा, यह रहस्य[४] भी नहीं जानते। इनके शिर पर मारने के लिए यम ने अपने हाथ मे बाण धारण कर रक्खा है, उसे मन मे स्मरण नही करते। अरे प्राणी ! यह शरीर क्षण भर मे नष्ट होने वाला है, जिस मार्ग द्वारा तुझे प्रभु की ओर ऊचे चढ़ना है, उसी मे शरीर को साधन-ताड़ना दे और मन मे विचार करके परब्रह्म रूप अखड वस्तु को आत्म रूप से ग्रहण कर।

१८७-हितोपदेश विनती। शूल ताल

सन्मुख भइला रे, तब दुख गइला रे, ते मेरे प्राण अधारी।
निराकार निरंजन देवा रे, लेवा तेह विचारी॥ टेक॥
अपरपार परम निज सोई, अलख तोरा विस्तारं।
अकुर बीजे सहज समाना रे, ऐसा समर्थ सार॥ १ ॥
जे तै कीन्हा किन्हि इक चीन्हा रे, भइला ते परिमाण।
अविगत तोरी विगति न जाणू, मै मूरख अयानं॥ २ ॥
सहजैं तोरा ए मन मोरा, साधन सौ रँग आई।
दादू तोरी गति नहि जाने, निर्वाहो कर लाई॥ ३ ॥

हितकर उपदेश करके विनय कर रहे है—जो भजन द्वारा मेरे प्राणाधार प्रभु के सन्मुख होगे, तब उनके दु ख चले जायेंगे। वे निरजन देव निराकार है, अपरपार है, और वे ही सबके अत्यत निजी है। हे मन इन्द्रियो के अविषय प्रभो ! यह सब विस्तार आप ही का है। जैसे बीज मे अकुर समाया हुआ रहता है, वैसे ही आपके सहज स्वरूप मे सब ससार समाया हुआ है, आप ऐसे समर्थ और ससार के सार रूप है। जो आपने किया है, वह वास्तव मे किसी-किसी महापुरुष ने ही पहचाना है और जिनने पहचाना है, वे आपके समान ही हो गये है। हे मन इन्द्रियो के अविषय प्रभो ! मै तो आपकी विशेष रूप गति को नही जानता, कारण, मूर्ख और अज्ञानी हूँ। साधन-रग से रगा जाकर यह मेरा मन सहजे-सहजे आप का हुआ है, तो भी मै आपकी गति नहीं जान पाता। अत आप ही मेरा हाथ पकड कर मुझे निभाओ।

१८८-मन प्रति शूरातन। त्रिताल

हरि मारग मस्तक दीजिये, तब निकट परम पद लीजिये ॥ टेक॥
इस मारग मांही मरणा, तिल पीछे पांव न धरणा।
अब आगे होइ सो होई, पीछे सोच न करणा कोई ॥ १ ॥
ज्यों शूरा रण झूझै, तब आपा पर नहि बूझै।
शिर साहिब काज सॅवारै, घण घावॉ आपा डारै ॥ २ ॥
सती सत गहि साचा बोलै, मन निश्चल कदे न डोलै।
वाके सोच पोच जिय ना आवै, जग देखत आप जलावै ॥ ३ ॥
इस शिर सौं साटा कीजै, तब अविनाशी पद लीजै।
ताका तब शिर साबत होवै, जब दादू आपा खोवै ॥ ४ ॥

मन को शौर्य की प्रेरणा कर रहे है—प्रभु प्राप्ति के मार्ग मे अपना अहकार रूप शिर दिया जायगा, तब हृदय मे समीप ही परमात्मा रूप परम पद प्राप्त होगा। इस परमार्थ मार्ग मे मरने का प्रसग आ जाये तो भी एक तिल भर भी पीछे नही हटना चाहिए। इसमे प्रवृत्त होने पर आगे जो होता है, वही होगा अर्थात् प्रभु ही प्राप्त होगा। पीछे के धन, जनादि का सोच कोई भी न करे। जैसे वीर युद्ध क्षेत्र मे युद्ध करता है, तब अपने पराये का ज्ञान उसे नहीं रहता। वह शिर देकर भी अपने स्वामी का कार्य ठीक करता है, वैसे ही साधक विवेक-वैराग्यादि शस्त्रो के बहुत-से घावो द्वारा अपना अहकार त्याग कर प्रभु को प्राप्त करे। सती सत्य ग्रहण करके आगामी सत्य बाते कहती है, उसका मन निश्चल रहता है, कभी भी चचल नही होता, उसके मन मे कायरता और चिन्ता नही आती, जगत के प्राणियो के देखते-देखते अपने शरीर को जलाकर पति-लोक को जाती है, वैसे ही सत प्रभु-परायण होकर प्रभु को प्राप्त होते है। जब अविनाशी पद के बदले मे अपना अहकार-शिर दिया जाता है तब ही अविनाशी पद प्राप्त होता है। जब प्राणी अपने जीवत्व अहकार को नष्ट कर देता है, तब उसका शिर पूर्ण प्रमाणित माना जाता है।

१८९-कलियुगी। त्रिताल

झूठा कलिजुग कह्या न जाइ, अमृत को विष कहै बनाइ ॥ टेक॥
धन को निर्धन, निर्धन को धन, नीति अनीति पुकारै।
निर्मल मैला, मैला निर्मल, साधु चोर कर मारै॥ १ ॥
कचन काच, काच को कंचन, हीरा कंकर भाखै[१]।
माणिक मणिया, मणिया माणिक, साच झूठ कर नाखै॥ २ ॥
पारस पत्थर, पत्थर पारस, कामधेनु पशु गावै।
चदन काठ, काठ को चदन, ऐसी बहुत बनावै॥ ३ ॥
रस को अणरस, अणरस को रस, मीठा खारा होई।
दादू कलिजुग ऐसा बरतै, सॉचा विरला कोई॥ ४ ॥

कलियुगी प्राणियो का परिचय दे रहे है—यह कलियुग का समय इतना झूठा है कि पूर्ण रूप से तो कहा भी नही जाता। कलियुगी प्राणी अमृत रूप वाणी को भी उसमे मिथ्या मिला, विष बना कर कहते है। राम-धन युक्त को निर्धन, राम-धन रहित पदार्थों को धन, भक्तियुक्त उत्तम नीति को अनीति, भजन द्वारा निर्मल को जाति दोष लगाकर मैला, दुर्गुणो से मलीन को जाति द्वारा निर्मल कहते है। साधु को चोर कहकर मारते है। कचन समान श्रेष्ठो को तो कॉच के समान और केवल वस्त्र भूषणादि की चमक युक्त कॉच के सदृश्यो को कचन के समान श्रेष्ठ और हरि नाम हीरा को ककर के समान कहते[१] है। माणिक्य समान श्रेष्ठ विचारशीलो को काष्ठ-मणिया के समान, उत्तम-विचार हीन स्वार्थ सिद्धि के लिए मधुर बोलने वालो को माणिक्य के समान श्रेष्ठ कहते है और सत्य को मिथ्या कहकर त्याग देते है। सद्गुरु रूप पारस को साधारण नर रूप पत्थर, साधारण नर रूप पत्थर को ज्ञान की बातो द्वारा सद्गुरु रूप पारस और कामधेनु को पशु कहते है। सत रूप चदन को सामान्य मनुष्य रूप काष्ठ और सामान्य मनुष्य रूप काष्ठ को सुन्दर बातो द्वारा सत रूप चदन कहते है। राम-भजन रस को अनरस और हास्यादि को रस, अति मधुर ब्रह्म-विचार को खारा और कटु विषयो को मधुर कहते है। अन्य भी ऐसी ही बहुत-सी बाते बनाते है। इसी प्रकार कलियुग मे बर्ताव करते है। सच्चा मानव कलियुग मे कोई विरला ही होता है।

१९०-भगवन्त भरोसा। ललित ताल

दादू मोहि भरोसा मोटा[१]।
तारण तिरण सोई सग मेरे, कहा करै कलि खोटा ॥ टेक॥
दौ[१] लागी दरिया तै न्यारी, दरिया मझ न जाई।
मच्छ कच्छ रहै जल जेते, तिन को काल न खाई॥ १ ॥
जब सूवै पिजर घर पाया, बाज रह्या बन माहीं।
जिनका समर्थ राखणहारा, तिनको को डर नाहीं॥ २ ॥

साचै झूठ न पूजै कबहूँ, सत्य न लागै काई ।
दादू साचा सहज समाना, फिर वै झूठ विलाई ॥ ३ ॥

भगवद् भरोसा दिखा रहे है—मुझको भगवान् का ही महान्[१] भरोसा है, भक्तो को ससार से तारने वाले और स्वय सब विकारो से तिरे हुये प्रभु मेरे साथ है। अत खोटा कलियुग मेरा क्या कर सकता है ? जैसे समुद्र वा नदी से बाहर वन मे अग्नि[२] लगी हो, वह समुद्र वा नदी मे नही जाती और उनके जल मे रहने वाले मत्स्य, कच्छपादि को वह अग्नि रूप काल नही मार सकता और जैसे शुक पक्षी को घर तथा पिजरा प्राप्त हो जाता है, तब उसका शत्रु बाज पक्षी वन मे ही रह जाता है, घर आकर पिजरे मे स्थित शुक पक्षी को नही मार सकता। वैसे ही जिन भक्तो का रक्षक समर्थ परमात्मा है, उनको कलि और कालका कुछ भी भय नही होता। सच्चा भक्त झूठे देव को कभी नही पूजता, सच्चे की समता झूठा कभी नही कर सकता। सत्य को किसी प्रकार का दोष नही लगता। सच्चा भक्त तो सहज स्वरूप परब्रह्म मे समाता है और झूठा पुन ससार मे ही विलीन होता है।

१९१-साच झूठ निर्णय । प्रतिताल

सांई को साच पियारा।
साचै साच सुहावै देखो, साचा सिरजनहारा ॥ टेक ॥
ज्यो घण घावॉ[१] सार घडीजे, झूठ सबै झड जाई।
घण के घाऊं सार रहेगा, झूठ न मांहिं समाई ॥ १ ॥
कनक कसौटी अग्नि मुख दीजे, पंक[२] सबै जल जाई।
यों तो कसणी साच सहेगा, झूठ सहै नहिं भाई ॥ २ ॥
ज्यो घृत को ले ताता कीजे, ताइ ताइ तत कीन्हा।
तत्तैं तत्त रहेगा भाई, झूठ सबै जल खीना ॥ ३ ॥
यों तो कसणी साच सहेगा, साचा कस कस लेवै।
दादू दर्शन साचा पावै, झूठे दरस न देवै ॥ ४ ॥

सत्य झूठ का निर्णय दिखा रहे है—देखो भाई ! सच्चे को सत्य ही अच्छा लगता है। सृष्टि कर्ता परमात्मा सत्य है, अत उन प्रभु को सत्य ही प्रिय है। जैसे घन की चोट[१] मार-मार कर लोहे का कुछ बनाते है, तब उसका काट अलग हो जाता है और लोहा रह जाता है, वैसे ही सद्गुरु-घन के शब्दाघातो से सत्य रूप सार ही रहेगा। मिथ्या उसमे न समाकर अलग हो जायगा। सुवर्ण की परीक्षा करने पर सदोष हो तो अग्नि देते है, तब उसका सब मैल[२] जल जाता है वैसे ही ऐसी कठोर परीक्षा सच्चा ही सह सकता है, झूठा नही सह सकता, वह तो नष्ट ही हो जाता है। जैसे घृत को उष्ण कर, उसके फूल आदि को निकाल के सार रूप घृत रख लेते है, वैसे ही अन्त करण के सब दोष निकाल देने पर निर्दोष आत्म-तत्त्व ब्रह्म-तत्त्व मे मिल कर रहेगा। सपूर्ण मिथ्या मायिक प्रपच की सभी भावना क्षीण होकर ज्ञान द्वारा कर्म राशि जल जायगी किन्तु इस प्रकार की कठोर परीक्षा सच्चा साधक ही सह सकेगा और सच्चा सद्गुरु ही परीक्षा करके

उसके दोषो को दूर करेगा। इस प्रकार निर्मल और सच्चा साधक ही परमात्मा का दर्शन प्राप्त करेगा। झूठे को वे सत्य प्रभु अपना दर्शन नही देते।

१९२-करणी बिना कथनी। प्रतिताल

बातै बाद जाहिगी भइये, तुम जनि[1] जानो बातनि पइये ॥ टेक॥
जब लग अपना आप न जानै, जब लग कथनी काची।
आपा जान साई को जानै, तब कथनी सब साची ॥ १ ॥
करनी बिना कत नहि पावै, कहै सुनै का होई।
जैसी कहै करै जे तैसी, पावैगा जन सोई ॥ २ ॥
बातनि ही जे निर्मल होवै, तो काहे को कस लीजे।
सोना अग्नि दहै दस बारा, तब यहु प्रान पतीजै ॥ ३ ॥
यों हम जाना मन पतियाना, करनी कठिन अपारा।
दादू तन का आपा जारै, तो तिरत न लागै बारा ॥ ४ ॥

कर्त्तव्य रहित कथन का परिचय दे रहे है—भाइयो ! केवल बातो द्वारा तो आयु व्यर्थ ही चली जायगी। तुम मत[1] समझो कि बातो से ही हमे प्रभु मिल जायेंगे। जब तक अपने आपको नही जानोगे, तब तक परमार्थ का कथन व्यर्थ ही है। आत्मस्वरूप जान कर प्रभु को पहचानोगे तब ही परमार्थ सम्बन्धी सब कथन सच्चा माना जायगा। कर्त्तव्य के बिना प्रभु प्राप्त नही होते, केवल कहने सुनने से ही क्या होता है ? जैसी प्रभु सबधी बाते कहता है, वैसा ही करता है, वही प्रभु को प्राप्त करेगा। यदि बातो से ही हृदय निर्मल हो जाय तो साधक जन साधन कष्ट क्यो सहन करे ? सदोष सुवर्ण को अग्नि मे दस बार जलाया जाता है, तब ही प्राणी को उसके शुद्ध होने का विश्वास होता है। इस प्रकार ही हमने परमात्मा को जाना है, तब ही हमारे मन को विश्वास हुआ है। कर्त्तव्य करना अति कठिन है। यदि तन का अहकार जला दे तो ससार-सिन्धु को तैर कर पार करने मे कुछ भी देर नही लगती।

१९३-उपदेश। पजाबी त्रिताल

पडित, राम मिलै सो कीजै।
पढ पढ वेद पुराण बखानै, सोइ तत्त्व कह दीजै ॥ टेक॥
आतम रोगी विषम बियाधी, सोई कर औषधि सारा।
परसत प्राणी होइ परम सुख, छूटै सब ससारा ॥ १ ॥
ए गुण इन्द्री अग्नि अपारा, ता सन जलै शरीरा।
तन मन शीतल होइ सदा सुख, सो जल न्हावो नीरा ॥ २ ॥
सोई मारग हमहिं बताओ, जेहि पंथि पहुँचै पारा।
भूल न परै उलट नहि आवै, सो कुछ करहु विचारा ॥ ३ ॥

गुरु उपदेश देहु कर दीपक, तिमिर[1] मिटै सब सूझै ।
दादू सोई पंडित ज्ञाता, राम मिलन की बूझै ॥ ४ ॥

पडित जगजीवनजी को उपदेश कर रहे है—हे पडित ! जिससे राम प्राप्त हो, वही उपाय करो और वेद पुराणादि पढ-पढ कर विद्वान् लोग जिस परब्रह्म तत्त्व का व्याख्यान करते है, उसी तत्त्व की बात हमारे को कहो। जीवात्मा-रोगी के जन्मादि रूप भयकर रोग लगा है, उसकी जो सार रूपी औषधि है, वही करो, जिससे प्राणी प्रभु से मिलकर परम सुखी हो जाय। ये विषय और इन्द्रिय अपार अग्नि रूप है, उनसे शरीर जल रहा है। जिस जल के स्नान से तन-मन शात होकर नित्य सुख प्राप्त हो उसी जल मे स्नान करो और जिससे प्राणी ससार के पार पहुँच सके और भूलकर भी उसमे वापस न लौट सके अर्थात् पुनर्जन्म न हो, ऐसा मार्ग हमे बताओ और उसी का कुछ विचार करो। सद्गुरु उपदेश-दीपक अन्त करण रूप हाथ मे रक्खो, जिससे अज्ञान अन्धकार[1] नष्ट होकर सब कुछ भासने लगे। हमारे मत से तो वही ज्ञानी पडित है, जो राम के मिलने का साधन सम्यक् प्रकार समझता-बूझता हो।

यह पद प जगजीवनजी को आमेर मे कहा था। प्रसग कथा दृ सु सि ११-१७ मे देखो।

१९४-उपदेश । प्रतिताल

हरि राम बिना सब भर्मि गये, कोई जन तेरा साच गहै ॥ टेक ॥
पीवै नीर तृषा तन भाजे, ज्ञान गुरु बिन कोइ न लहै ।
प्रकट पूरा समझ न आवै, तातैं सो जल दूर रहै ॥ १ ॥
हर्ष शोक दोउ सम कर राखै, एक एक के सँग न बहै ।
अनतहि जाइ तहां दुख पावै, आपहि आपा आप दहै ॥ २ ॥
आपा पर भरम सब छाडै, तीन लोक पर ताहि धरै ।
सो जन सही साच को परसै, अमर मिलै नहि कबहुँ मरै ॥ ३ ॥
पारब्रह्म सौ प्रीति निरतर, राम रसायन भर पीवै ।
सदा आनंद सुखी साचे सौं, कहै दादू सो जन जीवै ॥ ४ ॥

उपदेश कर रहे है—हरि, राम, आदि नामो के चिन्तन बिना सब ससारी प्राणी भ्रमित हो रहे है। प्रभो ! कोई विरला भक्त ही आपके सत्य स्वरूप को पहचान कर निरन्तर नाम-चिन्तन-साधन ग्रहण करता है। जैसे जल-पान करने से प्यास दूर होती है, जल बिना नही। वैसे ही गुरु से ज्ञान प्राप्त होता है, गुरु बिना कोई भी ज्ञान प्राप्त नही कर सकता और ज्ञान बिना प्रत्यक्ष रूप से पूर्ण ब्रह्म का स्वरूप समझ मे नही आता। इसीलिए सासारिक आशा-तृष्णा रूप प्यास को मिटाने वाला वह ब्रह्म-जल प्राणी को दूर ही प्रतीत होता है। जो हर्ष-शोकादि को सम रखता है अर्थात् उनके वेग को हृदय मे नही आने देता, कभी आ भी जाय तो उनमे किसी एक-एक गुण के साथ न जाकर उनको विरोधी गुणो द्वारा नष्ट करता है क्योकि उन-गुणो के साथ होकर जहा भी अनात्म पदार्थो

मे जाता है, वहा ही दु ख प्राप्त करता है। अत साधक को चाहिए-वह स्वय ही आत्म-ज्ञान द्वारा अपनी वृत्ति के अनात्म अहकार को जलावे और अपना-पराया आदि भेद जन्य सपूर्ण भ्रम को त्याग कर त्रिगुणात्मक तीनो लोको से परे शुद्ध चेतन मे वृत्ति को रक्खे। वही जन निश्चित रूप से सत्य-स्वरूप ब्रह्म को प्राप्त होता है और अमर होकर उसी मे मिल जाता है, फिर कभी भी मृत्यु को प्राप्त नही होता। हम यथार्थ ही कहते है, वह जन सत्य ब्रह्म से मिलकर ब्रह्मानन्द द्वारा सुखी हुआ सदा ब्रह्म रूप से जीवित रहता है।

१९५-भ्रम विध्वसन। प्रतिताल

जग अधा नैन न सूझै, जिन सिरजे ताहि न बूझै ॥ टेक ॥
पाहण की पूजा करै, करै आत्म घाता।
निर्मल नैन न आवई, दोजख दिशि जाता ॥ १ ॥
पूजै देव दिहाडिया, महा-माई मानै।
प्रकट देव निरजना, ताकी सेव न जानै ॥ २ ॥
भैरू भूत सब भर्म के, पशु प्राणी धावै[1]।
सिरजनहारा सबन का, ताको नहि पावैं ॥ ३ ॥
आप स्वारथ मेदनी[2], का का नहि करही।
दादू साचे राम बिन, मर मर दुख भरही ॥ ४ ॥

उपास्य सम्बन्धी भ्रम दूर कर रहे है—जगत् के प्राणी अज्ञान से अधे हो रहे है, उनके नेत्रो से उनका हित अनहित भी नही दीखता और जिन प्रभु ने उन्हे उत्पन्न किया है, उनको भी वे नहीं समझ पाते, इसीलिए पत्थर की पूजा करते है और बलि देने के निमित्त बकरे आदि का घात करते है। निर्मल साधन इनकी दृष्टि मे नही आता अर्थात् नही करते। इसी कारण नरक की ओर जाते दिखाई दे रहे है। भैरू आदि देवताओ को पूजते है, महामाई को मानते है और बुरी दशा को प्राप्त होते है किन्तु जो सब विश्व मे प्रकट निरजन देव है, उनकी भक्ति करना नही जानते। भैरू, भूतादि सब भ्रम मय है, पशुओ के समान प्राणी ही उनकी उपासना[1] करते है। इसीलिए सर्व विश्व के रचयिता जो प्रभु है, उनको न प्राप्त होकर जन्मादि प्रवाह मे ही बहते है। अपने स्वार्थ सिद्धि के लिये पृथ्वी[2] के प्राणी क्या-क्या नही करते ? सभी कुछ कर डालते है। किन्तु सत्य-स्वरूप राम की उपासना बिना बारबार मर-मर कर जन्मते है और नाना क्लेश भोगते है।

१९६-अन्य उपासक विस्मयवादी भ्रम। रंगताल

साचा राम न जाणै रे, सब झूठ बखाणै रे ॥ टेक ॥
झूठे देवा झूठी सेवा, झूठा करै पसारा।
झूठी पूजा झूठी पाती, झूठा पूजणहारा ॥ १ ॥

झूठा पाक करै रे प्राणी, झूठा भोग लगावै।
झूठा आडा पडदा देवै, झूठा थाल बजावै ॥ २ ॥
झूठे वक्ता झूठे श्रोता, झूठी कथा सुनावै।
झूठा कलिजुग सब को मानै, झूठा भ्रम डिढावै ॥ ३ ॥
स्थावर जगम जल थल महियल[1], घट घट तेज समाना।
दादू आतम राम हमारा, आदि पुरुष पहिचानां ॥ ४ ॥

परमात्मा से भिन्न अन्य की उपासना करने वालो का आश्चर्य तथा उनका भ्रम दिखा रहे है—सासारिक सभी प्राणी सत्य स्वरूप राम को नही जानते, मिथ्या का ही कथन करते है। उनके देव, सेवा, सब फैलाव, पूजा, पात्रादि, पुजारी सब मिथ्या ही है। प्राणी मिथ्या पदार्थों के पाक बनाते है, मिथ्या पडदा लगाते है और मिथ्या ही भोग लगा कर मिथ्या ही थाल बजाते है। कर्त्तव्य शून्य झूठे वक्ता झूठी कथा सुनाते है और झूठे श्रोता सुनते है। झूठे कलियुगी प्राणी सब प्रकार मिथ्या को ही मानते है और अन्यो को भी मिथ्या भ्रम ही दृढ कराते है किन्तु हमने तो जल, स्थल तथा नभ[1] के स्थिर और चलने वाले सभी प्राणियो के घट-घट मे जो आदि पुरुष चेतन तेज समाया हुआ है, उसी को पहचाना है। वह राम ही हमारा आत्म-स्वरूप है।

१९७-निज मार्ग निर्णय। चौताल

मैं पंथी एक अपार का, मन और न भावै।
सोइ पंथ पावै पीव का, जिसे आप लखावै ॥ टेक ॥
को पंथ हिन्दू तुरक के, को काहू राता।
को पंथ सोफी सेवडे, को सन्यासी माता ॥ १ ॥
को पंथ जोगी जगमा, को शक्ति पंथ ध्यावै।
को पथ कमडे कापडी, को बहुत मनावै ॥ २ ॥
को पंथ काहू के चलै, मैं और न जानूं।
दादू जिन जग सिरजिया, ताही को मानूं ॥ ३ ॥

अपने मार्ग का निर्णय करके दिखा रहे है—हम तो अद्वैत अपार परब्रह्म की प्राप्ति के साधन रूप मार्ग मे चल रहे है। हमारे मन को अन्य कोई भी अच्छा नही लगता। उस प्रभु की प्राप्ति का मार्ग वही प्राप्त कर सकता है, जिसे वे स्वय प्रभु ही दिखाते है। नही तो, कोई हिन्दू और कोई तुरको के पंथ मे चलता है। कोई अन्य किसी मे अनुरक्त है। कोई सूफी, कोई सेवडे, कोई सन्यासियो के पथ मे मस्त रहता है। कोई योगी, कोई जगम और कोई शक्ति पथ की उपासना करता है। कोई चमार-साधु कामडो के और कोई नाना कपडो की गुदड़ी रखने वाले अघोरियो के पथ मे चलता है। कोई बहुतो को मानता है। कोई किसी के भी पथ मे चले किन्तु हम तो अन्य को हितकर न जानकर, जिसने ससार की रचना की है, उस प्रभु की प्राप्ति के मार्ग को ही अपने कल्याण का साधन मानते है।

१९८-साधु मिलाप मगल । चौताल

आज हमारे रामजी, साधु घर आये ।
मगलाचार चहु दिशि भये, आनन्द बधाये ॥ टेक ॥
चौक पुराऊ मोतिया, घिस चन्दन लाऊ ।
पच पदारथ पोइ के, यहु माल चढाऊ ॥ १ ॥
तन मन धन करू वारनै, प्रदक्षिणा दीजे ।
शीश हमारा जीव ले, नौछावर कीजे ॥ २ ॥
भाव भक्ति कर प्रीति सौ, प्रेम रस पीजे ।
सेवा वन्दन आरती, यहु लाहा लीजे ॥ ३ ॥
भाग हमारा हे सखी, सुख सागर पाया ।
दादू का[1] दर्शन किया, मिले त्रिभुवन राया ॥ ४ ॥

सन्तो के दर्शन से होने वाले मगल का परिचय दे रहे है—आज हमारे सन्तरूप रामजी घर पर पधारे है। इस कारण चतुष्टय अन्त करण रूप चारो ही दिशाओ मे तथा इन्द्रियादि मे आनन्द की वृद्धि हुई है। हम मोतियो से चौक पूरते है, चदन घिसके लगाते है। अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष और प्रेम इन पाचो पदार्थो वा पच विषय-विरक्ति रूप पाच पदार्थों की माला बनाकर सतो के चढाते है। तन, मन, धन, निछावर करके प्रदक्षिणा देते है तथा हमारा शिर और जीव भी लीजिये, हम आप पर निछावर करते है। हम भाव और प्रेमाभक्ति से प्रेम-रस का पान करते हुये सेवा, वन्दना और आरती करना रूप यह महान् लाभ ले रहे है। हे सत सखि ! हमारा महान् भाग्य था जिससे सुख-सागर सत प्राप्त हुये है। हम ने इन सतो का दर्शन क्या[1] किया, हमे तो ऐसा ज्ञात होता है कि—मानो त्रिभुवन के राजा परब्रह्म ही मिल गये है।

नरेना मे पूर्वकाल के सतो ने दर्शन दिया था, तब यह पद तथा साधु अग की १२१ वीं साखी कही थी। प्रसग कथा दृ सु सि त ११-१७ मे देखो।

१९९ सत समागम प्रार्थना । दादरा

निरजन नाम के रस माते, कोई पूरे प्राणी राते ॥ टेक ॥
सदा सनेही राम के, सोई जन साचे ।
तुम बिन और न जानहीं, रग तेरे ही राचे ॥ १ ॥
आन न भावै एक तू, सति साधु सोई ।
प्रेम पियासे पीव के, ऐसा जन कोई ॥ २ ॥
तुमहीं जीवन उर रहे, आनन्द अनुरागी ।
प्रेम मगन पिव प्रीतडी, लै तुम सौ लागी ॥ ३ ॥

जे जन तेरे रंग रंगे, दूजा रंग नांहीं ।
जन्म सुफल कर लीजिये, दादू उन मांहीं ॥ ४ ॥

सतो का समागम प्राप्त होने की प्रार्थना कर रहे है—जो कोई प्राणी पूर्ण रूप से निरजन राम के नाम-चिन्तन रस मे अनुरक्त होकर मस्त है और सदा राम-स्वरूप के प्रेमी है, वे ही जन सच्चे है और हे प्रभो ! जो आपके बिना अन्य किसी को भी सत्य नही जानते, आपकी भक्ति रूप रग मे ही रत है उनको अन्य कुछ भी प्रिय नही लगता, एक आप ही प्रिय लगते है, वे सच्चे साधु है। जिसके मन इन्द्रियादि एक मात्र प्रभु-प्रेम के ही प्यासे हो। ऐसा भक्त कोई विरला ही होता है। उसके हृदय मे आप ही जीवन रूप से रहते है। वह आपके स्वरूपानन्द का ही प्रेमी होता है। अपने प्रियतम आपके प्रेम मे मग्न रहता है, उसकी वृत्ति आप से ही लगी रहती है। इस प्रकार जो भक्त आपके भक्ति-रग मे रग हुये है, उनके हृदय पर दूसरा रग नही चढता। हमारा भी निवेदन है कि—उन सतो के समागम मे रहकर अपने जीवन को सफल करे।

२००-अत्यन्त निर्मल उपदेश। दादरा

चलु रे मन ! जहां अमृत वनां, निर्मल नीके सत जना ॥ टेक ॥
निर्गुण नांव फल अगम अपार, संतन जीवन प्राण अधार ॥ १ ॥
सीतल छाया सुखी सरीर, चरण सरोवर निर्मल नीर ॥ २ ॥
सुफल सदा फल बारह मास, नाना वाणी धुनि प्रकाश ॥ ३ ॥
तहां बास बसि अमर अनेक, तहं चलि दादू इहै विवेक ॥ ४ ॥

२००-२०१ मे अत्यन्त निर्मल उपदेश कर रहे है—अरे मन ! जहां सत्सग रूप अमृत वन है, वहा ही चल, उस वन मे परम निर्मल सत-वृक्ष है। उन वृक्षो मे निर्गुण ब्रह्म का नाम-फल प्राप्त होता है, जिसका चिन्तन रूप भक्षण करने से सन्तो का जीवन-प्राणाधार, मन इन्द्रियो का अविषय अपार प्रभु प्राप्त होता है। उस वन के सत-वृक्षो की शान्ति छाया शीतल है, उससे शरीर सुखी होता है। भगवत्-चरण सरोवर है, उसका ध्यान-जल प्राणी को निर्मल करता है। इस वन के नाम, ज्ञान आदि सभी फल सुन्दर है और यह वन बारह मास सदा ही फल देता है। इस वन मे इष्ट-पूर्त, नीति, सदाचार, भक्ति, योग और ज्ञानादिक गर्वित नाना वाणी रूप ध्वनि प्रकट होती रहती है। सत्सग वन मे निवास करके अनेक साधक अमर हो गये है। अत वहा ही चलना चाहिये। इस सत्सग-वन मे ही विवेक-ज्ञान प्राप्त होता है।

२०१-चौताल

चलो मन माहरा, जहां मित्र हमारा।
तहँ जामण मरण नहिं जाणिये, नहिं जाणिये ॥ टेक॥
मोह न माया मेरा न तेरा, आवागमन नही जम फेरा ॥ १ ॥

पिड न पडै प्राण नहि छूटै, काल न लागै आयु न खूटै ॥ २ ॥
अमर लोक तहँ अखिल शरीरा, व्याधि विकार न व्यापै पीरा ॥ ३ ॥
राम राज कोइ भिडै न भाजै, सुस्थिर रहणा बैठा छाजै ॥ ४ ॥
अलख निरंजन और न कोई, मित्र अम्हारा दादू सोई ॥ ५ ॥

हे मेरे मन ! वहा चल, जहा हमारा मित्र प्रभु है। मै तुझे बारम्बार कहता हू-वहा जाने पर जन्म-मरणादि क्लेशो को तो कोई जानता भी नही। वहा मोह-माया, मेरा-तेरा, आना-जाना, यम के द्वारा नरको मे फिराना आदि नही है, शरीर नही गिरता, प्राण नही निकलते, काल का कुछ भी बल नही लगता, आयु समाप्त नही होती। वह अमर लोक है, वहा पर सभी शरीरो को रोगादिक विकार जन्य पीड़ा नही होती। उस निरजन राम के राज्य मे न तो कोई युद्ध करता है और न कोई भयभीत होकर दौडता है। वहा तो सम्यक् स्थिरता पूर्वक बैठे हुये ही शोभा देते है अर्थात् ब्रह्म-निष्ठा ही रहती है। ऐसा अलख निरजन राम का स्वरूप ही है, अन्य कोई देश विशेष नही है और हमारा परम मित्र भी वही है।

२०२-बेली। त्रिताल

बेली आनन्द प्रेम समाइ।
सहजै मगन राम रस सींचै, दिन दिन बधती जाइ ॥ टेक ॥
सतगुरु सहजै बाही बेली, सहज गगन घर छाया।
सहजै सहजै कोपल मेल्हे, जानै अवधू राया ॥ १ ॥
आतम बेली सहजै फूलै, सदा फूल फल होई।
काया बाडी सहजै निपजै, जानै विरला कोई ॥ २ ॥
मन हठ बेली सूखन लागी, सहजै जुग जुग जीवै।
दादू बेलि अमर फल लागै, सहज सदा रस पीवै ॥ ३ ॥

परमार्थ बुद्धि-बेलि का परिचय दे रहे है—बुद्धि-लता प्रभु-प्रेमानन्द मे समा रही है, राम-भक्ति-रस के सिचन से प्रतिदिन बढ़ती जाती है और सहजावस्था मे जाकर परब्रह्म मे निमग्न होती है। यह परमार्थ बुद्धि-बेलि हृदय मे सद्गुरु ने लगाई है, अब यह सहज-स्वरूप ब्रह्म मे निमग्न होकर शरीर-घर पर फैल गई है अर्थात् इन्द्रिय अन्त करणादि मे परमार्थ भावना आ गई है और शनै शनै वृद्धि रूप अकुर देती है। इस बेलि की वृद्धि के रहस्य को अवधूतो मे श्रेष्ठ अवधूत सत ही जानते है। उक्त प्रकार बढकर यह परमार्थ बुद्धि-बेलि अनायास ही अनन्य-भक्ति रूप फूल और आत्म-ज्ञान रूप फल देती है, फिर तो इसके सदा ही फूल-फल लगते रहते है अर्थात् निरन्तर बुद्धि मे भक्ति ज्ञान बने रहते है। इस प्रकार अनायास ही शरीर-बाडी की हृदय-क्यारी मे यह उत्पन्न होती है और इसे कोई विरला सत ही यथार्थ रूप से जान पाता है। इस परमार्थ बुद्धि-बेलि के लगने पर विषयो मे सत्यता के दुराग्रह-युक्त मन-मुखी बुद्धि-बेलि सूखने लगती है और जो परमार्थ-बुद्धि

बेलि के ज्ञान रूप अमर फल लगता है, साधक सहजावस्था मे जाकर सदा उसका आनन्द-रस पान करता है और द्वन्दो के कष्ट से रहित होकर अनायास ही ब्रह्म रूप से सदा जीवित रहता है।

२०३-शब्द बाण। त्रिताल

संतो ! राम बाण मोहि लागे।
मारत मिरग मरम तब पायो, सब संगी मिल जागे॥टेक॥
चित चेतन चिन्तामणि चीन्हा, उलट अपूठा आया।
मंदिर पैसि बहुरि नहिं निकसै, परम तत्त्व घर पाया॥ १ ॥
आवै न जाइ जाइ नहिं आवै, तिहिं रस मनवा माता।
पान करत परमानन्द पायो, थकित भयो चलि जाता॥ २ ॥
भयो अपंग पंक नहिं लागै, निर्मल संग सहाई।
पूरण ब्रह्म अखिल अविनाशी, तिहिं तज अनत न जाई ॥ ३ ॥
सो शर लागि प्रेम परकाशा, प्रकटी प्रीतम वाणी।
दादू दीनदयाल हि जानैं, सुख में सुरति समाणी॥ ४ ॥

शब्द-बाण की विशेषता बता रहे है—हे सन्तो ! सद्गुरु के द्वारा चलाये हुये राम सम्बन्धी शब्द-बाण मेरे लगे है। सद्गुरु ने शब्द-बाण से जब मन-मृग को मारा, तब मुझे परमार्थ का रहस्य मिला, फिर तो इन्द्रिय रूप सभी साथी भी उस रहस्य से मिल कर विषयासक्ति रूप निद्रा से जग गये है। चित्त ने चेतन-चिन्तामणि को पहचाना, तब विषयो से प्रसन्न न हो उनसे लौट आया तथा हृदय मदिर मे प्रविष्ट होकर फिर नही निकलता, कारण, परम तत्त्व ब्रह्म को अपने घर मे प्राप्त कर लिया है। मन ने ब्रह्म-चिन्तन रूप रस पान करते २ परमानन्द प्राप्त कर लिया है। अब उसी मे मस्त है। अत विषय सुख की आशा द्वारा एक विषय पर आकर दूसरे पर जाना और जाकर आना रुक गया है। पहले बारम्बार चला जाता था किन्तु अब थक गया है, आशा रूप पैरो से रहित हो गया है, अब इसके पाप रूप कीचड नही लगता। निर्मल ब्रह्म के साथ रहता है और वह इसका सहायक है। अब तो यह सर्वात्मा अविनाशी पूर्ण ब्रह्म को त्याग कर अन्य पर जाता ही नही। उस सद्गुरु शब्द-बाण के लगने से हृदय मे प्रभु प्रेम प्रकट हुआ और प्रियतम प्रभु सम्बन्धी अनुभव वाणी प्रकट हुई है। अब एकमात्र दीन दयालु प्रभु को ही अपना जानता है और उसी सुख स्वरूप-ब्रह्म मे मन-वृत्ति समाई रहती है।

२०४-निजस्थान निर्णय। झपताल

मध्य नैन निरखूं सदा, सो सहज स्वरूप।
देखत ही मन मोहिया, है सो तत्त्व अनूप ॥ टेक ॥
त्रिवेणी तट पाइया, मूरति अविनाशी।
जुग जुग मेरा भांवता, सोई सुख राशी ॥ १ ॥

तारूणी[1] तट देख हूं, तहा सुस्थाना ।
सेवक स्वामी संग रहै, बैठे भगवाना ॥ २ ॥
निर्भय थान सुहात सो, तहँ सेवग स्वामी ।
अनेक जतन कर पाइया, मै अंतरजामी ॥ ३ ॥
तेज तार[2] परिमित नही, ऐसा उजियारा।
दादू पार न पाइये, सो स्वरूप सँभारा ॥ ४ ॥

२०४-२०५ मे निज स्वरूप साक्षात्कार के स्थान पर निर्णय दे रहे है—जो सहज स्वरूप ब्रह्म है, उसी को मै भीतर के नेत्रो से सदा देखता हू, उसे देखते ही मेरा मन उससे मोहित हो गया था। वह है ही अनुपम तत्व, जहा आज्ञा चक्र मे इडा, पिगला, सुषुम्ना रूप गगा, यमुना, सरस्वती नदियो का सगम है, उसके ब्रह्म ध्यान रूप तट पर अविनाशी ब्रह्म के स्वरूप का साक्षात्कार हुआ है, वही सुख-राशि प्रति युग मे मुझे प्रिय लगता रहा है, उक्त तारक त्रिवेणी[1] के ब्रह्म ध्यान तट पर देखता हू। उसी ध्यान रूप स्थान मे भगवान् विराजे हुये भासते है और वृत्ति रूप से सेवक भी स्वामी के सग ही रहता है। जहा सेवक स्वामी एक होकर विराजते है, वह समाधि स्थान काल कर्मादि भय से रहित है और प्रिय लगता है, अनेक साधन रूप यत्न करके मैंने अन्तर्यामी प्रभु को प्राप्त किया है। उनके स्वरूप तेज की किरणे[2] असीम है, ऐसा प्रकाश भास रहा है कि उसका पार नही मिलता, उसी प्रभु स्वरूप का मैंने स्मरण किया है।

२०५-झपताल

निकट निरजन देखि हौ, छिन दूर न जाई।
बाहर भीतर एक सा, सहजै रह्या समाई॥ टेक॥
सतगुरु भेद लखाइया, तब पूरा पाया।
नैनन ही निरखू सदा, घर सहजै आया॥ १ ॥
पूरे सौ परचा भया, पूरी मति जागी।
जीव जान जीवन मिल्या, ऐसे बडभागी॥ २ ॥
रोम रोम में रम रह्या, सो जीवन मेरा।
जीव पीव न्यारा नहीं, सब सग बसेरा॥ ३ ॥
सुन्दर सो सहजै रहै, घट अन्तरजामी।
दादू सोई देखि हौ, सारो सग स्वामी॥ ४ ॥

मै अति निकट हृदय मे ही निरजन राम को देख रहा हू, वे एक क्षण भी हृदय से दूर नही जाते, वे तो ब्रह्माण्ड के बाहर भीतर समान रूप से व्यापक है। इसीलिये सब मे समा रहे है वा सब उनमे समा रहे है। सद्गुरु ने यह रहस्य बताया है तब ही हमने पूर्ण ब्रह्म को प्राप्त किया है। अब तो

वे अनायास ही हमारे हृदय-घर मे आ गये है, मै उनको अपने ज्ञान नेत्रो से सदा देखता हू। पूरे गुरु से परिचय हुआ तब परमार्थ सम्बन्धी पूरी बुद्धि उत्पन्न हुई है और जीव अपने जीवन रूप प्रभु को जानकर उससे मिला है। इस प्रकार बडभागी बना है। अब तो वह मेरा जीवन-प्रभु रोम २ मे रमा हुआ भासता है, जीव से परमात्मा भिन्न नही है, वह अति सुन्दर अन्तर्यामी शरीर मे रहकर अनायास ही सब के सग बसता है। जो सब के सग रहने वाला स्वामी है, उसी को मै देखता हू।

२०६-परिचय उपदेश। त्रिताल

सहज सहेलडी हे, तू निर्मल नैन निहारि।
रूप अरूप निर्गुण आगुण[1] में, त्रिभुवन देव मुरारि ॥टेक॥
बारम्बार निरख जगजीवन, इहि घर हरि अविनाशी।
सुन्दरि जाइ सेज सुख विलसै, पूरण परम निवासी ॥ १ ॥
सहजैं संग परस जगजीवन, आसण अमर अकेला।
सुन्दरि जाइ सेज सुख सोवै, जीव ब्रह्म का मेला ॥ २ ॥
मिलि आनन्द प्रीति करि पावन, अगम निगम[2] जहँ राजा।
जाइ तहां परस पावन को, सुन्दरि सारे काजा ॥ ३ ॥
मंगलचार चहूं दिशि रोपै, जब सुन्दरि पिव पावै।
परम ज्योति पूरे सौं मिल कर, दादू रंग लगावै ॥ ४ ॥

साक्षात्कारार्थ उपदेश कर रहे है—हे बुद्धि वृत्ति रूप सहेली ! तू निर्द्वन्द्व होकर सशय विपर्य्य-मल रहित ज्ञान नेत्रो से त्रिभुवन के रूपवान्, अरूप, त्रि गुण रहित और (आ+गुण= पूर्ण गुणयुक्त) सहगुण[1] सभी पदार्थो मे मुरारि देव को देख, वे अविनाशी हरि इस हृदय घर मे ही है, उन जगजीवन को बारम्बार देख। हे सुन्दरि ! ऐसा करने से तू सब विश्व मे निवास करने वाले परम परिपूर्ण प्रभु की स्वरूपाकार शय्या पर जाकर परम सुख का उपभोग करेगी, अनायास ही जगजीवन प्रभु के सग होकर उनके स्पर्श द्वारा अद्वैत और अमर आसन प्राप्त करेगी। ऐसे जब वृत्ति सुन्दरी अद्वेत, अमर शय्या पर जाकर ब्रह्मानन्द रूप निद्रा मे शयन करती है, तब जीव ब्रह्म एक हो जाते है। जहा वेद-शास्त्र[2] से अगम प्रभु शोभित हो रहे है, वहा ही पवित्र प्रीति द्वारा उनसे मिलकर आनन्द ले। वहा जाकर जो वृत्ति सुन्दरी पवित्र प्रभु का स्पर्श करती है वह अपने कार्य को पूर्ण कर लेती है। जब वृत्ति सुन्दरी पवित्र प्रभु को प्राप्त करती है, तब अन्त करण चतुष्टय रूप चारो ही दिशाओ मे मगलाचरण होने लगते है और वह साधक परम ज्योति स्वरूप पूर्ण ब्रह्म से मिलकर अन्यो के भी वही रग लगाता है।

(यहा आगुण का अर्थ औगुण नहीं, बल्कि निर्गुण का विलोम सगुण है। गुण के पूर्व 'आ' उपसर्ग है। - सं.)

२०७-वस्तु निर्देश । त्रिताल

तहँ आपै आप निरजना, तहँ निशवासर नहि संजमा ॥ टेक ॥
तहँ धरती अम्बर नाहीं, तहँ धूप न दीसै छाहीं ।
तहँ पवन न चालै पानी, तहँ आपै एक बिनानी ॥ १ ॥
तहँ चद न ऊगै सूरा, मुख काल न बाजै तूरा ।
तहँ सुख दुख का गम नाहीं, ओ तो अगम अगोचर माहीं ॥ २ ॥
तहँ काल काया नहि लागै, तहँ को सोवै को जागै ।
तहँ पाप पुन्य नहि कोई, तहँ अलख निरजन सोई ॥ ३ ॥
तहँ सहज रहै सो स्वामी, सब घट अतरजामी ।
सकल निरन्तर बासा, रट दादू सगम पासा ॥ ४ ॥

२०७-२०८ मे ब्रह्म वस्तु का निर्देश कर रहे है—निर्विकल्प समाधि-देश मे स्वय आप माया रहित ब्रह्म ही है। सयमादि साधन, रात्रि, दिन, पृथ्वी, आकाश नही है। धूप और छाया नहीं दीखती। वायु नही चलता, पानी नही वरसता। वहाँ तो स्वय एक विश्वकर्ता ही है। चन्द्रमा-सूर्य उदय नही होते। वहा यम वा यमदूतो का मुख नही देखना पडता, न यम का नगाडा बजता। विषय-जन्य सुख-दु ख नही होते। वह अगम अगोचर देश देह के भीतर ही है। वहा रहते हुये काया को काल नही खाता। वहा कौन सोता है और कौन जागता है ? अर्थात् वहा सोना जागना भी नही बनता, न कोई पाप-पुण्य है। वहा सहजावस्था मे तो जो मन इन्द्रियो का अविषय निरजन सब अन्त करणो का अन्तर्यामी, निरन्तर सब मे बसने वाला स्वामी ही रहता है। उसका इडा, पिगला, सुषुम्ना के सगम स्थान आज्ञा-चक्र मे ध्यान करते है या उसका नाम रटते है।

२०८-त्रिताल

अवधू बोल निरजन बाणी, तहँ एकै अनहद जाणी ॥ टेक ॥
तहँ वसुधा का बल नाहीं, तहँ गगन घाम नहि छाहीं ।
तहँ चंद सूर नहि जाई, तहँ काल काया नहि भाई ॥ १ ॥
तहँ रैणि दिवस नहि छाया, तहँ बाव[1] वरण नहि माया ।
तहँ उदय अस्त नहि होई, तहँ मरै न जीवै कोई ॥ २ ॥
तहँ नाहीं पाठ पुराना, तहँ अगम निगम नहिं जाना ।
तहँ विद्या वाद न ज्ञाना, नहिं तहाँ योग अरु ध्याना ॥ ३ ॥
तहँ निराकार निज ऐसा, तहँ जाण्या जाइ न जैसा ।
तहँ सब गुण रहिता गहिये, तहँ दादू अनहद कहिये ॥ ४ ॥

हे अवधूत ! निरजन ब्रह्म सम्बन्धी वाणी बोलो, अन्य सब त्याग दो। कारण, अन्तर्मुख स्थिति मे अनुभव द्वारा एक असीम ब्रह्म सम्बन्धी वाणी ही जानने मे आती है। समाधि मे पृथ्वी का जन धनादि बल नही है। आकाश, धूप और बादल छाया नही है। वहा चन्द्र सूर्य नही जा सकते। हे भाई ! वहा रहते हुये शरीर को काल नही खाता। वहा रात्रि दिन और वृक्ष छाया नही है। न वायु[१] चलता है, न माया और न मायिक रूप रगादि है। वहा तारे आदि का उदय अस्त नही होता। न कोई मरता है, न कोई जीवित रहता है। न पुराण पाठ होता है। न वेद शास्त्र जानने मे आते है। न नाना विद्या है, न जल्प-वितडादि वाद है। न मन इन्द्रियो के ज्ञान है, न हठ योगादि योग है, न मूर्ति आदि का ध्यान है। वहा तो जैसा मन इन्द्रियो से न जाना जाय, ऐसा निराकार निज स्वरूप है। वहा जो सब गुणो से रहित है, उसे स्वस्वरूप करके ग्रहण करो और उसी असीम का कथन करो।

२०९-प्रसिद्ध साधु। प्रतिपाल

बाबा ! को ऐसा जन जोगी।
अंजन छाडै रहै निरजन, सहज सदा रस भोगी॥ टेक॥
छाया माया रहै विवर्जित[१], पिंड ब्रह्माण्ड नियारे।
चंद सूर तैं अगम अगोचर, सो गह तत्व विचारे॥ १ ॥
पाप पुन्य लिपै नहिं कबहूँ, द्वै पख रहिता सोई।
धरणि आकाश ताहि तैं ऊपरि, तहां जाइ रत होई॥ २ ॥
जीवन मरण न बॉछै कबहूँ, आवागमन न फेरा।
पानी पवन परस नहिं लागै, तिहिं संग करै बसेरा॥ ३ ॥
गुण आकार जहा गम नांही, आपैं आप अकेला।
दादू जाइ तहा जन जोगी, परम पुरुष सौं मेला॥ ४ ॥

महान् सत का परिचय दे रहे है—हे बाबा ! ऐसा योगी कोई विरला जन ही होता है, जो मायिक प्रपच को त्याग[१] कर सदा निर्द्वन्द्वावस्था मे निरजन ब्रह्म के चिन्तन रूप रस के उपभोग मे लगा रहे। जहा माया की प्रभाव रूप छाया पडती है, वहा से दूर रहे। शरीराध्यास और ब्रह्माण्ड के भोगो की आसक्ति से अलग रहे। जो चन्द्र सूर्यादि से अगम और इन्द्रियो का अविषय तत्व है, उसी को निज रूप से ग्रहण करके विचारे, आत्मा को अकर्ता जानकर कभी भी पाप-पुण्य से लिप्त न हो, निज वा पर दोनो पक्षो से रहित होकर, शरीरस्थ-मूलाधारादि पच चक्र रूप पृथ्वी आदि पच तत्त्वो से ऊपर आज्ञा चक्र मे वृत्ति द्वारा जाकर, उसी ब्रह्म के स्वरूप मे अनुरक्त होवे, अधिक जीवन वा शीघ्र मृत्यु की इच्छा कभी भी न करे, लोकान्तरो के गमनागमन रूप चक्कर मे न पडे। जिसको जल वायु आदि स्पर्श नही कर सकते, चिन्तन द्वारा उसी परब्रह्म के सग निवास करे। जहा गुण और आकारो की पहुच नही है और आप स्वय अद्वैत स्वरूप है उस समाधि मे जाकर ऐसा योगी परम पुरुष ब्रह्म से मिल जाता है।

२१०-परिचय परा भक्ति। राज विद्याधर ताल

जोगी जान जान जन जीवै।
बिन ही मनसा मन हि विचारै, बिन रसना रस पीवै॥ टेक॥
बिन हीं लोचन निरख नैन बिन, श्रवण रहित सुन सोई।
ऐसे आतम रहै एक रस, तो दूसर नाम न होई॥ १॥
बिन ही मारग चलै चरण बिन, निहचल बैठा जाई।
बिन ही काया मिलै परस्पर, ज्यो जल जलहि समाई॥ २॥
बिन ही ठाहर आसण पूरै, बिन कर बैन बजावै।
बिन हीं पाँवो नाचै निशि दिन, बिन जिह्वा गुण गावै॥ ३॥
सब गुण रहिता सकल बियापी, बिन इन्द्री रस भोगी।
दादू ऐसा गुरु हमारा, आप निरंजन जोगी॥ ४॥

२१०-२११ मे परिचय पूर्वक पराभक्ति दिखा रहे है—योगी जन साधन द्वारा मायिक प्रपच को मिथ्या तथा परब्रह्म को सत्य स्वरूप जान कर जीवन्मुक्त हुये रहते है। वे सासारिक भावना युक्त मन बुद्धि से रहित हो स्वरूप का विचार करते है। रसना बिना ही स्वरूपानन्द रस का पान करते है। बाह्य नेत्र तथा ज्ञान नेत्रो के बिना ही स्वस्वरूप स्थिति को देखते है। बाह्य श्रवणो-बिना ही उस आत्म स्वरूप ब्रह्म का अभेद निश्चय रूप श्रवण करते है। यदि उक्त प्रकार आत्मा ब्रह्म मे अद्वैत रूप से निरन्तर स्थित रहे तो द्वैत का नाम भी ज्ञात नही होता। जो बाह्य मार्ग और चरणो के बिना ही साधन द्वारा चल कर निश्चल ब्रह्म के पास जा बैठा है और बिना ही शरीर के आत्मा तथा ब्रह्म परस्पर मिलकर जैसे जल मे जल समा जाता हे वैसे ही ब्रह्म मे समा गया है। सासारिक स्थान बिना परब्रह्म मे पूर्ण अभेद रूप से आसन लगाया है और बाह्य हाथो के बिना ही अनाहत ध्वनि रूप आनन्द की वशी बजाता है। बाह्य पैरो के बिना ही भावना द्वारा रात्रि दिन नृत्य करता है। बाह्य जिह्वा बिना ही ध्यानावस्था मे प्रभु के गुण गान करता है। स्वस्वरूप को सब गुणो से रहित और सब मे व्यापक समझते हुये बाह्य इन्द्रियो के बिना ही ब्रह्मानन्द रूप महारस का उपभोग करता है ऐसा योगी स्वय निरजन ब्रह्म रूप और हमारा गुरु है।

२११-रूपक ताल

इहै परम गुरु योगं, अमी महारस भोग॥ टेक॥
मन पवना स्थिर साध, अविगत नाथ अराध, तहँ शब्द अनाहद नाद॥ १॥
पच सखी परमोध, अगम ज्ञान गुरु बोध, तहँ नाथ निरजन शोध॥ २॥
सद्गुरु माहि बतावा, निराधार घर छावा, तहँ ज्योति स्वरूपी पावा॥ ३॥
सहजै सदा प्रकाशं, पूरण ब्रह्म विलास, तहँ सेवक दादू दास॥ ४॥

इस शरीर मे ही परम गुरु का बताया हुआ योग साधन तथा ज्ञानामृत रूप महारस का उपभोग होता है। जब साधन द्वारा मन प्राण को स्थिर करके मन इन्द्रियो के अविषय परमात्मा की उपासना की जाती है, तव अनाहत नाद रूप शब्द सुनने मे आते है। पच ज्ञानेन्द्रिय रूप सखियॉ विपयासक्ति रूप निद्रा से जगती है। गुरु उपदेश द्वारा आत्म स्वरूप ब्रह्म का परोक्ष ज्ञान होता है, फिर साधक हृदय मे निदिध्यासन द्वारा निरजन प्रभु की खोज करके उसे अभेद रूप से प्राप्त करता है। इस प्रकार सद्गुरु ने शरीर के भीतर ही वताया है और हमारा मन भी उस निराधार ब्रह्म रूप घर पर ही स्थित हुआ, तव वहा ही ज्योति स्वरूप ब्रह्म हमे प्राप्त हुआ है और अनायास ही सदा प्रकाश स्वरूप पूर्ण ब्रह्म के साक्षात्कार का आनन्द प्राप्त हो रहा है। हम वहा वृत्ति द्वारा उनके सेवक रूप से रहते है।

२१२-(गुजराती) अनभई। त्रिताल

मूनै येह अचंभो थाये, कीडीये[1] हस्ती विडारयो, तेन्है बैठी खाये ॥ टेक ॥

जाण हु तौ ते बैठो हारे, अजाण तेन्हैं ता वाहे[2]।
पांगुलोउ जावा लागो, तेन्हैं कर को साहे[3] ॥ १ ॥
नान्हो हुतो ते मोटो थायो, गगन मंडल नहिं माये ।
मोटे रो विस्तार भणीजे, ते तो केन्हे जाये[4] ॥ २ ॥
ते जाणै जे निरखी जोवे, खोजी नै वलीमांहे[5]।
दादू तेन्हौं मर्म न जाणैं, जे जिभ्या विहूंणौं गाये ॥ ३ ॥

इति राग रामकली समाप्त ॥ ८ ॥ पद ४६ ॥

सासारिक दशा मे न होने वाली घटना वता रहे है—मुझे यह आश्चर्य है कि-जो प्रथम छिद्रान्वेपिणी वृत्ति रूप चीटी[1] थी, वही साधन से निर्दोप हो वस्तु विचार द्वारा काम-करि को मारकर स्थिर वेठी हुई उसे खा रही है अर्थात् काम-जन्य विक्षेप को नष्ट कर रही है। जो जानकार था, वह तो ससार-भ्रमण से हार कर विचार द्वारा स्वरूप को समझ के उसी मे स्थिरता पूर्वक वैठ गया है। जो अज्ञानी है, उसे वे पूर्व की सासारिक वासनाये ससार मे वहकाती[2] हे। पहले गुणरूप पैरो से युक्त था, तव तो मन प्रभु की ओर नही जाता था। अव निर्गुण रूप पगुता आने पर परब्रह्म के स्वरूप मे जाने लगा है। उसे कौन-सा विघ्न हाथ पकड[3] सकता है ? अज्ञान दशा मे मायिक प्रपच महान् और परब्रह्म लघु दिखाई देता था। अव ज्ञान दशा मे परब्रह्म इतना महान् दिखाई देने लगा है कि-गगन मडल मे नही समाता, ब्रह्माण्ड के वाहर भीतर सर्वत्र व्यापक रूप से भासता है। उस महान् ब्रह्म का विस्तार कथन कर सके ऐसे व्यक्ति को किस जननी ने जन्म[4] दिया है ? ज्ञान-साधन मे साक्षात् दर्शन करने वाले ही उसे जानते है। वह खोजने वाले को भी भ्रमाता[5], (विलमाहे) विलमाता[5] व अपने मे लीन[5] कर लेता है। जिसका गुण-गान विना ही जिह्वा के ध्यानावस्था मे किया जाता है, मै तो उनके आदि, अन्त, मध्य का यथार्थ रहस्य भी नहीं जानता।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग रामकली समाप्त ॥ ८ ॥

अथ राग आसावरी ९

(गायन समय प्रात ६ से ९)

२१३-उत्तम स्मरण । ब्रह्म ताल

तू ही मेरे रसना, तू ही मेरे बैना, तू हीं मेरे श्रवना, तू हीं मेरे नैना ॥ टेक॥
तू ही मेरे आतम कॅवल मझारी, तू हीं मेरी मनसा तुम परिवारी॥ १ ॥
तू हीं मेरे मन हीं, तू हीं मेरे श्वासा, तू हीं मेरे सुरतै प्राण निवासा॥ २ ॥
तू हीं मेरे नखशिख सकल शरीरा, तू हीं मेरे जियरे ज्यो जल नीरा॥ ३ ॥
तुम बिन मेरे अवर[१] को[३] नाहीं, तू ही मेरी जीवनि[२] दादू माहीं ॥ ४ ॥

उत्तम स्मरण का प्रकार दिखा रहे है—आप ही मेरी जिह्वा, वचन, श्रवण, नयनादि इन्द्रियाँ है। आप ही मेरे हृदय कमल मे रहने वाली आत्मा है, मेरी सारी आशाएँ आप पर वार दी है, आप ही मेरी बुद्धि और परिवार है। आप ही मेरे मन, श्वास और वृत्ति है। प्राणो के निवास स्थान है। आप ही नख से शिखा पर्यन्त यह शरीर है । जैसे जल और नीर दो नाम होने पर भी वस्तु एक ही है, वैसे ही जीव और ब्रह्म दो नाम होने पर भी आप अद्वैत रूप मेरे जीव है। आप के बिना ससार मे मेरा सम्बन्धी और[१] कोई[३] भी नही है। आप ही मुझमे सजीवनी[२] हो अर्थात् आपके ही आश्रित मेरा जीवन[२] है। इस प्रकार सब कुछ प्रभु-स्वरूप समझना ही उत्तम स्मरण है।

२१४-अनन्य शरण। झूमरा

तुम्हारे नाम लाग हरि जीवन मेरा।
मेरे साधन सकल नाम निज तेरा ॥ टेक॥
दान पुन्य तप तीरथ मेरे, केवल नाम तुम्हारा ।
ये सब मेरे सेवा पूजा, ऐसा बरत हमारा ॥ १ ॥
ये सब मेरे वेद पुराणा, सुचि सजम है सोई ।
ज्ञान ध्यान ये ही सब मेरे, और न दूजा कोई ॥ २ ॥
काम क्रोध काया वश करणाँ, ये सब मेरे नामा ।
मुक्ता गुप्ता परगट कहिये, मेरे केवल रामा ॥ ३ ॥
तारण तिरण नाम निज तेरा, तुम हीं एक अधारा ।
दादू अग एक रस लागा, नाम गहै भव पारा ॥ ४ ॥

२१४-२१५ मे अनन्य शरण दिखा रहे है—हे हरे ! आपके नाम स्मरण मे लगे रहने से ही मेरा जीवन चलता है। मेरे सभी उपाय आपका निज नाम सत्य-राम ही है। मेरे तो केवल आपका नाम ही दान, पुन्य-तप तीर्थ है। आपके नाम ही मेरे सब प्रकार की सेवा-पूजा है। ऐसा ही मेरा व्रत है। ये आपके नाम ही मेरे वेद पुराणादि सब ग्रन्थ है, पवित्रता तथा सयम भी आपके नाम ही है। मेरे ज्ञान ध्यान भी आपके नाम ही है, और दूसरा साधन कोई भी मेरे पास नही है। काम, क्रोध और

शरीर को वश मे करने के उपाय भी मेरे सब प्रकार आपके नाम ही है। बहुत गुप्त वा प्रकट जो भी कहे मेरे तो केवल राम-नाम ही है। आपका निज नाम "सत्य राम" ससार से भक्तो को तारने वाला है। एक आप ही मेरे आधार है। मेरा मन तो आपका नाम ग्रहण करके ससार से पार एक रस आपके स्वरूप मे ही लगा है।

२१५-चतुष्ताल

हरि केवल एक अधारा, सोई तारण तिरण हमारा॥ टेक॥
ना मैं पंडित पढ गुण जानूं, ना कुछ ज्ञान विचारा।
ना मैं अगमी[1] ज्योतिग[2] जानूं, ना मुझ रूप सिंगारा॥ १॥
ना तप मेरे इन्द्री निग्रह, ना कुछ तीरथ फिरणा।
देवल पूजा मेरे नाहीं, ध्यान कछू नहिं धरणा॥ २॥
जोग जुगति कछू नहि मेरे, ना मैं साधन जानूं।
औषधि मूली मेरे नाहीं, ना मै देश बखानूं॥ ३॥
मैं तो और कछू नहिं जानू, कहो और क्या कीजै।
दादू एक गलित गोविन्द सौ, इहि विधि प्राण पतीजै॥ ४॥

जो तिरने वालो को भी तारने वाले है वे हरि ही एक मात्र हमारे आश्रय है। न मै पढना-गुणना जानने वाला पडित हूँ, न मुझ मे कुछ ज्ञान-विचार ही है। न मै भविष्य[1] की बात कहने वाला हू, न ज्योतिष[2] ही जानता हूँ। न मुझे नाना प्रकार के रूप बनाना और श्रृगार करना ही आता है। न मैंने इन्द्रिय-निग्रहादिक तप ही किये है, न मैंने तीर्थों मे ही कुछ भ्रमण किया है। न मेरे द्वारा देव-मदिरो की पूजा हो सकी है, न कुछ ध्यान ही करता हू, न मुझ को कुछ योग-युक्ति ही आती है और न मै कोई साधन ही जानता हू। न मेरे पास जडी-बूटी आदि औषधि ही है, न मै देशान्तरो की कथाए कहता हू। मै तो अन्य कुछ भी नही जानता और आप भी कहे क्या किया जाय ? मै तो एक गोविन्द के प्रेम रस मे गला हुआ हू। इसी प्रकार प्रेमाभक्ति मे रत होने पर ही मेरे मन को प्रभु प्राप्ति का विश्वास होता है।

२१६-परिचय। चतुष्ताल

पीव घर आवनो ए, अहो मोहि भावनो ते॥ टेक॥
मोहन नीको री हरी, देखूंगी अंखियॉ भरी।
राखौं हौं उर धरी, प्रीति करी खरी॥ १॥
मोहन मेरो री माई, रहौ हौं चरणौं धाई।
आनन्द बधाई, हरि के गुण गाई॥ २॥
दादू रे चरण गहिये, जाई ने तिहां तो रहिये।
तन मन सुख लहिये, बिनती गहिये॥ ३॥

२१६-२१७ मे निरन्तर साक्षात्कारार्थ उत्कठा दिखा रहे है—ए सत रूप माई ! प्रियतम प्रभु का घर मे आना अत्यन्त हर्षप्रद है। वे मुझे अति प्रिय लगते है। अरी ! वे विश्व विमोहन हरि बहुत ही अच्छे है। उनको मै इच्छा भर कर नेत्रो से देखूगी। हे माई ! वे मोहन मेरे है, उनमे मेरी सच्ची प्रीति है। उन्हे हृदय मे विराजमान करके रक्खूगी। मै साधन रूप दौड़ लगाकर उनके चरणो मे जाकर रहूगी और उन हरि के गुण-गान करूगी तब ही मेरे आनन्द की वृद्धि होगी। अरे ! अब तो वहा जाकर उन प्रभु के चरण पकड़ कर रहूगी, वे मेरी प्रार्थना ग्रहण करेगे तब ही मेरे तन मन को आनन्द प्राप्त होगा।

२१७-त्रिताल

हा माई ! मेरो राम बैरागी, तजि जनि[1] जाई ॥ टेक ॥
राम विनोद करत उर अतरि, मिलिहौ बैरागनि धाई[2] ॥ १ ॥
जोगनि ह्वै कर फिरूंगी विदेशा, राम नाम ल्यौ लाई ॥ २ ॥
दादू को स्वामी है रे उदासी, रहिहौ नैन दोइ लाई ॥ ३ ॥

अरी सत रूप माई ! हा, तुम ठीक कहती हो—मेरा राम विरक्त है, वह मुझे त्यागकर न[1] चला जाय। राम मेरे हृदय के भीतर क्रीड़ा कर रहा है। मै भी विषयो से विरक्त हो, ध्यान[2] रूप दौड[2] द्वारा उस से मिलूगी। वह नही मिलेगा तो योगिनी होकर राम नाम मे वृत्ति लगाते हुये विदेशो मे भ्रमण करूगी। मेरा स्वामी विरक्त है तो भी मै अपने दोनो नेत्र उसी के स्वरूप मे लगाये रहूँगी।

२१८-उपदेश चेतावनी। राजमृगाक ताल

रे मन, गोविन्द गाइ रे गाइ, जन्म अविरथा[1] जाइ रे जाइ ॥ टेक ॥
ऐसा जनम न बारम्बारा, तातै जप ले राम पियारा ॥ १ ॥
यहु तन ऐसा बहुरि न पावै, तातै गोविन्द काहे न गावै ॥ २ ॥
बहुरि न पावै मानुष देही, तातैं करले राम सनेही ॥ ३ ॥
अब के दादू किया निहाला, गाइ निरजन दीन दयाला ॥ ४ ॥

मन को सचेत कर रहे है—अरे मन ! निरन्तर गोविन्द नाम का चिन्तन कर, भजन बिना यह नर जन्म प्रतिक्षण व्यर्थ[1] जा रहा है। ऐसा जन्म बारम्बार नहीं मिलता। इसलिये प्रियतम राम के नाम का जप कर। ऐसा मनुष्य शरीर पुन नही प्राप्त होगा, फिर भी तू गोविन्द के गुण क्यो नही गाता ? तू भजन द्वारा राम को अपना स्नेही कर ले, इससे तेरी आत्मा पुन मनुष्य देह को भी न प्राप्त होकर राम मे ही मिल जायेगी। उस भगवान् ने अबकी बार तुझे शरीर और सत्सग देकर आनन्दित कर दिया है। अत उस दीनदयालु निरजन राम के नाम और गुणो का गायन कर।

२१९ -काल चेतावनी। राजमृगाक ताल

मन रे, सोवत रैनि बिहानी[1], तै अजहूँ जात न जानी ॥ टेक ॥
बीतीरैनि बहुरि नहि आवै, जीव जाग जनि सोवै।
चारो दिशा चोर घर लागे, जाग देख क्या होवै ॥ १ ॥

भोर भये पछतावन लागे, मांहि महल कुछ नांहीं।
जब जाइ काल काया कर लागे, तब सोधै घर मांही ॥ २ ॥
जाग जतन कर राखो सोई, तब तन तत्त न जाई।
चेतन पहरै चेतत नांही, कहि दादू समझाई ॥ ३ ॥

२१९-२२० मे काल से सचेत कर रहे है—अरे मन ! मोह निद्रा मे सोते २ जीवन-रात्रि व्यतीत[1] होने पर आई, तूने अब तक भी इसे नष्ट होते हुये नही जाना। स्मरण रख, जीवन-रात्रि व्यतीत होने पर पुन नही हाथ आयेगी। इसलिये हे मन ! शीघ्र जाग, सोवे मत। कामादिक चोर हृदय-घर के चारो और तेरे ज्ञान-धन को चुराने मे लगे है। तू जाग करके देख तो सही, क्या हो रहा है ? जब आयु चली जाती है और शरीर काल के हाथ मे आ जाता है, तब प्राणी हृदय-घर मे ज्ञानादिक-धन और दैवी-गुण रूप बल को खोजता है। वृद्धावस्था रूप प्रात काल होने पर जब हृदय-महल मे ज्ञानादिक कुछ भी नही मिलते, तब पश्चात्ताप करने लगता है। अत जाग कर साधन रूप उपाय द्वारा उस ज्ञान और दैवीगुण रूप बल की रक्षा कर, तब तो तेरे शरीर से तत्त्व-ज्ञान रूप धन नही जा सकेगा। हम तो तुझे बारम्बार कह कर समझाते है, तू चेतने के समय मे सावधान नही हो रहा है, फिर सावधान होने से क्या बनेगा ?

२२०-राजविद्याधर ताल

देखत ही दिन आइ गये, पलट केश सब सेत[1] भये ॥टेक॥
आई जुरा[2] मीच अरु मरणा, आया काल अबै क्या करणा ॥ १ ॥
श्रवणों सुरति गई नैन न सूझै, सुधि बुधि नाठी कह्या न बूझै ॥ २ ॥
मुखतै शब्द विकल भई बाणी, जन्म गया सब रैनि बिहाणी ॥ ३ ॥
प्राण पुरुष पछतावन लागा, दादू अवसर काहे न जागा ॥ ४ ॥

देखते २ ही काल के मुख मे जाने के दिन आ गये है। सब केश भी श्याम रग बदल कर श्वेत[1] हो गये है। वृद्धावस्था[2] आ गई और मृत्यु[3] भी समीप आ रही है। जाने का समय आ ही गया है, अब क्या किया जा सकता है ? अब तो मरना ही होगा। श्रवणो से सुनने की शक्ति चली गई, नेत्रो से दीखता नही, स्मरण-शक्ति नष्ट हो गई, मुख से कहा गया शब्द कोई समझता नही, बाणी विकल हो गई है, ठीक नही निकलती। अब आयु-रात्रि भी व्यतीत होने वाली ही है। सारा जन्म व्यर्थ ही चला गया। यह देखकर प्राण-धारी पुरुष पश्चात्ताप करने लगता है, किन्तु अब पश्चात्ताप करने से क्या हो ? समय पर क्यो नही जगा ? यह तेरा ही प्रमाद तुझे दु खप्रद हुआ है।

२२१-उपदेश। राजविद्याधर ताल

हरि बिन हां हो कहु सचु[1] नांहीं, देखत जाइ विषय फल खाही ॥ टेक ॥
रस रसना के मीन मन भीरा, जल तैं जाइ यों दहै शरीरा ॥ १ ॥
गज के ज्ञान मगन मद माता, अंकुश डोरि गहै फँद गाता ॥ २ ॥

मर्कट[२] मूठी माही मन लागा, दुख की राशि भ्रमै भ्रम भागा ॥ ३ ॥
दादू देखु हरी सुखदाता, ताको छाडि कहा मन राता ॥ ४ ॥

२२१-२२२ मे हितकर उपदेश कर रहे हे-सत-"हो मन !" मन-हा । सत-हरि चितन बिना कही भी सुख[१] नही है । तू यह देखते हुये भी ससार मे जाकर विषय-फल ही खाता है, यह उचित नही । हे मन ! देख जिह्वा रस के वश हो, मच्छी जल से बाहर जा, विपद मे पड़कर मरती है, वैसेही विषयो से मानव का शरीर सतापित होता है । हाथी के विषय ज्ञान की ओर देख, जो मद से मस्त मग्न हुआ वन मे फिरता है । वही कागज की हथिनी पर गिरकर अपने को फँदे मे डाल लेता है, डोरी बधन और अकुश के आघात सहता है, वेसे ही मानव स्पर्श-विषय से दु ख मे पडता है । वानर[२] का मन जब चणो की मुट्ठी मे लग जाता है तव उसके ऊपर दु खो की राशि आ गिरती है, डोरी से बॅध कर बाजीगर के साथ जहा तहा भ्रमण करता है, वैसे ही मानव चौरासी मे भ्रमण करता है । देख, हमारा तो भ्रम भाग गया है और पूरा निश्चय हो गया-एक हरि ही सुखप्रद है । हे मन ! तू उन हरि को छोड़ कर कहा अनुरक्त हो रहा है ? शीघ्र हरि मे ही अनुरक्त हो ।

२२२-उदीघण ताल

साई बिना सतोष न पावै, भावै घर तज वन वन धावै ॥ टेक ॥
भावै पढ गुन वेद उचारै, आगम[१] निगम[२] सबै विचारै ॥ १ ॥
भावै नव खड सब फिर आवै, अजहूँ आगे काहे न जावै ॥ २ ॥
भावै सब तज रहै अकेला, भाई बन्धु न काहू मेला ॥ ३ ॥
दादू देखै साई सोई, साच बिना संतोष न होई ॥ ४ ॥

चाहे घर को त्याग कर वन मे दौड जाय, तो भी भगवद्-भजन बिना सतोष नही मिलता । चाहे पढ-गुन कर वेद मन्त्रो का उच्चारण करे, सपूर्ण शास्त्र[१] तथा सभी वेदो[२] को विचारे, चाहे नव खडो के सभी भागो मे भ्रमण कर आवे और भ्रमण से अब भी तृप्त न हो तो बचे ब्रह्माण्ड मे भी क्यो न जाय ? चाहे भाई-बाधवादि किसी से भी न मिले तथा सभी कुछ त्याग कर अकेला ही रहे, तो भी क्या होता है ? हम तो उस प्रभु को सर्वत्र ही देखते है । उस सत्य-स्वरूप के दर्शन बिना चाहे कुछ भी करो, सतोष नही होता ।

२२३-मनोपदेश चेतावनी । उदीक्षण ताल

मन माया रातो भूले ।
मेरी मेरी कर कर बोरे[१], कहा मुग्ध नर फूले ॥ टेक ॥
माया कारण मूल गँवावे, समझ देख मन मेरा ।
अत काल जब आइ पहूंता, कोई नहीं तब तेरा ॥ १ ॥
मेरी मेरी कर नर जाणैं, मन मेरी कर रहिया ।
तब यहु मेरी काम न आवै, प्राण पुरुष जब गहिया ॥ २ ॥

राव रंक सब राजा राणा, सबहिन को बौरावै[२] ।
छत्रपति भूपति तिनके सँग, चलती बेर न आवै ।। ३ ।।
चेत विचार जान जिय अपने, माया सग न जाई ।
दादू हरि भज समझ सयाना, रहो राम ल्यौ लाई ।। ४ ।।

मन को उपदेश द्वारा सावधान कर रहे है— हे मन ! तू माया मे अनुरक्त होकर प्रभु को भूल रहा है । अरे पागल[१] ! मेरी २ करके मूर्ख नर के समान मिथ्या विषय-सुखो मे क्यो फूल रहा है ? हे मेरे मन ! तू माया के लिए अपने जीवन रूप मूल धन को खो रहा है, कुछ विचार करके तो देख, जब अन्त समय आ पहुँचेगा, तब तेरा साथ कोई न देगा । जैसे साधारण नर सासारिक वस्तुओ को मेरी २ कहते हुये मन मे अपनी जानते है, वैसे ही तू मेरी २ कर रहा है किन्तु जब प्राणधारी पुरुष को काल पकडेगा तब यह मेरी २ करने की क्रिया कुछ भी काम न आयेगी । इस माया ने राव, रक सपूर्ण राजा-राणादि सभी को पागल[२] कर रखा है किन्तु शरीर छोडकर जाते समय छत्रपति, भूपति भी इसे अपने साथ नही ले जा सके । यह माया किसी के भी सग नही जाती मन । हे चतुर ! सम्यक् समझ कर हरि को ही भज और राम मे ही वृत्ति लगा कर रह ।

२२४-काल चेतावनी । ललित ताल

रहसी एक उपावनहारा, और चलसी सब संसारा ।। टेक ।।
चलसी गगन धरणि सब चलसी, चलसी पवन अरु पानी ।
चलसी चंद सूर पुनि चलसी, चलसी सबै उपानी[१] ।। १ ।।
चलसी दिवस रैण भी चलसी, चलसी जुग जम वारा ।
चलसी काल व्याल पुनि चलसी, चलसी सबै पसारा ।। २ ।।
चलसी स्वर्ग नरक भी चलसी, चलसी भूचणहारा[२] ।
चलसी सुख दुःख भी चलसी, चलसी कर्म बिचारा ।। ३ ।।
चलसी चंचल निहचल रहसी, चलसी जे कुछ कीन्हा ।
दादू देख रहै अविनाशी, और सबै घट खीना[३] ।। ४ ।।

२२४-२२६ मे काल से सावधान कर रहे है—स्थिर तो एक सृष्टिकर्ता ईश्वर ही रहेगे, अन्य सब ससार नष्ट होगा । आकाश, पृथ्वी, वायु, जल, चन्द्र, सूर्यादि जो भी उत्पन्न हुई सृष्टि है[१], वह नष्ट होगी ही । दिन, रात्रि, युग, यम, वार, काल रूप सर्प और सभी विस्तार नष्ट होने वाला है । स्वर्ग, नरक, और उनके भोगनेवाले[२] सुख-दुख, कर्म और मनोराज्य रूप विचार तथा जो भी कुछ ईश्वर ने असत्य चचल सृष्टि की रचना की है, वह सब नष्ट होने वाली है । तू विचार करके देख, एक निश्चल अविनाशी ब्रह्म ही रहेगा, अन्य सब घट तो (क्षीण=) नष्ट[३] होगे ही ।

२२५-त्रिताल

इहि कलि हम मरणे को आये, मरण मीत उन सग पठाये[1] ॥ टेक ॥
जब तैं यहु हम मरण विचारा, तब तै आगम[2] पथ सँवारा ॥ १ ॥
मरण देख हम गर्व न कीन्हा, मरण पठाये सो हम लीन्हा ॥ २ ॥
मरणा मीठा लागे मोहि, इहि मरणे मीठा सुख होहि ॥ ३ ॥
मरणे पहली मरे जे कोई, दादू सो अजरावर होई ॥ ४ ॥

इस कलियुग मे हम मरणे के लिये ही आये है उन हमारे मित्र प्रभु ने हमे मरणे के साथ ही भेजा[1] है, जब से हमने मरणा है-यह विचारा है तब से ससार मे शास्त्रो[2] के बताये मार्ग पर चलकर आगे प्रभु के पास जाने का साधन-मार्ग तैयार किया है। हमने मरणे को देख कर हृदय मे, हम क्यो मरेगे ऐसा अहकार नही किया। जिसने मरणे के लिये भेजा है, उसी प्रभु का भजन ग्रहण किया है। जीवित-मृतक होना मुझे बहुत प्रिय लगता है, इस प्रकार मरणे मे तो अति मधुर सुख प्राप्त होता है। यदि कोई प्राणपिड के वियोग रूप मरणे से पहले ही जीवित-मृतक (जीवन्मुक्त) हो जाय, तो वह देवताओ से भी अति श्रेष्ठ ब्रह्म-रूप ही हो जाता है।

२२६-त्रिताल

रे मन! मरणे कहा डराई, आगे पीछे मरणा रे भाई ॥ टेक ॥
जे कुछ आवै थिर न रहाई, देखत सबै चल्या जग जाई ॥ १ ॥
पीर पैगम्बर किया पयाना, शेख मुशायक[1] सबै समाना ॥ २ ॥
ब्रह्मा विष्णु महेश महाबलि, मोटे मुनिजन गये सबै चलि ॥ ३ ॥
निश्चल सदा सोई मन लाई, दादू हर्ष राम गुण गाइ ॥ ४ ॥

अरे भाई मन! मरणे से क्या डरता है ? मरणा तो आगे पीछे होगा ही, जो कुछ भी उत्पन्न होते है, वे स्थिर नही रहते। देखते २ सपूर्ण जगत् चला जा रहा है। पीर, पैगम्बर, शेख और मुल्ला[1] आदि-धर्म-के-ज्ञाता सभी काल के मुख मे समा गये है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वरादि, महाबली और महान् मुनि जन सभी चले गये है। अत हे मन! सदा जो निश्चल रहता है, उसी निरजन राम मे वृत्ति लगा कर हर्ष के साथ राम के ही गुण-गान कर।

२२७-वस्तु निर्देश निर्णय। मल्लिकामोद ताल

ऐसा तत्त्व अनूपम भाई, मरै न जीवै काल न खाई ॥ टेक ॥
पावक जरै न मार्‌यो मरई, काट्यो कटै न टार्‌यो टरई ॥ १ ॥
अखिर[1] खिरै न लागै काई, शीत घाम जल डूब न जाई ॥ २ ॥
माटी मिलै न गगन विलाई, अघट एक रस रह्या समाई ॥ ३ ॥
ऐसा तत्त्व अनूपं कहिये, सो गहि दादू काहे न रहिये ॥ ४ ॥

ब्रह्मात्म वस्तु का निर्देश और निर्णय दिखा रहे है—हे भाई! ब्रह्मात्म-तत्त्व ऐसा अनुपम है कि वह न मरता है, न जीवित रहता है, न उसे काल खाता है। अग्नि से जलता नहीं, मारने से मरता

नही, काटने से कटता नही, हटाने से हटता नही, वह अविनाशी है[२] उसका नाश नही होता। उसके मैल, शीत, घामादि नही लगते, वह जल मे नही डूबता, मिट्टी मे नही मिलता, आकाश मे लय नही होता, वह घटता नही, एकरस है और सब मे समाया हुआ है। ऐसा जो अनुपम आत्म-स्वरूप ब्रह्म तत्त्व कहलाता है, उसी को अभेद रूप से ग्रहण करके क्यो नही रहता ?

२२८-मनोपदेश। मल्लिकामोद ताल

मन रे, सेव निरजन राई, ताको सेवो रे चित लाई॥ टेक॥
आदि अंतै सोई उपावै, परलै लेहि छिपाई।
बिन थंभा जिन गगन रहाया, सो रह्या सबन में समाई॥ १ ॥
पाताल मांहीं जे आराधै, वासुकि रे गुण गाई।
सहस्र मुख जिह्वा द्वै ताके, सोभी पार न पाई॥ २ ॥
सुर नर जाको पार न पावैं, कोटि मुनिजन ध्याई।
दादू रे तन ताको है रै, जाको सकल लोक आराही[१]॥ ३ ॥

मन को उपदेश कर रहे है—अरे मन ! निरजन राम की भक्ति कर। अरे चित्त ! अपनी वृत्ति लगाकर जो विश्व का राजा है, उसी की सेवा कर।आदि मे वही ससार को उत्पन्न करता है और अन्त मे प्रलय के समय सबको अपने मे ही लीन कर लेता है। बिना स्तम्भ के ही जिनने अपनी सत्ता से ही आकाश के सूर्य वह चन्द्रादि को ठहरा रक्खा है। प्रभु सभी मे समाया हुआ है। पाताल मे जो वासुकि नाग है वह भी उसकी आराधना करता है तथा सहस्रमुख और प्रति मुख दो जिह्वा वाले शेषनाग भी उसके गुण गाते रहते है किन्तु वे भी उसके गुणो का पार नही पाते। देवता, नर और कोटिन मुनिजन उसकी उपासना करते है किन्तु कोई भी उसका पार नही पाता। अरे ! यह शरीर उसी प्रभु का है, जिसकी सपूर्ण लोक आराधना[१] करते है।

२२९-जीव-उपदेश। भंगताल

निरंजन जोगी जान ले चेला, सकल वियापी रहै अकेला॥ टेक॥
खपर न झोली डंड अधारी[१], मढी न माया लेहु विचारी॥ १ ॥
सींगी मुद्रा विभूति न कंथा, जटा जाप आसण नहिं पंथा॥ २ ॥
तीरथ व्रत न वन-खड वासा, मांग न खाइ नहीं जग आसा॥ ३ ॥
अमर गुरु अविनासी जोगी, दादू चेला महारस भोगी॥ ४ ॥

शिष्य के बहाने जीवो को उपदेश कर रहे है—हे शिष्य ! विचार द्वारा माया रहित योगी को जानकर स्वस्वरूप रूप से ग्रहण कर ले। वह सबमे व्यापक होकर भी सबसे अलग अद्वैत रूप से रहता है। उसके पास खप्पर, झोली और सहारा लगा कर बैठने का दडा[१] नही है, न कुटिया आदि कोई मायिक विस्तार ही है। उसके स्वरूप को भली प्रकार विचार के अभेद रूप से अपना ले। उसके पास सीगी, मुद्रा नही है, वह भस्म नही लगाता, कथा नही पहनता, जटा नही रखता, न जाप करता है, न आसन रखता है, न मार्ग चलता है, तीर्थो मे भ्रमण नही करता, न व्रत ही करता है, न

वन-खड मे निवास करता है, मॉग कर नही खाता, न जगत् के लोगो की आशा करता है। अमर भाव को प्राप्त हुये गुरुजनो ने इस अविनाशी ब्रह्म रूप योगी का परिचय दिया है। जो शिष्य इसको जान पाता है, वह ब्रह्मानन्द रूप महारस का उपभोग करता है।

२३०-उपदेश। भगताल

जोगिया बैरागी बाबा, रहै अकेला उनमनि लागा ॥ टेक ॥
आतम जोगी धीरज कथा, निश्चल आसण आगम पथा ॥ १ ॥
सहजै मुद्रा अलख अधारी[1], अनहद सीगी रहणि हमारी ॥ २ ॥
काया वन-खड पाचो चेला, ज्ञान गुफा मे रहै अकेला ॥ ३ ॥
दादू दरशन कारण जागे, निरंजन नगरी भिक्षा मागे ॥ ४ ॥

जिज्ञासु जीवात्मा रूप योगी का परिचय रूप उपदेश कर रहे है—हे बाबा! हमारा जिज्ञासु जीवात्मा ही विरक्त योगी है। यह विषयो से अलग अकेला रह कर समाधि मे लगा है। इस योगी की धैर्य ही कथा है, निश्चल रहना आसन है। प्रभु प्राप्ति के हेतु शास्त्र का विचार ही मार्ग चलना है, निर्द्वन्द्वावस्था ही मुद्रा है। मन इन्द्रियो का अविषय ब्रह्म ही आश्रय दड[1] है। अनाहत नाद ही सीगी है। शरीर-वन खड मे निवास है। पच ज्ञानेन्द्रियाँ ही शिष्य है। एकाकी ही ज्ञान गुफा मे रहता है। ब्रह्म साक्षात्कारार्थ जागते हुये निरजन ब्रह्म रूप नगरी से साक्षात्कार रूप भिक्षा माँगता है। यह हमारे रहने का ढग है।

२३१-समता ज्ञान। ललित ताल

बाबा, कहु दूजा क्यो कहिये, तातै इहि सशय दुख सहिये ॥ टेक ॥
यहु मति ऐसी पशुवा जैसी, काहे चेतत नाहीं।
अपना अग आप नहि जानै, देखै दर्पण माहीं ॥ १ ॥
इहि मति मीच मरण के ताई, कूप सिह तहँ आया।
डूब मुवा मन मरम न जाना, देखि आपनी छाया ॥ २ ॥
मद के माते समझत नाहीं, मैगल[1] की मति आई।
आपै आप आप दुख दीया, देख आपणी झाँई ॥ ३ ॥
मन समझै तो दूजा नाहीं, बिन समझै दुख पावै।
दादू ज्ञान गुरु का नाही, समझ कहा तै आवै ॥ ४ ॥

२३१-२३२ मे समत्व ज्ञान बिना क्लेश होता है, यह कह रहे है-बाबा कहो, द्वैत क्यो कहा जाय? इस द्वैत के कहने से ही तो इस ससार मे सशय जन्य क्लेश सहा जाता है। यह द्वैत बुद्धि पशुओ की बुद्धि के समान है। इससे क्यो नही सावधान होता? श्वान दर्पण मे देखता है, तब अपने शरीर को भी नही पहचानता और भूक २ कर मर जाता है। इस भेद बुद्धि से ही तो शशक के कहने पर मृत्यु के वश होकर मरणे के लिये वहा कूप पर सिह आया और अपनी छाया को देखकर अपने

मन मे उस रहस्य को न जान सका, इसलिये कूप मे कूद कर डूब मरा। मद से मस्त हाथी[१] समझता नही, चमकीले पत्थर मे अपनी ही छाया को देख, दूसरा हाथी जानकर, उस पर आघात करके अपने आप ही अपने को दु ख देता है, वैसे ही हाथी की सी द्वैत बुद्धि आने पर प्राणी अपने को आप ही दु खी कर लेता है। मन मे समझे तो द्वैत है ही नही, किन्तु बिना ही समझे दु ख पाते है। जब गुरु का ज्ञान सुनते ही नही तब समझ भी कहा से आवे ?

२३२-ललित लाल

बाबा, नाहीं दूजा कोई, एक अनेक नाम तुम्हारे, मौपै और न होई ॥ टेक ॥

अलख इलाही[१] एक तू, तू ही राम रहीम[२]।
तूं ही मालिक मोहना, केशव नाम करीम[३]॥ १ ॥
सांई सिरजनहार तूं, तूं पावन तूं पाक[४]।
तूं कायम[५] करतार तूं, तूं हरि हाजिर आप॥ २ ॥
रमता राजिक[६] एक तूं, तू सारंग[७] सुबहान[८]।
कादिर[९] करता एक तू, तूं साहिब सुलतान ॥ ३ ॥
अविगत[१०] अल्लह एक तूं, गनी[११] गुसांई एक ।
अजब अनूपम आप है, दादू नाम अनेक॥ ४ ॥

हे बाबा ! दूसरा कोई भी नही है, आप एक के ही अनेक नाम है। मेरे से तो अन्य सिद्ध होता ही नही। एक आप ही अलख और ईश्वर[१] है, आप ही राम और बहुत दयालु[२] है, आप ही मालिक और मोहन है। आप ही का नाम केशव और उदार[३] है। आप ही साई और सिरजनहार है । आप ही पावन और पवित्र[४] है। आप ही स्थिर[५] और करतार है। आप ही हरि है और आप सभी स्थानो मे सदा उपस्थित है । आप एक ही रमता राम और जीविका[६] देने वाला है, आप ही विष्णु[७] और पवित्र[८] है। एक आप ही समर्थ[९] और करतार है। आप ही साहिब और सुलतान है। एक आप ही मन इन्द्रियो के अविषय[१०] और अल्लाह है। एक आप ही स्वाधीन[११] और प्रभु है। आप ही अद्भुत और अनुपम है, आपके नाम अनेक है, किन्तु आप एक ही है।

२३३-समर्थाई । रंग ताल

जीवत मारे मुये जिलाये, बोलत गूंगे गूंग बुलाये ॥ टेक ॥
जागत निश भर सोई सुलाये, सोवत रैनी सोई जगाये ॥ १ ॥
सूझत नैनहुँ लोइन[१] लीये, अंध विचारे ता मुख दीये ॥ २ ॥
चलते भारी[२] ते बिठलाये, अपंग विचारे सोई चलाये ॥ ३ ॥
ऐसा अद्भुत हम कुछ पाया, दादू सतगुरु कह समझाया ॥ ४ ॥

ईश्वर की सामर्थ्य दिखा रहे है—जिसने जीवितो को मारा और मृतको को जीवित किया, बोलने वालो को गूगे और गूगो को बोलने वाले बना दिया। प्रति रात्रि भर जगने वालो को निद्राधीन कर दिया, प्रति रात्रि भर सोने वालो को जागने की शक्ति प्रदान की। नेत्रो से देखने वालो के (लोचन=) नेत्र[१] ले लिये और जो बेचारे अधे थे, उनके चेहरे पर नेत्र लगा दिये। बहुत[२] चलने वाले थे, उनको एक स्थान मे बैठा दिये और जो बेचारे अपग थे, उनको चला दिये। सद्गुरु ने बारबार कहकर समझाया है, तब कुछ ऐसा अद्भुत तत्त्व हमने प्राप्त किया है।

२३४-प्रश्न। रगताल

क्यो कर यह जग रच्यो गुसाईं, तेरे कौन विनोद बन्यो मन माहीं॥ टेक॥
कै तुम आपा परकट करना, कै यहु रचले जीव उधरना॥ १॥
कै यहु तुम को सेवक जानै, कै यहु रचले मन के मानै॥ २॥
कै यहु तुम को सेवक भावै, कै यहु रचले खेल दिखावै॥ ३॥
कै यहु तुम को खेल पियारा, कै यहु भावै कीन्ह पसारा॥ ४॥
यहु सब दादू अकथ कहानी, कह समझावो सारग-पाणी[१]॥ ५॥

प्रभु से जगत रचना विषयक प्रश्न कर रहे है—हे प्रभो! यह ससार किसलिये रचा है? आपके मन मे कौन-सा खेल करने का सकल्प बन गया था? क्या आप अपने को प्रकट करना चाहते थे वा जीवो के उद्धारार्थ यह रच लिया है? वा यह इसलिए रचा है—आपके कार्य को देखकर आपके सेवक आपको पहचान जाये? वा निष्प्रयोजन मनमाने ढग से ही यह बना दिया है? वा आपको सेवक प्रिय लगते है, इसलिए उनको उत्पन्न करने के लिए यह रचा है? वा केवल खेल दिखाने के लिए ही यह रच दिया है? वा आपको खेल प्रिय है, इसलिए यह रचा है? वा फैलाव करना आपको अच्छा लगता है, इसलिए यह रचा है? अन्यो के लिए यह सब कथा अकथनीय है। अत हे परमेश्वर[१]! प्राणी आदि सृष्टि-रचना मे क्या हेतु है, आप ही कहकर समझाओ।

उत्तर की साखी—

दादू परमारथ को सब किया, आप स्वारथ नाहि।
परमेश्वर परमारथी, कै साधू कलि माहि॥ (१५-५०)
खालिक खेलै खेल कर, बूझै विरला कोइ।
लेकर सुखिया ना भया, देकर सुखिया होइ॥ (२१-३७)

२३५-समर्थाई। झपताल

हरे! हरे!! सकल भुवन भरे, जुग जुग सब करे।
जुग जुग सब धरे, अकल सकल जरे, हरे हरे॥ टेक॥
सकल भुवन छाजै, सकल भुवन राजै, सकल कहै।
धरती अम्बर गहै, चद सूर सुधि लहै, पवन प्रकट बहै॥ १॥

घट घट आप देवै, घट घट आप लेवै, मंडित माया।
जहा तहां आप राया, जहा तहा आप छाया, अगम अगम पाया ॥ २ ॥
रस मांहीं रस राता, रस मांहीं रस माता, अमृत पीया।
नूर मांहीं नूर लीया, तेज मांहीं तेज कीया, दादू दरश दीया ॥ ३ ॥

ईश्वर सामर्थ्य दिखा रहे है—हे जन्मादि क्लेशो के अपहरण करने वाले हरे! आप सम्पूर्ण भुवनो मे परिपूर्ण है। प्रति युग मे धर्म स्थापनादि सब कार्य आप ही करते है तथा प्रति युग मे आप ही सबको धारण करते है। हरे! आप कला रहित है और सब मे आत्म रूप से प्रकाशित हो रहे है। सब कहते है—आप सब भुवनो मे विराजते है, सब भुवन आप से ही अच्छे लगते है। आप ही अपनी सत्ता से पृथ्वी और आकाश को पकडे हुये है। आपसे ही चन्द्र-सूर्य अपने गमनागमनादि का ज्ञान प्राप्त करते है। आपकी सत्ता से ही वायु प्रकट रूप से चल रहा है? प्रति शरीर को आप ही अपनी सत्ता देते है और प्रति शरीर की भावना ग्रहण करते है। यह मायिक ससार आप से ही शोभित है। जहा तहा आप राजा रूप से व्याप्त है। आप अगम से भी अगम स्थान मे प्राप्त होते है। जब आप रस-रूप प्रभु मे मै भक्ति-रस के द्वारा अनुरक्त हुआ तब ज्ञानामृत का पान करके आप रस-स्वरूप मे रस-रूप होकर मस्त हो गया हूँ, अब तो आत्म-स्वरूप मे ही ब्रह्म-स्वरूप प्राप्त कर लिया है। आत्म-तेज मे ही बह्म तेज प्राप्त किया है। उन प्रभु ने इस प्रकार कृपा करके दर्शन दिया है। यही उनकी सामर्थ्य है।

२३६-परिचय उपदेश । चौताल

पीव पीव आदि अंत पीव।
परसि परसि अंग संग, पीव तहां जीव ॥टेक॥
मन पवन भवन गवन, प्राण कवल मांहि ।
निधि निवास विधि विलास, रात दिवस नांहि ॥ १ ॥
श्वास बास आस पास, आत्म अंग लगाइ ।
ऐन बैन निरख नैन, गाइ गाइ रिझाइ ॥ २ ॥
आदि तेज अंत तेज, सहजै सहज आइ ।
आदि नूर अंत नूर, दादू बलि बलि जाइ ॥ ३ ॥

२३६-२३७ मे साक्षात्कार सम्बन्धी उपदेश कर रहे है—सृष्टि के आदि मे प्रभु है, अन्त मे प्रभु है और मध्य मे भी प्रभु रहते है। वृत्ति द्वारा बारम्बार उनके स्वरूप से स्पर्श करके जीव उनके सग ही हो जाता है और जिस निर्द्वन्द्वावस्था मे प्रभु रहते है, उसी मे जीव रहता है। प्राणी मन और प्राणो को रोककर देह-भवन के अष्ट-दल कमल मे जहा परमात्मा-रूप निधि का निवास है, गमन करता है। वहा सभी विधियॉ आनद प्राप्त होने की होती है। ज्ञान-अज्ञान रूप रात्रि-दिन का भेद नही भासता। अपने अति समीप आत्म-स्वरूप ब्रह्म मे ही वृत्ति लगाकर प्रति श्वास वहा ही बसता है। सद्गुरु वचनो के द्वारा ज्ञान-नेत्रो से प्रत्यक्ष देखकर ध्यानावस्था मे बारम्बार गुण-गान करते हुये

प्रभु को प्रसन्न करता है। अब आदि अन्त मे ब्रह्म-तेज ही भास रहा है। इस प्रकार ब्रह्म तेज को देखते-देखते अनायास ही सहजावस्था मे आकर अपने आदि अन्त मे भासने वाले प्रभु को मध्य मे ही प्राप्त करके हम उसकी बलिहारी जाते है।

२३७-(फ़ारसी) चौताल

नूर[1] नूर अव्वल[2] आखिर[3] नूर।
दायम[4] कायम[5], कायम दायम, हाजिर है भरपूर ॥टेक॥
आसमान नूर, जमी नूर, पाक परवरदिगार[6]।
आब[7] नूर, बाद[8] नूर, खूब खूबा यार ॥१॥
जाहिर[9] बातिन[10] हाजिर नाजिर[11], दाना[12] तू दीवान[13]।
अजब अजाइब[14] नूर दीदम,[15] दादू है हैरान ॥२॥

स्वस्वरूप[1] ब्रह्म सृष्टि के प्रथम[2], मध्य और अन्त[3] मे सदा[4] स्थिर है[5] तथा वह स्थिर ब्रह्म सदा सबके पास और विश्व मे परिपूर्ण है। वही आकाश रूप, पृथ्वीरूप, पवित्र और पालन[6] करने वाला है। वही जल[7] रूप, वायु[8] और श्रेष्ठो से भी श्रेष्ठ तथा सब का मित्र है। अन्त करण[10] मे स्थिर रहकर देखने[11] वाले और जानने वाले[12] के रूप मे प्रकाशित[9] होता है। प्रभो! आप ही बुद्धिमान् मत्री[13] के समान सब को प्रेरणारूप परामर्श देते है, आप की रचित वस्तुये आश्चर्य[14] कारक है। आपका अद्भुत रूप देख[15] कर हम चकित है।

२३८-रस। त्रिताल

मै अमली मतवाला माता, प्रेम मगन मेरा मन राता ॥टेक॥
अमी महारस भर भर पीवै, मन मतवाला जोगी जीवै ॥ १ ॥
रहै निरतर गगन मझारी, प्रेम पियाला सहज खुमारी[1] ॥ २ ॥
आसण अवधू अमृतधारा, जुग जुग जीवै पीवनहारा ॥ ३ ॥
दादू अमली इहि रस माते, राम रसायन पीवत छाके[2] ॥ ४ ॥

२३८ मे प्रभु-प्रेम-रस की विशेषता दिखा रहे है—मै प्रभु-प्रेम-रस का व्यसनी हू, उससे मतवाला होकर मस्त हो रहा हू। मेरा मन भी प्रभु-प्रेम मे अनुरक्त होकर, उसी मे निमग्न हो रहा है। प्रभु-प्रेमामृत महारस को इच्छा भर-भर के पान करता है और उसी से मतवाला होकर मन रूप योगी जीवित है तथा निरतर हृदयाकाश मे अष्ट-दल कमल पर प्रभु के पास ही रहता है। प्रेम प्याला का सहजावस्था रूप नशा[1] भी उसके चढा ही रहता है। उक्त अष्ट-दल कमल रूप आसन के पास स्थित रह कर जिस अवधूत का चित्त प्रभु प्रेमामृतधारा का पान करने वाला होता है, वह प्रभु को प्राप्त होकर प्रति युग मे जीवित रहता है हम इस राम-रसायन रूप रस के व्यसनी है और इसको पान करते-करते तृप्त होकर इसी मे मस्त[2] है।

२३९-निज उपदेश । त्रिताल

सुख दुख संशय दूर किया, तब हम केवल राम लिया ॥ टेक॥
सुख दुख दोऊ भ्रम विकारा, इन सौ बँध्या है जग सारा ॥ १ ॥
मेरी मेरा सुख के तांई, जाय जन्म नर चेतै नांही ॥ २ ॥
सुख के तांई झूठा बोलै, बॉधे बन्धन कबहुं न खोलै॥ ३ ॥
दादू सुख दुख सग न जाई, प्रेम प्रीति पिव सौं ल्यौ लाई ॥ ४ ॥

निज अनुभव युक्त उपदेश कर रहे है—साधन से सुख होगा वा दु ख होगा, यह सशय दूर करके प्रेम पूर्वक प्रभु का भजन किया जब हमने अद्वैत राम को आत्म रूप से प्राप्त किया है। भ्रम पूर्ण विचारो के द्वारा इन दोनो सुख-दु ख द्वन्द्वो से सब जगत् बॅधा हुआ है। सासारिक सुख के लिए मेरी-मेरी करते जीवन नष्ट होता जा रहा है किन्तु मनुष्य-कल्याणार्थ सावधान नही होता। विषय-सुख के लिए मिथ्या बोलता है। कर्म-बधन बाध रक्खे है, आत्मज्ञान द्वारा उन्हे खोलने का प्रयत्न कभी भी नही करता किन्तु स्मरण रखना चाहिए सुख दु ख अनित्य है, साथ न जायेगे, इसलिए प्रेम-साधना का आश्रय लेकर प्रीति सहित प्रभु मे वृत्ति लगाओ।

२४०-हैरान । वर्णभिन्न ताल

कासौ कहूं हो अगम हरि बाता, गगन धरणि दिवस नहिं राता ॥ टेक ॥
सग न साथी गुरु नहिं चेला, आसन पास यों रहै अकेला ॥ १ ॥
वेद न भेद न करत विचारा, अवरण वरण सबन तैं न्यारा ॥ २ ॥
प्राण न पिड रूप नहि रेखा, सोइ तत सार नैन बिन देखा ॥ ३ ॥
जोग न भोग मोह नहिं माया, दादू देख काल नहिं काया ॥ ४ ॥

प्रभु सम्बन्धी आश्चर्य दिखा रहे है—हे साधक ! उस हरि के स्वरूप सम्बन्धी वार्ता किस से कहू ? वह अगम है सहज ही समझ मे नही आती। वे आकाश, पृथ्वी, दिन और रात्रि रूप नही है, उनके सग कोई साथी भी नही है, न उनके आसन के पास गुरु शिष्यादि ही है। इस प्रकार वे अद्वैत रूप से ही रहते है। न वहा वेद है, न भेद विचार किया जाता है। वे वर्ण-अवर्ण आदि सभी दशाओ से अलग है। वे प्राण पिड और किसी प्रकार के रूप रेखादि से युक्त नही है। वे ही ससार के सार तत्त्व है। यह सब हमने बिना नेत्रो से स्वरूप स्थिति द्वारा देखा है। वहा योग, भोग, मोह, माया, काल, कायादि कुछ भी नही है। हे साधक ! तू भी स्वरूप स्थिति द्वारा देख।

२४१-गुरु ज्ञान । वर्णभिन्न ताल

मेरा गुरु ऐसा ज्ञान बतावै ।
काल न लागै संशय भागै, ज्यों हैं त्यों समझावै ॥ टेक॥
अमर गुरु के आसन रहिये, परम ज्योति तहँ लहिये ।
परम तेज सो दृढ कर गहिये, गहिये लहिये रहिये ॥ १ ॥

मन पवना गहि आतम खेला, सहज शून्य घर मेला।
अगम अगोचर आप अकेला, अकेला मेला खेला॥ २ ॥
धरती अम्बर चद न सूरा, सकल निरतर पूरा।
शब्द अनाहद बाजहि तूरा, तूरा पूरा सूरा॥ ३ ॥
अविचल अमर अभय पद दाता, तहा निरजन राता।
ज्ञान गुरु ले दादू माता[1], माता राता दाता॥ ४ ॥

२४१-२४२ मे गुरु ज्ञान का परिचय दे रहे है—हमारे गुरुदेव ऐसा ज्ञानोपदेश करते है, जिसके द्वारा सब सशय नष्ट हो जाते है और प्राणी के पीछे काल नही लगता। जैसा निज स्वरूप है, वैसा भली प्रकार समझा देते है। उन अमर ब्रह्म-भाव को प्राप्त हुये गुरुदेव के आसन के पास ही रहना चाहिए। वहा ज्ञानरूप परम ज्योति प्राप्त होती है। गुरु से प्राप्त ज्ञान रूप परम तेज को दृढ़ता से ग्रहण करना चाहिए और उसके ग्रहण द्वारा स्वस्वरूप को प्राप्त करके ही रहना चाहिए। जो मन प्राण को रोक कर आत्मा के साथ चिन्तन रूप खेल खेलता है वह विकार शून्य सहजावस्था रूप घर मे जाकर प्रभु से मिलता है। जो मन से अगम इन्द्रियो से परे स्वय अद्वैत प्रभु है उनसे अद्वैत स्थिति द्वारा मिल कर आनद लेता है। उनके स्वरूप मे पृथ्वी, आकाश, चन्द्र सूर्यादि नहीं है किन्तु वे सदा सब मे परिपूर्ण रहते है। उनके साक्षात्कार से प्रथम अनाहत ध्वनिरूप नगाडे बजते है। जो अनाहत ध्वनि रूप नगाडे बजाकर आगे बढ़ता है, वह साधक पूरा वीर है और जो अविचल, अमर, अभयपद के प्रदाता निरजन राम, जिस निर्विकल्प समाधि मे भासते है, वहा ही उन निरजन मे अनुरक्त रहता है वह इस प्रकार गुरु का ज्ञान प्राप्त करके मस्त[1] होता है। जो प्रभु मे अनुरक्त होकर मस्त होता है, वही उत्तम ज्ञान का दाता होता है।

२४२-राज विद्याधर ताल

मेरा गुरु आप अकेला खेलै।
आपै देवै आपै लेवै, आपै द्वै कर मेलै॥टेक॥
आपै आप उपावै माया, पच तत्त्व कर काया।
जीव जन्म ले जग मे आया, आया काया माया॥ १ ॥
धरती अम्बर महल उपाया, सब जग धधै लाया।
आपै अलख निरजन राया, राया लाया उपाया॥ २ ॥
चद सूर दोइ दीपक कीन्हा, रात दिवस कर लीन्हा।
राजिक रिजक सबन को दीन्हा, दीन्हा लीन्हा कीन्हा॥ ३ ॥
परम गुरु सो प्राण हमारा, सब सुख देवे सारा।
दादू खेलै अनंत अपारा, अपारा सारा हमारा॥ ४ ॥

हमारे गुरु परब्रह्म विश्व मे अद्वैत भाव से क्रीडा करते है, स्वय सबकी भावनाये लेते है, कर्मानुसार सब को देते है। उपाधि द्वारा अपने से अन्य जीव खडा कर देते है। और ज्ञान द्वारा पुन. उसे निज मे मिला लेते है। आप स्वय ही माया को उत्पन्न करके, उससे आकाशादि पच तत्त्व और पच तत्त्वो से शरीर रचते है। उनकी सत्ता से ही जीव जन्म धारण करके जगत् मे आता है और शरीर मे आकर माया मे फॅस जाता है। उसी प्रभु ने पृथ्वी और आकाश मय महल उत्पन्न करके सब जगत् को सासारिक कार्यों मे लगाया है। वे विश्व के राजा, मन इन्द्रियो के अविषय, माया रहित है। सबको उत्पन्न करके तथा कार्यों मे लगाकर भी वे विश्व के स्वमी हर्षादि द्वन्द्वो से रहित है। उन्होंने चन्द्र-सूर्य दीपक रचे है और उन्होंने ही रात्रि तथा दिन रचा है। उन जीविका देने वाले प्रभु ने सबको जीविका दी है। उन्होंने सबको कार्यक्षम किया है। नाम चिन्तन द्वारा पाप दूरहरण किया है और ज्ञान दिया है। वे परम गुरु विश्व के सार और हमारे प्राण है। वे ही सम्पूर्ण सुख देते है। वे हमारे सर्वस्त्र अपार प्रभु उक्त प्रकार दीनता रहित अपार खेल खेलते है, फिर भी सबसे निर्लेप रहते है।

२४३-हैरान। राज विद्याधर ताल

थकित भयो मन कह्यो न जाई, सहज समाधि रह्यो ल्यौ लाई॥ टेक॥
जे कुछ कहिये सोच विचारा, ज्ञान अगोचर अगम अपारा॥ १॥
साइर[1] बूंद कैसे कर तोलै, आप अबोल कहा कह बोलै॥ २॥
अनल पंखि परे पर दूर, ऐसे राम रह्या भरपूर॥ ३॥
अब मन मेरा ऐसे रे भाई, दादू कहबा कहण न जाई॥ ४॥

२४३-२४५ मे परब्रह्म स्वरूप सम्बन्धी आश्चर्य दिखा रहे है—हम से तो उस परब्रह्म का अन्त नहीं कहा जाता। हमारा मन तो थक गया है। हम तो अब सहज समाधि मे उसके स्वरूप मे वृत्ति लगा करके ही स्थित रहते है। जो भी कुछ सोच विचार करके कहते है, तो वह ज्ञान के द्वारा इन्द्रियो से परे और मन से अगम, अपार ही कहा जाता है। बुद्धिरूप बिन्दु ब्रह्म-सागर[1] का माप-तोल कैसे कर सकती है ? और वह स्वय तो वचनातीत है, उसे क्या कहकर कहा जाय ? जैसे अनल पक्षी आकाश मे रहता है किन्तु आकाश उसके माप के परे ही रहता है, वह आकाश का पार नही पाता, वैसे ही राम मे सब रहते है और राम सब मे परिपूर्ण रूप से रहने पर भी सब से दूर है, उनका पार कोई भी नही पाता। हे भाई ! अब मेरे मन की तो ऐसी दशा हो रही है— वह प्रभु के स्वरूप सम्बन्ध मे कहना चाहता है किन्तु उससे कहा नही जाता। कारण, उसमे अनुभव करने की शक्ति है, कहने की नही। वाणी मे कहने की है, अनुभव करने की नही। अत ब्रह्म स्वरूप अकथनीय तथा आश्चर्य रूप है।

ए लोगो ! मै पूछ-पूछ कर हार गया हू किन्तु प्रभु का जैसा स्वरूप है, वैसा कोई भी नही कहता । वह अगाध, अपार, मन से अगम इन्द्रियो से परे है। इन्द्रियो मे से कोई भी उसका ज्ञान प्राप्त नही कर सकती। उसके वार पार का अन्त कोई भी नही पाता। आदि, अन्त, मध्य, भेद तो उसमे है ही नही। वह कैसा है ? कहा रहता है ? ऐसा विचार करते-करते सच्चे ज्ञानी भी पागल हो जाते है। ब्रह्मा, विष्णु और महादेव से भी पूछे तो वे कितना कहेगे ? अर्थात् अपार ही कहेगे । शेख और मुल्ला[१] आदि धर्म के ज्ञाता, वा पीर, पैगम्बरादि मे कोई ऐसा है, जो मन इन्द्रियादि से न ग्रहण करने योग्य परब्रह्म को ग्रहण करके यथार्थ रूप से उसका अन्त कह सके ? आकाश-पृथ्वी के बीच सूर्य-चन्द्रादि को भी पूछे, वायु तथा सभी रूप-रगादि को खोजे तो भी उस ब्रह्म के बिना कर्म-बन्धन को जला सके ऐसा कौन है ? अत उसका स्वरूप देख कर हम तो आश्चर्य चकित[२] हो रहे है।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग आसावरी समाप्त ॥ ९ ॥

अथ राग सिन्दूरा १०

(गायन समय रात्रि १२ से ३)

२४६-परिचय उपदेश । झपताल

हंस सरोवर तहां रमैं, सूभर हरि जल नीर।
प्राणी आप पखालिये, निर्मल सदा होइ शरीर ॥ टेक ॥
मुक्ताहल मन मानिया, चुगैं हंस सुजान।
मध्य निरंतर झूलिये, मधुर विमल रस पान॥ १ ॥
भ्रमर कमल रस वासना, रातो राम पीवंत ।
अरस परस आनंद करै, तहां मन सदा होइ जीवंत ॥ २ ॥
मीन मगन मांहीं रहैं, मुदित सरोवर मांहिं।
सुख सागर क्रीला[१] करैं, पूरण परिमित नांहि ॥ ३ ॥
निर्भय तहँ भय को नहीं, विलसैं बारंबार।
दादू दर्शन कीजिये, सन्मुख सिरजनहार॥ ४ ॥

२४६-२४९ मे ब्रह्म साक्षात्कारार्थ उपदेश कर रहे है—जहा हृदय सरोवर मे हरि स्वरूप जल परिपूर्ण रूप से भरा है, वहा ही सत-हस रमण करते है। उस नीर मे जो प्राणी अपने अहकारादि दोषो को धोता है उसका शरीर सदा के लिए निर्मल हो जाता है। बुद्धिमान् सत-हसो का मन ब्रह्म-स्वरूप मुक्ताहल के चिन्तन रूप चुगने मे ही प्रसन्न हुआ है और अति मधुर, विमल दर्शन-रस पान करके उसी के आनद मे निरन्तर झूलता रहा है। जैसे भ्रमर कमल के वास-रस को पान करता है, वैसे ही सत-मन राम मे अनुरक्त होकर राम-दर्शन रस पान द्वारा अरस-परस आनद लेते हुये सदा सजीवन होने जा रहा है। जैसे मच्छी सरोवर मे निमग्न रह कर प्रसन्न रहती है, वैसे ही अपरिमित परिपूर्ण सुख सागर ब्रह्म मे सत क्रीडा[१] करते है। वह ब्रह्म निर्भय स्थान है, वहा कोई भी प्रकार का भय नही है। सत वहा ही प्रतिक्षण ब्रह्मानन्द का उपभोग करते है। तुम भी स्मरण द्वारा सृजनहार परमात्मा के सन्मुख होकर उनके दर्शन करो।

२४७-झपताल

सुख सागर मे झूलबो, कश्मल झडै हो अपार।
निर्मल प्राणी होइबो, मिलिबो सिरजनहार ॥ टेक ॥
तिहि संजम पावन सदा, पंक न लागै प्राण।
कँवल विगासै तिहिं तणो, उपजै ब्रह्म गियान ॥ १ ॥
अगम निगम तह गम करै, तत्त्वै तत्त्व मिलान।
आसन गुरु के आइबो, मुक्तैं महल समान ॥ २ ॥
प्राणी परि पूजा करै, पूरै प्रेम विलास।
सहजै सुन्दर सेविये, लागी लै कविलास ॥ ३ ॥
रैण दिवस दीसै नहीं, सहजै पुंज प्रकास।
दादू दर्शन देखिये, इहि रस रातो हो दास ॥ ४ ॥

भगवद् भजन रूप सुख-सागर मे स्नान करने से अपार पाप नष्ट हो जाते है। प्राणी निर्मल होकर सृष्टि-कर्ता ईश्वर से मिलता है। सयम पूर्वक भजन से प्राणी सदा के लिये अन्यो को पवित्र करने वाला बन जाता है और उसके कोई भी प्रकार का दोष रूप कीचड नही लगता। उसका हृदय-कमल खिल जाता है, उसमे ब्रह्म ज्ञान उत्पन्न हो जाता है। वेद से भी जो अगम है, उस ब्रह्म के पास पहुँच जाता है और ब्रह्म तत्त्व मे आत्मतत्त्व को मिलाकर गुरु के बताये हुये स्वस्वरूप स्थिति रूप आसन पर स्थिर हो, शरीर-महल मे रहते हुये भी शरीर से मुक्त के समान हो जाता है। प्राणी परिपूर्ण रूप से प्रभु की पूजा करता है, तब शनै शनै उस सुन्दर सेवा से उसकी वृत्ति सहस्रार रूप कैलास मे जाकर ब्रह्म-स्वरूप मे लगती है और वह प्रभु के पूर्ण परमानन्द का उपभोग करता है। समाधि मे जहा प्रभु का दर्शन होता है, वहा रात्रि-दिन आदि काल-भेद नहीं दीखता, स्वाभाविक प्रकाश पुज ब्रह्म ही भासता है। हे भगवान् के दास ! तू भी इस भजन-रस मे अनुरक्त होकर उस परब्रह्म के दर्शन कर।

२४८-शूलताल

अविनाशी संग आत्मा, रमै हो रैण दिन राम।
एक निरंतर ते भजैं, हरि हरि प्राणी नाम ॥ टेक ॥
सदा अखंडित उर बसै, सो मन जाणी ले।
सकल निरतर पूरि सब, आतम रातो ते ॥ १ ॥
निराधार निज बैसणों, जिहि तत आसन पूर।
गुरु शिष आनद ऊपजै, सन्मुख सदा हजूर ॥ २ ॥
निश्चल ते चालै नहीं, प्राणी ते परिमाण।
साथी साथैं ते रहै, जाणै जाण सुजाण ॥ ३ ॥

ते निर्गुण आगुण[1] धरी, मांही कौतुकहार।
देह अछत[2] अलगो रहै, दादू सेव अपार ॥ ४ ॥

जो प्राणी हरि हरि उच्चारण करते हुये निरतर एक अविनाशी राम को भजते है, उनकी बुद्धि रात्रि-दिन उस राम मे ही रमण करती है। जो सदा अखडित भाव से हृदय मे बसता है, उसी को साधन सम्पन्न मन से जान कर प्राप्त कर ले। जो निरतर सब मे परिपूर्ण है, उसी मे हमारा जीवात्मा अनुरक्त है, जब उस निराधार निज स्वरूप तत्त्व मे स्थिति रूप आसन लगा कर बैठना होता है, तब ब्रह्म तत्त्व सदा सन्मुख उपस्थित भासता है और गुरु शिष्य दोनो के हृदय मे ब्रह्मानद उत्पन्न होता है। वे साधक सयम रूप माप से स्वस्वरूप मे निश्चल रहते है, उनकी वृत्ति विषयो मे नही जाती। वे बुद्धिमान् ज्ञान द्वारा जानकर अपने सदा के साथी परब्रह्म के साथ ही रहते है। सगुण-माया[1] का रूप धारण कर सत्ता मात्र से ससार रूप खेल रचने वाले निर्गुण ब्रह्म मे ही वे स्थित रहते है। अत साधक सत माया मे आसक्त नही होते, इस प्रकार उस असीम प्रभु की उपासना करके शरीर मे रहते हुये भी शरीराध्यास[2] से अलग रहते है।

२४९-शूलताल

पारब्रह्म भज प्राणिया, अविगत एक अपार।
अविनाशी गुरु सेविये, सहजैं प्राण अधार ॥टेक॥
ते पुर प्राणी तेहनो, अविचल सदा रहंत।
आदि पुरुष ते आपणों, पूरण परम अनंत ॥ १ ॥
अविगत आसण कीजिये, आपैं आप निधान।
निरालम्ब भज तेहनो, आनंद आत्मराम ॥ २ ॥
निर्गुण निश्चल थिर रहै, निराकार निज सोइ।
ते सति प्राणी सेविये, लै समाधि रत होइ ॥ ३ ॥
अमर आप रमता रमैं, घट घट सिरजनहार।
गुणातीत भज प्राणिया, दादू येह विचार ॥ ४ ॥

हे प्राणी, गुरुजनो की सेवा करते हुये मन इन्द्रियो के अविषय, अपार, अद्वैत, अविनाशी, प्राणाधार, परब्रह्म का सहज स्वभाव से सदा ही भजन कर। वह सदा निश्चल रहने वाला प्रभु रूप पुर ही तेरा स्थान है। उस परम अनन्त, आदि पुरुष, मन इन्द्रियो के परे, विश्व मे परिपूर्ण अपने निजी आश्रय रूप प्रभु मे ही वृत्ति स्थिति रूप आसन लगा। अन्य आश्रय रहित, निर्गुण, निश्चल, निराकार, आत्म स्वरूप राम ही सदा स्थिर रहता है, वही तेरा है, उसे भज। हे प्राणी! वृत्ति द्वारा समाधि मे अनुरक्त होकर उस सत्य प्रभु की ही उपासना कर। वह सत्ता मात्र से सृष्टिकर्ता, गुणातीत, अमर, सब मे रमने वाला, स्वय घट-घट मे रम रहा है। हे प्राणी! तू अब उसी का भजन कर, हमारा विचारपूर्वक यही उपदेश है।

२४६-२४९ के ४ पदो से रतिया निवासी बाबा बनवारीजी को उपदेश किया था। उपदेश से ही वे कृतकृत्य होकर "हरिजी भलो भयो सतन को, सुन-सुन सरस कथा दादू की, भ्रम भाग्यो या मन को" यह पद महाराज की भेट किया था।

२५०-शूरातन। झपताल

क्यों भाजै सेवक तेरा, ऐसा शिर साहिब मेरा ॥टेक॥
जाके धरती गगन अकाशा, जाके चंद सूर कविलाशा।
जाके तेज पवन जल साजा, जाके पंच तत्त्व के बाजा॥ १ ॥
जाके अठारह भार वनमाला, गिरि पर्वत दीन दयाला।
जाके सायर[1] अनन्त तरगा, जाके चौरासी लख संगा॥ २ ॥
जाके ऐसे लोक अनन्ता, रचि राखै विधि बहु भंता।
जाके ऐसा खेल पसारा, सब देखै कौतुकहारा॥ ३ ॥
जाके काल मीच डर नांहीं, सो बरत रह्या सब माहीं।
मन भावै खेलै खेला, ऐसा है आप अकेला॥ ४ ॥
जाके ब्रह्मा ईश्वर[2] बदा, सब मुनिजन लागे अगा।
जाके साधु सिद्ध सब माहीं, परिपूरण परिमित नांही॥ ५ ॥
सोइ भानै घडै सँवारै, युग केते कबहुँ न हारै।
ऐसा हरि साहिब पूरा, सब जीवन आत्ममूरा[3]॥ ६ ॥
सो सबहिन की सुधि जानै, जो जैसा तैसी बानै।
सर्वगी राम सयाना, हरि करै सो होइ निदाना॥ ७ ॥
जे हरिजन सेवक भाजै, तो ऐसा साहिब लाजै।
अब मरण माँड हरि आगे, तो दादू बाण न लागे॥ ८ ॥

२५०-२५१ मे साधन शौर्य दिखा रहे है—हे प्रभो! आपका सेवक आपकी सेवा छोड़ कर, विषय-वासना की पूर्ति के लिए क्यो दौड़ेगा? मेरे शिर पर आप ऐसे स्वामी है—जिनने इच्छा मात्र से तन्मात्रा रूप पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश रचे है ओर आकाश मे चन्द्र, सूर्यादि सजाये है जिनके स्थूल पच भूतो के ध्वनि रूप शब्द ही बाजे बज रहे है। जिन दीनदयालु ने अठारह भार वनस्पति के वनो की पक्तियाँ, छोटे बड़े पर्वत, अनन्त तरगो वाले समुद्र[1] रचे है, चौरासी लक्ष योनि जिनके साथ है, ऐसे अनन्त लोको की बहुत प्रकार से रचना करके भली भाति रक्षा कर रहे है। जिनका यह ऐसा विचित्र ससार-खेल फैलाया हुआ है और वे खेल करने वाले के समान सबको देख रहे है। जिन को समय व्यतीत होने का वा मृत्यु का भय नही है, वे सब मे स्थित रह कर उनके मन को अच्छा लगे वैसा खेल खेलते है। वे ऐसे अद्भुत और स्वय अद्वैत है। जिनके ब्रह्मा और महादेव[2] भी भक्त है। सभी मुनिजन, साधु और सिद्ध भी जिनके स्वरूप चिन्तन मे लगे है। जो

सब मे परिपूर्ण और असीम है। वे ही अनन्त नारी पुरुषादिक जोडे निरतर बनाते है और नष्ट करते रहते है, किन्तु कभी भी थकते नही। वे हरि ऐसे पूर्ण प्रभु है, सपूर्ण जीवात्माओ के मूल[३] और जीवन हैं। वे सबके भाव विचारो को जानते है और जो जैसा होता है, उसके लिये वैसी ही व्यवस्था बना देते है। वे राम सपूर्ण जीवादि रूप अगो के अगी है अर्थात् सर्व रूप है और परम चतुर है। जो भी वे हरि करना चाहते है, अत मे वही होता है। यदि हरि का सेवक, हरि उपासना को छोड कर विषय-वासना पूर्ति के लिए दौड़ता है तो ऐसे प्रभु को लाज लगती है। इस लिये अब मरना स्वीकार करके भी भजन द्वारा हरि के आगे ही रहना चाहिए। ऐसा करने से काल-कर्म के बाण न लग सकेगे और अन्त मे साधक अभेद रूप से हरि को ही प्राप्त होगा।

२५१-झपताल

हरि भजतां किमि भाजिये, भाजैं भल नांहीं।
भागैं भल क्यों पाइये, पछतावै मांहीं॥ टेक॥
सूरा सो सहजै भिडै, सार[१] उर झेलै।
रण रोकै भाजै नहीं, ते बाण न मेलै॥ १॥
सती सत साँचा गहै, मरणै न डराई।
प्राण तजै जग देखतां, पियडो उर लाई॥ २॥
प्राण पतंगा यों तजै, वो अंग न मोडै।
जौबन जारे ज्योति सौं, नैना भल जोडै॥ ३॥
सेवक सो स्वामी भजै, तन मन तज आसा।
दादू दर्शन ते लहैं, सुख संगम पासा॥ ४॥

हरि भजन करते समय विषयाशा पूर्ति के लिए नही दौडना चाहिए, उधर दौडने से भजन भली प्रकार नही होता। भक्त को विषयाशा पूर्ति के लिए दौडने से भलाई कैसे मिलेगी, प्रत्युत मन मे पश्चात्ताप करना होगा। वीर तो वही है, जो सहजावस्था के द्वारा महा मोह को नष्ट करने के लिए युद्ध करता है और ब्रह्म सम्बन्धी गुरु के सार-वचन[१] रूप पक्के-लोहे[१] से बने शस्त्रो को छाती पर झेलता है। साधन सग्राम मे कामादि को रोकता है अर्थात् अपने हृदय मे उनके वेग को नही आने देता। न साधन से हटता है और उक्त ब्रह्म सम्बन्धी गुरु वचन रूप बाण अन्त करण हाथ से दूर नही धरता। सती नारी पति से प्रेम करके सच्चा सत्य ग्रहण करती है तब मरणे से नही डरती। जगत् के लोगो के देखते-देखते पति के शव को हृदय से लगा कर प्राण छोड देती है, तब ही पति-लोक को प्राप्त होती है। इसी प्रकार पतग अपने प्राणो को त्याग देता है, वह दीपक से अपने शरीर को नही लौटाता, भली प्रकार अपने नेत्र दीपक से जोडकर उसी की ज्योति से अपने यौवन युक्त शरीर को जला देता है। वैसे ही तन और मानसिक सुखो की आशा को त्याग कर जो भगवान् को भजता है, वही सेवक स्वामी के दर्शन करता है और उनके अभेद रूप सगम का आनद लेता है।

२५२-चेतावनी । रुद्रताल

सुन तू मना रे, मूरख मूढ विचार।
आवै लहरि बिहावणी[1], दमै[2] देह अपार ॥टेक॥
करिबो है तिमि कीजिये रे, सुमिर सो आधार॥ १ ॥
चरण बिहूणो चालबो रे, सभारी ले सार॥ २ ॥
दादू तेहज लीजिये रे, साचो सिरजनहार॥ ३ ॥

२५२-२५३ मे मन को भजवद् भगनार्थ सावधान कर रहे है—हे मूर्ख मन ! तू हमारी बात सुन और हे मूढ ! उसे विचार भी। देख, आगे यथार्थ सुख को छुडाने[1] वाली विषयाशा रूप लहर हृदय मे आयेगी, उससे देह का अपार दमन[2] होगा। अत जैसा कल्याण का साधन करना योग्य है वैसा ही कर, जो अपने आधार प्रभु है उन्ही का स्मरण कर। अरे ! उन प्रभु के पास बिना पैरो वृत्ति द्वारा ही चलना होता है। इसलिये शीघ्र ही विश्व के सार रूप प्रभु का स्मरण कर ले। इस प्रकार स्मरण द्वारा उस सत्ता मात्र से ही सृष्टि रचने वाले सत्य स्वरूप प्रभु को प्राप्त कर ले।

२५३-(गुजराती) रुद्रताल

रे मन साथी माहरा, तूनै समझायो कै बारो रे।
रातो रग कसूभ के, तै बीसास्यो आधारो रे ॥टेक॥
स्वप्ना सुख के कारणे, फिर पीछे दुख होई रे।
दीपक दृष्टि पतग ज्यो, यों भर्मि जले जनि कोई रे॥ १ ॥
जिह्वा स्वारथ आपणे, ज्यो मीन मरे तज नीरो रे।
मॉहे जाल न जाणियो, तातै उपनो दु ख शरीरो रे ॥ २ ॥
स्वादै ही सकट पस्यो, देखत ही नर अधो रे।
मूरख मूठी छाडि दे, होइ रह्यो निर्बन्धो रे ॥ ३ ॥
मान सिखावण माहरी, तू हरि भज मूल न हारी रे।
सुख सागर सोइ सेविये, जन दादू राम सँभारी रे ॥ ४ ॥

इति राग सिन्दूरा समाप्त ॥ १० ॥ पद ८ ॥

अरे मेरे साथी मन ! मैंने तुझे कितनी ही बार समझाया है रे, किन्तु तू नही समझा, तभी तो तू अपने आधार प्रभु को भूल कर विषय-कुसुम्भ के प्रेम-रग मे अनुरक्त हो रहा है। अभी तो तू इस स्वप्न के समान मिथ्या विषय सुख के लिए अनर्थ कर रहा है, किन्तु फिर कुछ काल के पीछे तो इसका फल तुझे दु ख ही मिलेगा। जैसे पतग दीपक मे दृष्टि लगा कर भ्रमवश जल मरता है, वैसे ही विषयो से भ्रमवश सुख की आशा करके कोई न मरे, उनमे सुख नही है। जिह्वा-सुखरूप निजी स्वार्थवश हो, मच्छी जल मे जाल को नही जान पाती, इसीलिए उसके शरीर मे क्लेश उत्पन्न होता है और वह जल को त्याग कर जैसे मर जाती है, वैसे ही विषय केलिये नर मरता है।

नर देखते हुये भी अन्धा होकर, इन्द्रिय स्वाद के कारण ही सकट मे पडता है। यदि मूर्ख वानर चणे की मुट्ठी छोड दे तो बन्धन रहित है, बाजीगर के हाथ नही आता। वैसे ही नर विषय-रस को त्याग दे तो, वह मुक्त ही है, काल के फदे मे नही आयेगा। अरे मन ! हमारी शिक्षा मान, तू हरि का भजन कर, अपने मनुष्य शरीर रूप मूल धन को तो व्यर्थ मत खो। जो सुख सागर राम है उसी का भक्त बनकर उसकी स्मरण रूप सेवा कर।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग सिन्दूरा समाप्त ॥ १० ॥

अथ राग देवगांधार ११

(गायन समय प्रात ६ से ९)

२५४-विनती अनन्यशरण। त्रिताल

शरण तुम्हारी आइ परे।
जहॉ तहाँ हम सब फिर आये, राखि राखि हम दुखित खरे ॥ टेक॥
कस कस काया तप व्रत कर कर, भ्रमत भ्रमत हम भूल परे।
कहुँ शीतल कहुँ तप्त दहे तन, कहुँ हम करवत शीश धरे॥ १ ॥
कहुँ वन तीरथ फिर फिर थाके, कहुँ गिरि पर्वत जाइ चढे।
कहूँ शिखर चढ परे धरणि पर, कहुँ हत आपा प्राण हरे॥ २ ॥
अंध भये हम निकट न सूझै, तातैं तुम तज जाइ जरे।
हा हा! हरि अब दीन लीन कर, दादू बहु अपराध भरे॥ ३ ॥

अनन्यशरण पूर्वक विनय कर रहे है—हे प्रभो ! हम ससार के सभी स्थलो मे जहा तहा फिर आये है और सच्चे दुखित होकर अब आपकी शरण मे आकर पडे है। आप हमारी रक्षा करे, रक्षा करे। हमने बारबार तप और व्रत करके शरीर को कष्ट दिया है। ससार मे भ्रमते-भ्रमते मार्ग भूल कर हम कष्टो मे पड गये थे। कही तो शीतल जल की पच धाराये लेकर शरीर को काष्ठवत् शून्य किया। कही पच धूनी तापते हुये शरीर को तप्त ज्वालाओ से जलाया। किसी शरीर मे शिर पर करवत धारण करके शरीर को चीरा। कही वन, तीर्थो मे फिरते-फिरते थक गये, कही जाकर छोटे बडे पर्वतो पर चढ़े। किसी जन्म मे पर्वत शिखर पर चढ कर पृथ्वी पर पडे। कही अपने हाथो अपने को मार कर प्राण खोये। हम तो स्वार्थवश अध हो गये थे, इसीलिए अति समीप हृदय मे रहते हुये भी आप हमे नही दीख सके। आपके दर्शन न होने से ही आप को छोड ससार मे जा नाना क्लेशाग्नि से जलते रहे है। हम बहुत अपराधो से भरे हुये है, हा-हा ! दु:ख, अति दु ख है। हे हरे ! अब तो मुझ दीन को अपने स्वरूप मे लीन कर लीजिये।

२५५-पतिव्रत उपदेश । त्रिताल

बौरी[1] ! तूं बार बार बौरानी ।
सखी सुहाग न पावै ऐसे, कैसे भरमि भुलानी ॥ टेक ॥
चरणो चेरी चित नहि राख्यो, पतिव्रत नाहिन जान्यो ।
सुन्दरि सेज सग नहि जानै, पीव सौ मन नहि मान्यों ॥ १ ॥
तन मन सबै शरीर न सौप्यो, शीश नाइ नहीं ठाढी ।
इक रस प्रीति रही नहिं कबहू, प्रेम उमग न बाढी ॥ २ ॥
प्रीतम अपनौं परम सनेही, नैन निरख न अघानी ।
निशि-वासर आनि उर अतर, परम पूज्य नहि जानी ॥ ३ ॥
पतिव्रत आगै जिन जिन पाल्यो, सुन्दरि तिन सब छाजै ।
दादू पिव बिन और न जानैं, ताहि सुहाग विराजै ॥ ४ ॥

पतिव्रत का उपदेश कर रहे है—हे पगली' वुद्धि ! तू विषयो मे जाकर वारवार पागल होती रही है । अरी सखी ! भ्रम वश प्रभु को क्यो भूल रही है ? ऐसे व्यवहार से तो प्रभु की समीपतारूप सुहाग न प्राप्त कर सकेगी । तूने दासी भाव से प्रभु के चरणो मे अपना चित्त नही रक्खा और न पतिव्रत धर्म को ही सम्यक् पहचाना । हे सुन्दरी ! तूने प्रभु के सग एकता रूप शय्या-सुख का अनुभव नही किया । करती भी कैसे ? तेरा मन तो प्रभु से प्रसन्न हुआ ही नही । तूने अपना स्थूल शरीर और मनादिक सपूर्ण सूक्ष्म शरीर, प्रभु को समर्पण नही किया, न शिर झुकाकर उनके सन्मुख खडी हुई, न उनमे तेरी निरतर प्रीति ही रही, न कभी तेरे हृदय मे प्रभु-प्रेम की लहर ही बढ़ी, न तू अपने परम स्नेही प्रियतम को नेत्रो से देख कर तृप्त ही हुई । उन्हे परम पूज्य जान कर रात्रि-दिन अपने हृदय मे उनका ध्यान भी नही किया । पहले जिन-जिन ने पतिव्रत पालन किया है, उन सुन्दरियो को सब शोभा प्राप्त हुई है । अब भी जो प्रियतम बिना अन्य को पुरुष नही जानती, उस बुद्धि-सुन्दरी को प्रियतम प्रभु का साक्षात्कार रूप सुहाग प्राप्त है ।

२५६-उपदेश चेतावनी । रगताल

मन मूरखा ! तै यो ही जन्म गँवायो ।
साई केरी सेव न कीन्ही, इहि कलि काहे को आयो ॥ टेक ॥
जिन बातन तेरो छूटिक नाहीं, सोइ मन तेरे भायो ।
कामी ह्वै विषया सग लागो, रोम रोम लपटायो ॥ १ ॥
कुछ इक चेत विचारी देखो, कहा पाप जिय लायो ।
दादू दास भजन कर लीजे, स्वप्नै जग डहकायो ॥ २ ॥

इति राग देवगान्धार समाप्त ॥ ११ ॥ पद ३ ॥

उपदेश से सावधान कर रहे है—अरे मूर्ख मन प्राणी ! तूने मानव जन्म को विषयो मे व्यर्थ ही खो दिया है। परमात्मा की भक्ति नही करी, फिर तू इस कलियुग मे मानव देह धारण करके आया ही क्यो था ? विषय तो अन्य योनियो मे भी प्राप्त थे। जिन वचन और कर्मों से तेरा दु खो से छुटकारा नही होता, वे ही तेरे मन को अच्छे लग रहे है। तू कामी होकर विषयो के साथ लगता है और नारी के रोम-रोम से चिपकता है। अरे ! कुछ तो सावधान होकर विचार द्वारा देख, यह विषयाशारूप पाप अपने हृदय मे क्यो लगाया है ? ससार स्वप्न से क्यो बहक रहा है ? भगवद्-भजन करके भक्त बन और भगवान् को प्राप्त कर ले, यही तेरा सच्चा कर्त्तव्य है।

(इस पद से बखनाजी को उपदेश किया था और उन्होंने स्वीकार करके, यह पद कहा था-"मेरा गुरा कह्यो सोइ करस्या।") प्रसग कथा-दृ सु सि त. ९-३१ मे देखो।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग देवगान्धार समाप्त ॥ ११ ॥

अथ राग कालिंगड़ा १२

(गायन समय प्रभात ३ से ६)

२५७-(गुजराती) विनती। रंग ताल

वाल्हा हूं ताहरी, तूं माहरो नाथ।
तुम सौं पहली प्रीतडी, पूरबलो साथ ॥ टेक ॥
वाल्हा मैं तूं म्हारो ओलखियो[1] रे, राखिस[2] तूनें हृदा मंझारि।
हूं पामूं[3] पीव आपणों रे, त्रिभुवन दाता देव मुरारि ॥ १ ॥
वाल्हा मन माहरो मन मांहीं राखिस, आतम एक निरजन देव।
चित मांहैं चित सदा निरंतर, येणी[4] पेरें तुम्हारी सेव ॥ २ ॥
वाल्हा भाव भक्ति हरि भजन तुम्हारो, प्रेमें पूरि कवल विगास।
अभि-अतर आनंद अविनाशी, दादू नी एहैं[5] पूरवी आस ॥ ३ ॥

प्रभु से विनय कर रहे है—हे प्रियतम प्रभो ! मै आपकी हू, आप मेरे नाथ है। आपसे मेरी प्रीति पहले से ही है। आपका और मेरा साथ पहले से ही चला आ रहा है। प्रिय, मैंने पहचान[1] लिया है कि—आप मेरे है, मै आपको हृदय मे रक्खूगी[2]। मैंने त्रिभुवन को जीविका देने वाले मुरारि देव अपने प्रियतम को प्राप्त[3] कर लिया है। हे आत्म स्वरूप अद्वैत निरजन देव प्रियतम ! अब मेरे मन और चित्त को सदा के लिए निरतर आप अपने मन और चित्त मे रक्खे। इस[4] प्रकार अभेद भाव से आपकी सेवा करता रहू तथा हे प्रियतम हरे ! आपकी श्रद्धा, भक्ति और पूर्ण प्रेम के द्वारा मेरा हृदय कमल खिला रहे। भीतर मे अखड आनद का अनुभव होता रहे, ऐसे[5] मेरी यह आशा पूर्ण करिये।

२५८-(गुजराती) उपदेश चेतावनी। वर्ण भिन्न ताल

वारीवार कहूं रे गहिला, राम नाम कांइ विसार्‍यो रे।
जनम अमोलक पामियो[1], एह्वो[2] रतन कांइ हार्‍यो रे ॥ टेक ॥

विषया वाह्यो[३] ने तहँ धायो, कीधो[४] नहि मारू वार्‍यो[५] रे।
माया धन जोई ने भूल्यो, सर्वथ येणे[६] हार्‍यो रे॥ १॥
गर्भवास देह दमतो[७] प्राणी, आश्रम तेह सँभार्‍यो रे।
दादू रे जन रांम भणीजे[८], नहि तो जथा विधि हार्‍यो रे॥ २॥

इति राग कालिगड़ा समाप्त॥ १२॥ पद २॥

उपदेश द्वारा सावधान कर रहे है—अरे पागल! मै तुझे बारबार कहता हू, तू राम नाम का चिन्तन क्यो भूला है? यह अमूल्य मानव जन्म तुझे प्राप्त[१] हुआ है, ऐसा[२] रत्न विषयो मे क्यो खो रहा है? विषयो से बहक[३] करके जहा विषय प्राप्त हो, वहा ही दौडता है। मैंने जिनको त्यागने[५] के लिए कहा, वे कामादि नहीं त्यागे, मेरा कहना नहीं किया[४]। मायिक कनकादि धनो को देखकर प्रभु को भूल रहा है। इस[६] व्यवहार से तो तू अपना सर्वस्व खो रहा है। हे प्राणी! गर्भवास मे तेरा सूक्ष्म देह बारबार अति कष्ट[७] पाता रहा है। गर्भवासरूप आश्रम मे तूने उस प्रभु को स्मरण किया था, अब फिर भूल गया है। अरे मन! राम नाम चिन्तन तथा उच्चारण[८] कर, नहीं करने से तो जैसी विधि से तू चल रहा है, ऐसे तो अपने जन्म को व्यर्थ ही खो रहा है। (पाठातर हवै[१] तो प्राणी)

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग कालिगडा समाप्त ॥ १२॥

अथ राग परजिया (परज) १३

(गायन समय रात्रि ३ से ६)

२५९-परिचय। खेमटा ताल

नूर रह्या भरपूर, अमी रस पीजिये।
रस माही रस होइ, लाहा लीजिये॥ टेक॥
परकट तेज अनत, पार नहि पाइये।
झिलमिल झिलमिल होइ, तहा मन लाइये॥ १॥
सहजै सदा प्रकाश, ज्योति जल पूरिया।
तहा रहे निज दास, सेवक सूरिया॥ २॥
सुख सागर वार न पार, हमारा वास है।
हस रहैं ता माहि, दादू दास है॥ ३॥

इति राग परजिया (परज) समाप्त॥ १३॥ पद १॥

साक्षात्कार की प्रेरणा करते हुये स्थिति बता रहे है—ब्रह्म प्रकाश सर्वत्र परिपूर्ण है, उसका चिन्तनरूप अमृत पान करो और उस रस रूप ब्रह्म मे रस रूप आत्मा एक हो सके, ऐसा विचार करके अभेद स्थिति रूप लाभ लो। वह अनन्त तेज रूप ब्रह्म समाधि मे प्रकट रूप से भासता है, किन्तु उसका आदि अन्त ज्ञात नही होता, वह अपार है। जहा झिलमिल-झिलमिल प्रकाश हो

रहा है वहा ही अपने मन को लगाओ। वह प्रकाश सदा सहज भाव से जल मे ज्योति प्रतिविम्ब के समान भासता है। भगवान् के निज दास साधन मे वीर निष्काम भक्त ही वृत्ति द्वारा उस प्रकाश के पास रहते है। जो वार-पार रहित सुख-सागर है, उसी मे हम भक्त रूप हसो का निवास रहता है।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग परजिया (परज) समाप्त ॥ १३ ॥

अथ राग भांणमली (भवानी) १४

(गायन समय मध्य रात्रि, राम मजरी मतानुसार)

२६०-(गुजराती) विनती । कव्वाली ताल

मारा वाल्हा रे ! तारे शरणि रहीश ।
बिनतडी वाल्हा नें कहतां, अनंत सुख लहीश ॥टेक॥
स्वामी तणों हूं सग न मेलू, बीनंतडी कहीश ।
हूं अबला, तूं बलवंत राजा, ताहरा वना वहीश[1] ॥ १ ॥
संग रहूं तां सब सुख पामूं[2], अंतर थैं दहीश[3] ।
दादू ऊपर दया करीनैं, आवो आंणीं वेश[4] ॥ २ ॥

२६०-२६३ मे विरह पूर्वक विनय कर रहे है—मेरे प्रियतम ! मै आपकी शरण रहूगी, प्रियतम को विनय करते-करते ही मै अपार सुख प्राप्त कर सकूगी। मै स्वामी का साथ नही छोडूगी, उनसे विनय करूगी। प्रियतम ! आप बलवान् और विश्व के राजा है। मै अबला हू आपके अनुग्रह बिना विषय-प्रवृत्ति प्रवाह मे बह[1] जाऊगी। आपके सग रहूगी तब तो सब प्रकार से सुख प्राप्त[2] कर सकूगी, नही तो आपके वियोग जन्य दु ख द्वारा भीतर से जल[3] जाऊगी। अत मुझ पर दया करके अपने वास्तव स्वरूप से मेरे हृदय मे प्रवेश कर विराजो[4]।

२६१-(गुजराती) जलद त्रिताल

चरण देखाड तो प्रमाण[1] ।
स्वामी माहरै नैणो निरखू, मॉगूं येज[2] मान[3] ॥ टेक ॥
जोवूं तुझनें आशा मुझनें, लागूं येज ध्यान ।
वाहलो मारो मलो रे सहिये[4], आवे केवल ज्ञान ॥ १ ॥
जेणी पेरें[5] हूं देखूं तुझनें, मुझनें आलो[6] जाण ।
पीव तणी हूं पर नहिं जाणूं, दादू रे अजाण ॥ २ ॥

हे प्रभो ! आप मुझे अपने चरणो का दर्शन दो, तब ही आपकी भक्त वत्सलता सत्य[1] सिद्ध होगी। स्वामिन् ! मै मेरे नेत्रो से आपका दर्शन कर सकू, यही[2] आप से मॉगता हू। मेरी प्रार्थना मानो[3]। मुझे यही आशा लगी है—मै आपको देखू ! इसीलिए आपका यह ध्यान करता हू। यदि

बुद्धि मे अद्वैत ज्ञान आ जाय, तब तो मेरा प्रियतम मिला हुआ ही है। यह निश्चय[४] कर लू। हे प्रभो ! जिस तरह[५] मै आपको देख सकू, वैसा ही अपना प्रिय[६] भक्त मुझे जान लो। मै हू तो प्रियतम का ही, किन्तु प्रियतम का पूर्ण स्वरूप नही जानता, इसलिए अजान ही हू।

२६२-(गुजराती) जलद त्रिताल

ते हरि मलू मारो नाथ।
जोवा ने मारो तन तपै, केवी[१] पेरे[२] पामूं[३] साथ ॥टेक॥
ते कारण हू आकुल व्याकुल, ऊभी करू विलाप।
स्वामी मारो नैणे निरखूं, ते तणों[४] मने ताप ॥ १ ॥
एक वार घर आवे वाहला, नव[५] मेलू कर हाथ।
ये विनंती साभल स्वामी, दादू तारो दास ॥ २ ॥

उन मेरे नाथ हरि से मै मिलूगी, उनको देखने के लिए मेरा शरीर वियोग-ताप से तप रहा है। मै उनका साथ किस[१] तरह[२] प्राप्त[३] कर सकूगी। मै उनके लिये घबरा कर व्याकुल हो रही हू और खडी-खडी विलाप करती हू। अपने स्वामी को नेत्रो से देखूगी। उनको[४] न देखने के कारण ही मुझे दु ख है। यदि एक बार प्रियतम घर आ जाये, तब तो मै अपने हाथ से उनका हाथ नहीं[५] छोडूगी। हे स्वामिन् ! मेरी यह विनय सुनो, मै आपकी दासी हू।

२६३-(गुजराती) रंग ताल

ते केम[१] पामिये[२] रे, दुर्लभ जे आधार।
ते विना तारण को नहीं, केम उतरिये पार ॥ टेक ॥
केवी[३] पेरे[४] कीजै आपणो रे, तत्त्व ते छे सार।
मन मनोरथ पूरे मारा, तन नो ताप निवार ॥ १ ॥
संभार्‍यो आवे रे वाहला, वेला[५] ये अवार[६]।
विरहणी विलाप करे, तेम[७] दादू मन विचार ॥ २ ॥

इति राग भाणमली (भवानी) समाप्त ॥ १४ ॥ पद ४ ॥

जो हमारे आधार है, वे प्रभु तो दुर्लभ हो रहे है, उनको कैसे[१] प्राप्त कर सकेगे ? उनके विना ससार से तारने वाला कोई भी नहीं है। फिर हम कैसे पार उतर सकेगे ? जो ससार का सार तत्त्व है उसे किस[३] तरह[४] अपना वना सकेगे ? हे प्रियतम ! मेरे मन का मनोरथ पूर्ण करके शरीर की ताप दूर करो। प्रियतम ! भक्तो के स्मरण करने पर तो आप शीघ्र आते है, फिर इस समय[५] देर[६] क्यो कर रहे हो ? मै विरहनी विलाप कर रही हू, इसे[७] मन मे विचार करके शीघ्र ही पधारिये।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग भाणमली (भवानी) समाप्त ॥ १४ ॥

अथ राग सारंग १५

(गायन समय मध्य दिन)

२६४-गुरु ज्ञान । सूरफाखता ताल

हो ऐसा ज्ञान ध्यान, गुरु बिना क्यों पावै ।
वार पार पार वार, दुस्तर तिर आवै हो ॥ टेक ॥
भवन गवन गवन भवन, मन ही मन लावै ।
रवन छवन छवन रवन, सद्गुरु समझावै हो ॥ १ ॥
क्षीर नीर नीर क्षीर, प्रेम भक्ति भावै ।
प्राण कमल विकस विकस, गोविन्द गुण गावै हो ॥ २ ॥
ज्योति जुगति बाट घाट, लै समाधि ध्यावै ।
परम नूर परम तेज, दादू दिखलावै हो ॥ ३ ॥

सद्गुरु बिना यथार्थ ध्यान ज्ञान की दुर्लभता दिखा रहे है—हे भाई ! सद्गुरु बिना ऐसा ध्यान और ज्ञान कैसे प्राप्त हो सकता है ? जिसके द्वारा साधक दुस्तर ससार के इस विषयासक्ति रूप तट से तैर कर निरासक्ति रूप अगले तट पर आ पहुचे और विषय-भवन मे गमन करने वाली मन की वृत्ति को मन ही मन मे ध्यान तथा ज्ञान विचार करके परब्रह्म मे लगा सके तथा वृत्ति भी सब विश्व के निवास स्थान ब्रह्म-भवन मे गमन कर सके और स्थिर रहकर, विषयो मे रमण करना छोड दे तथा स्थिरता पूर्वक ब्रह्म मे ही रमण करे। ऐसा ध्यान तथा ज्ञान तो सद्गुरु ही समझा सकते है। जैसे दूध मे जल और जल मे दूध एक हो जाता है, वैसे ही आत्मा परमात्मा मे एक होने का निश्चय होने पर भी प्रेमाभक्ति प्रिय लगे तथा प्राणी का हृदय-कमल आनद से बारबार खिलता रहे और वह गोविन्द गुण-गान करता रहे। योग युक्ति द्वारा ब्रह्म-ज्योति के साक्षात्कारार्थ अन्तर्मुख वृत्ति रूप मार्ग से समाधि-घाट पर पहुचा सके तथा परम तेज रूप अपने परम स्वरूप को दिखा सके, ऐसा ध्यान-ज्ञान सद्गुरु बिना नही मिलता।

२६५-केवल विनती। पंजाबी त्रिताल

तो निबहै जन सेवक तेरा, ऐसे दया कर साहिब मेरा ॥ टेक ॥
ज्यों हम तोरैं त्यों तू जोरै, हम तोरैं पै तूं नहिं तोरै ॥ १ ॥
हम विसरैं पै तूं न विसारै, हम बिगरैं पै तूं न बिगारै ॥ २ ॥
हम भूलैं तूं आन मिलावै, हम बिछुरैं तूं अंग लगावै ॥ ३ ॥
तुम भावै सो हम पै नांहीं, दादू दर्शन देहु गुसांईं ॥ ४ ॥

दर्शनार्थ विनय कर रहे है—हे मेरे प्रभो ! ज्यो ही हम आप से प्रेम तोडे त्यो ही आप जोडते रहे, हम चाहे आप से सम्बन्ध तोड ले, किन्तु आप न तोडे। हम आप को भूल जायँ, किन्तु आप

हम को न भूले। हम आप से विगड़ जायँ, किन्तु आप हम से न विगाड़े। हम आपका चिन्तन भूल कर विषयो मे जाये, तव आप विषयो से लाकर अपने स्वरूप मे मिलावे। जव भी हम आप से अलग हो, तव आप हम को अपने स्वरूप मे सलग्न करे। ऐसी दया करे तो ही आप के सेवक जन का आप की प्राप्ति-मार्ग मे निर्वाह हो सकता है। आप को जो प्रिय लगे, वह साधन तो हमारे पास नही है। अत स्वामिन्! आप दया करके ही हमे दर्शन दे।

२६६-काल चेतावनी। पंजावी त्रिताल

माया संसार की सव झूठी।
मात पिता सव ऊभे भाई, तिनहि देखतां लूटी ॥टेक॥
जव लग जीव काया मे थारे, खिण वैठी खिण ऊठी।
हस जु था सो खेल गया रे, तव तैं संगति छूटी ॥ १ ॥
ए दिन पूगे आयु घटानी, तव निचित होइ सूती।
दादू दास कहै ऐसी काया, जैसे गगरिया फूटी ॥ २ ॥

काल से सावधान कर रहे है—ससार की सभी माया मिथ्या है, वैसे ही काया भी मिथ्या है। माता, पिता, भाई आदि सभी सम्वन्धियो के खड़े रहते भी उनके देखते-देखते ही लुट जाती हे। जव तक काया मे जीव था, तव तक तो यह किसी क्षण मे वैठती थी और किसी क्षण मे उठती थी किन्तु इसमे जो जीव-हस था, वह जव से गमन रूप खेल खेल गया, तव से लोगो ने इसका सग छोड़ दिया। अव ये जीवन के दिन पूरे हो गये और आयु समाप्त हो गई, इससे यह काया निश्चिन्त होकर सूती पडी है। हम तो अनुभव करके कहते है कि—जैसे फूटी गागर वेकार होती है, वैसे ही यह काया जीवात्मा के गमन से वेकार हो जाती है।

२६७-माया मध्य मुक्ति। त्रिताल

ऐसे गृह मे क्यो न रहै, मनसा वाचा राम कहै ॥टेक॥
सपति विपति नहीं मै मेरा, हर्ष शोक दोउ नाहीं।
राग द्वेष रहित सुख दुख तै, बैठा हरि पद माहीं॥ १ ॥
तन धन माया मोह न बाँधे, वैरी मीत न कोई।
आपा पर सम रहै निरतर, निज जन सेवक सोई॥ २ ॥
सरवर कमल रहै जल जैसे, दधि मथ घृत कर लीन्हा।
जैसे वन में रहै बटाऊ, काहू हेत न कीन्हा॥ ३ ॥
भाव भक्ति रहै रस माता, प्रेम मगन गुण गावै।
जीवित मुक्त होइ जन दादू, अमर अभय पद पावै॥ ४ ॥

जिस ज्ञान रूप घर मे रहने से सत माया मे रहते हुये भी मुक्त रहता है, उसमे रहने की प्रेरणा

कर रहे है—अरे ! मन, वचन से राम का भजन करते हुये ज्ञान रूप ऐसे घर मे क्यो नही रहता ? जिसमे सपत्ति-विपत्ति, मै-मेरा, हर्ष-शोक दोनो ही नही है, जो राग-द्वेष तथा वस्तु-जन्य सुख और दुख से रहित है, जिसमे रहने से हरि-स्वरूप मे स्थिति रहती है। शरीर-धनादिक मायिक मोह नही बाध सकते, न कोई शत्रु मित्र ही भासते। अपने पराये मे निरतर समता रहती है। उस घर मे जो रहता है, वह जन भगवान् का निज सेवक कहलाता है। जैसे कमल सरोवर के जल मे रहते हुये भी ऊपर रहता है और मथन करके दही से निकाला हुआ मक्खन छाछ मे नही मिलता, वैसे ही ससार मे मन नही मिलता। जैसे वन मे विश्राम करने वाला पथिक वन के वृक्षादिक से प्रेम करके वहा ठहरता नही, अपने मार्ग पर चल पड़ता है, वैसे ही उसका किसी से राग नही होता। श्रद्धा भक्ति द्वारा ब्रह्म रस मे मस्त रहता है। इस प्रकार भक्त-जन प्रेम मे निमग्न होकर प्रभु के गुण गायन करते हुये अमर अभय पद प्राप्त करके जीवन्मुक्त हुये रहते है।

२६८-परिचय उपदेश। त्रिताल

चल चल रे मन तहां जाइये।
चरण बिन चलिबो, श्रवण बिन सुनिबो, बिन कर बैन बजाइये ॥ टेक॥
तन नांहीं जहँ, मन नाहीं तहँ, प्राण नहीं तहँ आइये ।
शब्द नहीं जहॅ, जीव नहीं तहॅ, बिन रसना मुख गाइये ॥ १ ॥
पवन पावक नहीं, धरणि अम्बर नहीं, उभय नहीं तहँ लाइये ।
चंद नहीं जहॅ, सूर नहीं तहँ, परम ज्योति सुख पाइये ॥ २ ॥
तेज पुंज सो सुख का सागर, झिलमिल नूर नहाइये ।
तहॅ चल दादू अगम अगोचर, तामैं सहज समाइये ॥ ३ ॥

इति राग सारग समाप्त ॥ १५ ॥ पद ५ ॥

ब्रह्म साक्षात्कारार्थ उपदेश कर रहे है—अरे मन ! साधन द्वारा चल कर वहा जा, जहा जाने के लिए तेरे आशा रूप पैरो के बिना ही चलना होता है। बाह्य श्रवणो के बिना ही सुनना होता है। बिना हाथो के ही अनाहत ध्वनि-रूप-बसी बजाई जाती है। उस निर्विकल्प समाधि मे शरीर, मन, प्राण, शब्द जीव नही है और बिना रसना ही भावना रूप मुख से प्रभु का यशोगान किया जाता है, वहा ही जा। वहा वायु, अग्नि, पृथ्वी, आकाश, और द्वैत-भाव नही है, वहा ही अपनी वृत्ति लगा, जहा चन्द्र-सूर्य भी नही है, वहा ही परम ज्योति दर्शन रूप सुख को प्राप्त कर, वह तेज-पुज सुख का सागर है। इस झिलमिल स्वरूप मे स्नान करके उस अगम अगोचर प्रभु मे सहजावस्था द्वारा समा जा।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग सारग समाप्त ॥ १५ ॥

अथ राग टोडी (तोडी) २६

(गायन समय दिन ६ से १२)

२६९-स्मरण उपदेश । राज मृगांक ताल

सो तत सहजै सुषमन कहणा, साच पकड मन जुग जुग रहणा ॥ टेक ॥
प्रेम प्रीति कर नीका राखै, बारबार सहज नर भाखै ॥ १ ॥
मुख हरिदै सो सहज सँभारै, तिहि तत रहणा कदे न विसारै ॥ २ ॥
अतर सोई नीका जाणै, निमिष न बिसरै ब्रह्म बखाणै ॥ ३ ॥
सोई सुजाण सुधा रस पीवै, दादू देखि जुग जुग जीवै ॥ ४ ॥

प्रभु-स्मरण सम्बन्धी उपदेश कर रहे है—जिस तत्त्व के विषय मे योगियो का कहना है-सुषुम्ना नाडी के चलने पर शनै शनै साधन की प्रौढावस्था मे प्राप्त होता है। हे मन ! तुझे उसी सत्य ब्रह्म तत्त्व को प्रति क्षण पकडे रहना चाहिए। योगी नर प्रीतिपूर्वक बारबार सहजावस्था मे जाकर अपने हृदय मे अच्छी प्रकार प्रेम से उसका ध्यान करता है और सहज स्वरूप का नाम मुख से उच्चारण करता है, मन मे स्मरण करता है, उस तत्त्व मे वृत्ति रखना कभी भी नहीं भूलता, ज्ञान द्वारा सशय-विपर्य्यय रहित अच्छी प्रकार बुद्धि मे जानता है। एक निमेष मात्र भी उसे भूलता नहीं, ब्रह्म का ही प्रवचन करता रहता है, वही बुद्धिमान्, इस प्रकार स्मरण-सुधा-रस का पान करते हुये उस ब्रह्म तत्त्व का साक्षात्कार करके ब्रह्म रूप से प्रति युग मे जीवित रहता है।

२७०-नाम महिमा । राज मृगाक ताल

नाव रे नाव रे, सकल शिरोमणि नाव रे, मै बलिहारी जांव रे ॥ टेक ॥
दुस्तर तारै पार उतारै, नरक निवारै नांव रे ॥ १ ॥
तारणहारा भव जल पारा, निर्मल सारा नाव रे ॥ २ ॥
नूर दिखावै तेज मिलावै, ज्योति जगावै नाव रे ॥ ३ ॥
सब सुख दाता अमृत राता, दादू माता नाव रे ॥ ४ ॥

नाम महिमा कह रहे है—सर्व शिरोमणि परमात्मा के नामो का चिन्तन कर, नाम ही कल्याण के साधनो मे श्रेष्ठ साधन है। मै तो नाम की ही बलिहारी जाता हूँ। नाम दुस्तर दु ख से तारता है, विषयाशा नदी से पार उतारता है, नरक से बचाता है, नाम ही ससार के राग रूप जल से पार करने वाला होने से तारक है, निर्मल और शब्द सृष्टि का सार तत्त्व है। नाम ही बुद्धि मे ज्ञान-ज्योति जगाकर स्वस्वरूप का साक्षात्कार कराता है तथा तेज स्वरूप ब्रह्म मे मिलाता है। नाम ही सपूर्ण सुखो का प्रदाता है। हम उस नामामृत से ही अनुरक्त होकर मस्त है।

२७१-केवल विनती । राजविद्याधर ताल

राइ रे राइ रे, सकल भुवनपति राइ रे, अमृत देहु अघाइ रे राइ ॥ टेक ॥
प्रगट राता प्रगट माता, परकट नूर दिखाइ रे राइ ॥ १ ॥
सुस्थिर ज्ञाना सुस्थिर ध्याना, सुस्थिर तेज मिलाइ रे राइ ॥ २ ॥
अविचल मेला अविचल खेला, अविचल ज्योति जगाइ रे राइ ॥ ३ ॥
निहचल बैना निहचल नैना, दादू बलि बलि जाइ रे राइ ॥ ४ ॥

अद्वैत स्वरूप की प्राप्ति के लिए विनय कर रहे है—हे हृदयेश्वर ! परमेश्वर ! सपूर्ण भवन-पतियो के भी ईश्वर ! आप अपना दर्शनामृत देकर हमे तृप्त करे, प्रकट रूप से अपना स्वरूप दिखावे, जिससे हम भी प्रकट रूप से उसमे अनुरक्त होकर मस्त हो जावे। निश्चल ध्यान और निश्चल ज्ञान के द्वारा हमको अपने निश्चल तेज मे मिलावे। आप के स्थिर स्वरूप से मिलकर स्थिर आनद रूप खेल खेलते रहे। आप हम को अपने स्थिर ज्योति स्वरूप मे समाविष्ट कर लीजिये। अब हमारे वचन भी निश्चल ब्रह्म भावना युक्त ही निकले, नेत्रो से भी सर्वत्र निश्चल ब्रह्म ही देखे, हम पर ऐसी कृपा करे, हम आप की बारबार बलिहारी जाते है।

२७२-रसिक अवस्था। सवारी ताल

हरि रस माते मगन भये।
सुमिर-सुमिर भये मतवाले, जामण मरण सब भूल गये ॥ टेक ॥
निर्मल भक्ति प्रेम रस पीवैं, आन न दूजा भाव धरैं ।
सहजै सदा राम रंग राते, मुक्ति वैकुण्ठै कहा करैं ॥ १ ॥
गाइ गाइ रस लीन भये हैं, कछू न मांगैं संत जना।
और अनेक देहु दत आगैं, आन न भावै राम बिना ॥ २ ॥
इक टक ध्यान रहैं ल्यौ लागे, छाक परे हरि रस पीवै ।
दादू मगन रहैं रस माते, ऐसे हरि के जन जीवैं ॥ ३ ॥

भगवद् भक्ति रस के रसिक सतो की अवस्था बता रहे है—हरि भक्ति-रस के रसिक जन उसी मे निमग्न होकर मस्त हो गये है। प्रतिक्षण स्मरण करते-करते उससे मतवाले होकर जन्म-मरण के मार्ग को भूल कर हरि के स्वरूप को ही प्राप्त हुये है। वर्तमान के सत भी निर्मल प्रेमाभक्ति-रस का पान करते है, अन्य कोई भी दूसरा भाव हृदय मे नही रखते। वे तो सदा स्वाभाविक ही राम के प्रेम-रग मे अनुरक्त है और कह भी देते हैं—"हम वैकुण्ठवासादि चार मुक्तियो का क्या करेगे ?" वे सत जन जो बारबार हरि-यश गान करते हुये हरि मे ही लीन हो रहे हैं, अन्य कुछ भी नही मागते और उनके आगे लाकर उन्हे अनेक प्रकार का दान दे तो भी उनको राम के विना अन्य कुछ भी अच्छा नही लगता। वे तो ध्यान मे निर्निमेष दृष्टि से प्रभु को देखते हुये तथा उन्हीं मे अपनी वृत्ति लगाते हुये हरि-रस पान से तृप्त हुये पडे रहते है। इस प्रकार हरि-रस मे निमग्न हो मस्त हुये हरि के भक्तजन जीवन धारण करते है।

२७३-(गुजराती) केवल विनती । सवारी ताल

ते मै कीधेला[1] राम, जे तैं वार्‍या ते ।
मारग मेल्हि, अमारग अणसरि, अकरम करम हरे ॥ टेक ॥
साधू को सग छाडीनै, असगति अणसरियो ।
सुकृत मूकी[3] अविद्या साधी, विषया विस्तरियो ॥ १ ॥
आन कह्यु आन सांभल्यु, नेणे आन दीठो ।
अमृत कडवो, विष अमी[4] लागो, खाता अति मीठो ॥ २ ॥
राम हृदाथी विसारी नै, माया मन दीधो ।
पाचे प्राण गुरुमुख बरज्या, ते दादू कीधो ॥ ३ ॥

बहिर्मुखता युक्त अनुचित व्यवहार प्रदर्शन रूप विनय कर रहे है—राम ! मैने वे ही कार्य किये[1] है, जो आपने निषेध[2] किये थे । सन्मार्ग को छोड कर कुमार्ग का अनुसरण किया । सुकर्मो को त्याग कर कुकर्म किये । सतो का सग छोड़ कर कुसगति मे प्रवृत्त हुआ । सुकृत त्याग[3] कर अविद्या को हृदय मे रखते हुये विषयो का ही विस्तार किया । आपके यश तथा नाम को त्याग कर अन्य सासारिक बाते ही कही और सुनी । नेत्रो से भी आप से अन्य असत्य प्रपच ही देखा । आपका चिन्तनामृत तो कटु फल के समान लगा और विषय-विष खाते समय अमृत[4] तुल्य अति मधुर लगा । इसीलिए राम ! मैंने आप का चिन्तन हृदय से भूल कर मायिक पदार्थों मे मन दिया, गुरुमुख प्राणी सतो ने जिन पच विषयो मे राग करना निषेध किया था किन्तु मैंने उनके कथन के विपरीत कार्य किया । अत मै दोषी हू, फिर भी आप मेरा उद्धार करने की कृपा करे ।

२७४-विरह विनती । त्रिताल

कहो क्यो जन जीवै साइया ! दे चरण कमल आधार हो ।
डूबत है भव-सागरा, कारी[1] करो करतार हो ॥टेक॥
मीन मरै बिन पाणियाँ, तुम बिन येह विचार हो ।
जल बिन कैसै जीवहीं, अब तो किती इक बार हो ॥ १ ॥
ज्यों परै पलगा ज्योति मे, देख देख निज सार हो ।
प्यासा बूद न पावई, तब वन वन करै पुकार हो ॥ २ ॥
निश दिन पीर पुकारही, तन की ताप निवार हो ।
दादू विपति सुनावही, कर लोचन सन्मुख चार हो ॥ ३ ॥

विरह पूर्वक दर्शनार्थ विनय कर रहे है—हे प्रभो आप ही कहो ? आपका भक्त आपके बिना कैसे जीवित रह सकता है ? अत मुझे अपने चरण-कमलो का आश्रय दो । मै ससार-सिन्धु मे डूब रहा हू, हे भक्तो का उद्धार करने वाले[1] करतार ! मेरी सहायता[1] करो । जल बिना मच्छी कैसे जीवित रह सकती है ? वह तो पानी बिना मर ही जाती है । आपके बिना हमारी भी यही दशा है,

आप विचार कर लो। अब तो हम आपके बिना कितने समय तक जीवित रह सकते है ? अधिक नही रह सकेगे। जैसे पतग ज्योति को देख कर उसमे पडता है, वैसे ही विश्व के सार रूप मेरे प्रभो ! आप पर हम अपना बलिदान कर रहे है। जैसे प्यासे चातक पक्षी को स्वाति-बिन्दु नही मिलती तब वह उसके लिए प्रति वन मे जाकर पुकार करता रहता है, वैसे ही हम रात्रि-दिन विरह व्यथा से युक्त होकर पुकार रहे है। हमारे शरीर का वियोगजन्य दुख दूर करो। हम अपनी विनय द्वारा आपको सुना रहे है। आप सन्मुख प्रकट होकर हमारे दोनो नेत्रो से अपने दोनो नेत्र मिलाकर चार नेत्र करो। हम आपको और आप हमको निर्निमेष दृष्टि से देखे, ऐसी कृपा करो।

२७५-केवल विनती। त्रिताल

तूं साचा साहिब मेरा।
कर्म करीम कृपालु निहारो, मैं जन बंदा तेरा ॥ टेक ॥
तुम दीवान सबहिन की जानो, दीनानाथ दयाला।
दिखाइ दीदार मौज बंदे को, काइम[1] करो निहाला ॥ १ ॥
मालिक सबै मुलिक के सांई, समर्थ सिरजनहारा।
खैर खुदाइ खलक में खेलत, दे दीदार तुम्हारा ॥ २ ॥
मैं शिकस्त:[2] दरगह तेरी, हरि हजूर तूं कहिये।
दादू द्वारै दीन पुकारे, काहे न दर्शन लहिये ॥ ३ ॥

दर्शनार्थ विनय कर रहे है—हे ससार रचनादि रूप कर्म करने वाले कृपालो ! आप मेरे सच्चे स्वामी है, मै आपका दास हू। मुझ जन की ओर देखो। आप सर्वज्ञ है, सभी के हृदय की स्थिति जानते है। हे दीनानाथ ! दयालो ! आप मुझ दास को अपने स्थिर[1] स्वरूप का दर्शन करा कर दर्शनानन्द से कृतकृत्य करो। हे समर्थ सृष्टि कर्ता प्रभो ! आप तो सभी ससार के स्वामी है। हे ईश्वर ! आपकी कृपा द्वारा ही मै ससार मे विचरना रूप खेल खेलता रहा हू किन्तु अब हार[2] कर आपके दरबार मे आया हू। आप पाप-ताप हरने वाले हरि कहलाते है। आप दर्शन दे, मै दीन आपके द्वारा दर्शनार्थ प्रार्थना कर रहा हूँ, फिर भी मुझे दर्शन क्यो नही प्राप्त हो रहे है ?

२७६-उपदेश चेतावनी। मकरन्द ताल

कुछ चेत रे कहि क्या आया ?
इनमे बैठा फूल कर, तैं देखी माया ॥ टेक ॥
तूं जनि जानैं तन धन मेरा, मूरख देख भुलाया।
आज काल चल जावै देही, ऐसी सुन्दर काया ॥ १ ॥
राम नाम निज लीजिये, मैं कहि समझाया।
दादू हरि की सेवा कीजे, सुन्दर साज मिलाया ॥ २ ॥

२७६-२८० मे उपदेश द्वारा सचेत कर रहे है—अरे प्राणी ! कुछ तो सावधान हो, गर्भ मे प्रभु से क्या कह आया था ? वहा तो तूने प्रतिज्ञा की थी- "मुझे शीघ्र गर्भ गुहा से निकालो, मै

आपका भजन करूगा।" किन्तु बाहर आकर जब तूने माया देखी है, तब से इन विषयो के उपभोग मे ही प्रसन्न होकर बैठा है। अरे मूर्ख ! तू धनादि को देखकर उस गर्भ मे की हुई प्रतिज्ञा को भूल गया है, किन्तु तू मत समझ कि—यह तन धन मेरा है। ऐसी सुन्दर काया को छोड आज-कल मे ही जीवात्मा चला जायेगा, अत तू राम-नाम का स्मरण कर ले। मैंने बारबार कह कर समझाया है—हरि ने मनुष्य देहा जैसी सुन्दर सामग्री तुझे दी है, उस हरि की भक्ति कर।

२७७-मकरन्द ताल

नेटि[1] रे माटी मे मिलना, मोड मोंड देह काहे को चलना ॥ टेक॥
काहे को अपना मन डुलावै, यहु तन अपना नीका धरना।
कोटि वर्ष तूं काहे न जीवै, विचार देख आगै है मरना ॥ १ ॥
काहे न अपनी बाट सँवारै, सजम रहना सुमिरण करणा।
गहिला ! दादू गर्व न कीजे, यहु ससार पच दिन भरणा ॥ २ ॥

अरे ! यह देह सत्य नही है, अन्त- मे' इसे मिट्टी मे मिलना है, फिर घमड से इसे मोड़-मोड कर क्यो चलता है ? अपने मन को विषय प्राप्ति के लिए क्यो चचल कर रहा है ? यह अपना शरीर अच्छी प्रकार सदाचार मे ही रखना चाहिये। तू कोटि वर्ष तक जीवे तो भी विचार करके देख, आगे मरना ही होगा। क्यो नही अपने कल्याण का मार्ग सुधारता ? तुझे सयम से रहते हुये हरि स्मरण करना चाहिए। अरे ! तू विषयो से पागल होकर गर्व मत करे, यह ससार-यात्रा तुझे पाच दिन मे ही पूरी करनी है अर्थात् सात वार मे एक जन्म का और एक मरण का चला जाता है, पाच दिन ही जीवन के शेष रहते है। अत तुझे शीघ्रातिशीघ्र कल्याण का साधन करना चाहिए।

२७८-ब्रह्म योग ताल

जाइ रे तन जाइ रे।
जन्म सुफल कर लेहु राम रमि, सुमिर सुमिर गुण गाइ रे ॥ टेक॥
नर नारायण सकल शिरोमणि, जन्म अमोलक आइ रे।
सो तन जाइ जगत नहि जानै, सकै तो ठाहर लाइ रे ॥ १ ॥
जरा[1] काल दिन जाइ गरासै, तासौ कुछ न बसाइ रे।
छिन छिन छीजत जाइ मुग्ध नर, अत काल दिन आइ रे ॥ २ ॥
प्रेम भगति साधु की सगति, नाम निरन्तर गाइ रे।
जे शिर भाग तो सौज[2] सुफ़ल कर, दादू विलम्ब न लाइ रे ॥ ३ ॥

अरे प्राणी ! मै तुझे बारम्बार कह रहा हूँ-इस मानव देह के श्वास विषयो मे लग कर व्यर्थ जा रहे है, तू बारम्बार राम का स्मरण और गुण-गान करते हुये, उस राम मे अभेद रूप से रमण करके अपना मनुष्य जन्म सफल कर ले। नर शरीर सब शरीरो मे श्रेष्ठ और नारायण की प्राप्ति का हेतु है, अत यह जन्म अमूल्य है, वही तन विषय-उपभोग मे व्यर्थ जा रहा है। ससारी प्राणी इस बात को नही जानते। जहा तक हो सके इसे शीघ्र ही भजन द्वारा अपने वास्तविक स्थान प्रभु के

स्वरूप मे ही लगा। वृद्धावस्था[१] इसकी सुन्दरता को तथा काल इसकी आयु के दिनो को ग्रास करता जा रहा है। उस पर तेरी शक्ति कुछ भी काम न देगी। मूर्ख नर! यह शरीर क्षण २ मे क्षीण होता जा रहा है। इस प्रकार अन्त का दिन आ जायगा। यदि तू मनुष्य शरीर प्राप्ति से अपना अच्छा भाग्य मानता है, तब तो सतो की सगति तथा निरन्तर भगवान् का नाम गायन करते हुये प्रेमाभक्ति करके इस नर-जन्म रूप सामग्री[२] को सफल बनाने मे देर मत कर।

२७९-त्रिताल

काहे रे बक मूल गमावै, राम के नाम भले सचु[१] पावै ॥टेक॥
वाद विवाद न कीजे लोई[२], वाद विवाद न हरि रस होई॥ १ ॥
मैं तैं मेरी मानै नांहीं, मैं तैं मेट मिलै हरि मांहीं॥ २ ॥
हार जीत सौं हरि रस जाई, समझ देख मेरे मन भाई॥ ३ ॥
मूल न छाडी दादू बौरे, जनि[१] भूलै तूं बकबे औरे॥ ४ ॥

अरे लोगो[२]! कोई व्यर्थ बकवाद करके अपना श्वास रूप मूल धन क्यो खोवे, सुख[१] तो भली प्रकार राम-नाम चिन्तन से ही प्राप्त होता है। अत हे लोगो[२]! वाद-विवाद नही करना चाहिए। वाद-विवाद से हरि-भक्ति-रस प्राप्त नही होता। मै, तू इत्यादिक भेद-ज्ञान को भगवान् अच्छा नही मानते, सत-जन 'मै, तू' रूप भेद बुद्धि नष्ट कर के ही हरि-स्वरूप मे मिलते है। भाई! तुम भी अपने मन मे समझ कर देख लो, हार जीत का प्रयत्न करने से हरि भक्ति-रस हृदय से चला जाता है। हे विद्या के गर्व से उन्मत्त! तू भगवद् भिन्न बातो के बकने मे ही प्रभु को मत[१] भूल, अपने मूल स्वरूप परब्रह्म का चिन्तन मत छोड।

यह पद शास्त्रार्थ मे प्रवृत्त सॉभर के पडित को कहा था।

२८०-(फारसी) त्रिताल

हुसियार हाकिम न्याव है, सांई के दीवान ।
कुल का हिसेब होगा, समझ मुसलमान ॥टेक॥
नीयत[२] नेकी सालिकां[४], रास्ता ईमान[५] ।
इखलास[६] अंदर आपणे, रखणॉ सुबहान[७]॥ १ ॥
हुक्म हाजिर होइ बाबा, मुसल्लम[८] महरबान[९]।
अक्ल[१०] सेती आपमां, शोध लेहु सुजान ॥ २ ॥
हक[११] सौं हजूरी हूंणां, देखणां कर ज्ञान ।
दोस्त[१२] दाना[१३] दीन का, मनणां फरमान[१४] ॥ ३ ॥
गुस्सा हैवानी[१५] दूर कर, छाड दे अभिमान।
दुई[१६] दरोगां[१७] नांहिं खुशियाँ, दादू लेहु पिछान॥ ४ ॥

अरे हाकिम! सावधान रहना, भगवान् के दरबार मे न्याय है। हे मुसलमान! समझ लेना वहा सबका[१] हिसाब होगा। अपनी इच्छा[२] भलाई[३] मे रखना, सदा[४] ईमानदारी[५] के मार्ग पर चलना।

अपने भीतर सबसे प्रेम[६] रखना और पवित्र[७] प्रभु की आज्ञा मे उपस्थित रहते हुये पूरा[८] दयालु[९] होना। हे बुद्धिमान्! बुद्धि[१०] से अपने भीतर ही परमात्मा को खोजले और भजन द्वारा सत्य[११] स्वरूप प्रभु के समीप होकर ज्ञान से उसे देखने का यत्न करना। दीनो के मित्र[१२] और ज्ञाता[१३] परमात्मा तथा सतो की आज्ञा[१४] मानना। क्रोध और पाशविक[१५] वृत्ति हृदय से दूर करना, अभिमान को छोड देना। मिथ्या[१७] भेद[१६] जन्य प्रसन्नता मे निमग्न मत होना। यही तुम्हारा कर्त्तव्य है, इसे पहचान कर पालन करना। इस पद से साँभर के हाकिम बिलदखान को उपदेश दिया था और वह इस उपदेश को मानकर महाराज का भक्त ही बन गया था।

२८१-साधु प्रति उपदेश। (गुजराती) ललित ताल

निर्पख रहणा, राम राम कहणा, काम क्रोध मे देह न दहणा॥ टेक॥
जेणे मारग ससार जाइला, तेणे प्राणी आप बहाइला॥ १॥
जे जे करणी जगत करीला, सो करणी सत दूर धरीला॥ २॥
जेणे पंथै लोक राता, तेणे पथै साधु न जाता॥ ३॥
राम राम दादू ऐसे कहिये, राम रमत रामहि मिल रहिये॥ ४॥

साधक सतो को उपदेश कर रहे है—साधक सतो को निर्पक्ष रहते हुये राम-राम उच्चारण करते रहना चाहिये। काम, क्रोधादिक से शरीर को नही जलाना चाहिये। जिस मार्ग मे ससारी प्राणी जाते है, उसमे जाकर साधक प्राणी अपने को ससार-प्रवाह मे ही बहाता है, अत जो २ अनुचित कर्म जगत के प्राणी करते है, उन कर्मों को सत जन दूर ही से त्याग देते है और जिस मार्ग मे ससारी लोग अनुरक्त है, उस भोग-राग रूप पथ मे सत नही जाते। साधक सतो को इस प्रकार राम २ करना चाहिये कि-राम से चिन्तन रूप आनन्द लेते २ राम मे ही एक होकर रहे।

२८२-भेष बिडवन। ललित ताल

हम पाया, हम पाया रे भाई, भेष बनाय ऐसी मन आई॥ टेक॥
भीतर का यहु भेद न जानै, कहै सुहागिनि क्यो मन मानैं॥ १॥
अतर पीव सौ परिचय नांहीं, भई सुहागिनि लोगन माहीं॥ २॥
सांई स्वप्ने कबहुँ न आवै, कहबा ऐसे महल बुलावै॥ ३॥
इन बातन मोहि अचरज आवै, पटम[१] किये कैसे पीव पावै॥ ४॥
दादू सुहागिनि ऐसे कोई, आपा मेट राम रत होई॥ ५॥

सत-भेष के समान स्वरूप बनाने वालो के दभ का परिचय दे रहे है—दभी प्राणी सत के समान भेष बनाकर कहता है—"भाइयो! हमने प्रभु को प्राप्त कर लिया है, अवश्य प्राप्त कर लिया है।" प्रतिष्ठा के लिये उसके मन मे यह दभपूर्ण भावना आती है। वह अपने अन्त करण के भोग-राग रूप वा भीतर स्थित आत्मा-राम रूप रहस्य को तो नही जानता और अपने को प्रभु प्राप्ति रूप सुहाग से युक्त कहता है, परन्तु इस प्रकार कहने से प्रभु तथा हमारा मन कैसे माने? भीतर तो प्रभु से परिचय नही हुआ है केवल दभ से ससारी लोगो मे अपने को प्रभु सयोग रूप सुहाग से युक्त कहता

है। प्रभु तो कभी स्वप्न मे भी हृदय मे नही आते और कहता ऐसा है-मेरे हृदय-महल मे प्रभु को प्रतिदिन बुलाता हू। ऐसी बातो से हमे बडा आश्चर्य होता है। पाखड' करने से प्रभु कैसे मिलेगे ? जो सब प्रकार का अहकार नष्ट करके राम मे अनुरक्त होता है, ऐसा कोई महानुभाव ही प्रभु प्राप्ति रूप सुहाग से युक्त होता है।

२८३-आत्म समता। उत्सव ताल

ऐसे बाबा राम रमीजै, आतम सौं अंतर नहिं कीजै ॥ टेक॥
जैसे आतम आपा लेखै, जीव जन्तु ऐसे कर पेखै॥ १ ॥
एक राम ऐसे कर जानैं, आपा पर अंतर नहिं आनैं॥ २ ॥
सब घट आत्मा एक विचारे, राम सनेही प्राण हमारै ॥ ३ ॥
दादू साची राम सगाई, ऐसा भाव हमारे भाई ॥ ४ ॥

सब मे सम-भाव से बर्ताव करते हुये भजन करने की प्रेरणा कर रहे है—हे बाबा ! ऐसा अभेद ज्ञान युक्त राम मे राम का चिन्तन रूप रमण करना चाहिये। जिससे किसी भी आत्मा से अभेद व्यवहार न किया जाय। जैसे अपनी आत्मा को देखे। वैसे ही अपनी आत्मा समझ कर सभी जीव-जन्तुओ को देखना चाहिये। विचार करके जाने-सब मे एक ही राम स्थित है, अपने पराये का भेद हृदय मे न आने दे तथा ऐसा विचार करे कि-सभी शरीरो मे आत्मा एक ही है और राम हम सबका ही प्राण स्नेही है। हे भाई ! हमारे हृदय मे तो ऐसा ही भाव है कि-आत्माराम से सम्बन्ध होना ही सच्चा सम्बन्ध है। शरीरादि का भेद युक्त सम्बन्ध मिथ्या है।

२८४-नाम समता। उत्सव ताल

माधइयो-माधइयो मीठो री माइ, माहवो-माहवो भेटियो आइ॥ टेक॥
कान्हइयो-कान्हइयो करता जाइ, केशवो-केशवो केशवो धाइ॥ १ ॥
भूधरो भूधरो भूधरो भाइ, रमैयो रमैयो रह्यो समाइ॥ २ ॥
नरहरि नरहरि नरहरि राइ, गोविन्दो गोविन्दो दादू गाइ॥ ३ ॥

भगवद् नामो मे साम्यता दिखा रहे है—हे भाई ! माधव २ करना मुझे मधुर लगता है। माहवो २ (गुजराती नाम) करने से वे प्रभु आकर मुझ से मिले है। कृष्ण २ करते ही मेरा समय जाता है। केशव २ करने से केशव दौडकर आते है। भूधर २ करना भूधर प्रभु को प्रिय लगता है। हम रमैया २ करते हुये उसी मे समा रहे है। हम नरहरि २ करते रहते है, नरहरि सबका राजा है। गोविन्द २ गाते रहते है। इस प्रकार सभी भगवन्नाम हमको समान भाव से प्रिय लगते है।

२८५-समता। वसंत ताल

एकहीं एकैं भया अनंद, एकही एकैं भागे द्वन्द ॥ टेक ॥
एकही एकै एक समान, एकहीं एकैं पद निर्वान ॥ १ ॥
एकहीं एकैं त्रिभुवन सार, एकहीं एकैं अगम अपार ॥ २ ॥
एकहीं एकैं निर्भय होइ, एकहीं एकै काल न कोइ ॥ ३ ॥

एकहीं एकै घट परकाश, एकहीं एकै निरजन वास ॥ ४ ॥
एकहीं एकैं आपहि आप, एकहीं एकै माइ न बाप ॥ ५ ॥
एकही एकै सहज स्वरूप, एकहीं एकै भये अनूप ॥ ६ ॥
एकहीं एकै अनत न जाइ, एकहीं एकैं रह्या समाइ ॥ ७ ॥
एकही एकै भये लै लीन, एकही एकैं दादू दीन ॥ ८ ॥

समता की विशेषता दिखा रहे है—एकता के द्वारा एक आत्मस्वरूप ब्रह्म मे स्थित हुये तब आनन्द प्राप्त हुआ। हृदय से द्वन्द्व भाग गये, सब एक समान भासने लगे, निर्वाण पद प्राप्त हुआ। त्रिभुवन के सार, अगम, अपार प्रभु से परिचय हुआ। निर्भय हो गये, काल का कोई भय नही रहा। अन्त करण मे ज्ञान प्रकाश हुआ, निरजन राम मे निवास हुआ। कोई माता-पितादि कारण न भास कर आप ही स्वरूप स्थिति रह गई। अनुपम होकर सहज स्वरूप मे आ गये। अन्य स्थान न जाकर अपने स्वरूप मे ही समा गये। इस प्रकार हम दीनता द्वारा साम्य भाव मे आकर अद्वैत ब्रह्म मे वृत्ति लगाते हुये उसी मे लीन हो गये है।

२८६-विनती। वसंत ताल

आदि है आदि अनादि मेरा, संसार सागर भक्ति भेरा[1]।
आदि है अत है, अत है आदि है, बिडद[2] तेरा ॥टेक॥
काल है झाल है, झाल है काल है, राखिले राखिले प्राण घेरा।
जीव का जन्म का, जन्म का जीव का, आपहीं आपले भान झेरा[3] ॥ १ ॥
भ्रम का कर्म का, कर्म का भर्म का, आइबा जाइबा मेट फेरा।
तारले पारले, पारले तारले, जीव सौ शिव[4] है निकट नेरा ॥ २ ॥
आत्मा राम है, राम है आत्मा, ज्योति है युक्ति सौं करो मेला।
तेज है सेज है, सेज है तेज है, एक रस दादू खेल खेला ॥ ३ ॥

अद्वैत स्थिति के लिये प्रभु से विनय कर रहे है—उत्पत्ति रहित, मेरे मूल-कारण आदि देव परमेश्वर! आप की भक्ति ससार-सागर को पार करने के लिए बेडा[1] है। आप ही सृष्टि के आदि और अन्त मे रहते है। आप का यश[2] सृष्टि के आदि से अन्त तक ससार मे फैला रहता है। काल की जो दु ख रूप तरगे है, वे ही काल रूप होकर मेरे प्राण निकालने के लिए घेरा लगा रही है, आप रक्षा करो, रक्षा करो। जीव का जो जन्म धारण करने का कारण कर्म रूप और जीव पर जो जन्म का प्रभाव कर्तृत्व रूप झगड़ा[3] है, उसे तोड़ कर आप ही अपने अशात्मा को अपनाले। इस प्रकार भ्रम तथा कर्म का दु ख और कर्म तथा भ्रमवश आना-जाना रूप चक्कर मेटिये। कामादि से रक्षा करके उनके वेग से पार करिये और उनसे पार दैवी गुणो से भी तार कर निर्गुण स्थिति द्वारा जीव को अपने शिव स्वरूप ब्रह्म[4] के निकट और शिव रूप को जीव के समीप करिये। आत्मा राम-रूप है, राम आत्म-ज्योति रूप है ऐसी अभेद बोधक युक्तियाँ हृदय मे उत्पन्न करके दोनो को मिलाओ। ब्रह्म तेज है वही वृत्ति रूप शय्या है, वृत्ति रूप शय्या है वही ब्रह्म तेज है। इस प्रकार वृत्ति ब्रह्म की एक रस एकता रहे और हम अद्वैतानन्द रूप खेल खेलते रहे।

२८७-परिचय। कोकिल ताल

सुन्दर राम राया।
परम ज्ञान परम ध्यान, परम प्राण आया ॥ टेक ॥
अकल सकल अति अनूप, छाया नहिं माया।
निराकार निराधार, वार पार न पाया ॥ १ ॥
गंभीर धीर निधि शरीर, निर्गुण निरकारा।
अखिल अमर परम पुरुष, निर्मल निज सारा ॥ २ ॥
परम नूर परम तेज, परम ज्योति प्रकाशा।
परम पुंज परापरं, दादू निज दासा ॥ ३ ॥

साक्षात्कार की स्थिति बता रहे है—निर्गुण के उत्कृष्ट ध्यान तथा उत्कृष्ट ज्ञान के द्वारा परम सुन्दर विश्व को सत्ता मात्र से चलाने वाला राजा, परम प्राण रूप सब मे रमने वाला राम अपने आत्म-स्वरूप से ही भास आया है। वह काल रहित, सर्व रूप, अति अनुपम, निराकार होने से छाया तथा माया रहित निराधार है। उसका आदि अन्त नही प्राप्त होता। वह अति गभीर है, उसका स्वरूप धैर्य की निधि रूप है किन्तु निर्गुण होने से अकार का वाच्य विष्णु नही है और वह परम पुरुष अखिल आकारो मे अमर भाव से स्थित है। ऐसा उसका निर्मल वास्तविक स्वरूप है। वह परम तेज रूप है, उस परम ज्योति का प्रकाश ज्ञान रूप से सबमे फैला हुआ है। वह सब प्रकार की परमता की राशि है, माया से परे है, हम उसी के निजी भक्त है।

२८८-परिचय पराभक्ति। कोकिल ताल

अखिल[1] भाव अखिल भक्ति, अखिल नाम देवा।
अखिल प्रेम अखिल प्रीति, अखिल सुरति सेवा ॥ टेक ॥
अखिल अंग अखिल संग, अखिल रंग रामा।
अखिला रत अखिला मत, अखिला निज नामा ॥ १ ॥
अखिल ज्ञान अखिल ध्यान, अखिल आनन्द कीजै।
अखिला लै अखिला मै[2], अखिला रस पीजै ॥ २ ॥
अखिल मगन अखिल मुदित, अखिल गलित सांईं।
अखिल दरश अखिल परस, दादू तुम मांहीं ॥ ३ ॥

इति राग टोडी (तोडी) समाप्त ॥ १६ ॥ पद २० ॥

परिचय होने पर पराभक्ति करने की प्रेरणा कर रहे है—परिचित परब्रह्म देव मे सब[1] प्रकार से श्रद्धा करनी चाहिए। सर्व समय नाम चिन्तन करना चाहिये। वे सर्व प्रकार से प्रेम-पात्र होने योग्य है। उनसे सर्व प्रकार प्रीति करनी चाहिये और उन सर्व रूप की वृत्ति द्वारा सेवा करते रहना चाहिये। वे राम सब रगो मे, सबके साथ तथा सब शरीरो मे विद्यमान है। सब अवस्थाओ मे उनसे प्रेम

करना। सब प्रकार उनके मत मे रहना और सब प्रकार ही सत्यरामादि निज नामो का चिन्तन करना चाहिए। सब प्रकार से उसी का ध्यान करते हुए ज्ञान द्वारा सब मे उसी को देखते हुए सर्व प्रकार से आनन्द करना चाहिए। सब मे वृत्ति जाने पर भी सब प्रकार से मधुमय[१] ब्रह्म-दर्शन-रस का पान करना चाहिए। सर्व प्रकार प्रभु के प्रेम मे गलित और सब भाति प्रसन्न रहते हुए उस सर्व रूप मे ही निमग्न रहना चाहिये। वह सर्व मे देखने योग्य, सर्व मे स्पर्श करने योग्य परब्रह्म तुम्हारे भीतर ही है।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग टोडी (तोडी) समाप्त ॥ १६ ॥

अथ राग हुसेनी बंगाल १७

(गायन समय पहर दिन चढ़े चन्द्रोदय ग्रथ के मतानुसार)

२८९-(फ़ारसी) अनन्यता। त्रिताल

है दाना[१] है दाना[२], दिलदार[३] मेरे कान्हा।
तू हीं मेरे जान[४] जिगर[५], यार मेरे खाना[६] ॥ टेक ॥
तू ही मेरे मादर[७] पिदर[८], आलम[९] बेगाना[१०]।
साहिब शिरताज मेरे, तू ही सुलताना ॥ १ ॥
दोस्त दिल तू हीं मेरे, किसका खिल[११] खाना[१२]।
नूर[१३] चश्म[१४] जिंद[१५] मेरे, तू हीं रहमाना[१६] ॥ २ ॥
एकै असनाव[१७] मेरे, तू ही हम जाना।
जानिबा[१८] अजीज[१९] मेरे, खूब खजाना ॥ ३ ॥
नेक[२०] नजर महर मीरा[२१], बंदा मै तेरा।
दादू दरबार तेरे, खूब साहिब मेरा ॥ ४ ॥

अनन्यता दिखा रहे है—हे महान्[१] और सर्वज्ञ[२] मेरे प्यारे[३] कृष्ण! आप ही मेरे जीवन[४], कलेजा[५], सहायक, और निवास[६] स्थान है। आप ही ससार[९] मे मेरे माता[७] पिता[८] और पराये[१०] जन भी है, आप ही मेरे स्वामी, शिरोमणि बादशाह, सुहृद है और यह सब[११] शरीर रूप घर[१२] भी किसका है, आप ही का है। हे दयालु[१६] ईश्वर! आपका स्वरूप[१३] ही मेरे नेत्र[१४] तथा जीवन[१५] का लक्ष्य है। हमने जान लिया है-एक मात्र आप ही ससार वा मेरे (असना[१७]=आव[१७]) बीच[१७] मे शोभारूप[१७] है। आप ही मेरे पक्ष[१८] पर रहने वाले सम्बन्धी[१९] और श्रेष्ठ धनराशि है। हे मेरे श्रेष्ठ स्वामिन्! मै आपके दरबार मे आया हू, आपका दास हू। हे मेरे सरदार[२१]! मुझ पर उत्तम[२०] दया युक्त दृष्टि करिये।

२९०-(गुजराती) विनय। त्रिताल

तू घर आव सुलक्षण पीव।
हिक तिल[१] मुख दिखलावहु तेरा, क्या तरसावै जीव ॥ टेक ॥

निश दिन तेरा पंथ निहारूं, तूं घर मेरे आव।
हिरदा भीतर हेत सौं रे वाहला, तेरा मुख दिखलाव ॥ १ ॥
वारी फेरी बलि गई रे, शोभित सोई कपोल।
दादू ऊपरि दया करीनें, सुनाइ सुहावे बोल ॥ २ ॥

इति राग हुसेनी बगाल समाप्त ॥ १७ ॥ पद २ ॥

दर्शनार्थ विनय कर रहे है—हे मेरे शुभ लक्षणो युक्त प्रियतम ! आप मेरे हृदय घर मे पधारिये। एक क्षण' दर्शन देने के लिए भी आप मेरे मन को इतना क्यो तरसा रहे है ? मै दिन-रात आपका मार्ग देख रही हू, आप मेरे घर पधारिये। प्रियतम ! हृदय घर मे आकर प्रेम पूर्वक अपना सुन्दर शोभा युक्त कपोलो वाला मुख दिखलाइये। मै अपना सब कुछ आप पर निछावर करके आपकी बलिहारी जा रही हू। आप मुझ पर दया करके मुझे प्रिय लगे, ऐसे वचन सुनाने की कृपा कीजिये।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग हुसेनी बगाल समाप्त ॥ १७ ॥

अथ राग नट नारायण १८

(गायन समय रात्रि ९ से १२)

२९१-हितोपदेश। गजताल

ताको काहे न प्राण संभालै।
कोटि अपराध कल्प के लागे, मांहिं महूरत टालै ॥ टेक ॥
अनेक जन्म के बन्धन बाढे, बिन पावक फँध जालै।
ऐसो है मन नाम हरी को, कबहूं दुःख न सालै ॥ १ ॥
चिन्तामणि जुगति सों राखै, ज्यों जननी सुत पालै।
दादू देखु दया करै ऐसी, जन को जाल न रालै[1] ॥ २ ॥

हितकर उपदेश कर रहे है—अरे प्राणी ! जो कल्प (ब्रह्मा का एक दिन) भर के हृदय मे लगे हुये पापो को एक मुहूर्त (४८ मिनट वा १ क्षण) मे हटा लेते है, उन प्रभु का स्मरण क्यो नही करता ? वे अनेक जन्मों के कर्म बन्धनो को काट डालते है, बिना अग्नि ही भक्तो के फद को जला देते है। अरे ! तू अपने मन मे सोच तो सही, उन हरि का नाम ऐसा शक्तिशाली है कि—स्मरण करने वाले को कोई भी प्रकार का दु ख व्यथित नही करता। जैसे माता अपने पुत्र का पालन करती है, वैसे ही युक्ति से चिन्तामणि रूप हरि अपने भक्तो की रक्षा करते है। अरे ! देख तो सही, वे ऐसी दया करते है कि—उनके भक्त को यमदूत अपने जाल मे नही डाल' सकते।

२९२-विरह। जयमंगल तील

गोविन्द ! कबहुँ मिलै पीव मेरा ?
चरण-कमल क्योंहीं कर देखूं, राखूं नैनहुँ नेरा ॥ टेक ॥

निरखण का मोहि चाव घणेरा, कब मुख देखू तेरा ?
प्राण मिलन को भये उदासी, मिल तू मीत सवेरा[१]॥ १ ॥
व्याकुल तातै भई तन देही, शिर पर जम का हेरा ।
दादू रे जन राम मिलन को, तपई तन बहुतेरा ॥ २ ॥

२९२-२९४ मे विरह दिखा रहे है—मेरे प्रियतम गोविन्द ! आप मुझे कब मिलेंगे ? किस प्रकार मै आपके चरण-कमलो को देख कर उन्हे अपने नेत्रो के समीप रख सकूगा ? मुझे आपका मुख देखने का बडा उत्साह है किन्तु पता नही कब देख सकूँगा ? आप से मिलने के लिये मेरा मन दु खी हो रहा है। मेरे सिर पर यम का हमला भी हो रहा है। इससे स्थूल शरीर मे स्थित जीवात्मा व्याकुल हो रहा है। अरे ! मुझ भक्त का तन राम से मिलने के लिये बहुत प्रकार से सतप्त रहता है। अत हे मित्र ! शीघ्र[१] ही मुझ से मिलो। ('अवेर' का विलोम 'सवेर' है। - स)

२९३-राज मृगाक ताल

कब देखू नैनहुं रेख[१] रती, प्राण मिलन को भई मती ।
हरि सो खेलू हरी गती[२], कब मिलि है मोहि प्राणपती ॥ टेक ॥
बल कीती[३] क्यो देखूगी रे, मुझ माहीं अति बात अनेरी[४] ।
सुन साहिब इक विनती मेरी, जन्म जन्म हू दासी तेरी ॥ १ ॥
कहै दादू सो सुनसी साई, हौ अबला बल मुझ मे नाहीं ।
करम[५] करी घर मेरे आई, तो शोभा पिव तेरे ताई ॥ २ ॥

मेरा जीवात्मा प्रभु से मिले, इसके लिये मेरी बुद्धि आतुर हो रही है। मै उन प्रभु का कभी किचित् मात्र भी स्वरूप[१] देख पाऊगी तो मुझे शाति मिलेगी। वे प्राणपति मुझे कब मिलेंगे ? और मै उन हरि का ही रूप[२] धारण करके हरि के साथ कब खेल सकूगी ? अरे ! मै अपने बल करके[३] (द्वारा) तो उनको कैसे देख सकूगी ? कारण, मेरे मे तो ऐसी बहुत-सी अनीति[४] रूप बाते है, जो उनसे दूर करती है। किन्तु हे स्वामिन् ! मेरी एक विनय सुनिये, मै जन्म २ से आपकी दासी रही हू और विनय कर रही हू, आप मेरे प्रभु होने से वह विनय अवश्य सुनेंगे, ऐसी आशा है। हे प्रियतम ! मै अबला हू, मुझ मे कुछ भी बल नहीं है, अत आप कृपा[५] करके मेरे हृदय घर मे पधारेंगे, तब ही आपके लिये शोभा की बात रहेगी।

२९४-राज मृगाक ताल (बसत मे)

नीके मोहन सौ प्रीति लाई ।
तन मन प्राण देत बजाई, रंग रस के बनाई ॥ टेक ॥
ये ही जीयरे वे ही पीवरे, छोड्यो न जाई, माई ।
बाण भेद के देत लगाई, देखत ही मुरझाई ॥ १ ॥
निर्मल नेह पिया सौ लागो, रती न राखी काई ।
दादू रे तिल में तन जावे, सग न छाडू, माई ॥ २ ॥

अब तो हमने अच्छी प्रकार मोहन से प्रीति कर ली है। हृदय पर प्रेम रस का अच्छा रग बनाकर ढोल बजाते हुये अपना तन और प्राण उनको समर्पण कर रहे है। हे माई! वे ही हमारे प्रियतम है, यह जीवन उन्ही का है, उन्हे छोडा नही जा सकता। वे वियोग के बाण लगा सकते है, तब देखते २ ही हमारा हृदय-कमल कुम्हला जाता है। अब तो प्रियतम से निर्मल स्नेह हो गया है, रत्ती मात्र भी कपट रूप मैल नही रहा है। अरी माई! अब हम उनका सग कभी भी नही छोड सकते, कारण, यह शरीर तो पल भर मे जाने वाला है।

२९५-परमेश्वर महिमा। राज विद्याधर ताल

तुम बिन ऐसैं कौन करैं।
गरीब निवाज गुसांई मेरो, माथै मुकुट धरै ॥ टेक ॥
नीच ऊंच ले करै गुसांई, टार्‌यो हूँ न टरै।
हस्त कमल की छाया राखै, काहूँ तैं न डरै ॥ १ ॥
जाकी छोत जगत को लागै, तापर तूं ही ढरै।
अमर आप ले करै गुसांई, मार्‌यो हूँ न मरै ॥ २ ॥
नामदेव कबीर जुलाहो, जन रैदास तिरै।
दादू वेगि बार नहि लागै, हरि सौं सबै सरै ॥ ३ ॥

परमेश्वर की महिमा कह रहे है—दीन-हीन प्राणियो पर कृपा करने वाले हे मेरे स्वामिन्! भक्तिवश अपवित्र अवस्था मे भी आपने वेश्या के हाथ से अपने मस्तक पर मुकुट धारण किया था, आपके बिना ऐसे कौन कर सकता है? (मुकुट धारण की कथा भक्तमाल मे प्रसिद्ध है)। प्रभो! आप नीच को उच्च कर लेते है, वह आपकी कृपा से प्राप्त उच्चस्थिति से हटाने से भी नही हटता, उच्च ही रहता है। उसे आप अपने कर-कमलो की रक्षा रूप छाया मे रखते है, अत वह किसी से भी नही डरता। जिसको जगत् मे लोग अछूत समझते है, उस पर आप ही कृपा करते है। प्रभो! उसे आप अपनी शरण मे लेकर अमर कर लेते है, वह प्रहलाद के समान किसी के मारने से भी नही मरता। आपके भजन बल से नामदेव, जुलाहे कबीर और भक्त रैदास ससार सिन्धु से तैर गये है। आप हरि की कृपा से कुछ भी देर न लग कर अति शीघ्र ही सब कार्य सिद्ध हो जाते है।

२९६-मंगलाचरण। राज विद्याधर ताल

नमो नमो हरि नमो नमो।
ताहि गुसांई नमो नमो, अकल निरंजन नमो नमो।
सकल वियापी जिहि जग कीन्हा, नारायण निज नमो नमो ॥ टेक ॥
जिन सिरजे जल[1] शीश चरण कर, अविगत जीव दियो।
श्रवण सँवारि नैन रसना मुख, ऐसो चित्र कियो ॥ १ ॥

आप उपाइ किये जग जीवन, सुरनर शंकर साजे।
पीर पैगम्बर सिद्ध रु साधक, अपने नाम निवाजे॥ २ ॥
धरती अम्बर चंद सूर जिन, पाणी पवन किये।
भानण घड़न पलक में केते, सकल सँवार लिये॥ ३ ॥
आप अखंडित खडित नांहीं, सब सम पूर रहे।
दादू दीन ताहि नइ वंदित, अगम अगाध कहे॥ ४ ॥

नमस्कारात्मक मगल कर रहे है—हम हरि को वारम्वार नमस्कार करते है, जो कला रहित निरजन स्वामी है, उनको वारम्वार नमस्कार करते है। जो सर्व-व्यापक है और जिनने इच्छा मात्र से जगत की रचना की है, उन अपने प्रभु नारायण को वारम्वार नमस्कार करते है। जिन मन इन्द्रियो के अविषय प्रभु ने वीर्य-विन्दु' से ही चरण से शिर तक श्रवण, नेत्र, रसना, मुख आदि अग-उपाग रच कर सजाये है और ऐसा विचित्र शरीर वना कर उसमे जीव रख दिया है, किसी अन्य की सहायता के विना, उन जगजीवन ने स्वय ही ससार के सव पदार्थ तथा जीव उत्पन्न किये है और उनमे महादेवादि सुर, नर, पीर, पैगम्वर, सिद्ध और साधकादि सजा कर, उन पर अपने नाम चिन्तन द्वारा कृपा की है तथा जिनने पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र रचे है, जो एक पलक मे कितने ही को नष्ट करके पुन उत्पन्न कर देते है, उन्होंने भक्त-जनो के सव कार्य सुधार कर भक्तो को अपनाया है। वे स्वय प्रभु अखड भाव से सदा सर्व-स्थानो मे रहते है, कभी भी खडित नहीं होते। वे सपूर्ण प्राणियो तथा पदार्थों मे समभाव से परिपूर्ण हो रहे है। जिनको वेदादि शास्त्र और सत-जन अगम अगाध कहते है, उन निरजन राम को हम दीन भाव से मस्तक नवा कर वन्दना करते है।

२९७-हैरान। उत्सव ताल

हम तै दूर रही गति तेरी।
तुम हो तैसे तुम हीं जानो, कहा बपुरी मति मेरी ॥टेक॥
मन तै अगम दृष्टि अगोचर, मनसा की गम नांहीं।
सुरति समाइ बुद्धि बल थाके, वचन न पहुँचै ताहीं ॥ १ ॥
योग न ध्यान ज्ञान गम नाहीं, समझ-समझ सब हारे।
उनमनी रहत प्राण घट साधे, पार न गहत तुम्हारे ॥ २ ॥
खोजि परे गति जाइ न जानी, अगह गहन कैसे आवै।
दादू अविगत देहु दया कर, भाग बड़े सो पावै ॥ ३ ॥

इति राग नट नारायण समाप्त ॥ १८ ॥ पद ७ ॥

ब्रह्म स्वरूप की आश्चर्यता दिखा रहे है—प्रभो! आपका स्वरूप हमारे मन इन्द्रियो के ज्ञान से दूर ही रहा है। जैसे आप है, वैसे तो अपने को आप ही जानते हो। मेरी तुच्छ बुद्धि तो आपको जान ही क्या सकती है? आप मन से अगम और दृष्टि से अगोचर है, बुद्धि आपके स्वरूप मे प्रविष्ट

नही हो सकती। जहा बुद्धि की शक्ति थक जाती है, वहा वचन तो पहुँचता ही नही, अत· सत-जन ब्रह्माकार वृत्ति द्वारा ही आप मे समाये रहते है। आपके वास्तविक स्वरूप के अन्त तक योग, ध्यान और ज्ञान द्वारा भी गमन नही होता। योगी, ध्यानी, ज्ञानी आदि आपके स्वरूप को समझकर मध्य मे ही थक गये है, पार नही पा सके। शरीरस्थ प्राण को साधना द्वारा अधीन करके समाधि मे रहने वाले भी आपके स्वरूप का पार नही पा सकते। अनेक खोजी लोक आपको खोजने के लिये पीछे पडे, किन्तु वे भी स्वरूप का अन्त न जान सके। वह अग्राह्य है, ग्रहण करने मे कैसे आवे। हा, वे मन इन्द्रियो के अविषय परब्रह्म ही यदि अपना साक्षात्कार करा देवे, तो जिसका महान् भाग्य हो, वह उनका दर्शन प्राप्त करता है।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग नट नारायण समाप्त · ॥ १८ ॥

अथ राग सोरठ १९

(गायन समय रात्रि ९ से १२)

२९८-स्मरण। उत्सव ताल

कोली साल न छाडै रे, सब घावर[1] काढै रे ॥ टेक॥
प्रेम पाण लगाई धागै, तत्त्व तेल निज दीया।
एक मना इस आरम्भ लागा, ज्ञान राछ[2] भर लीया ॥ १ ॥
नांव नली भर बुणकर लागा, अंतरगति रँग राता।
तॉणैं बॉणै जीव जुलाहा, परम तत्त्व सौं माता॥ २ ॥
सकल शिरोमणि बुनै विचारा, सान्हां[3] सूत न तोडै।
सदा सचेत रहै ल्यौ लागा, ज्यों टूटै त्यों जोडै ॥ ३ ॥
ऐसे तनि बुनि गहर गजीना[4], साई के मन भावै।
दादू कोली करता के सग, बहुरि न इहि जग आवै॥ ४ ॥

जुलाहा और खद्दर के रूपक द्वारा साधक के ब्रह्म भजन तथा ब्रह्म प्राप्ति का परिचय दे रहे है—साधक-जीव-जुलाहा ब्रह्म-भजन रूप पट बुनने के हृदय स्थान को नही छोडता। वृत्ति धागे से मल विक्षेपादि सम्पूर्ण दोष[1] निकाल देता है और उस धागे मे प्रभु प्रेम रूप पाण लगाता है। तत्व विचार रूप तेल द्वारा प्रकाशित उन साक्षी रूप दीपक के सत्ता प्रकाश का आश्रय लेकर एकाग्र मन से इस ब्रह्म-भजन पट को बुनना आरम्भ करता है। ज्ञान रूप अच्छे औजार[2] लेता है, तथा नाम-नलिका मे वृत्ति-धागा भरता है अर्थात् नामाकार वृत्ति रखता है। इस प्रकार नलिका भरकर पट बुनने लगता है और भीतर प्रभु-प्रेम रग मे अनुरक्त रहता है। यह जीव-जुलाहा वृत्ति-सूत्र को परम तत्व रूप ताने-बाने मे लगाते हुये मस्त रहता है। यह विनम्र जीव-जुलाहा वृत्ति-सूत्र को ब्रह्म-भजन-द्रव मे सतृप्त[3] करके तोडता नही, सर्व शिरोमणि पट बुनता है। सदा सावधान हो वृत्ति को ब्रह्म-भजन मे लगाये रहता है। किसी कारण से वृत्ति टूट जाय तो ज्यो टूटती है, त्यो ही शीघ्र जोड देता है। उक्त प्रकार ताने बाने द्वारा बहुत गाढ़ा ब्रह्म-भजन रूप खद्दर[4] बुन के तैयार करता है, तब

ब्रह्म के मन को वह प्रिय लगता हे और ऐसे पट को बुनने वाला जीव-जुलाहा अभेद रूप से ब्रह्म के सग ही रहता है, पुन जन्म लेकर ससार मे नही आता।

२९९-विरही । ललित ताल

विरहणी वपु[1] न सँभारै।
निशदिन तलफै राम के कारण, अंतर एक विचारै ॥ टेक ॥
आतुर भई मिलन के कारण, कहि कहि राम पुकारै।
श्वास उश्वास निमिष नहि विसरै, जित तित पथ निहारै ॥ १ ॥
फिरै उदास चहूँ दिशि चितवत, नैन नीर भर आवै।
राम वियोग विरह की जारी, और न कोई भावै ॥ २ ॥
व्याकुल भई शरीर न समझै, विषम बाण हरि मारे।
दादू दर्शन बिन क्यो जीवै, राम सनेही हमारे ॥ ३ ॥

विरही की स्थिति का परिचय दे रहे है—वियोगिनी शरीर[1] की सभाल भी नही कर पाती, रात्रि दिन राम के दर्शनार्थ तड़फती रहती है और प्रभु के दर्शन कैसे हो सकेगे, एक मात्र यही विचार भीतर करती रहती है। प्रभु से मिलने के लिये व्याकुल हो रही है। पुन २ राम-राम कर प्रभु के दर्शनार्थ प्रार्थना करती रहती है। वेग से श्वास लेते छोड़ते हुये भी एक निमेष मात्र प्रभु को नहीं भूलती। जहा तहा उन्ही का मार्ग देखती है। खिन्न होकर फिरती है। चारो ओर देखती है। नेत्रो मे अश्रु-जल भर आता है। राम न मिलने के कारण विरह से जली हुई रहती है, अन्य कुछ भी प्रिय नही लगता। व्याकुल हो रही है, शरीर की दशा को भी नही समझ पाती, कारण, हरि ने वियोग रूप भयकर बाण मारे है। हे राम ! आप हमारे प्राणप्रिय है। हम आपके दर्शन बिना कैसे जीवेंगे ?

३००-उपदेश चेतावनी। धीमा ताल

मन रे, राम रटत क्यो रहिये, यहु तत बार बार क्यो न कहिये ॥ टेक ॥
जब लग जिह्वा वाणी, तो लौ जपिलै सारगपाणी[1] ।
जब पवना चल जावै, तब प्राणी पछतावै ॥ १ ॥
जब लग श्रवण सुणीजे, तो लौ साध शब्द सुण लीजे।
श्रवणो सुरति जब जाई, ए तब का सुणि है भाई ॥ २ ॥
जब लग नैनहु पेखै, तो लौ चरण-कमल क्यों न देखै।
जब नैनहुँ कछू न सूझै, ये तब मूरख क्या बूझै ॥ ३ ॥
जब लग तन मन नीका, तो लौ जपिलै जीवन जीका ।
जब दादू जिव आवै, तब हरि के मन भावै ॥ ४ ॥

३००-३०४ मे उपदेश द्वारा मन को सावधान कर रहे है—अरे मन ! राम-नाम चिन्तन करने मे तू पीछे क्यो रह जाता है ? अरे ! यह नाम तो सभी साधनो मे सार तत्व है, इसका तो

बारम्बार प्रतिक्षण ही चिन्तन करना चाहिये। जब तक जिह्वा से वाणी उच्चारण होती है तब तक परमेश्वर[२] का नाम जप ले। जब श्वास निकल जाते है तब भजन न करने वाले प्राणी पश्चात्ताप करते है। जब तक श्रवणो से सुनता है, सतो के शब्द सुनले। हे भाई ! जब श्रवणो से सुनने की शक्ति नष्ट हो जायगी और श्रवण से सम्बन्ध वृत्ति विफल हो जायगा, तब क्या सुन सकेगा ? जब तक नेत्रो से तू अच्छी प्रकार देखता है, तब तक प्रभु के तथा सन्तो के चरण-कमलो का दर्शन क्यो नही करता ? जब नेत्रो से कुछ भी न दीखेगा तब हे मूर्ख ! तू उन प्रभु के रूप को क्या समझ सकेगा ? जब तक शरीर, मन अच्छे है, जीव के जीवन स्वरूप प्रभु का नाम जपले। जब जीव भजन द्वारा हरि की ओर आता है, तब हरि के मन को प्रिय लगता है।

३०१-धीमा ताल

मन रे, तेरा कौन गॅवारा, जप जीवन प्राण अधारा ॥ टेक ॥
रे मात पिता कुल जाती, धन जोबन सजन सॅगाती ।
रे गृह दारा[१] सुत भाई, हरि बिन सब झूठा है जाई ॥ १ ॥
रे तूं अंत अकेला जावै, काहू के संग न आवै ।
रे तू ना कर मेरी मेरा, हरि राम बिना को तेरा ॥ २ ॥
रे तूं चेत न देखै अंधा, यहु माया मोह सब धंधा ।
रे काल मीच शिर जागै, हरि सुमिरण काहे न लागै ॥ ३ ॥
यहु औसर बहुरि न आवै, फिर मनिषा[२] जनम न पावै ।
अब दादू ढील न कीजै, हरि राम भजन कर लीजै ॥ ४ ॥

अरे मूर्ख मन ! इस जगत् मे तेरा कौन है ? कोई भी नही है। अपने जीवन और प्राणो के आधार राम का नाम जप। अरे ! माता, पिता, भाई, स्त्री[१], पुत्र, कुलवाले, जाति वाले, मित्रादिक साथी यौवन, धन, और घर आदि सभी मिथ्या सिद्ध होगे। अन्त मे तू अकेला ही जायगा और न किसी के साथ आता भी है। अरे पाप-ताप हरने वाले राम के बिना तेरा कोई भी नही है। तू यह मेरी है और यह मेरा है, ऐसा मत कर। अरे ! विचार-नेत्रो से हीन ! सावधान होकर नही देखता, ये सब कारबार तो मायिक मोह मे डालने वाले है। अरे ! तेरे शिर पर काल प्रेरित मृत्यु आ गया है, सावधान होकर हरि-स्मरण मे क्यो नही लगता ? यह सुअवसर पुन हाथ न आयेगा। कारण, तू जिन कर्मों मे प्रवृत्त है उनके द्वारा पुन मनुष्य[२] जन्म भी नही प्राप्त कर सकेगा। अत देर न कर, जन्मादि दु खो के हरने वाले राम का भजन करके उन्हे प्राप्त कर।

३०२-प्रति ताल

मन रे, देखत जन्म गयो, तातैं काज न कोई भयो रे ॥ टेक ॥
मन इन्द्री ज्ञान विचारा, तातैं जन्म जुआ ज्यों हारा ।
मन झूठ साच कर जानैं, हरि साध कहैं, नहिं मानैं ॥ १ ॥
मन रे बादि गहे चतुराई, तातैं मनमुख बात बनाई ।

मन आप आप को थापै, करता होइ बैठा आपै ॥ २ ॥
मन स्वादी बहुत बनावै, मै जान्यां विषय बतावै ।
मन माँगै सोई दीजे, हमहिं राम दुखी क्यों कीजे ॥ ३ ॥
मन सब ही छाड विकारा, प्राणी होइ गुणन तै न्यारा ।
निर्गुण निज गहि रहिये, दादू साध कहै, ते कहिये ॥ ४ ॥

अरे मन ! विषयो मे लगे रहने से देखते २ मानव-जन्म चला गया। विषय-राग के कारण कोई भी कल्याण का हेतु कार्य नही हो सका। न मन इन्द्रियो के अनुकूल ज्ञान का ही विचार किया। इसलिये जैसे जुआरी अपना मूल धन जुआ मै हार कर खो देता है, वैसे ही मानव जन्म को खो दिया। अरे मन ! तू मिथ्या को सत्य समझता है। हरि और सत कहते है, उन वचनो को नहीं मानता। अरे ! तू व्यर्थ की चतुराई ग्रहण करता है, इसीलिये मनमुखता से सतो के सामने ही बाते बनाता है, बारम्बार समर्थन द्वारा अपनी ही बातो को ठीक ठहराता है और आप ही सब कुछ का कर्त्ता होकर बैठा है। तू विषयो का स्वाद लेने वाला है, विषय-स्वाद सम्बन्धी बहुत-सी बाते बनाता है। मैंने तुझे पहचान लिया, तू विषय-भोग को ही उत्तम बताता है। हे राम ! मन माँगे वही पदार्थ देकर आप हम को दुखी क्यो कर रहे है ? अरे मन ! सब विकारो को छोडकर, जिस प्रकार जीवात्मा गुणो से अलग हो निज स्वरूप निर्गुण ब्रह्म के चिन्तन को ग्रहण कर उसी मे अभेद रूप से रह सके, ऐसा कर और सत-जन जैसे वचन बोलते है, वैसे ही सर्व-प्रिय वचन बोल।

३०३-प्रतिपाल

मन रे, अतकाल दिन आया, तातै यहु सब भया पराया ॥ टेक ॥
श्रवणो सुनै न नैनहुँ सूझै, रसना कह्या न जाई ।
शीश चरण कर कंपन लागे, सो दिन पहुँच्या आई ॥ १ ॥
काले धोले वरण पलटिया, तन मन का बल भागा ।
जौबन गया जरा चल आई, तब पछतावन लागा ॥ २ ॥
आयु घटै घट छीजै काया, यहु तन भया पुराना ।
पांचो थाके कह्या न मानैं, ताका मर्म न जाना ॥ ३ ॥
हंस बटाऊ प्राण पयाना, समझ देख मन माहीं ।
दिन दिन काल गरासै जियरा, दादू चेतै नांहीं ॥ ४ ॥

अरे मन ! अत समय का दिन समीप आ गया है, इससे यह धन दूसरो का हो गया है। अब श्रवणो से सुनता नही, नेत्रो से दीखता नही, वाणी से बोला नहीं जाता। शिर, पैर, हाथ कापने लग गये है, वह मृत्यु का दिन भी अति समीप आ पहुँचा है। काले केश श्वेत हो गये है, शरीर का रग बदल गया है, शरीर कमजोर हो गया है, मन भी विकल हो रहा है, यौवन चला गया, वृद्धावस्था

आ गई, तब तू पश्चाताप करने लगा है कि—"मैने कोई भी कल्याण का साधन नही किया।" आयु प्रतिदिन घटती जा रही है, शरीर क्षीण होता जा रहा है। यह शरीर अब अति जीर्ण हो गया है। पच ज्ञानेन्द्रियो के ज्ञान थक गए, अब कहना नही मानतीं अर्थात् काम नही दे सकती, किन्तु फिर भी तू पथिक जीवात्मा रूप हस का प्राणो के सहित प्रयाण का रहस्य नही जान सका। अरे मन ! अपने भीतर समझ कर देख तो सही, प्रतिदिन काल तेरी आयु का ग्रास करता जा रहा है, तू सावधान नही होता।

३०४-राज विद्याधर ताल

मन रे, तूं देखै सो नांही, है सो अगम अगोचर मांहीं ॥ टेक॥
निशि अंधियारी कछू न सूझै, संशय सर्प दिखावा ।
ऐसे अंध जगत नहि जानैं, जीव जेवडी खावा ॥ १ ॥
मृग जल देख तहा मन धावै, दिन दिन झूठी आशा ।
जहँ जहँ जाइ तहा जल नांही, निश्चय मरै पियासा ॥ २ ॥
भ्रम विलास बहुत विधि कीन्हा, ज्यो स्वप्नै सुख पावै ।
जागत झूठ तहां कुछ नांही, फिर पीछे पछितावै ॥ ३ ॥
जब लग सूता तब लग देखै, जागत भ्रम विलाना ।
दादू अंत इहां कुछ नाहीं, है सो सोध सयाना ॥ ४ ॥

अरे मन ! जिस मायिक प्रपच को तू सत्य रूप से देख रहा है, यह सत्य नही है। जो सत्य है वह तो तेरे अगम, इन्द्रियो से परे और सभी के भीतर है किन्तु जैसे अन्धेरी रात्रि मे अच्छी प्रकार कुछ नही दीखता, तब अपने ही भ्रम से रस्सी मे सर्प दिखाई देता है और उस रस्सी को ही जीव सर्प समझ कर कहता है—यह खा जायगा, वैसे ही जगत् के अज्ञानी प्राणी ब्रह्म को न जान कर उसके विवर्त्त को शत्रु आदि मान कर व्यथित होते है। जैसे मृग मरीचिका के जल को देख कर वहा जाता है किन्तु जहा २ जाता है, वहा जल नही मिलता और वह उस मिथ्या-जल की आशा से प्यासा ही मरता है। वैसे ही प्राणी सासारिक मिथ्या विषयो की आशा करके प्रतिदिन उनसे सुख प्राप्ति के लिए उनके पीछे दौडता है और निश्चय पूर्वक दु ख ही पाता है। जैसे स्वप्न मे प्राणी नाना भाति के सुख पाता है किन्तु जागने पर सबको मिथ्या जानता है, वहा उसे कुछ भी नही मिलता, वैसे ही प्राणी भ्रमवश मिथ्या पदार्थो के उपभोग मे आनन्द मानता है किन्तु ज्ञान जाग्रत मे आने पर उन सब को मिथ्या जानता है, तब फिर उनके उपभोग मे व्यतीत हुई आयु के लिए पश्चात्ताप करता है। अरे ! तू भी जब तक अज्ञान-निद्रा मे प्रसुप्त है, तब तक ही इन मायिक पदार्थों को सत्य देखता है। ज्ञान जाग्रत मे आते ही यह भ्रम नष्ट हो जायेगा। मोह-निद्रा के अन्त मे इस मायिक प्रपच मे सत्य कुछ भी न मिलेगा। अत हे चतुर ! जो इस प्रपच मे सत्य तत्त्व है, उसी ब्रह्म की खोज कर।

३०५-उपदेश । त्रिताल

भाई रे, बाजीगर नट खेला, ऐसै आपै रहै अकेला ॥ टेक ॥
यहु बाजी खेल पसारा, सब मोहे कौतुकहारा ।
यहु बाजी खेल दिखावा, बाजीगर किनहु न पावा ॥ १ ॥
इहि बाजी जगत भुलाना, बाजीगर किनहुँ न जाना ।
कुछ नांहीं सो पेखा, है सो किनहुँ न देखा ॥ २ ॥
कुछ ऐसा चेटक कीन्हा, तन मन सब हर लीन्हा ।
बाजीगर भुरकी बाही, काहू पै लखी न जाही ॥ ३ ॥
बाजीगर परकासा, यहु बाजी झूठ तमासा ।
दादू पावा सोई, जो इहि बाजी लिप्त न होई ॥ ४ ॥

ईश्वर तथा उसके कार्य की अद्भुतता दिखाते हुए उपदेश कर रहे है—हे भाई ! ईश्वर रूप बाजीगर ने यह ससार नट-खेल के समान रचा है और आप इस प्रकार अद्वैत रूप से रहता है कि इस खेल सम्बन्धी कोई भी विकार उसमे नही भासते । उस खेल करने वाले ईश्वर ने ही यह ससार बाजी रूप खेल फैलाया है। जिसने यह बाजी रूप खेल दिखाया है, उस बाजीगर की समता किसी ने भी प्राप्त नही की है । उसने इस बाजी मे ही जगत् को भुला रखा है, इसी कारण बाजीगर के आदि, अन्त को किसी ने भी नही जाना। जो वास्तव मे सत्य नही है, वह मायिक प्रपच ही इन नेत्रो से देखा जाता है और जो सत्य ब्रह्म है उसको इन नेत्रो से किसी ने भी नही देखा। इस बाजीगर ने कुछ ऐसा जादू करके माया रूप भुरकी डाली है, जिसने सब के तन-मन हर लिये है, इस कारण सकी वास्तविकता को कोई भी नहीं जान पाता, किन्तु यह निश्चित है—हृदय मे ईश्वर रूप बाजीगर का प्रकाश आते ही यह बाजी मिथ्या खेल रूप भासने लगती है। जिसने इस बाजी मे आसक्त न होकर ईश्वर का भजन किया है, उसी ने ईश्वर के स्वरूप प्रकाश को प्राप्त किया है।

३०६-ज्ञानोपदेश । त्रिताल

भाई रे, ऐसा एक विचारा, यूं हरि गुरु कहै हमारा ॥ टेक ॥
जागत सूते, सोवत सूते, जब लग राम न जाना ।
जागत जागे, सोवत जागे, जब राम नाम मन माना ॥ १ ॥
देखत अंधे, अध भी अधे, जब लग सत्य न सूझै ।
देखत देखे, अध भी देखे, जब राम सनेही बूझै ॥ २ ॥
बोलत गूंगे, गूंग भी गूंगे, जब लग सत्य न चीन्हा ।
बोलत बोले, गूग भी बोले, जब राम नाम कह दीन्हा ॥ ३ ॥
जीवत मूये, मुये भी मूये, जब लग नहीं प्रकासा ।
जीवत जीये, मुये भी जीये, दादू राम निवासा ॥ ४ ॥

ज्ञानोपदेश कर रहे है—हे भाई ! हमारे गुरुदेव हरि एक ऐसा अद्भुत विचार कहते है, जो इस प्रकार है—जो व्यवहार-काल मे सावधानता रूप जाग्रत अवस्था मे है और जो सोते है, उनने जब तक राम के वास्तविक स्वरूप को न जाना, तव तक वे दोनो प्रकार के मानव प्रसुप्त ही है और जब जिनके मन ने राम-नाम को कल्याण का साधन मानकर सतत चिन्तन आरम्भ कर दिया वे जागते हुये तथा सोते हुये होने पर भी जाग गये है। जब तक सत्य-सत्व नही भासता तब तक व्यवहारिक नेत्रो से देखने वाले तथा अधे दोनो, ही अन्धे है और जब अपने परम स्नेही राम को आत्म-स्वरूप से समझ लिया, तब देखने वाले तथा अन्धे दोनो ही देखने वाले है। जब तक सत्य ब्रह्म नही पहचाना तब तक वेदादि का उच्चारण करने वाले भी गूगे और गूगे भी गूगे ही है और जब जीवन मे सतत राम-नाम उच्चारण वा मन से चिन्तन किया है, तब बोलने वाले और गूगे दोनो ही बोलने वाले है। जब तक बुद्धि मे आत्म-ज्ञान का प्रकाश नही हुआ तब तक जीवित तथा मृतक दोनो ही मृतक है और जब ज्ञान द्वारा राम के वास्तविक स्वरूप मे निष्ठा रूप निवास हो गया तब जीवित और मृतक दोनो ही ब्रह्मरूप से जीवित रहते है।

३०७-नाम महिमा। एक ताल

रामजी ! नाम बिना दुख भारी, तेरे साधुन कही विचारी ॥ टेक ॥
केई जोग ध्यान गह रहिया, केई कुल के मारग बहिया।
केई सकल देव को ध्यावैं, केई रिधि सिधि चाहैं पावैं ॥ १ ॥
केई वेद पुराणों माते, केई माया के संग राते।
केई देश दिशंतर डोलैं, केई ज्ञानी ह्वै बहु बोलैं ॥ २ ॥
केई काया करैं अपारा, केई मरैं खडग की धारा।
केई अनंत जीवन की आशा, केई करैं गुफा में बासा ॥ ३ ॥
आदि अंत जे जागे, सो तो राम नाम ल्यौ लागे।
इब दादू इहै विचारा, हरि लागा प्राण हमारा ॥ ४ ॥

नाम की महिमा बता रहे है—हे रामजी ! आपके नाम-चिन्तन विना ससार मे महान् क्लेश उठाने पडते है। यही आपके सतो ने विचार पूर्वक कहा है, किन्तु उनके कथन पर ध्यान न देकर ससार के प्राणी कितने ही तो हठ योग और षट्चक्र ध्यान को ही ग्रहण करके रुक रहे है, कितने ही कुल परम्परागत रीति मे ही चलते है। कितने ही सव देवताओ की उपासना करते है, कितने ही ऋद्धि-सिद्धि की इच्छा करके उनकी प्राप्ति के यत्न मे लगे है। कितने ही वेद-पुराणो के पाठ मे ही मस्त है। कितने ही मायिक प्रवाह मे वह रहे हे। कितने ही देश देशान्तरो मे भ्रमण करते हे। कितने ही ज्ञानी वनकर वहुत प्रकार से प्रवचन करते है। कितने ही पंच धूणी आदि कठोर तप से शरीर को अपार कष्ट देते हे। कितने ही तलवार की धार से मरते है। कितने ही वहुत काल जीने की आशा करके कायाकल्प करते है। कितने ही गुफा मे रहते है, किन्तु ये सव वाह्य-साधना, निरन्तर राम-नाम चिन्तन के समान नहीं है। सृष्टि के आदि से अन्त तक जो भी ज्ञान-जाग्रति मे आये है, वे सभी

तो राम-नाम मे वृत्ति लगाकर के ही आये है। यही विचार करके हमारा मन तो अव निरन्तर हरी नाम-चिन्तन मे ही लगा है।

३०८-भ्रम विध्वसन। एकताल

साधो ! हरि सौ हेत हमारा, जिन यहु कीन्ह पसारा ॥ टेक॥
जा कारण व्रत कीजे, तिल तिल यहु तन छीजे।
सहजै ही सो जाना, हरि जानत ही मन माना ॥ १ ॥
जा कारण तप जइये, धूप शीत शिर सहिये।
सहजैं ही सो आवा, हरि आवत ही सचु[1] पावा ॥ २ ॥
जा कारण बहु फिरिये, कर तीरथ भ्रमि[2] भ्रमि[3] मरिये।
सहजै ही सो चीन्हा, हरि चीन्ह सबै सुख लीन्हा ॥ ३ ॥
प्रेम भक्ति जिन जानी, सो काहे भरमै प्रानी।
हरि सहजै ही भल मानै, तातै दादू और न जानैं ॥ ४ ॥

भ्रम नाश कर रहे है—हे सतो ! जिनने यह मायिक विस्तार रूप ससार इच्छा मात्र से रचा है, उन हरि से ही हमारा प्रेम है। जिनके लिये अज्ञानी लोगो का इन कठोर व्रतो से यह शरीर क्षण-क्षण मे क्षीण होता रहता है, ऐसे व्रत करते है, उन हरि को हमने प्रेम पूर्वक चिन्तन करके बिना श्रम ही जान लिया है और उन हरि को जानते ही हमारे मनने सतोष मान लिया है। जिनके लिये तप करने जाते है, घाम और शीत शिर पर सहन करते है, वे हरि भजन द्वारा बिना भ्रमे ही हमारे हृदय मे प्रकट रूप से आ गये है और उनके हृदय मे आते ही हमे आनन्द[1] प्राप्त हुआ है। जिनके लिये लोग बहुत फिरते है, भ्रमित[2] होकर तीर्थों मे भ्रमण[3] कर २ के व्यथित होते है, उन प्रभु को प्रेमाभक्ति पूर्वक ज्ञान द्वारा हमने अनायास ही पहचान लिया है और पहचानते ही सब प्रकार से आनन्द[1] प्राप्त किया है। जिन प्राणियो की प्रेमाभक्ति जान ली है, वे किसलिये नाना बाह्य-साधनो मे भटकेगे ? प्रेमाभक्ति से हरि स्वाभाविक ही भक्त को अच्छा मानते है। इसलिये हम तो प्रेमाभक्ति को छोडकर अन्य साधन को श्रेष्ठ नही जानते।

३०९-परिचय विनती। वर्ण भिन्नताल

रामजी जनि[1] भरमावो हम को, तातै करू वीनती तुमको ॥ टेक ॥
चरण तुम्हारे सब ही देखू, तप तीरथ व्रत दाना।
गग जमुन पास पाइन के, तहा देहु अस्नाना ॥ १ ॥
संग तुम्हारे सब ही लागे, जोग जज्ञ जे कीजे।
साधन सकल येही सब मेरे, संग आपनो दीजे ॥ २ ॥
पूजा पाती देवी देवल[2], सब देखू तुम माहीं।
मोको ओट आपणी दीजे, चरण कवल की छांहीं ॥ ३ ॥

ये अरदास दास की सुनिये, दूर करो भ्रम मेरा ।
दादू तुम बिन और न जानैं, राखो चरणो नेरा ॥ ४ ॥

प्रत्यक्ष रूप से प्रभु के पास निवासार्थ विनय कर रहे है—हे रामजी ! आप मुझे नाना बाह्य साधनो मे नही' भटकावे, इसलिये मै आप से विनय करता हूँ, मुझे ऐसी बुद्धि दीजिये कि-मै आपके चरणो मे ही तप, तीर्थ, व्रत, दानादि देखू। गगा, यमुना भी आपके चरणो की समीपता को ही समझू और वहा ही स्नान कर सकू, ऐसी बुद्धि दे। योग, यज्ञादि जो भी कुछ किये जाते है, वे सभी आपके चरणो के सग लगने मे ही मानलू। निरन्तर अपना सग दे, वही मेरे सब साधन रूप है। पूजा, तुलसी-पत्र, देवी-देवालय', सब आप के भीतर ही देख सकू, ऐसी बुद्धि दे। मुझे तो अपनी शरणागति देकर अपने चरण-कमलो की छाया मे ही रखिये। मुझ दास की यह विनय सुनकर मेरा भ्रम दूर करो। मुझे अपने चरणो के समीप ही रक्खो, मेरा मन आपके बिना अन्य किसी को भी उपास्य न जाने, ऐसी कृपा करिये।

३१०-उपास्य परिचय । वर्ण भिन्न ताल

सोई देव पूजूं, जे टांची नहि घडिया, गर्भवास नहीं औतरिया ॥ टेक ॥
बिन जल सजम सदा सोइ देवा, भाव भक्ति करूं हरि सेवा ॥ १ ॥
पाती प्राण हरि देव चढाऊँ, सहज समाधि प्रेम ल्यौ लाऊँ ॥ २ ॥
इहि विधि सेवा सदा तहँ होई, अलख निरंजन लखै न कोई ॥ ३ ॥
ये पूजा मेरे मनि मानैं, जिहि विधि होइ सु दादू न जानैं ॥ ४ ॥

अपने उपास्य देव का परिचय दे रहे है—मै उसी उपास्य देव की पूजा करता हूँ, जो टाकी से नही गढा गया है, गर्भवास द्वारा अवतार नही लिया है। जिसका बिना जल ही स्नान होता है तथा सदा ही सयम बना रहता है, वही मेरा उपास्य-देव है। उस हरि की श्रद्धा भक्ति द्वारा ही मै पूजा करता हूँ। उस मेरे उपास्य देव हरि के प्राण रूप तुलसी-दल चढाता हूँ। प्रेम पूर्वक उसमे वृत्ति लगाकर सहज समाधि द्वारा उसके पास रहता हूँ। इस प्रकार मेरे हृदय मे सदा सेवा-पूजा होती रहती है। मेरा उपास्य देव अलख और निरजन है, उसे चर्म-चक्षुओ से कोई भी नही देख सकता। मेरे मन को यह उक्त प्रकार की पूजा करना ही अच्छा लगता है किन्तु उस देव की यह पूजा जिस प्रकार होनी चाहिये वा जिस प्रकार करने से उसे प्रिय लगे सो तो वही जानता है, मै नही जानता।

आमेर नरेश मानसिह ने पूछा था, आप किस देव की पूजा करते है ? उसी का उत्तर इस पद से दिया था।

३११-परिचय हैरान । खेमटा ताल

राम राइ ! मोकों अचरज आवै, तेरा पार न कोई पावै ॥ टेक ॥
ब्रह्मादिक सनकादिक नारद, नेति नेति जे गावैं ।
शरण तुम्हारी रहैं निश वासर, तिन कों तू न लखावै ॥ १ ॥

शंकर शेष सबै सुर मुनिजन, तिनको तूं न जनावै ।
तीन लोक रटै रसना भर, तिनकों तूं न दिखावै ॥ २ ॥
दीन लीन राम रँग राते, तिनकों तूं सग लावै ।
अपने अग की युक्ति न जानै, सो मन तेरे भावै ॥ ३ ॥
सेवा संजम करैं जप पूजा, शब्द न तिनको सुनावै ।
मै अछोप हीन मति मेरी, दादू कौ दिखलावै ॥ ४ ॥

इति राग सोरठ समाप्त ॥ १९ ॥ पद १४ ॥

साक्षात्कार किये स्वरूप की अद्भुतता बता रहे है—विश्व के राजा राम ! आपके स्वरूप का साक्षात्कार करने पर मुझे बडा आश्चर्य हो रहा है। आप का पार कोई भी नहीं पा सकता। ब्रह्मादिक प्रजापति, सनकादिक ज्ञानी, नारदादिक देवर्षि जो है- वे आपके स्वरूप के विषय मे, ''यह नही, यह नही'' कह करके ही प्रवचन करते है। जो आपकी शरण मे रात्रि-दिन निरतर रहते है, उनको भी आप अपना आदि, अन्त नही दिखाते। जो आपके विशेष भक्त शकरजी व शेषजी है तथा सपूर्ण देवता और जितने मुनिजन है, उनको भी आप अपना आदि, अन्त नही बताते और जो भी तीनो लोको मे भक्तजन आपके नाम को रसना से इच्छा भर कर रटते है, उनको भी आप अपना आदि, अन्त नही दिखाते। जो सर्व प्रकार के अभिमान से रहित, दीन भाव से आप राम के प्रेम-रग मे अनुरक्त होकर आप मे ही लीन हुए रहते है, उनको आप अपने अभेद रूप सग मे ले लेते है। जो अपने शरीर की आसक्ति पूर्वक पोषण की युक्ति नहीं जानते, वे भक्त ही आप के मन को प्रिय लगते है। जो साभिमान आपकी सेवा करते है, सयम पूर्वक जप तथा पूजा करते है, उनको आप अपने मुख का शब्द तक नहीं सुनाते। देखिये, मै हीन-मति हू, अपने बुद्धि-बल से तो आपको छू भी नही सकता, किन्तु निरभिमान और दीन भाव से आपका भजन करने से ही आप अपने अति अद्भुत स्वरूप को मुझे दिखा रहे है।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग सोरठ समाप्त ॥ १९ ॥

अथ राग गुंड (गौंड) २०

(गायन समय वर्षा ऋतु मे सब समय, सगीत-प्रकाश के मतानुसार)

३१२-भक्ति निष्काम । सुरफाख्ता ताल

दर्शन दे राम ! दर्शन दे, हौ[1] तो तेरी मुक्ति न माँगू रे ॥ टेक ॥
सिद्धि न माँगूं, ऋद्धि न माँगूं, तुम्ह हीं माँगूं गोविन्दा ॥ १ ॥
जोग न माँगू, भोग न माँगूं, तुम्ह ही माँगू रामजी ॥ २ ॥
घर नहि माँगू, वन नहि माँगूं, तुम्ह हीं माँगू देवजी ॥ ३ ॥
दादू तुम बिन और न माँगूं, दर्शन माँगू देहुजी ॥ ४ ॥

निष्काम भक्ति दिखा रहे है—हे प्रभो ! मै[१] आपसे मुक्ति या मोक्ष नही मॉगता किन्तु बारबार यह प्रार्थना करता हू-आप मुझे दर्शन दे। हे गोविन्द ! मै ऋद्धि-सिद्धि नही मॉगता केवल आपके स्वरूप का साक्षात्कार ही मॉगता हूॅ। हे रामजी ! मै भोग वा योग नही मागता, आपको ही चाहता हूॅ। हे इष्टदेव जी ! घर वा वन का निवास नही मागता, आपको ही चाहता हू। मै तो आप के बिना अन्य कुछ भी नही मागता, आप का दर्शन ही मागता हू, कृपा करके दीजिये।

३१३-विरह विनती। सुरफाखता ताल

तूं आपैं हीं विचार, तुझ बिन क्यों रहूं ?
मेरे और न दूजा कोइ, दुःख किसको कहूं ॥ टेक ॥
मीत हमारा सोइ, आदैं जे पीया।
मुझे मिलावै कोइ, वै जीवन जीया ॥ १ ॥
तेरे नैन दिखाइ, जीऊं जिस आस रे।
सो धन[१] जीवै क्यों, नही जिस पास रे ॥ २ ॥
पिंजर मांहीं प्राण, तुझ बिन जाइसी।
जन दादू मॉगै मान, कब घर आइसी ॥ ३ ॥

३१३-३१५ मे विरह पूर्वक विनय कर रहे है—हे प्रभो ! आप स्वय ही विचार करके कहो, मै आप के बिना सुख से कैसे रह सकता हँ ? मेरे दु ख को मिटाने वाला आप से भिन्न दूसरा कोई भी नही है, फिर अपना दु·ख कहूॅ भी किसको ? जो सब ससार के आदि स्वरूप और स्वामी है, वे ही हमारे मित्र है, वे ही मेरे जीवन के जीव है, कोई सत उनको मुझे मिला दे तो बडा अनुग्रह मानूगा। प्रभो ! आप अपने नेत्र दिखाइये, जिससे उनका आश्रय लेकर सुख पूर्वक जीवित रह सकू। जिसके पास उसका प्रियतम न हो, वह नारी[१] सुख पूर्वक कैसे जीवित रहेगी ? वैसे ही मेरे शरीर-पिजरे मे स्थित जो प्राण पक्षी है, वह आपके बिना चला ही जायगा। मै आपका भक्त आप से विनय करता हूँ, मेरी विनय मान कर कहिये—आप मेरे हृदय-घर मे कब पधारेगे ?

३१४-(गुजराती) सुरफाखता ताल

हूं जोइ रही रे बाट, तू घर आवनें।
तारा दर्शन थी सुख होइ, ते तूं ल्यावने ॥ टेक ॥
चरण जोवा ने खांत[१], ते तूं देखाडनें।
तुझ बिन जीव देइ, दुहेली कामिनी ॥ १ ॥
नेणें निहारूं बाट, ऊभी चावनी।
तूं अंतर थी ऊरो आव, देही जावनी ॥ २ ॥
तूं दया करी घर आव, दासी गांवनी।
जन दादू राम संभाल, बैन सुहांवनी ॥ ३ ॥

हे प्रियतम ! मै आपका मार्ग देख रही हूँ, आप मेरे हृदय-घर मे आइये, आपके दर्शन से ही मुझे सुख होगा, आप अपने स्वरूप को मेरे हृदय मे लाने की कृपा करे। आपके चरण-कमलो को देखने के लिए प्रबल इच्छा' हो रही हे, आप अपने चरण दिखावे। आपके विना आप की कामिनी दु खी है और अपना प्राण त्याग देगी। मै आपके दर्शन की प्रबल इच्छा से युक्त होकर नेत्रो से आपका मार्ग देख रही हूँ, आप माया-पटल से निकल कर शीघ्र मेरे पास आइये, नहीं तो मेरा जीवात्मा शरीर को छोडकर जाने वाला ही है। आप दया करके हृदय-घर मे पधारिये। मै आपका गुण-गान करने वाली दासी हू और आपको विनय सुना रही हूँ, हे राम ! मुझ दासी की सँभाल करिये। (पाठान्तर - सुनावनी) ओर अपनी सुन्दर वशी या वाणी से मधुर बोल सुनाइये।

३१५-झपताल

पीव देखे बिन क्यो रहूं, जिय तलफै मेरा।
सब सुख आनद पाइये, मुख देखूं तेरा ॥ टेक॥
पिव बिन कैसा जीवना, मोहि चैन न आवै।
निर्धन ज्यो धन पाइये, जब दरस दिखावै ॥ १ ॥
तुम बिन क्यो धीरज धरूँ, जो लौ तोहि न पाऊ।
सन्मुख है सुख दीजिये, बलिहारी जाऊं ॥ २ ॥
विरह वियोग न सह सकू, कायर घट काचा।
पावन परस न पाइये, सुनि साहिब साचा ॥ ३ ॥
सुनिये मेरी वीनती, अब दर्शन दीजे।
दादू देखन पावही, तैसै कुछ कीजे ॥ ४ ॥

हे प्रियतम ! मेरा जीवात्मा आपके दर्शनार्थ तडफ रहा है, आपको देखे बिना मै शरीर मे कैसे रह सकूगा ? यदि मै आपका मुख देख सकू तो सम्पूर्ण सासारिक सुख तथा परमानन्द प्राप्त कर लूगा। प्रियतम के बिना यह जीवन कैसा दु ख रूप हो रहा है। मुझे किचित् मात्र भी तो सुख नही मिलता। जैसे निर्धन को धन मिलने से सुख होता है, वैसे ही आप दर्शन देगे तब मुझे सुख होगा। जब तक मै आपको नही प्राप्त कर सकूगा तब तक आपके बिना धैर्य कैसे रख सकूगा ? आप मेरे सन्मुख प्रकट होकर मुझे दर्शनानन्द प्रदान करे, मै आपकी बलिहारी जाता हूँ। मुझसे वियोग जन्य विरह दु ख सहन नहीं होता, कारण, मेरा शरीर कच्चे घट के समान क्षणिक है और आपका पवित्र स्पर्श मिल नही रहा है। इससे मै डरता हूँ-कही आपके दर्शन करे बिना ही न चला जाय। हे सच्चे स्वामिन् ! मेरी प्रार्थना सुनिये और मुझे आपके चरणो का स्पर्श मिले, ऐसी कृपा करिये। इस प्रकार यह मेरी विनय सुनकर अब दर्शन दीजिये। जैसे भी मै आपको देख सकू, वैसे ही कुछ उपाय करिये।

३१६-प्रीति अखंडित । दादरा

इहि विधि वेध्यो मोर मना, ज्यों लै भृंगी कीट तना ॥ टेक ॥
चातक रटतैं रैन बिहाइ, पिड परै पै बान न जाइ ॥ १ ॥
मरै मीन बिसरै नहिं पानी, प्राण तजै उन और न जानी ॥ २ ॥
जलै शरीर न मोडै अंगा, ज्योति न छाडै पडै पतंगा ॥ ३ ॥
दादू अब तैं ऐसैं होइ, पिंड परै, नहीं छाडूं तोहि ॥ ४ ॥

अखड प्रीति का प्रदर्शन कर रहे है—जैसे भृगी के शब्द द्वारा कीट का शरीर विद्ध होकर बदल जाता है, वैसे ही मेरा यह प्रभु-प्रेम से विद्ध होकर बदल गया है। जैसे चातक पक्षी स्वाति बिन्दु को पुकारता है, वैसे ही प्रभु का नाम रटते-रटते आयु रात्रि व्यतीत हो गई है। यह शरीर छूट जायगा किन्तु प्रभु-नाम रटन का स्वभाव नही जा सकेगा, कारण, वह मन मे है और मन प्रभु प्राप्ति पर्यन्त एक ही रहता है। जैसे मच्छी मर जाती है, पर जल का त्याग नही करती। वह जल के वियोग से प्राण छोड देती है किन्तु किसी अन्य को अपना आधार नही जानती। वैसे ही मेरा आधार प्रभु ही है। पतग का शरीर जल जाता है किन्तु वह अपने शरीर को दीपक से नही हटाता। ज्योति को न छोड कर उसी मे पडता है। अब से वैसी ही हमारी दशा है, शरीर गिर जायगा किन्तु हे प्रभो ! मै आपका त्याग न करूगा।

३१७-विरह । त्रिताल

आओ राम दया कर मेरे, बार बार बलिहारी तेरे॥ टेक॥
विरहनी आतुर पंथ निहारै, राम राम कह पीव पुकारै॥ १ ॥
पंथी बूझै मारग जोवै, नैन नीर जल भर भर रोवै॥ २ ॥
निशदिन तलफै रहै उदास, आतम राम तुम्हारे पास॥ ३ ॥
वपु[१] विसरै तन की सुधि नांहीं, दादू विरहनी मृतक मांहीं॥ ४ ॥

विरह मिथ्या दिखा रहे है—हे राम ! दया करके आप मेरे यहा पधारिये, मै बार-बार आपकी बलिहारी जाती हू आपकी वियोग व्यथा से व्याकुल विरहनी आपका मार्ग देख रही है। राम-राम उच्चारण करते हुये आप प्रियतम को पुकार रही है। बारबार सत-पथिको से आपके समाचार पूछती है और मार्ग देखती है। नेत्रो मे अश्रु जल भर-भर कर रुदन करती है। हे आत्म स्वरूप राम ! आप तो व्यापक है, इससे आपके पास ही तो रात्रि-दिन खिन्न होकर तडफती रहती है, स्थूल व सूक्ष्म देह[१] का अध्यास भूल गई है, यह विरहनी तो जीवित मृतक हो चुकी है।

३१८-केवल विनती । रूपक ताल

निरंजन क्यों रहै, मौन गहे वैराग, केते जुग गये ॥ टेक ॥
जागै जगपति राइ, हँस बोलै नहीं ।
परगट घूँघट मांहिं, पट खोलै नहीं ॥ १ ॥

सदके करूं ससार, सब जग वारणै।
छाडू सब परिवार, तेरे कारणैं॥ २ ॥
वारूं पिड पराण, पावो शिर धरूं।
ज्यो ज्यो भावै राम, सो सेवा करू॥ ३ ॥
दीनानाथ दयाल ! विलब न कीजिये।
दादू बलि बलि जाय, सेज सुख दीजिये॥ ४ ॥

निरजन स्वरूप स्थिति प्रश्न पूर्वक ब्रह्मानन्द प्राप्ति के लिए विनय कर रहे है—निरजन कैसे रहते है ? उनको वैराग्य युक्त हो मौन ग्रहण किये कितने ही युग व्यतीत हो गये, यद्यपि वे जगत् को रजन करने वाले जगत् के स्वामी ससार-व्यवस्था के लिए सदा जागते रहते है किन्तु कभी भी हम से हँस कर नही बोलते। उनके विषय मे यह बात प्रकट है कि जैसे कामिनी का मुख घूघट मे रहता है, वैसे ही वे माया से अच्छादित रहते है। जब तक प्राणी ज्ञान द्वारा उस माया के पडदे को अपने हृदय से नहीं हटाता तब तक वे नही दीखते, किन्तु मै तो अपनी सब सासारिक वस्तुये तथा सब जगत् ही उन पर निछावर करता हूँ, और हे प्रभो ! आप के लिए सब परिवार छोड सकता हू, अपना शरीर और प्राण आप पर निछावर कर सकता हू, सदा के लिए आपको जैसी सेवा प्रिय लगे, वैसी ही सेवा कर सकता हूँ, फिर आप मुझसे क्यो छिपे रहते है ? हे दीनानाथ दयालो ! अब देर न कीजिये, मेरी हृदय-शय्या पर आकर मुझे ब्रह्मानन्द दीजिये, मै आप की पुन बलिहारी जाता हू।

३१९-निरंजन स्वरूप । त्रिताल

निरजन यू रहै, काहू लिप्त न होइ।
जल थल स्थावर जगमा, गुण नहि लागै कोइ ॥ टेक ॥
धर अम्बर लागै नहीं, नहि लागै शशिहर सूर ।
पाणी पवन लागै नहीं, जहाँ तहाँ भरपूर ॥ १ ॥
निश वासर लागै नहीं, नहि लागै शीतल घाम ।
क्षुधा तृषा लागै नहीं, घट-घट आतम राम ॥ २ ॥
माया मोह लागै नहीं, नहि लागै काया जीव।
काल कर्म लागै नहीं, परगट मेरा पीव ॥ ३ ॥
इकलस एकै नूर है, इकलस एकै तेज।
इकलस एकै ज्योति है, दादू खेलै सेज ॥ ४ ॥

३१८ मे किये प्रश्न के उत्तर मे निरजन का स्वरूप बता रहे है—निरजन ऐसे रहते है-किसी से भी लिपायमान नही होते। जल, स्थल, स्थावर और चलने वाले प्राणियो के गुण उनके नही लगते। पृथ्वी, आकाश के गुण भी उनके नही लगते। चन्द्रमा का शीतल गुण और सूर्य का तप्त गुण नही लगता। न उनको जल तथा वायु ही लगता। वे जहा तहा सर्वत्र परिपूर्ण रूप से रहते है।

उनके स्वरूप मे रात्रि-दिन भेद नही है, उनको शीत, घाम, क्षुधा और प्यास भी नही लगती, उन घट-घट मे रहने वाले आत्माराम के माया-मोह नही लगता। नही शरीराध्यास और जीवत्व ही लगता है। वे मेरे प्रियतम जब जिसके हृदय मे प्रकट नही होते है, तब उस साधक के भी काल कर्म नही लगते, फिर तो एक रस अद्वैत स्वरूप मे एक रस अद्वैत आत्मा तेज एक हो जाता है। जहा एकरस अद्वैत आत्म ज्योति का प्रकाश है, वहा ही हृदय-शय्या पर हम प्रभु से ब्रह्मानन्द प्राप्ति रूप खेल खेलते है।

३२०-विनय। त्रिताल

जगजीवन प्राण अधार, वाचा पालना।
हौं कहां पुकारूं जाइ, मेरे लालना ॥टेक॥
मेरे वेदन अंग अपार, सो दुख टालना।
सागर यह निस्तार, गहरा अति घणा ॥ १ ॥
अंतर है सो टाल, कीजै आपणा।
मेरे तुम बिन और न कोइ, इहै विचारणा ॥ २ ॥
तातैं करूं पुकार, यहु तन चालणा।
दादू को दर्शन देहु, जाय दुख सालणा ॥ ३ ॥

दर्शनार्थ विनय कर रहे है—मेरे प्राणाधार जगजीवन! "भक्त मुझको प्रिय है" इस अपने वचन या "भक्तो को भगवान् दर्शन देते है" इस सतो के वचन को सत्य करिये। मेरे प्रियतम! मै आपको छोड कहा जाकर पुकारू? मेरे तो सब कुछ आप ही है। मेरे शरीर मे आपके बिना अपार व्यथा हो रही है, वह दूर करो। मायिक मोह रूप अत्यधिक गहराई वाला जो यह ससार-समुद्र है, इससे मुझे पार करो। आप और मेरे मिलने मे जो अन्तराय है, वह हटाओ। आप यह भी विचार कर लेना, मेरे आपके बिना अन्य आश्रय कोई भी नही है और यह शरीर भी जाने वाला है। इसीलिए मै प्रार्थना कर रहा हू, मुझे शीघ्र दर्शन दो, जिससे मेरे को व्यथित करने वाला विरह दु ख नष्ट हो।

३२१-मन का नीकी विनती। मल्लिका मोद ताल

मेरे तुम ही राखणहार, दूजा को नहीं।
ये चंचल चहुँ दिशि जाय, काल तहीं तहीं ॥टेक॥
मैं केते किये उपाय, निश्चल ना रहे।
जहँ बरजूं तहँ जाय, मद मातो बहै ॥ १ ॥
जहँ जाणा तहँ जाय, तुम तैं ना डरै।
तासो कहा बसाइ, भावै त्यो करै ॥ २ ॥
सकल पुकारैं साध, मैं केता कह्या।
गुरु अंकुश मानैं नांहिं, निर्भय है रह्या ॥ ३ ॥

छिन एकै मनवो ज्योति पतगा, भ्रम भ्रम स्वादै दाझे रे ।
छिन एकैं मनवो लोभै लागो, आपा पर मे बाझे रे ॥ ३ ॥
छिन एकै मनवो कुजर माहरो, वन वन माहिं भ्रमाडे रे ।
छिन एकैं मनवो कामी माहरो, विषया रंग रमाडे रे ॥ ४ ॥
छिन एकै मनवो मिरग अम्हारो, नादै मोह्यो जाये रे ।
छिन एकै मनवो माया रातो, छिन एकै हमने बाहे रे ॥ ५ ॥
छिन एकै मनवो भँवर अम्हारो, बासैं कवल बँधाणे रे ।
छिन एकैं मनवो चहुँ दिशि जाये, मनवा ने[1] कोई आणें रे ॥ ६ ॥
तुम बिन राखे कौन विधाता, मुनिवर साखी आणें रे ।
दादू मृतक छिन मे जीवे, मनवा ना[2] चरित न जाणे रे ॥ ७ ॥

मन व्यवहार प्रदर्शन पूर्वक उसे ठीक करने की विनय कर रहे है—हे राम ! इस कलियुग मे आपके बिना ऐसा कोई नही है, जो मन को विषयो से हटावे। मन ने महान् मुनिवरो को भी बहकाया है। इसके मनोरथो को कौन नष्ट कर सकता है ? यह मेरा मन एक क्षण मे वानर बनकर विषय रूप प्रति घर के प्राप्ति यत्न रूप द्वार पर प्रसन्नता रूप नृत्य करता है। एक क्षण मे चचल होकर दौड जाता है और एक क्षण मे ही हृदय घर मे आ जाता है। वह एक क्षण मे ही मच्छी बनकर चराचर रूप विषय-जल मे दौडता है। क्षण मे विषयाशा से उन्मत्त विषय स्वाद मे सलग्नता पूर्वक विषयो का उपभोग करता है। क्षण भर मे रूप ज्योति के लिए भ्रमण कर-कर के स्वाद वश जलता है। क्षण मे लोभ वश पराये धन को अपना बनाने दोडता है। क्षण मे हाथी बनकर विषय-विपिन मे भटकता है। क्षण मे कामी बनकर प्रेम से विषयो मे रमण करता है। क्षण मे मृग बनकर नाद से मोहित हो जाता है। क्षण मे माया मे अनुरक्त होता है और क्षण भर मे हमको बहकाता है। क्षण मे भ्रमर बनकर विषय-कमल की अनुराग-गध मे फँस जाता है, क्षण भर मे चारो दिशाओ मे चला जाता है। ऐसा है कोई जो मन को[1] बाह्य-विषयो से हटा, हृदय मे लाकर हरि मे लगावे ? प्रभो ! आपके बिना इस मन को कौन स्थिर रख सकता है ? इस विषय मे तो मुनिवर भी यही साक्षी देते है कि प्रभु-कृपा से ही मन निश्चल होता है। यह तो मृतक होकर भी क्षण भर मे जीवित हो जाता है। यह मन अपार चरित करता है। हम तो मन का[2] सब चरित्र जानते भी नही, अत कृपा करके इसे ठीक करो।

३२५-बेखर्च व्यसनी। ब्रह्म ताल

करणी पोच[1], सोच सुख करई, लोह की नाव कैसे भौजल तिरई ॥ टेक ॥
दक्षिण जात, पच्छिम कैसे आवै, नैन बिन भूल बाट कित पावै ॥ १ ॥
विष वन बेलि, अमृत फल चाहै, खाइ हलाहल, अमर उमाहै ॥ २ ॥
अग्नि गृह पैसि कर सुख क्यो सोवै, जलन लागी घणी, शीतल क्यों होवै ॥ ३ ॥

पाप पाखंड कीये, पुन्य क्यों पाइये, कूप खन पडिबा, गगन क्यों जाइये ॥ ४ ॥
कहै दादू मोहि अचरज भारी, हृदय कपट क्यों मिलै मुरारी ॥ ५ ॥

सरलता पूर्वक साधन-सबल बिना मनोरथ करने वा कथन रूप व्यसन वाले को प्रभु प्राप्त नही होते, यह कह रहे है—काम तो बुरे' और विचार सुख पाने का करे, ऐसा मानव केवल लोह की नाव से समुद्र तैरने वाले के समान है। वह कैसे ससार-सिन्धु के विषय-जल से पार हो सकेगा ? दक्षिण को जाने वाला पश्चिम मे कैसे आयेगा ? मार्ग भूल कर नेत्रो बिना उसे कहा पा सकेगा ? विषय, बेलियो के वन मे अमृत-फल चाहे तो कहा मिलेगा ? खाय तो हलाहल विष और अमर होने की प्रसन्नता दिखावे, सो व्यर्थ ही है। अग्नि-गृह मे प्रवेश करके सुख से कैसे सोयेगा ? वहा तो अति जलन ही उत्पन्न होगी, शीतलता कैसे प्राप्त होगी ? पाप और पाखड करने से पुन्य कैसे मिलेगा ? कूप खोद कर उसमे गिरने से आकाश मे कैसे जायगा ? वैसे ही हमे बडा आश्चर्य हो रहा है कि हृदय मे कपट रखने वाले को परमात्मा कैसे मिलेगे ?

३२६-परिचय प्राप्ति। खेमटा ताल

मेरा मन के मन सौं मन लागा, शब्द के शब्द सौं नाद बागा[1] ॥ टेक ॥
श्रवण के श्रवण सुन सुख पाया, नैन के नैन सौं निरख राया ॥ १ ॥
प्राण के प्राण सौं खेल प्राणी, मुख के मुख सौं बोल वाणी ॥ २ ॥
जीव के जीव सौं रंग राता, चित्त के चित्त सौं प्रेम माता ॥ ३ ॥
शीश के शीश सौं शीश मेरा, देखिरे दादू वा भाग तेरा ॥ ४ ॥

प्रत्यक्ष ब्रह्म प्राप्ति का परिचय दे रहे है—मन के भी मन ब्रह्म से ही मेरा मन लगा है। शब्द के भी शब्द ब्रह्म से ही मेरा वाणी रूप नाद लगा' है अर्थात् ब्रह्म सम्बन्धी ही वाणी निकलती है। श्रवण के भी श्रवण ब्रह्म को ही सुन कर सुख प्राप्त किया है। नेत्रो के भी नेत्र ब्रह्म रूप से विश्व को देखकर मै सबको रजन करने वाला हुआ हूँ। हे प्राणी ! प्राणो के भी प्राण ब्रह्म से ही मिल कर आनन्द ले। मुख के भी मुख ब्रह्म सबधी वाणी बोल। मै तो जीव के भी जीव ब्रह्म के सत्य चेतनादि रूप रग मे अनुरक्त हूँ। चित्त के भी चित्त ब्रह्म से प्रेम करके मस्त हूँ। शिर के भी शिर ब्रह्म को शिर नमाने से ही मेरा शिर शोभा युक्त हुआ है। देखो ! मेरा कितना उत्तम भाग्य है, जो ब्रह्म के साथ साक्षात् परिचय प्राप्त हुआ है।

३२७-मन को उपदेश। त्रिताल मलार में

मेरु शिखर चढ बोल मन मोरा, राम जल वर्षै शब्द सुन तोरा ॥ टेक ॥
आरत आतुर पीव पुकारै, सोवत जागत पंथ निहारै ॥ १ ॥
निश वासर कह अमृत वाणी, राम नाम ल्यौ लाइ ले प्राणी ॥ २ ॥
टेर मन भाई जब लग जीवै, प्रीति कर गाढी प्रेम रस पीवै ॥ ३ ॥
दादू अवसर जे जन जागै, राम घटा-दल वरषण लागै ॥ ४ ॥

मन को उपदेश कर रहे है—अरे मन-मयूर ! प्रेमाभक्ति पर्वत-शिखर के ऊपर चढ़कर बोल, अर्थात् देहाध्यास से रहित होकर प्रार्थना कर, तब तेरा शब्द सुनकर राम दर्शन रूप जल की वृष्टि करेगे। यदि प्राणी दु ख और शीघ्रता से युक्त प्रभु को पुकारे तथा सोते-जागते प्रभु का मार्ग देखे, दिन-रात प्रभु को प्रसन्न करने के लिए अमृत-तुल्य प्रिय वाणी से प्रार्थना करे और राम-नाम मे वृत्ति लगाये रहे तो प्रभु अवश्य कृपा करते है। अत हे भैया मन ! जब तक हम जीवित है, तब तक दृढ प्रीति के साथ उनका प्रेम-रस पान कर सके, वैसे ही उनको पुकार। यदि भक्त मन-मयूर ठीक अवसर पर मोह निद्रा से जाग के उन प्रभु से प्रार्थना करे तो राम रूप घटा अवश्य दर्शन-रूप जल वर्षाने लगती है।

३२८-वैराग्य उपदेश। त्रिताल

नारी नेह न कीजिये, जे तुझ राम पियारा।
माया मोह न बधिये, तजिये संसारा ॥ टेक॥
विषया रग राचै नहीं, नहि करै पसारा।
देह गेह परिवार मे, सब तैं रहै नियारा ॥ १ ॥
आपा पर उरझै नहीं, नाही मैं मेरा।
मनसा वाचा कर्मना, सांई सब तेरा ॥ २ ॥
मन इन्द्रिय स्थिर करै, कतहूं नहिं डोलै।
जग विकार सब परिहरै, मिथ्या नहिं बोलै ॥ ३ ॥
रहै निरतर राम सौ, अतर गति राता।
गावै गुण गोविन्द का, दादू रस माता ॥ ४ ॥

वैराग्य का उपदेश कर रहे है—यदि तुझे राम प्रिय है तो नारी से प्रेम मत कर, मायिक-मोह-पाश मे मत बँध, सासारिक भावना त्याग दे। विषय-रग मे अनुरक्त मत हो, वृत्ति को विषयो मे मत फैलने दे। शरीर, घर, परिवार आदि सबकी आसक्ति से अलग रह। अपने पराये के राग-द्वेष तथा मै-मेरे आदि अहकार मे मत पड। मन, वचन, कर्म से ऐसा व्यवहार कर कि—हे प्रभो ! सब कुछ आपका ही है। इस प्रकार मन इन्द्रियो को सम्यक् स्थिर कर, व्यर्थ कही मत फिर। सपूर्ण सासारिक विकारो को त्याग दे, मिथ्या वचन मत बोल। भीतर वृत्ति द्वारा निरतर राम मे अनुरक्त रहते हुये भक्ति रस मे मस्त होकर गोविन्द-गुण-गान कर।

३२९-आज्ञाकारी। झपताल

तू राखै त्यों हीं रहै, तेई जन तेरा।
तुम बिन और न जानहीं, सो सेवक नेरा ॥ टेक ॥

अम्बर आपै ही धरया, अजहूं उपकारी।
धरती धारी आप तैं, सबही सुखकारी॥ १ ॥
पवन पास सब के चलै, जैसे तुम कीन्हा।
पानी परकट देखि हूं, सब सौं रहै भीना॥ २ ॥
चंद चिराकी चहुँ दिशा, सब शीतल जानैं।
सूरज भी सेवा करै, जैसे भल मानैं॥ ३ ॥
ये निज सेवक तेरडे, सब आज्ञाकारी।
मोकों ऐसे कीजिये, दादू बलिहारी॥ ४ ॥

निरतर प्रभु आज्ञा मे रहने के लिए प्रार्थना कर रहे है—जैसे आप रक्खे वैसे ही रहे, वे ही आपके भक्त है। आपके बिना अन्य को सत्य नही जानता, वही आप का सच्चा सेवक है। आकाश आपने ही रच कर रखा है जो अब तक सबका उपकार कर रहा है। सबको सुखकारक पृथ्वी आप से ही उत्पन्न हुई है और आपने ही इसे धारण कर रक्खी है। जैसे आपने विधान बनाया है, उसी विधान से वायु सबके पास चल रहा है। प्रकट रूप से देखता हू कि जल सब मे समाया हुआ रहता है, आपका रचित चन्द्रमा-दीपक चारो दिशाओ मे प्रकाश कर रहा है। उसे सभी शीतल जान कर प्रसन्न होते है और सूर्य भी जैसे आप अच्छा मानते है वैसे ही सेवा करता है। ये उक्त सभी आपकी आज्ञानुसार कार्य करने वाले सेवक है। मुझे भी इसी प्रकार निरतर आप की सेवा-भक्ति करने वाला सेवक बना लीजिये, मै आपकी बलिहारी जाता हू।

३३०-निन्दक। झपताल

निन्दक बाबा बीर हमारा, बिनहीं कौडे बहै बिचारा॥ टेक॥
कर्म कोटि के कश्मल काटै, काज सँवारै बिन ही साटै॥ १ ॥
आपण डूबै और को तारै, ऐसा प्रीतम पार उतारै॥ २ ॥
जुग जुग जीवो निन्दक मोरा, रामदेव तुम करो निहोरा॥ ३ ॥
निन्दक बपुरा पर उपकारी, दादू निन्दा करै हमारी॥ ४ ॥

अपनी सार-ग्राहक दृष्टि से निन्दक को हितकारक बता रहे है—हे बाबा! निन्दक तो बेचारा हमारा भाई है, तभी तो बिना ही पैसे हमारा काम करता है। कोटि कर्म-जन्य पापो को निन्दा द्वारा नष्ट करता है, उसके बदले मे हम से कुछ भी न लेकर हमारा कार्य सिद्ध करता है। आप पाप-समुद्र मे डूबता है, अन्यो को तारता है। यह तो अघ-समुद्र से पार उतारने के कारण ऐसा प्रियतम भासता है कि इसकी क्या बड़ाई करे?

हे निरजन देव राम! आप ऐसा अनुग्रह करो कि मेरी निन्दा करने वाला निन्दक युग-युग प्रति जीवित रहे, कारण, वह बेचारा बडा ही परोपकारी है, जो हमारी निन्दा करके हमारे पाप धोता रहता है।

साँभर मे निन्दक को यह पद सुनाया था, फिर उसने मिठाई भेट धर के क्षमा याचना की थी।

३३१-विरह। विनती शूलताल

देहुजी देहुजी, प्रेम पियाला देहुजी, देकर बहुरि न लेहुजी॥ टेक॥
ज्यों-ज्यो नूर न देखू तेरा, त्यो-त्यो जियरा तलफै मेरा॥ १॥
अमी महारस नाम न आवै, त्यो-त्यों प्राण बहुत दुख पावै॥ २॥
प्रेम भक्ति-रस पावै नाहीं, त्यो त्यो सालै मन हीं मांहीं॥ ३॥
सेज सुहाग सदा सुख दीजे, दादू दुखिया, विलम्ब न कीजे॥ ४॥

विरह-पूर्वक सदा ब्रह्म-सुख प्राप्ति के लिए विनय कर रहे है-हे प्रभो! मै मन, वचन कर्म से प्रार्थना करता हूँ- मुझे आप अपना प्रेम प्याला दे और देकर के पुन कभी भी न ले। जैसे-जैसे आपके स्वरूप-दर्शन मे देर होती है, वैसे-वैसे ही मेरा हृदय व्याकुलता से तडपने लगता है। जैसे-जैसे नामामृत महारस-पान करने मे देर होती है वैसे-वैसे ही मेरे प्राणो को अति दु ख होता है। जैसे-जैसे प्रेमा-भक्ति-रस प्राप्ति मे विलम्ब होता है वैसे-वैसे ही मन मे व्यथा होती है। प्रभो! मै आपके वियोग-दु ख से दु खी हू, मेरी वृत्ति-शय्या पर पधार कर मुझे सदा के लिए ब्रह्मानन्द सुहाग सुख दीजिये, देर न करिये।

३३२-परिचय विनती। त्रिताल मल्हार मे

वर्षहु राम अमृत धारा, झिलमिल झिलमिल सींचनहारा॥ टेक॥
प्राण बेलि निज नीर न पावै, जलहर[1] बिना कमल कुम्हलावै॥ १॥
सूखै बेलि सकल वनराय, रामदेव जल वर्षहु आय॥ २॥
आतम बेली मरै पियास, नीर न पावै दादू दास॥ ३॥

इति राग गुड (गौड) समाप्त॥ २०॥ पद २०॥

साक्षात्कारार्थ विनय कर रहे है—झिलमिल झिलमिल स्वरूप प्रकाश के द्वारा तृप्ति रूप सेचन करने वाले हे राम! दर्शनामृत धारा बरसाइये। जीवात्मा रूप बेलि निज स्वरूप साक्षात्कारार्थ-सरोवर[1] के जल बिना कमल के समान कुम्हला जायेगी। हे निरजन देव राम! यदि जल नही वर्षे तो सम्पूर्ण बेलि और वन के श्रेष्ठ वृक्ष भी सूख जाते है, वैसे ही मुझ दास की जीवात्मा रूप बेलि आपका दर्शन रूप नीर न प्राप्त होने से दर्शनाशा प्यास से पीड़ित है। अत आप शीघ्र पधार कर, दर्शनामृत धारा वरसाइये।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग गुड (गौड़) समाप्त॥ २०॥

अथ राग विलावल २१

(गायन समय प्रात ६ से ९)

३३३-परिचय विनती । त्रिताल

दया तुम्हारी दर्शन पइये।
जानत हो तुम अंतरजामी, जानराय तुम सौं कहा कहिये ॥ टेक॥
तुम सौं कहा चतुराई कीजे, कौन कर्म कर तुम्ह पाये।
को नहिं मिलै प्राण बल अपने, दया तुम्हारी तुम आये ॥ १ ॥
कहा हमारो आन तुम आगे, कौन कला कर वश कीये।
जीते कौन बुद्धि बल पौरुष, रुचि अपनी तैं शरण लीये ॥ २ ॥
तुम हीं आदि अत पुनि तुम हीं, तुम कर्ता त्रय लोक मझार।
कुछ नांहीं तैं कहा होत है, दादू बलि पावै दीदार ॥ ३ ॥

साक्षात्कारार्थ विनय कर रहे है—हे प्रभो ! आपकी दया हो तो ही हमे आपका दर्शन मिलेगा। आप हमारे हृदय की स्थिति को जानते ही हो। कारण, जानने वालो मे श्रेष्ठ और अन्तर्यामी हो, फिर आपसे मैं क्या कहू और क्या चतुराई करू ? कृपया आप ही बतावे कि कौन-सा कर्म करके आपको प्राप्त कर सकूगा ? कोई भी प्राणी अपनी शक्ति से तो आपसे नही मिल सकता, आपकी दया से ही आप पधारते है। आपके आगे हमारा तो यही कथन है कि—अन्य भक्तो ने किस उपाय द्वारा आपको अपने वश किया था ? किन्तु विचार द्वारा तो यही ज्ञात होता है कि बुद्धि-बल और अन्य शरीर-शक्ति आदि परिश्रम से तो आपको कौन जीत सकता है ? आपने अपनी इच्छा से ही उनको अपनी शरण लिया था। आप ही सृष्टि के आदि-अन्त है और त्रिलोक मे जो कुछ भी है, उसके कर्ता आप ही है। जिसकी शक्ति आपके आगे कुछ भी नही, उस जीव से क्या हो सकता है ? जो वह अपने बल द्वारा आपके दर्शन पा सके ? अत आप ही कृपा करके दर्शन दे।

३३४-(फारसी) विनती । उदीक्षण ताल

मालिक महरबान[१] करीम[२]।
गुनहगार[३] हररोज[४] हरदम[५], पनह[६] राख रहीम[७] ॥ टेक॥
अव्वल[८] आखिर बंदा गुनहीं, अमल[९] बद[१०] विसियार[११]।
गरक[१२] दुनिया सत्तार[१३] साहिब, दरदवंद पुकार ॥ १ ॥
फरामोश[१४] नेकी बदी, करदा[१५] बुराई बद[२३] फैल।
बखशिन्द:[१६] तूं अजीब[१७] आखिर, हुक्म हाजिर सैल[१८] ॥ २ ॥
नाम नेक रहीम राजिक[१९], पाक परवरदिगार[२०]।
गुनह फिल[२१] कर देहु दादू, तलब[२२] दर दीदार[२३] ॥ ३ ॥

३३४-३३५ मे प्रभु से प्रार्थना कर रहे है—ससार-रचनादि कर्म[२] करने वाले हे दयालु[१] स्वामिन् ! मै प्रतिदिन[४], और प्रति श्वास[५] अपराधी[३] हू। हे अति कृपालो[७] ! मेरे दोष न देखकर मुझे शरण[६] मे रखिये। मैंने जीवन के प्रथम[८] भाग से अत तक बहुत[११] बुरे[१०] कर्म[९] किये है। इसलिए मै अपराधी दास हू, ससार-सिन्धु मे डूब[१२] रहा हूँ। हे दोषो[१३] को ढाँकने वाले स्वामिन् ! मुझ दु खी की पुकार सुनिये। मैंने भलाई को भूल[१४] कर बुराई की है[१५]। मै बुराई मे अनुरक्त बुरे[१३] काम करने वाला हू, किन्तु आप तो अन्त तक अद्भुत[१७] क्षमा[१६] करने वाले है। आपकी आज्ञा मे उपस्थित रहने से ही मुझे आनद[१८] प्राप्त होता है। अत हे आजीविका[१९] देने वाले पालक[२०] ! पवित्र ! अति कृपालो ! मेरे दोषो को क्षमा[२१] करके मुझे परोपकार-परायणता, आपका नाम-चिन्तन और हृदय मे आपके दर्शनो[२३] की प्रबल इच्छा[२२] दीजिये।

३३५-उदीक्षण ताल

कौण आदमी कमींण[१] विचारा, किसको पूजै गरीब पियारा॥ टेक॥
मै जन एक अनेक पसारा, भौजल भरिया अधिक अपारा॥ १॥
एक होइ तो कह समझाऊं, अनेक अरुझे क्यो सुरझाऊ॥ २॥
मै हौं निबल सबल ये सारे, क्यो कर पूजू बहुत पसारे॥ ३॥
पीव पुकारू समझत नाहीं, दादू देखु दशों दिशि जांहीं॥ ४॥

हे गरीबो के प्यारे प्रभु ! तुच्छ[१] विचार वाले मानव आपको छोडकर कोई किसको और कोई किसको इष्ट मान कर पूजते है। इस प्रकार अनेक देवी-देवताओ की उपासना का फैलाव हो रहा है। आपका जन तो मै एक हू और ससार-समुद्र के विषय-जल से परिपूर्ण हृदय वाले प्राणी अति अपार है। यदि एक हो तो अपने विचार कह कर समझाऊ भी, किन्तु ये तो अनेक है और माया-जाल मे उलझे हुये है, इन्हे कैसे सुलझाऊ ? दूसरे मै तो धन, जन तनादि बल से रहित हू और ये सब धन, जन, तनादि शक्तियो से युक्त है, तथा मुझे अपनी उपासना रूप फैलाव मे लगाना चाहते है, किन्तु मै आपको छोड, इन बहुत फैलाव रूप देवी-देवादि को कैसे पूज सकता हूँ ? हे प्रियतम ! मै इनको पुकार-पुकार कर कहता हू कि एक ईश्वर की ही उपासना करो, किन्तु ये लोग समझते ही नही और मेरे देखते-देखते देवादि उपासना रूप दशो दिशाओ मे ही जाते है। कृपया आप ही इनको मार्ग पर लावे तो ये आ सकते है, अन्यथा कठिन है। इसी प्रकार इसका अर्थ मन, बुद्धि इन्द्रियादि पर भी घट सकता है।

३३६-उपदेश चेतावनी। भग ताल

जागहु जियरा काहे सोवै, सेव करीमा[१] तो सुख होवै॥ टेक॥
जातैं जीवन सो तैं विसारा, पच्छिम जाना पथ न सँवारा।
मै मेरी कर बहुत भुलाना, अजहुं न चेतै दूर पयाना॥ १॥
सांई केरी सेवा नांहीं, फिर फिर डूबै दरिया मांहीं।
ओर न आवा, पार न पावा, झूठा जीवन बहुत भुलावा॥ २॥

मूल न राख्या लाह[२] न लीया, कौडी बदले हीरा दीया ।
फिर पछताना संबल नाहीं, हार चल्या क्यों पावै सांई ।। ३ ।।
अब सुख कारण फिर दुख पावै, अजहु न चेतै क्यों डहकावै[३] ।
दादू कहै सीख सुन मेरी, कहु करीम[४] संभाल सवेरी ।। ४ ।।

३३६-३३७ मे उपदेश द्वारा सावधान कर रहे है—अरे जीव ! मोह निद्रा मे क्यो सो रहा है ? शीघ्र जाग और कृपालु[१] ईश्वर की भक्ति कर, तब ही तुझे सुख मिलेगा। जिससे तेरा जीवन सुखमय हो सकता था, उस कृपालु करीम के चिन्तन को तू भूल गया और पश्चिम में मदीना जाने के रास्ते को नेकी से नही सुधारा अथवा मेरु-दड होकर (पश्च मे=) पीछा प्रभु के पास जाने योग सुषुम्ना-मार्ग को ठीक नही किया। मै और मेरी कहते-कहते अत्यधिक भूल गया। तुझे सासारिक भावनाओ से अति दूर जाना है किन्तु तू अब भी सावधान नही हो रहा है। प्रभु की भक्ति नही करता, पुन २ ससार-सागर मे ही डूब रहा है। इस सासारिक विषयाशा का अन्त कभी न आयेगा। भोगो को भोग कर किसी ने भी इसका पार नही पाया। तू इस मिथ्या जीवन मे बहुत ही भूल गया है। तू न तो मनुष्य जन्म का प्रभु-प्राप्ति रूप लाभ[२] ही ले सका और न पुन मनुष्य जन्म-प्राप्ति के हेतु शुभ कर्म रूप मूल धन की ही रक्षा कर सका। तूने विषय रूप कौडी के बदले मे ही मनुष्य जन्म रूप हीरा दे दिया किन्तु फिर आगे तो तुझे पश्चात्ताप ही करना होगा, कारण, तेरे पास साधन रूप पाथेय तो है नही। तू तो अपने जीवन को हार चला है, प्रभु को तो कैसे प्राप्त कर सकेगा ? अरे ! तू इस समय के तुच्छ सुख के लिए अनर्थ कर रहा है किन्तु इसका फल फिर आगे अति दु ख ही पायेगा। अब भी सावधान नही हो रहा है ? क्यो धोखे[३] मे आ रहा है ? अरे मेरी हितकारणी शिक्षा सुनकर तो शीघ्र कृपालु[४] भगवान् का नाम मुख से उच्चारण कर और मन से स्मरण कर।

३३७-भंगताल

बार बार तन नहीं बावरे, काहे को बाद[१] गमावै रे ।
बिनसत बार कछू नहिं लागै, बहुरि कहा को पावै रे ।। टेक ।।
तेरे भाग बडे भाव धर कीन्हा, क्यो कर चित्र बनावै रे ।
सो तूं लेइ विषय में डारै, कंचन छार मिलावै रे ।। १ ।।
तूं मत जानै बहुरि पाइये, अब कै जनि डहकावै रे ।
तीन लोक की पूंजी तेरे, बनिज बेगि सो आवै रे ।। २ ।।
जब लग घट में श्वास बास है, तब लग काहे न धावै रे ।
दादू तन धर नाम न लीन्हा, सो प्राणी पछतावै रे ।। ३ ।।

अरे पागल ! यह मानव जन्म बारबार नहीं मिलता, इसे विषयो मे व्यर्थ[१] ही क्यो खो रहा है ? इस शरीर को नष्ट होने मे कुछ भी देर नही लगती, फिर इसे कोई सहज ही कहा प्राप्त कर सकता है ? तेरे बडे भाग्य और श्रेष्ठ भाव को हृदय मे धारण करके ही प्रभु ने यह शरीर उत्पन्न

किया है, नही तो ऐसा विचित्र शरीर वे प्रभु कैसे बनाते ? उसी शरीर को तू धारण करके विषयो मे डाल रहा है, यह तेरा कार्य ऐसा हे, जैसे—भस्म मे सुवर्ण मिलाना। तू बुद्धि मे समझता होगा—यह फिर मिल जायेगा, सो यह फिर मिलने वाला नही है। अत अब की बार विषयो के धोखे मे मत आ। अरे तू शीघ्र भजन रूप व्यापार कर, उससे प्रभु प्राप्ति द्वारा तीनो लोको का जो भी धन है वह तेरे पास आ जायगा। जब तक तेरे शरीर मे श्वासो का निवास है, तब तक तू भजन ध्यान क्यो नही करता ? जो मनुष्य शरीर धारण करके भी प्रभु का नाम चिन्तन नहीं करता, वह प्राणी अन्त मे पश्चात्ताप ही करता है।

३३८-ललित ताल

राम विसार्‍यो रे जगनाथ।
हीरा हार्‍यो देखत ही रे, कौडी कीन्ही हाथ ॥टेक॥
काच हुता कचन कर जानै, भूल्यो रे भ्रम पास।
साचे सौ पल परिचय नाहीं, कर काचे की आस ॥ १ ॥
विष ताको अमृत कर जानै, सो सग न आवै साथ।
सेमल के फूलन पर फूल्यो, चूक्यो अब की घात[1] ॥ २ ॥
हरि भज रे मन सहज पिछानै, ये सुन साची बात।
दादू रे अब तैं कर लीजै, आयु घटै दिन जात ॥ ३ ॥

अरे ! तू जगन्नाथ राम को भूल गया और विषय-चिन्तन रूप कौड़ी अन्त करण रूप हाथ मे लेकर देखते-देखते मानव जन्म-हीरा खो दिया। भ्रमपाश मे फँसकर तू सत्य को भूल गया तथा विषय-काच को ही कचन जानने लगा है। सत्य प्रभु का परिचय प्राप्त करने के लिए तो एक क्षण भी नही देता, निरतर असत्य विषयो की ही आशा करता है। जो विषय-विष है, उसे अमृत समझकर उसके लिए अनर्थ करता है किन्तु वह न तेरे सग आता है और न साथ जाता है। जैसे सेमल वृक्ष के पुष्पो को गिद्धादिक मासा समझ, धोखे मे आकर प्रसन्न होते है, किन्तु अन्त मे पश्चात्ताप ही करते है। वैसे ही तू विषयो को देखकर फूल रहा है किन्तु याद रख अब के यह अच्छा मौका[1] चूक गया है। अरे ! फिर भी मेरी यह सत्य बात सुन कर हरि भजन करे, तो तेरा मन अनायास ही उस प्रभु को पहचान जायगा। यह भजन रूप कार्य अब से ही आरभ कर दे क्योकि प्रति दिन बीत जाने के साथ-साथ ही तेरी आयु भी कम होती जा रही है।

३३९-मन। ललित ताल

मन चचल मेरो कह्यो न मानै, दशो दिशा दौरावै रे।
आवत जात बार नहि लागै, बहुत भाति बौरावै रे ॥टेक॥
बेर बेर बरजत या मन को, किचित सीख न मानै रे।
ऐसे निकस जाइ या तन तै, जैसे जीव न जानै रे ॥ १ ॥

कोटिक जतन करत या मन को, निश्चल निमष न होई रे ।
चंचल चपल चहूं दिशि भरमै, कहा करै जन कोई रे ॥ २ ॥
सदा सोच रहत घट भीतर, मन थिर कैसे कीजै रे ।
सहजैं सहज साधु की संगति, दादू हरि भज लीजै रे ॥ ३ ॥

मन का स्वभाव और उसके जय करने का साधारण साधन बता रहे है—चचल मन हमारा कहा नही मानता और अपनी इच्छा पूर्ति के लिए हमे दशो दिशाओ मे दौडाता है। उसको आते जाते कुछ भी देर नही लगती। यह हमे बहुत प्रकार से बहकाता है। इसे विषयो मे जाने से बारबार रोकते है किन्तु यह किचित् मात्र भी शिक्षा नही मानता। इस शरीर से ऐसे ढग से निकलता है जिस ढग से जाने पर जीव इसके जाने को जान भी न सके। इस मन को स्थिर करने के लिए कोटि यत्न करते है, किन्तु यह एक निमेष मात्र भी निश्चल नही रहता। यह अति चचल और चालाक है, दशो दिशाओ मे भ्रमण करता है। इसको रोकने के लिए भक्त जन यत्न करे तो भी क्या करे ? अन्त करण मे सदा यही विचार रहता है कि मन को स्थिर कैसे करे ? अन्त मे सद्गुरु और सत वचनो द्वारा यही निश्चय होता है कि सतो की सगति और भजन करते रहने से शनै शनै इसे स्थिर कर लिया जायगा।

३४०–माया उत्सव ताल

इन कामिनी घर घाले रे।
प्रीति लगाइ प्राण सब सोषै, बिन पावक जिय जालै रे ॥ टेक ॥
अंग लगाइ सार सब लेवै, इन तैं कोई न बाचै रे ।
यहु संसार जीत सब लीया, मिलन न देई सांचै रे ॥ १ ॥
हेत लगाइ सबै धन लेवै, बाकी कछू न राखै रे ।
माखन मांहि सोध सब लेवै, छाछ छिया कर नाखै रे ॥ २ ॥
जे जन जान जुगति सौं त्यागैं, तिनको निज पद परसै रे ।
काल न खाइ, मरैं नहि कबहूं, दादू तिनको दरशै रे ॥ ३ ॥

जो साधक कामिनी रूप माया का त्याग करते है, उन्ही को ब्रह्म प्राप्त होता है, यह कह रहे है—इस कामिनी रूप माया ने अनेक घर नष्ट किये है। प्रीति करके सब प्रकार प्राणो का शोषण करती है। विना ही अग्नि के चिन्ता द्वारा हृदय जलाती है। स्थूल नर शरीर से लगकर सूक्ष्म शरीर का सारा सार ज्ञान-बिन्दु अपहरण करती है। इससे कोई भी नही बचता। इसने यह सब ससार जीत लिया है। यह प्राणी को सत्य ब्रह्म से नही मिलने देती। स्नेह करके सब साधन-धन ले लेती है, शेष कुछ भी नही छोडती। साधक शरीर के भीतर जो अर्जित पुण्य वीर्य रूप मक्खन है उसे खोज कर सारा अपहरण करती है, फिर पतित शरीर को छाछवत् निस्सार जान कर त्याग देती है। जो संतजन इसको इस प्रकार जान के, मन-निरुद्ध करने की युक्ति अभ्यास-वैराग्य द्वारा इसे त्यागते है उनको

काल नही खाता, वे कभी भी नही मरते। उन्हे स्वस्वरूप स्थिति प्रत्यक्ष दिखाई देती है और उन्हीं को ब्रह्म स्वरूप निज पद की प्राप्ति होती है।

३४१-विश्वास। उत्सव ताल

जनि[1] सत छाडै बावरे, पूरक है पूरा।
सिरजे की सब चिन्त है, देबे को सूरा ॥ टेक॥
गर्भवास जिन राखिया, पावक तै न्यारा।
युक्ति यत्न कर सींचिया, दे प्राण अधारा ॥ १ ॥
कुंज[2] कहां धर संचरै, तहा को रखवारा।
हिमहर[3] तै जिन राखिया, सो खसम हमारा ॥ २ ॥
जल थल जीव जिते रहैं, सो सब को पूरे ।
सपट[4] शिला में देत है, काहे नर झूरै[5] ॥ ३ ॥
जिन यहु भार उठाइया, निरवाहै सोई ।
दादू छिन न बिसारिये, तातै जीवन होई ॥ ४ ॥

३४१-३४२ मे भगवद् विश्वास पूर्वक भजन करने की प्रेरणा कर रहे है—हे पागल! सत्य स्वरूप प्रभु का भजन मत[1] छोड, वे पूर्ण प्रभु सबकी इच्छा पूर्ण करने वाले है। उनने तुझे उत्पन्न किया है, इससे उनको तेरे भरण-पोषण की सारी चिन्ता है और वे तुझे देने मे सदा वीर रहते है। गर्भवास मे जिन्होंने जठराग्नि के पास रहने पर भी उसकी तप्त से तुझे अलग रखकर युक्ति पूर्वक शीतलता सेचन करते हुये माता के खानपानादि से प्राणो का आधार भोजन दिया। देख, क्रौंच[2] पक्षी कहा अडा धरता है और कहा सचार करता है, वहा हिमालय[3] मे प्रभु को छोड कर उसका रक्षक कौन है ? हिमालय के बर्फ मे गलने से बचाकर क्रौंच के अडो की रक्षा करते आ रहे है, वे ही हमारे स्वामी है। जल, स्थल और नभ मे जितने भी जीव है, उन सबका वे भरण-पोषण करते है। अरे! तू नर होकर भी क्यो दु खी[5] हो रहा है ? वे प्रभु तो शिला के बीच[4], जहा पहुचाने का कोई मार्ग ही नही, वहा भी शक्कर खाने वाले कीट को शक्कर पहुचा देते है। जिन प्रभु ने यह सृष्टि रचना का भार अपने ऊपर लिया है, वे ही निर्वाह करेंगे। उन प्रभु को एक क्षण भी मत भूल, इसी से तेरा जीवन सार्थक होगा।

३४२-गज ताल

सोई राम सँभाल जियरा, प्राण पिड जिन दीन्हा रे ।
अम्बर आप उपावनहारा, माहि चित्र जिन कीन्हा रे ॥ टेक॥
चंद सूर जिन किये चिराका[1], चरणो बिना चलावै रे ।
इक शीतल इक ताता डोलै, अनत कला दिखलावै रे ॥ १ ॥

धरती धरनि वरण बहु वाणी, रचिले सप्त समंदा रे ।
जल थल जीव सँभालनहारा, पूर रह्या सब संगा रे ॥ २ ॥
प्रकट पवन पानी जिन कीन्हा, वरषावै बहु धारा रे ।
अठारह भार वृक्ष बहुविधि के, सबका सींचनहारा रे ॥ ३ ॥
पंच तत्त्व जिन किये पसारा, सब कर देखन लागा रे ।
निश्चल राम जपो मेरे जियरा, दादू तातैं जागा रे ॥ ४ ॥

हे मन ! जिनने शरीर रच कर उसमे प्राण रख दिया है, उन्ही राम का स्मरण कर। जो स्वय ही आकाश का उत्पन्न करने वाले है और जिन्होंने इस आकाश मे कितनी ही विचित्रताए उत्पन्न की है। चन्द्रमा और सूर्य दो दीपक' बनाये है। उन दोनो गोलाकार ज्योतियो के पैर नही है तो भी रात-दिन बिना ही पैरो उनको चलाते है। एक शीतल रह कर शीतल किरण और दूसरा उष्ण रहकर उष्ण किरण वरसाता हुआ घूम रहा है और भी तारे बिजली आदि अनन्त कला आकाश मे दिखाते है। बहुत रगो को धारण करने वाली पृथ्वी जिन्होंने बनाई है, सप्त समुद्र रचे है, जलचर तथा स्थलचर आदि सभी जीवो की सँभाल करने वाले है और सबमे परिपूर्ण होने से सब के साथ है, रूप रहित वायु को उत्पन्न करके प्रकट कर रक्खा है, जल को उत्पन्न करके बहुत धाराओ के रूप मे बरसाते है, बहुत प्रकार के अठारह भार वृक्षो को रचकर उन सबको सीचने वाले है। इस प्रकार पच तत्त्वो को रच के इनके द्वारा सपूर्ण ससार को फैलाकर साक्षीभाव से सबको देख रहे है। हे मेरे मन ! उन्ही निश्चल राम का नाम जप, कारण, मोह-निद्रा से जो भी जगा है, वह नाम जप द्वारा ही जगा है।

३४३-परिचय। गज ताल

जब मैं रहते की रह जानी।
काल काया के निकट न आवै, पावत है सुख प्राणी ॥ टेक॥
शोक संताप नैन नहिं देखूं, राग दोष नहिं आवै ।
जागत है जासौं रुचि मेरी, स्वप्नैं सोई दिखावै ॥ १ ॥
भरम कर्म मोह नहिं ममता, वाद विवाद न जानूं ।
मोहन सौं मेरी बन आई, रसना सोई बखानूं ॥ २ ॥
निश वासर मोहन तन मेरे, चरण कवल मन मानैं ।
सोई निधि निरख देख सचु पाऊं, दादू और न जानैं ॥ ३ ॥

३४३-३४४ मे साक्षात्कार से होने वाला लाभ बता रहे है—जब से मैंने निश्चल परब्रह्म-प्राप्ति का हेतु रहस्यमय अभेद ज्ञान रूप मार्ग समझा है, तब से काम क्रोधादि रूप काल शरीर के पास भी नही आता और जीवात्मा सुख पा रहा है। शोक, जन्य सताप तो मै ज्ञान-नेत्रो से देखता ही नही। राग-द्वेषादि भी हृदय मे नही आते। जाग्रत अवस्था मे जिस सत्य स्वरूप मे मेरी प्रीति है,

स्वप्न मे भी मुझे परमात्मा वही स्वरूप दिखाते रहते है। भ्रम द्वारा नाना कर्म करना रूप कर्त्तव्य मेरा समाप्त हो गया है। मोह और ममता मुझमे नही रही। वाद विवाद करना तो मै अब जानता ही नहीं। विश्व-विमोहन भगवान् से मेरी प्रीति अब अच्छी प्रकार हो गई है। इसलिए वाणी से उसी का नाम और यश बोलता हू, मेरे शरीर के हृदय-प्रदेश मे रात्रि-दिन विश्व-विमोहन भगवान् विशेष रूप से विराजते है। उनके चरण-कमलो मे ही मेरा मन सतोष मानता है। मै उन परमात्मा रूप परम निधि को विचारपूर्वक देखकर परमानन्द पा रहा हू, अन्य किसी को भी उनके समान नही जानता।

३४४-राज मृगांक ताल

जब मै साचे की सुधि पाई।
तब तै अंग और नहि आवै, देखत हूं सुखदाई ॥टेक॥
ता दिन तै तन ताप न व्यापै, सुख दुख सग न जाऊ ।
पावन पीव परस पद लीन्हा, आनंद भर गुन गाऊ ॥ १ ॥
सब सौ संग नही पुनि मेरे, अरस परस कुछ नांहीं ।
एक अनन्त सोई सग मेरे, निरखत हूं निज माहीं ॥ २ ॥
तन मन माहिं शोध सो लीन्हा, निरखत हू निज सारा।
सोई सग सबै सुखदाई, दादू भाग्य हमारा ॥ ३ ॥

जब से मैंने सत्य ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त किया है तब से मेरे अन्त करण मे उनसे भिन्न विचार नही आते। निरतर ज्ञान-नेत्रो से उन सुखप्रद प्रभु को ही देखता हू। जिस दिन से उनको देखने लगा हू, उस दिन से शरीर को भेद-ज्ञान जन्य वियोग व्यथा नही होती। वस्तु सयोग-वियोग जन्य सुख दु ख के साथ मै नही जाता अर्थात् वे मुझे नहीं होते। पवित्र प्रियतम के पद-कमलो का स्पर्श कर लिया है, अत आनद मे निमग्न हो इच्छा भर कर उनके गुण-गान करता हू। शरीर दृष्टि से तो शिष्यादि सब सबधी दीख रहे है फिर भी आत्म स्वरूप मे कुछ भी सम्बन्ध नही बनता, मेरा आत्मा तो ब्रह्म से अरस-परस मिली हुई है, आत्मा-परमात्मा मे कुछ भी भेद नही है। जो अद्वैत, अनन्त ब्रह्म है, वही अभेद रूप से मेरे साथ है। उसको मै अपने भीतर ही ज्ञान-नेत्रो द्वारा देखता हू। मैंने वह आत्म स्वरूप ब्रह्म विचार द्वारा खोज कर तन-मन मे ही प्राप्त किया है और उस विश्व के सार स्वरूप निजात्मा ब्रह्म को ही सर्वत्र देखता हू। वह सुखप्रद ब्रह्म है तो सभी के साथ, किन्तु हमारा अच्छा भाग्य होने से हमे दीखता है, अन्य अज्ञानियो को अज्ञान के कारण नही दीखता।

३४५-साँच निदान। राज मृगाक ताल

हरि बिन निहचल कहीं न देखू, तीन लोक फिरि सोधा रे ।
जे दीसै सो विनश जायगा, ऐसा गुरु परमोधा रे ॥टेक॥
धरती गगन पवन अरु पानी, चंद सूर थिर नाहीं रे ।
रैनि दिवस रहत नहिं दीसै, एक रहै कलि मांहीं रे ॥ १ ॥

पीर पैगम्बर शेख मुशायख[1], शिव विरंचि सब देवा रे ।
कलि आया सो कोइ न रहसी, रहसी अलख अभेवा रे ॥ २ ॥
सवा लाख मेरु गिरि पर्वत, समंद न रहसी थीरा रे ।
नदी निवान[2] कछू नहिं दीसै, रहसी अकल शरीरा रे ॥ ३ ॥
अविनाशी वह एक रहेगा, जिन यहु सब कुछ कीन्हा रे ।
दादू जाता सब जग देखूं, एक रहत सो चीन्हा रे ॥ ४ ॥

ससार का कारण ब्रह्म ही सत्य है, यह कह रहे है—तीनो लोको मे फिर कर खोजा है किन्तु कही भी हरि बिना अन्य कोई निश्चल नही देखा। जो दीखता है वह सब नष्ट हो जायेगा, ऐसा गुरुदेव ने ज्ञानोपदेश द्वारा समझाया है। पृथ्वी, आकाश, वायु, जल, चन्द्र और सूर्य स्थिर नही रहेगे। रात्रि दिन भी स्थिर रहते हुये नही दिखाई देते, स्थिर तो इस ससार मे एक ब्रह्म ही रहता है। पीर, पैगम्बर, शेख, मुल्ला आदि धर्म-के-ज्ञाता[1], शिव, ब्रह्मादि सभी देवता जो उत्पन्न होकर ससार मे आये है, उनमे से कोई भी स्थिर नही रहेगा। अलख, अद्वैत ब्रह्म ही स्थिर रहेगा। मेरु, गिरि, पर्वतादि भेदो वाले सवा लक्ष अचल भी निश्चल नही रहेंगे। समुद्र भी स्थिर नही रहेगे। नदी, तालाबादि जलाशय[2] कुछ भी स्थिर नही दीखते। जिसका शरीर (स्वरूप) कला विभाग से रहित है, वही ब्रह्म स्थिर रहेगा। जिनने यह दिखाई देने वाला सब कुछ प्रपच रचा है, वे एक अविनाशी ही स्थिर रहेगे और तो सभी जगत् को जाते हुये देख रहा हूँ। मैंने उसी स्थिर रहने वाले अद्वैत ब्रह्म को निजात्मा स्वरूप से पहचान लिया है।

३४६-पतिव्रता। राजविद्याधर ताल

मूल सींच बधै ज्यों बेला, सो तत तरुवर रहै अकेला ॥ टेक ॥
देवी देखत फिरै ज्यों भूले, खाय हलाहल विष को फूले ।
सुख को चाहै पडै गल पासी, देखत हीरा हाथ तैं जासी ॥ १ ॥
केई पूजा रच ध्यान लगावै, देवल देखैं खबर न पावैं ।
तोरैं पाती जुगति न जानी, इहिं भ्रम भूल रहे अभिमानी ॥ २ ॥
तीर्थ व्रत न पूजैं आसा, वन-खंड जाहिं रहैं उदासा ।
यूं तप कर-कर देह जलावैं, भरमत डोलैं जन्म गवावैं ॥ ३ ॥
सतगुरु मिलै न संशय जाई, ये बन्धन सब देइ छुडाई ।
तब दादू परम गति पावै, सो निज मूरति माहिं लखावै ॥ ४ ॥

सत रूप पतिव्रता परब्रह्म पति को छोड अन्य भ्रम मे नहीं पडती, तभी परमगति रूप पति को प्राप्त करती है, यह कह रहे है—जैसे वृक्ष, बेलि आदि के मूल को सींचा जाय, तब वृक्ष, बेलि के पत्ते अपने आप ही बढते हैं और फिर गिर जाते है, मूल ही रहता है, वैसे ही सबके मूल तत्त्व परब्रह्म की उपासना करने से सबकी उपासना हो जाती है। देवी-देवादि पत्तो के समान विनाशी है, अद्वैत

ब्रह्म ही स्थिर रहते है। जैसे कोई हलाहल विष खाकर मृत्यु को भूला हुआ फूला फिरता हो वैसे ही देवी के उपासक देवी के दर्शन करके तथा मास-मदिरादि अभक्ष्य-भक्षण, अपेय-पान करके उनके परिणाम मे होने वाले दु ख को भूल कर फूले फिरते है। वे चाहते तो सुख को है किन्तु अन्त मे उनके गले मे यम-पाश ही पडता है। ऐसे लोगो का मानव-जन्म-हीरा देखते-देखते ही हाथ से चला जायगा। कितने ही अन्य देवताओ की पूजा करके ध्यान करते है, देव-मदिर मे जाकर देवता का दर्शन करते है किन्तु वे अपनी आत्मा स्वरूप प्रभु का कुछ भी ज्ञान प्राप्त नहीं करते। अभिमानी होने के कारण सतो के पास जाकर प्रभु-उपासना की युक्ति न जानने से अति मात्रा मे तुलसी, विल्व पत्रादि तोडते है और इन पत्रो के चढाने से ही प्रभु मिल जायेंगे इस भ्रम से आन्तर साधन भूल रहे है। ग्राम से विरक्त हो वन के भयकर भाग मे जाकर रहने से, तीर्थ-व्रत करने से, प्राणी की आशा पूर्ण नही होती। इस प्रकार तपस्या करके तथा पच धूनी ताप कर शरीर को जलाते है। भ्रमवश इधर-उधर घूमते हुये अपने मानव-जन्म को खो देते है। उन्हे जब तक सद्गुरु न मिले तब तक उनका सशय दूर नही होता। सद्गुरु मिल जाय तब तो ये उक्त सभी बन्धन रूप कर्म छुडा दे। जो प्रभु पतिव्रत से युक्त, प्रभु उपासना करता है, उसी सत रूप पतिव्रता को प्रभु अपना स्वरूप उसके हृदय मे दिखाता है। वह जब प्रभु का साक्षात्कार कर लेता है, तब प्रभु से अभेद स्थिति रूप परमगति प्राप्त करता है।

३४७-साधु-परीक्षा। दादरा

सोई साधु शिरोमणि, गोविन्द गुण गावै।
राम भजै विषया तजै, आपा न जनावै ॥ टेक ॥
मिथ्या मुख बोलै नहीं, पर निन्दा नांही।
औगुण छाडै गुण गहै, मन हरि पद मांहीं ॥ १ ॥
निर्वैरी सब आतमा, पर आतम जानै।
सुखदाई समता गहै, आपा नहि आनै ॥ २ ॥
आपा पर अन्तर नहीं, निर्मल निज सारा।
सतवादी साचा कहै, लै लीन विचारा ॥ ३ ॥
निर्भय भज न्यारा रहै, काहू लिप्त न होई।
दादू सब संसार मे, ऐसा जन कोई ॥ ४ ॥

लक्षणो द्वारा सत की परीक्षा करना बता रहे है—जो वाणी से गोविन्द गुण-गान करता है, विषय-राग को त्याग कर निरन्तर राम-भजन करता है, फिर भी अहकार वश अपने भजनादि साधन प्रतिष्ठा के लिये अन्यो को नही बताता। मुख से मिथ्या नही बोलता, दूसरो की निन्दा नही करता, अवगुणो को त्याग कर गुण ही ग्रहण करता है, मन को हरि के स्वरूप मे रखता है, सभी जीवात्माओ से निर्वैर रहता है, अन्यो को भी अपनी आत्मा ही जानता है, सबको सुख प्रदायिनी समता ग्रहण करता है, कभी भी हृदय मे अभिमान नही आने देता, अपने पराये का भेद नहीं

रखता, सबको विश्व के सार, निर्मल, निजात्म ब्रह्म रूप ही देखता है। सत्यवादी होता है, सत्य ब्रह्म सम्बन्धी ही वचन कहता है और विचार द्वारा वृत्ति ब्रह्म मे ही लीन रखता है, निर्भयता पूर्वक ब्रह्म का भजन करता हुआ सबसे अलग रहता है, किसी मे लिपायमान नही होता। वही शिरोमणि सत है किन्तु ऐसा सत-मानव इस सारे ससार मे कोई विरला ही मिलता है।

इसी पद को सुन कर ठट्ठा नगर से वृद्धामाता आई थी। प्रसग कथा दृ० सु० सि० त० ११-१३२ देखो।

३४८-परिचय परीक्षा। यति ताल

राम मिल्या यूं जानिये, जाको काल न व्यापै।
जरा[1] मरण ताको नहीं, अरु मेटै आपै॥ टेक॥
सुख दुख कबहूँ न ऊपजे, अरु सब जग सूझै।
करम को बॉधै नहीं, सब आगम बूझै॥ १ ॥
जागत ह्वै सो जन रहै, अरु जुग जुग जागै।
अंतरजामी सौं रहै, कछु काई न लागै॥ २ ॥
काम दहै सहजैं रहै, अरु शून्य विचारै।
दादू सो सब की लहै, अरु कबहुँ न हारै॥ ३ ॥

साक्षात्कार किये हुये व्यक्ति की लक्षणो द्वारा परीक्षा करना बता रहे है—निरजन राम के साक्षात्कार किये हुये व्यक्ति को इस प्रकार लक्षणो द्वारा जानना चाहिये-जिसको राम का दर्शन हो जाता है, उसे यम का भय नही होता। वृद्धावस्था[1] तथा मरणे का भय भी नही होता। उसका सभी प्रकार का सासारिक अभिमान नष्ट हो जाता है। उसके मन मे सयोग-वियोग जन्य सुख दु ख उत्पन्न नही होते। सब ससार उसे मायिक-विकार रूप दीखता है। उसे कोई भी कर्म-बधन मे नही डालता, कारण, वह सब शास्त्र के प्रतिपाद्य परब्रह्म को अपना स्वरूप समझता है। यह ज्ञानी भक्त मोह निद्रा से जाग्रत होकर रहता है और अज्ञान निवृत्त हो जाने से प्रति युग मे जागता ही रहता है। अन्तर्यामी ब्रह्म से अभेद होकर रहता है, उसके कुछ भी विकार नही लगते। वस्तु विचार द्वारा काम को जला कर शून्य स्वरूप ब्रह्म-विचार करते हुये अनायास ससार मे रहता है। सबकी वाणी अपने विचारानुकूल ग्रहण करता है किन्तु किसी के विचारो से हार नही मानता, निज निष्ठा मे ही आरूढ रहता है।

३४९-समता ज्ञान। त्रिताल

इन बातनि मेरा मन मानैं।
दुतिया दोइ नहीं उर अंतर, एक एक कर पीव को जानैं॥ टेक॥
पूर्ण ब्रह्म देखै सबहिन में, भ्रम न जीव काहू तैं आनैं।
होइ दयालु दीनता सब सौं, अरि पांचनि को करै किसानैं[1]॥ १॥

आपा पर सम सब तत चीन्है, हरी भजै केवल जस गानै।
दादू सोई सहज घर आनैं, संकट सबै जीव के भानै ॥ २ ॥

समता पूर्वक ज्ञान की विशेषता बता रहे है-इन निम्नाकित बातो से ही हमारा मन सतोष मानता है-द्वैत भाव द्वारा हृदय मे "मै तू" ये दो ज्ञान नहीं रहने चाहिये, अद्वैत भाव से एक ब्रह्म दृष्टि द्वारा प्रियतम ब्रह्म को जानना चाहिये। सभी मे पूर्ण ब्रह्म को देखे, भ्रमवश किसी भी जीव से भेद व्यवहार न करे। दयालु होकर दीनता पूर्वक सबसे वचनादि व्यवहार करे। काम क्रोधादिक शत्रुओ को तथा पच ज्ञानेन्द्रियो की विषयासक्ति को उखाड फेके। अपने पराये को समान जानकर सब मे ब्रह्म तत्व को ही पहचाने। हरि भजन करते हुये एक मात्र हरि का यश गान करे। कारण, उक्त समत्व-ज्ञान युक्त जो सत होता है, वही जीव के सब सकटो को नष्ट करके जीव को सहज निर्द्वन्द्व ब्रह्म रूप घर मे लाकर स्थिर करता है।

३५०-परिचय। एक ताल

ये मन मेरा पीव सौ, औरनि सौं नाहीं।
पीव बिन पलहि न जीव सौ, येह उपजै मांहीं ॥ टेक ॥
देख देख सुख जीव सौं, तहँ धूप न छाहीं।
अजरावर मन बंधिया, तातैं अनत न जाहीं ॥ १ ॥
तेज पुंज फल पाइया, तहा रस खाहीं।
अमर बेलि अमृत झरै, पीव पीव अघाहीं ॥ २ ॥
प्राणपति तहँ पाइया, जहँ उलट समाई।
दादू पीव परचा भया, हियरे हित लाई ॥ ३ ॥

३५०-३५१ मे अपने साक्षात्कार की स्थिति बता रहे है-यह मेरा मन प्रियतम प्रभु के चिन्तन से ही प्रसन्न रहता है, अन्य किसी से भी प्रसन्न नहीं होता। मेरे हृदय मे यही भावना उत्पन्न होती है-प्रियतम बिना एक क्षण भी जीवित न रह सकूगा। जहा इन्द्रिय ज्ञान रूप धूप और अज्ञान रूप छाया नहीं होती, उसी समाधि रूप स्थान मे प्रभु को देख २ कर सुख से जीवित रहूगा। मेरा मन देवताओ से भी अति श्रेष्ठ प्रभु स्वरूप मे ही बँध रहा है, उसे छोडकर अन्य स्थान को नही जाता। उसने अपने साधन का फल प्रकाश-राशि प्रभु का दर्शन प्राप्त कर लिया है और सहजावस्था मे आनन्द रस का उपभोग करता है। आत्मा रूप अमर बेलि के साक्षात्कार से आनन्दामृत सदा ही टपकता रहता है और हम वृत्ति द्वारा उसका बारम्बार पान करके तृप्त होते है। वृत्ति विषयो से बदल के भीतर जाकर जहा लीन हो जाती है, वहा ही प्रभु प्राप्त होते है। हमे उस प्रभु का साक्षात्कार हो गया है और अब हम निरन्तर विशेषरूप से हृदय मे स्थित उन प्रभु से ही स्नेह करते है।

३५१-त्रिताल

आज प्रभात मिले हरि लाल।
दिल की व्यथा पीड सब भागी, मिट्यो जीव को साल[1] ॥ टेक॥
देखत नैन संतोष भयो है, इहै तुम्हारो ख्याल ॥ १ ॥
दादू जन सौं हिल-मिल रहिबो, तुम हो दीनदयाल॥ २ ॥

आज प्रात काल ही प्रियतम हरि मिल गये, अब हमारे मन की वियोग जन्य सभी व्यथा दूर हो गई। जीवात्मा का जन्मादि दु ख[1] मिट गया। उनके दर्शन करते ही नेत्रो को सतोष हो गया। हे प्रभो! अब तो इस हृदय मे आप का ही ध्यान रहेगा। आप तो दीन दयालु है आप को मुझ भक्त से घनिष्ठ सम्बन्ध रख कर ही रहना चाहिये।

३५२-(पंजाबी) निज स्थान निर्णय उपदेश। एक ताल

अर्श[1] इलाही[2] रब्बदा[3], इथांईं[4] रहमान[5] वे ।
मक्का बिचि मुसाफरीला[6], मदीना मुलतान वे ॥ टेक॥
नबी[8] नाल[9] पैगम्बरे, पीरों हंदा[10] थान वे ।
जन तहुँ ले हिकसा[11] ला[12], इथां बहिश्त[13] मुकाम वे ॥ १ ॥
इथां आब[14] जमजमा[15], इथांईं सुबहान[16] वे ।
तख्त रबानी[17] कंगुरेला[18], इथांई सुलतान वे ॥ २ ॥
सब इथां अंदर आव वे, इथाई ईमान[19] वे ।
दादू आप[7] वंजाइ[20] बेला[21], इथांईं आसान वे ॥ ३ ॥

३५२-३५३ मे निर्णय करके सपूर्ण तीर्थादि रूप अपने आदि स्थान ब्रह्म की स्थिति का उपदेश कर रहे है—जगत्-पालक[3] दयालु[5] ईश्वर[2] के रहने का सबसे ऊचा स्वर्ग[1] (सहस्रारचक्र) यहा[4] शरीर मे ही है। यात्रा[6] करने वालो के लिए, मक्का, मदीना और मुलतान, ये ईश्वर-दूतों[8] पैगम्बरो और पीरो के[10] स्थान भी अपने साथ[9] (नाभि, हृदय, त्रिकुटी) शरीर के बीच मे ही है। हे जन! वृत्ति को ससार दशा से ऊची लेकर उक्त शरीरस्थ स्थानो मे ही स्थिर करके एक[11] परब्रह्म से ही लगा[12]। यही ब्रह्माकार वृत्ति जन्य जो सुख है, वही स्वर्ग[13] स्थान है। अरब मे स्थित मक्का नगर के काबे का जो "जम जम"* नामक कूप[15] (मुसलमानो का पवित्र तीर्थ) है, उसका पवित्र[16] जल[14] भी शरीर मे ही (तालु मूल से टपक रहा) है। शुद्ध अन्त करण रूप शिखरो[18] मे स्थित ईश्वर[17] का सिहासन (अष्टदल कमल) भी शरीर मे ही है। शरीर मे ही बादशाह ईश है। सब कुछ यहा शरीर मे ही है। तुम सब प्रकार के अहकार[7] का त्याग[20] करो, यही समय[21] अहकार के त्यागने का है, फिर वृत्ति को अन्तर्मुख करके भीतर आओ शाति प्रदान करने वाला (सत्य ईश्वर रूप)

---

* मुहम्मद के वश मे मुहम्मद से १८ पीढी पहले शिशु इस्मायल ने जन्म लेने के बाद माता की प्यास मिटाने के लिए एड़िया घिसकर भूमि से जल निकाल लिया था।

धर्म[१९] शरीर मे ही है, जिसे प्राप्त करने का अवसर[२१] इस पावन[२०] मानव शरीर मे ही सुगम है।

इस पद से निजामजी को उपदेश किया था। प्रसग कथा ह सु सि ३-२४ देखो।

३५३-(पजाबी) क्रीड़ा तालश्वंडनि

आसण रमदा[१] रामदा[२], हरि इथा[३] अविगत आप वे।
काया काशी वंजणा[४], हरि इथैं पूजा जाप वे ॥ टेक ॥
महादेव मुनि देवते, सिद्धैदा विश्राम वे।
स्वर्ग सुखासण हुलणै[५], हरि इथैं आत्मराम वे॥ १ ॥
अमी सरोवर आतमा, इथांईं आधार वे।
अमर थान अविगत रहै, हरि इथै सिरजनहार वे ॥ २ ॥
सब कुछ इथै आव वे, इथा परमानन्द वे।
दादू आपा दूर कर, हरि इथांई आनन्द वे॥ ३ ॥

इति राग विलावल समाप्त ॥ २१ ॥ पद २० ॥

सब मे रमने[१] वाला राम[२] का सिहासन (अष्टदल कमल) शरीर[३] मे ही है और वे मन इन्द्रियो के अविषय स्वय हरि भी आत्म रूप से शरीर मे है। काया मे ही (सहस्रार चक्र रूप) काशी मे जाना[४] होता है और शरीर के हृदय देश मे ही हरि की मानस-पूजा तथा जाप होता है। महादेव, मुनिगण, देवता और सिद्धो के विश्राम स्थान-सहस्रार चक्र, विचार, इन्द्रिय और ध्यान भी शरीर मे ही हैं। पाप-ताप हरने वाले आत्म स्वरूप राम के दर्शन जन्य जो आनन्द[५] प्राप्त होता है वही शरीर मे स्वर्ग का सुखासन है। सबका आधार अमृत-सरोवर आत्मा भी शरीर मे ही पाया जाता है। जिसमे मन इन्द्रियो के अविषय, सृष्टि कर्ता हरि रहते है और प्राप्त होते है, वह समाधि स्थान भी शरीर मे ही है। सब कुछ शरीर मे ही है, शरीर मे ही परमानन्द प्राप्त होता है। तुम सब प्रकार के अहकार को दूर करके अन्तर्मुख वृत्ति द्वारा भीतर आओ तो आनन्द स्वरूप हरि प्राप्त होंगे।

इस पद से नागरजी को उपदेश दिया था। नागर निजामजी की प्रसग कथा दृष्टात-सुधा-सिन्धु तरग ३-२४ मे देखो। ३५२-३५३ पदो का विषय विस्तार से काया बेली ग्रथ है।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग विलावल समाप्त ॥ २१ ॥

अथ राग सूहा २२

(गायन समय दिन ९ से १२)

३५४-विनती। एकताल

तुम बिच अतर जनि[१] परै माधव, भावै तन धन लेहु।
भावै स्वर्ग नरक रसातल, भावै करवत देहु॥ टेक॥
भावै विपति देहु दुख सकट, भावै सपति सुख शरीर।
भावै घर वन राव रंक कर, भावै सागर तीर, माधवे ॥ १ ॥

भावै बन्ध मुक्त कर माधव, भावै त्रिभुवन सार ।
भावै सकल दोष धर माधव, भावै सकल निवार, माधवे ॥ २ ॥
भावै धरणि गगन धर माधव, भावै शीतल सूर ।
दादू निकट सदा संग माधव, तू जनि होवै दूर, माधवे ॥ ३ ॥

हे माधव ! चाहे आप हमारा तन धनादि सर्वस्व ले ले किन्तु आपके और मेरे बीच मे कोई अन्तराय नहीं पडना चाहिए, मुझे आपके दर्शन सदा होते रहने चाहिए। चाहे मुझे स्वर्ग, नरक या रसातल मे भेज दे, शिर पर करवत चला दे, चाहे विपत्ति मे डाल दे, शारीरिक दु ख दे, मानसिक सकट दे। चाहे सपत्ति और शारीरिक सुख दे, घर वा वन मे रक्खे, राजा वा रक कर दे। चाहे सागर तीर रक्खे, बन्धन मे डाल दे, मुक्त कर दे, त्रिभुवन की सार वस्तुये प्रदान कर दे। चाहे सब दोष मुझ पर डाल दे, वा सम्पूर्ण दोष दूर कर दे। चाहे पृथ्वी मे रखे वा आकाशा मे धर दे। चाहे शीतल बना दे वा सूर्य समान उष्ण बना दे। हे माधव ! चाहे आप कुछ भी कर दे किन्तु सदा आप मेरे निकट रहते हुये मुझे अपने सग रखिये। कभी भी आप दूर न हो, यही मेरी विनय है।

३५५-परिचय। पंजाबी त्रिताल

अब हम राम सनेही पाया, आगम अनहद सों चित लाया ॥ टेक ॥
तन मन आतम ताको दीन्हा, तब हरि हम अपना कर लीन्हा ॥ १ ॥
वाणी विमल पंच परांनां, पहली शीश मिले भगवांनां ॥ २ ॥
जीवित जन्म सफल कर लीन्हां, पहली चेते तिन भल कीन्हां ॥ ३ ॥
अवसर आपा ठौर लगावा, दादू जीवित ले पहुँचावा ॥ ४ ॥

साक्षात्कार सम्बन्धी विचार प्रकट कर रहे है—अब हमने अनाहत शब्द श्रवण मे चित्त लगाकर शास्त्र-प्रतिपाद्य अपने प्रेम-पात्र राम को प्राप्त कर लिया है। प्रथम हमने अपना तन मनादि सर्वस्व समर्पण किया है, तब उन हरि को हमने आत्म स्वरूप करके प्राप्त किया है। जिनने अपनी वाणी, पच ज्ञानेन्द्रिय, मन और प्राणो को विमल करके पहले उन भगवान् को अपना सर्वस्व समर्पण किया है, उन्होंने जीवितावस्था मे ही अपना जन्म सफल किया है। जो पहली अवस्था मे ही सावधान हो गये है उन्होंने बहुत अच्छा किया है क्योकि ठीक समय पर अपने जीवत्व अहकार रूप शिर को भगवत् के समर्पण करके जीवितावस्था मे ही विवेक द्वारा अपने आत्मा को असत्य से उठाकर सत्य परब्रह्म के स्वरूप मे पहुँचा दिया है।

अथ काया-बेली ग्रन्थ

३५६-पिंड ब्रह्मांड शोधन। पंजाबी त्रिताल

साचा सतगुरु राम मिलावै, सब कुछ काया मांहिं दिखावै ॥ टेक ॥
काया माँहीं सिरजनहार, काया माँहीं है ओंकार ।
काया माँहीं है आकाश, काया माँहीं धरती पास ॥ १ ॥

काया माहीं पवन प्रकाश,काया माँहीं नीर निवास ।
काया माँहीं शशिहर सूर, काया माँहीं बाजै तूर॥ २ ॥
काया मॉहीं तीनों देव, काया माँहीं अलख अभेव।
काया माँहीं चारो वेद, काया मॉहीं पाया भेद॥ ३ ॥
काया मॉहीं चारो खानी, काया माँहीं चारो वाणी ।
काया मॉही उपजै आइ, काया माँहीं मर मर जाइ॥ ४ ॥
काया मॉहीं जामै मरै, काया मॉहीं चौरासी फिरै ।
काया मॉहीं ले अवतार, काया माँहीं बारम्बार ॥ ५ ॥

साखी - काया मॉहीं रात दिन, उदय अस्त इकतार।
दादू पाया परम गुरु, कीया एककार॥ ६ ॥

३५६-३६३ मे जो ब्रह्माड मे है वही काया मे भी है यह दिखाते हुये पिड ब्रह्माड की एकता बता रहे है—**साचा सतगुरु राम मिलावै, सब कुछ काया माहिं दिखावै** = गुरु के लक्षण जिनमे घटित हो, ऐसे सच्चे सद्गुरु शरीर के भीतर ही हृदय मे निरजन राम का दर्शन करा देते है और जो ब्रह्माड मे है, वह सब कुछ शरीर के भीतर ही दिखा देते है। **काया माहीं सिरजनहार** = सृष्टि कर्ता ईश्वर व्यापक होने से शरीर मे विद्यमान है। **काया माहीं है ओकार** = हृदय स्थान के अनाहत पद्म मे ओकार स्थित है। वहा जो 'हस' ध्वनि होती है, वही ओकार है। 'हस' से उलटकर 'सोह' होता है और 'सोह' से सकार हकार निकल कर 'ओ' बनता है। **काया माँहीं है आकाश** = वैसे तो अवकाश रूप आकाश शरीर मे प्रसिद्ध ही है और योगियो के मतानुसार कठ स्थित विशुद्ध चक्र मे आकाश का विशेष निवास है। उसमे अनन्त श्लोकादि विद्या स्थित रहती है, लोक मे भी प्रसिद्ध है, इसे बहुत पाठ कठस्थ है। **काया माँहीं धरती पास** = कार्य रूप से पृथ्वी स्थूल शरीर मे प्रसिद्ध है, योगियो के मतानुसार पृथ्वी का विशेष निवास मूलाधार चक्र है तथा क्षमा रूप से मन के समीप रहती है। **काया माँहीं पवन प्रकाश** = शरीर मे प्राण रूप से वायु प्रसिद्ध है, योगीजन मत से वायु का विशेष निवास अनाहत चक्र मे है। प्राणायाम से पापादि को नष्ट करके ज्ञान प्रकाश का परपरा हेतु है। **काया माँहीं नीर निवास** = शरीर मे मूत्र, लारादि रूप से जल प्रसिद्ध है, योगियो के मतानुसार जल का विशेष स्थान स्वाधिष्ठान चक्र है। हृदय मे प्रेम रूप से स्थित है। **काया मॉहीं शशिहर सूर** = शरीर मे वाम-दक्षिण नेत्र रूप से चन्द्र-सूर्य स्थित है, योगियो के मतानुसार इड़ा नाडी चन्द्र और पिगला सूर्य रूप है। **काया माँहीं बाजै तूर** = शरीर मे अनाहत ध्वनि रूप नगाडा और तुरही बाजे बजते है। जब मूलाधार चक्र मे स्थित ब्रह्म-ग्रथि का भली प्रकार भेदन होता है, तब हृदयावस्था मे अनाहत ध्वनि आरभ होती है। **काया माँहीं तीनौं देव** = नाभि स्थान पर ब्रह्मा, हृदय मे विष्णु, मस्तक मे सहस्रार चक्र मे महादेव विराजते है। **काया माहीं अलख अभेव** = मनेन्द्रियो का अविषय अद्वैत ब्रह्म व्यापक होने से शरीर के प्रत्येक अणु मे स्थित है। **काया माँहीं चारों वेद** = योगियो के मतानुसार-नाभि स्थान मे ऋग्, हृदय मे यजु, कठ मे साम और मुख मे अथर्वण कहा जाता है वा सत जन नाम रटन को ऋग्, जरणा को यजु, सहन

शक्ति को साम और अनुभव को अथर्वण कहते है, ये चारो शरीर मे ही रहते है। **काया मॉंहीं पाया भेद** = शरीर मे ही भेद ज्ञान मिलता है, शरीर रहित चेतन मे भेद कहा है ? वा साधन द्वारा शरीर मे ही ब्रह्मात्म एकता का रहस्य मिलता है। **काया मॉंहीं चारों खानी** = चार प्रकार के जीवो की उत्पत्ति १ जरायुज (मनुष्य, चौपाये), २ अडज (पक्षी, सर्पादि), ३ उद्भिज (वनस्पति) ४ स्वेदज (जू, लीख) रूप चार खानियॉं भी शरीर मे हैं। १ नाडी जरायुज, २ नेत्र अडज ३ रोम उद्भिज ४ हड्डियॉं स्वेदज है, वा आत्मा, मन, प्रकृति, ज्ञान ये चार, आनद, सकल्प, प्रवृत्ति, प्रकाश पूर्ण होने से खानी रूप है। **काया मॉंहीं चारों वाणी** = ब्रह्म वाणी-परा, देवताओ की पश्यन्ती, पशु-पक्षियो की मध्यमा, मनुष्यो के वैखरी। शरीर मे इनके रूप स्थान, अवस्था और देवता इस प्रकार है—

नाम	रूप	स्थान	अवस्था	देवता
परा	बीज	मूलाधार	तुरीया	सोऽह
पश्यन्ति	अॅंकुर	स्वाधिष्ठान	सुषुप्ति	ईश्वर
मध्यमा	पात	हृदय	स्वप्न	विष्णु
वैखरी	वृक्ष विस्तार	मुख	जाग्रत	ब्रह्मा

काया मॉंहीं उपजै आइ, काया मॉंहीं मर मर जाइ = श्रवण द्वारा सस्कार हृदय मे आकर भावनाये उत्पन्न होती है और विरोधी विचार धाराओ से वे बारबार मिथ्या निश्चय रूप मरण को प्राप्त होकर हृदय से निकल जाती है। **काया मॉंहीं जामैं मरै** = शरीर मे मन के मनोरथ उत्पन्न और नष्ट होते रहते है। **काया मॉंहीं चौरासी फिरै** = विविध भावनाओ मे मन का गमनागमन ही चौरासी मे फिरना है। **काया मॉंहीं ले अवतार, काया मांहीं बारंबार** = जैसे धर्म स्थापना के लिए ब्रह्माड मे ईश्वर बारबार नृसिहादि अवतार लेते है, वैसे ही शरीर मे मर्यादा स्थापन के लिए विवेकादि दिव्य गुण बारबार प्रकट होते रहते है। **काया मॉंहीं रात दिन** = शरीर मे अज्ञान पूर्ण व्यवहार वा स्वप्न, रात्रि है और ज्ञान युक्त व्यवहार वा जाग्रत अवस्था रूप दिन होते ही रहते है। **उदय अस्त इकतार** = व्यावहारिक ज्ञान के उत्पत्ति-नाश रूप उदय-अस्त लगातार होते ही रहते है। **दादू पाया परम गुरु, कीया एकंकार** = जब हमने परम गुरु ब्रह्म को उसी की कृपा से प्राप्त किया, तब शरीर मे ही अद्वैत निष्ठा द्वारा सपूर्ण द्वैत का अद्वैत रूप मे ही दर्शन किया।

३५७-त्रिताल

काया मॉंहीं खेल पसारा, काया मॉंहीं प्राण अधारा।
काया मॉंहीं अठारह भारा, काया मॉंहीं उपावनहारा॥ १॥
काया मॉंहीं सब वन राइ, काया मॉंहीं रहे घर छाइ।
काया मॉंहीं कंदलि[1] वास, काया मॉंहीं है कैलाश॥ २॥
काया मॉंहीं तरुवर छाया, काया मॉंहीं पंखी माया।
काया मॉंहीं आदि अनंत, काया मॉंहीं है भगवंत॥ ३॥

काया माँही त्रिभुवन राइ, काया माँहीं रहे समाइ ।
काया माँहीं चौदह भवन[२], काया माँहीं आवागवन ॥ ४ ॥
काया माँहीं सब ब्रह्मंड, काया माँही है नव खड ।
काया माँहीं स्वर्ग पयाल[३], काया माँहीं आप दयाल ॥ ५ ॥
साखी – काया माँहीं लोक सब, दादू दिये दिखाइ ।
मनसा वाचा कर्मना, गुरु बिन लख्या न जाइ ॥ ६ ॥

काया मांहीं खेल पसारा = जैसे ब्रह्माड मे विविध लीलाओ के फैलाव है, वैसे ही काया मे भी मन, बुद्धि, चित्त, अहकार, इन्द्रियादि के विविध व्यवहार ही विविध लीलाओ के फैलाव है—नि शक निर्भय मनोवृत्ति ही राजा है, अन्य वृत्तियाँ प्रजा है, सतोष धन, आशा दरिद्रता है, दैवी गुण उत्तम जन है, आसुर गुण अधम जन है इत्यादि सभी विस्तार शरीर मे है। **काया मांहीं प्राण अधारा** = जैसे ब्रह्माड का आधार ईश्वर चेतन है वैसे ही काया मे प्राणो का आधार जीव चेतन है। **काया मांहीं अठारह भारा** = जैसे ब्रह्माड मे अठारह भार वनस्पति है, वैसे ही शरीर मे रोमावली ही अठारह भार वनस्पति है। बीस पसेरी का माप एक भार कहलाता है। प्रत्येक वनस्पति का एक-एक पत्ता लेकर तोलने से अठारह भार (४५ मण) बोझ होता है, इसीलिए वनस्पतियो को अठारह भार कहते है। **काया मांहीं उपावनहारा** = जैसे ब्रह्माड का उत्पन्न करने वाला ईश्वर ब्रह्माड मे है, वैसे ही स्वप्नादि रूप जीव सृष्टि का उत्पन्न करने वाला जीव चेतन शरीर मे स्थित है। **काया मांहीं सब वनराइ** = जैसे ब्रह्माड मे नाना वन है, वैसे ही शरीर मे शिर-केश, चिबुक-केश, बगलकेशादि सब वन पक्ति है। **काया मांहीं रहे घर छाइ** = जैसे ब्रह्माड के प्रदेश मे घर बना कर रहते है वैसे ही काया के हृदय देश मे निज निश्चय रूप घर बना कर, उसमे जीवात्मा स्थिर रहता है। **काया मांहीं कंदलि[१] वास** = जैसे ब्रह्माड की गुफा मे साधक निवास करते है, वैसे ही काया की भ्रमर कदरा[१] मे साधक का चित्त निवास करता है। **काया मांहीं है कैलाश** = शरीर मे शून्य चक्र ही कैलाश है। **काया माँही तरुवर छाया, काया मांहीं पंखी माया** = शरीर मे ब्रह्म-वृक्ष है और सुख ही उसकी छाया है, माया-मोहित जीव ही ब्रह्म-वृक्ष पर रहने वाला पक्षी है। **काया माँहीं आदि अनन्त** = ब्रह्माड मे जैसे वृक्षादि का आदि बीज होता है फिर उसका विस्तार अनन्त हो जाता है, वैसे ही काया मे किसी भी कार्य का प्रथम सकल्प आदि है फिर उसका विस्तार अनन्त हो जाता है वा शब्द सृष्टि का आदि ओकार हृदय मे है और उसका कार्य रूप विस्तार भी अनन्त शब्द हृदय मे है। **काया मांहीं है भगवंत** = शरीर मे आत्म रूप से भगवान् स्थित है। **काया मांही त्रिभुवन राइ** = स्वर्ग, मृत्यु, पाताल, इन तीनो भुवनो के राजा प्रभु शरीर के अष्ट दल कमल पर विराजते है। **काया मांही रहे समाइ** = शरीर मे स्थित प्राणी अपनी भावनानुसार वृत्ति द्वारा माया वा ब्रह्म मे समाये रहते है। **काया मांहीं चौदह भवन** = जैसे ब्रह्माड मे १४ लोक[२] है। वैसे ही शरीर मे है—भक्ति पक्ष मे दश इन्द्रिया, चतुष्टय अन्त करण ही १४ भुवन है। ब्रह्माड के १४ भुवन और योगानुसार शरीर के भुवनो के नाम निम्न प्रकार है—

लोक	निवासी	काय स्थान
१ भू	मनुष्य, पशु	नाभि
२ भुव	भूत, पक्षी	उर (हृदय)
३ स्व	देवता	उदर
४ महर्	ऋषि	छाती
५ जन	सकामी भक्त	कठ
६ तप	सूर, सती, सन्यासी	नासिका
७ सत्य	ज्ञानी, सन्यासी	दशम द्वार
८ अतल	महादेव	कुक्षि
९ वितल	बाणासुर	कमर
१० सुतल	मयनामा०	जघा
११ तलातल	बलि	जान (घुटने)
१२ महातल	वासुकि नाग	पिडली
१३ रसातल	शेष	गिरिया (टखने)
१४ पाताल	कद्रू के पुत्र	पगतली

काया मॉहीं आवागवन = मन का एक स्थान से आना और दूसरे पर जाना ही शरीर मे आवागमन है। **काया मॉहीं सब ब्रह्मंड** = शरीर मे चौदह भुवन रूप सभी ब्रह्माड है। चौदह भुवन निकट पूर्व मे ही बता आये है और १४ मे से भी एक-एक मे बहुत लोक भेद है जैसे एक स्व के ही २१ भेद है—१ आसुरी स्वर्ग, २ भूत, ३ यम, ४ किन्नर, ५ ब्रह्म राक्षस, ६ राक्षस, ७ काल, ८ चित्रगुप्त, ९ योगिनी, १० गन्धर्व, ११ अर्यमा, १२ महा स्वर्ग, १३ तप, १४ जन, १५ सत्य, १६ दवि, १७ सुरलोक, १८ देव स्वर्ग, १९ पयाली, २० विश्वकर्मा, २१ खड स्वर्ग तथा अग्निपुराण मे नाम भेद से निम्न प्रकार बताये है—१ आनद, २ प्रमोद, ३ सौख्य, ४ निर्मल, ५ त्रिविष्टप, ६ नाकपृष्ठ, ७ निर्वृत्ति, ८ पौष्टिक, ९ सौभाग्य, १० अप्सरस, ११ निरहकार, १२ शान्तिक, १३ अमल, १४ पुण्याय, १५ मगल, १६ श्वेत, १७, मन्मथ, १८ उपसोहन, १९ शाति, २० निर्वेद, २१ अभेद। शरीर मे मेरु दड की २१ गाठे है वे ही २१ स्वर्ग है। इसी प्रकार सपूर्ण ब्रह्माड भेद काया मे स्थित है। **काया माँहीं है नव खंड** = जैसे जम्बू द्वीप की पृथ्वी के (१ इलावृत २ रम्यक ३ हिरण्यमय ४ कुरू ५ हरिवर्ष ६ किपुरुष ७ भारतवर्ष ८ केतुमाल वर्ष ९ भद्राश्व वर्ष) नवखड है वैसे ही शरीर मे नव द्वार रूप नवखड और योगमतानुसार नव चक्र ही नवखड है। वे इस प्रकार है—

चक्र नाम	पंखुड़ी	अक्षर	देवता	स्थान
१ आधार	४	४	गणेश	गुदा
२ स्वाधिष्ठान	८	८	ब्रह्मा	लिग
३ मणिपूर	१०	१०	वायु	नाभि
४ निरजन	८	८	मन	उदर
५ उद्यद	१२	१२	सूर्य	हृदय
६ विशुद्ध	१६	१६	चन्द्रमा	कठ
७ बत्तीसा	३२	३२	विष्णु	तालू
८ आज्ञा	२	२	महादेव	मस्तक
९ ब्रह्मरध्र	१०००	१०००	दशों दिशा	दशम द्वार

काया मांहीं स्वर्ग पयाल, काया माहीं आप दयाल ।। काया मॉही लोक सब, दादू दिये दिखाय । मनसा वाचा कर्मना, गुरु बिन लख्या न जाय = काया मे ही दशम द्वार स्वर्ग, उदर मर्त्यलोक, पदतल पाताल[३] है । अन्य भी १४ भुवन २१ स्वर्गादि सभी ब्रह्माड के स्थानादि काया मे दिखा दिये गये है किन्तु हम मन-वचन-कर्म से कहते है—सद्गुरु कृपा बिना यह बाह्य ब्रह्माड शरीर मे नही देखा जा सकता ।

३५८-रंग ताल

काया मॉंहीं सागर सात, काया मॉंहीं अविगत नाथ ।
काया मॉंहीं नदिया नीर, काया मॉंहीं गहर गभीर ।। १ ।।
काया मॉंहीं सरवर पाणी, काया मॉंहीं बसै बिनाणी[१] ।
काया मॉंहीं नीर निवान[२], काया मॉंहीं हंस सुजान ।। २ ।।
काया मॉंही गग तरग, काया मॉंही जमुना सग ।
काया मॉंहीं है सुरसती, काया मॉंहीं द्वारावती ।। ३ ।।
काया मॉंही काशी स्थान, काया मॉंही करै स्नान ।
काया मॉंहीं पूजा पाती, काया मॉंहीं तीरथ जाती ।। ४ ।।
काया मॉंही मुनियर मेला, काया मॉंहीं आप अकेला ।
काया मॉंहीं जपिये जाप, काया मॉंही आपै आप ।। ५ ।।
साखी – काया नगर निधान है, मॉंहीं कौतिक होइ ।
दादू सतगुरु संग ले, भूल पडै जनि कोइ ।। ६ ।।

काया मॉंहीं सागर सात = जैसे ब्रह्माड के ७ द्वीपो के ७ सागर है वैसे ही शरीर मे सप्त सागर है । ब्रह्माड मे द्वीप और सागर इस प्रकार है १ जम्बूद्वीप मे क्षार समुद्र, २ प्लक्ष मे ईक्षुरस समुद्र

३ कुश मे क्षीर सागर ४ शाल्मलि मे सुरा सागर ५ क्रौच मे दधि सागर ६ शाक मे धृत सागर ७ पुष्कर मे सुधा सागर है, वैसे ही शरीर मे १ श्रवण २ नेत्र ३ नासिका ४ मुख ५ हस्त ६ उदर ७ पद, इन सप्त द्वीपो मे उक्त सप्त समुद्र है वा रस, रक्त, मास, मेद, मज्जा, अस्थि, वीर्य, ये सात धातु ही सप्त समुद्र है। **काया मांहीं अविगत नाथ** = ब्रह्माड मे जैसे इन्द्रियो का अविषय ब्रह्म है वैसे ही काया मे कूटस्थ चेतन स्थित है। **काया मांहीं नदियां नीर, काया मांहीं गहर गंभीर** = जैसे ब्रह्माड मे अथाह नीर वाहिनी नदियॉ है, वैसे ही शरीर मे रस, उदक, रक्त और शुक्र वाहिनी नाडिया ही गभीर नदियॉ है वा मनोरथ जल से परिपूर्ण आशा-नदी है वा राम-जल से युक्त नवधा भक्ति ही नदियॉ है। **काया मांहीं सरवर पाणी** = ब्रह्माड मे जैसे विशुद्ध जल युक्त मानसरोवर है, वैसे ही काया मे प्रेम-जल परिपूर्ण हृदय-सरोवर है। **काया मांहीं बसे बिनाणी** = ब्रह्माड मे जैसे विशेष ज्ञान युक्त व्यक्ति बसता है, वैसे ही काया मे विशेष-ज्ञान-युक्त-बुद्धि[१] बसती है। **काया मांहीं नीर निवान** = शरीर मे निर्मल ज्ञान-जल का निरभिमान रूप तालाब[२] है। **काया मांहीं हंस सुजान** = उस तालाब पर ज्ञानी सतो का मन-हस रहता है। वा सहज स्वरूप ब्रह्म सरोवर पर ज्ञानी-सत-हस रहता है। **काया मांही गग तरंग** = पिगला नाडी रूप गगा की श्वास गति रूप तरग काया मे है। **काया मांहीं जमुना संग** = इडा नाडी रूप यमुना का पिगला से मेल काया मे होता है। **काया मांहीं सरस्वती** = सुषुम्ना नाडी रूप सरस्वती काया मे है। **काया मांहीं द्वारावती** = जैसे ब्रह्माड मे द्वारिकापुरी है, वैसे ही काया मे सहस्रार चक्र द्वारिका है। **काया माहीं काशी थान** = जैसे ससार मे काशी है वैसे ही काया मे आत्मा ही काशी है। **काया मांही करै स्नान** = काया मे आत्म चिन्तन रूप स्नान सत जन करते है। **काया मांहीं पूजा पाती** = जैसे बाह्य पूजा होती है, वैसे ही काया मे मानस पूजा होती है। बाहर पूजा के समय तुलसी पत्र चढाते है, वैसे ही मानस पूजा मे प्रेम रूप तुलसी पत्र चढाया जाता है। **काया मांहीं तीरथ जाती** = जैसे जनता तीर्थों मे जाती है, वैसे ही काया मे वृत्ति तीर्थों मे जाती है। जैसे भारत मे केदार, गगासागर, गया, प्रयाग और काशी पच तीर्थ प्रधान है वैसे ही काया मे शिर-केदार, कठ-गया, नाभि-प्रयाग,उपस्थ-गगा सागर, और चेतन ही काशी है। **काया मांहीं मुनियर मेला** = जैसे बाह्य मुनिवरो का सम्मेलन होता है, वैसे ही मननशील मन इन्द्रियो का एकाग्रता रूप सम्मेलन शरीर मे होता है। **काया मांहीं आप अकेला** = जैसे ब्रह्माड मे ब्रह्म सब मे रह कर भी सबसे अलग ही रहता है वैसे ही शरीर मे भी जीव चेतन सब से अलग अकेला ही रहता है। **काया मांहीं जपिये जाप** = काया मे अजपा जाप निरतर जपा ही जाता है। **काया मांहीं आपै आप** = जैसे ब्रह्माड मे ब्रह्म है वैसे ही काया मे भी आत्म रूप से स्वय आप ही स्थित है। **काया नगर निधान हैं** = जैसे ब्रह्माड मे नाना निधिया है, वैसे ही काया नगर मे दया, धर्म, क्षमा, सतोष, शील, प्रेम, ज्ञानादि निधियो का कोश है। **मांहीं कौतिक होइ** = जैसे ब्रह्माड मे नाना खेल होते है वैसे ही काया मे भी नाना वृत्ति व्यापार और वृत्ति स्थैर्य रूप खेल होते ही रहते है वा भगवत् प्राप्ति रूप अद्भुत खेल होता है। **दादू सतगुरु संग ले, भूल पड़ै जनि कोइ** = साधक सद्गुरु के सत्सग द्वारा आन्तर साधना से उस प्रभु को ही प्राप्त करे, भ्रम वश उसे भूल कर बाह्य तीर्थादि भ्रमण मे ही कोई न पडे।

३५१-रंग ताल

काया मॉंहीं विषमी बाट, काया मॉंहीं औघट घाट।
काया मॉंहीं पट्टण गॉंव, काया मॉंहीं उत्तम ठॉंव ॥ १ ॥
काया मॉंहीं मण्डप छाजै, काया मॉंहीं आप विराजै।
काया मॉंहीं महल अवास, काया मॉंहीं निश्चल वास ॥ २ ॥
काया मॉंहीं राजद्वार, काया मॉंहीं बोलणहार।
काया मॉंही भरे भण्डार, काया मॉंहीं वस्तु अपार ॥ ३ ॥
काया मॉंहीं नौ निधि होइ, काया मॉंहीं अठ सिधि सोइ।
काया मॉंहीं हीरा साल, काया मॉंहीं निपजै लाल ॥ ४ ॥
काया मॉंही माणिक भरे, काया मॉंहीं ले ले धरे।
काया मॉंहीं रत्न अमोल, काया मॉंहीं मोल न तोल ॥ ५ ॥
साखी - काया मॉंहीं कर्तार है, सो निधि जानै नॉंहि।
दादू गुरुमुख पाइये, सब कुछ काया मॉंहि ॥ ६ ॥

काया मांही विषमी बाट = जैसे ब्रह्माड मे बदरी, केदारादि के मार्ग अति कठिन है, वैसे ही काया मे ब्रह्म-प्राप्ति का मार्ग अति कठिन है। **काया मांहीं औघट घाट** = जैसे बदरीनाथादि के मार्ग मे दुर्गम घाटियाँ होती है, वैसे ही शरीर मे ज्ञान के मार्ग मे काम क्रोधादिक दुर्गम घाटियाँ है। **काया मांहीं पट्टण गांव** = ब्रह्माड मे जैसे पट्टण (पाटलीपुत्र) आदि विशाल नगर है और उनमे अनेक वस्तुये प्राप्त होती है, वैसे ही काया मे प्रभु-प्रेम, विचारादि नगर है, उनमे प्रभु द्वारा सब कुछ प्राप्त होता है, वा जैसे ब्रह्माड मे कोई ग्राम पट्टण (भूमि मे मिलकर समतल) हो जाता है, वैसे ही काया मे भी कोई विचार नष्ट हो जाता है। **काया माँही उत्तम ठाँव** = ब्रह्माड मे जैसे वैकुण्ठादि उत्तम स्थान है, वहा विष्णु आदि के दर्शन होते है, वैसे ही काया मे अष्टदल-कमलादि उत्तम स्थान है, उनमे भगवान् के दर्शन होते है। **काया मांहीं मण्डप छाजै, काया माँही आप विराजै** = जैसे ब्रह्माड मे लोग मडप बनाकर उसमे बैठते है वैसे ही काया मे मन वासनाओ का मडप बनाकर उसमे स्थित रहता है वा काया मे मन साधना रूप मडप बनाता है, उसमे स्वय भगवान् विराजते है। **काया माँहीं महल अवास** = जैसे ब्रह्माड मे महल होते है, वैसे ही काया मे अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय ये पच कोश ही महल है। **काया माँहीं निश्चल वास** = ब्रह्माड मे जैसे लोग काशी मे कल्याणार्थ स्थिर निवास करते है, वैसे ही काया मे ब्रह्म मे वृत्ति स्थिरता रूप निश्चल निवास होता है। **काया माँहीं राज द्वार** = जैसे लोक मे राज द्वार होता है, उस द्वार से राजा के पास जाते है वैसे ही काया मे दशम द्वार राज द्वार है, उसके द्वारा ही ब्रह्म रूप राजा को प्राप्त होते है। **काया माँहीं बोलणहार** = जैसे ब्रह्माड मे वक्ता होते है वैसे ही काया मे बोलने वाला वाक् इन्द्रिय है वा उसका प्रेरक आत्मा है। **काया माँहीं भरे भडार** = जैसे लोक मे नाना पदार्थों के भडार भरे रहते है, वैसे ही काया मे भी सब कला-गुण-ज्ञानादि के

भडार भरे है किन्तु उनके अज्ञान रूप ताले लगे है जो कलाज्ञ, गुणज्ञ और ज्ञानी लोगो द्वारा खोले जाते है, तब सब काया मे ही मिलते है। **काया माँहीं वस्तु अपार** = जैसे ब्रह्माड मे अपार वस्तुऍ है वैसे ही काया मे भी सप्तधातु, दैवीगुण, आसुर-गुण आदि अनन्त वस्तुये है वा जिसका पार नही आता ऐसी परब्रह्म वस्तु जैसे ब्रह्माड मे है, वैसे ही काया मे भी है। **काया माँहीं नौ निधि होइ** = जैसे ब्रह्माड मे १ पद्म २ महापद्म ३ शख ४ मकर ५ कच्छप ६ मुकुन्द ७ कुन्द ८ नील ९ वर्च्चे , ये नौ निधि है। वैसे ही काया मे १ श्रवण २ कीर्तन ३ स्मरण ४ पाद सेवन ५ अर्चना ६ वदना ७ दास्य ८ सख्य ९ आत्म निवेदन, ये नवधा भक्ति ही नवनिधि है। **काया मांहीं अठ सिधि सोइ** = जैसे ब्रह्माड मे १ अणिमा २ महिमा ३ लघिमा ४ गरिमा ५ प्राप्ति ६ प्रकाम्य ७ ईशत्व, ८ वशित्व, ये अष्ट सिद्धि है, वैसे ही काया मे मन, बुद्धि, चित्त और पच ज्ञानेन्द्रिय ये अष्ट सिद्धि है। जैसे लोक मे अन्य १ सर्वज्ञता २ दूर श्रवण ३ पर काय प्रवेश ४ वाक् सिद्धि ५ कल्प वृक्षत्व ६ सृजन शक्ति ७ सहार शक्ति ८ ईशता ९ अमरत्व १० सर्व्वांग, ये दश सिद्धिया है, वैसे ही काया मे १ इडा २ पिगला ३ सुषुम्ना ४ गाधारी ५ हस्तिजिह्वा ६ पूषा ७ यशस्विनी ८ अलम्बुषा ९ कुहू १० शंखिनी, ये नाडिया ही दश सिद्धिया है। इनके स्थान क्रम से १ वाम नासिका २ दक्षिण नासिका ३ दोनो नासिका का मध्य भाग ४ वाम नेत्र ५ दक्षिण नेत्र ६ दाहिना कान ७ वाम कान ८ मुख ९ लिग १० गुदा है। ये अभ्यास के द्वारा सिद्धि प्रदाता होने से सिद्धिया है। **काया माँहीं हीरा साल** = जैसे लोक मे हीरो की दुकान होती है, वैसे ही काया मे विचार रूप हीरो का साल (घर) बुद्धि है। **काया माँही निपजैं लाल** = लोक मे जैसे खानियो से लाल निपजते है वैसे ही काया मे भजनादि द्वारा मन इन्द्रियो की श्रेष्ठता, एकाग्रतादि लाल उत्पन्न होते है अर्थात् जैसे पत्थरों की खान से लाल निकलते है वैसे ही मन इन्द्रिय विषयो से निकल कर हरि की ओर लगता है तब लाल रूप ही हो जाता है। **काया माँहीं माणिक भरे** = जैसे लोक मे जौहरियो की पेटियो मे माणिक्य भरे रहते है, वैसे ही काया मे भी श्वास रूप माणिक्य भरे है। **काया माँहीं ले ले धरे** = जैसे लोक मे बाह्य पदार्थों को ले लेकर घर मे धरते है वैसे ही साधक सत विचारो को ले लेकर काया की बुद्धि मे धरते है। **काया माँही रत्न अमोल, काया मांहीं मोल न तोल** = जैसे लोक मे अमूल्य रत्न होता है, उसका मोल-तोल नही होता, वैसे ही काया मे ज्ञान रूप अमूल्य रत्न है, उसका कोई मोल-तोल नही वा जैसे ब्रह्माड मे—१ लक्ष्मी २ कौस्तुभ ३ पारिजात ४ सुरा ५ धन्वन्तरि ६ चन्द्रमा ७ कामधेनु ८ ऐरावत हस्ति ९ रभा १० सप्तमुखी उच्चै.श्रवा अश्व ११ विष १२ हरि धनुष १३ शख १४ अमृत, ये १४ रत्न है। वैसे ही काया मे १ भक्ति २ शाति ३ ज्ञान ४ सत्य बुद्धि ५ श्रेष्ठ वचन ६ अह बुद्धि ७ अनाहत नाद ८ अष्टाग योग ९ सतोष १० काम ११ मन १२ धैर्य १३ युक्ति १४ गुरु शब्द, ये १४ रत्न है, कहा भी है—

लक्ष्मि भक्ति, मणि शांति, कल्पतरु ज्ञान विचारो। कामधेनु सतबुद्धि, वैन शुभ अमृत धारो।
अहं बुद्धि विष जान, शंख अनहद ध्वनि बाजै। धन्वन्तरि अष्टांग, चन्द्र संतोष विराजै।
सुरा काम, मन सप्तमुख हय, गज धीरज जानि येहु।
तहा जुगति रभा, शब्द गुरु 'नृसिंह' धनु, पहिचानि लेहु॥

काया माँही कर्तार है, सो निधि जानैं नाहि = जेसे ब्रह्माड मे सृष्टि कर्ता ईश्वर है, वैसे ही काया मे भी जीव सृष्टि का कर्ता जीव चेतन स्थित है। किन्तु सपूर्ण सुखो के कोश उसके वास्तविक स्वरूप को नही जानता, इसी से जन्मादि क्लेश भोगता है। **दादू गुरु मुख पाइये, सब कुछ काया माहि** = काया मे सभी कुछ है किन्तु गुरु मुख द्वारा उसका परिचय प्राप्त करके खोजने से ही सब कुछ प्राप्त होता है, अन्यथा नही।

३६०-वर्ण भिन्न ताल

काया मॉहीं सब कुछ जाण, काया माँहीं लेहु पिछाण।
काया मॉहीं बहु विस्तार, काया मॉहीं अनन्त अपार ॥ १ ॥
काया मॉहीं अगम अगाध, काया माँहीं निपजे साध।
काया मॉहीं कह्या न जाइ, काया माँहीं रहै ल्यौ लाइ ॥ २ ॥
काया मॉही साधन सार, काया माँहीं करै विचार।
काया माँहीं अमृत वाणी, काया माँहीं सारङ्ग प्राणी ॥ ३ ॥
काया मॉही खेलै प्राण, काया माँहीं पद निर्वाण।
काया मॉहीं मूल गह रहै, काया माँही सब कुछ लहै ॥ ४ ॥
काया मॉही निज निरधार, काया माँहीं अपरम्पार।
काया माँही सेवा करै, काया माँहीं नीझर झरै ॥ ५ ॥
साखी - काया मॉही वास कर, रहै निरतर छाइ।
दादू पाया आदि घर, सतगुरु दिया दिखाइ ॥ ६ ॥

काया माँहीं सब कुछ जाण, काया मॉहीं लेहु पिछाण = जो ब्रह्माड मे है सो सभी कुछ काया मे है, यह गुरु द्वारा जानकर साधन से काया मे उनका प्रत्यक्ष परिचय प्राप्त करते हुये सबके आधार परब्रह्म को पहचान कर आत्म स्वरूप को प्राप्त कर लो। **काया माँहीं बहु विस्तार** = जैसे ब्रह्माड मे माया का बहुत विस्तार हो रहा है, वैसे ही काया मे मन के मनोरथो का स्वप्न बहुत विस्तृत भासता है। **काया माँहीं अनन्त अपार** = जिसका शुभ अनन्त है, वह अपार प्रभु भी काया मे विद्यमान है। **काया माँही अगम अगाध** = जिसमे मन इन्द्रियो की गति नहीं होती वह अगाध व्यापक ब्रह्म भी काया के प्रत्येक अणु मे है। **काया माँहीं निपजे साध** = सत भी बाह्य भेष द्वारा न होकर भजनादि साधन द्वारा काया मे ही बसते है। **काया माँहीं कह्या न जाइ** = जो वाणी से कहा नही जाता वह ब्रह्म काया मे ही है। **काया माँहीं रहै ल्यौ लाइ** = सत जन बाह्य प्रपच से उपराम रहकर काया मे ही उस ब्रह्म मे वृत्ति लगाकर स्थिरता पूर्वक रहते है। **काया माँहीं साधन सार** = ब्रह्म चिन्तन रूप सार-साधन भी काया मे ही होता है।

काया मॉहीं करै विचार = विचारक सत काया मे ही बुद्धि द्वारा ब्रह्म विचार करते है। **काया माँहीं अमृत वाणी** = अहकार रहित प्रिय, ब्रह्म विचार सपन्न, अमरत्व प्रदान करने वाली, अमृत वाणी भी शरीर मे है, तभी तो सतो के मुख द्वारा बोली जाती है। **काया माँहीं सारग**

प्राणी = काया मे सारग (परमेश्वर) और प्राणधारी जीव दोनो ही स्थित है। **काया मॉहीं खेलै प्राण** = काया मे सत प्राणी परमेश्वर के साक्षात्कार जन्य आनद का अनुभव रूप खेल खेलते है। **काया मॉहीं पद निर्वाण** = काल-कर्म के बाणाघात से रहित निर्वाण पद स्वरूप आत्मा काया मे स्थित है। **काया मॉंहीं मूल गह रहै** = सबका मूल ब्रह्म वा शब्द सृष्टि का मूल ओकार उसको सत काया मे ही ग्रहण करके उसी मे स्थिर रहते है। **काया मॉहीं सब कुछ लहै** = साधक काया मे ही ब्रह्म-चिन्तन रूप चिन्तामणि से सब कुछ प्राप्त करते है। **काया मॉहीं निज निरधार, काया मॉंहीं अपरंपार** = काया मे ही विचार द्वारा निज स्वरूप का निर्णय करो, वह अपरपार स्वरूप कूटस्थ काया मे ही है। **काया मॉहीं सेवा करै** = सतजन काया मे ही परब्रह्म की सेवा-पूजा करते है। **काया मॉंहीं नीझर झरै** = काया मे निरतर तालु मूल से अमृत झरता रहता है वा उक्त प्रकार सेवा-पूजा करने वालो को प्रभु-प्रेमामृत वा आनन्दामृत निरतर प्राप्त रहता है। **काया मॉहीं वास कर, रहै निरंतर छाइ** = काया मे स्थित प्रभु के स्वरूप मे वृत्ति द्वारा निवास करते हुये, और निरतर ब्रह्माकार वृत्ति रखते हुये स्थिर रहना चाहिए। **दादू पाया आदि घर, सतगुरु दिया दिखाइ** = यह मार्ग हमको सदूगुरु ने दिखाया है और हमने निरतर ब्रह्माकार वृत्ति रखते हुये ब्रह्म रूप अपना आदि स्थान प्राप्त किया है।

३६१-वर्ण भिन्न ताल।

काया मॉहीं अनुभै सार, काया मॉहीं करै विचार।
काया मॉहीं उपजै ज्ञान, काया मॉहीं लागै ध्यान ॥ १ ॥
काया मॉहीं अमर स्थान, काया मॉहीं आतमरांम ।
काया मॉंहीं कला अनेक, काया मॉही कर्ता एक ॥ २ ॥
काया मॉहीं लागै रंग, काया मॉहीं सांई संग।
काया मॉहीं सरवर तीर, काया मॉहीं कोकिल कीर[1] ॥ ३ ॥
काया मॉहीं कच्छप नैन, काया मॉही कुंजी[2] बैन ।
काया मॉहीं कवल प्रकास, काया मॉंहीं मधुकर वास ॥ ४ ॥
काया मॉहीं नाद कुरङ्ग[3], काया मॉहीं ज्योति पतङ्ग।
काया मॉहीं चातक मोर, काया मॉंहीं चंद चकोर ॥ ५ ॥
साखी - काया मॉहीं प्रीति कर, काया मॉंहीं सनेह ।
काया मॉंहीं प्रेम रस, दादू गुरुमुख येह ॥ ६ ॥

काया मॉहीं अनुभैसार = काया मे ही विश्व के सार परब्रह्म का अनुभव होता है। **काया मॉंहीं करै विचार** = काया मे ही बुद्धि द्वारा ब्रह्म विचार करते रहना चाहिए। **काया मॉंहीं उपजै ज्ञान** = काया मे ही आत्मज्ञान की उत्पत्ति होती है। **काया मॉंहीं लागै ध्यान** = काया मे ही ब्रह्म का ध्यान लगता है। **काया मॉंहीं अमर स्थान** = काया मे निर्विकल्प समाधि ही अमर स्थान है। निर्विकल्प समाधि मे स्थित को काल नही मार सकता। **काया मॉहीं आतमरांम** = व्यापक होने

से काया मे आत्मस्वरूप राम है। **काया माँही कला अनेक** = जैसे लोक मे गीत, वाद्य,नृत्य आदि काम शास्त्र की ६४ कला तथा अन्य अनेक कलाएँ है, वैसे ही शरीर मे भी इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि आदि अनेक कला है। **काया माँहीं कर्ता एक** = जैसे ब्रह्माड मे प्रेरक कर्त्ता एक ईश्वर ही हैं, वैसे ही काया मे भी वह एक ही प्रेरक कर्त्ता है। **काया माँहीं लागै रँग** = परमेश्वर की भक्ति रूप रग काया मे ही लगता है। **काया माँहीं सांई संग** = ईश्वर व्यापक होने से काया मे जीव के साथ ही है। **काया माँही सरवर तीर, काया माँही कोकिल कीर** = काया मे हृदय सरोवर है और उसके तीर पर काया मे ही बुद्धि रूप कोकिल, मन रूप शुक[१] पक्षी है। **काया माँहीं कच्छप नैन** = जैसे कूर्म की दृष्टि एकाग्र अडो पर रहती है, वैसे ही परब्रह्म मे लगी विचार रूप दृष्टि कच्छप-नेत्र काया मे है। **काया माँही कुंजी बैन** = जैसे क्रौंच[२] पक्षी की आवाज एक अडाकार वृत्ति रखते हुये होती है, वैसे ही काया मे एक ब्रह्माकार वृत्ति रखते हुये ध्यानावस्था मे वचन व्यवहार होता है। **काया माँहीं कमल प्रकाश** = साधन-सूर्य की किरणो से काया मे हृदय-कमल खिलता है। **काया माँहीं मधुकर वास** = उक्त कमल की ब्रह्म रूप सुगध का अनुभव मन-भ्रमर काया मे रहता है। **काया माँहीं नाद कुरग** = जैसे लोक मे नाद पर मृग[३] मोहित होता है, वैसे ही काया मे शब्द से श्रवण इन्द्रिय रूप मृग मोहित होता है। **काया माँहीं ज्योति पतग** = जैसे लोक मे ज्योति पर पतग मोहित होता है, वैसे ही काया मे नेत्र रूप पतग रूप-ज्योति पर मोहित होता है। **काया माँहीं चातक मोर** = जैसे स्वाति बिन्दु के लिए चातक पुकारता है, वैसे ही काया मे इच्छित वस्तु के लिए मन रूप चातक पुकारता है। जैसे बादल से जल वृष्टि के लिए मोर पुकारते है वैसे ही काया मे प्राण रूप मोर जल के लिए पुकारते है। **काया माँहीं चन्द चकोर** = जैसे चन्द्रमा पर चकोर दृष्टि स्थिर रखता है, वैसे ही काया मे सत चित्त रूप चकोर, ब्रह्म रूप चन्द्रमा पर चिन्तन रूप दृष्टि सदा रखता है। **काया माँही प्रीति कर** = काया मे ही इन्द्रियो द्वारा प्रभु से प्रीति करो। **काया माँहीं सनेह** = शरीर मे ही मन द्वारा प्रभु से स्नेह करो। **काया माँहीं प्रेम रस** = शरीर मे ही प्रभु-प्रेम रस प्राप्त होता है। **दादू गुरुमुख येह** = ये उक्त सभी बाते गुरुमुख द्वारा जान कर साधन करने से काया मे प्रत्यक्ष भासती है।

३६२-राज विद्याधर ताल

काया माँहीं तारणहार, काया माँही उतरे पार।
काया माँहीं दुस्तर तारे, काया माँहीं आप उबारे॥ १॥
काया माँही दुस्तर तिरे, काया माँहीं होइ उद्धरे।
काया माँहीं निपजै आइ, काया माँहीं रहै समाइ॥ २॥
काया माँहीं खुले कपाट, काया माँहीं निरंजन हाट।
काया माँहीं है दीदार, काया माँहीं देखणहार॥ ३॥
काया माँहीं राम रग राते, काया माँहीं प्रेम रस माते।
काया माँहीं अविचल भये, काया माँहीं निहचल रहे॥ ४॥

काया मॉँहीं जीवै जीव, काया मॉँहीं पाया पीव।
काया मॉँहीं सदा अनंद, काया मॉँहीं परमानंद॥ ५ ॥
साखी - **काया मॉँहीं कुशल है, सो हम देख्या आइ।**
दादू गुरुमुख पाइये, साधु कहैं समझाइ॥ ६ ॥

काया मांहीं तारणहार = ससार सिन्धु से तारने वाला परमात्मा आत्मरूप से काया मे है। **काया मांहीं उतरे पार** = साधक काया मे रहते ही भक्ति-ज्ञानादि द्वारा ससार के पार गये है। **काया मांहीं दुस्तर तारे** = काया मे रहते ही साधक वैराग्यादि साधन द्वारा अपने को दुस्तर भोगाशा से तारता है। **काया मांहीं आप उबारे** = काया मे रहते ही साधन द्वारा जीवात्मा स्वय ही अपना पतन से उद्धार करता है। **काया मांहीं दुस्तर तिरे** = काया मे रहते हुये ही ईश्वर कृपा से साधक दुस्तर काम-क्रोधादि से तिरे हैं। **काया मांहीं होइ उद्धरे** = पूर्व काल के साधक मनुष्य शरीर मे ही हरि मे अनुरक्त होकर मुक्त हुये है। **काया मॉँहीं निपजै आइ** = विषयो से लौटकर मन साधन मे आता है, तब शरीर मे ही ज्ञानादि उत्पन्न होते है। **काया मांहीं रहै समाइ** = ज्ञानादि की उत्पत्ति के अनन्तर शरीरस्थ चेतन मे ही वृत्ति समाई रहती है। **काया मांहीं खुले कपाट** = पूर्व कालीन साधको के अज्ञान कपाट काया मे रहते ही खुले है। **काया मॉंहीं निरंजन हाट** = निरजन ब्रह्म वस्तु को प्राप्त करने योग्य निर्विकल्प समाधि रूप हाट भी काया मे ही है। **काया मॉंहीं है दीदार** = काया मे ही ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। **काया मांहीं देखणहार** = ब्रह्म साक्षात्कार करने वाला जीवात्मा भी काया मे ही है। **काया मांहीं राम रंग राते** = भक्त जन राम-भक्ति-रग मे अनुरक्त भी काया मे रहते ही होते है। **काया मांहीं प्रेम रस माते** = काया मे रहते हुये ही सत प्रभु-प्रेम मे मस्त होते है। **काया मांहीं अविचल भये** = शरीर रहते हुये ही साधको के मन, बुद्धि आदि स्थिर हुये है। **काया मांहीं निहचल रहे** = काया मे रहते हुये ही सत निश्चल ब्रह्म मे लीन रहे है। **काया मांहीं जीवै जीव** = काया मे ही जीव जीवित कहलाता है। **काया मांहीं पाया पीव** = सतो ने काया मे ही प्रभु को प्राप्त किया है। **काया मांहीं सदा अनंद** = पदार्थ प्राप्ति जन्य आनन्द सदा काया में ही मिलता है। **काया मांहीं परमानन्द** = ब्रह्म प्राप्ति जन्य परमानन्द भी काया मे ही मिलता है। **काया मांही कुशल है, सो हम देख्या आइ** = काया मे जो ब्रह्मानन्द प्राप्त होता है, वह हमने समाधि अवस्था मे आकर प्रत्यक्ष अनुभव किया है। **दादू गुरु मुख पाइये, साधु कहैं समझाइ** = वह ब्रह्मानद गुरुमुख से उपदेश श्रवण करके मनन, निदिध्यासन द्वारा प्राप्त किया जाता है, ऐसा ही सतजन समझा-समझा कर कहते रहते है।

३६३-राज विद्याधर ताल

काया मॉँहीं देख्या नूर, काया मॉँहीं रह्या भरपूर।
काया मॉँहीं पाया तेज, काया मॉँहीं सुन्दर सेज॥ १ ॥

काया माँहीं पुंज प्रकाश, काया माँहीं सदा उजास ।
काया माँही झिलमिल सारा, काया माँहीं सब तैं न्यारा ॥ २ ॥
काया मॉही ज्योति अनन्त, काया माँहीं सदा बसन्त ।
काया माँही खेलै फाग, काया मॉहीं सब वन बाग ॥ ३ ॥
काया मॉहीं खेलैं रास, काया माँही विविध विलास ।
काया माँही बाजै बाजे, काया माहीं नाद धुनि साजे ॥ ४ ॥
काया मॉहीं सेज सुहाग, काया मॉहीं मोटे भाग ।
काया मॉहीं मगलचार, काया माँहीं जै जैकार ॥ ५ ॥

साखी – काया अगम अगाध है, माहीं तूर बजाइ ।
दादू परगट पीव मिल्या, गुरुमुख रहे समाइ ॥ ६ ॥

इति राग सूहा (काया-बेली ग्रथ) समाप्त ॥ २२ ॥ पद १० ॥

काया मांहीं देख्या नूर = सतो ने ब्रह्म स्वरूप का साक्षात्कार काया मे ही किया है। **काया मांहीं रह्या भरपूर** = ब्रह्म व्यापक होने से काया के नख से शिखा पर्यन्त रोम-रोम मे परिपूर्ण है। **काया माँहीं पाया तेज** = ऋषियो ने ब्रह्म-तेज भी काया मे रहते ही पाया था। **काया माहीं सुन्दर सेज** = शरीर मे ही सबसे अधिक सुन्दर हृदय शय्या है। **काया माँहीं पुंज प्रकाश** = साधन द्वारा काया मे ही प्रकाश राशि भासती है। **काया माँही सदा उजास** = शरीर मे सदा ज्ञान रूप प्रकाश रहता है। **काया मांहीं झिलमिल सारा** = शरीर मे ध्यानावस्था के समय विश्व के सार ब्रह्म ज्योति की झिलमिलाहट देखने मे आती है, अत शरीर मे ही है। **काया माहीं सब तैं न्यारा** = ब्रह्मात्मा काया मे रह कर भी सब से अलग ही है। **काया मांहीं ज्योति अनन्त** = जिसका अन्त नही आवे, ऐसी आत्म ज्योति काया मे ही है। **काया मांहीं सदा बसंत** = शरीर मे ब्रह्म साक्षात्कार होने पर सदा वसत के समान आनन्दोत्सव ही रहता है। **काया माहीं खेले फाग** = सतजन काया मे ही अपने प्रियतम प्रभु से परम प्रेम रूप फाग का खेल खेलते हैं। **काया मांहीं सब वन बाग** = जैसे ब्रह्माड मे नन्दनवनादि है वैसे ही शरीर मे सकल्पवन-मन, विचार-वन बुद्धि इत्यादिक सब वन और ज्ञान-बाग शरीर मे है। **काया मांहीं खेलैं रास** = साक्षी चेतन रूप कृष्ण और वृत्ति रूप गोपिकाए शरीर मे रास खेलते है। **काया मांहीं विविध विलास** = शब्दानन्द, रूपानन्द, गधानन्द रसनान्द आदि विविध भाति के सुख काया मे है। **काया माहीं बाजैं बाजे** = अखड नाम चिन्तन रूप बाजे सतो के रोम रोम मे बजते है। **काया मांहीं नाद धुनि साजे** = काया मे ही अनाहत ध्वनि सजाई जाती है अर्थात् क्रम से स्थूल ध्वनियो से सूक्ष्म ध्वनियो मे मन लगाया जाता है। **काया मांहीं सेज सुहाग** = शरीर मे ही हृदय शय्या पर प्रभु साक्षात्कार रूप सुहाग सुख होता है। **काया मांहीं मोटे भाग** = काया मे साधन करने से मानव वड भागी बनता है। **काया माँहीं मंगलचार** = ब्रह्म प्राप्ति होने पर काया मे अति आनन्द रूप मगल का ही व्यवहार होता है। **काया मांहीं जै जैकार** = काया मे ही आसुर गुणो को विजय करने पर जय-

जयकार वाली ध्वनि होने लगती है। **काया अगम अगाध है, माँहीं तूर बजाइ। दादू परगट पीव मिल्या, गुरुमुख रहे समाइ।** = जैसे ब्रह्माड अगम अगाध है, वैसे ही काया भी अगम अगाध है। हमने काया मे ही अनाहत ध्वनि रूप नगाडा बजा कर मन को स्थिर किया, तब काया मे ही प्रत्यक्ष रूप से प्रभु की प्राप्ति हुई है। इस प्रकार गुरुमुख द्वारा श्रवण करी पद्धति से साधन करके शरीर मे ही हम प्रभु से मिले और उसी मे वृत्ति द्वारा समा रहे है।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग सूहा (काया-बेली ग्रथ) समाप्त ॥ २२ ॥

अथ राग वसंत २३

(गायन समय प्रभात ३ से ६ तथा वसत ऋतु)

३६४-भजन भेद। मल्लिका मोद ताल

निर्मल नाम न लीयो जाइ, जाके भाग बडे सोई फल खाइ ॥ टेक ॥
मन माया मोह मद माते, कर्म कठिन ता मॉहिं परे।
विषय विकार मान मन माँहीं, सकल मनोरथ स्वाद खरे ॥ १ ॥
काम क्रोध ये काल कल्पना, मैं मै मेरी अति अहंकार।
तृष्णा तृप्ति न मानै कबहूँ, सदा कुसंगी पंच विकार ॥ २ ॥
अनेक जोध रहै रखवाले, दुर्लभ दूर फल अगम अपार।
जाके भाग बडे सोई फल पावै, दादू दाता सिरजनहार ॥ ३ ॥

सासारिक प्राणियो के और सतो के भजन मे भेद रहता है, यह कह रहे है—सर्व साधारण प्राणियो से भगवान् का निर्मल नाम-चिन्तन नही किया जाता, जिसके महान् भाग्य होते है, वही सत नाम-चिन्तन के आनन्द रूप फल का उपभोग करता है। प्राणियो के मन, मायिक मोह और धनादि मद से मतवाले हो रहे है। प्राणी तो जो निर्दयतापूर्ण कर्म है, उनको कर रहे है। मन मे विषय-विकार, सम्पूर्ण मनोरथ और विषय स्वाद को सत्य मान रहे है। ये जो काल रूप काम, क्रोध, नाना कल्पना, "मै-मै और मेरी" इत्यादि उच्चारण करते हुये अति अहकार कर रहे है, इनकी तृष्णा कभी भी तृप्त नही होती। पच विषय-विकारो मे फँस कर सदा कुसगी बन रहे है। क्षमा, वस्तुविचारादि अनेक योद्धा रक्षक होने पर भी, इस कलियुग मे अगम अपार प्रभु रूप फल प्राप्त होना कठिन है, अत वे दूर ही भास रहे है। जिसके बडे भाग्य होते है, वही सृष्टिकर्त्ता सब कुछ प्रदाता प्रभु रूप फल सशय-विपर्यय रहित प्राप्त करता है।

३६५-(गुजराती) विरह। धीमा ताल

तूं घर आवने[1] माहरे रे, हूं जांउं वारणे ताहरे रे ॥ टेक ॥
रैन दिवस मूने निरखतॉ जाये।
वेलो[2] थई[3] घर आवे रे वाहला[4] आकुल थाये[5] ॥ १ ॥

तिल तिल हूं तो ताहरी वाटडी जोऊं ।
एने[६] रे आँसूडे वाहला मुखडो धोऊं ॥ २ ॥
ताहरी दया करि घर आवे रे वाहला,
दादू तो ताहरो छे रे मां[८] कर टाला[७] ॥ ३ ॥

विरह दिखा रहे है—हे प्रभो ! आप मेरे घर पधारिये[१], मै आपकी बलिहारी जाता हूँ। आप मुझे रात्रि दिन विरह-व्यथा मे देखते जा रहे है, फिर भी क्यो नही आते ? प्रियतम[४] ! बहुत समय[२] व्यतीत हो गया[३], अब तो पधारिये। आपके बिना मेरा मन व्याकुल हो रहा[५] है। मै तो प्रति क्षण आपका मार्ग देख रहा हूँ और प्रियतम ! इन[६] विरह अश्रुओ से अपना मुख धो रहा हूँ। प्रियतम !अन्य प्रकार से आप न आ सके तो अपनी दया करके ही मेरे घर पधारे। मै तो आपका ही हूँ, कोई बहाना[७] करके मुझ से अलग मत[८] रहिये।

३६६- करुणा विनती। तेवरा ताल

मोहन दुख दीरघ तूं निवार, मोहि सतावै बारबार ॥ टेक ॥
काम कठिन घट रहै माँहि, तातै ज्ञान ध्यान दोउ उदै नाँहि ।
गति मति मोहन विकल मोर, तातैं चित्त न आवै नाम तोर ॥ १ ॥
पांचों द्वन्दर देह पूरि, तातैं सहज शील सत रहै दूरि ।
सुधि बुधि मेरी गई भाज, तातैं तुम विसरे महाराज ॥ २ ॥
क्रोध न कबहूँ तजै संग, तातै भाव भजन का होइ भग।
समझि न काई[१] मन मंझारि, तातै चरण विमुख भये श्री मुरारि॥ ३ ॥
अंतरजामी कर सहाइ, तेरो दीन दुखित भयो जन्म जाइ।
त्राहि त्राहि प्रभु तूं दयाल, कहै दादू हरि कर सँभाल॥ ४ ॥

विरह-दु ख पूर्वक विनय कर रहे है—हे विश्व-विमोहन भगवान् ! यह जन्म-मरण रूप विशाल दु ख मुझे बारबार व्यथित कर रहा है, आप इसे दूर करे। जीतने मे अति कठिन काम अन्त करण मे रहता है इसलिए उससे न तो ध्यान करने की योग्यता प्रकट होती है और न आपके स्वरूप का ज्ञान ही प्रकट होता है। हे मोहन ! मेरी बुद्धि आपके स्वरूप सम्बन्धी विचारो मे जाती है, तब कामादि उसे व्याकुल कर देते है, इससे आपका नाम चित्त पर आता ही नहीं। पाचो ज्ञानेन्द्रिये चपल रहती है तथा राग-द्वेषादि द्वन्द्व अन्त करण मे भरे रहते है। इससे निर्द्वन्द्वता, शील और सत्य अन्त करण से दूर ही रहते है। मेरी निर्मल बुद्धि (ज्ञान) मेरे हृदय से भाग गई है, इसी से हे महाराज ! मै आपको भूल गया हूँ। क्रोध कभी भी मेरा साथ नही छोडता, इससे श्रद्धा-भक्ति नष्ट हो जाती है। मन मे पाप रूप काई[१] होने से कोई[१] सुविचार स्थिर नहीं रहते, आने पर भी फिसल जाते है। इससे हे श्री मुरारे ! मेरे मन बुद्धि आदि आपके चरणो से विमुख हो रहे है। हे अन्तर्यामी ! मै आपका हूँ, अति दीन दुखित हो रहा हूँ। इसी अवस्था मे ही मेरा जन्म व्यतीत हो रहा है। मेरी

सहायता करो रक्षा करो, रक्षा करो। प्रभो ! आप दयालु है, मै आप से विनय कर रहा हूँ, मेरी सभाल करिये।

३६७-मन स्थिरार्थ बिनती। एक ताल

मेरे मोहन मूरति राखि मोहि, निश वासर गुण रमूं तोहि ॥ टेक॥
मन मीन होइ ज्यों स्वाद खाइ, लालच लागो जल तैं जाइ ।
मन हस्ती मातो अपार, काम अंध गज लहै न सार ॥ १ ॥
मन पतंग पावक परै, अग्नि न देखै ज्यों जरै ।
मन मृगा ज्यों सुनैं नाद, प्राण तजै यूं जाइ बाद ॥ २ ॥
मन मधुकर जैसे लुब्ध वास, कवल बँधावै होइ नास ।
मनसा वाचा शरण तोर, दादू को राखो गोविन्द मोर॥ ३ ॥

मन की चपलताजन्य क्लेश से रक्षार्थ विनय कर रहे है—हे मेरे मोहन ! मुझे अपने स्वरूप मे सलग्न रखिये। मै रात्रि-दिन आपके गुणो मे रमण करता रहू, ऐसी कृपा करिये। जैसे मच्छी स्वाद-वश लोभ मे लगकर मास युक्त कटक खाती है, तब जल से बाहर जाती है,वैसे ही यह मन आपके स्वरूप को छोड़ कर विषयो मे जाता है। जैसे कामाध गज अत्यधिक मस्ती मे आकर कागज की हथिनी पर पडता है, वैसे ही यह मन आपके स्वरूप-ज्ञान रूप सार को न ग्रहण करके काम-वश हो बन्धन मे पड़ता है। जैसे पतग दीप-ज्योति रूप अग्नि मे पडकर जलता है, वैसे ही यह मन सुन्दर रूप को अग्नि न समझ कर उसमे पडता है और चिन्ता से जलता है। जैसे मृग नाद सुनने के लिए प्राण छोड़ देता है, वैसे ही यह मन अनुचित शब्दो पर जाकर व्यर्थ दु ख पाता है। जैसे भ्रमर गध के लोभ से सायकाल मे सूर्यमुखी कमल पर जाकर बैठता है और कमल-कोश बन्द होने पर उसी मे बन्द होकर नाश हो जाता है, वैसे ही मन गधाधीन होकर व्यथित होता है। हे मेरे गोविन्द ! मै मन वचन से आपकी शरण हूँ, मेरे मन को अपने स्वरूप मे स्थिर करके उसकी चलपता जन्य दु ख से मेरी रक्षा करिये।

३६८-उपदेश। एक ताल

बहुरि न कीजै कपट काम, हृदय जपिये राम नाम ॥ टेक॥
हरि पाखैं[1] नहिं कहूँ ठाम, पीव बिन खडभड गॉव गाँव ।
तुम राखो जियरा अपनी माँम[2], अनत जनि जाय रहो विश्राम ॥ १ ॥
कपट काम नहिं कीजै हांम[3], रहु चरण कमल कहु राम नांम ।
जब अंतरयामी रहै जांम[4], तब अक्षय पद जन दादू प्रांम[5] ॥ २ ॥

उपदेश कर रहे है—फिर कभी भी कपट पूर्ण काम न करना। हृदय मे हरि का ध्यान करते हुये राम-नाम जपना चाहिए। हरि बिना[1] कही भी शाति का स्थान नही है। प्रभु रक्षा न करे तो प्रति ग्राम मे गडबड़ हो सकती है। तुम मन तथा अपनी ममता[2] प्रभु मे ही रक्खो। अन्य मे ममता न जायगी, तब ही सुख से रह सकोगे। कपट-पूर्ण काम के करने की हिम्मत[3] न करो। वृत्ति द्वारा

भगवत् चरण-कमलो मे रहते हुये राम का नाम कहो। जब अन्तर्यामी प्रभु एक पहर भी तुम्हारे हृदय मे प्रकट होकर रहेगे तो तुम भक्त बनकर अक्षय पद प्राप्त कर लोगे।

(उक्त भजन पीथा को दुबारा डाका मारने पर कहा था।)

३६९-परिचय प्राप्ति। कड्डुक ताल

तहँ खेलू पीव सू नित ही फाग, देख सखी री मेरे भाग ॥ टेक॥
तहँ दिन दिन अति आनन्द होइ, प्रेम पिलावे आप सोइ।
सगियन सेती रमूं रास, तहँ पूजा अर्चा चरण पास ॥ १ ॥
तहँ वचन अमोलक सब ही सार, तहँ बरतै लीला अति अपार ।
उमग देइ तब मेरे भाग, तिहिं तरुवर फल अमर लाग ॥ २ ॥
अलख देव कोइ जाणै देव, तहँ अलख देव की कीजे सेव।
दादू बलि बलि बारबार, तहँ आप निरंजन निराधार ॥ ३ ॥

प्रत्यक्ष प्राप्ति का परिचय दे रहे है—हे सखी ! देख तो सही, मेरा कैसा सौभाग्य है जो ध्यानावस्था मे मै अपने प्रियतम प्रभु के साथ प्रतिदिन होली के उत्सव के समान प्रेम का खेल खेलती हूँ। उन प्रभु के पास प्रतिदिन ही आनद होता रहता है, वे स्वय ही मुझे प्रेम-प्याला पिलाते है। मै अपने साथी अन्त करण इन्द्रियो के सहित उन प्रभु से रास खेलती हूँ। वहा उन प्रभु के चरणो के पास रह कर ही अर्चना भक्ति द्वारा उनकी आराधना करती हूँ। वहा का वचन-व्यवहार सभी प्रोत्साहन सार रूप ओर अमूल्य होता है तथा अति अपार लीलाये होती रहती है। प्रभु मेरे भाग्यवश प्रसन्न होकर मुझे देगे, तब मेरे साधन वृक्ष पर अमर करने वाला अभेद ज्ञान रूप फल लगेगा। वे प्रभु मन-इन्द्रिय के अविषय है, उन निरजन देव के रहस्यमय स्वरूप का आदि अन्त कोई नहीं जान सकता। वहा ध्यानावस्था मे ही, उन अलख देव की सेवा करनी चाहिए। जो सविकल्प समाधि मे निरजन, निराधार, प्रभु भासते है, उनकी मै बारबार बलिहारी जाती हूँ।

३७०-परिचय सुख वर्णन। पद् ताल

मोहन माली सहज समाना, कोई जानैं साध सुजाना ॥ टेक ॥
काया बाडी माँही माली, तहाँ रास बनाया।
सेवग सौं स्वामी खेलन को, आप दया कर आया ॥ १ ॥
बाहर भीतर सर्व निरतर, सब मे रह्या समाई।
परगट गुप्त गुप्त पुनि परगट, अविगत लख्या न जाई ॥ २ ॥
ता माली की अकथ कहानी, कहत कही नहिं आवै।
अगम अगोचर करत अनंदा, दादू ये जस गावै ॥ ३ ॥

साक्षात्कार जन्य आनन्द का वर्णन कर रहे है—विश्व-बाग लगाने वाले और उसके सरक्षक भगवान् रूप माली स्वाभाविक रूप से सब मे समाये हुये है किन्तु इस प्रकार उनको कोई ज्ञानी सत ही जानते है। जैसे विश्व मे वे है, वैसे ही काया-वाटिका मे भी है। वे स्वामी मुझ सेवक

के साथ क्रीडा करने के लिए स्वय ही दया करके मेरे हृदय मे प्रकट हो आये है और वृत्ति रूप गोपियो के साथ रास रच कर आनन्द दे रहे है, तो भी वे विश्व के बाहर भीतर स्थित रहते हुये निरतर सब मे समाये हुये रहते है। वे कभी हृदय मे प्रकट रूप से भासते है, तो कभी गुप्त हो जाते है, गुप्त होकर पुन प्रकट हो जाते है। वे इन्द्रियो के अविषय प्रभु बाह्य नेत्रो से नही दीखते। उन प्रभु रूप माली की कथा, अकथनीय है वाणी द्वारा कहने पर भी यथार्थ रूप से कही नही जाती। वे मन से अगम और इन्द्रियो से परे रहकर भी हमारे को परमानन्द देते रहते है और हम उनका उक्त प्रकार यश गान करते रहते है।

३७१-परिचय। षड़ताल

मन मोहन मेरे मन ही मॉहिं, कीजै सेवा अति तहॉ॥ टेक॥
तहँ पायो देव निरंजनां, परगट भयो हरि यह तनां।
नैनन हीं देखूं अघाइ[1], प्रकट्यो है हरि मेरे भाइ॥ १॥
मोहि कर नैनन की सैन देइ, प्राण मूंस[2] हरि मोर लेइ।
तब उपजै मोको इहै बानि, निज निरखत हू सारंगपानि[3]॥ २॥
अंकुर आदैं प्रकट्यो सोइ, बैन बाण ताते लागे मोहि।
शरणैं दादू रह्यो जाइ, हरि चरण दिखावै आप आइ॥ ३॥

साक्षात्कार की स्थिति बता रहे है—मेरे मनमोहन भगवान् मन मे ही स्थित है, उनकी सेवा-पूजा वहा मन मे ही विशेष रूप से करनी चाहिए। वहा ही हमने निरजन देव को प्राप्त किया है। वे हरि दया करके इस शरीर के हृदय-देश मे मेरे भावाधीन ही प्रकट हुये है, मै उन्हे ज्ञान-नेत्रो से तृप्त[1] देखता हू। वे हरि ध्यानावस्था मे मुझे अपने से अभिन्न करने के लिए, अपने हाथ और नेत्रो की सैन देते है तथा मेरे मन को चुरा[2] लेते है। तब मेरे हृदय मे अद्वैत रूप से देखने का स्वभाव उत्पन्न हो जाता है फिर मै भगवान्[3] को निज स्वरूप ही देखने लगता हूँ। यह अद्वैत स्वभाव बीज रूप से मुझ मे आदि काल का ही है। उसी का भक्ति रूप अँकुर प्रकट हुआ है। इस अँकुर के प्रकट होने से ही मेरे सद्गुरु के वचन-बाण लगे है और मै हरि की शरण होकर, भजन द्वारा उनके पास ही जा रहा हूँ। तब ही तो स्वय हरि आकर अपने चरणो का दर्शन कराते हुये मुझे अपने से अभिन्न कर रहे है।

३७२-थकित निश्चल। मदन ताल

मतिवाले पंचूं प्रेम पूर, निमष न इत उत जाहिं दूर॥ टेक॥
हरि रस माते दया दीन, राम रमत ह्वै रहे लीन।
उलट अपूठे भये थीर, अमृत धारा पीवहिं नीर॥ १॥
सहज समाधी तज विकार, अविनाशी रस पीवहिं सार।
थकित भये मिल महल माँहिं, मनसा वाचा आन नाँहि॥ २॥

मन मतवाला राम रंग, मिल आसन बैठे एक संग ।
सुस्थिर दादू एक अंग, प्राणनाथ तहँ परमानंद ॥ ३ ॥

इति राग वसन्त समाप्त ॥ २३ ॥ पद ९ ॥

ससार भ्रमण से हार कर प्रभु स्वरूप मे निश्चल हो रहे है, यह कह रहे है—शुद्ध बुद्धि वाले हम पाचो ज्ञानेन्द्रियो मे प्रभु-प्रेम भर कर स्थित है, अब हमारी इन्द्रियाँ प्रभु को त्याग कर क्षणिक भी इधर-उधर नही जाती और हम दया-दीनता से सपन्न हरि-रस मे मस्त होकर, भजन द्वारा राम मे रमण करते हुये उसी मे लीन रहते है। मन इन्द्रियो को विषयो से वदल कर तथा ससार को पीठ देकर भगवत् स्वरूप मे स्थिर हो रहे है। तालु-मूल से झरने वाली अमृत-धारा को जल के समान पीते है। विकारो को त्याग कर सहज समाधि मे अविनाशी और विश्व के सार ब्रह्मानद रस का पान करते है। समाधि महल मे प्रभु से मिलने के पश्चात् विषयो मे जाने से हार मान गये है। हम मन-वचन से कहते है, अब हमे अन्य कुछ भी प्रिय नहीं लगता, मन भी राम-प्रेम मे मस्त होकर, इन्द्रियो के साथ एक भगवद् स्वरूप आसन पर ही वेठता है। इस प्रकार परमानन्द रूप प्राणनाथ अद्वैत प्रभु के स्वरूप मे ही स्थिर हो रहे है।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग वसन्त समाप्त ॥ २३ ॥

अथ राग भैरूं २४

(गायन समय प्रात काल)

३७३-सद्गुरु तथा नाम महिमा । त्रिताल ।

सतगुरु चरणां मस्तक धरणां, राम नाम कहि दुस्तर तिरणा ॥ टेक ॥
अठ सिधि नव निधि सहजै पावै, अमर अभै पद सुख मे आवै ॥ १ ॥
भगति मुकति बैकुण्ठा जाइ, अमर लोक फल लेवै आइ ॥ २ ॥
परम पदारथ मंगल चार, साहिब के सब भरे भंडार ॥ ३ ॥
नूर तेज है ज्योति अपार, दादू राता सिरजनहार ॥ ४ ॥

गुरु और नाम की महिमा बता रहे है—सद्गुरु के चरणो मे शिर रख कर राम-नाम कहने से प्राणी दुस्तर ससार से पार हो जाता है। अनायास ही अष्टसिद्धि, नव निधि और अमर अभय पद को प्राप्त कर लेता है। सब प्रकार के दु खो से मुक्त होकर सुख मे स्थित होता है। परब्रह्म रूप परम पदार्थ प्राप्त होता है। अन्य भी सब प्रकार मगल का ही व्यवहार होता है। कारण प्रभु के तो सभी वस्तुओ के भडार भरे है, फिर उनके भक्त को क्या नहीं मिलेगा ? जो तेज स्वरूप है, जिनकी स्वरूप ज्योति अपार है, उन्हीं सृष्टिकर्ता प्रभु के स्वरूप मे, हम सद्गुरु चरणो मे मस्तक रखकर तथा नाम-चिन्तन करके ही अनुरक्त हुये है।

३७४-उत्तम ज्ञान-स्मरण । चौताल

तन ही राम मन ही राम, राम हृदय रमि राखी ले ।
मनसा राम सकल परिपूरण, सहज सदा रस चाखी ले ॥ टेक ॥
नैनां राम बैनां राम, रसनां राम सँभारी ले ।
श्रवणां राम सन्मुख राम, रमता राम विचारी ले ॥ १ ॥
श्वासैं राम सुरतैं राम, शब्दैं राम समाई ले ।
अंतर राम निरंतर राम, आत्माराम ध्याई ले ॥ २ ॥
सर्वैं राम संगैं राम, राम नाम ल्यौ लाई ले ।
बाहर राम भीतर राम, दादू गोविन्द गाई ले ॥ ३ ॥

श्रेष्ठ ज्ञान तथा श्रेष्ठ स्मरण बता रहे है—तन, मन और हृदय मे राम रम रहे है उन्ही का ध्यान रख । राम बुद्धि मे तथा सब मे परिपूर्ण है । सहजावस्था मे जाकर सदा राम-रस का आस्वादन कर नेत्रो से राम को देख, वचन से राम बोल, रसना से रसास्वादन करते हुये भी राम का चिन्तन कर, श्रवणो से राम सम्बन्धी शब्द सुन और विचार पूर्वक राम को सब मे रमने वाला जान कर, सन्मुख भी राम को ही देख । प्रत्येक श्वास, वृत्ति, और शब्द मे राम को समाहित रख, राम निरतर सबके भीतर स्थित है । राम को आत्म स्वरूप जान कर उनकी आराधना कर, राम सर्व रूप है, सबके सग है, ऐसा समझ कर राम-नाम मे वृत्ति लगा । राम को बाहर-भीतर समान जान कर, वेद प्राणी द्वारा प्राप्त होने वाले राम का नाम और यश गान करते हुये उन्हे प्राप्त कर ले ।

३७५-उत्तम स्मरण । मदन ताल ।

ऐसी सुरति राम ल्यौ लाइ, हरि हृदय जनि बिसरि जाइ ॥ टेक ॥
छिन छिन मात सँभारै पूत, बिंद राखै जोगी अवधूत ।
त्रिया कुरूप रूप को रटै, नटणी निरख बांस बरत[1] चढै ॥ १ ॥
कच्छप दृष्टि धरै धियांन, चातक नीर प्रेम की बांन ।
कुंजी कुरलि सँभालै सोइ, भृंगी ध्यान कीट को होइ ॥ २ ॥
श्रवणों शब्द ज्यों सुनै कुरंग, ज्योति पतंग न मोडै अंग ।
जल बिन मीन तलफि ज्यों मरै , दादू सेवक ऐसैं करै ॥ ३ ॥

श्रेष्ठ स्मरण पद्धति बता रहे है—राम के स्वरूप में ऐसी दृढ वृत्ति लगाओ कि वृत्ति विषयो मे जाकर हरि का स्मरण कभी न भूल सके, निरतर हृदय मे स्मरण बना रहे जैसे माता अपने नवजात शिशु को बारबार सँभालती है । अवधूत योगी विशेष सयम से वीर्य की रक्षा करता है । कुरूपा नारी रूपवती होने का चिन्तन करती है । नटनी बॉसो पर बधे हुये रस्से[1] पर चढ कर, उस रस्से को ध्यान से देखती है । कछुवी अपनी दृष्टि अडो पर रखती है । चातक पक्षी स्वाति जल से प्रेम रखता है, अपने स्वभाव को नही छोड़ता । कूजी बोलते हुये स्मरण वृत्ति से अडो को पोषती है । कीट को

भृगी ध्यान द्वारा भृग बना देता है। मृग ध्यान पूर्वक शब्द सुनता हे। पतग दीप ज्योति से अपने शरीर को न हटाकर उससे प्रेम करता है। मच्छी जल बिना मर जाती हे। उक्त सभी प्रेमियो के समान भक्त भगवान् का सप्रेम स्मरण करता हे, वही उत्तम स्मरण कहलाता है।

३७६-स्मरण फल। एक ताल

निर्गुण राम रहै ल्यौ लाइ, सहजै सहज मिलै हरि जाइ ॥ टेक॥
भौजल व्याधि लिपै नहि कबहूँ, कर्म न कोई लागै आइ ।
तीनो ताप जरै नहि जियरा, सो पद परसै सहज सुभाइ ॥ १ ॥
जन्म जरा जोनी नहिं आवै, माया मोह न लागै ताहि ।
पाचो पीड प्राण नहि व्यापै, सकल सोधि सब इहै उपाइ ॥ २ ॥
सकट सशय नरक न नैनहु, ताको कबहूँ काल न खाइ ।
कप[1] न काई भय भ्रम भागै, सब विधि ऐसी एक लगाइ ॥ ३ ॥
सहज समाधि गहो जे दिढ कर, जासौ लागै सोई आइ ।
भृंगी होइ कीट की न्याँई[1], हरि जन दादू एक दिखाइ ॥ ४ ॥

स्मरण का फल बता रहे है—निर्गुण राम मे वृत्ति लगाकर स्थिर रहने से साधक शनै शनै वृत्ति द्वारा जाकर हरि से मिलता है। ससार-सिन्धु के दु ख रूप जल से लिपायमान नहीं होता। हरि मे मन रहने से कुकर्म नही होता। इससे कुकर्म का फल कोई भी पाप आकर हृदय मे नही लगता। जिसमे दैहिक, दैविक, भौतिक इन तीनो तापो से हृदय नही जलता, वह पद अनायास ही प्राप्त होता है। योनि मे आकर जन्म-जरावस्था को प्राप्त नही होता। उस भक्त के हृदय मे मायिक मोह नही लगता। पच विषय जन्य दु ख मन को नही होता। हमने सर्व प्रकार सब कुछ खोज लिया है, इस ससार मे परम सुख का उत्तम उपाय तो यह हरि स्मरण ही है। इसके करने वाले प्राणी का मन कभी सकट और सशय मे नही पड़ता। वह अपने नेत्रो से नरक नहीं देखता। उसे कभी भी काल नही खाता। उसके हृदय मे मल विक्षेप रूप कीच[1] और पाप रूप काई नही रहती, भय और भ्रम भाग जाते है। अत सब प्रकार से उस एक प्रभु मे ही ऐसी दृढ वृत्ति लगाओ, जिससे सहज समाधि होकर उसका दर्शन हो जाय। दृढ़ता से जिसका नाम ग्रहण करके जिसमे लग जाता है, वही हृदय मे आ जाता है, यह नियम है। जैसे कीट भृगी बन जाता है, उसकी तरह[1] भक्त हरि बन जाता है, फिर दोनो एक रूप ही दिखाई देते है।

३७७-आशीर्वाद। षड्ताल

धन्य धन्य तूं धन्य धणी, तुम सौ मेरी आइ बणी ॥ टेक॥
धन्य धन्य तू तारे जगदीश, सुर नर मुनिजन सेवै ईश ।
धन्य धन्य तू केवल राम, शेष सहस्र मुख ले हरि नाम ॥ १ ॥

धन्य धन्य तूं सिरजनहार, तेरा कोई न पावै पार ।
धन्य धन्य तूं निरंजन देव, दादू तेरा लखै न भेव ॥ २ ॥

आशीर्वादात्मक मगल कर रहे है—हे स्वामिन्! आपकी शरण आने पर ही मेरी बात ठीक बनी है अर्थात् शाति मिली है। आप धन्य है, धन्य है, धन्य है। हे जगदीश! नर, मुनि जन देवता और महादेव भी आपकी भक्ति करते है। आप ही ससार से तारते है। आप धन्य है, धन्य है। हे अद्वैत स्वरूप राम! शेष भी अपने सहस्र-मुखो से आप हरि के नाम लेते है। आप धन्य है, धन्य है। हे सृष्टिकर्त्ता! आपका कोई भी पार नही पा सकता, आप धन्य है, धन्य है। हे निरजन देव! मै भी आपके रहस्य मय स्वरूप का आदि अन्त नही देख सकता। आप धन्य है, धन्य है।

३७८-भयभीत भयानक। दादरा

का जानों मोहि का ले करसी, तनहिं ताप मोहि छिन न विसरसी॥ टेक॥
आगम मोपै जान्यूं न जाइ, इहै विमासण[1] जियरे मॉहिं॥ १ ॥
मै नहिं जानों क्या शिर होइ, तातैं जियरा डरपै रोइ॥ २ ॥
काहू तै ले कछू करै, तातैं मइया जीव डरै॥ ३ ॥
दादू न जानै कैसे कहै, तुम शरणागति आइ रहै॥ ४ ॥

३७८-३८० मे भयानक ससार से डर कर उसका निर्देश कर रहे है—क्या पता है ? उन प्रभु की प्राप्ति बिना काल मुझे ग्रहण करके मेरे कर्मानुसार क्या-क्या करेगा ? उन प्रभु की प्राप्ति के बिना दु ख शरीर को एक क्षण भी नही छोडेगा ? भविष्य की बात मुझ से जानी नही जाती। अत मेरे हृदय मे यही विमर्शन[1] (विचार) आता है कि—मेरे शिर पर क्या होने वाला है, मै नही जानता। इसी से मन डर रहा है और मै उन प्रभु की प्राप्ति के लिए रो रहा हूॅ। वे प्रभु किसी के मन-प्राण तो ले लेते है फिर कुछ का कुछ परिवर्तन कर देते है, इसी आवागमन से मेरा मन डर रहा है। मै तो आपकी शरण आ गया हूॅ, अब नही जानता कि—आपको मेरे मन की व्यथा कैसे कहूँ ?

३७९-क्रीड़ा तालश्वण्डनि

का जानों राम! को गति मेरी, मैं विषयी मनसा नहिं फेरी॥ टेक॥
जे मन मॉगै सोई दीन्हा, जाता देख फेरि नहिं लीन्हा॥ १ ॥
देवा द्वन्द्वर अधिक पसारे, पांचों पकर पटक नहिं मारे॥ २ ॥
इन बातन घट भरे विकारा, तृष्णा तेज मोह नहिं हारा॥ ३ ॥
इनहिं लाग मैं सेव न जानी, कहै दादू सुन कर्म कहानी॥ ४ ॥

हे राम! मै नही समझता कि मेरी कौन गति होगी ? कारण मैंने अपनी बुद्धि विषयो से हटाकर आपके स्वरूप मे नही लगाई। जो भी मन ने मॉगा वही उसे दिया, मन को अनुचित विषय मे जाता देखकर भी पीछा नही बदला। इन्द्रिय रूप देवताओ के आधीन होकर, काम-क्रोधादिक

द्वन्द्वो को ही अधिक फैलाया। पच ज्ञानेन्द्रियो को इच्छानुसार देता रहा, सयम द्वारा पकड के तथा भक्ति-भूमि मे पटककर, वेराग्य-दडो से नहीं मारा। इन उक्त विषय-उपभोगादि बातो मे ही लगा रहा। अन्त करण मे विषय-विकार ही भरे। अति तृष्णा और मोह का त्याग नही किया। इनमे लगे रहने के कारण ही मै आपकी भक्ति करना भी न जान सका। वही अपनी कर्म-कथा मै आपको कह रहा हूँ।

३८०-क्रीड़ा तालश्चण्डनि

डरिये रे डरिये, तातैं राम नाम चित धरिये ॥ टेक ॥
जिन ये पंच पसारे रे, मारे रे ते मारे रे ॥ १ ॥
जिन ये पंच समेटे रे, भेटे रे ते भेटे रे ॥ २ ॥
कच्छप ज्यो कर लीये रे, जीये रे ते जीये रे ॥ ३ ॥
भृगी कीट समाना रे, ध्याना रे यहु ध्याना रे ॥ ४ ॥
अजा[1] सिंह ज्यो रहिये रे, दादू दर्शन लहिये रे ॥ ५ ॥

अरे! परमेश्वर से डरो, डरो! वे राम-नाम चिन्तन से प्रसन्न होते है, इसलिये राम-राम को चित्त मे रक्खो। जिन लोगो ने इन पच ज्ञानेन्द्रियो को विषयो मे फैलाया है, वे बारबार यम दूतो के द्वारा मारे गये है और जिन्होंने विषयो मे फैले हुये इन पचो को एकत्र करके प्रभु के स्वरूप मे लगाया है, वे प्रतिक्षण प्रभु से मिले रहे है। जैसे कछुआ भय से अपने अगो को अपनी ढाल के नीचे ले आता है, वैसे ही जिनने अपने मन, बुद्धि और इन्द्रियो को आत्म परायण किया है वे ब्रह्म रूप होकर प्रति युग मे जीवित रहे है। ब्रह्म रूप होने के लिए जैसे कीट भृगी का ध्यान करता है, वैसे ही ब्रह्म का ध्यान करना चाहिए। यही ध्यान वास्तविक ध्यान है। जैसे दो सिहो के पिजरो के बीच बकरी[1] बाध दी जाय और उसे खाने-पीने को भी खूब दिया जाय तो भी वह सिहो के भय से भीत रह कर स्थूल नही होती, वैसे ही काल और भगवान् के भय से युक्त होकर जो भजन करता है, वह विषयो से नही फूलता और अन्त मे भगवद् दर्शन करता है।

३८१-हरि प्राप्ति दुर्लभ। त्रिताल

तहँ मुझ कमीन[1] की कौन चलावै, जाको अजहुँ मुनिजन महल न पावै ॥ टेक ॥
शिव विरचि नारद यश गावै, कौन भाति कर निकट बुलावक़े ॥ १ ॥
देवा सकल तेतीसो क्रोरि, रहे दरबार ठाढे कर जोरि ॥ २ ॥
सिध साधक रहे ल्यौ लाइ, अजहूँ मोटे महल न पाइ ॥ ३ ॥
सब तै नीच मै नाम न जाना, कहै दादू क्यो मिलै सयाना ॥ ४ ॥

भगवद् मिलन कठिन है, यह कह रहे है—उन परमेश्वर के पास मुझ तुच्छ[1] की बात कौन चलायेगा ? जिनके स्वरूप-महल को मुनिजन अति प्रयत्न करके अभी तक भी प्राप्त न कर सके है। शिव, ब्रह्मा और नारदादि देवर्षि जिनका यश-गान करते है, वे मुझे किस रीति से अपने समीप बुलायेगे ? जिनके दरबार के द्वार पर तेतीस कोटि सब देवता हाथ जोड़ कर खड़े रहते है। सिद्ध

और साधक जन अपनी वृत्ति जिनके स्वरूप मे लगा कर स्थिर रहते है, किन्तु अभी भी जिसमे सपूर्ण विश्व रहता है, ऐसे विशाल महल रूप प्रभु को नही पा सके है, तब मै तो सबसे तुच्छ हूँ और उनके नाम का वास्तविक रीति से चिन्तन करना भी नही जान सका हूँ, फिर वे परम चतुर प्रभु मुझ से कैसे मिलेगे ? उनका मिलना कठिन ही है।

३८२ करुणा विनती। त्रिताल

तुम बिन कहु क्यों जीवन मेरा, अजहूँ न देख्या दर्शन तेरा॥ टेक॥
होहु दयाल दीन के दाता, तुम पति पूरण सब विधि साचा ॥ १ ॥
जो तुम करो सोइ तुम्ह छाजे, अपने जन को काहे न निवाजै ॥ २ ॥
अकरन करन ऐसैं अब कीजै, अपनौं जान कर दर्शन दीजै ॥ ३ ॥
दादू कहै सुनहु हरि सांईं, दर्शन दीजै मिलो गुसांईं ॥ ४ ॥

दु खपूर्वक दर्शनार्थ विनय कर रहे है—हे प्रभो ! मै अति प्रयत्न करके भी अभी तक आपका दर्शन न कर सका, तो कहिये, आपके बिना अब मेरा जीवित रहना कैसे सभव होगा ? हे स्वामिन् ! आप सब मे परिपूर्ण और सब प्रकार सत्य का पालन करने वाले है, दीनो के लिए देवता कहलाते है । अत आप मुझ पर दयालु होकर अपनी दयालुता का यथार्थ परिचय दीजिये। आप तो जो भी करते है, वही आप को शोभा देता है, फिर अपने भक्त पर क्यो नही दया करते ? न करने योग्य के भी करने वाले प्रभो ! अब तो इस प्रकार अनुग्रह कीजिये कि—मुझे अपना जानकर दर्शन दीजिये। हे विश्व स्वामिन् हरे ! मै आप से प्रार्थना कर रहा हूँ, प्रभो ! मुझे दर्शन देकर मुझ से मिले।

३८३-उपदेश चेतावनी। पंजाबी त्रिताल

कागा रे करंक[1] पर बोलै, खाइ मांस अरु लग[2] ही डोलै ॥ टेक॥
जा तन को रचि अधिक सँवारा, सो तन ले माटी में डारा ॥ १ ॥
जा तन देख अधिक नर फूले, सो तन छाडि चल्या रे भूले ॥ २ ॥
जा तन देख मन में गर्वाना, मिल गया माटी तज अभिमाना ॥ ३ ॥
दादू तन की कहा बडाई, निमष माँहिं माटी मिल जाई ॥ ४ ॥

उपदेश द्वारा सावधान कर रहे है—अरे ! जैसे मृतक पशु के पजर[1] पर काक पक्षी बैठकर बोलता है और मास खाकर पास[2] ही फिरता रहता है, वैसे ही ससार के प्राणी स्वार्थी है, अपनी आशा पूर्ति के लिए आकर बोलते है, प्रेम करते है, पास-पास फिरते है। जिस शरीर को तूने वस्त्र, भूषणादि श्रृगार रचकर अधिक सुन्दर बनाया है, वही तन उठाकर मिट्टी मे डालेगे। जिस शरीर को देखकर मनुष्य बहुत प्रसन्न होता था और फूला नही समाता था, उस शरीर को छोड कर चला गया। यह देखते हुए भी शरीराध्यास से सब प्रभु को भूल रहे है। जिस सुन्दर शरीर को देखकर प्राणी मन मे गर्व करता था, वह भी मिट्टी मे मिल गया है। अत शरीर के अभिमान को छोड राम नाम जप। अरे ! इस शरीर की क्या बडाई करता है, यह निमेष में मिट्टी मे मिल जाने वाला है।

३८४-उपदेश । त्रिताल

जप गोविन्द विसर जनि जाइ, जन्म सुफल करिये लै लाइ ॥ टेक॥
हरि सुमिरण सौ हेत लगाइ, भजन प्रेम यश गोविन्द गाइ ।
मानुष देह मुक्ति का द्वारा, राम सुमिर जग सिरजनहारा ॥ १ ॥
जब लग विषम व्याधि नहि आइ, जब लग काल काया नहि खाइ ।
जब लग शब्द पलट नहिं जाइ, तब लग सेवा कर राम राइ ॥ २ ॥
अवसर राम कहसि नहि लोई[1], जनम गया तब कहै न कोई ।
जब लग जीवै तब लग सोई, पीछै फिर पछतावा होई ॥ ३ ॥
साई सेवा सेवक लागे, सोई पावै जे कोई जागे ।
गुरुमुख भरम तिमर सब भागे, बहुरि न उलटे मारग लागे ॥ ४ ॥
ऐसा अवसर बहुरि न तेरा, देख विचार समझ जिय मेरा ।
दादू हारि जीत जग आया, बहुत भाति कह-कह समझाया ॥ ५ ॥

३८४-३८५ मे हितकर उपदेश कर रहे है—अरे मन ! गोविन्द का नाम जप, गोविन्द को भूल कर ससार मे क्यो भटक रहा है ? भगवान् के स्वरूप मे वृत्ति लगा कर अपने जन्म को सफल कर। हरि स्मरण से स्नेह लगाकर भजन कर, प्रेम से गोविन्द का यश गान कर। मनुष्य देह मुक्ति-महल का द्वार है, इसमे जगत् के रचने वाले राम का स्मरण कर। जब तक शरीर मे भयकर रोग नही आवे, शब्द न बदले अर्थात् वाणी विकल न हो और शरीर को काल न खाय, उससे पहले ही विश्व के राजा राम की भक्ति कर ले। लोग[1] राम भजन करने के समय मे तो भजन करते नहीं, फिर जन्म व्यतीत हो जायगा तब अन्त समय मे राम-राम कोई भी न कह सकेगा। जब तक सुख से जीते है, तब तक तो मोह निद्रा मे सोते है, फिर पीछे वृद्धावस्था मे दु ख पड़ेगा तब पश्चात्ताप ही होगा। जो कोई सेवक मोह निद्रा से जाग कर प्रभु की भक्ति मे लगे है, वे ही प्रभु को प्राप्त करेंगे। गुरुमुख द्वारा सुने उपदेश से भ्रम रूप सम्पूर्ण अधकार हृदय से भाग जाता है, तब प्राणी विपरीत मार्ग मे नही जाता। अरे मन ! विचार द्वारा समझ कर देख, ऐसा समय पुन तेरे हाथ न लगेगा। मैंने तुझे बहुत प्रकार कह-कह कर समझाया है कि—तू जगत् मे जीतने के लिए मनुष्य शरीर मे आया है, फिर हार क्यो रहा है ? भजन-विचार करके मोह-दल को शीघ्र विजय कर।

३८५-प्रतिताल

राम नाम तत काहे न बोलै, रे मन मूढ अनत जनि डोलै ॥ टेक ॥
भूला भरमत जन्म गमावै, यहु रस रसना काहे न गावै ॥ १ ॥
क्या झक औरै परत जजालै, वाणी विमल हरि काहे न सँभालै ॥ २ ॥
राम विसार जन्म जनि खोवै, जपले जीवन साफल होवै ॥ ३ ॥
सार सुधा सदा रस पीजै, दादू तन धर लाहा[1] लीजै ॥ ४ ॥

अरे मूर्ख मन ! अन्य स्थानो मे क्यो भटकता है ? कल्याण-साधनो का सार राम-नाम क्यो नहीं बोलता ? भ्रम वश भूल कर भटकते हुये अपने मानव जन्म को व्यर्थ खो रहा है, राम का नाम तथा यश-गान करते हुये यह उत्तम रस रसना से क्यो नही लेता ? क्यो व्यर्थ परिश्रम करके यम-जाल मे पडता है ? सतो की पवित्र वाणी का आश्रय लेकर हरि स्मरण क्यो नही करता ? राम को भूल कर जन्म व्यर्थ क्यो खो रहा है ? राम नाम का जप कर, जिससे तेरा जीवन सफल हो। अरे, साधनो का सार स्मरण-सुधा-रस का सदा पान कर, मानव शरीर को धारण करके यह लाभ[१] तो अवश्य ले।

३८६-तत्त्वोपदेश। प्रतिताल

आप आपण में खोजो रे भाई, वस्तु अगोचर गुरु लखाई ॥ टेक ॥
ज्यों मही बिलोयें माखण आवै, त्यों मन मथियॉ तैं तत पावै॥ १ ॥
काष्ठ हुताशन[१] रह्या समाई, त्यों मन मॉहीं निरंजन राई ॥ २ ॥
ज्यो अवनी[२] मे नीर समाना, त्यों मन मॉहीं साच सयाना॥ ३ ॥
ज्यों दर्पण के नहिं लागै काई, त्यो मूरति मॉहीं निरख लखाई॥ ४ ॥
सहजैं मन मथियां तत पाया, दादू उन तो आप लखाया॥ ५ ॥

आत्म तत्त्व प्राप्ति के लिए उपदेश कर रहे है—हे भाई ! तुम स्वय ही गुरु की बताई हुई पद्धति से भजन-विचारादि साधन द्वारा इन्द्रियातीत आत्म वस्तु को खोजोगे, तब गुरुदेव सकेत मात्र से ही तुम्हे दिखा देगे। जैसे दही को मन्थन करने से मक्खन हाथ आता है, वैसे ही मन मे ध्यान-विचार करने से आत्म-तत्त्व प्राप्त होता है। जैसे काष्ठ मे व्यापक अग्नि[१] रहता है, वैसे ही मन मे विश्व के राजा निरजन ब्रह्म है। जैसे पृथ्वी[२] मे जल है, वैसे ही हे चतुर ! मन मे सत्य ब्रह्म है। जैसे दर्पण मे स्थित प्रतिविम्ब के दर्पण का मैल नही लगता, वैसे ही शरीर मे स्थित आत्म-स्वरूप ब्रह्म को शरीर के विकार नही लगते। तू विचार द्वारा देख, तो दिखाई देगा। जिसने मन से ध्यान-विचार किया है, उसने सहज ही ब्रह्मात्म-तत्त्व को प्राप्त किया है और उसने अन्य साधको को भी निजात्म-रूप से ब्रह्म का साक्षात्कार कराया है।

३८७-उपदेश। धीमा ताल

मन मैला मन ही सौं धोइ, उनमनि लागै निर्मल होइ ॥ टेक ॥
मन ही उपजै विषय विकार, मन ही निर्मल त्रिभुवन सार ॥ १ ॥
मन ही दुविधा नाना भेद, मन ही समझै द्वै पख छेद ॥ २ ॥
मन ही चंचल चहुँ दिशि जाइ, मन ही निश्चल रह्या समाइ ॥ ३ ॥
मन ही उपजै अग्नि शरीर, मन ही शीतल निर्मल नीर ॥ ४ ॥
मन उपदेश मनहि समझाइ, दादू यहु मन उनमनि लाइ ॥ ५ ॥

मन को समाधि द्वारा स्वरूप मे लगाने का उपदेश कर रहे है—पापो से मन मलीन हो गया है, उस मैल को मन के द्वारा ही पवित्र-निष्काम कर्म करके धोओ। जब मन निर्मल होगा, तब समाधि मे लगेगा वा समाधि मे लगकर ही परम निर्मल होगा। कुसग द्वारा मन मे ही विषय-विकार उत्पन्न होते है और जब सत्सग द्वारा मन निर्विकार होकर निर्मल होता है तब मन ही मे त्रिभुवन के सार परमात्मा का ज्ञान होता है। भेदवादियो के सग से मन ही मे नाना भेद तथा दुविधा खडी होती है और अद्वैतवादियो के सग से मन ही मे अभेद विचार उत्पन्न होकर द्वैत-पक्ष का छेदन होता है। विषयो के सग से मन मे ही चचलता उत्पन्न होती है और वह चारो दिशाओ मे गमन करता है तथा भगवद् ध्यान द्वारा मन ही निश्चल स्थिति मे आकर प्रभु स्वरूप मे समाया हुआ रहता है। प्रतिपक्ष के कारण मन ही से शरीर मे क्रोधाग्नि उत्पन्न होती है। अनुकूल परिस्थिति से मन ही मे शातिरूप निर्मल जल उत्पन्न होता है। अत मन को ही उपदेश द्वारा सम्यक् समझाओ। इस मन को समाधि मे लगाकर ही तुम परब्रह्म का साक्षात्कार कर सकोगे।

३८८-मन प्रति शूरातन। धीमा ताल

रहु रे रहु मन मारूंगा, रती रती कर डारूंगा ॥ टेक ॥
खड खड कर नाखूंगा, जहाँ राम तहँ राखूंगा ॥ १ ॥
कह्या न मानै मेरा, शिर भानूंगा तेरा ॥ २ ॥
घर में कदे न आवै, बाहर को उठ धावै ॥ ३ ॥
आतम राम न जानै, मेरा कह्या न मानै ॥ ४ ॥
दादू गुरुमुख पूरा, मन सौ झूझै शूरा ॥ ५ ॥

मन को जीतने के लिए शौर्यता दिखा रहे है—अरे मन! तू कुमार्ग मे जाने से रुक जा, नहीं रुकेगा तो मै तुझे रत्ती-रत्ती कर डालूगा अर्थात् सकल्प ही नही बनने दूगा। वैराग्य, भजन विचारादि साधनो से मै तेरे टुकडे-टुकड़े कर डालूगा। इस प्रकार तुझे कमजोर करके ध्यानावस्था मे जहा अष्टदल-कमल पर राम का दर्शन होता है वहा ही तुझे स्थिर रक्खूगा। तू मेरा कहा नही मानता, याद रख, मै सयम-दड से तेरा चपलता रूप शिर फोड़ डालूगा। तू अन्तर्मुखता रूप घर मे कभी भी नही आता और बाह्य विषयो मे बारबार दौड़ जाता है। आत्म-स्वरूप राम को जानने का उपाय भी नही करता। तुझे बारबार कहने पर भी तू मेरा कहा नही मानता। इस प्रकार गुरु मुख से सुने उपदेश मे पूर्ण रूप से चलने वाला वीर साधक मन से युद्ध करता रहता है।

३८९-नाम शूरातन। मकरनन्द ताल

निर्भय नाम निरंजन लीजै, इन लोगन का भै नहिं कीजै ॥ टेक ॥
सेवक शूर शंक नहीं मानै, राणा राव रक कर जानै ॥ १ ॥
नाम निशंक मगन मतवाला, राम रसायन पिवै पियाला ॥ २ ॥
सहजैं सदा राम रंग राता, पूरण ब्रह्म प्रेम रस माता ॥ ३ ॥
हरि बलवन्त सकल सिर गाजे, दादू सेवक कैसै भाजै ॥ ४ ॥

नाम चिन्तन करने मे शौर्यता की प्रेरणा कर रहे है—इन सासारिक लोगो का कुछ भी भय न करके निर्भयता पूर्वक निरजन-राम का नाम चिन्तन कर। भक्त वीर किसी का भी भय न मान कर, महाराणा, और राजा आदि को भी रक समान जानकर निर्भयता से राम-चिन्तन मे निमग्न रहता है। इस प्रकार राम-भक्ति रसायन का प्याला पान करके मतवाला बना रहता है। सदा स्वाभाविक रीति से राम-रग मे अनुरक्त रहता है। जो ऐसे पूर्ण ब्रह्म के प्रेम-रस मे मस्त है, वह भक्त किसी से भयभीत होकर भजन से कैसे भागेगा ? कारण-जो सबके शिर पर गर्जना करने वाले अपार बल सम्पन्न हरि है, वे उसके सदा सहायक है, तब उसे किसका भय हो।

३९०-समर्थाई। प्रतिपाल

ऐसो अलख अनंत अपारा, तीन लोक जाको विस्तारा ॥टेक॥
निर्मल सदा सहज घर रहै, ताको पार न कोई लहै।
निर्गुण निकट सब रह्यो समाइ, निश्चल सदा न आवै जाइ ॥ १ ॥
अविनाशी है अपरंपार, आदि अनन्त रहै निरधार।
पावन सदा निरन्तर आप, कला अतीत लिप्त नहिं पाप ॥ २ ॥
समर्थ सोई सकल भरपूर, बाहर भीतर नेडा न दूर।
अकल आप कलै नहिं कोई, सब घट रह्यो निरंजन होई ॥ ३ ॥
अवरण आपैं अजर अलेख, अगम अगाध रूप नहिं रेख।
अविगत की गति लखी न जाइ, दादू दीन ताहि चित लाइ ॥ ४ ॥

प्रभु की सामर्थ्य बता रहे है—यह त्रिलोकी जिनका विस्तरित विराट रूप है, वे प्रभु ऐसे अनन्त अपार है कि—उनका वास्तविक स्वरूप मन इन्द्रियो से नही देखा जाता। वे निर्मल है, सदा सहजावस्था रूप घर मे रहते है, उनका पार कोई भी नही पाता। वे निर्गुण है, सबके समीप और सब मे समाये हुये है। सदा निश्चल रहते है। व्यापक होने से उनमे जाना-आना नही बनता। वे सृष्टि के आदि और अन्त मे भी निश्चय पूर्वक अविनाशी तथा अपरपार रूप से रहते है। वे सदा पवित्र, निरन्तर कला विभाग से रहित रहते है, पाप से लिपायमान नही होते, वे समर्थ सब मे परिपूर्ण है, बाहर भीतर एक रस है, सबके आत्म-स्वरूप होने से समीप वा दूर नही कहे जा सकते। वे स्वय निराकार है, इससे कालादि कोई भी उन्हे नष्ट नही कर सकते। माया रहित होकर भी सबके अन्त करण मे आत्म रूप से स्थित है। उनका कोई रग नही। परिवर्तन बिना स्वय ही जरा रहित है। लेख-बद्ध नही हो सकते। अगम अगाध है, रूप-रेखा रहित है। जिन इन्द्रियो के अविषय प्रभु की सामर्थ्य अपार है, उनकी सीमा देखी नही जा सकती। मै दीन तो उन प्रभु मे ही चित्त लगाये रहता हूँ।

३९१-समर्थ लीला। तिलवाड़ा

ऐसो राजा सेऊ ताहि, और अनेक सब लागे जाहि ॥ टेक ॥
तीन लोक ग्रह धरे रचाइ, चद सूर दोऊ दीपक लाइ।
पवन बुहारे गृह अंगणां, छपन कोटि जल जाके घरां ॥ १ ॥
राते सेवा शंकर देव, ब्रह्म कुलाल[1] न जानै भेव।
कीरति करणा चारो वेद, नेति नेति न विजाणैं भेद॥ २ ॥
सकल देवपति सेवा करै, मुनि अनेक एक चित धरै।
चित्र विचित्र लिखै दरबार, धर्मराइ ठाढे गुण सार॥ ३ ॥
रिधि सिधि दासी आगे रहैं, चार पदारथ जी जी कहै।
सकल सिद्ध रहै ल्यौ लाइ, सब परिपूरण ऐसो राइ॥ ४ ॥
खलक खजीना भरे भडार, ता घर बरतै सब संसार।
पूरि दीवान सहज सब दे, सदा निरजन ऐसो हे॥ ५ ॥
नारद गाये गुण गोविन्द, करै सारदा सब ही छद।
नटवर नाचै कला अनेक, आपन देखै चरित अलेख॥ ६ ॥
सकल साध बाजैं नीशान, जै-जैकार न मेटै आन।
मालिनि पुहप अठारह भार,आपण दाता सिरजनहार॥ ७ ॥
ऐसो राजा सोई आहि, चौदह भुवन मे रह्यो समाहि।
दादू ताकी सेवा करै, जिन यहु रचिले अधर धरै॥ ८ ॥

समर्थ प्रभु की सामर्थ्य रूप लीला दिखा रहे है—मै ऐसे राजा की समीपता सेवन करता हूँ जिसकी सेवा मे अन्य अनेक राजा लगे है, जिसने त्रिलोक रचे है और ग्रहो को रच कर यथा स्थान रक्खे है। सूर्य चन्द्र दो दीपक लगाये है। जिनके घर वायु गृहागण को साफ करते है, छप्पन कोटि जलद जल भरते है, शकरादि देवता सेवा मे अनुरक्त है, प्रजापति[1] और विष्णु शरीरो की रचना व पालन सेवा मे सलग्न है, किन्तु वे भी प्रभु के स्वरूप रहस्य को पूर्ण रूप से नहीं जानते। ऋग्, यजु, साम और अथर्व चारो वेद यश-गान करते है किन्तु उनके स्वरूप रहस्य को विशेष रूप से न जानकर 'यह नही, यह नही'' कह के मौन हो जाते है। सब देवताओ के स्वामी इन्द्र भी उनकी सेवा करते है। अनेक मुनि उन अद्वैत प्रभु मे ही चित्त को लगाये रखते है। जिनके दरबार मे चित्रगुप्त प्राणियो के पाप-पुण्य का हिसाब विचित्र ढग से लिखते रहते है, श्रेष्ठ गुण वाले धर्मराज खड़े रहते है, ऋद्धि-सिद्धि दासी के समान आगे खडी रहती है। अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष, चारो पदार्थ 'जी भगवन्! जी भगवन्' करते रहते है। सपूर्ण सिद्ध अपनी वृत्ति उनके स्वरूप मे लगा कर रहते है, वे ऐसे राजा है, जो सभी कलाओ मे परिपूर्ण है, ससार के लिये उनने धन के कोश और वस्तुओ के भडार भर रक्खे है। सब ससार उन्ही से लेकर सब वस्तुएँ बरतता है। वे महान् प्रभु अनायास ही

भक्तो की कमी पूर्ण कर देते है। वे ऐसा कार्य करने पर भी सदा निरजन ही बने रहते है, माया-अजन उनके नही लगता। नारद उन गोविन्द के गुण-गान करते है, सब प्रकार के छदो से सरस्वती उनकी स्तुति करती रहती है। वे नटवर अनेक कलाओ द्वारा नृत्य करते है और वे अलेख प्रभु अपने चरित्र को आप ही देखते है। सपूर्ण सत ही उनके नगाडे है, उन प्रभु की महिमा रूप ध्वनि उनसे निकलना ही उनका बजना है वा सभी सन्तो के उनकी महिमा रूप नगाडे बजते रहते है, जै जै आकार वाली ध्वनि होती ही रहती है। सन्त उनकी मार्यादा नही मेटते, अठारह भार वनस्पति उनके पुष्प पहुँचाने वाली मालिनी है। वे सृष्टि-कर्ता प्रभु आप ही सबको कर्मानुसार देते रहते है। चौदह भुवनो मे समाये हुये ऐसे जो राजा है, वे ही हमारे उपास्य है। जिनने यह ससार रच कर अधर धर रक्खा है, हम उन्ही प्रभु की सेवा-भक्ति करते है।

यह पद खाटू मे राव रायसिह को कहा था। प्रसगकथा-दृ सु सि त ११-१९ मे देखो।

३९२-जीवित मृतक। एक ताल

जब यहु मैं मैं मेरी जाइ, तब देखत वेग मिलै राम राइ॥ टेक॥
मैं मैं मेरी तब लग दूर, मैं मैं मेटि मिलै भरपूर॥ १॥
मैं मैं मेरी तब लग नॉहिं, मैं मैं मेटि मिलै मन मॉहिं॥ २॥
मैं मैं मेरी न पावै कोइ, मैं मैं मेटि मिलै जन सोइ॥ ३॥
दादू मैं मैं मेरी मेटि, तब तूं जान राम सौं भेटि॥ ४॥

जीवितावस्था मे ही मृतक के समान निर्द्वन्द्व होने से ब्रह्म साक्षात्कार होता है, यह कहते है—जब "मै बली हू, मै धनी हूँ, यह मेरी सम्पत्ति है" इत्यादिक अहकार हृदय से चला जायगा, तब देखते २ जीवितावस्था मे ही शीघ्र विश्व के राजा राम मिल जायेगे। जब तक "मै-मै, मेरी" है तब तक राम दूर ही रहेगे। "मै-मै" को मिटा दे, फिर तो सब विश्व मे परिपूर्ण रूप से भासते हुये तुझे प्रभु मिलेंगे। जब तक "मै मै मेरी" है तब तक वे प्रभु नही के समान ही है। "मै मै" मिटादे फिर तो तेरे मन मे ही तुझे मिल जायेगे। "मै-मै, मेरी" रहते हुये उन प्रभु को कोई भी नही प्राप्त कर सकता। "मै मै" को मिटा कर प्रभु से मिलता है वही भक्त है। पहले "मै मै मेरी" यह अहकार मिटा और जब मिट जाय तब तू समझना कि अब राम से मिलन होगा।

३९३-ज्ञान प्रलह। मदन ताल

नॉहीं रे हम नाँहीं रे, सत्य राम सब मॉहीं रे॥ टेक॥
नाँहीं धरणि अकाशा रे, नाँहीं पवन प्रकाशा रे।
नाँहीं रवि शशि तारा रे, नांहिं पावक प्रजारा रे॥ १॥
नॉहीं पंच पसारा रे, नाँहीं सब संसारा रे।
नहि काया जीव हमारा रे, नहिं बाजी कौतिकहारा रे॥ २॥
नाँहीं तरवर छाया रे, नहीं पंखी नहीं माया रे।
नाँहीं गिरिवर वासा रे, नॉहिं समंद निवासा रे॥ ३॥

नाँहीं जल थल खंडा रे, नाँहीं सब ब्रह्मंडा रे।
नॉही आदि अनता रे, दादू राम रहंता रे ॥ ४ ॥

ज्ञान प्रलय का स्वरूप दिखा रहे है—हम जिस रूप से दिखाई दे रहे है, उस रूप से सत्य नही है। जो हम सब मे आत्म स्वरूप राम हे, वे ही सत्य है। पृथ्वी, आकाश, वायु, प्रकाश, प्रकाश के हेतु सूर्य, चन्द्र और तारे सत्य नही है। भली भाति जलाने वाली अग्नि सत्य नही है। वृक्ष, उनकी छाया, पक्षी, श्रेष्ठ पर्वत तथा उनमे निवास, समुद्र और समुद्र मे निवास, जल और जल के वीच नाना द्वीप रूप स्थल खण्ड, सब ब्रह्माण्ड, पच भूतो का फैलाव सब ससार, काया, हमारा जीवत्व भाव इत्यादिक ससार रूप खेल और माया सत्य नहीं है। जब ससार रूप खेल सत्य नही है, तव उसका कर्त्ता ईश्वर भाव सत्य नही है, कारण-वह भी माया उपाधि से ही भासता है। अत जो आदि-अन्त से रहित अनन्त निरजन राम हे, वे ही सत्य रूप से रहते है।

३९४-मध्य मार्ग निष्पक्ष। षड्ताल

अलह कहो भावै राम कहो, डाल तजो सब मूल गहो॥ टेक॥
अलह राम कहि कर्म दहो, झूठे मारग कहा बहो॥ १॥
साधू सगति तो निबहो, आइ परै सो शीश सहो॥ २॥
काया कमल दिल लाइ रहो, अलख अलह दीदार लहो॥ ३॥
सतगुरु की सुन सीख अहो, दादू पहुँचे पार पहो॥ ४॥

३९४-३९६ मे निष्पक्ष मध्य मार्ग से चलने की प्रेरणा कर रहे है—अल्लाह नाम कहो चाहे राम नाम कहो, ये दोनो एक ही ईश्वर के नाम है। भेद रूप शाखाओ को त्याग कर सबके मूल परमात्मा की शरण ग्रहण करो। अल्लाह वा राम-नाम कहते हुये ज्ञान प्राप्ति द्वारा अपने कर्म-समूह को जलाओ। ससार के मिथ्या मार्ग मे क्यो जाते हो ? सन्तो की सगति करोगे, तब ही तुम्हारा सत्य-मार्ग मे निर्वाह हो सकेगा। जो भी प्रारब्धवश शिर पर सुख-दु ख आ पड़े, उसे सहन करो। शरीर के हृदय-कमल मे स्थित प्रभु के स्वरूप मे वृत्ति लगाये रहोगे, तो तुम मन इन्द्रियो के अविषय ईश्वर का साक्षात्कार कर सकोगे। जब सद्गुरु-शिक्षा को सम्यक् सुनकर उसके अनुसार साधन करते हुये सासारिक भावनाओ से पार पहुँचोगे, तब परमानन्द स्वरूप प्रभु को प्राप्त कर सकोगे।

३९५-दादरा

हिन्दू तुरक न जानूं दोइ।
सांई सबन का सोई है रे, और न दूजा देखूं कोइ॥ टेक॥
कीट पतग सबै योनिन मे, जल थल सग समाना सोइ।
पीर पैगम्बर देवा दानव, मीर मलिक मुनिजन को मोहि॥ १॥

कर्ता है रे सोई चीन्हौं, जनि[1] वै क्रोध करै रे कोइ।
जैसे आरसी मंजन कीजै, राम रहीम देही तन धोइ ॥ २ ॥
सांई केरी सेवा कीजै, पायो धन काहे को खोइ।
दादू रे जन हरि जप लीजै, जन्म जन्म जे सुरजन[2] होइ ॥ ३ ॥

हिन्दू-मुसलमान, दो मत समझो, सब का उत्पन्न करने वाला वह एक ही परमात्मा है और किसी दूसरे को मै नही देखता। जल तथा स्थल के कीट पतगादि सभी योनियो मे वह ईश्वर समाया हुआ रह कर साथ रहता है। पीरो, पैगम्बरो, देवताओ, दानवो, सरदारो, बादशाह और मुनिजनादि सबको वह मोहित करता है। वास्तविक कर्ता जो ईश्वर है, उसी को पहचानो। बिना विचार एक पक्ष को पकड कर कोई किसी पर क्रोध न[1] करे। जैसे दर्पण को माजकर साफ करने से मुखादि शरीर ठीक दीखता है, वैसे ही अन्त करण को भजन द्वारा माजकर पवित्र करो, फिर राम और रहीम एक ही भासेगे। इस प्रकार निष्पक्ष मध्य मार्ग-द्वारा परमात्मा की भक्ति करो। मानव देह रूप धन प्राप्त होने पर भी इसे व्यर्थ विषयो मे क्यो खो रहे हो ? हे जनो ! जो परमात्मा तुम्हारे प्रति-जन्म मे सहायक होते है, उन्ही हरि का नाम जप कर उन्हे प्राप्त कर लो, तब ही बार-बार के जन्मजात जग-जजाल के बन्धन से तुम्हारा निर्विवाद सुलझन[2] होगा अर्थात् आवागमन मिटने से यह मानव-जन्म सफल होगा।

३९६-मदन ताल

को स्वामी को शेख कहै, इस दुनियाँ का मर्म न कोई लहै ॥ टेक ॥
कोई राम कोई अलह सुनावै, पुनि अलह राम का भेद न पावै ॥ १ ॥
कोई हिन्दू कोई तुर्क कर मानैं, पुनि हिन्दू तुर्क की खबर न जानैं ॥ २ ॥
यहु सब करणी दोनों वेद[1], समझ परी तब पाया भेद ॥ ३ ॥
दादू देखै आतम एक, कहबा सुनबा अनंत अनेक ॥ ४ ॥

हिन्दू-सत को स्वामी और मुस्लिम सत को शेख कहते है, ऐसे नाम भेदो मे ही हम फॅस रहे है। इस ससार मे मानव-जन्म का जो भगवत्-प्राप्ति रूप रहस्य है, उसे कोई नही जानता। कोई राम और कोई अल्लाह सुनाते है, किन्तु अल्लाह और राम के सुनाने का जो एक ही रहस्यमय फल है, उसको नही पहचान पाते और भ्रमवश एक दूसरे से ईर्ष्या करते है। कोई अपने को हिन्दू और कोई मुसलमान मानते है, किन्तु हिन्दू और मुसलमान पने का क्या रहस्य है, इसका कुछ भी वृत्तान्त नही जानते। ये उक्त वा सभी भेद रूप कर्म का व्यवहार-मय ज्ञान[1] इन दोनो हिन्दू-मुसलमानो मे है। हिन्दू भी अनन्त विचार कहते-सुनते है तथा मुसलमान भी अनेक बाते कहते सुनते है किन्तु हमारी बुद्धि मे जब यथार्थ विचार आया, तब हम इसका रहस्य समझ पाये है और तभी से हम सब मे एक ही आत्मा देखते है।

३९७-निन्दा । त्रिताल

निन्दत है सब लोक विचारा, हमकौ भावे राम पियारा ॥ टेक ॥
निस्संशय निर्दोष लगावे, तातें मोको अचरज आवै ॥ १ ॥
दुविधा द्वै पख रहिता जे, तासन कहत गये रे ये ॥ २ ॥
निर्वैरी निहकामी साध, ता शिर देत बहुत अपराध ॥ ३ ॥
लोहा कंचन एक समान, तासन कहत करत अभिमान ॥ ४ ॥
निन्दा औ स्तुति एके तोले, तासन कहे अपवाद हि बोलै ॥ ५ ॥
दादू निन्दा ताको भावै, जाके हिरदे राम न आवै ॥ ६ ॥

राम भक्ति रहित लोगो को ही परनिन्दा प्रिय होती है, यह कह रहे है—कल्याण साधन से हीन बेचारे लोग हमारी राम-भक्ति की निन्दा करते है, किन्तु हम को तो राम ही प्रिय है। ये लोग सशय रहित, निर्दोष को भी दोष लगाते है, इसी से मुझे आश्चर्य होता है। जो ज्ञानी दुविधा मय द्वैत पक्ष से रहित है, उनको कहते है कि—ये तो उभय लोक मे भ्रष्ट हो गये है। जो निर्वैरी और निष्कामी सत है, उनके शिर भी बहुत दोष लगाते है। जो विरक्त लोह और सुवर्ण को एक-सा समझते है उन्हे कहते है, ये अभिमान करते है। जो निन्दा और स्तुति को एक समान समझते है, उन्हे कहते है, ये ठीक नही कहते। उक्त प्रकार निन्दा करना उसी को अच्छा लगता है, जिसके हृदय मे राम चिन्तन द्वारा राम का साक्षात्कार नही होता।

३९८-(गुजराती) अनन्य शरण । उदीक्षण ताल

माहरूं[1] सूं[2] जेहूं आपूं[3], ताहरू[4] छे तूने थापूं[5] ॥ टेक ॥
सर्व जीव ने तूं दातार, ते सिरज्या ने तू प्रतिपाल ॥ १ ॥
तन धन ताहरो तैं दीधो[6], हू ताहरो ने तै कीधो[7] ॥ २ ॥
सहुवे[8] ताहरो साचौ ये, मै मैं माहरो झूठो ते ॥ ३ ॥
दादू ने मन और न आवे, तू कर्ता ने तूं हि जु भावे ॥ ४ ॥

अनन्य शरण का परिचय दे रहे है—मेरा[1] क्या[2] है ? जो मै आपको दू[3], आपका[4] ही सब कुछ है। अत आपको ही समर्पण[5] करता हूँ। सब जीवो को आप ही देने वाले है। आपने ही सबको उत्पन्न किया है और आप ही सबके पालने वाले है। ये तन धनादि आप के ही है, आपने ही दिये[6] है। मै भी आपका ही हूँ क्योकि आपका ही रचा[7] हुआ हूँ। सत्य तो यही है कि सर्वस्व[8] आपका ही है, मै और मेरापन जो है, वह सब मिथ्या है। मेरे मन मे तो अन्य कोई कर्ता है, यह विचार आता ही नही। आप ही कर्ता हे और आप ही मुझे प्रिय है।

३९९-निष्काम साधु । उदीक्षण ताल

ऐसा अवधू राम पियारा, प्राण पिंड तैं रहै नियारा ॥टेक॥
जब लग काया तब लग माया, रहै निरन्तर अवधू राया ॥ १ ॥
अठ सिधि भाई नौ निधि आई, निकट न जाई राम दुहाई ॥ २ ॥
अमर अभय पद वैकुण्ठ वास, छाया माया रहै उदास ॥ ३ ॥
सांई सेवक सब दिखलावै, दादू दूजा दृष्टि न आवै ॥ ४ ॥

निष्काम सत का परिचय दे रहे है—ऐसा अवधूत सत राम का प्यारा होता है-जो स्थूल-सूक्ष्म सघात की आसक्ति से अलग रहता है। जब तक शरीराध्यास है तब तक ही माया है। श्रेष्ठ अवधूत शरीराध्यास से रहित होकर वृत्ति द्वारा निरन्तर आत्म-स्वरूप ब्रह्म मे ही स्थिर रहता है। हे भाई! अष्टसिद्धि तथा नव निधि आये तो भी उनके पास तक नही जाता और कहता है—तुम्हे राम की शपथ है, मेरे पास न आना। देवताओ का अभय स्थान, वैकुण्ठ का निवास, इनको माया की छाया जान कर इनसे उपराम रहता है वा माया की छाया रूप ससार से विरक्त होकर परब्रह्म का जो अमर अभय स्वरूप है, उसी मे निवास करता है अर्थात् ब्रह्म से अभिन्न होकर रहता है। भगवान् सेवक को देने के लिये सभी कुछ दिखलाते है किन्तु उक्त प्रकार निष्काम अवधूत सत की दृष्टि मे आत्म-स्वरूप ब्रह्म को छोडकर अन्य कुछ भी नही आता।

४००-शूरातन कसौटी। भगताल

तूं साहिब मै सेवक तेरा, भावै शिर दे शूली मेरा ॥टेक॥
भावै करवत शिर पर सार, भावै लेकर गरदन मार ॥ १ ॥
भावै चहुँ दिशि अग्नि लगाइ, भावै काल दशों दिशि खाइ ॥ २ ॥
भावै गिरिवर गगन गिराइ, भावै दरिया माँहिं बहाइ ॥ ३ ॥
भावै कनक कसौटी देहु, दादू सेवक कस कस लेहु ॥ ४ ॥

भगवान् के बनने मे कष्ट सहनता रूप शौर्य दिखा रहे है—आप मेरे स्वामी है, मै आपका सेवक हूँ। चाहे आप मेरे शिर के शूली लगादे, शिर पर करवत चलावे, गले मे तलवार मारे, चारो ओर अग्नि लगादे, चाहे दशो दिशा काल रूप होकर मुझे खाने लगे, चाहे विशाल पर्वत वा बहुत ऊचे ले जाकर आकाश से गिरादे, दरिया मे बहादे सुवर्ण को जैसे सुनार बारम्बार अग्नि लगाते है, वैसे ही मुझे बारम्बार कष्ट दे और भी आप चाहे नाना प्रकार के कष्ट देकर मुझे अपनाये, तो भी सभी मुझे स्वीकार है।

४०१-साधु। भंगताल

काम क्रोध नहीं आवै मेरे, तातैं गोविन्द पाया नेरे ॥टेक॥
भरम कर्म जाल सब दीन्हा, रमता राम सबन में चीन्हा ॥ १ ॥
दुविधा दुर्मति दूर गमाई, राम रमत साची मन आई ॥ २ ॥

नीच ऊंच मध्यम को नांहीं, देखूं राम सवन के माहीं ॥ ३ ॥
दादू साच सबन में सोई, पेड[१] पकर जन निर्भय होई ॥ ४ ॥

अपनी सतत्व रूप स्थिति बता रहे है—काम-क्रोध मेरे हृदय मे नहीं आते, इसी से मैंने अति समीप हृदय मे ही गोविन्द को प्राप्त किया हे। जब मैंने सपूर्ण भ्रम और कर्म-जन्य सभी पाप ज्ञानाग्नि द्वारा जला दिये, तब ही विश्व मे रमने वाले राम को सभी मे पहचाना है। दुविधा और दुर्मति जब हृदय से चली गई, तब ही राम के स्वरूप मे रमण करने की सच्ची भावना मन मे आई है। अब नीच, ऊच और मध्यम कोई भी नहीं भासता, सभी मे राम को ही देखता हूँ। वह सत्य ब्रह्म सब मे है। सबके मूल[१] रूप भगवान् की शरण का मार्ग[१] ग्रहण करके ही भक्त जन निर्भय होते है।

४०२-हितोपदेश। खेमटाताल

हाजिरां[१] हजूर[२] सांईं, है हरि नेडा दूरि नांहीं ॥ टेक ॥
मनी[३] मेट महल मे पावै, काहे खोजन दूरि जावै ॥ १ ॥
हिर्स[४] न होइ गुस्सा सब खाइ, तातैं संइया दूरि न जाइ ॥ २ ॥
दुई[५] दूरि दरोग[६] न होइ, मालिक मन में देखै सोइ ॥ ३ ॥
अरि[७] ये पच शोध सब मारै, तब दादू देखै निकट विचारै ॥ ४ ॥

४०२-४०३ मे हित का उपदेश कर रहे है-हम प्रभु के निकट[२] ही उपस्थित[१] है, वे हरि व्यापक होने से समीप ही है, दूर नही है। अभिमान[३] को मिटा, फिर तो हृदय-महल मे ही वे मिल जाँयेगे। उनको खोजने के लिये दूर क्यो जाता है ? सत-जनो मे भोगो का लोभ[४] नही होता और वे सपूर्ण क्रोध को नष्ट कर देते है इसी से परमात्मा उनसे दूर नही जाते। जिसका द्वैत[५] भाव दूर हो गया और जिससे[६] मिथ्या व्यवहार नही होता वह परमात्मा को अपने हृदय मे ही देखता है। ये जो पच ज्ञानेन्द्रिय और काम, क्रोधादि शत्रु[७] है, इन सबको जो खोज कर मारता है, वही विचार द्वारा प्रभु को निकट देखता है।

४०३-खेमटा ताल

राम रमत देखै नहिं कोई, जो देखै सो पावन होई ॥ टेक ॥
बाहर भीतर नेडा न दूर, स्वामी सकल रह्या भरपूर ॥ १ ॥
जहँ देखू तहँ दूसर नाँहि, सब घट राम समाना माँहि ॥ २ ॥
जहां जाऊँ तहँ सोई साथ, पूर रह्या हरि त्रिभुवन नाथ ॥ ३ ॥
दादू हरि देखै सुख होइ, निश दिन निरखन दीजै मोहि ॥ ४ ॥

राम तो सब मे रम रहे है, किन्तु कोई भी उनको देखता नही और जो उनको व्यापक रूप से देखता है, वह पवित्र होकर अन्य को भी पवित्र करने वाला हो जाता है। उन प्रभु को बाहर-भीतर, समीप वा दूर नही कह सकते, वे सब मे परिपूर्ण हो रहे है। मै तो जहा भी देखता हूँ वहा अन्य को देखता ही नही। सभी घटो मे राम समाये हुये है। मै जहा जाता हूँ, वहा ही उन्हे साथ देखता हूँ, वे त्रिभुवन स्वामी हरि सर्वत्र परिपूर्ण हो रहे है। जब हम हरि को देखते है, तब

आनन्द होता है। हे प्रभो ! आप अपना स्वरूप मुझे रात्रि दिन प्रतिक्षण देखने दीजिये, मुझ से छिप कर न रहिये।

४०४-अध्यात्म। एकताल

मन पवन ले उनमन रहै, अगम निगम मूल सो लहै ॥ टेक॥
पंच वायु जे सहज समावै, शशिहर के घर आंणैं सूर।
शीतल सदा मिलै सुखदाई, अनहद शब्द बजावै तूर ॥ १ ॥
बंकनालि[1] सदा रस पीवै, तब यहु मनवा कहीं न जाइ।
विकसै कमल प्रेम जब उपजै, ब्रह्म जीव की करै सहाइ ॥ २ ॥
बैस गुफा मैं ज्योति विचारै, तब तेहिं सूझै त्रिभुवन राइ।
अंतर आप मिलै अविनाशी, पद आनन्द काल नहिं खाइ ॥ ३ ॥
जामण मरण जाइ भव भाजै, अवरण के घर वरण समाइ।
दादू जाय मिलै जगजीवन, तब यहु आवागवन विलाइ ॥ ४ ॥

४०४-४०५ मे अध्यात्म विषय कह रहे है—जो साधन द्वारा प्रथम मन और प्राणो को अपने वश कर लेता है, वही समाधि मे स्थिर रहता है और वेद से भी अगम ब्रह्म को प्राप्त करता है। इडा नाडी रूप चन्द्र के वाम स्वर रूप घर मे पिगला नाडी रूप सूर्य को लाता है, फिर दोनो सुषुम्ना[1] मे लाकर, पच प्राणो को सहजावस्था रूप समाधि मे लीन करता है, तब सदा शीतल और सुखदायिनी अवस्था प्राप्त होती है और वहा रुका हुआ प्राण अनाहत नाद रूप नगाड़ा बजाने लगता है तथा साधक सुषुम्ना के द्वारा सदा आनन्द-रस का पान करता है, तब यह मन उस स्थान को छोड कर कही भी नही जाता। इस प्रकार साधन से जब परम-प्रेम उत्पन्न होता है, तब हृदय-कमल खिल जाता है और ब्रह्म, जीव को अपनी ओर आगे बढाने की सहायता करता है, फिर साधक भ्रमर गुफा मे ध्यान रूप आसन लगा कर परब्रह्म ज्योति को देखते हुये विचार करता है, तब उसे त्रिभुवन के राजा परब्रह्म भासने लगते है और वह स्वय भीतर ही अविनाशी ब्रह्म मे अभेदरूप से मिल जाता है, वह ब्रह्म पद आनन्द रूप है, उसमे स्थित को काल नही खाता, जन्मना-मरना दूर हो जाता है, सासारिक भावनाएँ हृदय से भाग जाती है। अवर्ण ब्रह्म के स्वरूप मे वर्ण रूप जीव समा जाता है। इस प्रकार जब जीवात्मा जगजीवन ब्रह्म मे जा मिलता है, तब यह आना जाना रूप ससार उसका नष्ट हो जाता है।

४०५-एकताल

जीवन मूरी[1] मेरे आतम राम, भाग बडे पायो निज ठाम ॥ टेक ॥
शब्द अनाहत उपजै जहां, सुषमन रंग लगावै तहां।
तहँ रंग लागै निर्मल होइ, ये तत उपजै जानैं सोइ ॥ १ ॥

सरवर तहाँ हंसा रहै, कर स्नान सवे सुख लहे ।
सुखदाई को नेनहुँ जोइ, त्यो त्यो मन अति आनन्द होइ ॥ २ ।
सो हसा शरणागति जाइ, सुन्दरि तहां पखालै पाइ ।
पीवै अमृत नीझर नीर, वेठे तहाँ जगत गुरु पीर ॥ ३ ॥
तहँ भाव प्रेम की पूजा होइ, जा पर किरपा जानै सोइ ।
कृपा कर हरि देइ उमंग, तहँ जन पायो निर्भय संग ॥ ४ ॥
तव हंसा मन आनंद होइ, वस्तु अगोचर लखे रे सोइ ।
जाको हरी लखावे आप, ताहि न लिपें पुन्य न पाप ॥ ५ ॥
तहँ अनहद वाजे अद्भुत खेल, दीपक जले वाती विन तेल ।
अखंड ज्योति तहँ भयो प्रकास, फाग वसत ज्यो वारह मास ॥ ६ ॥
त्रय-स्थान निरन्तर निरधार, तहँ प्रभु वेठे समर्थ सार ।
नेनहुँ निरखूं तो सुख होइ, ताहि पुरुप को लखे न कोइ ॥ ७ ॥
ऐसा है हरि दीनदयाल, सेवक की जाने प्रतिपाल ।
चलु हंसा तहँ चरण समान, तहँ दादू पहुँचे परवान[२] ॥ ८ ॥

आत्म स्वरूप राम ही मेरे लिये जीवन जड़ी[१] है। मेरे विशाल भाग्य थे, तव ही तो मैंने निज धाम ब्रह्म को प्राप्त किया है। जहा हृदय देश मे अनाहत नाद उत्पन्न होता है, वहा ही हम सुषुम्ना द्वारा प्रभु के स्वरूप मे प्रेम लगाते है। वहा प्रेम लगाने पर प्राणी निर्मल हो जाता है। यह प्रेम-तत्व जिसमे उत्पन्न होता है, वही इसके महत्व को जानता है। वहा ही हृदय सरोवर मे सत-हस वृत्ति द्वारा रहते हुये ब्रह्म चिन्तन रूप जल मे निमग्नता रूप स्नान करके सब प्रकार से ही सुख प्राप्त करते है। जैसे २ सुख प्रदाता आत्म-ज्योति को ज्ञान नेत्रो से देखते है, वैसे २ ही मन मे अति आनन्द होता है। जहा अष्टदल-कमल पर सपूर्ण सिद्धियो से युक्त जगतगुरु परमात्मा विशेष रूप से विराजे है वहा जो सत-हस उनकी शरण जाता है, उस सत की बुद्धि-सुन्दरी वहा पर उन प्रभु के पद-कमलो को प्रेम-जल से धोती है और अमृत-झरने रूप प्रभु का दर्शन-नीर पान करती है। वहा श्रद्धा-प्रेम से वनी सामग्री से पूजा होती है। जिस पर उन प्रभु की कृपा होती है, वही उस पूजा पद्धति को जानता है। कृपा करके हरि ही प्रेम की लहर प्रदान करते है। मुझ दास ने उनकी कृपा से ही उनका निर्भय सग प्राप्त किया है। जब जो इन्द्रियातीत ब्रह्म वस्तु को लखता है तब उसी सत-हस के मन मे आनन्द होता है। जिसको हरि अपना स्वरूप स्वय दिखाते है वा जिसको हरि अपना स्वरूप ही भासते है, उसे पुण्य-पाप लिपायमान नही करते। वहा हृदय देश मे अनाहत बाजे बजना रूप अद्भुत खेल होता है। बिना बत्ती तेल ही दीपक जलता है, उसकी आत्म-ज्योति का अखण्ड प्रकाश हो रहा है। ज्यो वसतोत्सव फाग का आनन्द होता है, उसके समान बारह मास ही आनन्द रहता है। निश्चय ही, त्रिकुटी-तीर[१], मन, बुद्धि, चित्त वा जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति रूप तीनो स्थानो

मे विश्व के सार, समर्थ प्रभु निरन्तर विराजमान है। मै उनको भीतर के नेत्रो से देखता हूँ तो आनन्द होता है। उन परम-पुरुष को बहिर्मुख अज्ञानी कोई भी नही देख सकता। वे दीन दयालु हरि ऐसे सर्वज्ञ और उदार है—सेवक के मन की इच्छा और परिस्थिति को जानकर तत्काल उसकी रक्षा करते है। अरे जीव रूप हस ! वहा उन सम-स्वरूप प्रभु के चरण मै चलकर समाना है। वही पूर्व मे प्रामाणिक' सन्त पहुँचे है, वहा पहुँचने पर ही तेरा मानव-जन्म सफल' समझा जायगा।

४०६-आत्म परमात्मा रास। एकताल

घट घट गोपी घट घट कान्ह, घट घट राम अमर अस्थान॥ टेक॥
गंगा जमना अंतर-वेद, सरस्वती नीर बहै प्रस्वेद॥ १॥
कुंज केलि तहँ परम विलास, सब संगी मिल खेलैं रास॥ २॥
तहाँ बिन बैना बाजैं तूर, विकसै कँवल चंद अरु सूर॥ ३॥
पूरण ब्रह्म परम परकास, तहँ निज देखै दादू दास॥ ४॥

इति राग भैरू समाप्त॥ २४॥ पद ३४॥

आत्म स्वरूप परमात्मा के रास का रूपक बता रहे है—प्रत्येक शरीर मे वृत्ति रूप गोपिया और साक्षी चेतन रूप कृष्ण है तथा प्रत्येक शरीर मे ही अमर राम रूप कृष्ण का अष्टदल-कमल रूप वृन्दावन स्थान है। पिगला रूप गगा और इडा रूप यमुना है। उन दोनो के मध्य षट् चक्र रूप अन्तर्वेद देश है। जैसे सरस्वती पृथ्वी से उमगती है, वैसे ही सुषुम्ना रूप सरस्वती मिलने पर अर्थात् कुभक होने पर शरीर से प्रस्वेद आता है, वही सरस्वती का नीर प्रवाह है। साक्षी-चेतनाकार वृत्तियो को जो परमानन्द होता है वह कुज क्रीडा है। मन, बुद्धि इन्द्रियादि सभी साथी मिलकर भगवत्-परायणता रूप रास खेलते है। उस अन्तर रास मे बिना वाणी ही वृत्ति मात्र से गान होता है, बिना हाथो ही अनाहत नाद रूप नगाडा बजता है। हृदय-कमल खिल जाता है। इडा नाडी रूप चन्द्रमा और पिगला रूप सूर्य, सुषुम्ना रूप अग्नि मे लय हो जाते है, तब वहा पर एक मात्र परम प्रकाश-स्वरूप पूर्ण-ब्रह्म को उनके निजी भक्त निजात्मा रूप से देखते है।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग भैरव समाप्त॥ २४॥

अथ राग ललित २५

(गायन समय प्रात ३ से ६)

४०७-पराभक्ति। त्रिताल

राम तूं मोरा हौं[1] तोरा, पाइन परत निहोरा॥ टेक॥
एकैं संगैं वासा, तुम ठाकुर हम दासा॥ १॥
तन मन तुम को देबा, तेज पुंज हम लेबा॥ २॥
रस माँहीं रस होइबा, ज्योति स्वरूपी जोइबा॥ ३॥
ब्रह्म जीव का मेला, दादू नूर अकेला॥ ४॥

पराभक्ति दिखा रहे है—हे राम ! आप मेरे है और मै आपका हूँ। मै[1] आपके चरणो मे पकडकर प्रार्थना कर रहा हू—आप स्वामी और मै आपका दास हू। अत हम दोनो एक होकर के साथ ही निवास करे। मै अपना तन मन आपको दू और आपका तेज-पुज लू। जैसे रस मे रस एक हो जाता है वैसे ही आपके स्वरूप मे अपने आत्मा को एक करके ज्योति स्वरूप को ही देखू। ब्रह्म और जीव का मिलन हो जाय, और मै एक मात्र अद्वैत रूप ही होकर रहू, ऐसी कृपा कीजिये।

४०८-(मराठी) अनन्यशरण। त्रिताल

मेरे गृह आव हो गुरु मेरा, मै बालक सेवक तेरा ॥ टेक ॥
मात पिता तूं अम्हचा[1] स्वामी, देव हमारे अतरजामी ॥ १ ॥
अम्हचा सज्जन अम्हचा बधू, प्राण हमारे अम्हचा जिन्दू॥ २ ॥
अम्हचा प्रीतम अम्हचा मेला, अम्हचा जीवन आप अकेला ॥ ३ ॥
अम्हचा साथी सग सनेही, राम बिना दुख दादू देही॥ ४ ॥

अनन्य शरण दिखा रहे है—हे मेरे गुरुदेव राम ! मेरे अन्त करण रूप घर मे पधारिये। मै आपका ही बालक और सेवक हूँ। हे अन्तर्यामी ! हमारे[1] तो माता, पिता, स्वामी, देवता, सज्जन, बान्धव, जीवित रखने वाले प्राण, प्रियतम-सम्मेलन, जीवन-सहायक और सग रहने वाले स्नेही, आदि सब कुछ आप अकेले ही है। हे राम ! आप के बिना मेरे जीवात्मा को अति दु ख रहता है।

४०९-(गुजराती) हितोपदेश। गजताल

वाहला माहरा ! प्रेम भक्ति रस पीजिये,
रमिये रमता राम, माहरा वाहला रे।
हिरदा कमल मे राखिये, उत्तम एहज ठाम,
माहरा वाहला रे ॥ टेक ॥
वाहला माहरा ! सतगुरु शरणे अणसरे,
साधु समागम थाइ, माहरा वाहला रे।
वाणी ब्रह्म बखाणिये, आनन्द में दिन जाइ, माहरा वाहला रे ॥ १ ॥
वाहला माहरा ! आतम अनुभव ऊपजे,
उपजे ब्रह्म गियान, माहरा वाहला रे।
सुख सागर में झूलिये, साचो ये स्नान, माहरा वाहला रे ॥ २ ॥
वाहला माहरा ! भव बन्धन सब छूटिये,
कर्म न लागे कोइ, माहरा वाहला रे।
जीवन मुक्ति फल पामिये[1], अमर अभय पद होइ, माहरा वाहला रे ॥ ३ ॥

वाहला माहरा ! अठ सिधि नौ निधि ऑगणें,
परम पदारथ चार, माहरा वाहला रे ।
दादू जन देखे नहीं, रातो सिरजनहार, माहरा वाहला रे ॥ ४ ॥

हित कर उपदेश कर रहे है—हे प्रिय शिष्य ! प्रेमाभक्ति-रस का पान करो । हृदय-कमल मे सदा राम का ध्यान रक्खो, राम के ध्यान के लिये, यही उत्तम स्थान है किन्तु सद्गुरु की शरण लिये बिना यह काम नही चलता, सतो का समागम भी होना ही चाहिये । सत ब्रह्म सम्बन्धी वाणी कहते है, उनके सग के दिन आनन्द पूर्वक निकलते है । बुद्धि मे आत्मानुभव उत्पन्न होकर ब्रह्म ज्ञान प्रकट होता है फिर तो साधक सुख-सागर मे झूलता है । यही सच्चा स्नान है । इस स्नान से सपूर्ण ससार बन्धन खुल जाते है, कर्तव्य भाव न रहने से कोई भी कर्म का फल नही लगता । जीवन्मुक्ति रूप फल प्राप्त करके अमर-अभय पद को प्राप्त होता है । फिर उसके निवास स्थान के आँगण मे अष्टसिद्धि, नवनिधि, और अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष, ये चारो परम पदार्थ आते है किन्तु वह भक्त उनकी ओर देखता भी नही, वह तो सृष्टिकर्ता प्रभु के स्वरूप मे ही अनुक्त रहता है ।

४१०-अखंड प्रीति । गज ताल

हमारो मन माई ! राम नाम रंग रातो ।
पिव पिव करै पीव को जानैं, मगन रहै रस मातो ॥ टेक॥
सदा सील संतोष सुहावत, चरण कँवल मन बॉधो ।
हिरदा माँही जतन कर राखो, मानो रंक धन लाधो ॥ १ ॥
प्रेम भक्ति प्रीति हरि जानौं, हरि सेवा सुखदाई ।
ज्ञान ध्यान मोहन को मेरे, कंप न लागै काई ॥ २ ॥
संगि सदा हेत हरि लागो, अंग और नहिं आवे ।
दादू दीन दयाल दमोदर, सार सुधा रस भावे ॥ ३ ॥

अखण्ड प्रीति दिखा रहे है—हे भाई ! हमारा मन राम-नाम के प्रेम मे ही अनुरक्त है । प्रियतम-प्रियतम करता रहता है, एक मात्र प्रियतम को ही जानता है । प्रियतम के चिन्तन मे निमग्न रह कर उसी के प्रेम-रस मे मस्त रहता है । सदा ही शील, सतोषादि दैवी गुण अच्छे लगते है, मन प्रभु के चरण-कमलो मे ही बँधा रहता है । जैसे किसी रक को धन मिल जाय तव वह उमे वडे यत्न से रखता है, वैसे ही मे राम-नाम को यत्न पूर्वक हृदय मे रखता हूँ । मै लौकिक प्रेम, नवधा-भक्ति और प्रेमाभक्ति एक मात्र हरि को ही समझता हूं । हरि सेवा ही मुझे सुखप्रद हे । मेरे हृदय मे ज्ञान और ध्यान भी विश्व-विमोहन भगवान् का ही हे । इससे हृदय मे मल-विक्षेप नहीं लग पाते । सदा साथ रहने वाले हरि से मेरा प्रेम लगा है । मेरे हृदय मे प्रेम-पात्र के रूप मे अन्य कोई भी नही आता । दीन-दयालु दामोदर भगवान् ही अमृत-सार के समान मुझे प्रिय लगते है ।

४११-(फारसी) साहिब सिफत। राजमृगांक ताल

महरवान[1] [1]महरवान।
आब[2] बाद[3] खाक[4] आतिश[5] आदम[6] नीशान॥ टेक॥
शीश पाँव हाथ कीये, नैन कीये कान।
मुख कीया जीव दीया, राजिक[7] रहमान[8]॥ १॥
मादर[9] पिदर[10] परद पोश[11], सांईं सुबहान[12]।
सग रहै दस्त[13] गहै, साहिब सुलतान॥ २॥
या[20] करीम[14] या रहीम[15], दाना[16] तू दीवान[17]।
पाक[18] नूर है हजूर[19], दादू है हैरान॥ ३॥

इति राग ललित समाप्त॥ २५॥ पद ५॥

ईश्वर के गुण दिखा रहे है—वे प्रभु दयालु[1] है, अति दयालु है। जल[2], वायु[3], पृथ्वी[4], अग्नि[5] और मानव[6] उन्ही के सृजन रूप विशाल गुण के चिन्ह है। उन्ही प्रभु ने मानव के शिर, पैर, हाथ नेत्र, श्रवण, मुखादि अग शोभार्थ ठीक स्थानो पर रचे है। शरीर मे अपना अश स्वरूप जीव रख दिया है और वे दयालु[8] ही जीविका[7] प्रदान करते है। वे पवित्र[12] प्रभु ही माता[9], पिता[10] और दोषो[11] की छिपाने वाले है। वे भक्त के साथ रहते है, विपत्ति मे हाथ[13] पकड़ते है, वे ही भक्तो के बादशाह है। हे[20] ससार रचना रूप कर्म[14] करने वाले, अति कृपालो[15]! आप सर्वज्ञ[16] और महान्[17] है। प्रभो[19]! आपका स्वरूप पवित्र[18] है, मै आपके गुणो को देखकर आश्चर्य-चकित हूँ।

इति श्रीदादू गिरार्थ प्रकाशिका राग ललित समाप्त॥ २५॥ पद ५॥

अथ राग जैतश्री २६

(गायन समय दिन ३ से ६)

४१२ अमिट नाम विनती। पंजाबी त्रिताल

तेरे नाम की बलि जाऊँ, जहाँ रहू जिस ठाऊँ॥ टेक॥
तेरे बैनों की बलिहारी, तेरे नैनहुँ ऊपरि वारी।
तेरी मूरति की बलि कीती, बार-बार हौ दीती॥ १॥
शोभित नूर तुम्हारा, सुन्दर ज्योति उजारा।
मीठा प्राण पियारा, तू है पीव हमारा॥ २॥
तेज तुम्हारा कहिये, निर्मल काहे न लहिये।
दादू बलि बलि तेरे, आव पिया तू मेरे॥ ३॥

नाम और नामी मे अखण्ड प्रेम हुये नामी की प्राप्ति के लिये विनय कर रहे है—प्रियतम राम! मै जिस अवस्था मे और जिस स्थान मे रहूँगा, आपके नाम की तथा वचनो की बलिहारी

जाता रहूँगा। आपके नेत्रो पर अपने को निछावर करता हू। बार-बार आपकी मूर्ति पर अपना सर्वस्व निछावर करके आपको समर्पण कर देता हूँ। आपका रूप सुन्दर-ज्योति के प्रकाश सहित होने से शोभायमान हो रहा है। आप हमारे अति मधुर प्राण-प्रिय स्वामी है। कहिये, मै आपके तेजोमय निर्मल स्वरूप को क्यो नही प्राप्त करूगा ? मै आपकी बारबार बलिहारी जाता हूँ। प्रियतम ! आप मेरे हृदय मे पधारिये।

४१३-विरह विनती। पंजाबी त्रिताल

मेरे जीव की जानैं जानराइ, तुम तै सेवक कहा दुराइ[1]॥ टेक॥
जल बिन जैसे जाइ जिय तलफत, तुम बिन तैसे हमहु विहाइ।
तन मन व्याकुल होइ विरहनी, दरश पियासी प्राण जाइ॥ १ ॥
जैसे चित्त चकोर चंद मन, ऐसे मोहन हमहि आइ।
विरह अग्नि दहत दादू को, दर्शन परसन तना सिराइ[1]॥ २ ॥

इति श्री राग जेतश्री समाप्त॥ २६॥ पद २॥

विरह पूर्वक दर्शनार्थ विनय कर रहे है—हे जानने वालो मे अति श्रेष्ठ प्रभो ! मेरे मन की सब स्थिति आप जानते है, आपसे सेवक क्या छिपा[1] सकेगा ? जैसे जल बिना प्यासे प्राणी का प्राण तडफ-तडफ कर शरीर से निकल जाने को तैयार होता है, वैसे ही आपके बिना हमारा समय व्यतीत हो रहा है। मुझ विरहनी के तन मन व्याकुल हो रहे है, दर्शन-वारि की प्यास से व्यथित होकर प्राण शरीर से निकल जाने को उद्यत है। जैसे चकोर के चित्त मे चन्द्रमा बसा रहता है, वैसे ही हमारे मन मे मोहन बसे हुये है। मुझे विरहाग्नि जला रही है, आप अपने दर्शन तथा स्पर्श देकर मेरे शरीर को शीतल[1] करिये।

इति श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका राग जैतश्री समाप्त॥ २६॥

अथ राग धनाश्री २७

(गायन समय दिन ३ से ६)

४१४-अमिट अविनाशी रंग। धीमा ताल

रंग लागो रे राम को, सो रंग कदे न जाई रे।
हरि रंग मेरो मन रंग्यो, और न रंग सुहाई रे॥ टेक॥
अविनाशी रंग ऊपनो, रच मच लागो चोलो रे।
सो रंग सदा सुहावनो, ऐसो रंग अमोलो रे॥ १ ॥
हरि रंग कदे न ऊतरै, दिन दिन होइ सुरङ्गो रे।
नित नवो निर्वाण है, कदे न ह्वैला भंगो रे॥ २ ॥
साचो रंग सहजैं मिल्यो, सुन्दर रङ्ग अपारो रे।
भाग बिना क्यों पाइये, सब रंग माँहीं सारो रे॥ ३ ॥

अवरण को का वरणिये, सो रग सहज स्वरूपो रे ।
बलिहारी उस रङ्ग की, जन दादू देख अनूपो रे ॥ ४ ॥

४१४-४१५ मे न मिटने वाले अविनाशी ब्रह्म रूप रग का परिचय दे रहे है-अरे ! मेरे निरजन-राम रूप रग लगा है, वह कभी भी हटने वाला नहीं है। मेरा मन हरि-रँग से रँग गया है, अब अन्य रग अच्छा नही लगता। यह अविनाशी रग हृदय मे ही उत्पन्न हुआ है और मेरे मन रूप चोला के खूब रचमच कर लगा है। वह ऐसा अमूल्य रग है जो सदा ही सुन्दर लगता है और वह हरि रग कभी भी उतरता नही, प्रत्युत प्रतिदिन सुन्दर होता जाता है। नित्य नूतन रहता है, क्षीणता रूप वाणाघात से रहित है, कभी भी नष्ट न होगा। यह सच्चा रग सतो की सगति से अनायास ही मिला है और सुन्दर तथा अपार है। यह सपूर्ण रगो मे सार रूप रग भाग्य बिना कैसे प्राप्त हो सकता है ? अवर्णनीय का क्या वर्णन किया जाय ? यह रग तो सहज ही सुन्दर है। मै इस अनुपम रग को देख कर इसकी बलिहारी जाता हूँ।

४१५-धीमा ताल

लाग रह्यो मन राम सौं, अब अनतै नहि जाये रे ।
अचला सौं थिर ह्वै रह्यो, सकै न चित्त डुलाये रे ॥टेक॥
ज्यो फुनिंग[1] चंदन रहै, परिमल[2] रहै लुभाये रे ।
त्यो मन मेरा राम सौ, अब की बेर अघाये रे ॥ १ ॥
भँवर न छाडै बास को, कवल हि रह्यो बँधाये रे ।
त्यो मन मेरा राम सौ, वेध रह्यो चित लाये रे ॥ २ ॥
जल बिन मीन न जीवई, विछुरत ही मर जाये रे ।
त्यो मन मेरा राम सौ, ऐसी प्रीति बनाये रे ॥ ३ ॥
ज्यो चातक जल को रटै, पिव पिव करत बिहाये रे ।
त्यों मन मेरा राम सौ, जन दादू हेत लगाये रे ॥ ४ ॥

हमारा मन निरजन राम के स्वरूप चिन्तन मे लगा है, अब अन्य मे नही जाता। अचल ब्रह्म मे स्थिर हो रहा है, इसी से चित्त चचल नहीं हो सकता। जैसे सर्प[1] सुगध[2] व शीतलता के लोभ से चदन पर रहता है, वैसे ही मेरा मन परमानन्द के लोभ से राम के स्वरूप चिन्तन मे लगा रहता है। इसी से इस वर्तमान जन्म के समय मे हम तृप्त हुये है। जैसे भ्रमर कमल-गध के लिए कमल को नही छोडता, सायकाल सूर्य छिपने पर उसी मे बन्द हो जाता है, वैसे ही मेरा मन राम के स्वरूप-चिन्तन से विद्ध होकर उसी मे लगा रहता है। जैसे जल बिना मच्छी जीवित नही रह सकती, बिछुडते ही मर जाती है, वैसे ही मेरे मन ने राम से मीन की-सी प्रीति कर ली है, उनको छोड़ कर नही रह सकता। जैसे चातक पक्षी स्वाति जल को रटता रहता है, उसका समय पीव-पीव करते ही जाता है, हे जन ! वैसे ही मेरा मन राम से स्नेह लगाये रहता है।

४१६-विनती। वीर विक्रम ताल

मनमोहन हो ! कठिन विरह की पीर, सुन्दर दर्श दिखाइये ॥ टेक ॥
सुनहुन दीनदयाल, तव[1] मुख बैन सुनाइये ॥ १ ॥
करुणामय कृपाल, सकल शिरोमणि आइये ॥ २ ॥
मम जीवन प्राण अधार, अविनाशी उर लाइये ॥ ३ ॥
इब हरि दरसन देहु, दादू प्रेम बढाइये ॥ ४ ॥

४१६-४१९ मे विरह पूर्वक दर्शनार्थ विनय कर रहे है—हे मनमोहन ! विरह की व्यथा बडी कठिन है। अपने सुन्दर दर्शन कराइये। हे दयालो ! मेरी विनय सुनिये और अपने[1] से मुख के वचन सुनाइये। सर्व शिरोमणि, करुणामय कृपालो ! पधारिये। हे मेरे जीवन तथा प्राणो के आधार अविनाशी प्रभो ! अब मुझे शीघ्र ही दर्शन देकर हृदय से लगाइये और मुझ से प्रेम बढाइये।

४१७-वीर विक्रम ताल

कतहूँ रहे हो विदेश, हरि नहिं आये हो।
जन्म सिरानों जाइ, पीव नहिं पाये हो॥ टेक॥
विपति हमारी जाइ, हरि सौ को कहै हो।
तुम बिन नाथ अनाथ, विरहनि क्यों रहै हो ॥ १ ॥
पीव के विरह वियोग, तन की सुधि नहीं हो।
तलफि तलफि जिव जाइ, मृतक ह्वै रही हो ॥ २ ॥
दुखित भई हम नारि, कब हरि आवै हो।
तुम बिन प्राण अधार, जीव दुख पावै हो ॥ ३ ॥
प्रगटहु दीनदयाल, विलम्ब न कीजिये हो।
दादू दुखी बेहाल, दरसन दीजिये हो॥ ४ ॥

वे हरि विदेश मे कहा रह गये, आये नही। अभी तक प्रियतम प्राप्त नही हो सके और यह जन्म व्यतीत हो रहा है। कोई दयालु सत हरि के पास जाकर मेरी विपत्ति उनसे कहे तो अच्छा हो। हे नाथ ! आपके बिना अनाथ विरहनी कैसे जीवित रह सकती है ? प्रियतम के वियोग-व्यथा के कारण शरीर की सुध भी नही रही है, तडफ-तडफ कर प्राण जाने को उद्यत है, मृतक समान हो रही हूँ। मै वियोगिनी नारी उन हरि का मार्ग देखते-देखते दुखित हो गई हूँ, वे हरि कब पधारेगे ? हे प्राणाधार ! आपके बिना मेरा मन दु ख ही पा रहा है। हे दीनदयालो ! देर न करिये, प्रकट होइये, मै आपके वियोग-दु ख से अति व्याकुल हूँ, शीघ्र दर्शन दीजिये।

४१८-(सिंधी) रंग ताल

सुरजन[1] मेरा वे[2] ! कीहैं[3] पार लहांउँ[4]।
जे सुरजन[1] घर आवै वे, हिक[5] कहाण[6] कहांउँ[7] ॥ टेक॥

तो बाझे[८] मेकौ[९] चैन न आवै, ये दु ख कींह[१०] कहाउँ ।
तो बाझे मेकौ नींद न आवै, अँखियाँ नीर भराउँ ॥ १ ॥
जे तूं मेकौं सुरजन डेवै[११], सो हौं शीश सहाउँ ।
ये जन दादू सुरजन आवै, दरगह[१२] सेव कराउँ ॥ २ ॥

सुर-भी-आपके-भक्त-है[१], ऐसे हे[२] मेरे प्रभो[१] ! मै इस वियोग-व्यथा का पार कैसे[३] पा सकूगा[४] ? हे परमेश्वर[५] ! यदि आप मेरे घर पधारेंगे तब तो मै एक मात्र[५] अपने वियोग-दु ख की ही कथा[६] कहूगा[७] । आपके बिना[८] मुझे[९] किंचित भी सुख नही मिलता किन्तु यह दु ख की बात किस[१०] को कहूँ ? आपके बिना मुझे निद्रा भी नही आती, नेत्रो मे अश्रु-जल भरा ही रहता है। परमेश्वर ! मेरे को आप पास मे रखकर जो भी दण्ड देगे[११], वह सभी मै शिर पर सहन कर लूगा। किन्तु प्रभो ! आप मेरे हृदय-दरबार[१२] मे पधारे, मै दास आपकी सेवा करूगा।

४१९-रंगताल

मोहन माधव कब मिलै, सकल शिरोमणि राइ ।
तन मन व्याकुल होत है, दर्श दिखाओ आइ ॥ टेक॥
नैन रहे पथ जोवताँ, रोवत रैनि बिहाइ ।
बाल सनेही कब मिलै, मोपैं रह्या न जाइ ॥ १ ॥
छिन छिन अंग अनल दहै, हरिजी कब मिलि है आइ ।
अन्तरजामी जान कर, मेरे तन की तप्त बुझाइ ॥ २ ॥
तुम दाता सुख देत हो, हां हो सुन दीनदयाल ।
चाहै नैन उतावले, हा हो कब देखू लाल ॥ ३ ॥
चरण कमल कब देख हौ, हा हो सन्मुख सिरजनहार ।
सांई संग सदा रहौ, हा हो तब भाग हमार ॥ ४ ॥
जीवनि मेरी जब मिलै, हां हो तब ही सुख होइ ।
तन मन मे तू ही बसै, हा हो कब देखू सोइ ॥ ५ ॥
तन मन की तूं ही लखै, हां हो सुन चतुर सुजान ।
तुम देखे बिन क्यों रहौं, हा हो मोहि लागे बान ॥ ६ ॥
बिन देखे दुख पाइये, हां हो इब विलम्ब न लाइ ।
दादू दरशन कारणै, हा हो सुख दीजै आइ ॥ ७ ॥

सर्व शिरोमणि, विश्व के राजा मनमोहन, माधव ! आप मुझे कब प्राप्त होंगे ? आप बिना मेरे तन-मन व्याकुल हो रहे है, आप आकर दर्शन दे। आपका मार्ग देखते २ नेत्र थक रहे है, रोते २

रात्रि व्यतीत होती है। बाल-स्नेही राम ! आप कब मिलेगे ? आपके बिना मुझसे सुख पूर्वक नही रहा जाता। क्षण २ मे विरहाग्नि मेरे अगो को जला रहा है। आप प्रभु मेरे हृदय मे आकर कब मिलेगे ? प्रभो ! आप तो अन्तर्यामी है, मेरी स्थिति जानकर, मेरे शरीर की जलन मिटाइये ! हा, आप दाता है, भक्तो को सुख देते है। दीनदयालो ! मेरी भी विनय सुनिये। आपको देखने के लिये मेरे नेत्र शीघ्रता कर रहे है। प्रिय ! मै आपको कब देख सकूगा ? सृष्टि कर्ता प्रभो ! आप मेरे सन्मुख कब आयेगे, मै आपके चरण-कमल कब देख सकूगा ? हॉ, मेरा विशाल भाग्य तो तभी माना जायेगा, जब मै सदा प्रभु के साथ रहूँगा। जब मेरी जीवन-शक्ति के आधार प्रभु मिलेगे तब ही मुझे सुख होगा। शास्त्र-सतो के द्वारा सुना जाता है कि तन-मन मे आप बसते है किन्तु उस आपके रूप को मै देख सकूगा ? आप तो तन-मन की स्थिति देखते रहते है फिर हे चतुर सुजान ! मेरी वर्तमान स्थिति मे आपको देखे बिना मै कैसे जीवित रह सकूगा ? मेरे विरह-बाण लग रहे है, आपको देखे बिना दु ख ही पा रहा हूँ, अब आप दर्शन देने के लिये देर न करे। मेरे हृदय मे आपके दर्शन द्वारा सुख दीजिये। इस पद मे भगवान् को बाल-स्नेही इसलिये कहा है कि ११ वर्ष की अवस्था मे भगवान् ने काकरिया तालाब पर दर्शन दिया था, तभी से दादूजी का भगवान् मे अति प्रेम रहा है। प्रसग कथा—दृ सु सि त -७१९२ मे देखो।

४२०-(गुजराती) वैराग्य। वर्णभिन्न ताल

ये खूहि[1] पयें[2] सब भोग विलासन, तैसेहु बाझौ[3] छत्र सिंहासन ॥ टेक ॥

जन तिहुँरा[4] बहिश्त नहिं भावे, लाल[5] पिलंग क्या कीजे।
भाहि[6] लगे इह सेज सुखासन, मकौं[7] देखण दीजे ॥ १ ॥
वैकुण्ठ मुक्ति स्वर्ग क्या कीजे, सकल भुवन नहिं भावे।
भठी पयें सब मंडप छाजे, जे घर कंत न आवे ॥ २ ॥
लोक अनन्त अभै क्या कीजे, मैं विरही जन तेरा।
दादू दर्शन देखण दीजे, ये सुन साहिब मेरा॥ ३ ॥

वैराग्य दिखा रहे है—हे राम ! आपके बिना ये सब भोग-विलास कूप[1] मे पडे[2] और वैसे ही राज-छत्र से युक्त सिहासन भी आपके बिना व्यर्थ[3] है। आपके[4] बिना मुझ को स्वर्ग भी प्रिय नही लगता, फिर हे प्रिय[5]। सुहाग[5] पिलग का मै करू क्या ? इस शय्या सुखासन के भी अग्नि[6] लगे, मुझे[7] तो आप का स्वरूप देखने दीजिये। स्वर्ग, वैकुण्ठ और चतुर्मुक्तियो का भी मै क्या करूगा ? मुझे तो आप के बिना सभी विश्व के भुवन अच्छे नही लगते। यदि स्वामी घर पर नही आवे तो सुन्दर शोभा देने वाले सभी मडप भट्ठी मे पडे, उनका क्या करना है ? भय रहित अनन्त लोको का भी मै क्या करूगा ? मै तो आपका विरही भक्त हूँ। हे प्रभो ! ये मेरे वैराग्य प्रधान वचन सुन करके तो मुझे निष्काम जानकर दर्शन दीजिये।

४२१-(फ़ारसी) ईमान साबित (राग काफी) राजमृगाक ताल

अल्लह आशिकॉं ईमान[१]।
बहिश्त[२] दोजख[३] दीन दुनिया, चे[४] कारे[५] रहमान[६]॥ टेक॥
मीर[७] मीरी पीर पीरी, फरिश्त[८] फरमान[९]।
आब[११] आतिश[१२] अर्श[१३] कुर्सी[१४], दीदनी[१५] दीवान[१६]॥ १ ॥
हरदो[१७] आलम खलक खाना, मोमिना इसलाम।
हजां हाजी कजा क़ाजी, खान तू सुलतान॥ २ ॥
इल्म आलम मुल्क मालुम, हाजते[१८] हैरान।
अजब यारा खबरदारा, सूरते सुबहान[१९]॥ ३ ॥
अव्वल[२०] आखिर एक तू ही, जिन्द[२१] है कुरबान[२२]।
आशिकां दीदार दादू, नूर का नीशान[२३]॥ ४ ॥

धर्म मे दृढता विषयक विचार कह रहे है—ईश्वर प्रेमियो का धर्म[१] ईश्वर ही है। हे दयालु[६] ईश्वर ! स्वर्ग[२]—नर्क[३] और ससार के सप्रदाय रूप धर्म से आपके प्रेमियो का क्या[४] काम[५] है ? सरदारो[७] की सरदारी, पीरो की पीरी, फरिश्ताओ[८] की आज्ञा[९], जल[११], अग्नि[१२], आकाश[१३] और पृथ्वी[१४] की विशेषता खोजने की भी उन्हे क्या आवश्यकता है। हे महान्[१६] ! उनके लिये तो आप ही देखने[१५] योग्य है। इस लोक या परलोक दोनो[१७] ही लोक रूप ससार के प्रत्येक प्राणी के घर के, मुसलमान धर्म और उसमे निष्ठा रखने वाले मोमिनो के, नियत समय पर यात्रा करने वाले हाजियो के, न्याय करने वाले काजियो के, आप ही मुखिया और बादशाह है। ससार की ज्ञानादि विद्या, देश के प्राणियो को व्याकुल करने वाली उनकी इच्छाये[१८] आदि सब कुछ ही उन प्रभु को ज्ञात है। अत हे अद्भुत प्रभु के प्रेमियो ! उन पवित्र[१९] प्रभु के स्वरूप चिन्तन मे सावधान रहो। हे प्रभो ! सृष्टि के आदि[२०] और अन्त मे आप ही रहते है। हम अपना जीवन[२१] आप पर निछावर[२२] करते है। हमारा लक्ष्य[२३] आप का ज्योति-स्वरूप देखना है, आप हम प्रेमियो को दर्शन दीजिये।

४२२-(फ़ारसी) विरह विनती (राग काफी) वर्ण भिन्न ताल

अल्लह ! तेरा जिकर[१] फिकर[२] करते है।
आशिका मुश्ताक[३] तेरे, तर्स[४] तर्स मरते है॥ टेक॥
खलक खेश[५] दिगर[६] नेस्त[७], बैठे दिन भरते हैं।
दायम[८] दरबार तेरे, गैर[९] महल डरते है॥ १ ॥
तन शहीद[१०] मन शहीद, रात दिवस लडते है।
ज्ञान तेरा ध्यान तेरा, इश्क आग जलते है॥ २ ॥
जान[११] तेरा जिन्द[१२] तेरा, पाँवों शिर धरते हैं।
दादू दीवान[१३] तेरा, जर[१४] खरीद घर के है॥ ३ ॥

४२२-४२३ मे विरह पूर्वक विनय कर रहे है—हे ईश्वर ! हम आपकी ही चर्चा[१] और ध्यान[२] करते है, आपके प्रेमी है, आपके दर्शनो के लिये उत्कठित[३] हुये दु खी[४] हो-हो होकर मरते है। ससार मे अपने[५] या पराये[६] जो कुछ है सभी नष्ट[७] होने वाले है, ऐसे विचार द्वारा आपकी ही आशा मे दिन व्यतीत कर रहे है। भजन द्वारा सदा[८] आपके दरबार मे रहते है, अन्य[९] राजादि के महल मे जाने से डरते है, कारण—वहा विलासियो के सग से भक्ति मे विघ्न होने की सभावना रहती है। तन मन को आप पर बलिदान[१०] करने के लिये रात्रि-दिन आसक्ति त्याग का अभ्यास रूप युद्ध करते है। आप ही के ज्ञान का विचार करते है, आप ही का ध्यान करते है, आपके प्रेम से उत्पन्न विरहाग्नि मे जलते है। हमारे प्राण[११] और जीवन[१२] आपके ही है, हम आपके चरणो मे शिर रखते है। हे महान्[१३] ! हम तो आपके धन[१४] से खरीदे हुये घर के दास है, कृपा करिये।

एक समय भगवान् ने स्वामीजी से प्रश्न किया था—तुम क्या करते हो ? उसी का उत्तर इस पद से दिया था।

४२३-गज ताल

मुख बोल स्वामी, तूं अन्तर्यामी, तेरा शब्द सुहावै रामजी ॥ टेक ॥
धेनु चरावन बेनु बजावन, दर्श दिखावन कामिनी ॥ १ ॥
विरह उपावन तप्त बुझावन, अंग लगावन भामिनी ॥ २ ॥
संग खिलावन रास बनावन, गोपी भावन भूधरा ॥ ३ ॥
दादू तारन दुरित निवारण, संत सुधारण रामजी ॥ ४ ॥

हे स्वामिन् ! आप अन्तर्यामी है, मेरे मन की बात जानते है। रामजी ! आपका शब्द मुझे प्रिय लगता है, आप अपने मुख से बोलिये। आप ज्ञानेन्द्रिय रूप गोओ को चराते है, वाणी रूप बशी बजाते है, दर्शन की कामनायुक्त बुद्धि को ज्ञान रूप से दर्शन देते हैं। भक्तो की बुद्धि मे विरह उत्पन्न करते है। उन्हे दर्शन देकर वियोगाग्नि बुझाते है, प्रेमाभक्ति युक्त बुद्धि को अपने स्वरूप मे लगाते है और उसे अपने साथ आनन्द रूप रास खिलाते है। सत वृत्ति रूप गोपियो को प्रिय लगते है, सत्ता मात्र से पृथ्वी को धारण करते है। रामजी ! आप सतो का कार्य सब प्रकार की बाधाओ को दूर कर सुधारते है और उन सतो का शीघ्र उद्धार कर देते है।

(इस पद मे भगवान् कृष्ण के चरित्र का रूपक देकर निरजन राम से विनय की है।)

४२४-केवल विनती। गज ताल

हाथ दे हो रामा, तुम सब पूरण कामा, हौं तो उरझ रह्यो संसार ॥ टेक ॥
अंध कूप गृह में पर्यो, मेरी करहु सँभाल।
तुम बिन दूजा को नहीं, मेरे दीनानाथ दयाल ॥ १ ॥
मारग को सूझै नहीं, दह दिशि माया जाल।
काल पाश कसि बाँधियो, मेरे कोई न छुडावनहार ॥ २ ॥

राम बिना छूटै नहीं, कीजे बहुत उपाइ।
कोटि किया सुलझै नहीं, अधिक अलूझत जाइ॥ ३॥
दीन दुखी तुम देखताँ, भय दुख भजन राम।
दादू कहै कर हाथ दे हो, तुम सब पूरण काम॥ ४॥

भगवान् से सहायतार्थ विनय कर रहे है—सब कामनाओ को पूर्ण करने वाले राम ! मै ससार मे फँस रहा हूँ, मुझे अपना हाथ पकड़ा दीजिये, उसके सहारे मै ससार से बाहर निकल जाऊगा। गृह रूप अध-कूप मे पड़ा हूँ, मेरी सँभाल करिये। हे दीनानाथ दयालो ! मेरे उद्धार का प्रयत्न करे, ऐसा आपके बिना अन्य कोई भी मुझे नही दीख रहा है। दशो दिशाओ मे माया-जाल फैल रहा है, काल ने खूब खेचकर अपनी पाश मे बाँध रक्खा है, आपके बिना मेरे को छुड़ाने वाला कोई भी नही है। यह काल-पाश बहुत उपाय करे तो भी राम की कृपा बिना नही खुल सकता। सकाम-कर्म रूप कोटि यत्न करने पर भी प्राणी माया-जाल से नही निकल सकता, अधिक ही फँसता जाता है। काल-भय और ससार दु ख को नष्ट करने वाले राम ! आप के देखते हुये भी मै आपका जन दुखी हूँ, यह कहा तक उचित है ? आप तो सपूर्ण कामनाओ को पूर्ण करने वाले है। मै आप से विनय कर रहा हूँ—आपका हाथ मेरे हाथ मे पकड़ा दीजिये, मै उसके सहारे ससार से निकल आऊगा, अत मेरी सहायता कीजिये।

४२५-करुणा विनती। त्रिताल

जनि[1] छाडै! राम जनि छाडै, हमहि विसार, जनि छाडै।
जीव जात न लागै बार, जनि छाडै॥टेक॥
माता क्यों बालक तजै, सुत अपराधी होइ।
कबहुँ न छाडै जीव तै, जनि दुख पावै सोइ॥ १॥
ठाकुर दीनदयाल है, सेवक सदा अचेत।
गुण औगुण हरि ना गिणै, अतर तासौ हेत॥ २॥
अपराधी सुत सेवका, तुम हो दीन दयाल।
हम तैं औगुण होत है, तुम पूरण प्रतिपाल॥ ३॥
जब मोहन प्राणी चलै, तब देही किहि काम।
तुम जानत दादू का कहै, अब जनि छाड़ै राम॥ ४॥

४२५-४२६ मे विरह दु ख पूर्वक विनय कर रहे है—हे राम जी ! हम बारम्बार विनय कर रहे है, आप हमको भूल कर भी न[1] त्यागिये। जीव को शरीर से जाते देर नही लगती, न जाने वह कब चला जाय, इसलिये हमे कभी भी न त्यागिये। पुत्र दोषी भी हो तो भी माता, बालक पुत्र को कैसे तजेगी ? वह सुत को अपने मन से कभी भी नही त्यागती और सुत दु ख न पावे ऐसा ही व्यवहार करती है। वैसे ही आप स्वामी तो दीनदयालु है, सेवक की रक्षा के लिये सदा सचेत रहते

है। हे हरे ! आप शरीर के सुरूप कुरूपादि गुण अवगुण तो नही देखते, जो भक्त के भीतर हृदय का भाव है, उसी से प्रेम करते हो। हम तो आपके अपराधी सुत सेवक है, आप दीन दयालु हो। हमारे से तो अवगुण ही होते है किन्तु आप तो फिर भी पूर्ण रूप से रक्षा करते है। हे मोहन ! जब जीव चला जाय तब शरीर किस काम का है ? यह सब आप जानते ही है, मै आपको क्या कहूँ ? मेरी तो यही विनय है कि—आप मुझे न छोडे।

४२६-चौताल

विषम बार हरि अधार, करुणा बहु नामी।
भक्ति भाव बेग आइ, भीड भंजन स्वामी॥ टेक॥
अंत अधार संत सुधार, सुन्दर सुखदाई।
काम क्रोध काल ग्रसत, प्रकटो हरि आई॥ १ ॥
पूरण प्रतिपाल कहिये, सुमिरे तैं आवै।
भरम कर्म मोह लागे, काहे न छुडावै॥ २ ॥
दीनदयालु होहु कृपालु, अंतरयामी कहिये।
एक जीव अनेक लागे, कैसैं दुख सहिये॥ ३ ॥
पावन पीव चरण शरण, युग युग तैं तारे।
अनाथ नाथ दादू के, हरि जी हमारे॥ ४ ॥

कठिन समय मे अति दयालु और अति प्रसिद्ध हरि ही आश्रय देते है। वे विपद्-विनाशक स्वामी, भक्ति-भाव युक्त भक्त के पास शीघ्र ही आ जाते है। वे ही अन्तिम आश्रय है और सतो के कार्य सुधार कर सुन्दर सुख प्रदान करते है। हे हरे ! काम क्रोध काल हमे खा रहा है, आप हृदय मे आकर प्रकट रूप से दर्शन दीजिये। आपको सतशास्त्र पूर्ण रूप से भक्तो के रक्षक कहते है और आप भी स्मरण करने पर भक्तो के आते है। भ्रम, नाना प्रकार के कर्म और मोहादि मेरे पीछे लगे है, आप इनसे मुझे क्यो नही छुडाते ? आप तो अन्तर्यामी और दीनदयालु कहलाते है, कृपा करिये। एक जीव के पीछे अनेक कामादिक लग रहे है, इनका क्लेश कैसे सहा जाय ? हे पावन प्रियतम ! मै आपके चरणो की शरण हूँ। शरणागतो का आपने युग २ मे उद्धार किया है, अत अनाथो के नाथ हमारे हरिजी ! मेरा भी उद्धार करिये।

४२७-विनती। त्रिताल

साजनियां ! नेह न तोरी रे।
जे हम तोरैं महा अपराधी, तो तूं जोरी रे॥ टेक॥
प्रेम बिना रस फीका लागै, मीठा मधुर न होई।
सकल शिरोमणि सब तैं नीका, कडवा लागै सोई॥ १ ॥

जब लग प्रीति[1] प्रेम रस नांहीं, तृषा बिना जल ऐसा ।
सब तैं सुन्दर एक अमीरस, होइ हलाहल[2] जैसा ॥ २ ॥
सुन्दरि साई खरा पियारा, नेह नवा नित होवै ।
दादू मेरा तब मन मानै, सेज सदा सुख सोवै ॥ ३ ॥

अखड स्नेहार्थ विनय कर रहे है—हे सज्जन परमेश्वर ! आप हमारे से स्नेह न तोडना, यदि हम महा अपराधी होने से तोड़ने लगे तो भी आप उसे जोडने की ही कृपा करना। जैसे प्रेम बिना मधुर रस भी मधुर नही लगता, फीका लगता है, वैसे ही प्रेम बिना जो सर्व शिरोमणि और सबसे अच्छे प्रभु है, वे भी कटु लगते है, प्रिय नही लगते। जैसे प्यास बिना जल से प्रसन्नता नही होती, वैसे ही जब तक प्रेम नही होता तब तक रस से प्रसन्नता[1] नहीं होती, प्रेम बिना सबसे सुन्दर अमृत-रस भी महाविष[2] जैसा भासता है, वैसे ही प्रेम बिना अद्वैत ब्रह्म भी प्रिय नही होता। मुझ सुन्दरी को मेरे स्वामी परमेश्वर अत्यधिक प्रिय है और उनमे मेरा स्नेह नित्य नूतन होता जाता है, किन्तु मेरा मन तब सतोष मानेगा, जब वे मेरे प्रभु मेरी हृदय-शय्या पर सदा के लिये सुख-पूर्वक शयन करेंगे।

४२८-कर्ता कीर्ति । त्रिताल

काइमा[1] ! कीर्ति करूंली रे, तूं मोटो दातार ।
सब तै सिरजीला साहिबजी, तूं मोटो कर्तार ॥ टेक ॥
चौदह भुवन भानै घडै, घडत न लागै बार ।
थापै उथपै तूं धणी, धन्य धन्य सिरजनहार ॥ १ ॥
धरती अम्बर तै धरया, पाणी पवन अपार ।
चंद सूर दीपक रच्या, रैन दिवस विस्तार ॥ २ ॥
ब्रह्मा शकर तै किया, विष्णु दिया अवतार ।
सुर नर साधू सिरजिया, कर ले जीव विचार ॥ ३ ॥
आप निरंजन है रह्या, काइमा कौतिकहार ।
दादू निर्गुण गुण कहै, जाऊली हौ[2] बलिहार ॥ ४ ॥

ईश्वर का यश गान कर रहे है—हे अचल[1] परमेश्वर ! मै आपका यश गान करूगा, आप सबसे महान् दाता है। हे प्रभो ! सब ससार आपने ही रचा है, आप ही महान् और ससार के कर्ता है। आप चौदह भुवनो को बना कर नष्ट कर देते है और पुन बनाने मे आपको कुछ भी देर नही लगती। आप ही सबको स्थापित करने वाले और उखाड़ने वाले स्वामी है। सृष्टि-कर्ता ! आपको धन्य है, धन्य है। आपने ही पृथ्वी और आकाश को बना कर रक्खा है। हे अपार ! आपने ही जल, वायु, चन्द्र, सूर्य, दीपक और रात्रि-दिनादि ससार का विस्तार रचा है। ब्रह्मा तथा शकर आपने ही बनाये है। ससार की रक्षा के लिये आपने ही विष्णु तथा अवतार प्रकट कर दिये है। देवता, नर और सत आपने ही उत्पन्न किये है। अरे जीव ! उन प्रभु के गुण और स्वरूप सम्बन्धी

विचार करके उन्हे प्राप्त कर। वे प्रभु सत्ता मात्र से ससार रूप खेल करने वाले है, स्वय तो माया रहित होकर अचल हो रहे है। मै उन्ही निर्गुण प्रभु के गुण कह रहा हूँ और मै[२] उन्ही की बलिहारी जाऊगा।

४२९-उपदेश चेतावनी। प्रति ताल

जियरा! राम भजन कर लीजे।
साहिब लेखा माँगेगा रे, उत्तर कैसैं दीजे ॥टेक॥
आगै जाइ पछतावन लागो, पल पल यहु तन छीजे।
तातैं जिय समझाइ कहूं रे, सुकृत अब तैं कीजे॥ १ ॥
राम जपत जम काल न लागे, संग रहैं जन जीजै।
दादू दास भजन कर लीजे, हरिजी की रास रमीजे॥ २ ॥

उपदेश द्वारा सावधान कर रहे है-अरे मन! शरीर के ठीक रहते २ ही राम का भजन कर ले, फिर न होगा। जब प्रभु तेरे से जीवन का हिसाब माँगेगे तब बिना भजन किये उन्हे कैसे उत्तर देगा ? कारण-तू गर्भ मे उनके आगे भजन करने की प्रतिज्ञा करके आया था। यह शरीर क्षण २ मे क्षीण हो रहा है, आगे वृद्धावस्था मे जाकर तू पश्चात्ताप करने लगेगा, इसीलिये हे मन! तुझे समझाकर कह रहा हूँ, तू अभी से भजनादि सुकृत कर ले। राम-नाम जपने से यम और काम का जोर जापक पर नही लगता। भक्त भगवान् के साथ अभेद भाव से रह कर जीवित रहता है। मेरी बात मान कर भजन द्वारा उन प्रभु को प्राप्त कर लो। उन हरि की शरण मे रह कर उनके साथ अभेद स्थिति का आनन्दानुभव रूप रास खेल।

४३०-(गुजराती) काल चेतावनी। प्रतिताल

काल काया गढ भेलसी, छीजे दशों दुवारो रे।
देखतडां ते लूटिये, होसी हाहाकारो रे ॥टेक॥
नाइक नगर न मीलसी, एकलडो ते जाई रे।
संग न साथी कोई न आसी, तहँ को जाणे किम थाई रे॥ १ ॥
सत जत साधो माहरा भाईडा, काई सुकृत लीजे सारो रे।
मारग विषम चालिबो, कांई लीजे प्राण अधारो रे ॥ २ ॥
जिमि नीर निवाणा[१] ठाहरे, तिमि साजी बाँधो पालो रे।
समर्थ सोई सेविये, तो काया न लागे कालो रे ॥ ३ ॥
दादू मन घर आंणिये, तो निहचल थिर थाये रे।
प्राणी ने पूरो मिलो, तो काया न मेल्ही जाये रे ॥ ४ ॥

काल से सावधान कर रहे है-काल काया-किले को नष्ट करेगा। दो नेत्र, दो श्रवण, दो नाक, मल-मूत्रेन्द्रियाँ, मुख और ब्रह्म-रध्र, ये दशो द्वार क्षीण होंगे। देखते २ ही आयु-धन को

काल लूट ले जायगा तब हाहाकार होगा। काया नगर के स्वामी जीवात्मा को भी नगर मे न रहने देगा, वह कर्मानुसार अकेला ही परलोक को जायगा। परलोक मे उसके साथ कोई भी उसका साथी बन कर न जायगा। वहा कौन जानता है क्या होगा ? हे मेरे भाइयो ! सत्य तथा ब्रह्मचर्य पूर्वक कुछ तो सुकृत-सार रूप साधन करो। कठिन मार्ग मे चलना है, कुछ प्राणो का आश्रय अवश्य अपनाओ। जैसे नीची-भूमि मे जल ठहरता है, वैसे ही तुम भी सयमादि साधन सज कर भजन का बाध बाधो तो मन रूप जल ठहरेगा। फिर उस समर्थ प्रभु की भक्ति करोगे, तब काया के काल न लगेगा अर्थात् सूक्ष्म शरीर को काल पकड कर न ले जा सकेगा। यदि मन को स्थिर करोगे तो वह निश्चल ब्रह्म मे स्थिर हो जायगा। प्राणी को पूर्ण ब्रह्म मिलने पर उसका सूक्ष्म शरीर ससार मे नहीं रहता। जैसे उसकी आत्मा ब्रह्म मे लय हो जाती है, वैसे ही सूक्ष्म शरीर के इन्द्रियादि भी अपने २ कारण मे मिल जाते है। ('सत जन साधो' पाठान्तर भी है।)

४३१-भयभीत भयानक। दीपचन्दी

डरिये रे डरिये, परमेश्वर तै डरिये रे।
लेखा लेवै, भर भर देवै, तातैं बुरा न करिये रे, डरिये ॥ टेक ॥
साचा लीजी, साचा दीजी, साँचा सौदा कीजी रे।
साचा राखी, झूठा नाखी, विष ना पीजी रे ॥ १ ॥
निर्मल गहिये, निर्मल रहिये, निर्मल कहिये रे।
निर्मल लीजी, निर्मल दीजी, अनत न बहिये रे ॥ २ ॥
साह पठाया, बनिजन आया, जनि डहकावै रे।
झूठ न भावै, फेरि पठावै, किया पावै रे ॥ ३ ॥
पथ दुहेला, जाइ अकेला, भार न लीजी रे।
दादू मेला होइ सुहेला, सो कुछ कीजी रे ॥ ४ ॥

४३१-४३२ मे कह रहे है—भयानक कर्मों से तथा परमेश्वर से डरते रहना चाहिये, हम बारम्बार कहते है-हृदय मे ईश्वर का भय रख कर ही जीवन यापन करो, क्योकि-वे प्रभु जीवन का हिसाब लेते है और कर्मों के अनुसार ही अन्त करण मे भावी जन्म का विधान तथा सस्कार भर कर जन्म प्रदान करते है। इसलिये बुरे कर्म न करो। सत्य को हृदय मे रखकर, वस्तु लो और दो, सत्य का ही व्यापार करो। सत्य प्रभु का ही चिन्तन हृदय मे रक्खो, मिथ्या का चिन्तन त्यागो। विषय-विष का पान मत करो। शुद्ध ब्रह्म को ही उपास्य रूप से ग्रहण करो, निर्विकार रहो, निर्मल ब्रह्म का नाम उच्चारण करो, शुद्ध ब्रह्म सम्बन्धी उपदेश लो और दो। ब्रह्म-चिन्तन से भिन्न विषय-वासनादि मे वृत्ति मत जाने दो। प्रभु ने तुम्हे भेजा है, तुम सत्य का व्यापार करने आये हो, विषयो से बहको मत। प्रभु को मिथ्या विषयो का व्यापार अच्छा नही लगता। यदि तुम विषय-व्यापार मे ही जीवन व्यतीत करोगे तो प्रभु तुम्हे फिर चौरासी मे भेजेगे और तुम अपने किये कर्मों का फल पाओगे। प्रभु प्राप्ति का मार्ग अति कठिन है, उसमे एकाकी जाना पड़ता है। अत निषिद्ध

तथा शुभ सकाम कार्मों का भार मत उठाओ, जो कुछ करो वह निष्काम भाव से करो और वैसा ही विचार करो, जिससे आत्मा और ब्रह्म का अभेद रूप मिलन सुगम हो।

४३२-दीपचन्दी

डरिये रे डरिये, देख देख पग धरिये।
तारे तरिये मारे मरिये, तातैं गर्व न करिये रे, डरिये ॥ टेक।
देवै लेवै समर्थ दाता, सब कुछ छाजै रे।
तारे मारे गर्व निवारै, बैठा गाजै रे॥ १ ॥
राखै रहिये बाहैं बहिये, अनत न लहिये रे।
भानैं घडै संवारैं आपै, ऐसा कहिये रे॥ २ ॥
निकट बुलावै दूर पठावै, सब बन आवै रे।
पाके काचे काचे पाके, ज्यों मन भावै रे ॥ ३ ॥
पावक पाणी पाणी पावक, कर दिखलावै रे।
लोहा कंचन कंचन लोहा, कहि समझावै रे ॥ ४ ॥
शशिहर सूर सूर तैं शशिहर, परगट खेलै रे।
धरती अम्बर अम्बर धरती, दादू मेलै रे ॥ ५ ॥

पाप कर्म और परमात्मा से डरते रहो, पृथ्वी को देख २ कर पैर धरो वा पुन २ विचार करके शुभ कर्मों मे वृत्ति लगाओ। ईश्वर उद्धार करे तब ही प्राणी का उद्धार होता है और वे मारे तो मरण होता है। इसीलिये गर्व न करके ईश्वर से डरते रहना चाहिए। वे प्रभु उदार और तारने- मारने तथा गर्व नष्ट करने मे समर्थ है, सदा स्थिर बैठे गर्जना करते है। प्राणियो की भावना ग्रहण करते है तथा कर्मानुसार फल देते है। उनको सभी कुछ शोभा देता है। उनके रखने से प्राणी स्थिर रहता है, चलाने से चलता है। वे स्वय ही सब को नष्ट करते है, बनाते है और सुधारते है। सत और शास्त्र उनके विषय मे ऐसा ही कहते है। अत अन्य को उपास्य रूप से ग्रहण न करो। वे समीप बुलाते है, दूर भेज देते है। उनके द्वारा सभी कुछ होता है। यदि उनके मन को अच्छा लगे तो वे पक्के को कच्चा और कच्चे को पक्का कर देते है। अग्नि को जल, जल को अग्नि, लोहे को सुवर्ण, सुवर्ण को लोहा करके दिखा देते है। ऐसा कह-कह कर प्रभु की समर्थता समझा रहे है। वे चन्द्र से सूर्य, सूर्य से चन्द्र बना कर प्रकट रूप से उनके साथ खेल सकते है। उन्होंने पृथ्वी को आकाश मे और आकाश को पृथ्वी पर अधर धर रखा है, उसकी लीला अपार है।

४३३-हितोपदेश। चौताल

मनसा मन शब्द सुरति, पांचों थिर कीजै।
एक अंग सदा संग, सहजैं रस पीजै ॥ टेक ॥

सकल रहित मूल गहित, आपा नहिं जानैं ।
अतर गति निर्मल रति, एकै मन मानैं ॥ १ ॥
हिरदै सुधि विमल बुधि, पूरण परकासै ।
रसना निज नाम निरख, अंतर गति[1] वासै ॥ २ ॥
आत्म मति पूरण गति, प्रेम भगति राता ।
मगन गलित अरस परस, दादू रस माता ॥ ३ ॥

हितकर उपदेश कर रहे है—बुद्धि, मन, शब्द, वृत्ति, पच प्राण और पच ज्ञानेन्द्रियो को स्थिर करके सहजावस्था द्वारा सदा अद्वैत ब्रह्म स्वरूप के अभेद रूप सग मे रह कर ब्रह्मानन्द-रस का पान करो। जो अहकार को भूल कर सपूर्ण मायिक प्रपच से रहित अपने मूल ब्रह्म को उपास्य रूप से ग्रहण करता है और निर्मल प्रीति से वृत्ति हृदयस्थ आत्मा मे ही रखता है, उसका मन अद्वैत ब्रह्म चिन्तन से ही सतोष मानता है। उसके शुद्ध हृदय मे और विमल बुद्धि मे पूर्ण ब्रह्म का प्रकाश प्रकट होता है, जिह्वा पर सत्य राम आदि निज नाम रहते है। उक्त साधना द्वारा स्वस्वरूप ब्रह्म का साक्षात्कार करके अन्तर्मुख वृत्ति[1] द्वारा ब्रह्म मे ही बसता है। आत्म चिन्तन मे ही बुद्धि लगी रहने से उसका गमन पूर्ण ब्रह्म मे ही होता है और साधक प्रेमाभक्ति मे अनुरक्त रहता है, स्वरूप चिन्तन मे निमग्न होने से अहकार गल जाता है और ब्रह्म से अरस-परस अभेद होकर अद्वैत-रस मे मस्त रहता है।

४३४-विनती। त्रिताल

गोविन्द के चरणौ ही ल्यौ लाऊं।
जैसे चातक वन में बोलै, पीव पीव कर ध्याऊ ॥ टेक ॥
सुरजन मेरी सुनहु वीनती, मै बलि तेरे जाऊं ।
विपति हमारी तोहि सुनाऊ, दे दर्शन क्यो हि पाऊ ॥ १ ॥
जात दुख, सुख उपजत तन को, तुम शरणागति आऊ ।
दादू को दया कर दीजै, नांउ तुम्हारो गाऊ ॥ २ ॥

४३४-४३५ मे दर्शनार्थ विनय कर रहे है—गोविन्द के ही चरणो मे वृत्ति लगाता हूँ। जैसे चातक पक्षी वन मे स्वाति बिन्दु के लिये पीव २ बोलता है, वैसे ही प्रियतम २ करते हुये उन प्रभु का ध्यान करता हूँ। हे सुर-गणो के स्वामिन्! मेरी विनय सुनिये, मै आपकी बलिहारी जाता हूँ और अपनी विपत्ति आपको सुनाता हूँ। आप मुझे दर्शन दीजिये। मै आपको कैसे प्राप्त कर सकूगा, वह उपाय भी बताइये ? जो आपकी शरण आते है, उनके दु ख चले जाते है और शरीर मे सुख उत्पन्न होता है। मै भी आपकी शरण आया हूँ, आपका नाम गान करता हूँ, मुझे भी दया करके दर्शन द्वारा सुख प्रदान करिये।

४३५-त्रिताल

ए ! प्रेम भक्ति बिन रह्यो न जाई, परगट दर्शन देहु अघाई ॥ टेक ॥
तालाबेली तलफै माँहीं, तुम बिन राम जियरे जक[1] नॉहीं ॥ १ ॥
निशिवासर मन रहै उदासा, मै जन व्याकुल सास उसासा ॥ २ ॥
एकमेक रस होइ न आवै, तातैं प्राण बहुत दुख पावै ॥ ३ ॥
अंग संग मिल यहु सुख दीजै, दादू राम रसायन पीजै ॥ ४ ॥

हे प्रभो ! आपकी प्रेमाभक्ति बिना मुझसे नही रहा जाता और आपके दर्शन न होने से इस प्रेमाभक्ति मे दु ख होता है, अत आप हृदय मे प्रकट होकर दर्शन दे, जिससे मै तृप्त होकर सुखी हो जाऊ। भीतर मेरा मन व्याकुलता से तडफ रहा है। राम ! आपके बिना हृदय को शाति[1] नही है। मेरा मन रात्रि-दिन खिन्न रहता है। मै आपका भक्त श्वास २ प्रति व्याकुल होता रहता है। आपके स्वरूप मे अभेद होकर अद्वैतानन्द-रस नही मिल रहा है, इससे मन बहुत दु ख पा रहा है। आप मेरे आत्म रूप अग के साथ मिलकर इस अभेद स्थिति का सुख दीजिये, जिससे मै एकत्व चिन्तन रूप राम-रसायन पान करके मस्त रहूँ।

४३६-परिचय-उपदेश। पंजाबी त्रिताल

तिस घर जाना वे, जहां वे अकल स्वरूप।
सोइ अब ध्याइये रे, सब देवन का भूप ॥ टेक ॥
अकल स्वरूप पीव का, बान बरन न पाइये।
अखंड मंडल मॉहिं रहै, सोई प्रीतम गाइये ॥
गावहु मन विचारा वे, मन विचारा सोई सारा, प्रकट पीव ते पाइये।
सांई सेती संग साचा, जीवित तिस घर जाइये ॥ १ ॥
अकल स्वरूप पीव का, कैसे करि आलेखिये।
शून्य मंडल मॉहिं साचा, नैन भर सो देखिये ॥
देखो लोचन सार वे, देखो लोचन सार, सोई प्रकट होई,
यह अचंभा पेखिये।
दयावन्त दयालु ऐसो, बरण अति विशेखिये ॥ २ ॥
अकल स्वरूप पीव का, प्राण जीव का, सोई जन जे पावही।
दयावन्त दयालु ऐसो, सहजैं आप लखावही ॥
लखै सु लखणहार वे, लखै सोई संग होई, अगम बैन सुनावही।
सब दुख भागा रंग लागा, काहे न मंगल गावही ॥ ३ ॥

अकल स्वरूपी पीव का, कर कैसे करि आंणिये ।
निरन्तर निर्धार आपै, अतर सोई जांणिये ॥
जाणहुँ मन विचारा वे, मन विचारा सोई सारा,
सुमिर सोई बखानिये।
श्री रंग सेती रंग लागा, दादू तो सुख मानिये ॥ ४ ॥

४३६-४३९ मे साक्षात्कार सम्वन्धी उपदेश कर रहे है—हे साधक ! उस निर्विकल्प समाधि रूप घर मे जाना चाहिये, जिसमे कला विभाग से रहित वे निरजन ब्रह्म प्राप्त होते है। अव सब देवताओ के राजा उसी ब्रह्म का ध्यान कर ॥ टेक ॥ उस निराकार स्वरूप प्रियतम के भेष, रग, जाति नही मिलते। जो अपनी महिमा रूप अखड मडल मे रहता है, उसी प्रियतम ब्रह्म का नाम गान कर और यश गान करते हुये अन्त करण से विचार कर, जो उस सार स्वरूप ब्रह्म का अन्त करण से विचार करते है वे उसे प्रत्यक्ष आत्म रूप से प्राप्त करते है। निर्विकल्प समाधि-घर मे जाकर जीवितावस्था मे ही उस परब्रह्म के साथ अभेद रूप सच्चा सग प्राप्त कर ॥ १ ॥ निरवयव स्वरूप प्रियतम ब्रह्म का किसी भी प्रकार साक्षात्कार कर, वह सत्य ब्रह्म सहस्रार रूप शून्य मडल मे स्थित भासता है, उसे ज्ञान-नेत्रो से इच्छा भर के देखो। उस विश्व के सार को ज्ञान-नेत्रो से वारम्वार देखो। वहा यह आश्चर्य देखने मे आता है कि-जो निराकार है, वही ब्रह्म प्रकट हो रहा है। वह ऐसा दया-गुण से युक्त दयालु है कि—रग रूप रहित होने पर भी भक्तो पर कृपा करने के लिये अति विशेष ओंकारवर्ण रूप से वा भक्त भावनानुसार रग-रूप से भासता रहता है ॥ २ ॥ जो जीव का प्राणाधार है, उनका निरग प्रियतम ब्रह्म के स्वरूप को जो उसका भक्त होता है, वही प्राप्त करता है, वह ऐसा दया गुण सम्पन्न दयालु है कि भक्त को अनायास ही अपना स्वरूप दिखा देता है। सुन्दर लक्षणो वाला भक्त ही देखता है। जो देखता है, वह अभेद रूप से उसके सग ही हो जाता है और उस अगम ब्रह्म सम्बन्धी ही वचन सुनाता है। उसके सब दु ख नष्ट हो जाते है, ब्रह्म का अभेद भाव रूप अमिट रग लग जाता है फिर वह क्यो नही ब्रह्म सम्बन्धी मगल गीत गायेगा ? ॥ ३ ॥ उस कला विभाग रहित प्रियतम ब्रह्म के स्वरूप का कृपा रूप हाथ किसी भी प्रकार साधन करके पकड़ना चाहिये। अविचल ब्रह्म का अपने आत्म स्वरूप से अभेद निर्णय करके उसी अद्वैत निष्ठा को भीतर रखना चाहिये। अन्त करण से विचार करके उसे जानो, अन्त करण मे विचार करने से वही विश्व का सार ज्ञात होगा। उसी का स्मरण करो, उसी का कथन करो। इस प्रकार यदि परब्रह्म रूप श्री रग से तुम्हारा प्रेम लग जाय तभी तुमको सुख मानना चाहिए। इस स्थिति से पूर्व तो विरह पूर्वक निरन्तर हरि चिन्तन करते रहना चाहिये ॥ ४ ॥

४३७-दीपचन्दी

राम तहाँ प्रगट रहे भरपूर।
आत्मा कमल जहाँ, परम पुरुष तहाँ, झिलमिल झिलमिल नूर ॥ टेक ॥

चन्द सूर मध्य भाइ, तहाँ बसै राम राइ, गंग जमुन के तीर।
त्रिवेणी संगम जहाँ, निर्मल विमल तहाँ, निरख-निरख निज नीर॥ १ ॥
आत्मा उलट जहाँ, तेज पुंज रहै तहाँ, सहज समाइ।
अगम निगम अति, जहाँ बसे प्राणपति, परसि परसि निज आइ॥ २ ॥
कोमल कुसम दल, निराकार ज्योति जल, वार न पार।
शून्य सरोवर जहाँ, दादू हंसा रहै तहाँ, विलसि-विलसि निज सार॥ ३ ॥

यो तो राम सर्वत्र परिपूर्ण है किन्तु जहा जीवात्मा का अष्टदल-कमल है वहा ध्यानावस्था मे प्रकट रूप से भी भासते है। वहा उन परम पुरुष का स्वरूप प्रकाश झिलमिल रूप से भासता है। हे भाई! इडा रूप चन्द्र और पिगला रूप सूर्य के मध्य की सुषुम्ना चलती है तब वहा अष्टदल कमल पर बसे हुये राजा राम भासते है तथा इडा-गगा, पिगला-यमुना, सुषुम्ना सरस्वती है जहा आज्ञाचक्र मे इन तीनो का सगम होता है। उस सगम रूप त्रिवेणी के विमल तट पर निज स्वरूप-निर्मल नीर को बारबार देख। जहाँ प्रकाश राशि आत्म स्वरूप ब्रह्म विशेष रूप से स्थित है, वृत्ति को अन्तर्मुख करके वहा ही उनके सहज स्वरूप मे वृत्ति लय कर। जो वेद से भी अति अगम है, उस अपनी महिमा मे ही प्राणपति ब्रह्म बसते है, उनका वृत्ति द्वारा बारबार चिन्तन रूप स्पर्श करके ही निज स्वरूप मे आया जाता है। कोमल अष्टदल-कमल पुष्प के दल पर दल प्रतिविम्बित ज्योति के समान वार पार सर्वत्र निराकार ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। जहा ब्रह्म रूप शून्य सरोवर का साक्षात्कार होता है, वहा ही विश्व के सार निज स्वरूप ब्रह्म के साक्षात्कार जन्य आनन्द का उपभोग करते हुये हम हस रहते है।

४३८-फरोदस्त ताल

गोविन्द पाया मन भाया, अमर कीये संग लीये।
अक्षय अभय दान दीये, छाया नहिं माया॥ टेक॥
अगम गगन अगम तूर, अगम चंद अगम सूर।
काल झाल रहे दूर, जीव नहीं काया॥ १ ॥
आदि अंत नहीं कोइ, रात दिवस नहीं होइ।
उदय अस्त नहीं दोइ, मन ही मन लाया॥ २ ॥
अमर गुरु अमर ज्ञान, अमर पुरुष अमर ध्यान।
अमर ब्रह्म अमर थान, सहज शून्य आया॥ ३ ॥
अमर नूर अमर बास, अमर तेज सुख निवास।
अमर ज्योति दादू दास, सकल भुवन राया॥ ४ ॥

मनभावन गोविन्द को हमने प्राप्त कर लिया है। उन्होने हमे अभेद रूप से अपने सग लेकर हमको अमर कर दिया है। अक्षय आनन्द और अभय पद भी प्रदान किया है। उनके स्वरूप मे

आभास रूप छाया और माया दोनो ही नही है। वे हृदयाकाश से ऊपर तथा अनाहत-नगाड़े की ध्वनि से आगे है। चन्द्र-सूर्य के प्रकाश से अगम्य है। काल की लहर उनसे दूर ही रहती है। उनमे जीवत्व भाव नहीं है, न वे स्थूल शरीर रूप ही हे। उनके स्वरूप का आदि अत किसी प्रकार भी नहीं ज्ञात होता। न उनके पास रात्रि-दिन रूप काल-भेद ही है वा उनके स्वरूप मे अज्ञान रूप रात्रि और इन्द्रिय ज्ञान रूप दिन नहीं है। उनके पास चन्द्र-सूर्यादि उदय-अस्त नहीं होते व उनके स्वरूप मे ज्ञान का उदय-अस्त नही होता, वे नित्य ज्ञान स्वरूप है। मन के द्वारा उनका चिन्तन करके हमने अपना मन उनमे लगाया हे। उन अमर गुरु देव का ज्ञान अमर करता है तथा उन अमर पुरुष का ध्यान भी अमर करता है। वे अमर ब्रह्म ही देवताओ के आश्रय रूप स्थान है। वे विकार शून्य ब्रह्म निर्विकल्प समाधि रूप सहजावस्था मे ज्ञान-नेत्रो द्वारा देखने मे आये है। उनका स्वरूप, महिमा रूप वासस्थान, प्रताप और प्रकाश अमर है। वे सपूर्ण भुवनो के राजा है। मुझ दास का उन नित्यानन्द स्वरूप मे ही निवास है।

४३९-फरोदस्त ताल

राम की राती भई माती, लोक वेद विधि निषेध,
भागे सब भ्रम भेद, अमृत रस पीवै ॥ टेक ॥
भागे सब काल झाल, छूटे सब जग जंजाल।
विसरे सब हाल चाल, हरि की सुधि पाई ॥ १ ॥
प्राण पवन तहाँ जाइ, अगम निगम मिले आइ,
प्रेम मगन रहे समाइ, विलसै वपु नाहीं ॥ २ ॥
परम नूर परम तेज, परम पुंज परम सेज,
परम ज्योति परम हेज, सुन्दरि सुख पावै ॥ ३ ॥
परम पुरुष परम रास, परम लाल सुख विलास,
परम मगल दादू दास, पीव सौं मिल खेलै ॥ ४ ॥

हमारी बुद्धि राम की भक्ति मे अनुरक्त होकर मस्त हो गई है। अब लोक-लाज और वेद के विधि निषेध रूप विहित सकाम कर्म तथा निषिद्ध कर्मों का करना हमने छोड दिया है। भ्रम जन्य सभी भेद हमारे हृदय से भाग गये है। केवल अभेद चिन्तन रूप अमृत-रस ही हम सदा पान करते है। काल की ज्वाला रूप काम-क्रोधादिक सभी आसुर गुण अन्त करण से भाग गये है। यम-जाल रूप जगत् के कपट पूर्ण सभी व्यवहार छूट गये है। ससारी प्राणियो के वृत्तान्त हम भूल गये है और हरि की स्मरण-भक्ति प्राप्त की है। प्राण-वायु सहस्रार मे जाकर जहाँ स्थित होता है, वहा आकर के हम वेद से भी अगम ब्रह्म से मिले है। उनके प्रेम मे निमग्न होकर वृत्ति द्वारा उन्ही मे समा रहे है। शरीराध्यास पूर्वक विषयो का उपभोग नही करते। उन ब्रह्म का रूप और प्रताप उत्कृष्ट है, वे उत्कृष्टता की राशि है। उनकी हृदय, शय्या श्रेष्ठ है। उनका स्वरूप प्रकाश अति उत्कृष्ट है।

उनसे अत्यत प्रेम करके हमारी मति सुन्दरी सुख पा रही है। उन परम प्रिय परम पुरुष स्वामी के साथ मिलकर हम दास, अभेद भावना रूप रास खेलते हुये, परमानन्द का उपभोग कर रहे है। इस प्रकार हमारे यहा परम मगल हो रहा है। ४३६-४३९ के ४ पद वाणी रूप मदिर के कलश है।

४४०-आरती। त्रिताल

इहि विधि आरती राम की कीजै, आत्मा अंतर वारणा लीजै ॥ टेक ॥
तन मन चंदन प्रेम की माला, अनहद घंटा दीन दयाला ॥ १ ॥
ज्ञान का दीपक पवन की बाती, देव निरंजन पांचों पाती ॥ २ ॥
आनंद मंगल भाव की सेवा, मनसा मंदिर आतम देवा ॥ ३ ॥
भक्ति निरंतर मैं बलिहारी, दादू न जानैं सेव तुम्हारी ॥ ४ ॥

४४०-४४४ मे निरजन राम की आरती की पद्धति बताते हुये आरती कर रहे है—निरजन राम की आरती इस प्रकार करनी चाहिए और अन्त करण के भीतर ही उन पर निछावर होना चाहिए। तन और मन को चन्दन बनाओ, प्रेम मय पुष्पमाला पहनाओ और उन दीनदयालु के आगे अनाहत नाद रूप घटा बजाओ, ज्ञान-दीपक जलाओ। पच-प्राण रूप वायु की पांच बत्ती बनाओ, उन निरजन देव पर पच, ज्ञानेन्द्रिय रूप तुलसी-पत्र चढाओ। इस प्रकार आनद रूप मगला आरती करो। भाव मय सेवा करो। उन आत्म-स्वरूप निरजन देव का मदिर बुद्धि ही है। हे प्रभो ! किस प्रकार की सेवा आपको प्रिय है, यह आप ही जानते है, मै नही जानता, किन्तु मै मति-मदिर मे निरतर आपकी भक्ति करते हुये आप पर निछावर होता हूँ।

४४१-उदीक्षण ताल

आरती जगजीवन तेरी, तेरे चरण कवल पर वारी फेरी ॥ टेक ॥
चित चाँवर हेत हरि ढारै, दीपक ज्ञान हरि ज्योति विचारै ॥ १ ॥
घंटा शब्द अनाहद बाजे, आनंद आरती गगन गाजै ॥ २ ॥
धूप ध्यान हरि सेती कीजै, पुहुप प्रीति हरि भाँवरि लीजै ॥ ३ ॥
सेवा सार आतमा पूजा, देव निरंजन और न दूजा ॥ ४ ॥
भाव भक्ति सौं आरती कीजै, इहि विधि दादू जुग जुग जीजै ॥ ५ ॥

हे जग-जीवन ! हम आपकी आरती करते है और आपके चरण-कमलो पर निछावर होते है। शुद्ध चित्त से चिन्तन करना रूप चँवर हरि पर सस्नेह करते है। विचार रूप ज्योति वाला ज्ञान-दीपक जलाते है। अनाहत नाद रूप घटा बजाते है। आनन्द रूप आरती गाने की ध्वनि-गर्जना हृदयाकाश मे हो रही है। हरि के आगे जीवात्मा रूप उपासक की सार रूप सेवा पूजा है, निरंजन देव ही उपास्य देव है, अन्य दूसरा कोई नहीं है। इस प्रकार भाव-भक्ति से जो आरती करता है, वह ब्रह्म रूप होकर प्रति युग मे जीवित रहता है।

४४२-उदीक्षण ताल

अविचल आरती देव तुम्हारी, जुग जुग जीवन राम हमारी ॥ टेक ॥
मरण मीच जम काल न लागे, आवागवन सकल भ्रम भागे ॥ १ ॥
जोनी जीव जनम नहि आवे, निर्भय नांव अमर पद पावे ॥ २ ॥
कलिविष[1] कुसमल[2] बन्धन कापे[3], पार पहूंचे, थिर कर थापे ॥ ३ ॥
अनेक उधारे तैं जन तारे, दादू आरती नरक निवारे ॥ ४ ॥

हे निश्चल निरजन देव ! आप की आरती हम भक्तो की प्रति युग मे जीवन रूप रही है। आप की आरती करने से दु ख रूप मरण, मृत्यु, यमदूत और काल, जीव के पीछे नहीं लगते। लोकान्तर मे जाना-आना रूप चक्कर मिट जाता है। जीव चौरासी लक्ष योनियो मे जन्म कर ससार मे नही आता, निर्भयता पूर्वक नाम-चिन्तन करता हुआ अमर पद रूप अपने स्वरूप को प्राप्त करता है। आपकी आरती करने से नाना प्रकार के (कल्विष[1]) विकार[1] और (कश्मल[2]) पाप[2] रूप बन्धन कट[3] जाते है। साधक आपकी आरती करके ससार से पार पहुँचे है। आरती करने के फल ने उन्हे आप परब्रह्म के स्वरूप मे स्थिर करके स्थापन किया है। आपकी आरती करने से आपने अनेक भक्तो का दु खो से उद्धार करके उन्हे ससार से पार किया है। आपकी आरती प्राणी को नरकादिक क्लेशो से बचाती है।

४४३-भंगताल

निराकार तेरी आरती, बलि जाउं अनन्त भवन[1] के राइ ॥ टेक ॥
सुर नर सब सेवा करैं, ब्रह्मा विष्णु महेश ।
देव तुम्हारा भेव न जानैं, पार न पावै शेष ॥ १ ॥
चंद सूर आरती करै, नमो निरंजन देव ।
धरणि पवन आकाश अराधैं, सबै तुम्हारी सेव ॥ २ ॥
सकल भवन सेवा करै, मुनियर सिद्ध समाधि ।
दीन लीन ह्वै रहे संत जन, अविगत के आराधि ॥ ३ ॥
जै जै जीवनि राम हमारी, भक्ति करै ल्यौ लाइ ।
निराकार की आरती कीजे, दादू बलि बलि जाइ ॥ ४ ॥

अनन्त लोकों[1] के राजन् ! निरजन देव ! आपकी आरती करते हुये मै आपकी बलिहारी जाता हूँ। सुर, नरादि सभी आपकी सेवा करते है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वरादि देव आपके रहस्यमय स्वरूप का आदि अन्त नहीं जानते। शेष हजार मुखो से नित्य नूतन नाम-गान करने पर भी आपके नामो का पार नही पाते। चन्द्र-सूर्य आपकी आरती करते है। पृथ्वी, वायु, आकाश, आपकी उपासना करते है तथा सभी महाभूत आपकी सेवा करते है। निरजन देव ! आपको मै नमस्कार करता हूँ। सपूर्ण भुवन, मुनिवर, समाधि मे स्थित सिद्ध भी आपकी सेवा करते है। आप मन, इन्द्रियो के अविषय ब्रह्म की आराधना द्वारा सत-जन दीन भाव से आपके स्वरूप मे लयलीन हो

रहे है। हे हमारे जीवन रूप राम ! हम आपकी 'जय हो, जय हो' इस प्रकार जय ध्वनि करते हुये वृत्ति लगा कर आप की भक्ति करते है और आप निराकार की आरती करते हुये बारबार आपकी बलिहारी जाते है।

४४४-दीपचन्दी

तेरी आरती ए, जुग जुग जै जै कार ॥ टेक ॥
जुग जुग आत्म रांम, जुग जुग सेवा कीजिये ॥ १ ॥
जुग जुग लंघे पार, जुग जुग जगपति कों मिले ॥ २ ॥
जुग जुग तारणहार, जुग जुग दरसन देखिये ॥ ३ ॥
जुग जुग मंगलचार, जुग जुग दादू गाइये ॥ ४ ॥
(प्राण उधारणहार ॥)

इति राग धनाश्री सम्पूर्ण ॥ २७ ॥ पद ३० ॥

इति श्री सत प्रवर दादू दयालुजी महाराज की अनुभव वाणी सम्पूर्ण ॥

हे निरजन देव ! आपकी आरती प्रतियुग मे भक्त-जन करते हुये बारबार जय ध्वनि करते है। प्रतियुग मे ही जीवात्मा और परमात्मा रहते है, प्रतियुग मे ही भक्ति करनी चाहिए। प्रतियुग मे ही परब्रह्म की आरती करके प्राणी ससार को लाघ कर पार गये है और प्रतियुग मे ही विश्वपति राम को मिले है। प्रतियुग मे ही प्रभु भक्तो को ससार से तारने वाले के रूप मे स्थित रहते है। प्रतियुग मे ही उनका दर्शन करो। परब्रह्म की आरती गाने से प्रतियुग मे ही मगलाचार रहता है। अत प्रतियुग मे ही परब्रह्म की आरती गानी चाहिए। यह आरती प्राणो का उद्धार करती है।

पद्य गिरा पर गद्य मय, रच कर तिलक विशाल।
प्रणति करूं श्री दादु को, करिये कृपा दयाल ॥ १ ॥

क्लान्त निहार त्रितापन से भव, आय अनुग्रह दादु करा है।
लाइ गिरामय श्रेष्ठ लता, रस ज्ञान स्वरूप निगूढ धरा है॥
ताहि निचोड 'नारायण' ने यह, गद्य सुपात्रहि मांहिं भरा है।
पान करो सु प्रमाद विसार, परात्म प्रदर्शक हेतु खरा है॥ २ ॥

दोय सहस सत्रह अधिक, विक्रम अषाढ मास।
शुक्ला छठ गुरुवार को, आरँभ ले सुख आस ॥ ३ ॥
दोय सहस अट्ठारह, विक्रम वैशाख मास।
शुक्ला तेरस शुक्र को, पूरण सहित हुलास ॥ ४ ॥
श्री कृष्ण कृपा कुटीर में, पुष्कर तीरथ मांहिं।
दादू गिरार्थ प्रकाशिका, पूर्ण पढे दुख जांहिं॥ ५ ॥

इति श्री पूज्य चरण स्वामी धनराम जी के शिष्य स्वामी नारायणदास कृत
श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका टीका सम्पूर्ण।

* आरती *

आरती गुरु दादू की कीजै, दरसन देखि जुगै जुग जीजै ॥टेक॥
नूर तेज मैं तेरा वासा, झिलमिल चमकै ज्योति प्रकाशा ॥ १ ॥
कहा लौं आरती साधू गावैं, दरसन देखि परम सुख पावैं ॥ २ ॥
प्रेम पियाला भरि भरि दीजै, गरीबदास अपनो करि लीजै ॥ ३ ॥

***

आरती दादू दास तुम्हारी, तुम पुरवौ सद्गुरु आस हमारी ॥टेक॥
प्राण पिंड न्यौछावर कीजै, प्रसन्न होय परम सुख दीजै ॥ १ ॥
प्रफुल्लित प्राण मुदित गुण गाऊ, दीन होय चरणों चित लाऊ ॥ २ ॥
द्यो देव दयानिधि स्वामी, सकल शिरोमणि अंतरयामी ॥ ३ ॥
विनती यही करो जनि दूरी, चैन कहै मोहि राखो हजूरी ॥ ४ ॥

***

आरती गुरु दादू की गाऊ, निशदिन हिरदा भीतर ध्याऊ ॥टेक॥
चरण राउरे कमल सुरंगा, मकरंद लेवे मो मन भृंगा ॥ १ ॥
धन्य तुम दरस धन्य तव दासा, मैं गुन गाऊ स्वासौं स्वासा ॥ २ ॥
नूर रूप तुम स्वामी मेरो, कहाँ लगि बरणो जस बहुतेरो ॥ ३ ॥
जन प्रहलाद शरण आयो तेरी, यह अरदास मानियो मेरी ॥ ४ ॥

***

आरती गुरु दादू की कीजै, ब्रह्मरूप निज ध्यान धरीजै ॥टेक॥
प्रेम जल ले चन्दन चरचाऊ, भाव भक्ति के पुहुप चढ़ाऊ ॥ २ ॥
तन मन थाली घृत सजोऊ, नूर तेज के दीपक जोऊ ॥ २ ॥
जगमग जोति भया उजियारा, भरम करम नाशत अंधियारा ॥ ३ ॥
जन मसकीन मिले गुरु राया, आरती करत परम पद पाया ॥ ४ ॥

***

यू आरती गुरु ऊपर कीजै, जामे आतम राम लहीजै ॥टेक॥
ज्ञान ध्यान गुरु माहीं पाया, विषम विषय सौं प्राण छुड़ाया ।
दुख दरिया माहीं तैं काढ़ै, नाम जहाज जीव लै चाढ़ै ।
माया मोह कादि मन धोवै, परम पवित्र गुरु तैं होवै ।
जिन अंगों प्राणपति सेवैं, ते सब अंग गुरु दिल देवैं ।
गुरु प्रसाद परम पद पावै, जन रज्जब जुग जुग बलि जावैं ।

***

गुरु गोविन्द की आरती कीजै, आरति कर कर जुग जुग जीजै ॥टेक॥
काया-कासी थाल सजोऊ, पांच-पचीसों दीपक जोऊ ॥ १ ॥
अनहद-वाणी घण्ट बजाऊ, मन-मनसा चित-चँवर दुलाऊँ ॥ २ ॥
दिल-देवल में मूरति प्यारी, सन्तदास धन ता पर वारी ॥ ३ ॥

आरती परब्रह्म की कीजै, और ठौर मेरो मन न पतीजै ॥टेक॥
गगन-मँडल मे आरती साजी, शब्द-अनाहद झालर बाजी ॥ १ ॥
दीपक-ज्ञान भया परकासा, सेवग ठाढे स्वामी पासा ॥ २ ॥
अति उछाह अति मंगलचारा, अति सुख विलसै बारम्बारा ॥ ३ ॥
सुन्दर आरती, सुन्दर देवा, 'सुन्दरदास' करै तहां सेवा ॥ ४ ॥

***

आरती कैसे करौं गुसाईं, तुमही व्याप रहे सब ठांई ॥टेक॥
तुमही कुम्भ नीर तुम देवा तुमही कहियत-अलख-अभेवा ॥ १ ॥
तुमही दीपक, धूप अनूपा, तुमही घटा-नाद सरूपा ॥ २ ॥
तुमही पाती, पुहुप, प्रकाशा, तुमही ठाकुर, तुमही दासा ॥ ३ ॥
तुमही जल-थल-पावक-पौना, 'सुन्दर' पकर रहै मुख मौना ॥ ४ ॥

***

ररंकार गुरु शब्द सुनाया, ताकी आरती कर मन भाया ॥टेक॥
आपा मेट गरीबी कीजै, गुरु की आरति करै जो मरै न छीजै ॥ १ ॥
ब्रह्मा विष्णु महादेव पीव की आरती गाई, और दुनी सब धन्धे लाई ॥ २ ॥
धर्मराय डरता आरती गावै, हरि का हुकम न मेटा जावै ॥ ३ ॥
गुरु दादू चेला 'बनवारी', आरती करतों मिले मुरारी ॥ ४ ॥

***

गुरु गोविन्द की आरती गाऊँ, सब सन्तन को माथा नाऊँ ॥टेक॥
देख देख दादू आरती गाई, ऐसी साँई सो लव लाई ।
परचै कबीर हरि गुण गाया, ताथैं साहिब निकट बुलाया ॥ १ ॥
नामा रैदास नाम सौं राता, षट-दर्शन के निकट न जाता ।
धना सैन भक्ति निधि कीन्ही, अन्तरयामी लीना चीन्ही ॥ २ ॥
पीपा सोझा हरिदास गायौ, औलग राम दरस दत पायौ ।
गोरख भरथरि निज तत गहिया, हरि हरि करता अविचल रहिया ॥ ३ ॥
सकल साध माँगैं दीदार, जुग जुग आरती करैं कै बार ।
गुरु-दादू यह आज्ञा दीनी, 'बनवारी' हरि की आरती कीनी ॥ ४ ॥

***

आरती रमता राम की कीजै, निराकार भजि लहा लीजै ।
आदि अन्त का सेवक बंदा, ध्रुव प्रहलाद रु गोपीचन्दा ॥ १ ॥
जनम जनम का सेवक आदू, नाम कबीर जपै जन दादू ।
तूँ ही तूँ ही शिव त्यौं सावै, शिव सनकादिक मुनिजन ध्यावैं ॥ २ ॥
राम भज रहे चरण निवासा, पीपा धना सैन रैदासा ।
नूर तेज जहाँ ज्योति प्रकाशा, अनंत साधु तहँ बसनों दासा ॥ ३ ॥

***

आरती करो हरि की मना, सफल होय ज्यों थारा दिना ॥ १ ॥
सुरति सदा ले सनमुख कीजै, ता सेती अमृत रस पीजै ॥ २ ॥
प्राण मगन हरि आगै नाचै, काल विकराल सबै ही बांचै ॥ ३ ॥
नख शिख सौंज सबै ही वारै, तबही देखत राम उधारै ॥ ४ ॥
गुरु दादू यह गत सिखलावै, टीला के कहूँ और न आवै ॥ ५ ॥

श्री दादू वाणी अष्टक

शिखरिणीछन्द

अयी दादू वाणी, कलिकलुषहीना कर मुझे ।
दिखादे दादू के, चरण भयहारी कर दया ॥
अदोषी तोषी हो, स्थिर शुचि अमानी अगद हो ।
सदा पूज्या मेरा, तन मन रहे दादु पद मे ॥ १ ॥

विचारे प्रज्ञा मो, अचल बन ध्याता तव सदा ।
सुधा-सा श्री दादू, पद नित रटू, आश तज के ॥
तथा सेवा मेरे, कर सुजन सन्तो कर करे ।
सदा पूज्या मेरा, तन मन रहे दादु पद मे ॥ २ ॥

निहारे सन्तो को, नयन दिन दोषा शिर नमे ।
सदा दादू धामो, पद गति करे प्रीति करके ॥
तुम्हारा प्यारा हो, अरथ रस मेरी रसन को ।
सदा पूज्या मेरा, तन मन रहे दादु पद मे ॥ ३ ॥

उचारूँ तेरे को, श्रुति नित सुने वाक्य तब ही ।
सभी मेरा काया, बल तव सु सेवा हित लगे ॥
यही आशा मेरी, तुरत कर पूरी कर कृपा ।
सदा पूज्या मेरा, तन मन रहे दादु पद मे ॥ ४ ॥

विचारे जो तोहे, तव नित नया आसय पय चखे ।
प्रशसा वा निन्दा, सम सुहृद वैरी जग लखे ॥
उदासी माया से, हरि रत रहे आश हत के ।
सदा पूज्या मेरा, तन मन रहे दादु पद मे ॥ ५ ॥

लहे है जो तेरा, सुख अटल पारायण करे ।
सुग्रीवा सन्तो की, तव कर सुशोभा युत बने ॥
विनाशे पापो को, तव पद महा मोह हरणी ।
सदा पूज्या मेरा, तन मन रहे दादु पद मे ॥ ६ ॥

विवादो की हत्री, श्रुति तल स्वरूपा तव नमस् ।
सुधा की धारा से, अधिक सुखकारी सुधरणी ॥
दिखा दे दादू को, विनय नित 'नारायण' करे ।
सदा पूज्या मेरा, तन मन रहे दादु पद मे ॥ ७ ॥

न देखी ऐसी तो, सम सुगमता द्वैत हरणी ।
अयी दादू वाणी, स्तुति तव सदा सन्त करते ॥
रहे हैं तो भी ते, गुण गणन का पार न लहा ।
सदा पूज्या मेरा, तन मन रहे दादु पद मे ॥ ८ ॥

दोहा – प्रेम सहित प्रति दिन पढ़े, 'नारायण' यह जोय ।
दादु कृपा से लहत है, सब थल मगल सोय ॥ १ ॥

अथ श्री श्री 1008 श्री दादूदयाल जी महाराज की कतिपय साखियाँ अन्य ग्रन्थों में तथाकथित

अग	साखी
विरह	विरह वियोग न सह सकू, उर अतर अति साल । कोई कहो मेरे पीव को, मिल दु:ख मेटो लाल ॥ ९० ॥
परचा	कै लख चन्दा झिलमिलै, कै लख सूरज तेज । कै लख दीपक देखिये, पारब्रह्म की सेज ॥ दादू हम वासी परब्रह्म के, पारब्रह्म का खेल । ज्योति जगावे अगम की, बिन बाती बिन तेल ॥ आगे आपै आप है, तहा क्या जी का । दादू दूजा कहिन का, नाहीं लघु टीका ॥ १५० ॥ दादू सूता पीछे सुरति जिरत सू, बालक ज्यो पय पीवै । ऐसे अतर लगन राम सू, आतम जुग जुग जीवै ॥ १६८ ॥ दादू अविगत यो कहै रे, सब अग सबही ठाहिं । जो चाहे सीही तहा, कीमत लेखा नाहिं ॥ २२० ॥
मन	सतगुरु सन्त चरण चल जाहीं, नित प्रति रहिये ताकी छाही । मन निश्चल कर लीजै नाम, दादू कहै तहा ही राम ॥ दादू दूसर कुछ नहीं, दूसर मन की दौड़ । मन मेरा सशय मिटा, वस्तु ठौर की ठौर ॥ सिर पर राख कबीर ज्यो रामनाम ल्यौलाइ । दादू मारग युगो का, एक पलक मे जाइ ॥ मन का कहा न कीजिये, मनका मन को देय । गगन गुडी की डोर ज्यो, दादू उलटा लेय ॥ १९ ॥
माया	दरसन पहरे मूड मुडावै, दुनिया दीन झूठ दिखलावै । मन सू मीठी मुख सू खारी, माया त्यागी कहैं बाजारी ॥ १८ ॥ माया चेरी साधु हि सेवै, साधुन कबहू आदर देवै । ज्यू आवै त्यो जाय बिचारी, बिलसी वितड़ी न माथै मारी ॥ सुरनर मुनियर विस्नु वस, ब्रह्मा लौं है ठेठ । सकल लोक के सिर खड़ी, साधु के पग हेठ ॥ ९९ ॥

संयम सदा, न व्यापै व्याधी, होय अरोगी लगै समाधी ।
राम रसायन भर भर पीवै, दादू जोगी जुग जुग जीवै ॥ ५९ ॥

कहि दादू जो जनकृत धारै, भलो बुरो फल नाहीं लारै ।
झूठा परगट साचा छानैं, तिनकी दादू राम न मानैं ॥ १६ ॥

को घट पापी को घट पुण्य, तो घट चेतन को घट शुन्य ।
को काहू का सीरी नाहीं, साहिब देखै सब घट माहीं ॥ २० ॥

साच
दादू वेद कहो चाहे साधुमुख, साच न ठेल्या जाय ।
साचे सू मन मानिया, सो तत्त देहु दिखाय ॥ १४८ ॥

साध दीवाने राम के, इन तैं सब कुछ होइ ।
ये जु मिलावैं राम कौं, इन ही मिलै जु कोइ ॥ ११५ ॥

भेष
दादू दुरमति माहिं ली, छापा तिलक न जाइ ।
हंसा गति जो हरि भजै, कागा कुमति कुमाइ ॥ २५ ॥

छापा सो छन्दा हरि, तिलक राम उर धार ।
दादू यहु मति हंस की, कागा केलि संसार ॥ २६ ॥

साधु
दादू अरंड अरु आक वन, बास न गिनती माहिं ।
चन्दन संग चन्दन भये, आक कहै को नाहिं ॥ १ ॥

ब्रह्मांड हंड चढाइया, मानो ऊरे अन्न ।
कोई गुरुकृपा तैं ऊबरे, दादू साधू जन्न ॥ ५ ॥

विश्वास
कौन पकावै कौन पीसै, जहां तहां सीधा ही दीसै ।
दादू साधू मांगन धावै, अच्युत रूप आत्म चढावै ॥

दादू ईश्वर जीव की, नित्य करै प्रतिपाल ।
अम्मा ज्यो पोषै सदा, जनि दुख पावै लाल ॥

जीवत मृतक
सेवग सिरजनहार का, सो क्यो परसै आन ।
दादू साध चूकै नहीं, छाडै पिण्ड पिराण ॥ २५ ॥

सेवग सिरजनहार का, तन मन निर्मल होइ ।
दादू साध चूकै नहीं कोटि करै जै कोइ ॥ २६ ॥

जीवत मृतक यही निसानी, दुर्बल देही निर्मल वाणी ।
भाव भगति दीनता अंग, प्रेम प्रीति सदा तिहि संग ॥ ८ ॥

दादू तो तू पावै पीव कू, वे नाहीं दिल माहिं ।
जहा आपा तहा हरि नहीं, हरि तहा आपा नाहिं ॥ १८ ॥

चरचा करते यू कहै, मैं तैं मन मे नाहिं ।
दादू दोष न लागि जन, अह ममत्व बिसराहिं ॥ ३१ ॥

रसन रीस सो जानि छिन, गोष्ठ करत ज्यू होइ ।
जनि आपो निर्मूल कर, दादू दिल तैं धोइ ॥ ३२ ॥

आपो सू मुख-वार्ता, अन्तर आपो नाहिं ।
दादू साधू जान के, साहिब सबही माहिं ॥ ३३ ॥

शब्द

शब्द बधाणा शाह के, तार्थें दादू आया ।
दुनिया जीवी बापुरी, सुख दर्शन पाया ॥ ३७ ॥

सूरातन

दादू राखण हारा राखै, तिसे कौन मारै ।
उसे कौन डुबोवै, जिसे साईं तारै ॥

वाही कौन बिगारै, जाकी आप सुधारै ।
कहै दादू सो कबहु न हारै, जे जन साईं सभारै ॥ ७ ॥

सजीवन

काटै फन्द तो छूटै द्वन्द, छूटै बन्द तो लागै बन्द ।
लागै बन्द तो अमरकद, अमरकद दादू आनद ॥

छ सौ सहस्र इक्कीस का, अजपा जाप विचार ।
यो दादू निज नाम ले, काल पुरुष को मार ॥ १३ ॥

षट् चक्कर पवना फिरै, छ सौ सहस्र इकीस ।
जोग अमर, जम को दहै, दादू बिस्वा बीस ॥

निर्वैरता

दादू पूर्ण ब्रह्म विचारिये, कुजर कीट समान ।
दादू दुविधा दूर करि, तजि आपा अभिमान ॥ २६ ॥

पूरण ब्रह्म विचारिये, दुतिय भाव कर दूर ।
सब घट साहिब देखिये, राम रह्या भरपूर ॥ २७ ॥

पूरण ब्रह्म विचारिये, तो सकल आत्मा एक ।
काया के गुण देखिये, तो नाना वर्ण अनेक ॥ २८ ॥

सब जीवो की करै प्रतिपाल ।
ताको भेटै दीनदयाल ॥

अन्य

दादू समा विचार के, कलि का कीजे भाय ।
जो तोहे मारे ढीम ईंट, लीजो सीस झुकाय ॥

अन्य देव की सेव से, कबहू भला न होय ।
दादू ऊसर बाहि कर, कोठा भरै न कोय ॥

❊ गुरु–मन्त्र की पद्यमय टीका ❊

१ **अविचल मत्र –** अविचल दादू राम जी, अविचल जाके बैन ।
अविचल सन्त उर धार के, अविचल पावै चैन ॥

२ **अमर मत्र –** अमर अनूपम आप है, अमर हरि का नाम ।
अमर हरि के सन्त है, अमर लहै सुख धाम ॥

३ **अक्षय मत्र –** अक्षय अखडित एक रस, सब मे रह्या समाय ।
आपै आप उदार हरि, सुमिर सुमिर सुख पाय ।

४ **अभय मत्र –** अभय एक रस अजित अति, सत् चित् आनद गोय ।
अज अविनाशी ब्रह्मजन, ध्याय अभय भय खोय ॥

५ **राम मत्र –** राम रमै रमतीत नित, रर कार रट सोय ।
गुरु कृपा गम सुरति सू, राम रूप तब होय ॥

६ **निजसार मत्र –** निज चेतन तत्त सार है, तो बिन सकल असार ।
कारज कारण रूप है, समझ रु ज्ञान विचार ॥

७ **सजीवन मत्र –** सजीवन सत सार सुख, ता बिन असत असार ।
ढिढ नौका निज नाव गह, जन भव उतरे पार ॥

८ **सवीरज मत्र –** सवीरज अमृत हरि, सचराचर मे पूर ।
गुरु ज्ञान तै गम भई, अज्ञाजन भाषत दूर ॥

९ **सुन्दर मत्र –** सुन्दर सिरजनहार है, निरामय निज नूर ।
गुरु ज्ञान तै गम भई, अज्ञाजन भाषत दूर ॥

१० **शिरोमणि मत्र –** सत्य शिरोमणि सबन मे, व्याप रह्या सम भाइ ।
साच शील सतोष गहे, सतगुरु ज्ञान लखाइ ॥

११ **निर्मल मत्र –** निर्मल अपनी आतमा, निर्मल गुरु का ज्ञान ।
निर्मल हरि के सन्त है, निर्मल नाव बखान ॥

१२ **निराकार मत्र –** निराकार निर्गुणमयी, निरालब निरधार ।
निजानद निज बोध मम, सतगुरु ज्ञान विचार ॥

१३	अलख मत्र –	अलख निरजन एक रस, सतगुरु दीन दयाल । समरथ सिरजनहार जप, शरणागत प्रतिपाल ॥
१४	अकल मत्र –	अकल अरूपी अमित गति, अविनाशी अज एक । जन जप तत् सत् ऊधरे, सतगुरु ज्ञान विवेक ॥
१५	अगाध मत्र –	अगाध अगोचर एकरस, अतोल अमोल अमाप । सिध साधक मुनि थक रहे, वेद थकै जप जाप ॥
१६	अपार मत्र –	अपार पार नहिं जास को, सनकादिक रहे हार । पार न पावै शेष शिव, ब्रह्मा वेद विचार ॥
१७	अनत मत्र –	अनन्त रूप परमात्मा, अनन्त रूप गुरुदेव । अनन्त सन्त हरि को भजै, लहै जु विरला भेव ॥
१८	राया मत्र –	राया सतगुरु रामजी, सकल भवन के ईश । अखिल चराचर मै बसै, ब्रह्मादिक के शीश ॥
१९.	नूर मत्र –	नूर रूप परब्रह्म है, नूर रूप गुरुदेव । नूर रूप सब सन्त है, करै नूर की सेव ॥
२०	तेज मत्र –	तेज तत्त तिहु लोक मै, व्याप रह्या इकसार । समझे तै भवसिन्धु से, हरिजन उतरे पार ॥
२१	ज्योति मत्र –	परम ज्योति जगदीश की, सब मे रही समाय । सकल ज्योति उस ज्योति तै, प्रकाशित समभाय ॥
२२	प्रकाश मत्र –	सब घट ब्रह्म प्रकाश है, ब्रह्म दृष्टि कर देख । वेद कहै पुनि साधु सब, सतगुरु ज्ञान विवेक ॥
२३	परम मत्र –	परम गुरु परब्रह्म है, परम हरिजन सोइ । परम प्रभु का जाप है, भेद भाव नहिं कोइ ॥
२४	पाया मत्र –	पाया परम दयाल गुरु, पाया सतगुरु बैन । पाया यहि जिहिं उर धर्या, यह आतम की सैन ॥

॥ गुरु मंत्र टीका सम्पूर्ण ॥

श्री दादूदयाल जी के ५२ शिष्यों में गण्य

श्री जैमल जी चौहान का रामरक्षा मन्त्र

ॐ राम बिना इस जीव को, कोइ न राखण हार ।
जैमल सतगुरु आपणा, राखै बारबार ॥ १ ॥

ॐ अकाशे रक्षा करै, पाताले प्रतिपाल ।
घट म ाहीं रक्षा करै, जैमल दीनदयाल ॥ २ ॥

शीश रक्षा साई करै, श्रवणो सिरजन हार ।
नैन रक्षा नरहरि करै, नासा अपरपार ॥ ३ ॥

मुख रक्षा माधो करै, क ठ रक्षा करतार ।
हिरदै रक्षा हरि करै, भुज रक्षा भरतार ॥ ४ ॥

पेट रक्षा पुरुषोत्तमा, नाभि त्रिभुवनसार ।
जाघ रक्षा जगदीश जी, पिडी परम उदार ॥ ५ ॥

गिर रक्षा गोविन्द करै, पगथली प्राण-आधार ।
जहा तहा रक्षा करै, साचा सिरजनहार ॥ ६ ॥

आगै राखै रामजी, पीछै राखण हार ।
बाये दाये राखि ले, कर गहि तू करतार ॥ ७ ॥

जम डका लागै नहीं, विघ्न-काल भय दूर ।
राम रक्षा जिनकी करै, बाजै अनहद तूर ॥ ८ ॥

भेजी राखै भूधरा, जिह्वा को जगदीश ।
कलेजा राखै केशवा, अस्थि राखै सर्व-ईश ॥ ९ ॥

मींजी राखै माधवा, मन को मोहन राय ।
मनसा की रक्षा करै, कबहू दूर न जाय ॥ १० ॥

आत्मा को अकला राखै, जीव को ज्योति स्वरूप ।
सुरति को राखै साइया, चित को अमर अनूप ॥ ११ ॥

दिन को राखै रामजी, सूता राम सहाय ।
सुपना मे भी सग रहै, जैमल एकै भाय ॥ १२ ॥

सर्प सिह व्यापै नहीं, डाइन नजर मशाण ।
अन्त काल रक्षा करै, काल न झंपै प्राण ॥ १३ ॥

राख राख शरणागता, हमको अबकी बार ।
जैमल की रक्षा करो, साचा सिरजनहार ॥ १४ ॥

हरि जी तुम बिन को नहीं, हमको राखणहार ।
यह जैमल की वीनती, सुनियो बारबार ॥ १५ ॥

जीव हमारा एक है, वैरी लाख अनन्त ।
इनसे हमको राखियो जैमल गुरु भगवन्त ॥ १६ ॥

सेवक की रक्षा करै, सेवक की प्रतिपाल ।
सेवक की बाहरै चढै, श्री दादू दीनदयाल ॥ १७ ॥

बस्ती मे रक्षा करै, अरु वन मे प्रतिपाल ।
घट मांहीं रक्षा करै, श्री स्वामी दीनदयाल ॥ १८ ॥

दिन को राखै चन्द्रमा (सुर), निशि को राखै सूर ।
पूर्णब्रह्म रक्षा करै, बाजै अनहद तूर ॥ १९ ॥

***

सप्ताह भर मे शनि, रवि, सोम, भोम, बुधवार ।
गुरु, शुक्र रक्षा करै, समथ सिरजनहार ॥ २० ॥

जल तु, जलाल तुं, कुदरत तुं, कमाल तुं ।
केशव तु, करीम तु, आई बलाय, टाल तु ॥

***

समर्थ मेरा सांइया सकल अघ जारै ।
सुखदाता मेरे प्राण का संकोच निवारै ॥

त्रिविध ताप तन की हरै चोथै जन राखै ।
आप समागम सेवका, साधू यूं भाखै ॥

आप करै प्रति पालना, दारुणे दु ख टारै ।
इच्छा जन की पूरि है, सब कारज सारै ॥

कर्म कोटि मय मंजना, सुख मंडल सोई ।
मन मनोरथ पूरणो, ऐसा और न कोई ॥

ऐसा और न देखि हू, सब पूरण कामा ।
दादू साधु सगी किये, उन आतम रामा ॥

भोग - विधि

सन्त प्रीति पनवारा लाये, छप्पन भोग छतीसो व्यंजन ।
मनसा मन्दिर चतुष्टय चौकी, ज्ञान गंग जलझारी मजन ॥
सुषुमनि कवला बिजना ढोलै, तुम्हरो तुम अर्पन सब अजन ।
हरि गुरु संत सकल रुचि जीमो, नूर तेज हरि ज्योति पुंजन ॥ १ ॥

प्रेम पुष्प से पूजा करहीं, पाती प्रीति सु लेय चढाय ।
मनसा थाल भाव भोजन कर, भगवत भोग लगन से लाय ॥ २ ॥

सेवा पूजा सुरति सु, कीजै किहि सजोग ।
कहै जगजीवन रामजी, हरि के लागै भोग ॥ ३ ॥

तुम दाता तुम भोक्ता, तुम हरि अर्पण भाय ।
कहै जगजीवन रामजी, अलख अरोगो आय ॥ ४ ॥

सकल समर्पण कीजिये, अविगत भोग लगाय ।
कहै जगजीवन भाव सु, राम अरोगो आय ॥ ५ ॥

तेजहि खाना पीवना, तेजहि भोग विलास ।
तेजहि बरतन साध के, कहै जगजीवनदास ॥ ६ ॥

थाल परोस्यो प्रीति सु, मोहन लायो भोग ।
परमेश्वर परमात्मा, स्वामी दादू जोग ॥ ७ ॥

जो यह भोजन स्वामी पावै, जीवन जन्म सफल हो जावै ।
जन का भाव विचारो स्वामी, तुम सब जानो अन्तर्यामी ॥ ८ ॥

गुरु दादू के थाल को, लहै सींथ कण जोय ।
ज्ञान भक्ति वैराग्य पद, निश्चय पावै सोय ॥ ९ ॥

परचै सेवा आरती, परचै भोग लगाय ।
दादू उस प्रसाद की, महिमा कही न जाय ॥ १० ॥

परमेश्वर के भाव का, एक कणूका खाय ।
दादू जेता पाप था, भरम करम सब जाय ॥ ११ ॥



श्रीदादूवाणी अंगरागानुक्रमणिका

गुरुदेव[१] के स्मरण[२] से विरहा[३], पिव परिचै[४] जरणा[५] जागी ।
हैरांन[६] हो लय[७] में निहकर्मी–पतिव्रत[८] चेतावनी[९] लागी ॥ १ ॥

मन[१०] ने सूक्ष्म–जन्म[११] माया[१२] तजि, साच[१३] निरामय भेष[१४] धरा ।
साधू[१५] मधि[१६] सारग्राही[१७] पाया, सु विचार[१८] किया विश्वास[१९] भरा ॥ २ ॥

पीवपिछाण[२०] समर्थाई[२१] दी, शब्द[२२] सूं जीवत–मृतक[२३] ह्वैं ।
सूरातन[२४] धर काल[२५] निवारे, भया सजीवन[२६] पारिख[२७] तैं ॥ ३ ॥

उपजणि[२८] लगी दया–निर्वैरता[२९], सुन्दरी[३०] प्रियतम सूं भेटे ।
कस्तूरी–मृग[३१] अन्तर ईश्वर, निन्दा[३२] वर्जित निगुणां[३३] मेटे ॥ ४ ॥

विनती[३४] कर्त्ता साक्षीभूत[३५] की, भक्ति बेलि[३६] अबिहड़[३७] सींचै ।
ब्रह्मज्ञान तरु साखी शाखा, सुरति–तन्तु मन की खींचै ॥ ५ ॥

गौडी[१] पहरा माली–गौड़ा[२], राग कल्याणो[३] कान्हड[४] ली ।
अडाणों[५] केदारो[६] गावहि, मारू[७] सुन्दर रामकली[८] ॥ ६ ॥

आसावरी[९] सिंधूड़ो[१०] सीधो, देवगंधार[११] सु जाण भली ।
कालिंगडा[१२] रसिया परजिया[१३], भेटणवाली भांणमली[१४] ॥ ७ ॥

सारंग[१५] टोडी[१६] और हुसैनी–बंगालो[१७] त्रीताल लही ।
नट–नारायण[१८] मीठी सोरठ[१९], रागिनी गुड[२०] बिलावल[२१] ही ॥ ८ ॥

सूहो[२२] कायाबेली सोहे, बसन्त[२३] राग भैरूं[२४] ललिता[२५] ।
जैतश्री[२६] धन्य धनाश्री[२७] में, पंच आरती संग्रहिता ॥ ९ ॥

अंग गंग सैंतीसों धारा, नक्षत्र (२७) राग बणी तरणी ।
कर्णधार शुभ करणी अपणी, भवतारक है वैतरणी ॥ १० ॥

प्रगट दयालु देही मानो, श्रीगुरु दादू की वाणी ।
'नारायण' पारायण करके, अगणित उधरे है प्राणी ॥ ११ ॥

रचयिता- नारायण स्वामी, एम ए
(अर्थशास्त्र),
निवाई महन्तो का बाग, जयपुर ।

श्री दादूवाणी के साखियों की प्रतीक सूची
(सूचना–दादू के बाद प्रथम अक्षर से देखे)

य

साखी प्रतीक सूची सर्जक

स्वामी क्षमारामजी परमहंस

(बड़ा गाँव द्वारा प्रकाशित 'श्री दादूवाणी' से उद्धृत)

श्री दादू वाणी नमस्कार युग्म

नमस्ते दादू के, मुखकमलजा क्लेश हरणी।
नमस्ते दादू के मन अचलजा ज्ञान सरिते ॥
नमस्ते मेधादा, सुर गुण कृषि वृष्टि सम-सी।
नमस्ते दासो को, परम पद दात्री गुण मयी ॥ १ ॥

नमस्ते पूषा की, किरण सम अज्ञान हरणी।
नमस्ते कारुण्या सतत जन त्रात्री सु विमला ॥
नमस्ते वोधात्मा, विमल वर ज्ञानी जन प्रिया।
नमस्ते दादू की, वचन वा काया मन सदा ॥ २ ॥

अथ श्रीदादू वाणी के भजनों की प्रतीक सूची

***

संतकवि कविरत्न

स्वामी नारायणदासजी कृत ग्रंथ

१ प्लवगम पुष्पमाला। २ श्रीवाह्यातर वृत्ति वार्ता। ३ श्रीकृष्ण कृपाफल। ४ शिक्षा सप्तशती। ५ भक्ति चरित्र। ६ साधक सुधा सपूर्ण। ७ दृष्टात दोहावली। ८ नारायण भजनावली। ९ सतप्रसाद। १० उत्तम उपदेश। ११ उभय तन शोधकसुधा। १२ वेदात प्रश्नोत्तरी। १३ शिक्षासूत्र। १४ अबोध बोध। १५ अवस्था व्यवस्था। १६ सद् वचन-सुधावली। १७ शिक्षा शतक। १८ विनयभूत चेतावनी शतक। १९ सुधारक सप्तसूत्री। २० सतवाणी पर मेरे विचार। २१ चेतावनी चौतीसा। २२ प्रार्थना पचदशी। २३ नारायण प्रश्नोत्तरी। २४ बृहत् प्रश्नोत्तरी। २५ सुन्दरदास जी उनकी वाणी पर मेरे विचार। २६ दृष्टान्त-सुधा-सिन्धु इसमे ३००० से अधिक दृष्टान्त हैं, यह छ भागो मे छपा है। २७ सिद्ध सत रामस्वरूप जी का जीवन चरित्र। २८ भक्तमाल माहात्म्य। २९ भक्तमाल की आरती। ३० सुन्दरवाणी स्तव सप्तक। ३१ भक्ताष्टक। ३२ समय सप्तशती (अप्रकाशित)। ३३ नारायण कवितावली - इसमे विविध विषयो के कवित्त हैं। ३४ अध्यात्म रामायण का पद्यानुवाद। ३५ श्रीदादूवाणी-दादूगिरार्थ-प्रकाशिका टीका सहित। ३६ रज्जबवाणी रज्जब गिरार्थ प्रकाशिका टीका सहित। प्रकाशको को द्वितीय सस्करण निकालने का अधिकार नहीं है, वह लेखक से पूछकर कोई भी निकाल सकता है। ३७ राघवदास जी कृत भक्तमाल व चतुर-दास जी कृत उसकी पद्य टीका। ३८ श्रीदादूचरितामृत (स्वामी लक्ष्मीराम चिकित्सालय जयपुर से मिलता है।) ३९ श्रीदादूपथ परिचय (दादूपथ का इतिहास) लगभग तीन हजार पृष्ठो मे तीन भागो मे छपा है। ४० राजस्थानी सतसाहित्य परिचय। ४१ स्तोत्रसुधाह्रद। ४२ गणपति सहस्रनाम। ४३ गणपति आरती। ४४ गणेशाष्टक। ४५ अष्टोत्तरशत श्रीविष्णु नाम माला। ४६ विष्णु आरती। ४७ विष्णु अष्टक। ४८ सत्यनारायण की आरती। ४९ शकरसहस्रनाम। ५० शकरजी की आरती। ५१ शकराष्टक। ५२ शक्ति सहस्रनाम। ५३ शक्ति जी की आरती। ५४ शक्ति अष्टक। ५५ गगाजी की आरती। ५६ लक्ष्मीजी की आरती। ५७ सरस्वती की आरती। ५८ मातामहिम्न। ५९ सूर्य सहस्रनाम। ६० सूर्य आरती। ६१ सूर्याष्टक। ६२ नृसिह सहस्रनाम। ६३ नृसिह आरती। ६४ नृसिहाष्टक। ६५ राम सहस्रनाम। ६६ रामजी की आरती। ६७ रामाष्टक। ६८ रामप्रणति पचम। ६९ राममहिम्न। ७० कृष्ण सहस्रनाम। ७१ कृष्णजी की आरती। ७२ कृष्णाष्टक। ७३ कृष्ण प्रार्थना पचक। ७४ कृष्ण कवच। ७५ कृष्णमहिम्न २९ शिखरिणी। ७६ मक्खन चोरी, शका समाधान। ७७ हनुमत सहस्रनाम। ७८ हनुमानजी की आरती। ७९ हनुमत अष्टक। ८० हनुमत महिम्न २८, शिखरिणी और एक दोहा। ८१ नानक सहस्रनाम। ८२ ननकजी की आरती। ८३ नानकाष्टक। ८४ दादू सहस्रनाम। ८५ दादूजी की आरती। ८६ दादू प्रणति अष्टक। ८७ दादूवाणी की आरती। ८८ दादूवाणी प्रार्थनाष्टक। ८९ दादूमहिम्न। ९० दादू प्रार्थनाष्टक। ९१ दादूगिरागरिमा आद्याक्षरी। ९२ दादूप्रार्थना पचक। ९३ निज अभिलाषा शिखरिणी सप्तक। ९४ दादू अष्टपदी। ९५ परमेश्वर पचसहस्र नाम माला। ९६ परमेश्वर की आरती। ९७ परमेश्वराष्टक। ९८ सद्गुरु सहस्रनाम। ९९ सद्गुरुआरती। १०० सद्गुरु अष्टक। १०१ सद्गुरुमहिम्न, २९ शिखरिणी। २०२ ब्रह्मसहस्रनाम। १०३ ब्रह्म की आरती। १०४ ब्रह्माष्टक। १०५ सत साहित्य महात्म्य सत्ताईसा। १०६ गीता गरिमा। १०७ धर्मवीर पचक। १०८ शिक्षा षष्ठक। १०९ निज अभिलाषा अष्टपदी। ११० सतमाल। १११ सतमाल माहात्म्य। ११२ सतमाल की आरती। ११३ सतो की आरती। ११६ विश्व वट विटप रहस्य सप्तक। ११७ परपरागत श्रीदादूवाणी प्रवचन पद्धति। ११८ दादूवाणी महात्म्य। ११९ गुणगजनामा।

उक्त नारायण ग्रथावली के ग्रन्थो को खरीदकर पढ़िये और नास्तिक भावना तथा भ्रष्टाचार को रोकते हुए सदाचार और ईश्वर भक्ति के प्रचार मे सहायक बनिये। मिलने का पता (१) श्री दादू महाविद्यालय, मोती डूगरी रोड, जयपुर। (२) श्री दादू मदिर, नारायणा, जिला जयपुर।

***

दादूराम दादूराम दादूराम दादूराम

दादूराम दादूराम दादूराम दादूराम

दादूराम दादूराम दादूराम

दादूराम दादूराम दादूराम दादूराम

दादूराम दादूराम दादूराम दादूराम

दादूराम दादूराम दादूराम दादूराम

दादूराम दादूराम दादूराम दादूराम

दादूराम दादूराम दादूराम दादूराम

दादूराम दादूराम दादूराम दादूराम

दादूराम दादूराम दादूराम दादूराम

दादूराम दादूराम दादूराम दादूराम

दादूराम दादूराम दादूराम दादूराम

दादूराम दादूराम दादूराम दादूराम

दादूराम दादूराम दादूराम दादूराम

दादूराम दादूराम दादूराम दादूराम

भारतीय श्रुति-दर्शन केन्द्र
जयपुर

